भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | फाल्गुन 2030 विक्र०, 1894 शकाब्द जनवरी 1974 | संख्या 1

मांस भक्षी पेड़ पौधे

यशवन्त कोठारी व श्याम सुन्दर ओझा

पोषण के आधार पर पौधों का वर्गीकरण इस प्रकार है :—

स्वपोषित—ऐसे पौधे अपना भोजन स्वयं बना लेते हैं। ये हरे रंग के होते हैं अतः अपने हरे रंग या क्लोरोफिल तथा पानी व कार्बन डाइआक्साइड से सूर्य-प्रकाश की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण द्वारा अपना कार्बनिक भोजन स्वयं तैयार कर लेते हैं और इस भोजन से अपना पोषण करते रहते हैं।

परिपोषित—स्वपोषित पौधों के अतिरिक्त कुछ पौधे ऐसे होते हैं जो अपना भोजन स्वयं नहीं बना पाते हैं क्योंकि उनमें हरा रंग नहीं होता है अतः इन्हें दूसरों का सहारा लेना पड़ता है। ये पौधे अपना भोजन और कई प्रकार से प्राप्त करते हैं जो निम्न हैं :

परजीवी—ये ऐसे पौधे होते हैं जो कि दूसरे जीवित पौधों के ऊपर उगकर उन्हीं से अपना भोजन प्राप्त करते हैं। ये दो तरह के होते हैं। पहले प्रकार के पौधों में पर्णहरिम का सर्वथा अभाव होता है अतः ये अपना भोजन बिल्कुल नहीं बना सकते। ये पौधे अपने भोजन के लिये पूर्णतः परिपोषी पर निर्भर रहते हैं अतः इन्हें पूर्ण परजीवी कहते हैं जैसे अमर बेल तथा ओरो-बेंकी आदि। पोषण ग्रहण करने के लिए इनमें विशेष प्रकार की रचनाएँ पायी जाती हैं जिन्हें चूषकांग कहते हैं। जिन पौधों पर ये लिपटे रहते हैं उनके तनों में अपना चूषकांग भेज देते हैं और इसी के द्वारा अपना खाद्य खींचते रहते हैं।

दूसरे प्रकार के परजीवी ऐसे होते है जिनमें पत्तियाँ इत्यादि भी होती हैं तथा ये अपना भोजन स्वयं भी बना लेते हैं लेकिन कच्चे भोज्य पदार्थों के लिए इन्हें परिपोषी पर निर्भर रहना पड़ता है अतः इन्हें आंशिक परजीवी कहते हैं जैसे लोरेन्थस, विस्कम या बन्दा आदि।

मृतोपजीवी—ये वे परजीवी हैं जो कि भूमि या मृतक पौधों व जन्तुओं के ऊपर उगते हैं। इनमें भी पर्णहरिम नहीं होता है। इनके उदाहरण मोनोट्रोपा, आर्किड्स, कुछ फफूँदियों व जीवाणु हैं।

सहजीवी—जब दो जीवित पौधे साथ-साथ मिलकर रहते हैं और एक दूसरे को लाभ पहुँचाते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं तो ऐसे जीवन को सहजीवन तथा ऐसे पौधों को सहजीवी पौधे कहते हैं। जैसे—लाइकेन, माइकोराइजा, मटर तथा चने की जड़ों में पाये जाने वाले जीवाणु। ये जीवाणु वायुमंडल की स्वतन्त्र नाइट्रोजन को ले कर नाइट्रोजन यौगिकों में बदल देते हैं जो कि पौधों के विकास में अत्यन्त लाभकारी हैं। इसके बदले में जीवाणु पौधों की जड़ों में रह लेते हैं।

मांसाहारी—प्रकृति के अद्भुत कारनामें साधारण मानव के लिए सदैव रहस्यपूर्ण रहे हैं। शिकारी पौधे या मांस भक्षी या इनसेक्टीवोरस या कारनी वोरस पेड़ पौधे ऐसा ही एक उदाहरण हैं। वनस्पतिज्ञों के अनुसार पौधों का यह कार्य आत्मरक्षा के लिए नहीं है। वरन् पौधे यह कार्य अपनी क्षुधा शान्ति हेतु करते हैं। संसार के विभिन्न भागों से लगभग 500 किस्म के मांस भक्षी पौधों की खोज हो चुकी है। वैज्ञानिकों के अनुसार ये पौधे अपना मुख्य भोजन (कार्बोहाइड्रेट) तो स्वयं बनाते हैं। लेकिन नाइट्रोजन युक्त भोजन के लिए ये पौधे मांस या कीट भक्षण करते हैं। ऐसे पौधे उन स्थानों पर बहुतायत से मिलते हैं जहाँ पर भूमि में नाइट्रोजन की कमी हो। प्रोटीन प्राप्त करने के लिए इन पौधों में विभिन्न प्रकार के उपकरण विकसित होते हैं। कुछ की पत्तियाँ घड़े के आकार की बन जाती हैं। कुछ में घड़े के ऊपर ढक्कन भी लग जाता है। जो कीट एक बार इसमें फँस गया उसका जीवित बच निकलना असम्भव ही है। कुछ पौधों में रंगीन पत्तियाँ, सुगन्ध युक्त तरल पदार्थ आदि कीटों को फँसाने के अत्यन्त ही आकर्षक वस्तुएँ हैं। ऐसे पौधे भारत में हिमालय, आसाम, इन्दोर आदि प्रदेशों में पाये जाते हैं।

मांस इन पौधों के विकास के लिए अत्यन्त ही आवश्यक है। लेकिन कई बार ऐसा होता है कि ये पौधे मांस या कीटों का शिकार नहीं कर पाते फलस्वरूप इन पौधों में नाइट्रोजन की भूख के चिह्न दिखाई पड़ जाते हैं। ये कमजोर हो जाते हैं। पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। लेकिन पौधे इस कमी के कारण मरते नहीं हैं। ज्योंही शिकार फँसता है ये पौधे अपनी कमी को न केवल पूरा करते हैं वरन् ये अधिक मांस भी रख लेते हैं। जो समयान्तर में पचता रहता है। पिचर प्लान्ट नामक पौधे ने तो पन्द्रह दिन में 70 तिलचट्टे खाकर एक रिकार्ड कायम किया है।
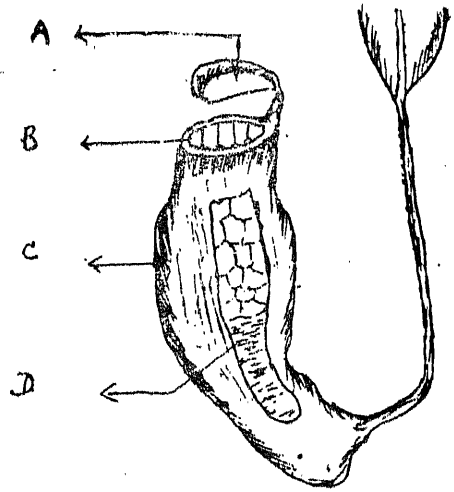
चित्र सं०—1

A—ढक्कन
B—रीम
C—स्लाइडींग जोन
D—अंडे की गुहा

(1) जादुई पिंजरे वाला पौधा—वनस्पतिज्ञ इस पौधे को डायोनियाँ कहते हैं। 6 इंच लम्बे इस पौधे की पत्तियाँ विचित्र आकार में कटी हुई होती हैं तथा पत्ती के प्रत्येक भाग के किनारे-किनारे नुकीले बाल काँटे जैसे लगे रहते हैं। ये रोयें किसी भी कीट के पत्ती पर आकार बैठने की सूचना देते हैं और पत्तियाँ बन्द हो जाती हैं तथा कीट इसमें फँस जाता है। एक सेकेंड से भी कम समय में ये पत्तियाँ एक कीट का

शिकार कर लेती हैं। एक या दो सप्ताह के पश्चात् में पत्तियाँ वापस खुलती हैं। लेकिन अगर कीट बड़ा होता है तो ये पत्तियाँ फिर नहीं खुलती हैं।

युरोप, बंगाल, सुन्दरवन और पूर्वी बंगाल में पाया जाने वाला "आलड्रावण्डा" नामक पौधा भी डायोनियाँ के तरह से ही अपने शिकार को फँसाता है। यह स्थिर पानी वाले तालाबों में बिना जड़ के उगता है। इसकी पत्तियाँ डायोनियाँ से आकार में छोटी होती हैं यूट्रिक्यूलोरियाँ या "ब्लाडर वर्ड" नामक पौधा अमेरिका तथा भारत में पाया जाता है। सौन्दर्य की घाटी काश्मीर की डल झील में यह पौधा काफी बड़ी तादाद में पाया जाता है। इस पौधे में जड़ें नहीं होती हैं तथा कुछ पत्तियाँ ब्लेडर के आकार की बन जाती हैं। इस ब्लेडर के अन्दर का दाब ज्यों ही कम होता है ब्लेडर का द्वार खुल जाता है और पानी में पाये जाने वाले कीट इसके अन्दर समा जाते हैं। कुछ समय वाद कीट व्लेडर में सड़ने लगता है और प्रोटीन युक्त भोजन का अवशोषण कर लिया जाता है।

चित्र 2—ड्रॉसरा की पत्ती

पिग्विकुला या बटरवर्ट नामक पौधा हिमालय में पाया जाता है। इस पौधे की पत्तियों पर विशेष प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं। जो कि एक चिपचिपा पदार्थ छोड़ती हैं। कोई भी कीट इन पत्तियों के सम्पर्क में आकर चिपक जाता है। ये पत्तियाँ धीरे-धीरे अन्दर की ओर मुड़ती हैं तथा कीट को अपने छोटे-छोटे काँटों से छेद डालती हैं। पाचक ग्रन्थियों से पाचक रस निकल कर इन कीटों को पचाता है। कुछ समय बाद ये पत्तियाँ वापस खुल जाती हैं।

घड़े के आकार वाले पौधे—हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर, मेडागास्कर, फिलीपाइन्स, आस्ट्रेलिया मलेशिया, सिलोन व आसाम में पाये जाने वाले ये पौधे विचित्र हैं। इनके कुछ पत्ते घड़े के आकार के बन जाते हैं तथा कीट पतंग इन्हीं घड़ों में फँसाये जाते हैं। नेपन्थीस तथा सरसेनिया इनमें मुख्य हैं। नेपन्थिस के पत्ते आसपास के पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। इसका एक पत्ता घड़े के आकार का बन जाता है। इसमें प्रोटीन को पचाने वाला एक "प्रोटियोज" नामक एनजाइम
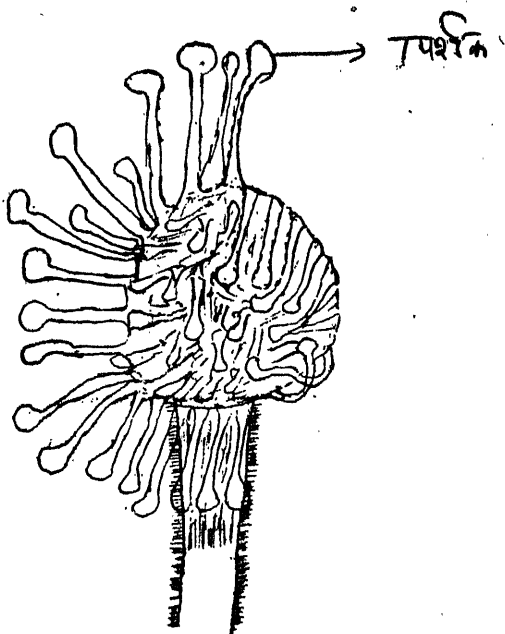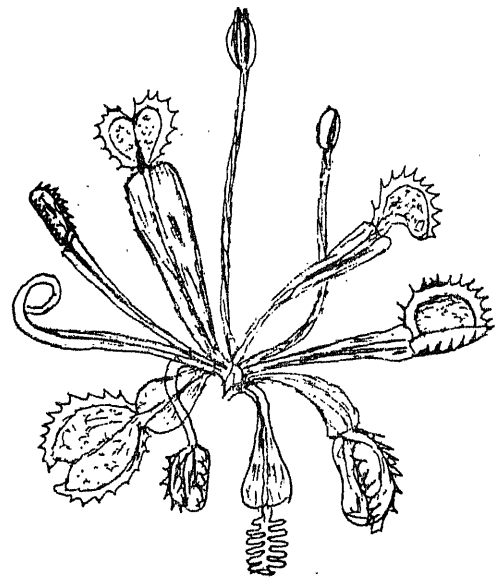
चित्र 3—विनस फ्लाई ट्रेप का पौधा

होता है। एक सुगन्ध युक्त द्रव पदार्थ कीटों को अपनी ओर आकर्षित करता है। चिकने धरातल के कारण

कीट घड़े के अन्दर पड़ जाते हैं और रोयेंदार घड़े की दिवारे वापस बाहर निकलने से रोकती हैं। नीचे एकत्रित द्रव में ये कीट पड़ जाते हैं। नेपन्थीज से भी आकर्षक हैं। सरसेनियाँ इसके घड़े पर ढक्कन भी होता है लेकिन द्रव नहीं होता है। इसमें जीवाणुओं के द्वारा कीटों को सड़ा कर पोषण तत्व प्राप्त किये जाते हैं।

3. सूर्य ओस—ड्रोमरा नामक पौधा कीचड़ वाले स्थानों में पाया जाता है। इसकी पत्तियों में लम्बी ब्लेड होती हैं। जिसके ऊपर रोयेंदार बाल (टेन्टेकल्स) लगे रहते हैं। इन पत्तियों पर ओस की बूँदों के समान बूँदें दिखायी देती हैं जो सूर्य के प्रकाश में ओस की तरह चमकती हैं। ये बूँदें पाचन रस की होती हैं। हर पत्ती पर करीब 200 टेन्टेकल्स होते हैं। ज्योंही कोई कीट पत्ती पर आकर बैठता है। संवेदनशील रोयें उसको चारों ओर से लपेट लेते हैं। और कीट पूर्ण रूप
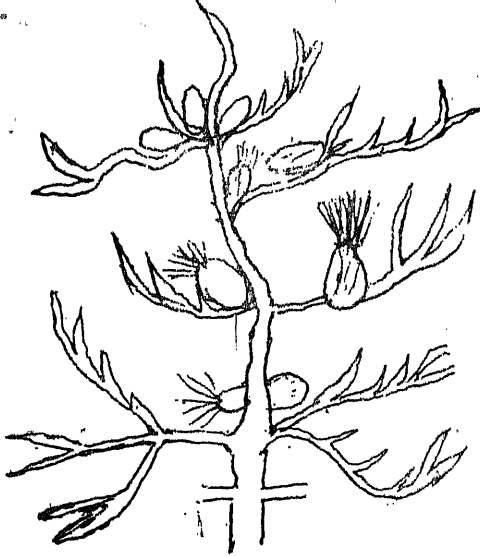
चित्र 4—यूट्रीकुलेरियाँ

से निगल लिया जाता है। कुछ समय बाद टेन्टेकल्स वापस पूर्व स्थिति में आ जाते हैं। तथा बाकी बचे हुए कीट के अवशेष हवा के द्वारा फेंक दिये जाते हैं।

4. आश्चर्यजनक पौधे—उपरोक्त वर्णित सभी पौधे कीट भक्षी हैं। लेकिन कुछ अन्य पौधे भी हैं जो अपने में अनोखे भी हैं तथा वे कीटों के अलावा बड़े जानवरों तक का शिकार करते हैं। ऐसे पौधे भारत में नहीं मिलते। लेकिन अन्य देश जैसे जावा, आस्ट्रेलिया, तस्मानियाँ, अर्जेन्टाइना आदि में पाये जाते हैं। कुछ ऐसे पेड़-पौधों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है। ब्राजील में एक पेड़ मंशीनिल होता है। वसन्त ऋतु में इस पौधे के लाल रंग के फूल आते हैं और पेड़ इन फूलों से ढक जाता है। फलों से झरने वाला पराग अगर किसी व्यक्ति पर पड़ जाय तो उसे दाद व खुजली हो जाती है।

जावा के अन्दर पाया जाने वाला **एंटियारिस टोक्सिकारियां** की शक्ल बेर के पेड़ से मिलती है। इसमें घने कंटीले काँटे होते हैं। पेड़ से विष व गन्ध निकलती हैं। जिससे पशु, पक्षी व आदमी मर जाते हैं। तस्मानियाँ के **होरिजिटल स्क्रब** नामक पेड़ के चंगुल में फँसने के बाद जीवित बच निकलना असम्भव है। मलाया में पाये जाने वाला **फिगस रूबिजनोसा** तो और भी आश्चर्यजनक हैं। यह अपने पास पड़ोस के पेड़ पौधों को खाकर ही अपना जीवन चलाता है। वेस्ट इन्डीज और अर्जेन्टाइना का क्लोरोफार्म ट्री सुन्दर-सुन्दर आवाज निकालता है और सोये हुए पशु का खून चूस लेता है।

यशवन्त कोठारी व श्याम सुन्दर ओझा
361, शिक्षक कालोनी
अम्बामाता
उदयपुर (राज०)

रत्न तथा बहुमूल्य खनिज

विजय कान्त श्रीवास्तव

रत्न तथा बहुमूल्य खनिज प्रकृति में पाये जाते हैं। ये प्राकृतिक अकार्बनिक पदार्थ है। इनकी एक निश्चित रासायनिक संरचना होती है तथा ये एक सूत्र द्वारा बताये जा सकते हैं। सुन्दरता तथा कठोरता इनके प्रधान गुण हैं। इसी आधार पर निम्न रत्न माने गये हैं। (1) हीरा (2) रुबी माणिक, लाल (3) सफायर (नीलम) (4) एमराल्ड (पन्ना) (5) ओपल तथा (6) मोती।

सम्प्रति बहुत से रत्न तथा बहुमूल्य खनिज प्रयोगशालाओं में कृत्तिम रीतियों से बनाये जाने लगे हैं। रत्नों के निम्न गुण प्रधान है (1) कठोरता (2) पालिश करने पर तीव्र चमक, दुग्धामलन छटा देना (3) इन्द्रधनुषी छटा देना (4) रंगों की विविधता प्रदर्शित करना तथा पारदर्शकता। नीचे इन रत्नों का सूक्ष्म वर्णन दिया गया है।

हीरा—हीरा कार्बन का विशुद्ध रूप है तथा सर्वाधिक कड़ा पदार्थ है। रंगहीन, पारदर्शी तथा विशुद्ध होने पर यह सर्वाधिक मूल्यवान होता है। परन्तु प्रायः इसका रंग हरा, भूरा, काला तथा दूधिया पाया जाता है। काले रंग के हीरे को वोर्ट कहा जाता है। हीरे को विभिन्न कोणों से काट कर सुन्दर बनाया जाता है। हीरा अल्ट्रावेसिक तथा अर्न्तभेदी शिलाओं में पायी जाती है।

हीरा भारत में म० प्र० में पाया जाता है। यहाँ यह बुन्देलखण्ड के दक्षिण में विन्ध्य पर्वत माला में पाया जाता है। यहाँ यह पन्ना, चरखरी, विजावर, अजयगढ़ कोण, कुराठ तथा चोकुर में पाया जाता है। मझगवाँ क्षेत्र में सर्वाधिक खानन कार्य होता है। मझगवा क्षेत्र में खनन कार्य सहीदान, रानीपुर, भवानीपुर, भगरी तथा मझगवा में होता है। पन्ना क्षेत्र में हीरा जलोढ़ में भी पाया जाता है। भारत में हीरा पाये जाने का दूसरा क्षेत्र आन्ध्र प्रदेश है। इसी क्षेत्र से पिट, कोहनूर हीरा निकाला गया था। आन्ध्र प्रदेश में हीरा अनन्तपुर कुडप्पा, गुट्टर, कृस्ना, कुर्नूल तथा महवूवनगर में पाया जाता है। थोड़ी मात्रा में हीरा जलोढ़ में भी पाया जाता है। हीरा के कुछ अन्य क्षेत्र भी हैं यथा बिहार में पालामऊ जिला महाराष्ट्र में चाँदा जिला तथा उड़ीसा में सम्बलपुर जिला।

रूबी तथा सफायर—रूबी, गुलाबी, क्रिमसन केशमिन तथा लाल रंग का पाया जाता है। यह हीरा द्वारा काटा जाता है। यह चूने तथा सिलिका शिलाओं में पाया जाता हैं। बर्मा में सर्वाधिक सुंदर रूबी पाया जाता है। भारत में यह मैसूर तथा तमिलनाडु में पाया जाता है। तमिलनाडु में यह करूर स्थान में पाया जाता है। मदुराई जिले के मेलूर स्थान में पाया मैसूर में मेलकप्पा में पाया जाता है। बंगलोर जिले के के मट्टूर स्थान में मिलता है। मध्य प्रदेश के पिपरा स्थान (सिधी जिले) में पाया जाता है।

सफायर नीले रंग का होता है। सुंदर सफायर लंका तथा बर्मा में पाया जाता है। भारत में यह जंस्कार क्षेत्र तथा उधमार जिले में पाया जाता है। तमिलनाडु में यह कोयम्बटुर स्थान पर पाया जाता है।

एमराल्ड—यह बेरिल का रूप है तथा एलूमिनियम का सिलिकेट है। यह हरे रंग तथा हल्के रंग का होता है। भारत में यह बिहार राज्य के राजगढ़, भुवानी स्थान में तथा राजस्थान में उदयपुर तथा अजमेर में पाया जाता है। हिमाचल प्रदेश के कुलु जिले में भी पाया जाता है। कश्मीर में यह दोसो तथा लद्दाख

क्षेत्र में पाया जाता है। तमिलनाडु में यह कोयम्बटूर स्थान पर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त तिरुचिरापल्ली तथा सलेम में भी पाया जाता है।

ओपल—यह सिलिका का अभिणियभीय रूप है इसमें जल की मात्रा बदलती रहती है। यह विविध रंग का होता है तथा रंग की विविधता भी दर्शाता है। ओपल भारत में गुजरात के रत्नपुर, राजपिपला तथा अदरगान में तथा महाराष्ट्र में पांडु में पाया जाता है।

बहुमूल्य खनिज—इसमें क्रायसोबेरिल, टोपाज, गारनेट, जिरकन, जेड्, अगेट, अमिथिस्ट, कैट आई, ओपल (साधारण) टरकायज, लेपिल, तथा लेगुलि मूनस्टोन सम्मिलित किया जाता है।

क्रायसोबेरिल केरल के नेमम, डमयम वलम्, वजिपरा, चंगा, वेगनूर, चुलीमनूर, उम्भामलकाल, अद्रुनकल, उरियाकाड, कोनियूर, वेजरामुड् स्थानों में पाया जाता है। ये पेग्माटाइट तथा खोडांलाइट शिला में पाये जाते है।

टोपाज—को पुष्पराग कहा जाता है। यह भी एल्यूमिनियम का सिलिकेट है। यह रंगहीन तथा रंगीन दोनों प्रकार का होता है। इसका रंग प्रायः पीला, नीला होता है। भारत में यह बिहार के सिंहभूमि जिले लप्सावुरु, कन्यानुका स्थानों में पाया जाता है।

गारनेट—गारनेट के विविध रूपों में पायरोप तथा स्पेरटाइट तथा अतमंडीन प्रधान हैं। पायरोप गहरे लाल रंग का या काले रंग होता है।

स्पेरटाइट भूरे लाल रंग का होता है। अलमंडीन गहरे लाल या भूरे रंग का होता है। भारत में यह तामिलनाडु के रामनाथपुरम तथा तिरुचिवेली स्थान में पाया जाता है। राजस्थान, आ० प्र०, बिहार, महाराष्ट्र, कश्मीर, म० प्र०, तमिलनाडु, मैसूर और उड़ीसा में थोड़ी मात्रा में पाया जाता है।

जिरकन—(गोमेदक) यह रंगीन तथा रंगहीन दोनों प्रकार का होता है। इसके प्रधान रंग भूरा, पीला, नारंगी तथा लाल होता है। यह तमिलनाडु में प्रधान रूप से पाया जाता है। आसाम में यह कटक तथा बिहार में तथा गढ़वाल (उ० प्र०) में पाया जाता है।

पेरीडोट—यह जैतून हरे रंग का होता है तथा लद्दाख में पाया जाता है।

जेड्—यह हल्के हरे रंग का होता है। भारत में भारत में यह द० आरकाट तथा पिपरा (म० प्र०) में पाया जाता है।

अमिथिस्ट, सिट्रीन, कारनेलियन, अगेट, ओनिम्स, जैस्पर रुबम्वाट्र्ज परिवार के खनिज हैं। अमिथिस्ट बैगनी रंग का होता है। सिट्रीन पीले रंग का, कारनेलियन लाल रंग का, जैस्पर लाल, भूरे तथा हरे और नीले रंग का होता है।

अगेट क्वाट्रिज का रूप है तथा इसमें समांतर धारियों में रंग पाये जाते हैं। यह सफेद, भूरे, लाल या नीले रंग का होता है। भारत में यह तमिलनाडु तथा आ० प्र० में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त इसकी थोड़ी मात्रा राजस्थान, गुजरात, उड़ीसा तथा बंगाल और बिहार में पाया जाता है।

टरकायस हरे रंग तथा नीले रंग का होता है।

लेपिस लेजुली गाढ़े नीले रंग का होता है। मूनस्टोन पारदर्शी होता है तथा तमिलनाडु में पाया जाता है।

मोती—मोलस्क जीवों की हड्डी होती है। यह भारत में प्रधानतया मन्नार खाड़ी तथा तिरुनवेली में पाया जाता है।

कोरल—यह छोटे जीवों का समूह होता है। इनमें लाल रंग के कोरल निकाल उनके हड्डियों को आभूषणों के उपयोग में लाया जाता है। भारत में यह मन्नार की खाड़ी, रामनाथपुरम तथा तिरुनवेली में पाया जाता है।

विजयकान्त श्रीवास्तव
भूवैज्ञानिक
सी—386 सेक्टर बी
महानगर
लखनऊ

●●

ऊसरों का उर्वरीकरण

डा० शिवगोपाल मिश्र

प्राचीन काल (2500 ई० पू०—600 ई०) में भारतीय मिट्टियों के दो वर्ग माने जाते थे—उर्वर तथा अनुर्वर अथवा ऊषर। हम इन्हीं अनुर्वर मिट्टियों के सम्बन्ध में बताने जा रहे हैं।

ऊसर शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'ऊषर' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है रेह से युक्त। ऊष: शब्द रुग्ण अथवा रेह से युक्त का द्योतक है। सचमुच ही ऊसर मिट्टियाँ रोगग्रस्त मिट्टियाँ हैं—इसीलिए आजकल इन्हें समस्यात्मक या दुर्बोध मिट्टियों (Problem soils) की संज्ञा प्रदान की गई है।

ऊसर के अन्य समानार्थी शब्द रेह, कल्लर, राकड़, करी या चोपन हैं जो देश के विभिन्न प्रान्तों में प्रयुक्त होते रहे हैं। हिन्दी के कई कवियों ने ऊसर, बंजर अथवा कल्लर शब्दों का प्रयोग किया है।[1] ऊसर अपनी अनुर्वरता के विदित रहे हैं। ऐसी ही मिट्टियों को आज के कृषि रसायनज्ञ लवणीय तथा क्षारीय (Saline and alkali) मिट्टियों के नाम से अभिहित करते हैं।

विस्तार—ऊसर विश्वव्यापी हैं। ऐसा अनुमान है कि विश्व का लगभग $\frac{1}{3}$ भाग शुष्क तथा अर्द्ध शुष्क है (जिसमें 20″ से कम सालाना वर्षा होती है) और इसी भाग में ऊसर पाये जाते हैं। ये मध्य एशिया, भारत, फारस, ईराक, मिश्र, उत्तरी अफ्रीका, उत्तरी अमरीका में समान रूप से फैले हुये हैं। इनका आकार छोटे-छोटे टुकड़ों से लेकर मीलों पर्यन्त पाया जाता है।

हमारे देश में ऊसर ग्रस्त भूमि का क्षेत्रफल 1 करोड़, 50 लाख एकड़ (अथवा 70 लाख हेक्टर) आँका गया है। इसमें पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, मैसूर, आन्ध्र प्रदेश तथा तमिलनाडु प्रदेश मुख्य हैं। 1891 ई० में सुप्रसिद्ध कृषि रसायनज्ञ जे० ए० वोयेल्कर ने उत्तर पश्चिम प्रान्त में 4-5 हजार वर्गमील में ऊसरों का विस्तार बताया था। अर्वाचीन आँकड़ों से पता चलता है कि अकेले उत्तर प्रदेश में 31 लाख एकड़ में ऊसर फैले हैं। इससे कुछ कम क्षेत्रफल (30 लाख एकड़) पंजाब में होगा। राजस्थान में लगभग 10 लाख एकड़ में ऊसर हैं। गुजरात, पश्चिमी बंगाल तथा महाराष्ट्र में समुद्रों के प्रभाव से काफी क्षेत्रफल बेकार हो चुका है। तात्पर्य यह कि कृष्य भूमि का बहुत बड़ा भाग ऊसरों से ग्रस्त है और इनकी अनुर्वरता के कारण फसलोत्पादन में व्यवधान पड़ता है।

यहाँ यह उल्लेखनीय होगा कि ऊसरों के क्षेत्रफल में निरन्तर वृद्धि होती रहती है अत: यदि इन्हें रोकने के लिये प्रभावशाली कदम नहीं उठाये जाते तो भविष्य में कृषि योग्य क्षेत्रफल में और कटौती होगी और निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या के उदरपोषण में कठिनाई होगी।

1—उदाहरणार्थ 14वीं शती में कबीर ने ऊसर तथा कल्लर शब्दों का प्रयोग किया है। ऐसी मिट्टियों में बीज नहीं उगता।
16वीं शती में तुलसीदास ने ऊसर शब्द का प्रयोग ऐसी मिट्टियों के लिए किया जिनमें तिनका भी नहीं उगता।

ऊसरों के सामान्य लक्षण

ऊसरों में कुछ सामान्य लक्षण देखे जाते हैं :—

(1) शुष्क स्थानों पर तथा वर्षा के बाद भूमि की सतह पर सफेद-सफेद भूरे रंग की परत का जम जाना जिसमें सोडियम कैल्सियम, तथा मैग्नीशियम के लवण रहते हैं।

(2) ऊसर खेतों में जगह-जगह वनस्पति का अभाव अथवा सीमित घासों और वृक्षों का पाया जाना। अधिकांशतः ऐसे खेतों में फसलें नहीं उगतीं और उगती हैं तो कुछ खंडों को छोड़ छोड़कर।

(3) वर्षाकाल में समुचित जल निकास न होने के कारण छोटे छोटे गड्ढों में पानी का भरा रहना, सूखने पर मिट्टी का कड़ा हो जाना और जुताई में कठिनाई पड़ना। गीली रहने पर जोतते समय मिट्टी का हल में चिपकना और सूखे ढेलों का अस्थायित्व (वर्षा से चूर-चूर होकर बह चलना)।

(4) सामान्यतया क्षारों की उपस्थिति (फीनाफ्थैलीन सूचक से जानी जा सकती है) के साथ ही बोरान नामक विषैला तत्व भी रहता है जिसकी अत्यल्प मात्रा वनस्पति के लिये घातक सिद्ध होता है। क्षारीयता के कारण पोषण तत्व होते हुये भी पौदों के लिये अनुपलब्ध हो जाते हैं।

ऊसरों का वर्गीकरण

ऊसरों को कई प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। यथा—

(i) रंग के आधार पर—श्वेत तथा कृष्ण ऊसर ऐसा वर्गीकरण अमरीका के सुप्रसिद्ध कृषि रसायनज्ञ हिलगर्ड ने किया था। ऊसरों में क्षारीयता होने के कारण मिट्टियों का जीवांश विलयित होने लगता है जिसके कारण भूरा या काला रंग उत्पन्न होता है।

(ii) विकास के आधार पर—रूसी वैज्ञानिकों ने लवण बहुल (Solonchak), लवण न्यून (Solonetz) तथा लवणहीन (Soloti) ये तीन वर्ग माने हैं जिनमें लवण की उपस्थिति में ऊसरों का विकास दिखाया गया है।

(iii) आधुनिक वर्गीकरण—अमरीका के कृषि वैज्ञानिकों ने पी० एच० विद्युतचालकता (EC) तथा विनिमयशील सोडियम के आधार पर ऊसरों की तीन कोटियाँ बताई हैं—लवणीय, लवणीय-क्षारीय तथा क्षारीय। इन तीनों कोटियों पर जरा विस्तारपूर्वक विचार करना आवश्यक है क्योंकि ऊसरों का सुधार अथवा उनका उर्वरीकरण उनकी कोटि पर बहुत कुछ निर्भर करता है।

लवणीय मिट्टियां—ऐसी मिट्टियाँ जिनका पी-एच मान 8·3 से कम, विद्युत चालकता 4 मिलीमहो से अधिक और विनिमय सोडियम 15% से कम होता है। ऐसी मिट्टियों ऊसरों के विकास की प्रथम श्रेणी है। जब तक प्रचुर मात्रा में लवण एकत्र नहीं हो लेते तब तक मिट्टी में सोडियम का प्रवेश हो ही नहीं पाता। ये लवण चाहे ऊपरी क्षेत्रों के अपवाह जल के माध्यम से, अथवा भूमिगत जल से वर्षों से ही कहीं सिंचाई के कारण अथवा मिट्टी के मूल शैलों में लवणों की उपस्थिति के कारण एकत्र होते हैं। वर्षा के दिनों में संचित लवण निचली सतहों में चले जाते हैं और वर्षा समाप्त होने पर सतह में फूट जाते हैं। प्रायः किसानों को बहुत समय तक इन लवणों की उपस्थिति का पता नहीं चल पाता किन्तु कालान्तर में ऐसे क्षेत्रों में 10-50% उपज घट जाती है। उत्तर प्रदेश में ऐसी मिट्टियों के लिये भी ऊसर शब्द का ही प्रयोग होता है किन्तु पंजाब में 'कल्लर' शब्द व्यवहृत होता है।

लवण-क्षारीय मिट्टियाँ—ऐसी मिट्टियाँ जिनका पी-एच मान 8·3 से अधिक, विद्युच्चालकता 4 मिली-मोह से अधिक रहता है। ऐसी मिट्टियों की ऊपरी सतह तो मुलायम रहती है किन्तु अधोस्तर कठोर होता है जिससे वर्षा जल नीचे नहीं जा पाता। कभी-कभी कंकड़ की परत पाई जाती है जो कुछ इंचों से लेकर कई फुट तक मोटी होती है। ऐसी मिट्टियों को सुधारे बिना खेती दुष्कर है।

क्षारीय मिट्टियां—ऐसी मिट्टियाँ लवण क्षारीय मिट्टियों के ही समान हैं किन्तु इनमें से लवण का लोप हो जाने से इनकी विद्युच्चालकता 4 मिलीमहो से कम

रहती है। जहाँ उत्तर प्रदेश में इन्हें **ऊसर** ही कहा जाता है वहीं पंजाब में इन्हें **एकड़** और महाराष्ट्र में **चोपान**।

यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो प्रथम श्रेणी से तृतीय श्रेणी की मिट्टियों तक पहुँचने में जहाँ लवणों की मात्रा घटती है वहीं उनके पी-एच मान में वृद्धि होती है और उच्च पी-एच के कारण ऊसरों का असली गुण—अनुर्वरता—प्रकट होने लगता है। ऊसरों में क्षारीयता की उत्पत्ति निम्नांकित प्रकार से होती है।

मिट्टी के बारम्बार जल से घुलते रहने के कारण लवण मिट्टी की निचली परतों में चले जाते हैं किन्तु लवण-संयम से जितना सोडियम मिट्टी के संकीर्णों में प्रविष्ट हुआ था अब वह जल अपघटित (hydrolyse) होकर सोडियम कार्बोनेट उत्पन्न करता है। एक बार मिट्टी में सोडियम कार्बोनेट बना नहीं कि उसकी भौतिक दशा बिगड़ने लगती है, पानी का अन्त:निस्यन्दन (Infiltration) रुक जाता है और भूमि कुछ ही दिनों में परती पड़ जाती है।

इस सम्बन्ध में 1888 ई० में किये गये फ्रेंच रसायन माण्डसिर के प्रयोग उल्लेखनीय हैं। उन्होंने 1 किलोग्राम सामान्य मिट्टी को सोडियम क्लोराइड से अभिकृत करके बारम्बार जल से धो करके 100 ग्राम सोडियम कार्बोनेट एकत्र करने में सफलता प्राप्त की थी। इसके बाद रूसी रसायनज्ञ गेड्रवा तथा अमरीकी कृषि रसायनज्ञ केली तथा क्यूमिन्स ने इन प्रयोगों का दुहरा कर इसकी प्रामाणिकता सिद्ध की। आज कल यह बहुस्वीकृत सिद्धान्त है जिसके द्वारा लवणीय मिट्टियों के निरन्तर क्षालित होते रहने से क्षारीय मिट्टियों की उत्पत्ति होती है।

आजकल मिट्टी के भीतर पानी प्रवेश करने की सहजता को हाइड्रालिक चालकता के नाम से सम्बोधित किया जाता है। यह मिट्टी के कणों, उनके विन्यास, लवणों की मात्रा और उनकी प्रकृति पर निर्भर पाई गई है। प्राकृतिक अवस्था में मिट्टियों में यह चालकता 7·5 सेंटीमीटर (3 इंच) प्रति घंटे होती है। यदि इस मान में कमी आ जावे तो उसका अर्थ होगा कि मिट्टी के भीतर जल-प्रवाह में अवरोध उत्पन्न हो रहा है। ऊसरों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनकी हाइड्रालिक चालकता अत्यन्त कम हो जाती है।

हाइड्रालिक चालकता श्रेणी	सेमी०/घंटा
असंतोषप्रद	0·25-0·75
संतोषप्रद (उत्तम)	0·75-7·5
अत्यधिक	7·5 से अधिक

इस प्रकार हमने देखा कि ऊसरों की विशिष्टतायें हैं—लवणों का संचय, जल निकास की समस्या तथा भौम जल स्तर वास्तव में इसी से जुड़ा हुआ प्रश्न है। सिंचाई जल का वर्षा जल पर निर्भर न रहकर सिंचाई के विविध साधनों का सर्वत्र प्रयोग होता रहा है। यह सिंचाई जल कैसा है, उसकी कितनी मात्रा प्रयुक्त होनी चाहिए और कालान्तर में सिंचाई के क्या कुप्रभाव हो सकते हैं—इस पक्ष पर भी विचार होना चाहिए।

ऊसरों के उर्वरीकरण (सुधार) की विधियाँ

ऊसरों की विभिन्न श्रेणियों के अनुसार उनके सुधार कृष्यकरण अथवा उर्वरीकरण के लिए विभिन्न विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। इन विधियों को **भौतिक** तथा **रासायनिक**—इन दो वर्गों में रखा जा सकता है। भौतिक विधियों के अन्तर्गत विलेय लवणों को भूमि में से बाहर निकालना, अच्छे जल निकास का प्रबन्ध आते हैं। रासायनिक विधियों में कार्बनिक पदार्थ डालकर भौतिक अवस्था में सुधार लाना, विनिमेय सोडियम को कम करने के लिए विविध रासायनिक यौगिकों को मिट्टियों में मिलाना सम्मिलित हैं।

लवणों को भूमि में से बाहर निकालने के लिये लवणीय परत को खुरच कर बाहर निकालना बहती जल-धारा द्वारा लवणों का निक्षालन जैसी विधियाँ प्रयुक्त होती हैं। जलस्तर को नीचा करने के लिये पानी को पम्प द्वारा बाहर निकालना, ट्यूब वेलों (नलकूपों) का निर्माण जैसी विधियों का सहारा लिया जाता है।

कभी-कभी मिट्टियों के भीतर कठोर परत बन जाते हैं उन्हें तोड़ने के लिये गहरी जुताई (ट्रैक्टर द्वारा)

अथवा अन्य विधियों का आश्रय लिया जाता है। ऐसा करने से ऊपर के लवणों का निक्षालन नीचे की परतों में सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

रासायनिक विधियाँ ऐसी हैं जिनका उद्देश्य मिट्टी की क्षारीयता को नष्ट करके, मिट्टी की भौतिक दशा में सुधार लाना होता है। स्पष्ट है कि क्षारीयता का निरसन अम्लीयता उत्पन्न करके किया जा सकता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये विविध प्रकार के कार्बनिक पदार्थ तथा रासायनिक यौगिक मिट्टी में मिला करके जोत दिये जाते हैं। ऐसे पदार्थों की प्राप्ति तथा उनकी लागत—ये दो प्रतिबन्ध हैं जिन पर सारी सफलता निर्भर करती है।

जैसा कि प्रारम्भ में बताया जा चुका है ऊसरों में जीवांश की कमी होती है। इसके फलस्वरूप मिट्टी की भौतिक दशा बिगड़ जाती है जैसे सुधारने के लिये कार्बनिक पदार्थों को डालना ही होगा। वैज्ञानिकों ने गोबर की खाद फसलों के अवशेष, हरी खाद, शीरा, जलकुम्भी, भरभण्डे आदि का प्रयोग सुझाया है। धान की पुआल भी लाभदायक सिद्ध हुई है। इन कार्बनिक पदार्थों की लागत अधिक नहीं है किन्तु ये सर्वत्र उपलब्ध नहीं होते अतः स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार चुनाव करना होगा। इनके प्रयोग से मिट्टी में जल सोखने और वर्षा जल को निचली सतहों में अंतः निस्यन्दित होने में बड़ी सहायता मिलती है। इनके प्रयोग से गहरी जुताई का सा प्रभाव होता है। इनके सड़ने से मिट्टी में विविध कार्बनिक अम्ल उत्पन्न होते हैं जिससे क्षारीयता का उदासीनीकरण होता है। किन्तु अकेले कार्बनिक पदार्थ वांछित फल लाने में समर्थ नहीं।

मृदा रसायनज्ञों ने प्रारम्भ से ही ऊसरों के सुधार के हेतु गंधक, जिप्सम, कैल्सियम क्लोराइड जैसे रासायनिक पदार्थों का उपयोग लाभकारी बताया है। इनके प्रयोग से एक ओर अम्ल उत्पन्न होता है तो दूसरी ओर कैल्सियम प्राप्त होता है। अम्ल से क्षारीयता नष्ट होती है और कैल्सियम के द्वारा मिट्टी के संकीर्ण में अवस्थित सोडियम का प्रतिस्थापन होता रहता है। जिप्सम और कैल्सियम क्लोराइड ऐसे ही यौगिक हैं। इनकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि रासायनिक अभिक्रिया के फलस्वरूप जो पदार्थ बनते हैं उनका निक्षालन होता रहे। इसके लिये पानी की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता होती है। अतः यदि वर्षा-जल पर आश्रित रह कर ऊसरों के उर्वरीकरण का स्वप्न देखा जावे तो वह सत्य नहीं सिद्ध होगा। सिंचाई का प्रबन्ध होना ही चाहिए। इस सम्बन्ध में एक बात और उल्लेखनीय है। कभी-कभी ऊसरी मिट्टियों में चूने की पर्याप्त मात्रा रहती है। ऐसी अवस्था में मात्र सिंचाई जल द्वारा निक्षालन से ऊसरों का सुधार सम्भव है। अन्यथा जिप्सम का प्रयोग लाभदायक होता है क्योंकि इससे न केवल कैल्सियम की पूर्ति होती है वरन् कैल्सियम की उपस्थिति में मिट्टी की भौतिक दशा सुधर जाने से निक्षालन कार्य सुचारु रूप से होने लगता है।

इधर हरी खाद (ढैंचा) के साथ जिप्सम के प्रयोग द्वारा अच्छे परिणाम प्राप्त किये गये हैं। यह स्वाभाविक है भी।

अमरीका में अम्लीय सुधारकों (Acidic-amendment) पर बल दिया जाता रहा है। गंधक, सल्फ्यूरिक अम्ल, फेरस सल्फेट, ऐल्यूमिनियम सल्फेट जैसे सुधारकों की क्षमतायें ज्ञात की जा चुकी हैं। हमारे देश में गंधक का मूल्य अधिक होने तथा दुष्प्राप्य होने के कारण इसकी संस्तुति नहीं की जाती। किन्तु आश्चर्य है कि अन्य अम्लीय सुधारकों की ओर लोगों का ध्यान नहीं गया। परम्परावश यहां जिप्सम को सुधारकों में अन्यतम स्थान प्रदाह किया जा रहा है। इधर हमने अम्लीय सुधारकों के द्वारा ऊसरों के सुधारने के जो प्रयोग किये हैं वे अत्यन्त उत्साहवर्धक रहे हैं। सुधार हुई मिट्टियों में गेहूँ तथा जौ की अच्छी फसलें हुईं। हमें भय था कि लोह तथा ऐल्यूमिनियम की अधिक मात्रा होने से कहीं फसल पर विषैला प्रभाव न पड़े किन्तु ऐसा नहीं हुआ।

इसी प्रकार हमने एक नव प्रचारित 'स्पार्टिन' नामक उर्वरक के साथ अत्यन्त आश्चर्यजनक परिणाम

प्राप्त किये हैं। वास्तव में निक्षालन विधि के समय इस उर्वरक को सहायक के रूप में प्रयुक्त करते हुए हमने देखा है कि 0·2% स्पार्टिन निलम्बन के व्यवहार से ऊसरों का सुधार हो गया। हमने ऐसी मिट्टी का 6 बार स्पार्टिन युक्त जल से निक्षालन किया जिसका पी-एच 105 था। निक्षालन के बाद यह पी-एच 8·2 हो गया। यही नहीं, मिट्टी के विनिमेय सोडियम में प्रचुर कमी होने के साथ ही कैल्सियम की मात्रा बढ़ गई।

स्पार्टिन द्वारा प्राप्त परिणाम अम्लीय सुधारकों के ही समकक्ष हैं। इन प्रयोगों का क्षेत्र-स्तर पर व्यवहार में लाये जाने की आवश्यकता है।

पेड़ लगाना—ऊसरों के उर्वरीकरण के लिये विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के लगाये जाने की संस्तुति प्रारम्भ से ही दी जाती रही है। वास्तव में यह संस्तुति उन ऊसरों के लिये है जो खेती के योग्य नहीं रह गये। वनस्पतियों के उगने, उनके बढ़ने तथा स्थायी रूप से जीवित रहने के लिये उनकी प्रकृति, पर्यावरण आदि का विशेष ध्यान रखा जाता है। लवण सह या क्षारीयता-सह वनस्पतियाँ ही उगाई जाती हैं। पेड़ों के लगाने के पूर्व ऊसरों के कठोर-स्तर को तोड़ कर थाला बनाना अत्यावश्यक है। बबूल, नीम, इमली जैसे वृक्ष सरलता से ऊसरों में तैयार हो जाते हैं। निष्कृष्ट ऊसरों को अपरदन (Erosion) से बचाने के लिये ऐसे वृक्षों का उगाना और भी आवश्यक है।

सिंचाई जल—ऊसरों के उर्वरीकरण में सिंचाई जल का बहुत बड़ा योगदान है। भूमिगत जल ही सिंचाई का मुख्य स्रोत है। यह जल कहीं-कहीं अत्यन्त कम गहराई पर मिलता है तो कहीं काफी गहराई पर। प्रायः कुँओं के द्वारा यह भूमिगत जल अभी तक प्राप्त होता रहा है। अब नलकूपों के द्वारा भूमिगत जल सतह पर लाया जाता है। पुराने किसानों का अनुभव था कि खारे जल के प्रयोग से खेतों की मिट्टियाँ बिगड़ जाती हैं लेकिन कोई अन्य विकल्प न होने के कारण वे लगातार उपलब्ध जल का ही प्रयोग करते रहे हैं। जब से नहरों का सूत्रपात हुआ, सिंचाई जल का एक अन्य स्रोत प्राप्त हो गया। किसानों ने जी भर कर मनमानी ढंग से इस जल से खेतों को सींचा। कालान्तर में उन्हें ज्ञात हुआ कि कूप जल की भाँति नहरी जल भी हानिप्रद है।

जल की मात्रा के साथ ही जल के गुणों का ज्ञान अत्यावश्यक है। उदाहरणार्थ राजस्थान के सारे जल स्रोत खारी हैं। कम गहराई के कुँओं से प्राप्त अधिकांश जल खारी होता है। लेकिन नदियों और नहरों के जल में वह लवणता नहीं है जिससे मिट्टियों को हानि पहुँचे। फलतः नहरों के आने के बाद जहाँ ऊसर बने हैं उसका कारण नहरी जल में प्राप्त लवणता न होकर मिट्टी के जल-स्तर का ऊपर उठ आना है। गहरी सिंचाई के पूर्व भौम जल का स्तर काफी निम्न होने के कारण भौम जल के लवण कृष्य मिट्टी सतह तक पहुँचने में समर्थ नहीं होते थे लेकिन अधिक मात्रा में पानी देने के जल-स्तर ऊपर उठ आया जिससे मिट्टियों में लवणीयता और क्षारीयता प्रकट होने लगी। कुत्यवास्थत सिंचाई प्रणाली के फलस्वरूप पंजाब तथा उत्तर प्रदेश के काफी क्षेत्र अनुर्वर हो चुके हों और होते जा रहे हैं। कहा जाता है कि बड़ी-बड़ी सभ्यताओं का उत्थान और पतन सिंचाई जल के सदुपयोग या दुरुपयोग के कारण होता रहा है।

भूमिगत जल में मिट्टियों के निक्षालन से प्राप्त विविध धनायन और ऋणायन उपस्थित रहते हैं। इनमें से सोडियम तथा मैग्नीशियम और कार्बोनेट तथा बाइकार्बोनेट विशेष रूप से घातक होते हैं। किन्हीं-किन्हीं जलों में बोरान की अधिक मात्रा रहने पर वे और भी घातक बन जाते हैं।

सिंचाई जल की भी कई कोटियाँ बना ली गई हैं जिनका आधार विद्युत चालकता तथा सोडियम की उपस्थिति है अधिक चालकता और अधिक सोडियम युक्त जल सिंचाई के लिए सर्वथा त्याज्य हैं किन्तु यदि सिंचाई के लिये मीठा जल उपलब्ध न हो सके तो इसी जल को उपयुक्त बनाने का प्रयास किया जाता है। जिप्सम अथवा कैल्सियम क्लोराइड के प्रयोग से खारा से खारा पानी सिंचाई के योग्य बनाया जा सकता है। यही

कारण है कि आजकल सिंचाई जल के परीक्षण पर अत्यधिक बल दिया जाता है। खारा पानी या समुद्री जल भी खेतों की सिंचाई के लिये प्रयुक्त हो सकता है तो इसका ज्वलन्त उदाहरण इजरायल में या हमारे देश में राजस्थान में मिलेगा। ऐसी अवस्था में मिट्टियों को बलुही होना चाहिए। एक बार किसान को जल की कोटि का पता चल जाय तो वह अद्भुत पराक्रम दिखा सकता है।

विभिन्न प्रान्तों में ऊसरों के उर्वरीकरण कार्य का विवरण—उदाहरण स्वरूप हम अपने प्रदेश तथा पंजाब में सम्पन्न ऊसर सुधार सम्बन्धी कार्य की विवेचना करेंगे।

उत्तर प्रदेश—ज्ञात हो कि 1938 ई० में इस प्रदेश में 22 लाख एकड़ में ऊसर थे। 1957 ई० में यही क्षेत्रफल बढ़कर 31 लाख एकड़ हो गया। इस प्रकार 20 वर्षों में 50% वृद्धि हुई। अनुमान है कि अगले 100 वर्षों में इस प्रदेश की 50 लाख एकड़ भूमि खेती के लिये बेकार हो जावेगी। वास्तव में यह अत्यन्त दुखद और शोचनीय स्थिति है।

ऐसा नहीं है कि इस समस्या की ओर सरकारों का ध्यान हीन हो गया हो। 1876 ई० में ही **रेह कमीशन** की नियुक्ति हुई थी जिसके अनुसार अलीगढ़, मैनपुरी, कानपुर, फतेहपुर, उन्नाव, एटा, इटावा, रायबरेली तथा लखनऊ जिलों में ऊसरों से सर्वाधिक क्षति हुई। फिर 1938-39 में **ऊसर कृष्यकरण कमेटी** बनी जिसके अनुसार ऊसरों का कारण मिट्टियों में 3-4 फुट की गहराई तक सोडियम कार्बोनेट तथा सोडियम बाइकार्बोनेट की उपस्थिति है। इस सम्बन्ध में एक अत्यन्त रोचक प्रेक्षण का उल्लेख आवश्यक है। 1912 में जे० डब्लू० लेट्टर ने एटा जिले के कई खेतों से नमूने एकत्र किये थे और उनका विश्लेषण किया था। 40 वर्ष बाद 1952 में पुनः उन्हीं खेतों से नमूने लिये गये तो पता चला कि अच्छे सिंचाई जल के प्रयोग करते रहने पर भी कुछ खेतों में क्षारीयता बढ़ गई जिसका एकमात्र कारण मिट्टी की स्वयं की अवस्था हो सकती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद 1951-58 ई० के बीच उत्तर प्रदेश में भूमि सवक्षण का कार्य यहाँ के भूमि रसायनज्ञ डा० आर० आर० अग्रवाल द्वारा प्रारम्भ किया गया। पता चला कि क्षारीय मिट्टियों में क्षारीय करण अपनी पराकाष्ठा पर है और वे सोडियम से 80-100% संतृप्त हैं। ऐसी मिट्टियों का उर्वरीकरण एक कठिन समस्या है।

सर्वेक्षण के आधार पर जिन 10 जिलों में सर्वाधिक ऊसर पाये गये उन्हें तीन प्रकारों में बाँटा गया है।

1. वे जो बिना किसी उपचार के उर्वर हैं।
2. वे जो उपचार के बाद उर्वर हो सकते हैं।
3. वे जिनका उर्वरीकरण असम्भव है।

इधर अमरीकी पद्धति के अनुसार (चग्रवाल तथा यादव 1956) गंगा सिंधु घाटी की क्षारीय मिट्टियों के मूल्यांकन का प्रस्ताव रखा गया है। किन्तु अभी भी ऊसरों का पूरी तरह सर्वेक्षण नहीं हो पाया। हमने इलाहाबाद के आस-पास की ऊसर मिट्टियों के सर्वेक्षण और वर्गीकरण का कार्य 3-4 वर्ष पूर्व सम्पन्न किया है।

ऊसरों के सुधार का कार्य कानपुर, इलाहाबाद, लखनऊ तथा फतेहपुर में व्यापक पैमाने पर सम्पन्न हुआ है।

कानपुर में 4000 एकड़ के चकेरी फार्म में ऊसरों के कठोर-स्तर को तोड़कर कार्बनिक पदार्थ तथा निक्षालन के संयोग से जौ तथा गेहूँ की खेती करने में सफलता प्राप्त हुई। जिप्सम तथा ढैंचा के योग से अच्छे जल द्वारा सिंचाई करके अच्छे परिणाम प्राप्त किये गये हैं।

इलाहाबाद में डा० धर के प्रयोग सर्वविदित हैं। विशेषतया शीरे को मिलाकर ऊसरों के उर्वरीकरण की विधि ने लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। हमारे प्रयोग अभी प्रयोगशाला तक सीमित हैं।

लखनऊ के पास रहीमाबाद तथा कटियार और हरदोई जिले के ढकौनी फार्म में निक्षालन प्रयोग किये गये। इनसे 2700 एकड़ ऊसरों का सुधार हुआ है। यहाँ पर खेतों में बधियाँ बनाकर वर्षा जल को भर कर निक्षालन होने दिया जाता है। धान के पुआल के योग से निक्षालन दर में वृद्धि पाई गई है।

लखनऊ के पास बंथरा फार्म में डा० कौल ने भरभंडे के प्रयोग से ऊसरों को उर्वर बनाने की अद्भुत विधि का प्रदर्शन किया है।

श्री मान सिंह ने फतेहपुर जिले के बिलंदा ग्राम स्थित अपने कई सौ एकड़ फार्म में लवणों के निक्षालन से तथा खर-पतवार डाल करके 10-12 वर्षों में ऊसरों को उर्वर बनाने में सफलता प्राप्त की है।

वस्तुतः ऊसर उर्वरीकरण सम्बन्धी खोजों का सदुपयोग इन प्रयोगों की सफलता की कहानी है।

उत्तर प्रदेश के कुल कृष्य क्षेत्रफल (380 लाख एकड़) का 30% ही सिंचित है। नहरें तथा कूप और नलकूप सिंचाई के मुख्य साधन हैं। अग्रवाल (1956) ने एटा, फर्रुखाबाद तथा कानपुर जिले के कुँओं के जल का विश्लेषण किया तो पता चला कि उनका जल मध्यम श्रेणी का है। इधर मेहरोत्रा ने भी कूपजलों की संरचना सूचित की है। हमने भी इलाहाबाद के आसपास के क्षेत्र के विविध जलस्रोतों का रासायनिक विश्लेषण किया है। लेकिन ये सारे विश्लेषण अभी भी आवश्यकता से कम हैं। इस दिशा में और भी कार्य होने की आवश्यकता है।

पंजाब—ऐसा अनुमान है कि पंजाब में प्रतिवर्ष 15-20 हजार एकड़ उर्वर भूमि लवणीयता, क्षारीयता तथा जलमग्नता के कारण बेकार होती है लवणीय मिट्टियों में सोडियम क्लोराइड तथा सोडियम सल्फेट पाया जाता है किन्तु कर्नाल की मिट्टियों में प्रचुर कार्बोनेट तथा बाइकार्बोनेट भी पाये गये हैं। सिंचाई के फलस्वरूप काफी बड़े क्षेत्र में ऊसर बन गए हैं। इसका कारण यह है कि पहले की अपेक्षा प्रति एकड़ सिंचाई जल की मात्रा घटती जा रही है फलतः लवण ऊपर आते चले जा रहे हैं। पंजाब के नहरी जल में भी काफी लवण रहता है। अनुमान है कि प्रति फुट एकड़ जल में 0·1—5 टन लवण रहते हैं। गुरगाँव तथा हिसार में खारी पानी के प्रयोग से तमाम खेत बेकार हो गये हैं। अनुमान है कि प्रति वर्ष ऊसरों के फैलने से 34 करोड़ रुपये की राष्ट्रीय हानि होती है।

पंजाब में ऊसरों के उर्वरीकरण के प्रयोग 1916 ई० से ही होते रहे हैं जिनमें लवणों की खुरचाई, अधिक जल से धुलाई लवणों-सह फसलों की बुवाई प्रधान साधन के रूप में रहे हैं। लवणसह घासें उगाकर अनेक स्थानों में सज्जी बनाने का भी घरेलू उद्योग होता रहा है।

1926-27 में मिट्टी में ही प्राप्य चूने के द्वारा विनिमेय सोडियम को प्रतिस्थापित करने के प्रयोग होते आये हैं। इसी प्रसंग में जिप्सम, प्रेसमट तथा कैल्सियम क्लोराइड के प्रयोग से ऊसरों का उर्वरीकरण किया गया।

पंजाब के प्रयोगों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह रही है कि वहाँ जिप्सम के साथ ढैंचा (2·7—45 टन जिप्सम + 10 टन ढैंचा प्रति एकड़) का उपयोग किया जाता रहा है। यही नहीं कुछ स्थानों में (विशेषतया नीलोखेरी में डा० काँवर द्वारा) ऊसरों में पर्याप्त मात्रा में उर्वरक डालकर तथा सिंचाई करके अच्छे परिणाम प्राप्त किये गये।

1969 ई० में केन्द्रीय लवणता अनुसंधान संस्थान की स्थापना कर्नाल में हो गई है जिससे पंजाब की मिट्टियों पर विशेष ध्यान दिया गया है। साथ ही तटवर्ती मिट्टियों के लिये पश्चिमी बंगाल में कानिंग, जलोढक मिट्टियों के लिये, उत्तर प्रदेश में कानपुर तथा काली मिट्टियों के लिये इन्दौर में उपकेन्द्र खोले गये हैं।

इस अनुसन्धान केन्द्र में जो शोध हुए हैं उनमें जिप्सम की पूरी मात्रा को एक साथ न डाल कर कम से कम दो बार में डालने की सलाह दी गई है। इस केन्द्र ने यह ज्ञात किया है कि धान की फसल लवणीय तथा क्षारीय मिट्टियों के सुधारने में सहायक अतः है जन्तर + धान—बरसीम—जौ या गेहूँ शस्यावर्तन के प्रयोग से ऊसरों से लाभ उठाया जा सकता है। लवणता से प्रभावित मिट्टियों में गोबर की खाद + जिप्सम + जिंक डालने की संस्तुति की गई है। धान-गेहूँ-ढैंचा-धान शस्यावर्तन के व्यवहार से जहाँ धान की पहली फसल 57 क्विटल/हेक्टर थी वहीं धान की अन्तिम फसल 95 क्विटल/हेक्टर उतरी।

सिंचाई के जल की परीक्षा करके बोरान के विषैले प्रयोग को समाप्त करने के लिये जिप्सम का प्रयोग आवश्यक बताया गया है। सिंचाई के जल में 0·19-1·58 भाग बोरान प्रति दस लाख भाग जल होने पर भी इसका संचयी प्रभाव देखा जाता है।

प्रयोगों के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि लवणों के निक्षालन के लिये प्रचुर जल की आवश्यकता पड़ती है। यदि 1 फुट जल प्रयुक्त हो तो 1 फुट मिट्टी की लवणता में 80% की कमी आती है। 2 फुट जल प्रयुक्त करने से 90% की कमी आती है।

स्पष्ट है कि सिंचाई जल तथा रासायनिक सुधारकों के विवेकपूर्ण उपयोग से ऊसरों का उर्वरीकरण सम्भव है। किन्तु यह ध्यान रखना होगा कि यदि एक बार सुधारी गई ऊसर मिट्टियों को बिना देख-रेख के छोड़ दिया जावेगा तो कुछ ही वर्षों में ये पुनः ऊसर बन जावेंगी। इनकी निरन्तर चौकसी रखनी होगी। इसके प्रति उपेक्षा बरतने से राष्ट्र का कल्याण नहीं हो सकता। जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है। ये रुग्ण मिट्टियाँ हैं इनकी अनवरत सेवा सुश्रूषा होती रहनी चाहिए। किसानों को आगे आकर ऐसी भूमियों के सुधार और उर्वरीकरण का बीड़ा उठाना चाहिए। वांछित कृषितकनीक उपलब्ध है, बस उसके सदुपयोग की देरी है।

डा० शिवगोपाल मिश्र, रसायन विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

आज का विज्ञान

डा० कृष्ण बहादुर

विज्ञान तीव्र गति से प्रगति कर रहा है और मनुष्य के दुख-दर्द के निवारण में कटिबद्ध है। एक-एक करके रोगों पर विजय प्राप्त की जा रही है। परन्तु जहाँ विज्ञान की एक खोज होने पर कुछ सुविधायें उपलब्ध होती हैं वहीं कुछ नई समस्यायें भी पैदा हो जाती हैं जिनके समाधान के लिये राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक, अर्थशास्त्री सभी की आवश्यकता पड़ती है। सम्भवतः यही सतत संघर्ष ही जीवन है। परमाणु-शक्ति की खोज इस स्थिति का एक प्रतीक है।

इधर की वर्तमान खोजों में कैंसर पर की गई खोजों का विशेष महत्व है। अब इतना निश्चित रूप से ज्ञात हो चुका है कि कम से कम कुछ कैंसर तो निश्चित निश्चित ही वायरस की बीमारियाँ हैं। इस खोज से इनका उपचार ज्ञात करने में बड़ी सुविधा होगी। यह देखा गया कि यदि वायरस अणु जल-विश्लेषित करने वाला इंजाइम, न्युक्लियोसाइडेस कोशिका में उपस्थित हो तो कोशिका में घुसा वायरस टूट कर नष्ट हो जाता है। न्युक्लियोसाइडेस की सहायता से प्रयोगात्मक जंतुओं में कुछ कैंसर को अच्छा करने में सफलता प्राप्त हुई है। अब इसका उपयोग निश्चित सीमा में मनुष्यों पर भी हो रहा है।

अभी कुछ ही महीना हुये न्युक्लिक एसिड का कुछ भाग संश्लेषित कर लिया गया। इस संश्लेषित भाग को एक बड़े न्युक्लिक एसिड अणु में जोड़ा गया और इस प्रकार बने न्युक्लिक एसिड के अणु को सुअर की आँत में पाये जाने वाले एक प्रकार के बैक्टिरिया में डाला गया यह न्युक्लिक एसिड अणु उसमें ग्रहण हो गया। यह खोज भविष्य में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होगी। एक जीव से जन्म दूसरे जीव में जो अपने पूर्वजों की समानता होती है वह उस जीव के न्युक्लिक एसिड अणुओं के अन्दर के प्युरीन और पिरीमिडीन इकाइयों के विशिष्ट शृंखला क्रम के कारण होती है। कृत्रिम रूप से इस विशिष्ट शृंखला क्रम को बदलने पर किसी जीव से विशेष प्रकार के आकृति और आदतों वाले जीवों का जन्म कराया जा सकेगा। सरल रूप में इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि बीस-तीस फुठ वाला आदमी जिसके दस-बीस हाथ तथा इच्छा अनुसार संख्या और आकार के आँख, नाक, रस, पैर हो पैदा किये जा सकेंगे। अब इसके द्वारा उत्पन्न समस्याओं पर जरा विचार करिये।

गत वर्षों में जीव की उत्पत्ति पर भी महत्वपूर्ण खोजें हुईं। यद्यपि जीव और जीवित अंगों की व्याख्या करना अभी भी कठिन है परन्तु भारतवर्ष, अमरीका और रूस में ऐसे कण बनाये जा चुके जो खाना खाकर बड़े होते हैं, बड़े होकर प्रजनन करते हैं जिनके वाह्य परिस्थिति में मंद परिवर्तन होने पर उनका विकास होता है। कदाचित वर्तमान कोशिका का जन्म ऐसे ही के कुछ कणों से विकसित होकर हुआ। जीव के उत्पत्ति के इन खोजों द्वारा अपने चारों ओर उपस्थित पदार्थों के नये गुणों के बारे में अनुमान लगाया जा रहा है। इस अध्ययन द्वारा बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होने की सम्भावना है।

मनुष्य का हृदय बदल कर दूसरे मनुष्य का हृदय लगाने के प्रयोग पिछले कई वर्षों से चल रहे हैं। यद्यपि यह ऑप्रेशन कई बार सफल रहें परन्तु इन सब प्रयोगों के अंत में असफलता ही रही क्योंकि मनुष्य अंत में मर जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मनुष्य का शरीर किसी दूसरे मनुष्य के शरीर का अंग ग्रहण नहीं

करता। प्रयोग द्वारा ज्ञात हुआ कि शरीर में एक विशेष रसायन के अभाव के कारण ही ऐसा होता है। इस यौगिक को संश्लेषित करके इसको रोगी को देने पर शरीर दूसरे के शरीर का अंग सम्भवतः पूर्णरूप से ग्रहण करने योग्य हो जायेगा। इस दिशा में आज कल प्रयोग हो रहे हैं। यदि इन प्रयोगों में सफलता मिली तो भविष्य में सरलतापूर्वक हृदय बदले जा सकेंगे। फिर हृदय ही की बदल क्यों? मनुष्य का मस्तिष्क तथा पूरा सर भी बदला जा सकेगा। वस्तुतः पूरे सर का बदला हृदय बदलने से सरल होगा। जरा विचार करिये उन समस्याओं का जो इन ऑप्रेशन के सफल होने पर उत्पन्न होंगी।

खाद्य समस्या को सुलझाने का भरपूर प्रयत्न विज्ञान सतत कर रहा है। समुद्र में खेती करने की योजनायें बनाई जा रही हैं। ऐसे पेड़ों की खोज हो रही हैं जो समुद्र के जल में उग सकते हैं और जिन्हें मनुष्य खा सकता है। जापान ने इस क्षेत्र में बड़ी प्रगति की है और वहाँ समुद्र में उगाये गये खाद्य पदार्थ बाजार में बिकने लगे हैं।

अन्तरिक्ष के उड़ान के बारे में तो सभी को मालूम है। चन्द्रमा से होकर मनुष्य लौट चुका। अब वहाँ पुनः जाकर अधिक जानकारी प्राप्त करने की योजनायें तैयार हैं। अपोलो 13 चन्द्रमा में न उतर सका। उसके यान में कुछ दुर्घटना हो गई। परन्तु उसके उड़ाके सुरक्षित पृथ्वी पर लौट आये। यह भी विज्ञान का एक चमत्कार ही है। इन उड़ाकों ने अपनी वापसी यात्रा उस यान में की जो चन्द्रमा में छोड़ दिया जाने वाला था। इस सफलता से आंतरिक्ष के उड़ाकों का साहस और भी बढ़ गया है।

ऐसा सोचा जा रहा है कि चन्द्रमा में एक स्थाई प्रयोगशाला बनाई जाय। कुछ लोगों का तो यह भी मत है कि किसी दिन चन्द्रमा में ऐसी धातुओं के बनाने के कारखाने बनाये जायेंगे जो पृथ्वी पर कम मिलने वाली धातुओं का उत्पादन करेंगे। वहाँ पर तैयार करके उन्हें पृथ्वी पर लाने पर वे यहाँ तैयार की गई उन धातुओं से सस्ती होंगी। फिर शून्य गुरुत्वाकर्षण के स्थान पर छर्रे बनाने के कारखाने में बने छर्रे बहुत अच्छे होंगे। कुछ लोगों का मत है कि छर्रे बनाने के कारखाने अन्तरिक्ष में अवश्य खोलने चाहिये। अन्तरिक्ष में स्थिति अस्पतालों की भी कल्पना की जा रही है। इनमें कुछ रोगों का इलाज सरलता से किया जा सकेगा।

बिना मनुष्य के चलने वाले रॉकेट अन्य ग्रहों के निरीक्षण के लिये भेजे जा रहे हैं। अपने सौर-परिवार के कुछ ग्रह जैसे बुध और मंगल के पास से होकर ऐसे रॉकेट निकल भी चुके और उनके वायुमण्डल और सतह की रूपरेखा का ठीक-ठीक अनुमान होने लगा है। अभी कुछ माह पूर्व मंगल की सतह के जो चित्र प्राप्त हुये हैं उन्हें देखने पर लगता है कि मंगल की सतह भी चन्द्रमा की सतह की भाँति क्रेटर से भरी है। अभी तक कोई रॉकेट मंगल की सतह पर नहीं उतरा। मंगल की सतह पर एक स्वचलित रॉकेट उतार कर वहाँ की स्थिति ज्ञात करने की एक योजना पर काम हो रहा है।

जहाँ मनुष्य आंतरिक्ष में दूर दूर जाने की सोच रहा है वहाँ वह अपने पृथ्वी पर भी तीव्र चलने वाले हवाई जहाजों की रचना में भी व्यस्त है। ध्वनि से तीव्र गति से चलने वाले यान तो बन ही गये। अब सवारी के लिये ऐसे तीव्रगामी हवाई जहाज बनाने की योजना पर काम हो रहा है। इंग्लैंड और फ्रांस दो राष्ट्र मिलकर ऐसे वायुयान की रचना में व्यस्त हैं। जब यह उड़ने लगेंगे तो दिल्ली से लन्दन की यात्रा केवल छः घण्टों में ही की जा सकेगी।

कृत्रिम ग्रह बनाकर उनसे मौसम का अनुमान तो कई वर्षों से हो रहा है। इधर कुछ वर्षों से इनका उपयोग अंतर्राष्ट्रीय टेलीफोन, रेडियो और टेलीवीज़न के प्रोग्राम के आदान-प्रदान में भी सफलतापूर्वक किया जाने लगा है। अब अमरीका के रहने वाले योरप के प्रोग्राम टेलीवीजन में घर बैठे देखते हैं। ऐसे कृत्रिम उपग्रहों का उपयोग करके भारतवर्ष में भी दुनिया भर टेलीवीजन प्रोग्राम देखे जा सकेंगे। दुनिया कितनी छोटी हुई जा रही है।

डा० कृष्ण बहादुर डी० एस-सी० रसायन विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी इलाहाबाद

(आकाश वाणी के सौजन्य से)

पाचन की क्रियाविधि

शुकदेव प्रसाद

जन्तुओं का भोजन जटिल कार्बनिक पदार्थों जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा इत्यादि से मिलकर बना होता है जो कि रासायनिक रूप से अक्रिय एवं प्राय: अघुलनशील होते हैं। अत: उसी दशा में भोजन शरीर की तमाम क्रियाओं के लिए नहीं प्रयुक्त हो सकता है। इसलिए सर्वप्रथम भोज्य पदार्थ को साधारण एवं घुलनशील अवयवों में बदल जाना आवश्यक है जिससे कि वे रक्त में आसानी से शोषित हो सकें। ऐसी क्रिया जिसके अन्तर्गत भोजन के जटिल एवं अघुलनशील अवयवों को साधारण एवं घुलनशील बनाया जाय, पाचन कहलाती है। भोजन के जटिल अवयव रासायनिक क्रियाओं द्वारा छोटे-छोटे भागों में तोड़े जाते हैं। यह क्रिया अत्यन्त जटिल होती है तथा इसे कुछ विशेष प्रकार के पदार्थों द्वारा सम्पन्न किया जाता है जिन्हें एन्जाइम कहते हैं। ये एन्जाइम उत्प्रेरक की भाँति कार्य करते हैं अर्थात् अन्य पदार्थों के साथ मिलकर उनका रासायनिक परिवर्तन कर देते हैं लेकिन स्वयं नहीं प्रभावित होते। प्रत्येक एन्जाइम एक निश्चित वातावरण में तथा एक ही प्रकार की वस्तुओं पर कार्य करता है अर्थात् जो एन्जाइम अम्लीय माध्यम में कार्य करता है, वह क्षारीय माध्यम में नहीं कर सकता और जो इन्जाइम प्रोटीन का पाचन करता है, वह वसा के लिए बेकार है। उदाहरणार्थ, प्रोटीन एमीनो एसिड में, कार्बोहाइड्रेट शक्कर में तथा वसा फैटीएसिड और ग्लिसरॉल में क्रमश: प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा फैट स्पिलटिंग एन्जाइम द्वारा परिवर्तित होते हैं। जल, खनिज लवण तथा विटामिन जो कि घुलनशील होते हैं। बिना किसी परिवर्तन के रक्त द्वारा शोषित हो जाते हैं।

पाचन की क्रिया विधि (Physiology of Digestion) में भोजन का पाचन, अवशोषण वितरण एवं स्वांगीकरण (asimilation) आदि क्रियायें सम्मिलित हैं।

(1) पाचन—पाचन क्रिया में भोजन के जटिल अवयव रासायनिक क्रियाओं द्वारा छोटे-छोटे भागों में तोड़े जाते हैं। भोजन के जटिल अवयव मुख्यत: प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व वसा हैं जिनका पाचन निम्नलिखित ढंग से होता है।

प्रोटीन का पाचन—एन्जाइमस जो कि प्रोटीन पर क्रिया करते हैं, उन्हें प्रोटियेजेज या प्रोटिओलिटिक एन्जाइम कहते हैं। पाचन के दौरान प्रोटीन विभिन्न प्रकार के प्रोटिओलिटिक एन्जाइम की क्रियाशीलता से एमीनोएसिड में तोड़े जाते हैं। प्रोटिएजेज मुख्यत: दो वर्गों में विभाजित किये जाते हैं।

एन्डोपेप्टाइडेजेज—ये एन्जाइम केन्द्रीय पेप्टाइड बंध पर आक्रमण करते हैं और साधारण प्रोटीन जैसे पेप्टोनस, पर भी क्रिया करने में सक्षम हैं। उदाहरणार्थ पेप्सिन, ट्रिपासिन, इरेप्सिन तथा कीनोट्रिपसिन आदि।

एक्सोपेप्टाइडेजेज—ये एन्जाइम वाह्य पेप्टाइड बंध पर आक्रमण करते हैं और अधिक परिमाण में पालीपेप्टाइड्स पर क्रिया करते हैं। ये तीन वर्गों में बांटे गए हैं। जो निम्न हैं। 1—कार्बोक्सीपेप्टाइडेजेज, 2—एमीनोपेप्टाइडेजेज, 3—डाइपेप्टाइडेजेज। इनमें से कार्बोक्सीपेप्टाइडेजेज अग्न्याशय रस में स्रावित होते हैं तथा एमीनोपेप्टाइडेजेज और डाइपेप्टाडेजेज आंत्रीय रस में उपस्थित होते हैं। कार्बोक्सीपेप्टाइडेजज और एमीनोपेप्टाइडेजज पालीपेप्टाइड्स पर क्रिया कर उन्हें

डाइपेप्टाइड्स तथा एमीनोएसिड्स में बदलती हैं। डाइपेप्टाइडेजेज डाइपेप्टाइड्स पर क्रिया कर उन्हे एमीनोएसिड्स में बदलती हैं।

प्रोटीन सर्व प्रथम प्रोटिएजेज द्वारा छोटे अवयवों में तोड़ी जाती हैं तथा अन्त में पेप्टिक पाचन केवल पेप्टाइडेजज द्वारा प्रभावित होता हैं। निम्नलिखित जन्तु के पाचन सम्बन्धी मुख्य प्रोटिएजेज हैं।

पेप्सिन—यह अम्लीय माध्यम में तीव्रता से क्रिया करता है। यह जठर ग्रन्थियों द्वारा निष्क्रिय रूप में जिसे पेप्सिनोजन कहते हैं, स्रावित होता है। आमाशय में उपस्थित हाइड्रोक्लोरिक एसिड द्वारा सक्रिय हो जाता है। पेप्सिन की क्रिया से प्रोटीन पेप्टोन्स में बदल जाता है।

ट्रिप्सिन—यह क्षारीय माध्यम में बड़ी अच्छी तरह क्रिया करता है। यह अग्न्याशय द्वारा ट्रिप्सिनोजन के रूप में स्रावित होता है जो कि अक्रिय होता है तथा आंत्रीय रस में उपस्थित इन्ट्रोकाइजेज द्वारा सक्रिय हो जाता है। इसकी क्रिया से पेप्टोन्स पालीपेप्टाइड्स में परिवर्तित हो जाते हैं।

इरेप्सिन—यह एक प्रबल प्रोटिओलिटिक एन्जाइम है यह पालीपेप्टाइड्स को एमीनोएसिड्स में बदल देता है। जो कि प्रोटीन पाचन के अन्तिम उत्पाद हैं। यह आंत्रीय ग्रन्थियों द्वारा स्रावित होता है।

कार्बोहाइड्रेट का पाचन—कार्बोहाइड्रेट कार्बोहाइड्रेजेज द्वारा मोनोसैकराइड्स में परिवर्तित हो जाते हैं। कार्बोहाइड्रेट के पाचन में एमाइलेज, ग्लाइकोजिनेज, सूक्रेज, लैक्टेज, माल्टेज, सेलुलेज जैसे एन्जाइम प्रयुक्त होते हैं। कार्बोहाइड्रेट तीन वर्गों में विभक्त किये गए हैं, जो क्रमशः मोनोसैकराइड्स, डाइसैकराइड्स तथा पालीसैकराइड्स हैं। साधारण भोजन में मुख्य मोनोसैकराइड ग्लूकोज, फ्रक्टोज, गैलक्टोज पाये जाते हैं। इनमें पाचन की आवश्यकता नहीं है और ये वैसे ही शोषित कर लिये जाते हैं। ऐसे डाइसैकराइड्स जिनमें पाचन की आवश्यकता होती है केवल तीन क्रमशः मांल्टोज (माल्टसुगर), लेक्टोज (मिल्कसुगर) तथा सूक्रोज (केनसुगर) हैं। इन तीनों का पाचन छोटी आंत में होता है जहाँ कि आंत्रीय रस में माल्टेज, लेक्टेज, तथा सूक्रेज या इनवर्टेज उपस्थित होते हैं। पाचन क्रिया में मोनोसैकराइड्स का निर्माण होता है जैसा कि नीचे प्रदर्शित है :—

माल्टोस → ग्लूकोस + ग्लूकोस

लैक्टोस → ग्लूकोस + गैलेक्टोस

सुक्रोस → ग्लूकोस + फ्रुक्टोस

पालीसैकराइड्स सम्बन्धी पाचन में स्टार्च का विशेष महत्व है। स्टार्च के पाचन में दो एन्जाइमस लायलिन (सलाइवा से तथा अग्न्याशय एमाइलेज अग्न्याशय रस से) प्रयुक्त होते हैं। इन एमाइलेजेज की क्रिया से स्टार्च माल्टोज में बदल जाता है। बाद में आंत्रीय माल्टेज की क्रिया से ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाता है। कार्बोहाइड्रेट पाचन का अन्तिम उत्पाद अन्य मोनोसैकराइड्स के साथ छोटी आंत द्वारा शोषित हो जाते हैं।

वसा—लाइपेजेज की क्रिया से फैटस् फैटीएसिड्स तथा ग्लिसरॉल में परिवर्तित हो जाते हैं।

(2) अवशोषण—पाचक एन्जाइमस की क्रिया से अवशोषण के पहले भोजन का पाचन हो जाता है। अधिकतर जन्तुओं में पचे हुए भोज्य पदार्थों का अवशोषण आंत में होता है। पाचक एन्जाइमस् की क्रिया से भोज्य पदार्थों में उपस्थित प्रोटीन एमीनोएसिड्स में, कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज में तथा फैट फैटीएसिड्स एवं ग्लिसरॉल में टूट जाते हैं। जॉरडन के अनुसार अवशोषी सतह का क्षेत्रफल जन्तुओं के मेटाबालिज्म दर से समानुपाती होता है। आंत की लम्बाई जन्तु के भोजन के प्रकृति से निश्चित की जाती है। शाकाहारी जन्तुओं की तुलना में मांसाहारी जन्तुओं की आंत की लम्बाई कुछ कम होती है। जन्तुओं में अवशोषी सतह की वृद्धि भिन्न-भिन्न तरीकों से होती है जैसे : मेंढक के क्षुद्रांत्र की श्लेष्मिका में अनेक आयाम सलवटें होती हैं जो कि इसकी सतह का क्षेत्रफल बढ़ा देती है तथा स्तनधारियों में उंगुली के आकार की रचनाओं (जिन्हें दिलाई कहते हैं) के बनने से वृद्धि हो जाती है। पचे हुए तरल पदार्थ श्लेष्मिका में रिसरिस कर लसिका

वाहिनियों में प्रसरित हो जाते हैं पुन: रक्तपरिवहन द्वारा ये पदार्थ जिगर में होकरशरीर के सभी अन्य भागों में पहुँच जाते हैं।

प्रोटीन का अवशोषण—अवशोषण के पहले प्रोटिओलिटिक एन्जाइमस द्वारा प्रोटीन एमीनोएसिडस में परिवर्तित हो जाते हैं। ये छोटी आँत में उपस्थित विलाई के रक्तवाहिनियों द्वारा शोषित होते हैं। पोर्टल शिरा द्वारा शोषित उत्पाद यकृत तक पहुँचाए जाते हैं।

कार्बोहाइड्रेट का अवशोषण—पाचन क्रिया के फलस्वरूप कार्बोहाइड्रेट ग्लूकोज में परिवर्तित हो जाते हैं। छोटी आँत द्वारा ग्लूकोज का अवशोषण दो प्रकार से होता है। (क) रक्त की अपेक्षा आँत में उच्च सान्द्रता होने के कारण सुगर के साधारण विसरण से तथा (ख) जीवित आंत्रीय कोशिकाओं के सक्रिय साभेदारी से जिसमें फास्फोरिलेशन संयुक्त है। इसके कारण कोशाओं में स्वतन्त्र सुगर की प्रभावी सान्द्रता कम हो जाती है जिससे सुगर बड़ी शीघ्रता से शोषित हो जाती हैं।

वसा का अवशोषण—पाचन क्रिया के फलस्वरूप वसा, फैटी एसिड्स तथा ग्लिसरॉल में टूटती है। आंत्रीय विलाई में उपस्थित लैक्टियल्स अथवा आक्षीर वाहिनियों द्वारा इनका शोषण होता है। लैक्टियल्स से होते हुए लसिका वाहिनियों में तथा अन्त में रक्त की धारा में मिल जाते हैं।

[3] स्वांगीकरण

अवशोषी भोज्य पदार्थों के मेल से नये प्रोटोप्लाज्म का निर्माण ही स्वांगीकरण कहलाता है। इस क्रिया के दौरान साधारण पदार्थ प्रोटोप्लाज्म द्वारा उत्पन्न किए एन्जाइमस की मदद से अत्यधिक जटिल तत्वों में परिवर्तित होते हैं। उदाहरणार्थ रक्त द्वारा शोषित एमीनो एसिड्स, ग्लूकोज, फैटीएसिड एवं ग्लीसरॉल शरीर के विभिन्न अंगों में पहुँचाए जाते हैं जहां कोशाओं में उनका पुन: संश्लेषण होता है। प्रोटोप्लाज्म द्वारा उत्पन्न एन्जाइम से ये सब प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा फैट में क्रमश: बदल जाते हैं। इस नए ढंग से संश्लेषण की क्रिया में जीव द्रव्य का निर्माण होता है। इस क्रिया को स्वांगीकरण कहते हैं। इस क्रिया से नए प्रोटोप्लाज्म का निर्माण होता है जिससे शरीर की वृद्धि होती है। इन यौगिकों का निर्माण उसी प्रकार के एन्जाइम द्वारा होता है जो कि पाचन क्रिया के समय उनको तोड़ने में सफल होते हैं। आवश्यकता से अधिक एमीनो एसिड यकृत में यूरिया में परिवर्तित हो जाता है जहां से रुधिर द्वारा वृक्कों में पहुँचता है और मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। इसी प्रकार आवश्यकता से अधिक ग्लूकोज, ग्लाइकोजन में परिवर्तित होकर यकृत की कोशाओं में एकत्र हो जाता है शरीर में ग्लूकोज की कमी पड़ने पर यही ग्लाइकोजन फिर ग्लूकोज में बदल जाता है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

स्काईलैब–2 की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ

(संकलित)

'स्काईलैब–2' की अन्तरिक्षयात्री - टोली 25 सितम्बर को पृथ्वी पर वापस सकुशल वापस लौट आई। यह टोली अपने साथ अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में इतनी अधिक और महत्वपूर्ण सूचनाएँ लायी हैं जितनी इससे पूर्व कोई अन्य अन्तरिक्षयात्री नहीं ला सका है।

यह व्यापक जानकारी—इसमें अमूल्य वैज्ञानिक खोजें शामिल हैं—स्काईलैब–2 के अन्तरिक्षयात्रियों द्वारा लगभग दो माह की अवधि में एकत्र की गयी। यह सम्पूर्ण समय उन्होंने भारहीनता की स्थिति में व्यतीत किया।

उनके द्वारा संग्रहीत आंकड़ों से विज्ञान और टैक्नालाजी के सभी क्षेत्र लाभान्वित होंगे। स्काईलैब द्वारा प्राप्त समस्त वैज्ञानिक जानकारी तुरन्त संसार के वैज्ञानिकों और इंजिनियरों को लाभार्थ प्रकाशित कर दी जायेगी।

स्काईलैब की अन्तरिक्ष-टोली द्वारा संग्रह की गई वैज्ञानिक जानकारी सूर्य के 77,000 चित्रों, 18 मील लम्बे चुम्बकीय टेपों पर अंकित विद्युदाणविक रिकार्डिंग, 33 टैक्नालाजीकल प्रयोगों और अन्तरिक्षयात्री-टोली के सदस्यों के मस्तिष्कों में अंकित है।

इसमें से कुछ जानकारी उन वस्तुओं में संग्रहीत है जो अन्तरिक्षयात्री-टोली के सदस्य अपने साथ पृथ्वी पर वापस लाए हैं। इन वस्तुओं में दो मकड़ियां, भारहीनता की स्थिति में इन मकड़ियों द्वारा बुने गए जाले, दो मछलियां तथा इन मछलियों के कुछ जीवित बच्चे शामिल हैं। इनमें से एक मकड़ी तथा दोनों मछलियां यात्रा के दौरान ही मर गयी थीं।

स्काईलैब–2 की अन्तरिक्षयात्री-टोली के सदस्यों—कमाण्डर एलन बीन (41 वर्ष), ओवेन के० गैरियट (42 वर्ष) तथा जैक आर० लूजमा (37 वर्ष)—से तीन सप्ताह तक व्यापक पूछतांछ की जाएगी ताकि अनुसन्धान-कर्ताओं को उनके अनुभवों की व्यापक जानकारी प्राप्त हो सके। इन अन्तरिक्षयात्रियों की सूक्ष्म शारीरिक जांच भी की जा रही है ताकि यह मालूम किया जाये कि इतनी लम्बी अवधि तक भारहीनता की स्थिति में रहने का उनके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ा है।

इस टोली ने अन्तरिक्ष में कुल मिला कर 59 दिन 11 घण्टे व्यतीत किये हैं। अन्तरिक्षयात्रा का यह रिकार्ड स्काईलैब–1 के यात्रियों द्वारा स्थापित रिकार्ड से लगभग दुगुना है। पहली टोली अन्तरिक्ष में 28 दिन और 50 मिनट तक रही थी।

स्काईलैब–1 की अन्तरिक्षयात्री टोली ने पृथ्वी की 859 परिक्रमाएँ कीं तथा कुल मिलाकर 2,44,23,120 मील (3,90,77,000 किलोमीटर) की यात्रा की। अभी तक किसी भी अन्य मनुष्य ने किसी भी वाहन के द्वारा इतनी लम्बी यात्रा नहीं की है।

अन्तरिक्षयात्री-टोली के हर सदस्य का वजन सात से लेकर 8 पौण्ड तक कम हो गया है तथा उनकी कुछ मांस-पेशियां भी सिकुड़ गयी हैं क्योंकि भारहीनता की स्थिति में मांसपेशियों का प्रयोग अधिक नहीं होता।

प्रयोगशाला के वैज्ञानिक अन्तरिक्ष में लिए गए उनके रक्त के नमूनों की भी जांच कर रहे हैं जिससे उनके शरीर में होने वाले अन्य परिवर्तनों का भी पता चलेगा।

अन्तरिक्ष यात्रियों की डाक्टरी जाँच से वैज्ञानिकों को मानव शरीर के बारे में और अधिक जानकारी प्राप्त होगी।

सम्भवत: स्काइलैव द्वारा प्राप्त की गयी जानकारी का सबसे पहले और सबसे अधिक नाटकीय उपयोग का पता वैज्ञानिक प्रयोगों के उन कारतूसों से चलेगा जो वे अपने साथ वापस लाये हैं।

ये कारतूस उन धातुओं और मिश्रित धातुओं से भरे हैं जो अन्तरिक्ष यात्रियों द्वारा अन्तरिक्ष में ही पिघलाई गई थीं तथा भारहीनता की ही स्थिति में उन्हें ठण्डा होकर ठोस रूप ग्रहण करने दिया गया था।

अन्तरिक्षयात्रियों के विवरणों से वैज्ञानिकों को यह विश्वास हो गया है कि अन्तरिक्ष में पिघलाने के बाद ठोस रूप ग्रहण करने वाली धातुएँ अपेक्षाकृत अधिक छिद्रल तथा अधिक गोलाकार हो गयी होंगी क्योंकि अन्तरिक्ष में वह गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त थीं।

स्काईलैब के अन्दर एक छोटी सी भट्टी भी थी। इसमें किये गये प्रयोगों से वैज्ञानिक यह पता लगा सकेंगे कि क्या कुछ वस्तुएँ पृथ्वी की अपेक्षा अन्तरिक्ष में अधिक अच्छी तरह बनाई जा सकती हैं।

इसी प्रकार, स्काइलैब से खींचे गए सूर्य के चित्रों से सूर्य के बारे में तथा मौसम और पृथ्वी पर उसके प्रभावों के बारे में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकेगी। शायद इससे सोर किरणों से विद्युत शक्ति का उत्पादन करने में भी मदद मिले।

अन्तरिक्षयात्री अपने साथ जो मकड़ियां और मछलियां ले गये थे, उसका उद्देश्य अन्तरिक्ष में कुछ जैविक प्रयोग करना था। वैज्ञानिक यह जानना चाहते थे कि मकड़ी भारहीनता की स्थिति के अनुकूल अपने को किस प्रकार ढालती है। प्रारम्भ में मकड़ी को भारहीनता की स्थिति में अपने जाल बुनने में कुछ कठिनाई अवश्य हुई परन्तु उसके बाद वह सामान्य ढंग पर जाले बुनने लगीं। मछलियों को भारतहीनता की स्थिति में तैरने में कोई कठिनाई नहीं अनुभव हुई।

'स्काईलैब' के अन्तरिक्षयात्रियों ने अपने अन्तरिक्ष-प्रवास की अवधि में यह खोज की है कि पौष्टिक भोजन, गहरी नींद तथा कठोर व्यायाम के सहारे मनुष्य अन्तरिक्ष में भी पूर्ण स्वस्थ रह सकता है। पृथ्वी पर भी स्वस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य को इन तीनों चीजों की परम आवश्यकता रहती है।

कमाण्डर एलेन वीन ने बताया कि पौष्टिक आहार, गहरी नींद तथा व्यायाम के सहारे अन्तरिक्षयात्री अन्तरिक्ष में अपने सभी काम बखूबी कर सकते हैं तथा अपने को पूर्ण स्वस्थ अनुभव करते हैं।

● ●

[पृष्ठ 21 का शेषांश]

किसी संकटापन्न अवस्था में प्रणाली जिस तरह क्रियाशील होती है, उसका प्रदर्शन 23 जून, 1972, को पहली बार किया गया। उस अवसर पर पश्चिमी वर्जिनिया के ह्वीलिंग नगर में सबेरे 5 बज कर 40 मिनट पर चेतावनी दी गयी थी। यहाँ पर पहली प्रणाली उसके 1 माह पूर्व स्थापित हुई थी। चेतावनी से पता चला कि निकटवर्ती विग ह्वीलिंग नदी में भारी वर्षा के कारण पानी खतरे के विन्दु तक पहुँच रहा है, और जलप्लावन की सम्भावना है। वहाँ पर बाढ़ का पानी आने के 4 घण्टे पूर्व यह चेतावनी मिली थी। उसके पाँच घण्टे बाद तो बाढ़ के पानी से एक बड़ी सड़क पूरी तरह डूब चुकी थी।

● ●

विज्ञान के नये चरण

अर्बुद के उपचार में चुम्बक

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय, लॉस एन्जेलिस, के तन्त्रिका शल्यचिकित्सक डा० राबर्ट डब्लू० रैण्ड ने एक नई प्राविधि को विकसित किया है जिसमें तन्त्रिका के अर्बुद को सुखाने में चुम्बक का प्रयोग किया जाता है। रक्त वाहिका में लोह चूर्ण तथा सिलिकोन के मिश्रण का इन्जेक्शन देकर उसे उसी स्थान पर चुम्बक की सहायता से तब तक रोके रखा जाता है जब तक रक्त का थक्का नहीं बन जाता और इस प्रकार के अर्बुद को रक्त नहीं मिल पाता। यह चुम्बक स्नैफर्ड विश्वविद्यालय में बनाया गया है। जो काफी शक्तिशाली, ले जा सकने वाला, बेलनाकार तथा अति संवाहक चुम्बक का आकार 15 × 20 से० मी० है तथा इसका क्षेत्र बल पृथ्वी की अपेक्षा 20,000 गुना अधिक होता है। इस प्राविधि का जीभ, मस्तिष्क तथा अधिवृक्क ग्रन्थि के अर्बुद को सुखाने में तीन रोगियों पर सफल परीक्षण किया जा चुका है। आरम्भ में इस विधि को क्षीण रक्त वाहिका को प्रबल बनाने में प्रयोग करने के लिये विकसित किया गया था।

संकर लेसर

दो विरल गैसों—जिनॉन तथा आरगन की सहायता से लारेन्स लिवर मूरलैबेरोटेरी, यू० एस० ए में संकर लेसर का विकास किया गया है। दोनों गैसों के उत्तेजित परमाणुओं से अणु बनाकर ऐसा किया गया है। इसे टू-एक्साइमर विधि कहते हैं। आरगन में ऊर्जा संचित करके जेनॉन परमाणुओं को प्रदान की गई। इसके लिये गैसें ऐसे कक्ष में इकत्रित थीं। जिस पर अत्यन्त उच्च दाब था और जिसमें त्वरित इलेक्ट्रॉनों का पुंज भेजा गया जेनॉन का लेसर के लिये पहली बार प्रयोग किया गया है।

म्युकोविसिडोसिस के जाँच की नई विधि

नवजात शिशु में पैत्रिक रोग के लक्षण तो नहीं हैं यह जानने का सदैव प्रयास किया जाता है। ऐसा ही रोग म्युकोविसिडोसिस है जिसकी प्रारम्भ में यदि सूचना न मिली तो स्थिति नियन्त्रण के बाहर जा सकती है। वर्षों पूर्व यह देखा गया था कि इस रोग से पीड़ित बच्चों द्वारा निकले मिकोनियम में एल्बुमिन प्रोटीन माध्य से कहीं अधिक होती है क्योंकि कुछ ग्रन्थियाँ ठीक काम नहीं कर रही होतीं। प्रोटीन के आधिक्य के कारण आंतों में इतनी रुकावट पैदा हो जाती है कि ऑपरेशन करना परमआवश्यक हो जाता है। श्वास नली में श्लेष्मा की मोटी पर्त जम जाती है और धीरे-धीरे वह अवरुद्ध हो जाती है। इसके फलस्वरूप खाँसी के दौरे और नियुमोनिया हो जाता है। जर्मनी में हनोवर नगर की प्रसूति ग्रहों में किये गये प्रयोगों से यह अब संभव हो सका है कि रोग का निदान प्राथमिक स्थिति में किया जा सके। इसके लिये परख पट्टी प्रयुक्त होती है। इस परख पट्टी पर नवजात शिशु के मिकोनियम की पर्त लगाकर इसे आसुत जल में डुबोया जाता है यदि पट्टी नीली हो जाती है तो स्पष्ट हो जाता है कि बच्चा म्युकोविसिडोसिस रोग से ग्रसित है। इस बात की पुष्टि इस बात से और भी हो जायगी जब बच्चे के पसीना में औसत से अधिक नमक पाया जाय। डा० मैनिके ने कहा है कि इस परीक्षण से बच्चों को भयंकर रोग से बचा सकना संभव हो जायगा।

●●

विज्ञान वार्ता

(1) कृत्रिम अंगों का प्रत्यारोपण

मनुष्य के आन्तरिक विकारग्रस्त अंगों को हटा कर उनके स्थान पर किसी अन्य प्राणी के अंग अथवा कृत्रिम अंगों का प्रत्यारोपण चिकित्सा-विज्ञान की एक महान् उपलब्धि मानी जाती है। परन्तु, प्रत्यारोपण के क्षेत्र में अब तक की सबसे बड़ी असफलता यह रही है कि जब एक प्राणी के शरीर में दूसरे प्राणी का अंग प्रत्यारोपित किया जाता है, तो शरीर उसे सामान्यत: स्वीकार नहीं कर पाता और इस प्रकार अधिकांशत: असफलता ही प्राप्त होती है।

मिशिगन विश्वविद्यालय के मानव शरीर-संरचना विज्ञानशास्त्री, डा० रेमण्ड कान, का कथन है कि इस समस्या को विशेष प्रकार के कृत्रिम अंगों के निर्माण द्वारा हल किया जा सकता है। डा० कान का कथन है कि रक्त-संचार सम्बन्धी अंग, जैसे हृदय-कपाट (हार्ट वाल्व), के प्रत्यारोपण में, जब किसी मानव के शरीर में दूसरे मानव का हृदय-कपाट प्रत्यारोपित किया जाता है, तो रोगी के रक्त और सामान्य हृदय-ऊतक पर इसकी विपरीत क्रिया होती है और अधिकांश अवस्थाओं में इसके अस्वीकार किये जाने की ही सम्भावना रहती है। उनका कहना है कि इस समस्या को छिद्रल (पोरस) प्लास्टिक से निर्मित कृत्रिम कपाट द्वारा हल किया जा सकता है। इस कपाट यानी वाल्व में स्वयं रोगी के शरीर की कोशिकाओं का आरोपण किया जाना चाहिये। ये कोशिकाएँ बढ़ते-बढ़ते इस कृत्रिम कपाट को ढक लेंगी और इस प्रकार रोगी पर इसकी कोई बुरी प्रतिक्रिया नहीं होगी, क्योंकि कोशिकाएँ स्वयं रोगी के अपने ही शरीर की होंगी और इस प्रकार कृत्रिम कपाट के अस्वीकार किये जाने की आशंका नहीं रहेगी।

(2) क्षतिग्रस्त मस्तिष्क की कोशिकाएं

परम्परागत वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार, क्षतिग्रस्त मस्तिष्क की कोशिकाएँ मर जाती हैं और वह स्थान रिक्त रहता है। परन्तु, हाल ही में, किये गये अनुसन्धानों से पता चला है कि मस्तिष्क के क्षतिग्रस्त भाग की कोशिकाएँ मरती नहीं है अपितु वे अपने को पुनरसंस्थापित कर लेती हैं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डा० गैरी लिन्च तथा डा० कार्ल डब्ल्यू, कोटमैन द्वारा चूहों पर किये गये परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि क्षतिग्रस्त कोशिकाओं के आसपास की स्नायु-कोशिकाएँ उस रिक्त स्थान पर स्थानान्तरित होकर उस रिक्त स्थान की पूर्ति करती हैं।

अनुसंधानकर्ताओं का मत है कि यद्यपि इस संचलन-प्रक्रिया में क्षतिग्रस्त कोशिकाओं की पूर्ति नहीं होती है, फिर भी उनका विश्वास है, यदि चिकित्साशास्त्री कोशिकाओं की इस संचलन-प्रक्रिया पर नियन्त्रण पा सकें तो इसके मस्तिष्क की सम्भावित क्षति से बचा जा सकता है।

प्रजनन के द्वारा कीट नियन्त्रण

आजकल माईत्ज विश्वविद्यालय में कीट नियन्त्रण की नयी विधि—प्रचनन युद्ध-पर अनुसंधान हो रहा है। कीटों को नष्ट करने के लिए रसायन के प्रयोग से अनेक हानियाँ होती हैं। जैसे वातावरण पर रसायनों का हानिकर प्रभाव, और यह सत्य है कि रसायन न केवल कीड़ों को मारते हैं बल्कि उपयोगी जीवाणुओं को भी नष्ट कर देते हैं। इसलिए जीववैज्ञानिकों ने नया रास्ता खोजा है।

माईत्ज विश्वविद्यालय में प्रजनन और वनस्पति विभाग के प्रो० हानेस लाफेन के अनुसार उनके विभाग ने प्रजनन उपाय विकसित किए हैं। वे वास्तव में उत्तराधिकारी के समग्र विषय में वानस्पतिक अनुसंधान के उपोत्पादन हैं वर्णसंकरता पर प्रयोगों ने जन्म दर पर नियन्त्रण करके कीटों से लड़ने के प्रजनन उपाय को विकसित किया है। यह पाया गया कि कीटों के प्लाज्मा में कुछ ऐसे तत्व हैं जो प्रजनन को असंभव बना

देते हैं और यह "प्लाज्मा का अक्षमता" कीटों के नियन्त्रण की कुंजी बनी।

19 2 में विश्व स्वास्थ्य संगठन प्लाज्मा का अक्षमता पर सीमित अनुसंधान करने के लिए विश्व-विद्यालय को वित्तीय सहायता देने के लिए सहमत हो गया। एक जर्मन अनुसंधान दल ने बर्मा के जंगलों में, जहाँ का कुलेक्स पाइपेंस मच्छर बीमारी फैलाता है। अपने प्रयोग किए इस नस्ल के लगभग 2,70,000 नर मच्छरों को प्रयोगशाला में पैदा करके इलाके में छोड़ दिया गया। यह संख्या क्षेत्र में पहले से उपस्थित मच्छरों की संख्या से संतुलन बनाने की दृष्टि से रखी गयी।

परिणाम आश्चर्यजनक रहे। प्रयोग के पाँचवें सप्ताह के अंत में कुल 80 प्रतिशत अन्डों से ही लार्वा पैदा हुए। 10 सप्ताह बीतने पर यह संख्या 30 प्रतिशत रह गयी और 12वाँ सप्ताह बीतने पर तो एक भी लार्वा पैदा नहीं हुआ।

धान की फसल में जिंक की कमी का उपचार

धान के पौधों में जिंक सल्फेट की कमी से उत्पन्न रोगों की रोकथाम के लिए जिंक सल्फेट के घोल का पौधों पर छिड़काव करें।

अखिल भारतीय समन्वय धान विकास परियोजना, हैंदराबाद के सस्य विज्ञानी के अनुसार धान के पौधों में जिंक की कमी होने से उनकी पुरानी पत्तियों पर छोटे-बड़े धब्बे पड़ जाती हैं।

इसके लिये 300 से 500 लिटर पानी में 3 से 5 किलो जिंक सल्फेट घोल का छिड़काव करें। यह घोल एक हेक्टर में छिड़काव करने के लिए पर्याप्त रहता है। धान की पत्तियों को झुलसा से बचाने के लिये इस घोल में 3 किलो केल्सियम हाइड्रेट मिला लें। पौधों में आखिरी कल्ले फूटने तक इस घोल का 2-3 बार छिड़काव करें।

बाढ़ की पूर्व-चेतावनी देने वाली नयी उपकरण-प्रणाली का सफल परीक्षण

अमेरिका में एक ऐसी स्वतःचालित उपकरण-प्रणाली का विकास और सफल परीक्षण किया गया है, जो आकस्मिक बाढ़ की पूर्व चेतावनी देती है।

यह प्रणाली कई घण्टे पूर्व बाढ़ आने की चेतावनी दे देती है, जिससे लोग अपने स्थान को खाली कर अन्यत्र जाने और अपनी सम्पत्ति की रक्षा करने में समर्थ हो जाते हैं। यह प्रणाली अमेरिकी राष्ट्रीय मौसम सेवा द्वारा विकसित की गयी है।

इस प्रणाली का नाम 'स्वतःचालित आकस्मिक बाढ़-चेतावनी प्रणाली' है। प्रत्येक उपकरण-प्रणाली के अन्तर्गत तीन मुख्य अंग हैं।

प्रथम है एक स्वतःचालित जल-स्तर टोहक यन्त्र या सेंसर, इसमें एक बन्द संतरण-उपकरण शामिल है, जो बाढ़ के पानी के खतरनाक बिन्दु तक पहुँचने की स्थिति में ऊपर उठ कर एक विद्युत तरंग संचालित कर देता है। रस्सी से इस सेंसर को किसी पुल से सम्बद्ध करके पानी की धारा में छोड़ दिया जाता है।

जब बाढ़ का पानी उपकरण को सक्रिय कर देता है, तो एक संकेत अपने आप एक मध्यवर्ती स्टेशन तक सम्प्रेषित हो जाता है। यह स्टेशन सेंसर के यथासम्भव अधिकतम निकट ऐसी जगह स्थित होता है, जहाँ टेलीफोन लाइन या बिजली उपलब्ध होती है। यह स्टेशन सेंसर को आवश्यक बिजली सुलभ करता है और खतरे की चेतावनी को भी प्रसारित करता है।

मध्यवर्ती स्टेशन से चेतावनी का संकेत टेलीफोन द्वारा किसी पुलिस या फायर स्टेशन तक आवश्यक कार्यवाही के लिए सम्प्रेषित हो जाता है।

चेतावनी का संकेत रोशनी, घण्टी या सीटी द्वारा दिया जाता है। जब चेतावनी दे दी जाती है, तब उसे पाने वाले स्टेशन पर लोग आवश्यक कार्यवाही करने में संलग्न हो जाते हैं।

पूरी उपकरण-प्रणाली की स्थापना पर लगभग 3 हजार डालर व्यय बैठता है जबकि इसकी सहायता से इसके कई गुने अधिक मूल्य की सम्पदा या जान की रक्षा सम्भव हो जाती है। इस प्रणाली के सम्बन्ध में अनुभव प्राप्त अधिकारियों का कहना है कि इसके द्वारा जानमाल की रक्षा करना आसान हो जाता है।

[शेष पृष्ठ 21 पर]

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3 5/

भाग 112 | फाल्गुन 2030 विक्र०, 1894 शकाब्द फरवरी 1974 | संख्या 2

टेक्योन—प्रकाश से तीव्र गति वाले कण

डा० आनन्द बिहारी सक्सेना

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, जब आइन्स्टीन ने सापेक्षता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया तो शुरू में उन्हें काफी प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। मुख्य विरोध इसकी आधारभूत अभिधारणाओं को लेकर हुआ था, लेकिन सापेक्षता के सिद्धान्त के निष्कर्ष भी कम चौकाने वाले नहीं थे, इसके मुख्य निष्कर्ष निम्न हैं :—

1—ऊर्जा और संहति आपस में परिवर्तनशील हैं, और यह परिवर्तन समीकरण

$$E = mc^2 \quad (1)$$

के अनुसार होता है, यहाँ E उर्जा, m संहति एवं c प्रकाश की गति को सूचित करते हैं।

2—किसी भी वस्तु की दो संहति होती हैं, विराम संहति एवं प्रभावी संहति विराम संहति वह संहति है जो कि उस निर्देशाक्षों में नापी जाती है जिसमें वस्तु विराम में हो। प्रभावी संहति किसी निर्देशाक्षों में मापी गयी संहति है। किसी वस्तु का प्रभावी संहति m, उसकी विराम संहति m_0 से समीकरण

$$m = \frac{m_0}{\sqrt{1 - v^2/c^2}} \quad (2)$$

से सम्बन्धित होती है। इस समीकरण में v उस वस्तु की गति उन निर्देशाक्षों में है जिसमें संहति m नापी गयी है।

समीकरण (2) का मुख्य परिणाम यह है कि किसी वस्तु का अधिकतम वेग कभी भी प्रकाश के वेग के समान नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसी स्थिति में (v = c) वर्गमूल में लिखी गई राशि शून्य हो जाती है और वस्तु की प्रभावी संहति अनन्त हो जाती है। इस अवस्था में

किसी भी अशून्य विराम संहति ($m_0 = o$) वाली वस्तु का पहुँचना असम्भव हैं क्योंकि इसके लिए अनन्त उर्जा की आवश्यकता होगी। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला कि किसी भी वस्तु की गति प्रकाश की गति के बराबर या उससे अधिक नहीं हो सकती है। आइन्स्टीन ने स्वयम् यह स्वीकार किया था। हाँ प्रकाश-कण जिन्हें हम फोटोन के नाम से जानते हैं, की गति c के बराबर होती है लेकिन उनकी विराम संहति शून्य होती है जिसके परिणाम स्वरूप प्रभावी संहति अनन्त नहीं होती। इसी प्रकार के एक और कण न्यूट्रीनो हैं जिनकी गति c के बराबर होती है लेकिन उनकी भी विराम संहति शून्य है।

इस प्रकार हम दो प्रकार के कणों से परिचित हैं: (1) वह जिनकी गति हमेशा प्रकाश की गति से कम होती है और विराम संहति अशून्य होती है (2) वह जिनकी गति प्रकाश की गति के बराबर होती है और विराम संहति शून्य होती है। इस प्रकार के कणों को हम क्रमश: प्रथम एवम् द्वितीय श्रेणी के कण कहेंगे। प्रश्न उठता है कि क्या ऐसे कणों का होना सम्भव है जिनकी गति प्रकाश की गति से अधिक हो? जैसा कि हम पहले कह आए हैं, आइन्स्टीन ने इस प्रकार के कणों का होना असम्भव बताया था और नहीं ऐसे कणों को कभी प्रयोगशाला में देखा ही गया है। लेकिन हम आगे देखेंगे कि इस प्रकार के कणों का होना भौतिकी के किसी भी नियम का उल्लंघन नहीं करता है और नहीं सापेक्षता के सिद्धान्त का मजे। की बात यह है कि उनका होना सापेक्षता के सिद्धान्त से ज्यादा अच्छी तरह समझा जा सकता है। इस प्रकार के कणों की कल्पना सबसे पहले बिलानिउक, देश पांडे एवम् सुदर्शन ने की थी। सुदर्शन के ही शब्दों में 'यदि उनकी संभावना कोई विरोध भौतिकी के सिद्धान्तों से नहीं पैदा करती है तो उनकी खोज की जानी चाहिए।' खोज का कारण यह है कि ज़ल-मैन के सिद्धान्त के अनुसार 'जिस चीज का होना किसी सिद्धान्त के द्वारा मना नहीं है, उसको निश्चय ही होना चाहिए।' दूसरे शब्दों में यदि हम प्रकाश की गति से तेज गति वालें कणों का होना भौतिकी के किसी सिद्धान्त का विरोधी नहीं दिखा सकते तो उनकी निरन्तर खोज की जानी चाहिए। इन कणों को टेक्योन नाम दिया गया है। क्योंकि उनकी गति प्रकाश की गति से अधिक मानी गयी है, अत: हम उन्हें तृतीय श्रेणी के कण भी कहेंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर सब कणों को हमने निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया है:

प्रकाश से कम गति वाले कण	$v < c$	प्रथम श्रेणी
प्रकाश की गति वाले कण	$v = c$	द्वितीय श्रेणी
प्रकाश से अधिक गति वाले कण	$v > c$	तृतीय श्रेणी

सापेक्षता के सिद्धान्त से हम जानते हैं कि किसी कण के लिए राशि $E^2 - p^2 c^2$ अपरिवर्तनीय है और,

$$E^2 - p^2 c^2 = m_0^2 c^4$$

या, $E^2 - p_x^2 c^2 - p_y^2 c^2 - p_z^2 c^2 = m_0^2 c^4 \cdots (3)$

यदि हम x - अक्ष इस तरह चुनें कि इसकी दिशा कण की गति की दिशा में हो तो $p_y = p_z = o$ और,

$$E^2 - p_x^2 c^2 = m_0^2 c^4 \qquad (4)$$

यह समीकरण E एवम् p_x में एक अतिपरबलय का समीकरण है और इसका हर जगह झुकाव $dE/dp_x = v_x$, कण की गति के बराबर है। चूँकि समीकरण (3) ऐसे कणों का समीकरण है जिनकी गति c से कम है अत: इसका झुकाव भी हर जगह c से कम है।

द्वितीय श्रेणी के कणों के लिए $m_0 = o$, अत: समीकरण (3) से,

$$E^2 - p_x^2 c^2 = o$$

या, $$(E - p_x c)\ (E + p_x c) = o$$

यह दो सीधी रेखाओं को, जिनका झुकाव $\pm c$ है, को प्रदर्शित करता है, ऐसे कणों की, जैसा कि हम सापेक्षता के सिद्धान्त से भी जानते हैं, गति हमेशा c होती है चाहें किसी भी निर्देशाक्षों से उन्हें देखा जाए, केवल गति की दिशा बदली जा सकती है।

आइये, अब कल्पना करें ऐसे कणों की जिनकी गति प्रकाश की गति से अधिक हो और देखें कि क्या ऐसे कणों का होना किसी सिद्धान्त का विरोध करता है, यदि ऐसा नहीं है तो आशा की जा सकती है कि ऐसे कण एक दिन वैज्ञानिक ढूँढ़ निकालेंगे।

समीकरण (2) से साफ जाहिर है कि यदि कणों की गति c से अधिक हुई तो राशि $\sqrt{1 - v^2/c^2}$ काल्पनिक होगी और परिणाम स्वरूप प्रभावी संहति भी काल्पनिक होगी। इस समस्या का समाधान वैज्ञानिकों ने यह मान कर किया कि ऐसे कणों की विषम संहति भी काल्पनिक है, अर्थात

$$m_0 = im_*$$

यहाँ m_* एक वास्तविक राशि है। इस अवस्था में प्रभावी संहति

$$m = m_* / \sqrt{v^2/c^2 - 1} \qquad (5)$$

द्वारा ज्ञात होगी, और चूंकि m_* एक वास्तविक राशि है एवम् $v > c$, प्रभावी संहति भी वास्तविक होगी। हम क्योंकि प्रभावी संहति ही प्रयोगशाला में ज्ञात करते हैं, अतः हम हमेशा प्रभावी संहति को जो समीकरण (5) द्वारा दी जाएगी, और जो वास्तविक राशि है, ज्ञात करेंगे और कोई परेशानी आड़े नहीं आएगी। इस प्रकार काल्पनिक विराम संहति होने की परेशानी सामने नहीं आएगी।

दूसरे, किसी वस्तु की लम्बाई l,

$$l = l_0 \sqrt{1 - v^2/c^2}$$

समीकरण के द्वारा दी जाती है यहाँ पर भी काल्पनिक राशि की परेशानी हटाने के लिए हम यह कल्पना कर लेते हैं कि तृतीय श्रेणी के कणों के लिए लम्बाई l_0 भी काल्पनिक होगी जिससे जो लम्बाई नापी जाए वह वास्तविक हो, काल्पनिक नहीं।

अब हम यह दिखायेंगे कि तृतीय श्रेणी के कणों का होना कोई परेशानी नहीं करता वरन् सम्पूर्णता लाता है। यदि k एक स्थिरांक है तो समीकरण

$$x^2 - y^2 = k$$

एक अतिपरवलय परिवार को प्रदर्शित करता है। यहाँ पर स्थिरांक धनात्मक या ऋणात्मक हो सकता है। इसी तरह से समीकरण

$$E^2 - P_x^2 c^2 = m_0^2 c^4$$

प्रथम श्रेणी के कणों के लिए उन अतिपरवलय को दिखाता है जिनके लिए स्थिरांक k धनात्मक है। द्वितीय श्रेणी के कणों के लिए यह स्थिरांक शून्य है और समीकरण (4) दो सरल रेखाओं के समीकरण में परिवर्तित हो जाता है। तृतीय श्रेणी के कणों के लिए समीकरण (4) को

$$E^2 - p_x^2 c^2 = -m_*^2 c^4$$

के रूप में लिखा जा सकता है। ऐसे कणों के लिए अति परवलय के समीकरण में स्थिरांक ऋणात्मक है। इस प्रकार तृतीय श्रेणी के कणों का होना एक सम्पूर्णता का चित्र प्रस्तुत करता है।

अब हम टेक्योन के एक नए गुण का उल्लेख करेंगे। समीकरण (1) एवम् (4) की मदद से हम लिख सकते हैं कि तृतीय श्रेणी के कणों के लिए उर्जा

$$E = \frac{m_* c^2}{\sqrt{v^2/c^2 - 1}}$$

समीकरण से निर्धारित होगी। इसका एक परिणाम यह होगा कि उन कणों की उर्जा, जिनकी गति अनन्त है, शून्य होगी। इसके विपरीत अधिकतम उर्जा उन कणों की होगी जिनकी गति प्रकाश की गति के बराबर होगी इसका मतलब यह हुआ कि यदि ऐसे कणों से उर्जा ली जाए तो उनकी गति बढ़ जाएगी। यह दिखाया जा सकता है कि इसमें भी कहीं उर्जा के अविनाशिता के सिद्धान्त का खन्डन नहीं होता है, केवल समय क्रम बदलता है बदले हूए समय क्रम से उर्जा के अविनाशिता के सिद्धान्त को उसी तरह समझा जा सकता है जिस तरह प्रथम श्रेणी के कणों के लिए यह तो समय ही बताएगा कि ऐसे कणों की कल्पना में कितना सत्य छिपा है।

निर्देश (reference)

1. ओ० एम० पी० बिलानिडक, वी० के० देश पांडे, ई० सी० जी० सुदर्शन: अमेरिकन जरनल ऑफ फिज़िक्स 30, 1962 (718)

डा० आनन्द बिहारी सक्सेना
क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, भोपाल

विस्तीर्ण भू-अभिनति

विजय कान्त श्रीवास्तव

विस्तीर्ण भू अभिनति एक लम्बा सँकरा गह्वर होता है जिसमें विशाल मात्रा में अवसाद जमा होता है तथा इनसे पर्वतों तथा आग्नेय शिलाओं का जन्म होता है। विस्तीर्ण अभिनतियों का विचार नया नहीं है। सदियों पहले हाल 1859 ने इसकी विद्यमानता का विचार दिया। भू-अभिनति शब्द का प्रयोग डाना ने 1873 में किया। तब से आज तक अभिनति सम्बन्धी विचारों में अनेक परिवर्तन हो चुके हैं। हाल 1859 ने न्यूयार्क स्टेट के भू विज्ञान के वर्णन के साथ बताया कि पर्वत तथा आग्नेय शिलाओं की क्रियायें लम्बे छिछले जलीय अवसादों से होते हैं जो कि लम्बे गह्वरों (अभिनतियों) में जमा होते हैं, इस प्रकार के अवसादों की मोटाई लगभग 4000 फीट तक पायी जाती है। इन अवसादों में अन्य क्रियायों के अतिरिक्त कायातंरण की क्रिया भी होती है। हाल के इन विचारों ने उस समय भूविज्ञान क्षेत्र में जागृति उत्पन्न कर दिया।

डाना ने 1873 अपलेशियन पर्वतमाला के वर्णन के समय उपर्युक्त विचारों से सहमति प्रकट किया तथा पर्वत निर्माण की सम्पूर्ण क्रिया का प्रतिपादन किया। डाना ने एक के साथ विविध अभिनतियों की विद्यमानता को भी बताया तथा उनमें आग्नेय तथा ओरोजेनिक गतियों की क्रिया भी बतायी। 1900 में हेग ने बताया कि अवसाद की मात्रा अत्यधिक होती है तथा इसकी अन्तिम अवस्था में व्यापक मात्रा में वलन तथा कायांतरण की क्रिया होती है।

हाल तथा डाना ने अभिनतियों को महाद्वीप के किनारों पर माना तथा छिछले पानी में अवसादन बताया परन्तु हेग ने इस प्रकार की अभिनति को दो द्वीपों के **बीच** में माना तथा इसमें गहराई पर अवसादन माना।

उपर्युक्त विचारों के अतिरिक्त समय-समय पर अनेक भू-वैज्ञानिकों ने अपने मंतव्य प्रकट किये। निम्न सारिणी में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा अभिनतियों का वर्गीकरण दिया गया है।

डाना हेग स्टीले के सिनितजिन वर्तमान
तथा पे वर्गीकरण
1873 1900 1910 1947 1950

अभिनति आर्थो अभिनति आर्थो प्राथमिक अभिनति
[मायो — [मायो [मायो फरो
[इयो — [इयो [इयो फरो
[मायो श्रेणी
[इयो श्रेणी

इपि — अत्यन्त गहरा
द्वितीयक—
इम्रो— छिछला
जियो—
अभिनति—पैरा— अवशेष —
आटो वेसिन
टेफ्रो—
— ट्रेंच
ट्रेंच पेरा— ।
1

अवसादन तथा अपरदन में संबंध—अभिनतियों में रिज तथा फरों दोनों पाये जाते है। प्राथमिक फरों में ओफियोलाइट शिला पायी जाती है तथा बाद की अवस्था में फ्लाइश अवसाद पाये जाते हैं। बाद के अवस्था में ओफियोलाइट नहीं पाया जाता परन्तु स्वस्थानिक फ्लाइश पाया जाता है तथा रिज भ्रस्ट हो जाया करता है। वाह्य रिजों में ओफियोलाइट नहीं पाया

जाता परन्तु कभी-कभी सिलाइट शिला पायी जाती है। यह अस्ट भी हो सकता है।

चित्र नं. 1

अभिनति एवं उन्नत भागों के पारस्परिक संबंध

←मायो-अभिनति → ←इयो-अभिनति→
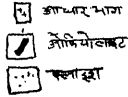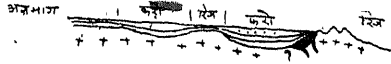
चित्र नं. 2

प्रारम्भिक अभिनति की अवस्था

भू-अभिनतियों का बनना—निम्न सारणी में अभिनतियों के बनने का क्रम दिया है। निम्न सारणी में विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा क्रमिक उत्थान दिया गया है।

क्रास	ग्लेसनर टिकर्ट	हरनियर
1927	1947	1952
वोरोजेन	प्रिओरोजेन	प्रिओरोजेनिक
रिक्टोजेन	काटा ओरोजेन	काटा ओरोजेन्किक
होथोरोजेन	इपिरोजेनिक	इपिरोजेन ओरोजेन
नेक्रोजेन	पोस्ट ओरोजेन	पोस्ट ओरोजेनिक

यहाँ उत्थान तथा विकास तीन भागों में विभाजित किया गया है (1) प्राथमिक (2) द्वितीयक तथा (3) ओरोजेनिक। प्राथमिक अवस्था में अवसाद जमा होता रहता है तथा प्रिफ्लाइश अवस्था में ओफियोलाइट शिला पायी जाती है फिर फ्लाइश अवसाद पाये जाते हैं। इनमें टेमानिक तथा ओरोजेनिक क्रियायें साथ-साथ पायी जाती हैं। इन क्रियाओं के बाद उत्थान की अवस्था आती है। इस अवस्था में वसाल्टिक आग्नेय शिलायें पायी जाती हैं तथा सिलायिक ग्रेनाटिक शिला अन्तिम अवस्था में मिलती है। ग्रेनोडायोरिटिक प्लूटान अन्त में पायी जाती है। जटिल अभिनतियों में इन सब क्रियाओं का सम्मिलित रूप पाया जाता है।
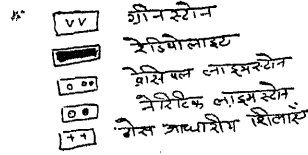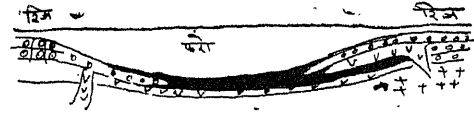
चित्र नं. 3

अभिनति के प्रारम्भिक अवस्था में अवसादों की विभिन्नता

अवसादन—अवसादन की अवस्था को दो भागों में विभाजित किया गया है (1) प्रीफ्लाइश अवस्था (2) फ्लाइश अवस्था। प्रीफ्लाइश अवस्था में अवसादन धीमी गति से होता है सर्वाधिक अवसादन फरों के अक्षों पर होता है। फरों के अवसादन प्रीफ्लाइश अवस्था में पेलेजिक होते हैं तथा गहरे जल में होते हैं। रिज पर अवसादन या तो नेरेटिक या पेलेजिक होता है।
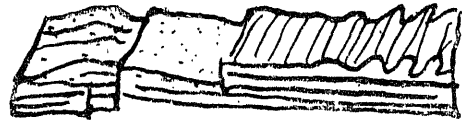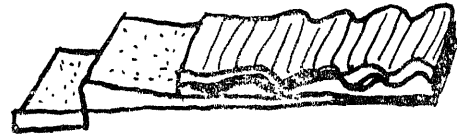
चित्र नं. 4

बलन की अवस्थायें

अवसाद की अवस्था संस्तर-संस्तर पर बदलती रहती है। प्रीफ्लाइश अवस्था में रेडियोलाइट तथा लाइमस्टोन प्रधान है। फ्लाइश अवस्था में टेरेजिनस अवसादन लेता है जिसमें अनेक पदार्थ मिले रहते हैं। इसमें प्राय: ग्रेवेक शिला पायी जाती है। इनमें क्रमिक तथा तिर्यक संस्तर के गुण भी पाये जाते हैं। सैंडस्टोन तथा क्ले (मिट्टी) का सम्मिलित संस्तर भी इनमें पाया जाता है। यह अवस्था टेक्टानिज्म के पहले पाया जाता है।

चित्र नं० 5—थस्ट की प्रक्रिया

कायांतरण—कायांतरण अभिनति का प्रधान अंग है। यह अधिक दाब तथा ताप अवस्था का द्योतक है। कायांतरण आन्तरिक भाग में तीव्र होता है। यह क्रिया आग्नेय क्रियाओं से भी सम्बन्धित होता है।

आग्नेय क्रियायें—अभिनति में आग्नेय क्रियायों के निम्न स्तर पाये गये हैं।

(1) **आग्नेय क्रम—बसाल्टिक क्रम**—इसमें ओफियोलाइट तथा ग्रीन स्टोन शिलाएँ पायी जाती हैं.।

(2) **सिन ओरोजेनिक**—इसमें ग्रेनेटिक शिलाएँ पायी जाती हैं।

(3) **पोस्ट ओरोजेनिक**—इस अवस्था में एण्डेसिटिक, ग्रेनेटिक, ग्रेनोडायोराइट तथा बसाल्ट शिलाएँ पायी जाती हैं।

आग्नेय क्रियाएँ अभिनति के आन्तरिक भाग में अधिक पायी जाती हैं।
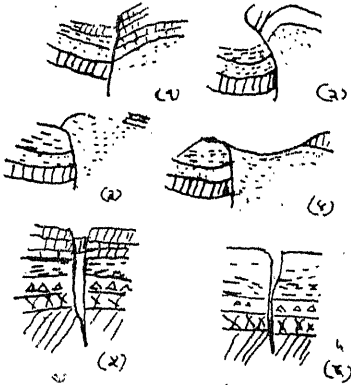
चित्र नं० 6—भ्रंश वलन की अवस्थाएँ

टेक्टानिक क्रिया—इनमें दो प्रकार की टेक्टानिक क्रियाएँ पायी जाती हैं (1) अल्पाइनोटाइप—इसमें नैप तथा सँकरे वलन की रचनाएँ पायी जाती हैं। (2) जर्मनोटाइप—इसमें भ्रंश, भ्रंशवलन तथा बड़े भ्रंश पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त वलन निम्न रूप में पाया जाता है। (1) अभिनति वलन (2) आधार वलन (3) ऊपर के वलन। भ्रंश तथा टेंशन की गतियाँ आधार पर पायी जाती हैं। अंतिम अवस्था में बलन विशाल आकार के होते हैं। आन्तरिक क्षेत्र की सर्वाधिक प्रधान रचना नैप है। इसमें एक के ऊपर दूसरा ब्लाक आ जाता है। नीचे का ब्लाक स्वस्थानिक कहा जाता है। ब्लाक के हटने की मात्रा थ्रस्ट के बल पर निर्भर करता है। आधारीय नैप प्राय: आन्तरिक रिज या हिन्टरलैण्ड से जुड़े रहते हैं। ओरोजेनेसिस की क्रिया 3 अवस्थाओं में पायी जाती हैं।

(1) अभिनति अवस्था में (2) अभिनति के बाद की अवस्था में तथा (3) सम्पूर्ण क्रिया के बाद की अवस्था में।

अभिनति अवस्था में परिवर्तन उत्पन्न बलों पर निर्भर करता है। गुरुत्वाकर्षण बल से ब्लाक के ब्लाक टूट जाया करते हैं।

विश्व के कुछ प्रधानभू अभिनति निम्न है—

(1) टेथीस – हिमालय तथा आल्पस पर्वत श्रेणियों के उद्गम स्थान।

(2) सुंडा आइलैण्ड—यूरोप में हर्सिनियन समय की अभिनतियाँ—

(1) रेनोर्गसियन जोन

(2) सेक्सो थूसिजियन जोन

(3) मल्डानुवियन जोन

(4) दक्षिण क्षेत्र

केलेडोनियन क्षेत्र में स्केंडेनेविया तथा फिनलैण्ड के उद्गम क्षेत्र।

बृहस्पति की ओर

अमरीका द्वारा छोड़ा गया अन्तरिक्ष यान-पायनियर-10 पिछले 4 दिसम्बर को वृहस्पति ग्रह के विकिरण पट्टी में से होकर गुजरा और उसने अनेक महत्वपूर्ण आंकड़े इकट्ठे किये। इन आंकड़ों की सहायता से वैज्ञानिकों को बृहस्पति के चुम्बकीय क्षेत्र और उसके वायु-मण्डल के बारे में सूचना प्राप्त होगी। आज से लगभग 400 वर्षों से पूर्व गैलीलियो व कोपरनिकस ने अन्तरिक्ष के बारे में शोध आरम्भ करने का रास्ता दिखाया था। संयोग ही है कि इस वर्ष हम कोपरनिकस वर्ष के नाम से मना रहे हैं। पायनियर-10 द्वारा इस ग्रह का चित्र प्राप्त करना 4-5 शती के बाद पुनः एक महान घटना के रूप में हमें सदैव याद रहेगा।

बृहस्पति एक गैसीय ग्रह है जिसका निर्माण ठीक उसी प्रकार हुआ था जिस प्रकार हमारी पृथ्वी का हुआ था। कॉर्नेल यूनिवर्सिटी के खगोल शास्त्री डा० कार्ल सगन का कहना है कि वृहस्पति का जो रसायन-शास्त्र है उसके अनुसार इस ग्रह के ठंडे, गहरे व घनाच्छादित तल के नीचे गरम पानी के जो महासागर हैं उनमें एमीनो एसिड का निर्माण होना चाहिए और हो सकता है इन्हीं एमीनो एसिडों के कारण बृहस्पति ग्रह के कुछ भाग का रंग भूरा लाल है। यद्यपि इस ग्रह पर अमोनिया तथा मेथेन जैसी विषैली गैसों का बाहुल्य है फिर भी भू रसायनज्ञ कीथ केनेवोल्डेन के अनुसार किसी रूप में जीवन को विद्यमान होने की संभावना पाई जाती है। बृहस्पति के वायुमण्डल का दाब पृथ्वी के वायुमण्डलीय दाब का कई गुना है पर इससे जीवन की संभावना में कमी नहीं आती। पृथ्वी पर भी महासागरों के नीचे जीवन पाया जाता है यद्यपि दाब अत्यधिक होता है। वृहस्पति पर दिखाई पड़ने वाले लाल धब्बे के बारे में पायनियर-10 द्वारा प्राप्त चित्रों के आधार पर यह अटकल लगाया जा रहा है कि यह बड़े-बड़े नारंगी रंग के बादलों की छाया है।

वृहस्पति ग्रह की संहति अन्य सभी ग्रहों के संयुक्त संहति का दुगुना है। इसी से अन्दाजा लगाया जा सकता है कि ग्रह कितना बड़ा है। वृहस्पति के चारों ओर एक विशाल पट्टी है जिसके द्वारा उत्सर्जित विकिरण पृथ्वी को घेरने वाले वान अलेन पट्टी द्वारा उत्सर्जित विकिरण का एक लाख गुना है। यह विकिरण इतना अधिक है कि वैज्ञानिकों को डर था कि पायनियर-10 इसका सहन न कर पायेगा। इससे बच कर निकल जाने पर वैज्ञानिकों को अत्यधिक प्रसन्नता हुई है। वैसे डर अब भी बना है कि यान में दोष आए होंगे। इस दोष का पता 1979 तक नहीं चल पायेगा। उस समय तक इस यान से आंकड़े प्राप्त होते रहेंगे और तत्पश्चात् इसे अन्तर्ग्रहीय अन्तरिक्ष में यात्रा करनी है। यह यान 21 महीने पूर्व अमरीकी वैज्ञानिकों के अथक परिश्रम से उनके वैज्ञानिक व तकनीकी योग्यता के कारण अन्तरिक्ष में छोड़ा गया था। यह यान 82000 मील प्रति घण्टा की चाल से चल रहा है जो अब तक मनुष्य द्वारा बनाये गये यानों में सब से अधिक है। वृहस्पति तक पहुँचने के लिये 6200 लाख मील की यात्रा करनी थी। जब यह यान इस ग्रह के निकटतम था तब इसकी दूरी 81000 मील थी। इतनी दूरी से इतने स्पष्ट चित्र प्राप्त कर लेना आज के वैज्ञानिकों की बहुत बड़ी सफलता समझी जानी चाहिये। अभी इस यान को 6 वर्ष तक इस ग्रह से चित्र भेजने हैं तत्पश्चात् यह इस ग्रह के गुरुत्व का उपयोग करके अपने को आगे ग्रहों में ले जायगा। शनि, यूरेनस, नेप्चून तथा प्लूटो ग्रहों से होकर यह वाह्य अन्तरिक्ष में पहुँच जायगा। वाह्य-तम ग्रह प्लूटो में यह 1937 में पहुँचेगा और तत्पश्चात वाह्य अन्तरिक्ष की 80 लाख वर्ष की यात्रा आरम्भ होगी जब यह टाउरस के लिये प्रस्थान करेगा। यदि ऐसा हो सका तो यह पहला मानव निर्मित यान होगा जो सौर-मण्डल को छोड़ कर वाह्य अन्तरिक्ष में पहुँचेगा। अब से 5 वर्षों बाद एक अन्य यान मैरिनर-जुपिटर-सैटर्न क्राफ्ट भेजा जायगा जिससे विशाल ग्रह बृहस्पति के बारे में अन्य सूचनाएँ प्राप्त हो सकेंगी। ● ❧

एक्स-किरणें

शुकदेव प्रसाद

बात सन् 1895 की है। वुर्त्संबुर्ग विश्वविद्यालय में चिकित्सा वैज्ञानिकों और भौतिकीविदों की एक सभा हुई। इस सभा के समक्ष आदमी के एक हाथ का चित्र प्रस्तुत किया गया जिसमें केवल हड्डियाँ दिखायी पड़ती थीं। चित्र प्रस्तुत करने वाले ने बताया कि यह चित्र स्वयं उसी के हाथ का है जब कि उसका हाथ सही सलामत था। सभी वैज्ञानिक आश्चर्यचकित हो गये। केवल हड्डियों का चित्र कैसे लिया गया? चित्र प्रस्तुत करने वाले वैज्ञानिक ने उनकी जिज्ञासा का समाधान यों किया कि वह चित्र किसी साधारण कैमरे द्वारा नहीं लिया गया था। उस चित्र को उन्होंने एक विशेष प्रकार की ट्यूब द्वारा खींचा था। इस ट्यूब से एक विशेष प्रकार की और अनेक पदार्थों को भेदकर उसके भीतर प्रवेश कर सकने वाली किरणें निकलती थीं जिन्हें एक्स-किरणों की संज्ञा दी गयी।

एक्स-किरणों की खोज करने वाले वह वैज्ञानिक थे 'वुर्त्संबुर्ग विश्वविद्यालय' के भौतिक संस्थान के तत्कालीन निदेशक, 50 वर्षीय प्रोफेसर विल्हेल्म कोनराड रुण्टगेन। जर्मन वैज्ञानिक प्रो० रुण्टगेन ने कैथोड नली से कार्य करते देखा कि नली के पास काले कपड़े से ढकी हुई फोटोग्राफिक प्लेट लाने पर वह प्रभावित हो जाती है। जब उन्होंने कैथोड नली को काले कपड़े से ढक कर उससे कुछ दूरी पर बेरियम प्लेटीनोसाइनाइड का एक प्रतिदीप्तिशील पर्दा रखा, तो वह चमकने लगा। रुण्टगेन ने प्रतिदीप्ति का कारण कैथोड नलो से निकलने वाली अज्ञात किरणें बताया। बार-बार प्रयोग दुहराने के पश्चात्, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि जब कैथोड किरणें किसी सुदृढ़ वस्तु से टकराती हैं तो उनके संघात से ऐसी किरणें उत्पन्न होती हैं, जिनमें ठोस पदार्थों के आर-पार निकल जाने की अद्भुत क्षमता होती है। इनकी प्रकृति अज्ञात होने के कारण रुण्टगेन ने इनका नाम एक्स-किरणें रखा। इन्हीं एक्स किरणों की खोज के लिए प्रो० रुण्टगेन को 1896 में रायल सोसायटी ने रुमफोर्ड पदक प्रदान कर सम्मानित किया और फिर 1901 में उन्हें नोबल-पुरस्कार मिला।

एक्स-किरणों के उपयोग एक्स किरणों के आविष्कार के बाद ही कुछ समय से इसका उपयोग व्यवहारिक विज्ञान के क्षेत्रों में होने लगा था। चिकित्सा-के क्षेत्र में एक्स-किरणों के व्यवहारिक उपयोग ने एक भारी क्रांति उपस्थित कर दी है। ये एक्स-किरणें चिकित्सा-विज्ञान के लिए वरदान सिद्ध हुईं। इसके आविष्कर्त्ता ने स्वयं अपने जीवन-काल में देखा कि एक्स-किरणों के आविष्कार का उपयोग संसार में होने लगा है और विज्ञान के विविध क्षेत्रों में इनका कितना महत्व है। एक्स-किरणों के कुछ प्रमुख उपयोग नीचे दिये जा रहे हैं।

एक्स-किरण विकिरण विज्ञान (रेडियोलाजी —इसके अंतर्गत मनुष्य के अथवा अन्य प्राणियों के रोगों के निदान तथा चिकित्सा करने के लिए हड्डियों तथा मांस-पिंडों में एक्स-किरणों के अवशोषण का उपयोग किया जाता है। एक्स-किरणों द्वारा कुछ रोगों की चिकित्सा भी की जाती है। X—किरणों के आघात से रुग्न कोशिकाएँ (Diseased Cells) नष्ट हो जाती हैं और साथ ही रोगी का रोग भी नष्ट हो जाता है। आजकल क्षयरोग, संधिकाको, काली खाँसी, पीला बुखार गलग्रन्थि पीड़ा आदि जैसे भयानक रोगों का भी उपयोग X—किरण द्वारा सम्भव हो गया। कैंसर आदि रोगों

के इलाज में X—किरण डालने से बहुत लाभ पहुँचता है। यह पाया गया है कि X—किरणों के अत्यधिक प्रयोग से स्वस्थ सेल भी नष्ट हो जाते हैं।

शल्य चिकित्सा—एक्स किरणों की सहायता से वस्तु के छाया-चित्रों का परीक्षण किया जाता है। इसके लिए X – किरणें परीक्षण वस्तु पर डाली जाती हैं और वस्तु के पार निकल जाने के पश्चात् वह किरणावली फोटोप्लेट पर उस वस्तु का छाया-चित्र उत्पन्न करती है। X—किरणों द्वारा इस प्रकार प्राप्त चित्रों को रेडियोग्राफ कहते हैं। इसकी सहायता से वस्तु की आंतरिक अवस्था तथा उसकी किसी प्रकार की भीतरी असाधारणता का ज्ञान हो जाता है। इन चित्रों की सहायता से ज्ञात हो जाता है कि शरीर के किस स्थान पर हड्डी टूट गयी है अथवा किसी स्थान पर वाह्य पदार्थ जैसे बन्दूक की गोली, लोहे की सूई आदि घुसी है। X—किरण द्वारा फोटोप्लेट पर छाया-चित्र लेकर उसका सूक्ष्म अवलोकन करने के वाद रोग का उपचार करते हैं।

औद्योगिक निदान—अपारदर्शी वस्तुओं के आंतरिक छिद्र, असमांगता इत्यादि त्रुटियों का परीक्षण करने में एक्स किरण लेखी प्रविधियाँ एक्स-किरण के भेददर्शी अवशोषण पर निर्भर होती हैं। कारखानों में इस प्रकार की त्रुटियों का निदान आवश्यक है। पुल, गाटर आदि के अन्दर खोखले स्थान दरार आदि का जिनका बाहर से देखने पर पता नहीं चलता, कठोर एक्स-किरणों की सहायता से पता लगाया जाता है। धातु के ढाँचे की दृढ़ता का भी पता लगा लेते हैं। इस प्रकार के अनुसंधानों में एक विशेषता यह भी है कि जिस खोल की त्रुटियाँ देखी जाती हैं, उनमें कोई हानि अथवा टूट-फूट नहीं होती।

अपराध विज्ञान—एक्स किरणों की सहायता से शरीर के अन्दर छिपी वस्तुओं जैसे सोना आदि मूल्यवान पदार्थ का पता लगाया जा सकता है। कस्टम अधिकारी इन्हीं किरणों की सहायता से बक्सों में अच्छी तरह छिपाए हुए जेवर आदि सामान का पता लगाते हैं। एक्स-किरणों की सहायता से नकली व असली मूल्यवान पदार्थों की जाँच की जाती है।

एक्स किरण वर्णक्रम-दर्शिकी—यह वर्णक्रम दर्शिकी की एक नयी शाखा है, जिसका उपयोग रासायनिक तत्वों का अभिज्ञान करने में, उर्जा संतलों का ज्ञान प्राप्त करने में और परमाणु रचना ज्ञात करने में किया जाता है। इन किरणों के प्रयोग से रवों का संघटन ज्ञात किया जाता है। उदाहरणार्थ सोडियम क्लोराइड के रवे में सोडियम और क्लोरीन के परमाणु किस प्रकार व्यवस्थित हैं अथवा उनमें कितनी परस्पर दूरियाँ हैं, आदि तथ्यों की खोज की जा सकती है।

एक्स किरणों से हानियाँ—एक्स-किरणें इतने उपयोगी होने के साथ हमारे लिए हानिकारक भी हैं। रोगों की चिकित्सा के समय शरीर पर X—किरणों के आघात से रुग्न कोशिकाओं के अतिरिक्त स्वस्थ कोशिकाएँ भी मर जाती हैं। अभी तक कोई ऐसी विधि नहीं ज्ञात हो पायी है जिससे कि X—किरणों का प्रभाव केवल रुग्न कोशिकाओं पर ही पड़े अतः अधिक आघात के कारण लाभ के स्थान पर हानि भी हो जाती है। डा० मूलर ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि एक्स-किरणों के प्रभाव से जीव-जन्तुओं में उत्परिवर्तन सम्भव है। उन्होंने यह भी बताया कि यदि एक्स-किरण की मात्रा अधिक होगी तो उत्परिवर्तन की दर भी बढ़ जायेगी, बहुत अधिक मात्रा से जीव की मृत्यु भी हो सकती है। इस कार्य के लिए उन्हें 1946 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

एक्स किरणों या अंतरिक्ष किरणों का प्रभाव उन कोशिकाओं पर अधिक पड़ता है जो विभाजन की स्थिति में रहती हैं और इसीलिए मानव भी विकिरण की अधिक मात्रा सहन नहीं कर सकता। यही कारण है कि द्वितीय महायुद्ध में जापान के प्रमुख नगर हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम गिराये जाने से हजारों मनुष्य आयनकारी विकिरणों के शिकार हो गए। आज भी उन लोगों की संतानों में उत्परिवर्तन के घातक परिणाम दिखायी देते हैं। एक्स-किरण की

[शेष पृष्ठ 12 पर]

स्फूर्ति के प्याले

पृथ्वी पाल पाण्डेय

रीता छात्रों पर लाठी चार्ज का समाचार लाकर अपनी रिपोर्टिंग टेबल पर बैठ गई। थकान से चूर-चूर सोचती रही, लिखती रही, किन्तु घटनायें मस्तिष्क में आती एवं निकल जाती, उन्हें क्रम बद्ध रूप से प्रस्तुत करना कठिन हो गया। थक, हार कर आखिर वह उठ पड़ी, कैन्टीन में कुछ अन्य सहयोगियों के साथ चाय पी, कुछ सामयिक विषयों पर चर्चा हुई, बस ताजा होते देर न लगी, लौटी और मिनटों में रिपोर्ट पूरी करके प्रकाशनार्थ दे दी। यह कहानी केवल रीता की नहीं अपितु मानसिक कार्य करने वाले हर प्राणी की आप बीती है। आप कितनी भी मानसिक अथवा शारीरिक थकान अनुभव करते हों, जाड़ा, गर्मी अथवा वर्षा कोई भी ऋतु हो, बस एक प्याले में सारी थकान दूर हो जाती है। चाय आधुनिक जीवन का तो एक महत्वपूर्ण अंग बन कर रह गई है। वास्तव में चाय पूरे विश्व का एक आदर्श पेय है। चाहे उच्च वर्गीय कोई पार्टी हो अथवा श्रमिकों का कोई उत्सव, इसके बगैर सभी कुछ अधूरा समझा जाता है।

चाय की उत्पत्ति

चाय की उत्पत्ति के बारे में इतनी अधिक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं कि कोई भी व्यक्ति इसके बारे में कट्टरपंथी नहीं हो सकता। जो भी हो, अधिकांश वैज्ञानिक इस बात पर सहमत हैं कि इसका मूल स्थान चीन है। इसके गुण सबसे पहले वहीं प्रकाश में आये। चीनी विद्वान फाहियान ने चाय के बारे में लिखा था—"चाय व्यक्ति को संयमित करती है, मस्तिष्क को समन्वित करती है, आलस्य दूर करती है, थकान से मुक्ति दिलाती है, विचार जागृत करती है, शरीर को ताजा रखती है और ज्ञान शक्ति को प्रखर बनाती है।" हम देखते हैं कि यह कथन आज अक्षरतः सत्य है। फाहियान के अभिलेखों से यह भी प्रकट होता है कि 1737 ई० पू० में चीन में चाय का प्रयोग कुछ लोगों के चिकित्सा हेतु औषधि के रूप में किया जाता था। चीनी भाषा में इस पेय को "चा" कहते हैं।

चाय की उत्पत्ति के बारे में कई किंवदन्तियाँ मशहूर हैं। एक लोक कथा 500 ई० पू० बौद्ध धर्म के अनुयायी दारुम नामक व्यक्ति के बारे में है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि वह गहरे आध्यात्मिक ध्यान में था। तथा चिन्तन पूरा न होने तक जागते रहने की प्रतिज्ञा कर रखी थी। किन्तु ऐसा करने में असफल रहा। तथा शीघ्र ही झपकी लेने लगा। वह अपनी पलकों पर नियंत्रण रख सकने की असमर्थता के लिए बहुत लज्जित हुआ और गुस्से में उन्हें उखाड़ कर फेंक दिया। उसी क्षण दो पौधों की उत्पत्ति हुई जिसकी पत्तियों से उसकी निद्रा समाप्त हो गई। इस किंवदन्ती का दूसरा रूप यह भी है कि दारुम ने पत्तियाँ खा ली तथा उसे फिर कभी नींद नहीं आई।

प्रारंभिक उपयोग

पश्चिमी देश के निवासी काफी समय में चाय के आदी बने। जब ब्रिटेन में इसका प्रचलन पहले पहल हुआ तो अंग्रेज इसका प्रयोग अनेक रूपों में करते थे। कुछ व्यक्ति उबाली चाय को रोटी पर फैलाकर खाते थे। कुछ इसे फेंटे हुए अंडे में मिला देते थे जबकि दूसरे विरंजित पानी फेंक कर इसे सब्जी के रूप में प्रयोग करते थे।

प्रारंभ में इसे इंगलैण्ड में केवल सामन्त वर्ग के ही

लोग प्रयोग करते थे। सन् 1696 में इंगलैण्ड में लगभग आधा किलो चाय के लिए दस पौण्ड मूल्य देना पड़ता था। अठारहवीं शताब्दी आते-आते लोग चाय के आदी हो गए। इंगलैण्ड का इतिहास तथा साहित्य इस बात का साक्षी है कि विद्वान व्यक्ति तथा साहित्यकार पूरे गैलन भर चाय पी जाते थे। यहाँ तक कि अठारहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध कोशकार तथा लेखक डा० जानसन ने स्वयं को 'कठोर तथा बेशर्म चाय पीने वाला' कहा है।

भारत में चाय की पत्तियाँ सर्वप्रथम अठारहवीं शताब्दी में चीन से आयीं। तब इसे मुख्यतः उद्यानों की शोभा समझा जाता था। अंग्रेजों को अपने बगीचों में चाय लगाने का वड़ा शौक था। चीन से इतनी अधिक चाय मँगाई जाती थी कि लार्ड विलियम बेन्टिक को विवश होकर भारत में भारतीय जाति की चाय उगाने की संभावनाओं का पता लगाने के लिए एक समिति बनानी पड़ी। भारतीय चाय उपयुक्त पाई गई किन्तु किसी कारण से इस समिति ने चीन से चाय आयात करने की ही संस्तुति की। इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम आसाम में जंगली रूप से उगी चाय का पता सन् 1823 में लगा। प्रारंभ में भारतीय चाय की उपेक्षा की गई किन्तु आज देश से काफी मात्रा में चाय का निर्यात किया जा रहा है।

आधुनिक अन्वेषकों ने, जिन्होंने चाय के प्रभावों का अध्ययन किया है, यह निष्कर्ष निकाला है कि औसत मात्रा में चाय पीने से हानि नहीं होती है, अपितु मानव शरीर की भौतिक दशा तथा मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि मनुष्य को चाय के प्याले का हर जगह तथा हर समय स्वागत करना पड़ता है।

एक अद्भुत औषधि

अभी हाल में रूस के बॉगोमोलेट फिजियोलॉजिकल संस्थान, कीव, में एक अद्भुत परीक्षण किया गया। कई चूहे विकिरण में रखे गये। जब इनमें ल्यूकीमिया विकसित हो गई तो इन्हें दो वर्गों में विभक्त कर दिया गया। एक वर्ग की कोई चिकित्सा नहीं की गई जब कि दूसरे को चाय निकाले एक कार्बनिक यौगिक-कैटेचिन का सान्द्रण नियमित रूप से दिया गया। यह देखा गया कि कैटेचिन पाने वाले चूहे ही जीवित रहे। इससे अब यह आशा बंध गई है कि निकट-भविष्य में कैटेचिन से ल्यूकीमिया की चिकित्सा के लिए कोई औषधि निकाली जा सकेगी। चाय में उद्दीपक पदार्थ कैफीन होता है। इसके अतिरिक्त थियोब्रोमीन तथा टैनीन भी पाये जाते है। ये पदार्थ शोध की प्रक्रिया धीमी कर देते हैं।

कैटेचिन के बारे में मास्को के जीव रसायन संस्थान में अनुसंधान किया गया जिससे यह बात प्रकट हुई कि रासायनिक दृष्टि से यह पदार्थ विटामिन-पी सदृश होते हैं। यदि कैटेचिन विटामिन-सी के साथ दिया जाय तो इसका दूरगामी प्रभाव पड़ता है। यह सौभाग्य की बात है कि चाय में विटामिन-सी भी होता है। इसलिए यह काफी प्रभावकारी है।

हरी चाय का प्रयोग आमाशय के गम्भीर विकारों तथा केशिकाओं की जराजन्य भंगुता में सफलतापूर्वक किया जा सकता है। मूत्राशय, यकृत तथा वृक्क में पथरी रचना की रोकथाम के लिए यह श्रेष्ठ है। चाय त्वचा के कार्य को उद्दीप्त करती है और काफी पसीना निकाल कर छिद्रों को साफ़ कर देती है। इसमें पाये जाने वाले कुछ पदार्थ जैसे बिटामिन-बी$_2$, पी-तथा के-त्वचा को लचीला बना देते हैं। इसको अच्छा रंग प्रदान करते हैं, केशिका भित्तियों को मजबूत करते हैं और त्वचा के नीचे फुड़िया इत्यादि बनना रोक देते हैं।

चाय की पत्ती तैयार करने की विधि

साधारणतः प्रयोग की जाने वाली चाय की पत्ती फैक्ट्रियों में हरी पत्तियों द्वारा तैयार की जाती है। सबसे पहले हरी पत्तियाँ तोड़ कर मुर्झाने के लिए रख दी जाती हैं। जिससे इनका पानी सूख जाय तथा इनको आसानी से रोल किया जा सके। इसके बाद इन्हें किण्वित किया जाता है। किण्वन के लिए आधुनिक उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। चाय की महक तथा स्वाद उचित किण्वन पर ही निर्भर है।

वास्तव में चाय उद्योग भारत का एक बड़ा उद्योग है। देश द्वारा अर्जित कुल विदेशी मुद्रा का एक विशाल भाग इसी उद्योग द्वारा प्राप्त होता है। विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाले पदार्थों में इसका दूसरा स्थान है। चाय के गुणों तथा इसकी वर्तमान लोकप्रियता को देखते हुए कहा जा सकता है कि इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

पृथ्वी पाल पाण्डेय,
कृषि संचार केन्द्र,
गोविन्द ब० पंत कृषि विश्वविद्यालय,
पंतनगर (नैनीताल)

[पृष्ठ 9 का शेषांश]

थोड़ी मात्रा भी मृत्यु तो नहीं लेकिन साधारण हानियाँ (जैसे—त्वचा झुलसना, शरीर के बाल उड़ जाना) पहुँचा सकती है। हमारे शरीर की जनन कोशिकाएँ इन विकिरणों से जल्दी प्रभावित होती हैं और वे नष्ट हो जाती हैं फलस्वरूप मनुष्य में नपुंसकता आ जाती है। एक्स किरणों, अंतरिक्ष किरणों, गामा किरणों आदि जब किसी जीव के शरीर पर पड़ते हैं तो वह शरीर में विद्युत आवेशित कण (आयन) उत्पन्न कर देते हैं। कुछ आयनकारी विकिरण अत्यन्त प्रभावशाली होने के कारण शरीर में काफी गहराई तक पहुँच जाते हैं जिससे कुछ असमान्य पदार्थ जैसे, हाइड्रोज पराक्साइड, उत्पन्न हो जाते हैं। ये पदार्थ डी० एन० ए० अणु को प्रभावित कर उसकी रचना बदल देते हैं। इसके ऊपर लगे बेसों का क्रम बदल जाता है। इस प्रकार जीन के गुण भी बदल जाते हैं। कभी-कभी पहले जीन से पूर्णतः भिन्न नया जीन बन जाता है। बेसों के क्रम में इस प्रकार के परिवर्तन का परिणाम घातक भी होता है। इस प्रकार से उत्परिवर्तन यदि जनन कोशिकाओं में होता है तो वह एक वंश से दूसरे वंश में चला जाता है। जीन परिवर्तन के साथ कोशिकाओं के क्रोमोसोमों में टूट-फूट पैदा हो जाती है। टूट-फूट के कारण कोशिकाओं के विभाजन का सारा कार्यक्रम खंडित हो जाता है और कोशिकाएँ मृत्यु को प्राप्त होती हैं।

अतः एक्स-किरणों के इन घातक परिणामों को देखते हुए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि विशेष परिस्थितियों (जैसे शरीर के किसी अंग की हड्डी आदि टूट जाने पर) को छोड़कर एक्स-रे परीक्षण कभी भी न कराना चाहिए।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद—2

पपीता

नरेश चन्द्र 'पुष्प'

पपीता एक चिरपरिचित फल है। सभी भारतीय इसके मीठे स्वादिष्ट स्वाद और सुगन्ध से परिचित हैं। इसके अतिरिक्त इसके विभिन्न उपयोगों के कारण इसका विशेष महत्व है। इसमें पौष्टिक पदार्थ भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग विभिन्न प्रकार के उद्योगों में भी इसका उपयोग होता है।

लेकिन शायद आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि पपीता भारत का अर्थात् स्वदेशी फल नहीं है अपितु यह एक विदेशी फल है। यह वास्तव में दक्षिणी अमरीका का फल है। अमेरिका से यह क्रमशः पश्चिमी द्वीप में तथा अन्य देशों में भी पहुँच गया। भारत में यह पुर्तगालियों द्वारा सोलहवीं शताब्दी में लाया गया था। धीरे-धीरे यह सारे भारत में फैल गया। सन् 1656 में यह भारत से चीन भी ले जाया गया और वहाँ पर भी पपीता होने लगा।

पपीते में विशेष प्रकार की अच्छी सुगंध होती है और इसका स्वाद भी जायकेदार मीठा होता है। इसमें प्रोटीन, खनिज, कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं जिसके कारण यह पौष्टिक दृष्टि से भी अति उपयोगी है। पपीते में पाये जाने वाले महत्वपूर्ण रासायनिक पौष्टिक पदार्थ निम्न हैं—

सारणी—1

पके पपीते की रासायनिक संरचना			
आर्द्रता	=89·6 प्र०श०	फास्फोरस	= 0·01 ”
कार्बोहाइड्रेट	= ९·6 प्र०श०	लोहा	= 0·04 ”
प्रोटीन	= 0·5 ”	विटामिन सी	= अधिक
ईथर एक्सट्रेक्स	= 0·9 ”	विटामिन ए, बी	= कम
खनिज लवण	0·4 ”	केलारी	= एक
कैल्शियम	0·01 ”	चर्बी	= —

सारणी—2

कच्चे पपीते की रासायनिक संरचना		
प्रोटीन	=	0·20 प्रतिशत
कार्बोहाइड्रेट	=	0·10 प्रतिशत
चर्बी	=	लेशमात्र
केलारी	=	2
विटामिन	=	—

पपीते में मौलिक अम्ल, साइट्रिक अम्ल, टारटारिक अम्ल तथा उसके लवण भी पाये जाते हैं।

पपीता अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी फल है। इसमें से निकलने वाले दूध में लगभग 20 प्रतिशत पपेन होता है। पपीते के कच्चे फलों में चीरा लगाकर दूध एकत्र कर लेते हैं। दूध को सुखाकर एक प्रतिशत फार्मेल्डिहाइड के घोल में इसे रखते हैं जिससे पपेन सुरक्षित रहता है। पपेन एक सुशक्त प्रोटीन पाचक पदार्थ है। मांस पकाते समय लेशमात्र भी पपेन डाल देने से मांस तुरन्त पक जाता है। इसके अतिरिक्त पपेन को गर्म पानी में मिला कर कुल्ला करने से बढ़े हुए टांसिल शीघ्र ठीक हो जाते हैं। पपेन का उपयोग ऊनी सूती और वर्स्टेड कपड़ों को सिकुड़ने से बचाने के लिए किया जाता है। इससे चमड़े पर टैनिंग की जाती हैं। पपेन का उपयोग टूथपेस्ट बनाने और चमड़ी के दाग मिटाने की दवाइयों में किया जाता है।

पपीता अल्सर तथा डिफ्थीरिया जैसे रोगों के लिए भी लाभप्रद है। खूनी बवासीर तथा तिल्ली में पपीते का रस अत्यन्त उपयोगी है। चर्मरोगों की चिकित्सा में भी पपीता लाभकारी है। पेट के विकारों—जैसे अजीर्ण, भूख न लगना, मंदाग्नि, आदि में पपीता लाभकारी है। पुराने कब्ज तथा बवासीर में भी यह लाभकारी

है। पपीते की पत्तियों की पुल्टिस बनाकर लगाने से वातिक शूल दूर होता है। फाइलेरिया की सूजन उतरती है। इसकी छाल रस्सी बटने के काम आती है। पका हुआ पपीता अत्यन्त स्वादिष्ट तथा मीठा और सुगंधित होता है। इसको खाने से पाचन क्रिया ठीक रहती है। फलों से तरह-तरह से आचार रखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त पपीता का उपयोग सुमधुर पेय तथा फलेक्स बनाने में भी किया जाता है।

भारत में पपीते की तीन मुख्य प्रजातियाँ पाई जाती हैं। पपीते को अंग्रेजी में पपाया तथा वानस्पतिक वैज्ञानिक नाम केरिया पपाया है।

पपीता सारे भारत में पाया जाता है। इसे आप भी अपनी गृहवाटिका में बड़ी सरलता से लगा सकते हैं। पपीते का पेड़ बड़ी तेजी के साथ वृद्धि करता है। साधारणतया यह एक वर्ष में ही फल धारण कर लेता है! कभी-कभी इसके पेड़ में इतने अधिक फल लग जाते हैं कि पेड़ के तने को बीच से टूट जाने का डर पैदा हो जाता है। ऐसी स्थिति में कुछ कच्चे फल तोड़ कर फेंक देना चाहिए। इससे पेड़ के टूट जाने का भय नहीं रहता और बाकी फलों को अच्छी तरह बढ़ने का अवसर मिलता है। भारत में पपीते की मुख्य खेती बिहार में होती है और इसके अतिरिक्त यह महाराष्ट्र, असम, गुजरात, केरल तथा पश्चिमी बंगाल में भी अधिक पैदा किया जाता है।

नरेश चन्द्र 'पुष्प'
न्यु हैदराबाद
केदार नाथ मार्ग, लखनऊ

क्या आप जानते हैं

- आपके आमाशय में लगभग 35,000,000 पाचक ग्रंथियाँ होती हैं।
- 24 घण्टों में आमाशय $1\frac{1}{2}-2$ लिटर पाचक रस बनाता है जिसका अधिकांश नमक का तेजाब होता है।
- शरीर के अनुपात में कुत्ते का आमाशय मनुष्य के आमाशय से बड़ा होता है।
- परमाणु घड़ी में एक वर्ष में सिर्फ तीन सेकण्ड का अन्तर पड़ता है।
- बृहस्पति ग्रह की संहति अन्य सभी ग्रहों के संयुक्त संहति का दुगना है।
- बृहस्पति ग्रह की पृथ्वी से दूरी 6200 लाख मील है।
- अमरीका द्वारा प्रक्षेपित पायनियर-10 जो कि 82000 मील प्रति घण्टा की चाल से चल रहा है 21 महीने बाद बृहस्पति से निकटतम 81000 मील दूर था।
- चन्द्रमा का गुरुत्वाकर्षण पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का केवल $\frac{1}{6}$ है।
- पृथ्वी के चारों ओर एक चन्द्रमा परिक्रमा करता है जबकि बृहस्पति के चारों ओर नौ चन्द्रमा परिक्रमा करते हैं।
- लन्दन में ऐसी अर्ध-स्वचालित मशीन बनाई गई है जो छपाई की गलतियों को बड़ी सरलता से हटा कर उसके स्थान पर सही जानकारी विना बाधा के छापी जा सकती है।
- अब जानवरों में भी शीश प्रतिरोपण संभव है।
- शीघ्र ही प्राकृतिक हृदय के स्थान पर कृत्रिम हृदय लगाये जा सकेंगे!

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ और हमारे प्रति उनकी महत्वपूर्ण भूमिका

शुकदेव प्रसाद

आपने यह देखा होगा कि किसी की लम्बाई ढाई फीट है तो किसी की सात फीट से भी ज्यादा, कोई व्यक्ति आवश्यकता से अधिक मोटा है तो कोई बिल्कुल सींकिया पहलवान। यही नहीं आपने हिजड़ों को भी देखा होगा और किसी सुन्दरी सुकुमारी की मूंछें भी जरूर देखी होंगी। आइए! इस समस्या पर विचार किया जाय कि ऐसा क्यों है? घबराइयेगा नहीं यदि आपको बताया जाय कि इन विचित्र बातों का कारण शरीर में उपस्थित छोटी-छोटी नलिका विहीन ग्रन्थियाँ हैं जिनके कार्यों के विषय में आज से 60 वर्ष पूर्व कोई जानकारी नहीं थी। लेकिन अनुसंधानों के फलस्वरूप आज वैज्ञानिक एक निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं और इन ग्रन्थियों के विषय में काफी जानकारी हासिल कर चुके हैं।

हमारे शरीर में दो प्रकार की ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। ऐसी ग्रन्थियाँ जिनके द्रवों को ले जाने के लिए वाहिनियाँ पाई जाती हैं उन्हें वाहिनीमय ग्रन्थियाँ कहते हैं तथा जिन ग्रन्थियों के द्रवों को ले जाने के लिए वाहिनियाँ नहीं होती हैं उन्हें वाहिनीहीन या अन्तः-स्रावी ग्लैंड कहते है। इन ग्रन्थियों द्वारा स्रावित द्रव रक्त में मिलकर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचते हैं। इन द्रवों को हारमोन्स कहते हैं। ये हार्मोन हमारे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। ये हमारे शारीरिक विकास तथा वृद्धि, आन्तरिक तथा वाह्य क्रिया-कलाप और व्यवहार आदि पर संतुलन रखते हैं और इस प्रकार हमारे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को उपयुक्त अवस्था में रखते हैं। अतः उचित मात्रा में विभिन्न प्रकार के हार्मोनो का रुधिर में होना अत्यन्त आवश्यक है।
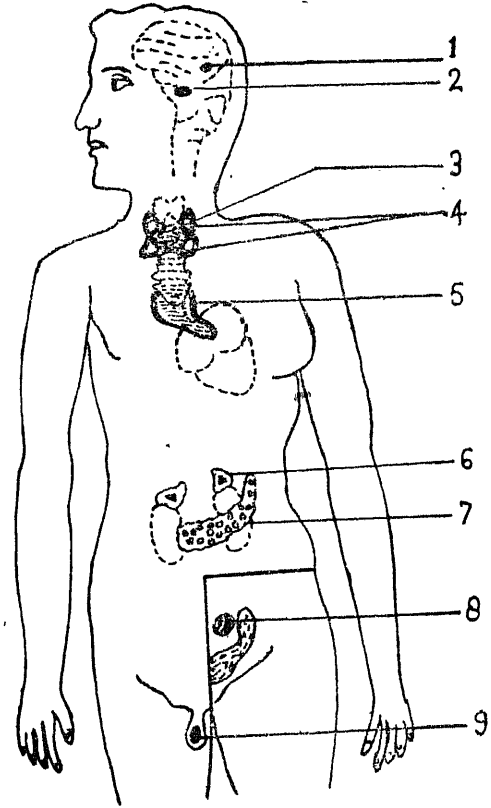
चित्र 1—मानव शरीर में अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की स्थिति

[संकेत—1.; पीनियल, 2. पिट्यूट्री, 3. थाइराइड, 4. पैराथाइराइड, 5. थाइमस, 6. ऐड्रीनल, 7. लैंगर हैन्सद्वीप (अग्न्याशय), 8. अंडाशय, 9. वृषण]

मानव के शरीर तथा उच्च पृष्ठवंशियों में इस प्रकार की ग्रन्थियाँ निम्नलिखित हैं। 1. थायरॉइड, 2. पैराथायरॉइड, 3. एड्रीनल, 4—पिट्यूइटरी, 5. अग्न्याशय (लैंगर हैन्स द्वीप), 6. जननग्रन्थि 7. थाइमस, 8—पिनियलबॉडी

थायरॉइड—इसमें दो भाग होते हैं तथा यह गले में कंठ के ठीक नीचे श्वास नली के दोनों ओर प्रत्येक भाग में स्थित होता है। दोनों हिस्से एक प्रकार के ऊतक से जुड़े होते हैं जिसे इस्थमस कहते हैं। इसके हार्मोन को ($C_{15}H_{11}O_4I_4N_4$) थायरॉक्सिन कहते हैं। यह एक एमीनो एसिड है जिसमें 65% आयोडीन होती है। यह शरीर की वृद्धि तथा विकास पर नियन्त्रण रखता है तथा हृदय गति को ठीक रखता है एवं कार्बोहाइड्रेटस का उचित रूप में उपयोग होने देता है। शरीर में ग्लूकोज़ की कमी होने पर दूसरे पदार्थों से भी ग्लूकोज बनाने में सहायता करता है। कैल्सियम की मात्रा को भी नियन्त्रण करता है इसीलिए इस दिशा में इसके अधिक सक्रिय हो जाने से हड्डियों से फास्फेट के साथ कैल्सियम का क्षय होने लगता है और कैल्सियम मलमूत्र के साथ बाहर जाने लगता है अन्त में हड्डियाँ पतली हो जाती हैं।

थायरॉइड की बृद्धि तथा क्रियाशीलता अन्य हार्मोन 'थायरोट्राफिक' (जो कि पिटयूटरी से स्रावित होता है) द्वारा नियन्त्रित होती है। थायराक्सिन हार्मोन की कमी और अधिकता दोनों का ही शरीर पर प्रभाव पड़ता है। इसकी कमी से उचित वृद्धि नहीं हो पाती है; मनुष्य बौने हो जाते हैं और 30 वर्ष की आयु में भी वे 4 या 5 वर्ष के बालक मालूम पड़ते हैं तथा हृदय की गति धीमी, शरीर में सुस्ती, मस्तिष्क की कमजोरी आदि रोग हो जाते हैं। इस प्रकार के रोगी मनुष्य को क्रिटिन कहते हैं। भोजन में आयोडीन की कमी से थायरॉइड ग्रन्थि स्वयं ही फूल कर भारी हो जाती है और गले में घेघे का रूप ले लेती है। हमारे प्रदेश के तराई इलाकों में पानी में आयोडीन की कमी के कारण यह रोग बहुत होता है। प्रौढ़ों में थायरॉइड के निष्क्रिय हो जाने से मिक्सीडीमा रोग हो जाता है। थायराक्सिन की आवश्यकता से अधिक मात्रा होने से उपापचयी क्रियाओं की गति तेज हो जाती है, हृदय की गति बढ़ जाती है, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आता है तथा आँखें बड़ी-बड़ी होकर बाहर निकल आती हैं। इस दशा को एक्सीफ्थैल्मिक-ग्वायटर कहते हैं।
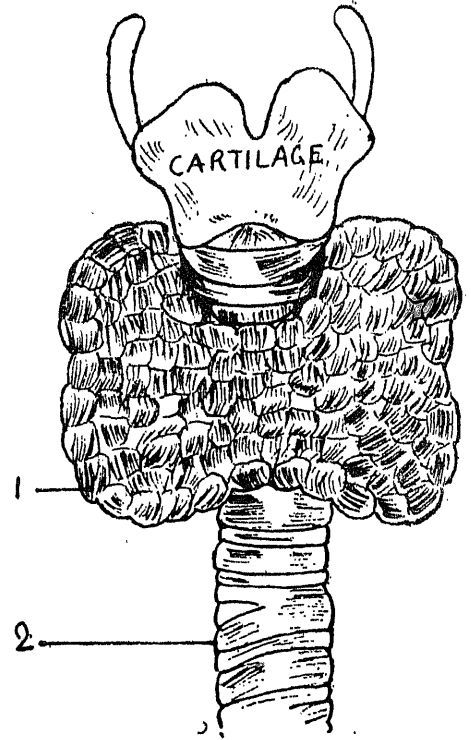
चित्र 2—मानव की थाइराइड ग्रन्थि (सामने से देखने पर)

संकेत 1—थाइराइड ग्रन्थि,

2—ट्रेकिया

पैराथायरॉइड—ये थायरॉइड ग्रन्थि की पिछली सतह पर स्थित होती हैं तथा संख्या में 4 होती हैं। इस ग्रन्थि के हारमोन को पैराथारमोन कहते हैं। यह हार्मोन रक्त में कैल्सियम तथा फास्फोरस की उपयुक्त मात्रा रखने में सहायक होता है। इसका मुख्य कार्य पेशियों को क्रियाशील रखना, हड्डियों की वृद्धि तथा दाँतों के बनने का नियमन करना है। इसकी कमी से खून में कैल्सियम की मात्रा घट जाती है तथा पेशियों का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इस रोग को टिटेनी कहते हैं। उचित मात्रा से अधिक हार्मोन के कारण Ca तथा P लवण हड्डियों से निकल कर मूत्र द्वारा

शरीर से बाहर निकल जाता है जिससे वे कोमल हो जाती हैं।

एड्रीनल या अधिवृक्क—इनको सुप्रारीनल ग्रन्थियाँ भी कहते हैं। ये वृक्कों के अगले भाग पर स्थित होती हैं। इसके बाहरी भाग को कॉर्टेक्स तथा भीतरी भाग को मैड्मूला कहते हैं। कॉर्टेक्स से 100 से अधिक यौगिक निकलते हैं। ये सब कार्टिकल हार्मोनस स्टीरायडस् हैं। जिसमें कॉर्टीसोन प्रमुख हैं। कार्टिकल हार्मोन्स का स्रवित होना ACTH (एड्रीनो कार्टिको ट्राफिक हार्मोन); जो कि पिट्यूटरी से निकलता है, द्वारा नियन्त्रित होता है। कार्टिकल हार्मोन का मुख्य कार्य वृक्क के क्रियायों पर नियन्त्रण है। ये हार्मोन पिट्यूटरी ग्रन्थि के पिछले पिंड से निकले हुए हार्मोनस के साथ शरीर के जल संतुलन का नियमन करते हैं। यौनभावनाओं पर संतुलन इन्हीं हार्मोनों के कारण होता है। यदि आवश्यकता से अधिक मात्रा में ये हार्मोन निःसृत होने लगें तो असमय में ही यौन विकास होने लगता है। तथा कभी-कभी लिंग (Sex) ही बदलने लगता है। कोर्टीसोम की कमी होने से त्वचा पीली पड़ जाती है। रुधिर दाब कम हो जाता है तथा इस रोग को 'एडीसन का रोग' कहते हैं। कार्टेक्स में फोड़े या घाव हो जाने से स्त्रियों में दाढ़ी और मूंछ आ जाती है।

एड्रीनल—ग्रन्थि के भीसरी भाग मैडयूला से ऐड्रीनेलीन या एपीनेफ्रीन हार्मोन बनता है। ये हार्मोन रुधिर वाहिनियों में रुधिर दाब का नियमन करते हैं। यह हार्मोन मनुष्य को खतरों का सामना करने के लिए तैयार करता है। डर या क्रोध में यह हार्मोन अधिक मात्रा में बनने लगता है जिससे हृदय की धड़कन तेज होने लगती है, रुधिर दाब बढ़ जाता है, श्वास लेने की गति तेज हो जाती है और तेजी से भागने या हमला करने के लिए एनर्जी काफी मात्रा में मिलती है।

पिट्यूइटरी—यह ग्रन्थि मस्तिष्क के ठीक नीचे स्थित होती है। इसमें कम से कम 13 प्रकार के
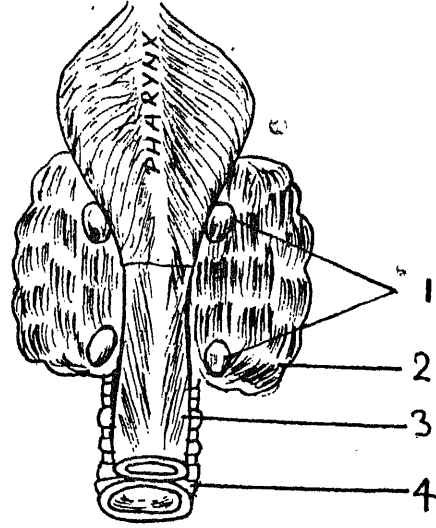
चित्र 3—मानव की पैराथाराइड

संकेत 1. पैराथाइराइड ग्रन्थियाँ (दाहिने ओर भी), 2. थाइराइड, 3. ईसोफेमस, 4. ट्रेईकिया

हार्मोन उत्पन्न होते हैं जो कि इस ग्रन्थि के तीन अलग-अलग भागों से निकलते हैं। यह शरीर की वृद्धि पर ही नहीं नियन्त्रण रखती बल्कि और सभी वाहिनीहीन ग्रन्थियों के कार्य की भी देख-रेख करती है। इस ग्रन्थि को 'मास्टर-ग्रन्थि' भी कहते हैं। यह तीन पिंडों से मिलकर बनी होती है।

(1) अगला पिंड—यह बहुत से ट्रापिक हार्मोन को स्रावित करता है जो कि अन्य अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव को उत्तेजित करते हैं।

(अ) थायरोट्रापिक हार्मोन (TTH)—थायरॉइड ग्रन्थि के हार्मोन के उत्पादन की दर को प्रभावित करता है।

(ब) गोनैडोट्रापिक हार्मोन (GTH)—वृषण और अण्डाशय में लिंग हार्मोन के उत्पादन को प्रभावित करता है।

(स) एड्रीनो कार्टिकोट्रोपिक हार्मोन (ACTH)—एड्रीनल कार्टिक्स के हार्मोन के स्राव को नियन्त्रित करता है।

(द) लैक्टोजेनिक हार्मोन—स्तनधारियों के स्तन में दूध उत्पन्न होने की क्रिया को नियन्त्रित रखता है।

(य) डाइबिटोजेनिक हार्मोन—यह हार्मोन रुधिर में शर्करा की सान्द्रता बढ़ाता है।

(2) मध्य पिंड—यह इन्टरमिडिन हार्मोन स्रावित करता है जिसका उच्च पृष्ठवंशियों में कोई महत्व नहीं है लेकिन निम्न पृष्ठवंशियों विशेषकर ठन्डे रक्त वाले जन्तुओं के त्वचा के रंग पर प्रभाव पड़ता है।

(3) पिछला पिंड—इससे भी कई हार्मोन निकलते हैं जिनमें आक्सीटॉक्सिन का विशेष महत्व है। यह गर्भाशय की पेशियों को उत्तेजित करता है।

पिट्यूइटरी ग्रन्थि के ठीक से न काम करने के कारण शरीर बहुत लम्बा या ठिगना हो जाता है। नवीनतम समाचारों से ज्ञात हुआ है कि यह ग्रन्थि बौनापन दूर करने में भी सहायक है। इस शताब्दी के प्रारम्भ में ही यह पता लग गया था कि पिट्यूटरी ग्रन्थि के अग्रभाग में शरीरवर्द्धक वस्तु उत्पादित होती है। शोधकर्ताओं के अनुसंधानों के फलस्वरूप नई सफलता हाथ लगी है। परीक्षणों से पता चला है कि उच्च श्रेणी के जानवरों से प्राप्त हार्मोन को यदि चूहे जैसे निम्न श्रेणी के जानवरों में प्रविष्ठ करा दिया जाय तो उनकी लम्बाई में थोड़ी वृद्धि हो जाती है। इसके विपरीत छोटे जानवरों का हार्मोन बड़े जानवरों में चढ़ाने से कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। डाक्टरों ने मृत मानवों की पिट्यूटरी ग्रन्थि से हार्मोन लेकर अल्प मात्रा में दो बामनों को चालीस दिन तक इंजेक्शन दिया। फलस्वरूप दोनों की लम्बाई में पौन इंच और एक इंच की क्रमशः वृद्धि हुई तथा साथ ही दोनों का वजन 11 पौंड बढ़ गया। इस दिशा में और भी शोध कार्य अभी हो रहे हैं।

अग्न्याशय (लैंगरहैन्स द्वीप)—अग्न्याशय में मिलने वाली वाहिनी हीन ग्रन्थियों को लैंगरहैन्स द्वीप कहते हैं जो कि कोशिकाओं के समूह हैं। ये कोशिकाएँ दो प्रकार की होती है। (अ) एल्फा कोशिकाएँ—जो कि ग्लूकोजन उत्पन्न करती है तथा (ब) बीटा कोशिकाएँ—जो कि इन्सुलिन उत्पन्न करती हैं। इन्सुलिन यकृत को उत्तेजित करता है जिससे वे कार्बोहाइड्रेटस को ग्लाइकोजन के रूप में एकत्रित करती है। यह हार्मोन ऊतकों की ग्लूकोज आक्सीकरण क्षमता को बढ़ाता है जिससे ऊर्जा उत्पन्न होती है। इन्सुलिन रक्त में शर्करा तल को कम करता है तथा ग्लूकोजन इसके विपरीत उसको बढ़ाता है।

$$\text{शर्करा} \underset{\text{ग्लूकोजन}}{\overset{\text{इन्सुलीन}}{\rightleftarrows}} \text{ग्लाइकोजेन}$$

अतः इन्सुलिन की कमी होने से रुधिर में शक्कर की मात्रा बढ़ जाती है जो पेशाब के साथ बाहर निकलने लगती है। इस रोग को मधुमेह कहते हैं। इस रोग के रोगी को चीनी तथा अधिक कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन नहीं करना चाहिए तथा रक्त में शक्कर की मात्रा कम करने के लिए इन्सुलिन का इंजेक्शन लगवाना चाहिए। रोगी को प्रतिदिन अधिक मात्रा में नींबू का प्रयोग करने से रोग का निवारण हो सकता है। (वैज्ञानिक फ्रेड डायस के मतानुसार—जिन्होंने स्वयं अपने ऊपर प्रयोग करके देखा है।)

जनन ग्रन्थियाँ—ये नर में वृषण तथा मादा में अण्डाशय कहलाते हैं। इन दोनों में भी हार्मोन बनते हैं तथा इनका बनना लगभग 16 वर्ष की आयु के बाद शुरू होता है। वृषण में बनने वाले हार्मोन को एन्डोजेन्स तथा अंडाशय में बनने वाले हार्मोन को एस्ट्रोजेन्स कहते हैं। लैंगिक परिपक्वता के समय नर तथा मादा को भिन्नित करने के लिए जो परिवर्तन होते हैं उन्हें द्वितीयक लैंगिक लक्षण कहते हैं। इनसे यौन सम्बन्धी अंगों का पूर्ण विकास हो जाता है। एंड्रोजेन्स के प्रभाव से मनुष्य की आवाज भारी हो जाती है तथा दाढ़ी और मूँछें निकलने लगती हैं तथा एस्ट्रोजेन्स समय पर अंडों के बनने तथा बाहर निकलने में, स्तनों में दूध बनने में और अन्य स्त्री सम्बन्धी अंगों के उचित परिवर्धन में सहायता देते हैं। तात्पर्य यह है कि इन्हीं हार्मोनों के कारण पुरुषों में मर्दानगी तथा औरतों में स्त्रियोचित गुण उत्पन्न होने

लगते हैं एवं यौन उत्तेजना तथा संयोग की कामना आदि बातें इन्हीं हार्मोनों के कारण होती हैं।

थाइमस—यह ग्रन्थि सभी पृष्ठवंशियों में पाई जाती है लेकिन विभिन्न जन्तुओं में इसको स्थिति में अन्तर पाया जाता है। इसके कार्य के बारे में अभी वैज्ञानिकों को ठीक से पता नहीं चला है। और आपस में मतभेद है। कुछ लोगों का मत है कि ये लिम्फोसाइटस का उत्पादन करती हैं। इतना अवश्यक ज्ञात है कि ये अस्थाई अंग हैं और उम्र के साथ ये छोटी होकर गायब हो जाती हैं इस आधार पर अनुमान किया जाता है कि इनके स्रावित द्रवों का जनदों के विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। पीनियल ग्रन्थि द्वारा स्रावित हार्मोन के बारे में भी अभी ठीक से पता नहीं है।

आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों से पता चला है कि ठंडे जल से स्नान करने पर शरीर के अन्दर हार्मोनों का बनना तथा निःसरण सम्यक एवं उचित रूप से होता है। शायद हमारे ऋषियों और मुनियों ने इस बात का पहले पता लगा लिया था तभी उन्होंने नित्य प्रातः उठ कर स्नान करने का नियम बना रखा था। अतः इस प्रक्रिया से हमारे हार्मोन रूपी देवदूत सक्रिय रहते हैं और शरीर स्वस्थ्य बना रहता है। उपरोक्त विवरणों से हम देखते हैं कि हार्मोन (शाब्दिक अर्थ उत्तेजक) वास्तव में एक रासायनिक राजदूत का कार्य करता है। चाहे आप कुछ भी कर रहे हों (खेलते, हँसते, जागते, सोते) आपका मस्तिष्क सदैव सक्रिय रहता है और यह उसकी जागरूकता का ही परिणाम है कि जब कभी किसी विशेष प्रकार के हार्मोन का स्रावित होना कम हो जाता है तो मस्तिष्क तुरंत पिट्यटरी ग्रन्थि को आदेश देता है कि वह उपयुक्त हार्मोन के उत्पादन के लिए समुचित वातावरण बनावें। फलस्वरूप पिट्यूटरी ग्रन्थि आवश्यक काररवाई कर देती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हार्मोन हमारे शरीरस्थ देवदूत हैं जो कि हमारे शरीर की तमाम क्रियाओं को नियन्त्रित करते हैं और शरीर को स्वस्थ बनाए रखते हैं।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

पूना स्थित राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला ने घोषणा की है कि उसके वैज्ञानिकों ने विटामिन बी—6 का संश्लेषण कर लिया है।

दशमलव घड़ी

अब्दुल गफ़ूर

एशिया 72 स्टार टाइम घड़ी में समय विभाजन पृथ्वी की परिक्रमा को 10 खंडों में विभाजित करके किया गया है। इस प्रकार पृथ्वी के गोलार्द्ध पर 36° देशान्तर (याम्योत्तर) = एक मेट्रिक घंटा एवं घड़ी के डायल पर 72° अंश पर एक मेट्रिक घंटे का समय होता है। घड़ी के पूर्ण डायल पर 5 निशान 5 मेट्रिक घंटे के हैं। इसके साथ ही अथवा स्वतन्त्र रूप से घड़ी के मध्य एक स्टार (सितारा) है। जिसके 5 कोण (किरनें) प्रत्येक 72° अंश पर मेट्रिक घंटे या दशमलव घंटे का समय दर्शाते है। जबकि वर्तमान घड़ियों में मुख्य रूप से 4 निशान प्रत्येक 10° अंश पर होते हैं। जिसे हम पहर चिन्ह भी कह सकते हैं कारण कि रात दिन में कुल 8 आठ पहर माने जाते हैं। इस प्रकार आधुनिक घड़ियों में भी एक प्रकार से पहर का प्रचलन हो गया है। पहर का क्रम दो भागों में है 4 पहर रात तथा 4 पहर दिन, दिन का पहर क्रम प्रातःकाल से प्रारम्भ होता है। तथा रात के पहर शाम के बाद से प्रारम्भ होते हैं। अतः मध्य रात्रि को 2 पहर रात्रि ढल जाना कहते हैं। तथा दिन में मध्याह्न को दो पहर कहते हैं।

दशमलव समय की इकाई में कुल मिलाकर एक दिन या एक दिनाङ्क में 10 घंटे है। प्रथम पाँच 5 मेट्रिक घंटे पूर्वाह्न जो कि मध्य रात्रि के बाद से प्रारम्भ होकर मध्याह्न 5 तक है। एवं पश्चाह्न समय मध्यान्ह के (5 बजे, बाद से प्रारम्भ होकर अर्द्धरात्रि या मध्य रात्रि तक है। या 24 घंटे के रूप में प्रचलित 8 पहर को 10 पहर मानकर मेट्रिक घंटों को 2 क्रम में अर्थात् कुल 5 पहर दिन के एवं 5 पहर रात्रि के कहे जा सकते हैं। पहर का यह क्रम दिन रात के अनुसार हुआ किन्तु दशमलव घड़ी में यह क्रम दिनाङ्क के अनुसार है।

रेल्वे घड़ियों में यह क्रम एक परिक्रमा के रूप में एक से 10 घंटे के रूप में होगा। और रेल्वे घड़ियों के डायल पर 36° अंश पर एक घंटे का समय होगा। जिसके लिए 10 किरणों का स्टार या उपयुक्त 10 निशान या अंक समय दर्शाने हेतु घड़ी के डायल पर होंगे। जिन देशों में "दिवस प्रकाश उपयोग समय" का प्रचलन होगा वहाँ आधा मेट्रिक घंटा घड़ियों को पीछे रखा जायगा। अन्तर्राष्ट्रीय मानक समय क्षेत्र ग्रीनविच के 0° मध्याह्न से है।

दशमलव घड़ी के प्रत्येक मेट्रिक घंटे में 100 मिनट है 1 मे० मिनट में 100 मेट्रिक सेकण्ड एवं एक सेकन्ड में 100 सेन्टि सेकन्ड है। इस प्रकार कुल मिलाकर एक दिन में 10 घंटे या 1000 हजार मि० या 100000 एक लाख सेकण्ड या 10000000 एक करोड़ सेन्टि सेकण्ड है।

यदि वर्तमान घड़ी के 24 घंटों को इसी रूप में रख लिया जाय और एक घंटे को पूर्ण इकाई मानते हुए सिर्फ मिनट और सेकण्ड के साथ दशमलव प्रणाली लागू कर दी जाय, इसके साथ ही समय की सबसे छोटी इकाई के रूप में सेन्टि सेकण्ड की नई इकाई मान ली जाय तो यह परिवर्तन भी समय मापन के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है।

इसके अनुसार

दिन रात के 24 घंटे (वर्तमान समयानुसार)

1 घंटा = 100 मिनट मेट्रिक

1 मिनट = 100 सेकण्ड ,,

1 सेकण्ड = 100 सेन्टि सेकण्ड

इस प्रकार घड़ी की वर्तमान मशीन में भी कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं रहेगी, सिर्फ डायल

पर अंकित निशानों में परिवर्तन किए जाने मात्र से काम चल जायगा, डायल पर वर्तमान और मीट्रिक दोनों समय एक साथ होंगे, एक निश्चित कोण पर दोनों समय की तुलना इस घड़ी में मालूम हो जायगी।

अब वर्तमान घड़ी का 1 घंटा या 60 मि० = 100 मेट्रिक मि०

∵ 60 = 100
6 = 10
3 = 5
1.5 = 2·5

अतः घड़ी के डायल पर ∠ 90 अंश पर एक घंटे का चौथाई भाग 15 वर्तमान मि० या 25 दशमलव मि० है

अब यदि वर्तमान मि०
·6 है तो मेट्रिक 1 मि०
1 है = 1·66 करीब
1·5 = 2·5

वर्तमान से०		मेट्रिक से०
36	=	100
18	=	50
·9	=	·25

वर्तमान सेकण्ड से मेट्रिक सेकण्ड करीब पौने तीन गुणा अधिक हुआ

इस प्रकार उपरोक्त प्रणाली के अनुसार प्रति दिन 24 घंटे या 2400 मि, या 240000 सेकण्ड या 24000000 सेन्टि सेकण्ड हुए

और एक सौर वर्ष में कुल 365 × 24 = 8760
+ 5 घंटे 48 मि० 46 सेकण्ड
= 8765·8128 घंटे
या 876581·28 मि०
87658128 सेकण्ड हुए

यदि वर्ष के पूरे 365 दिन मान लिए जाने पर बाकी समय जो कि 5 घंटे 48 मि० और 46 सेकण्ड है अनूरूप मानकर प्रत्येक दिन में विभाजित कर दिया जाय तो सिर्फ 365 दिनों के घंटे जो कि 8760 है अधिक सुविधापूर्ण सिद्ध होंगे। ऐसी अवस्था में 8760 घंटे या 8760,00 मि० या 8760,00,00 से० या 8760,000000 सेन्टि सेकण्ड होंगे।

किन्तु उपरोक्त प्रणाली समय मापन के लिए पूर्ण रूप से दशमलव प्रणाली पर आधारित नहीं है जिससे दिनों को दशमल प्रणाली में नहीं लिखा जा सकता है। और वर्तमान केलेण्डर के स्थान पर "दशमलव केलेण्डर" के रूप में परिवर्तन के साथ "दशमलव समय विभाजन" जो कि पूर्ण रूप में ही अधिक महत्वपूर्ण है।

विज्ञान-वार्ता

रोग के विरुद्ध प्रतिदेही तत्वों की भूमिका

कोलोराडो के नेशनल ज्यूइश अस्पताल के चिकित्सा-वैज्ञानिकों को उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उन्हें एक छः माह के शिशु में प्रतिदेही तत्वों की विद्यमानता का पता चला। इस नन्हें शिशु के रक्त में यक्ष्मा निरोधी प्रतिदेहियों की उपस्थिति वस्तुतः एक अयुक्तियुक्त बात थी, क्योंकि इस बालक को कभी भी यक्ष्मा रोग नहीं हुआ था। डाक्टरों ने इसकी विस्तृत जाँच के लिए अन्य ८० लोगों के रक्त की परीक्षा की। उन्हें पता चला कि इन सभी में रोग निरोधी तत्व विद्यमान हैं। इनमें से अनेक की त्वचा के परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ कि इनमें यक्ष्मा के लक्षण विद्यमान नहीं हैं।

अनेक परीक्षणों के बाद चिकित्सा-वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में कुछ ऐसे प्रतिदेही अवश्य होते हैं, जो रोग से उसकी रक्षा करते हैं, अथवा रोग के आक्रमण से रक्षा करने के लिए सतर्क होते हैं।

प्रतिदेही तत्व शरीर को रोग से मुक्त करने का कार्य करते हैं। ये रोग के आक्रमण की अज्ञात आशंका के साथ, स्वतः ही शरीर में उत्पन्न होते हैं और रोग का आक्रमण करने वाले जीवाणुओं, विषाणुओं और रक्त में उपस्थित विजातीय तत्वों के विरुद्ध धावा बोल देते हैं। ये इन सभी रोगमूलक तत्वों का इस प्रकार सफाया करते हैं, जिसके बारे में चिकित्सक अभी तक अनजान हैं।

वस्तुतः, प्रतिदेही अनेक प्रकार के होते हैं—एक विशिष्ट प्रकार का प्रतिदेही किसी एक ही रोग के आक्रमण के विरुद्ध संघर्ष करता है। इसकी विद्यमानता इस बात का प्रमाण है कि उस देह पर किसी रोग का आक्रमण हुआ है और इसने उससे संघर्ष के लिये ही जन्म लिया है। सामान्यतया, यक्ष्मा जैसे रोग वाले व्यक्तियों की देह में इन प्रतिकारकों की विद्यमानता की बात तो समझ में आती है, परन्तु वैज्ञानिकों के लिये यह आश्चर्य का विषय है कि एक स्वस्थ देह में इनकी उपस्थिति का क्या रहस्य है?

शायद कारण यह है कि जिन कारणों से इन प्रतिदेही तत्वों का जन्म होता है, वे वातावरण में विद्यमान होते हैं। अतः शोधकर्ताओं ने वायु, जल और मिट्टी में मिलने वाले सामान्य अहानिकारक जीवाणुओं को लेकर चूहों में प्रतिरोपित किया। उन्होंने देखा कि इन प्रतिरोपित वातावरणीय जीवाणुओं और चूहों की देह में अवस्थित उनके निजी (घरेलू) कीटाणुओं के संयोग से यक्ष्मारोधी प्रतिदेहियों का निर्माण होने लगा। अतः उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि मानव देह के निजी जीवाणु और सम्भवतः उसके चहुँ ओर के वातावरण में विद्यमान विभिन्न प्रकार के जीवाणु मिल कर शरीर में ऐसी क्रिया करते हैं जिससे यक्ष्मारोधी तत्वों का निर्माण होता है।

वैज्ञानिकों का विचार है कि किसी एक प्रकार के जीवाणुओं से किसी अन्य प्रकार के जीवाणुओं के संयोग से इन प्रतिदेही तत्वों का निर्माण होता है जो एक रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम है। उनका विश्वास है कि यदि इस रहस्य का पता चल सका, तो वे यह जान पाने में भी समर्थ हो सकेंगे कि यक्ष्मा जैसे प्राचीनतम रोग से पृथ्वी की सम्पूर्ण जनसंख्या ही क्यों प्रभावित नहीं हो सकी है?

अन्धता का कारण मधुमेह ?

एक ओर जहाँ मधुमेह रोग का प्रसार चिन्ता का विषय है (यद्यपि अब इसकी जटिलता पर नियन्त्रण किया जा सकता है) वहीं इसके दुष्परिणाम भी काफी भयंकर होते हैं। इस रोग के कारण गुर्दे, हृदय और नेत्रों को क्षति पहुँचती हैं। अब चिकित्सा-वैज्ञानिक यह मानते हैं कि त्वरित रूप से फैलती अन्धता या दृष्टिहीनता के प्रमुख कारणों में एक कारण मधुमेह भी है।

मधुमेह की अवस्था में होने वाली अन्धता में रेटीना (दृष्टिपटल) की सूक्ष्म रुधिर-वाहिकाओं में परिवर्तन आ जाता है। इसके कारण रुधिर-वाहिकाओं में शोथ उत्पन्न होता है और उनसे रक्त रिसने लगता है। यह 'डायविटिक रेटीनोपेथी' कहलाती है। अधिकांश मधुमेह पीड़ितों में अन्ततः यह शिकायत पायी जाती है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के डा० पीटर फोर्शम का कथन है कि हो सकता है कि मधुमेह प्रारम्भ होने के 10 वर्ष या उससे भी अधिक समय तक भी रोगियों में नेत्र सम्बन्धी ऐसी शिकायत पैदा न हो। उनका कहना है कि 20 वर्ष बाद, 75 प्रतिशत मधुमेह पीड़ितों में ऐसे परिवर्तन आते ही हैं जिससे 'डायविटिक रेटीनोपेथी' की शिकायत हो जाती है।

इस शिकायत को दूर करने के लिए आम तौर पर जो उपाय अपनाये जाते हैं, उनमें प्रायः इन सूक्ष्म रुधिर-वाहिकाओं को विशेष रूप से विकसित तीक्ष्ण प्रकाश-किरणों द्वारा प्रवाहित किया जाता है। परन्तु हाल ही में, इसकी चिकित्सा में लेसर किरणों का प्रयोग किया जाने लगा है। आशा की जाती है कि "आरगोन लेसर किरण' की चिकित्सा द्वारा दृष्टिहीनता सम्बन्धी रोग पर विजय पाना सम्भव हो सकेगा।

स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय के डा० क्रिश्चियन ज्येंग का कहना है कि लेसर किरण की चिकित्सा का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके द्वारा स्वस्थ ऊतकों को क्षति पहुँचने की बहुत ही कम सम्भावना रहती है। सूक्ष्म रुधिर-वाहिकाएँ प्रायः रेटीना के अति नाजुक भाग अथवा इसके समीपस्थ क्षेत्र में स्थित होती हैं। लेसर रश्मियों द्वारा अब ऐसे रोगियों की भी चिकित्सा की जा सकेगी जिन्हें पहले 'असम्भव' घोषित कर दिया गया था।

विशेषज्ञों का अनुमान है कि मधुमेह के कारण उक्त नेत्र-विकार वाले रोगियों में से 50 प्रतिशत की दृष्टि-ज्योति स्वस्थ की जा सकेगी। साथ ही, अन्य 25 प्रतिशत की क्षीण होती दृष्टि को सुधारा जा सकेगा। परन्तु, उनका कहना है कि जैसा प्रायः हर रोग के लिए आवश्यक है, शीघ्रातिशीघ्र रोग की पहचान की जाये, तभी शीघ्र और उचित प्रकार से रोगमुक्त होने की अधिक सम्भावना है। अतः चिकित्सकों को सुझाव है कि जैसे ही किसी व्यक्ति को कोई नेत्र-विकार मालूम पड़े, उसे तुरन्त ही चिकित्सक से परीक्षा करानी चाहिये जिससे किसी प्रकार की स्थायी क्षति से बचा जा सके।

ध्वनि-तरंगों द्वारा शल्यक्रिया

सैन जोस (कैलिफोर्निया) के एक चिकित्सक ने अभी हाल में एक रोगी के गुर्दे की पथरी को एक ऐसी विधि द्वारा बाहर निकाल दिया जिसमें शल्यक्रिया की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। इस रोगी की पथरी उसके निम्न मूत्राशय—मूत्रवाहिका नामक उस नली में जो गुर्दे को मूत्राशय से जोड़ती है—में बुरी तरह अटक गयी थी। साधारणतया ऐसी अवस्था में सिस्टोस्कोप नामक उपकरण की सहायता से गुर्दे की पथरी को निकाला जाता है। परन्तु, उक्त रोगी की पथरी मूत्रवाहिका में इतनी बुरी तरह फँसी थी कि उसको इस विधि द्वारा निकाल पाना असम्भव था। तब इसका एकमात्र उपाय यही था कि इसे विशेष शल्यक्रिया द्वारा निकाल दिया जाता। इसका परिणाम यह होता कि रोगी को कम से कम 10 दिन तक अस्पताल में रहना पड़ता और इसके पश्चात् उसे $1\frac{1}{2}$ माह तक घर पर पूर्ण विश्राम करना पड़ता।

डा० रोजर गुडफ्रंण्ड पिछले तीन वर्षों से ऐसी विधि पर कार्य कर रहे हैं, जिसके अनुसार गुर्दे की पथरी को बिना शल्यक्रिया के ही पराध्वनि तरंगों की सहायता से गला पाना सम्भव है। उन्होंने उक्त परीक्षण जानवरों पर किये हैं। इसके उत्साहजनक परिणाम के आधार पर अब उन्हें विश्वास है कि इस विधि को गुर्दे की

शल्यक्रिया के लिए मानवों पर सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

इस विधि द्वारा चिकित्सा करने पर सर्वप्रथम एक सिस्टोस्कोप रोगी व्यक्ति के मूत्राशय में प्रविष्ट किया जाता है। इसमें होकर मूत्रवाहिनी में उत्तम धातु के तार से युक्त एक छोटी नली गुजारी जाती है जो पथरी से जा टकराती है। इस सारी प्रक्रिया को एक्स-रे द्वारा जांचा जाता है। तब इस तार को कुछ सेकण्ड तक पराध्वनि गतीय तरंगों द्वारा झकझोरा जाता है। इसी दौरान इसमें होकर जल का एक मिश्रण तथा कीटाणु-नाशक दवा भी प्रविष्ट की जाती है जिससे किसी प्रकार की संक्रामकता न होने पावे। कुछ ही प्रयास के उपरान्त यह पथरी सूक्ष्म कणों में विखण्डित हो जाती है और स्वत. ही मूत्र के साथ नि:स्रत हो जाती है।

इस विधि द्वारा गुर्दे की पथरी की चिकित्सा करने से रोगी पर उसका कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है और उसे 36 घण्टे पश्चात ही अस्पताल से छुट्टी मिल जाती है तथा वह तुरन्त ही अपने काम पर जा सकने योग्य हो जाता है।

धूम्रपान से ग्रहणी के अलसर की सम्भावना

मिशिगन के अनुसन्धान-वैज्ञानिक डा० आन्द्रे रावर्ट का कथन है कि ग्रहणी (ड्युअडीनल) का अल्सर होने के कारणों में एक कारण निकोटीन भी हो सकती है। परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि यह रोग धूम्रपान न करने वालों की अपेक्षा धूम्रपान करने वालों को ही अधिक होता है। उन्होंने प्रयोगशाला में कुछ चूहों को निकोटीन की अल्पमात्रा का इन्जेकशन दिया। इसके परिणाम-स्वरूप अल्सर वाले चूहों की संख्या दुगनी हो गयी।

डा० रावर्ट ने उक्त परीक्षण के उपरान्त विचार व्यक्त किया कि निकोटीन की अल्पमात्रा भी ग्रहणी को प्राप्त होने वाले अग्न्याशय-रस (पैन्क्रियेटिक जूस) की मात्रा घटा देती है। इसके कारण चूहों में ऐसी परि-स्थितियों का अधिकाधिक विकास होता है जिनसे अल्सर उत्पन्न होता है। अग्न्याशय-रस की कमी के कारण आमाशय-अम्ल की प्रभावहीनता में रुकावट आती है। इस कारण यह अम्ल बैरोकटोक ग्रहणी की भित्ति पर आक्रमण करता है जिससे अल्सर उत्पन्न होता है।

चूहों पर किये गये परीक्षणों से यह भी सिद्ध हुआ है कि निकोटीन की अल्पमात्रा से केवल अल्सर होने की सम्भावना ही नहीं रहती है, वरन् अल्सर की भीषणता में भी वृद्धि होती है। इससे अनुमान लगाया गया है कि निकोटीन मनुष्यों में भी ग्रहणी-अल्सर होने का कारण हो सकती है। उनका कहना है कि इस दिशा में अभी और अनुसन्धान किये जाने की आवश्यकता है।

स्थूलता का कारण बढ़ती हुई आयु भी

रोचेस्टर (मिनेसोटा) के मात्रो चिकित्सालय के चिकित्सकों का कथन है कि 'मोटापा' आने का कारण भोजन नहीं, अपितु बढ़ती हुई आयु है। अपने सर्वेक्षण के आधार पर इन चिकित्सकों ने मोटापे के तीन कारण व्यक्त किये हैं। उनके अनुसार, इसका पहला कारण यह है कि छरहरे व्यक्ति की तुलना में स्थूलकायी (मोटे) व्यक्ति में 'कैलोरियों' का अपेक्षाकृत अधिक द्रुतता से दहन होता है। दूसरा कारण यह है कि ये लोग दैहिक-ऊर्जा में चर्बी का बहुत कम उपभोग कर पाते हैं। तीसरा कारण यह है कि छरहरे व्यक्तियों की अपेक्षा स्थूल व्यक्ति भोज्य-पदार्थों का अधिक प्रयोग करते हैं।

इन अनुसन्धानकर्ताओं ने विभिन्न देह-भार वाले 142 व्यक्तियों का अध्ययन किया। साथ ही, उन्होंने 22 अन्य व्यक्तियों की चिकित्सा-रिपोर्टों का भी अध्ययन किया। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि स्थूल व्यक्तियों और सामान्य व्यक्तियों के 'मेटाबोलिज्म' (चयापचग या रस-प्रक्रिया) में कोई अन्तर नहीं होता। दोनों ही श्रेणी के व्यक्ति अपनी 'कैलोरियों' का समान रूप से उपभोग करते हैं तथा वे अपनी चर्बी का भी समान रूप से संशोषण करते हैं।

परन्तु, इन व्यक्तियों के दीर्घकालीन चिकित्सा-रिकार्डों के अध्ययन से उन्हें आश्चर्यजनक तथ्य प्राप्त हुए हैं। अनुसन्धानकर्ताओं को ज्ञात हुआ कि इन व्यक्तियों में आयु के बढ़ने के साथ-साथ चयापचयन (मेटाबोलिक) क्षमता में ह्रास आता है। कुछ लोगों में तो यह ह्रास इतना प्रबल होता है कि उनकी दैनिक क्रियाओं और खान-पान में कोई परिवर्तन न होने पर भी, आयु की बृद्धि के साथ स्थूलता बढ़ती जाती है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं यन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3 5/

भाग 112 | फाल्गुन 2030 विक्र०, 1894 शकाब्द मार्च 1974 | संख्या 3

सजीवों में उत्परिवर्तन क्यों ?

—श्याम सुन्दर पुरोहित एवं चैतन्य कुमार गहलोत

उत्परिवर्तन का ज्ञान सर्व प्रथम 'मेण्डल' को हुआ। मेण्डल ने ही सबसे पहले पौधों में 'भिन्नन' (वैरिएशन) को दर्शाया एवं उनके अनुसार 'यह भिन्नन पैतृक पदार्थों या आनुवंशिक द्रव्यों (हेरेडिटरी-मेटेरियल) में कुछ विशेष परिवर्तनों के कारण होता है।'

बेटसन ने सन् 1894 में बताया कि 'भिन्नन' प्राणियों में एवं पौधों की जातियों में उत्परिवर्तन विकासक्रम या उद्विकास में एक प्रमुख कारक है। सन् 1901 में इस पर सबसे ज्यादा कार्य हुआ, उसी समय इसे सर्व प्रथम 'उत्परिवर्तन' (म्यूटेशन) नाम दिया गया। ये परिवर्तन बेटसन ने आनोथीरा नामक पौधे में देखे।

मुलर के अनुसार, पित्र्यैक कुछ परिवर्तन करने में संक्षम होते हैं। इसीलिए वे अपने वास्तविक प्रकार से कुछ भिन्न हो जाते हैं। इन परिवर्तनों का विमोचन आनुवंशिक (जेनेटिक) गुणों द्वारा किया जाता है। दूसरे शब्दों में 'पित्र्यैक में परिवर्तन के कारण आनुवंशिकी गुणों में परिवर्तन अवश्य होता है।' ऐसे परिवर्तनों को उत्परिवर्तन कहते हैं। जब बड़े फिनोटाइप प्रभावों से बड़े एवं अचानक-उत्परिवर्तन हो जाते हैं तो इस प्रकार के उत्परिवर्तन 'दीर्घ-उत्परिवर्तन' (नेक्रोम्यूटेशन) कहलाते हैं। इसी प्रकार छोटे उत्परिवर्तनों को 'लघु-उत्परिवर्तन' (माइक्रोम्यूटेशन) कहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सजीवों में उत्परिवर्तन हमेशा ही हानिप्रद हों, इसके विपरीत विभिन्न जातियों में उत्परिवर्तन, लाभदायक प्रभाव भी दिखलाते हैं।

उत्परिवर्तन कई प्रकार के होते हैं—

(1) पित्र्यैक-उत्परिवर्तन (जीन म्यूटेशन)—

जब पित्र्यैक संरचना पर कोई सूक्ष्म प्रभाव विशेषकर 'कोडोन' (codon) पर पड़ते हैं तो इस प्रकार के उत्परिवर्तन पित्र्यैक उत्परिवर्तन के नाम से जाने जाते हैं।

(2) सूक्ष्म या बिन्दु-उत्परिवर्तन (पाइंट-म्यूटेशन —

जब उत्परिवर्तनों का शिकार कोई विशेष बिन्दु होता है तो ऐसे उत्परिवर्तन बिन्दु-उत्परिवर्तन कहलाते हैं।

(3) उलट-उत्परिवर्तन (रिवर्स-म्यूटेशन)—

जब कभी भी पहले हुए उत्परिवर्तन के विरुद्ध कोई उत्परिवर्तन हो जाता है तो बाद में होने वाले उत्परिवर्तन उलट-उत्परिवर्तन कहलाते हैं।

(4) कायिक-उत्परिवर्तन (सोमेटिक-म्यूटेशन)—

जब किसी वृद्धिकारक उत्तक में उत्परिवर्तन हों तो उन्हें कायिक-उत्परिवर्तन कहते हैं। कुछ असाधारणताओं के रूप में 'पतले-उत्परिवर्तन' (थिन म्यूटेशन) की भी व्याख्या की जा सकती है जो हानिकारक या लाभप्रद दोनों ही हो सकती हैं।

(5) कलिका-उत्परिवर्तन (बड-म्यूटेशन)—

जब 'स्कन्ध-कलिका' (स्टैम-बड) में उत्परिवर्तन होते हैं जो वास्तविक को छोड़ विभिन्न प्रकार के प्ररोह (शूट) उत्पन्न करता है।

उत्परिवर्तन करने वाले कारकों के आधार पर हम उत्परिवर्तन को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं— (1) स्वतः उत्परिवर्तन एवं (2) प्रेरित उत्परिवर्तन।

1—स्वतः-उत्परिवर्तन (स्पोन्टेनियस म्यूटेशन)—

'जब उत्परिवर्तन अपने आप ही हो जाता है तो यह स्वतः उत्प्रेरण कहलाता है।' यह उत्परिवर्तन किसी अनुकूलन (एडाप्टेशन) के कारण हो सकता है या फिर पर्यावरण परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण भी हो सकता है या यदि प्रजनन की विधि में परिवर्तन आ जाए तो भी यह हो सकता है। इस उत्परिवर्तन के लिए पौधे को किसी बाह्य-कारक (फोरेन-एजेन्सी) की आवश्यकता नहीं होती।

2—प्रेरित-उत्परिवर्तन (इन्डूयस्ड-म्यूटेशन)—

यह उत्परिवर्तन कृत्रिम-उत्परिवर्तन भी कहलाता है क्योंकि इसमें प्राणी या पौधे को बाहरी कारक या बाह्य-प्रेरण की आवश्यकता होती है। बाह्य उत्प्रेरक (म्यूटेशन्स), पराबैंगनी (अल्ट्रा-वायलेट) एक्स किरणें (एक्स-रे), मस्टर्ड (सरसों) गैस, एथिल-मेथेन-सल्फोनेट, नाइट्रस आक्साइड, 2-अमीनो प्यूरिन (2-एपी), ब्रोमोयूरासिल (5 बीयू), कोल्चिसिन, कैफीन इत्यादि। 2-एपी व ५-बीयू, आधारीय समजात (बेस-एनालोग) हैं।

उत्परिवर्तन की विशेषता—

बीडल तथा टेटस ने उत्परिवर्तन तथा विकर-निर्माण (एन्जाइम फार्मेशन) के बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया। उन्होंने मेण्डल के गुणक (फेक्टर) को वर्तमान पित्र्यैक (जीन) के समतुल्य माना। साधारण पित्र्यैक पर प्रबल रहता है। पेन्टर तथा स्टोन ने ड्रोसोफिला के लार ग्रन्थिगुण सूत्रक (सलाइवरीग्लेण्ड-क्रोमोसोम) में सूक्ष्म परिवर्तन देखे तथा इस परिवर्तन को 'उत्परिवर्तन' नाम दिया। जब हम उत्परिवर्तन की आणविक स्थिति (मोलिक्यूलर आस्पेक्ट) को देखें तो डी० एन० ए० का वाटसन तथा क्रिक' नमूना (मोडल) उत्परिवर्तकीय सिद्धान्तों (म्यूटेजेनेसिस-थ्योरी) के अध्ययन का मूलभूत आधार है।

डी० एन० ए० की रासायनिक संरचना मुख्यतया चार अमीनोअम्लों, शर्करा तथा फास्फेट के योग से बनती है जिसमें से चार अमीनोअम्ल सजीवों में होने वाली जैव रासायनिक क्रिया को नियन्त्रित करते हैं। ये अमीनो अम्ल हैं—एडेनीन, गुआनिन, थायामिन एवं साइटोसिन। इन चार अमीनो अम्लों से प्रथम दो को 'प्यूरिन' वर्ग में तथा अन्तिम दो को 'पिरिमिडीन' वर्ग में वर्गीकृत किया जाता है। आजकल सजीवों की आनुवंशिकी इकाई को पित्र्यैक कहते हैं तथा यह डी० एन० ए० के तीन अमीनो अम्लों के योग से बनता है तथा इसे 'कोडोन' कहते हैं जैसे कि एटीसी (A. T. C.) ए. ए. ए. (A. A. A.) आदि।

म्यूटेजेनेसिस की यान्त्रिकी (मेकेनिज्म) में निम्न बिन्दु पाये जाते हैं—

(1) डी० एन० ए० तथा इसके तत्व आधार का रूपान्तरण,

(2) एक आधार का अन्य आधारों के लिए प्रतिस्थापन,

(3) एक डी० एन० ए०-शृंखला (स्ट्रेण्ड) में एक आधार

का युग्मन या विलगन (एडिशन या डिलीशन), एवं

(4) डी० एन० ए० अणु में न्यूक्लियोटाइड आधार-युग्म (बेस-पेयर) के क्रम का उलटना इन्वर्जन आफ ए सिक्वेन्स)।

डी० एन० ए० संरचना में परिवर्तन के आधार पर इन परिवर्तनों को दो भागों में बाँट सकते हैं—

(1) संक्रमण (ट्रान्जिशन) तथा (2) अनुप्रस्थन (ट्रान्सवर्जन)

डी० एन० ए० दो प्रकार के मुख्य आधारों अथवा न्यूक्लियोटाइड प्यूरिन एवं पिरीमिडीन का बना होता है। उत्परिवर्तन के मध्य यदि प्यूरिन से प्यूरिन प्रतिस्थापित होते हों तो इस क्रिया को संक्रमण-क्रिया कहते हैं। इसके विपरीत यदि कोई प्यूरिन, पिरिमिडीन से प्रतिस्थापित हो तो उसे अनुप्रस्थन-क्रिया कहते हैं। जैसा कि निम्न चित्र में देखा जा सकता है—
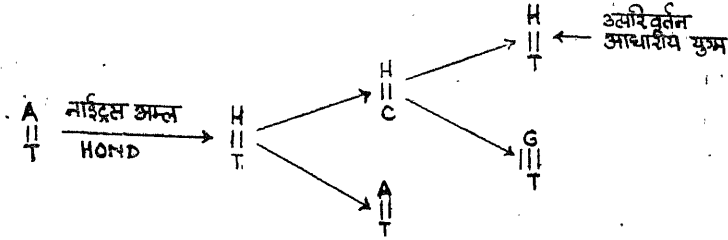
डी० एन० ए० में संक्रमण क्रिया का प्रभाव— इसमें द्विगुणन के समय A के स्थान पर H (नाइट्रस अम्ल युग्मित हो जाता है। (A = एडेनिन, T = थायामिन, (=)हाइड्रोजन बन्धक, G गुआनिन, C = साइटोसिन एवं H = प्रतिस्थापित नाइट्रस अम्ल)

आधारीय समजात (बेस-एनालोग) से डी० एन० ए० में उत्परिवर्तन—
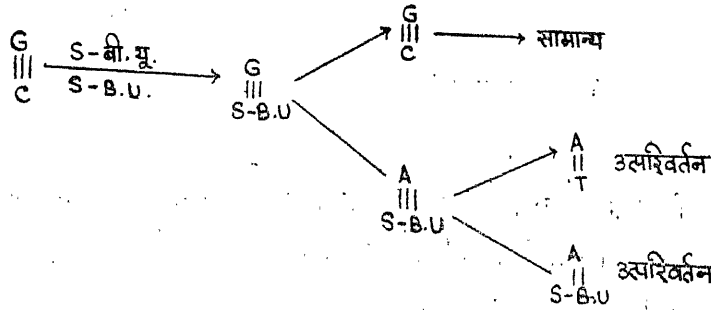
'ह्यूगो-डी-व्रीज' के उत्परिवर्तन वाद के अनुसार विकास एक शनैः गतिक क्रिया न होकर तीव्रगामी क्रिया है तथा नयी जातियाँ, छोटी-छोटी विभिन्नताओं के एकत्रीकरण से नहीं, बल्कि अचानक ही बड़ी विभिन्नताओं के कारण बनी हैं जो उत्परिवर्तन ही है। ऐसा क्यों होता है ? यह अभी तक अस्पष्ट है। जो परिवर्तन प्रकृति के अनुकूल होते हैं स्थायी रहकर वंशानुवंश चलते जाते हैं। आधुनिक युग में यह विकास का मुख्य कारण माना जाता है।

कभी-कभी आपने सोचा होगा कि हिरोशिमा, नागासाकी पर बम गिरने के पश्चात् पैदा होने वाली संतानों के शारीरिक अंगों में इतना परिवर्तन क्यों आ गया ? पीढ़ी दर-पीढ़ी यह परिवर्तन और भी अधिक मात्रा में देखा गया। जो बच्चे पैदा हुए उनमें से बहुत से बच्चों के शरीर के विभिन्न अंग जैसे—कान, बाल, पैर, नाक, आँख या किन्हीं-किन्हीं के तो सिर का पूरा भाग ही गायब था। क्या इस परिवर्तन के लिए भगवान को दोषी ठहराना उचित है या उस 'एटम-बम' को जो

कि वहाँ पर 6 अगस्त सन् 1945 को सुबह सूर्योदय से पहले गिराया गया। वास्तव में इसके लिए परमाणु बम ही दोषी है, जिसके फटने से विकिरित विभिन्न रेडियो-सक्रिय पदार्थों ने वायुमण्डल को दूषित कर दिया। इन विकिरणों ने कोशिकाओं के नाभिक में पाये जाने वाले डी० एन० ए० को प्रभावित किया। इन प्रभावों के कारण डी० एन० ए० की संरचना में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जो उनके द्वारा बने नये द्विगुणित डी० एन० ए० तन्त्र पर दिखाई दिए। डी० एन० ए० की संरचना में होने वाले किसी भी प्रकार के परिवर्तन को उत्परिवर्तन कहते हैं।'

इतना होने के बाद भी आज तक इन विस्फोटों को सभी रोकने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। एक ओर परमाणु परीक्षणों से जहाँ कुछ राष्ट्रों की रक्षा-शक्ति मजबूत होती है तो दूसरी ओर इनके विस्फोट डी० एन० ए० तक को प्रभावित कर कब कैसे पीढ़ी बना दे, भरोसा नहीं।

श्याम सुन्दर पुरोहित
एवं
चैतन्य कुमार गहलोत
प्राध्यापक, वनस्पति विज्ञान विभाग
सेठ मथुरादास बिनानी राजकीय महाविद्यालय,
नाथद्वारा (राजस्थान)

लिंज की अपराध शास्त्र की संस्था के डा० वाल्टर हाउपमान के अनुसार स्टीरियोरेटिक मस्तिष्क शल्यक्रिया द्वारा मस्तिष्क के उस छोटे से क्षेत्र को एक्सकिरण द्वारा पहचान व उसका उदासीनीकरण कर देने से यौन अपराधियों की अत्यधिक यौन सक्रियता को कम किया जा सकता है। इसमें मस्तिष्क का केवल 0·1 मिमी० भाग प्रभावित होगा।

पौधों का विकास और ध्वनि तरंगें

शुकदेव प्रसाद

कुछ समय पूर्व समाचार पत्रों में निम्न घटना पढ़ने को मिली :—

"दो बगीचों के मालिक ने अपने दोनों बगीचों में बराबर खाद, पानी दिया; परन्तु उनमें से एक ने बगीचे में ध्वनि विस्तारक यंत्र लगाकर प्रतिदिन कुछ समय के लिए वाद्य संगीत के रिकार्ड बजाने की भी व्यवस्था कर दी। चार महीने तक लगातार संगीत सुनने के बाद उक्त बगीचे ने जो परिणाम दिये, वे दूसरे बगीचे की तुलना में दुगने से ज्यादा थे। इस बगीचे का निरीक्षण वनस्पति विज्ञान-वेत्ताओं एवं अन्य बगीचों के मालिकों ने किया। वे यह देख कर आश्चर्य-चकित रह गए कि उस बगीचे में पौधों एवं पेड़ों का विकास अपेक्षाकृत बहुत अधिक था। इस प्रयोग से स्पष्ट होता है कि संगीत का प्रभाव पौधों के विकास में कितना सहायक है।" इस प्रकार की कुछ अन्य घटनाएं भी प्रकाश में आयीं। इनके प्रकाश में आते ही लोग आश्चर्य में पड़ गए और यह जानने की उत्सुकता बढ़ने लगी कि क्या सचमुच ध्वनि का प्रभाव पौधों के विकास पर पड़ता है? जी हाँ! यह केवल कोरी भावुकता नहीं है बल्कि सार्वभौमिक तथ्य भी है। संगीत का प्रभाव न केवल मनुष्य के मन और शरीर पर ही पड़ता है, बल्कि पशु-पक्षियों एवं पौधों पर भी पड़ता है। यह तथ्य केवल साहित्यिक एवं ऐतिहासिक ही नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने प्रयोगों से इस तथ्य को सत्य की कसौटी पर खरा पाया है।

भारत में इस विषय पर अध्ययन करने वालों में अग्रणी उमेश शोध प्रयोगशाला, मंगलौर के प्रोफेसर सी० एन० सिंह हैं जो पिछले दो दशकों से पौधों पर ध्वनि तरंगों के प्रभाव का अध्ययन कर रहे हैं। उन्होंने फोटोसोनिक्स नामक वनस्पति शास्त्र की एक नयी शाखा का विकास किया है। ऐसी ध्वनियाँ जिन्हें हम सुन सकते हैं 'सोनिक्स' कहा जाता है। सुनी जा सकने वाली ध्वनि के पौधों पर प्रभाव का अध्ययन करने वाले विज्ञान को 'फोटोसोनिक्स' कहा जाता है अमेरिका में प्रोफेसर सिंह के प्रयोगों को 'एग्रोसोनिक्स' कहा जाता है जिसका अर्थ है अधिक फसल लेने के लिए सुनी जा सकने वाली ध्वनि का प्रयोग। प्रोफेसर सिंह के शब्दों में इस विषय पर शोध करने के सम्बन्ध में उनके विचार निम्न हैं। सन् 1950 तक पौधों के विकास पर सुनी जा सकने वाली ध्वनि के प्रभाव का अध्ययन करने की दिशा में बिल्कुल भी शोध कार्य नहीं हुआ था। इस प्रकार का प्रथम प्रयोग मैंने अन्नाम लाई विश्वविद्यालय के वनस्पति शास्त्र विभाग में 10 दिसम्बर 1950 को (लगभग मध्य रात्रि के समय) किया, जहाँ मैं वनस्पति शास्त्र का प्राध्यापक था। मेरा प्रथम प्रयोग जल में उगने वाले पौधे हाइड्रिला में प्रोटोप्लाज्मा की गति तथा लाजवंती के विकास पर था। इससे मुझे जो आनन्द हुआ, उसे मैं शब्दों द्वारा अभिव्यक्त नहीं कर सकता। यह आनन्द केवल अनुभव का विषय है।" इसके बाद से वे लगातार इस विषय पर कार्य करते रहे। उनके शोध-कार्य की प्रथम रिपोर्ट टाइम्स आफ इंडिया (बम्बई) में प्रकाशित हुई थी और तब शीघ्र ही सारे भारतीय समाचार पत्रों ने उसे प्रकाशित किया और अन्त में जर्मनी, अमेरिका, जापान, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, इंग्लैण्ड, नार्वे तथा विश्व के अनेक देशों के समाचार पत्रों में भी इस समाचार को महत्व दिया। ओस्लो के समाचार पत्र 'आफ्टेनपोस्टन' ने हाल ही में नोबेल पुरस्कार के लिए उनके नाम का सुझाव दिया है।

प्रोफेसर सिंह के इस कार्य के लिए 1958 में उन्हें 2000 रुपये का एक पृथ्वी पुरस्कार और एक स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ था।

जिस प्रकार मधुर संगीत ध्वनि सुनकर मानव का मन-मयूर नाच उठता है उसी प्रकार पौधों पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है। प्रोफेसर सिंह ने तो यह भी सिद्ध कर दिया है कि पौधों पर भरत नाट्यम नृत्य का लाभदायक प्रभाव होता है। मनुष्य शरीर के अतिरिक्त पौधों पर संगीत के प्रभाव से सम्बन्धित किए गए प्रयोगों से निष्कर्ष निकला है कि खाद, पानी, मिट्टी और धूप से पौधों को विकसित करने की विधियों के अतिरिक्त पौधों के विकास में संगीत की अपनी अलग महत्वपूर्ण भूमिका है।

एक वायलिन बजाने वाले कलाकार को यह देख कर आश्चर्य हुआ कि उसके बाग में नारियल के वृक्ष जो बहुत कम फल देते थे और जिनकी लम्बाई कम थी, वे साल भर में परिवर्तित हो गए, ज्यादा लम्बे हो गए और अधिक फल देने लगे। अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर उक्त कलाकार का मत है कि वह प्रतिदिन अपने बाग में बैठकर घण्टों वायलिन बजाया करता था। वर्ष भर उसने निरन्तर अभ्यास किया। उसने जब वृक्षों में परिवर्तन देखा तो इस तथ्य पर पूर्ण विश्वास करने लगा कि अपना जादू पेड़-पौधों पर भी चलाता है।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि कुछ समय पहले संगीत से सम्बन्धित जो बातें कोरी कल्पनाएँ लगती थीं वे आज सत्य की कसौटी पर सही उतरी हैं। वाकई संगीत में वह जादू है जिसका प्रभाव अंधेरे में चमकने वाली बिजली के समान होता है। रोगों को दूर करने में भी संगीत का योग महत्वपूर्ण हैं। पशुओं और पक्षियों को संगीत आकर्षित कर लेता है और यहाँ तक कि संगीत से हिंसक पशु भी नियन्त्रित किया जा सकता है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद—२
उ० प्र०

आधुनिकतम खोजों के अनुसार पृथ्वी एक अपरिवर्तनीय गोला नहीं रह गई है। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव घूम रहे हैं, महाद्वीपों की स्थिति बदल रही है और महासागरों के नये तलों का निर्माण हो रहा है। पृथ्वी के वाह्य कोश में बड़ी-बड़ी पट्टिकाओं की स्थिति पर भूकम्पों का निर्भर होना नवीनतम परिकल्पना है।

यकृत के ऊतकों से एक नवीन पदार्थ

डा० अरुण कुमार सक्सेना तथा डा० नन्दलाल तिलयानी

हार्मोन वे रासायनिक पदार्थ हैं जो कि ग्रन्थियों में से निकल कर समस्त शरीर में रक्त के द्वारा फैल जाते हैं और अन्त में अन्य अंगों में पहुँच कर उनकी क्रियाओं का सुचारु रूप से संचालन करते रहते हैं। पैनक्रिया से ग्लूकागोन नामक हार्मोन निकलता है जो कि यकृत से शक्कर निकालता है। 1956 ई० तक वैज्ञानिकों की यह धारणा थी कि हार्मोन कोषों के भीतर प्रविष्ट होकर उसकी रासायनिक क्रियाओं की गतिविधियों पर सीधे नियंत्रण रखते हैं। डा० आर्ल डब्लू० सुदरलैण्ड ने इसी वर्ष एक नवीन पदार्थ को खोज निकाला था। उन्होंने इसे यकृत के उत्तकों में से प्राप्त किया यह कार्य उन्होंने 1963 ई० में अमेरिका की 'वेन्डरविट विश्वविद्यालय' से पूरा किया था। यह ऐसे वैज्ञानिक थे जिन्होंने केवल शोधकार्य के लिए क्लिवलैण्ड स्थित केस 'वेस्टर्न रिसर्व विश्वविद्यालय' से शिक्षक का पद त्याग दिया था। इन्हें पढ़ाने से कोई चाव न था। इसी कारण उन्हें इसमें रुचि भी न थी। इसी अरुचि ने उन्हें एक विश्व के उच्च कोटि की वैज्ञानिकों की श्रेणी में ला रक्खा है।

डा सुदरलैण्ड ने यकृत से प्राप्त होनेवाले पदार्थ का नाम साईक्लिक एडिनोसीन 3',5 —मोनो फास्फेट या साईक्लिक ए० एम० पी० रख दिया था। और अन्य शोध कार्यों से यह ज्ञात हुआ है कि बहुत से हार्मोन कोषों में सीधे क्रिया नहीं करते हैं। वास्तव में वे इसी नवीन पदार्थ की मात्रा को घटा तथा बढ़ा देते हैं और यही पदार्थ द्वितीय प्रेषक का कार्य करता है। साथ ही साथ यह कोषों की रासायनिक क्रियाओं की गतिविधियों पर नियंत्रण भी रखता है। जब कभी कोई अत्यधिक प्रसन्न होता है तो एड्रीनल ग्रन्थि से एड्रीनालिन नामक हार्मोन निकलता है जो कि हृदय की धड़कन को बढ़ा देता है। डा० सुदरलैण्ड के प्रयोगों ने यह सिद्ध किया था कि इस एड्रीनालिन ने साइक्लिक ए० एम० पी० की मात्रा विशेषकर हृदय की मांस-पेशियों कोषों में बढ़ा कर उसके कार्यकलापों में और तेजी ला दी। यह नवीन पदार्थ हार्मोन को ग्रन्थियों से निकालने की विधि पर भी नियंत्रण रखता है। यही पदार्थ स्टीरोइड हार्मोन जैसे हाईड्रोकोर्टिसोन को एड्रीनल ग्रन्थि से निकालता है। हाइड्रोकोर्टिसोन शारीरिक थकान आदि को दूर करने का कार्य करता है। साईक्लिक ए० एम०पी० इन्सुलिन नामक हार्मोन को निकालने में सहायता करता है।

जिस प्रकार प्रत्येक महत्वपूर्ण अन्वेषण पर सर्वप्रथम विश्वास नहीं किया जाता है और फिर काफी समय पश्चात् उसी को मान्यता भी दी जाती है। इस पर भी वैज्ञानिकों ने ध्यान नहीं दिया फिर धीरे-धीरे इसका महत्व ज्ञान हुआ और इसी खोज पर डा० सुदरलैण्ड को 1971 ई० में विश्व का सर्वसम्मानित 10,000 डालर राशि का नोबेल पुरस्कार औषधि विज्ञान क्षेत्र में प्रदान किया गया था। पुरस्कार पाने वाले यह चालीसवें अमेरिकन नागरिक हैं। इस दशक के नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वालों में से सर्वप्रथम अकेले ही वैज्ञानिक हैं।

आज रोगों के उपचारों में इस नवीन पदार्थ की महत्वता दिखाई दे रही है। विश्व के हजारों वैज्ञानिक डा० सुदरलैण्ड के चमत्कारपूर्ण खोज से सहायता लेकर इस दिशा में और आगे बढ़ते जा रहे हैं। निकट भविष्य में इन्सुलिन तथा साईक्लिक ए० एम० पी की क्रियाओं के द्वारा प्राप्त उपचार की विधि के द्वारा मधुमेह के रोगियों को शायद राहत मिल सकती है। अभी हाल

[शेष पुष्ठ 9 पर]

अंतरातारकीय शून्य में

—धर्मपाल महेन्द्र जैन

जब आप स्वच्छ रात्रि में आकाश को देखते हैं तो सहस्रों तारे आपके सामने होते हैं। हमारी आकाश गंगा में लगभग 1000 खरब तारे हैं जिनमें से सूर्य भी एक है। जबकि हमारी आकाश गंगा करीब 30 करोड़ ग्लेक्सीस में से एक है। सूर्य हमसे 15 करोड़ कि. मी. दूर है और सूर्य से निकटवर्ती तारे प्रोक्सिमा सेन्चुरी की दूरी 4.3 प्रकाशवर्ष है। और प्रकाशवर्ष वह दूरी है जो 3 लाख कि. मी. प्रति सेकन्ड से चलने वाला प्रकाश, एक वर्ष में पूरी करता है।

उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित एंड्रोमेडा नीहारिका बिना दूरदर्शी की मदद से नंगी आँखों से देखी जा सकती है। जिसमें करीब 1 खरब तारे हैं, एवं पृथ्वी से दूरी 20 लाख प्रकाश वर्ष है। यह नीहारिका हमारे सूर्य से एक हजार गुना अधिक चमकीली है।

क्या आपके लिये ये भयानक आंकड़े विश्वसनीय हैं? शायद आज न हों। एक तारे से दूसरे तारे की दूरी इतनी अधिक है कि हम सोच भी नहीं सकते। तब इतने विस्तृत आकाश में आखिर क्या भरा है? तारों के बीच इस अति विस्तृत शून्य में कौन से तत्व एवं यौगिक हो सकते हैं? वे कैसे बनते होंगे? क्या उनके भी अणु परमाणु आदर्श होते होंगे। उनमें उर्जा का विवरण विभिन्न उर्जा स्तरों में किस तरह होता होगा?

इन सब प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है कनाडा की राष्ट्रीय शोध परिषद के भौतिकशास्त्री डा० टाक्शी ओका ने। जिसके लिए उन्हें स्टीआईस पुरस्कार जो प्रतिवर्ष प्राकृतिक विज्ञान में कार्यरत कनाडा के तरुण वैज्ञानिकों को दिया जाता है से सम्मानित किया गया। इस संदर्भ में डा० ओका की मौलिक एवं प्रभावक, अंतरातारकीय शून्य में अणुओं का व्यवहार खोज महत्वपूर्ण है। अणु अध्ययन के उपेक्षणीय क्षेत्र, अणुओं की परस्पर टक्कर एवं उस कारण अणुओं के घूमने में संबंध जोड़ वे सौर-मंडल एवं पदार्थ को गठित करने वाले गुणकणों के अध्ययन को एक दूसरे के लिए सहायक बनाने में सफल हुए हैं।

फिर प्रयोगशाला हो या शून्य दो अणुओं की टक्कर उनके घूमने में परिवर्तन के लिए उत्तरदायी है। चूंकि एक घन से. मी. क्षेत्र में लाख लाख करोड़ से भी अधिक अणु हो सकते हैं अतः औसत घनत्व की अधिकता के कारण अंतरातारकीय शून्य में पार्थिव प्रयोगशाला के अनुरूप कोई प्रयोगशाला नहीं बनाई जा सकती।

प्रयोगशालाओं में एक सेकन्ड में सौ करोड़ अणुओं की टक्करें हो सकती है किन्तु अन्तरातारकीय शून्य में एक वर्ष में एक ही टक्कर हो पायेगी। यानि वहाँ सौ वर्ष तो क्षणिक होंगे। इस कारण अणुओं की टक्कर का उनकी घूर्णन उर्जा पर प्रभाव लम्बे समय तक के लिये निष्क्रिय हो जावेगा। निस्संदेह इन परिवर्तनों के बारे में अध्ययन करना, अंतरातारकीय शून्य को जानने के लिए एक चाभी पा लेने जैसा होगा।

यदि कमरे के ताप पर गैस के अणुओं का निरीक्षण किया जावे तो वे टेढ़ी मेढ़ी गति करते हुए एवं एक दूसरे से टकराते हुए लगेंगे। सूक्ष्म निरीक्षण से हम पायेंगे कि अणु, लट्टू के समान गति करता है, इसे चक्रण कहते हैं। वस्तुतः इस चक्रण गति में अणुओं की कुल उर्जा का बड़ा भाग होता है।

आप जानते हैं पृथ्वी के धरातल से कुछ ऊँचाई पर से यदि पत्थर छोड़े, तो पत्थर छोड़ने के क्षण उसमें

जो उर्जा होगी, वह उसकी स्थिति के कारण होगी। पृथ्वी की ओर आते हुए किसी क्षण उसकी उर्जा, उसकी स्थिति एवं उसकी गति (जिससे वह उस क्षण नीचे आ रहा है) के कारण होगी। पहले प्रकार की उर्जा को स्थितिज एवं दूसरी को गतिज उर्जा कहते हैं। इसी तरह अणु जब घूमता है तो उसकी कुल उर्जा का कुछ भाग उसके घूमने की उर्जा भी होती है, उसे घूर्णन उर्जा कहते हैं। किसी क्षण अणु की घूर्णन उर्जा ज्ञात कर, किसी अन्य अणु से टक्कर के बाद पुन: घूर्णन उर्जा ज्ञात करते हैं। एवं इस तरह घूर्णन उर्जा में टक्कर बाद हुई कमी या बढ़ोत्री ज्ञात की जा सकती है।

डा० ओका ने 1966 में बताया कि अणुओं की टक्कर से होने वाले परिवर्तन अनियमित नहीं, किन्तु कुछ चुने हुए घूर्णन उर्जा स्तरों पर होते हैं। ये घूर्णन परिवर्तन नियम बद्ध होते हैं। इनके अध्ययन ने रसायन व भौतिकी में शोध का नया क्षेत्र खोल दिया है।

प्रो० टोवान्स ने अंतरातारकीय शून्य में अणुओं से संबंधित प्रयोगों से 1968 में बताया कि अंतरातारकीय शून्य में अमोनिया है। उन्होंने अमोनिया के बादल धनु (SAQITTARIUS) B—2 के क्षेत्र में बहुत तापीय अन्तर बताया। डा० ओका के "टक्कर से प्रेरित परिवर्तन" सिद्धांत ने यह असंगति समझायी। फार्मेल्डीहाइड हाइड्रोजन सायनाइड मेथिल अल्कोहल आदि की उपस्थिति के स्पष्ट संकेत पाने में वैज्ञानिकों को सफलता मिली है। यद्यपि इस क्षेत्र में अभी तो बहुत कार्य शेष हैं, किन्तु तारों की बीच की इस विशाल जगह में क्या-क्या भरा है, शीघ्र ही दुनिया के सामने आ जावेगा। सौर मंडल को समझने के लिए हमें एक और संकेत मिल जावेगा।

['साइन्स डायमेन्शन' जून 73 में प्रकाशित अर्ल मेसर के लेख पर आधारित]

धर्मपाल महेन्द्र जैन
भौतिकी अध्ययन शाला
विक्रम विश्वविद्यालय
उज्जैन (म० प्र०)

[पृष्ठ 7 का शेषांश]

में ही इंगलैण्ड के शोधकर्ताओं ने ज्ञात किया है कि मैनिक डिप्रेसिव साइकोसिस में साईक्लिक ए० एम० पी० की अधिक मात्रा पाई गई है और जैसे-जैसे यह कम होता गया वैसे-वैसे इस पदार्थ की मात्रा भी घटती गई हैं।

विश्व की अनेक प्रयोगशालाओं से समाचार प्राप्त हो रहे हैं कि कैंसर के रोगियों में दोष के कारण जो कोष रोगी हो जाते हैं उनका भी उपचार इस पदार्थ के द्वारा किया ज रहा है और इस दिशा में सफलता भी प्राप्त हो रही है।

क्या आप जानते हैं ?

शुकदेव प्रसाद

×—एक साथ सबसे अधिक अण्डे देने वाला प्राणी 'नीपी' है जो अफ्रीका में पाया जाता है। वह एक समय में ४१०० अण्डे देता है।

×—मेढक को कभी भी पसीना नहीं आता है।

×—तारपीडो ऐसी मछली है जो अपने शरीर में विद्युत पैदा करती है। उसके शरीर में विद्युत उत्पादक अंग 'इलेक्ट्रिक आर्गन' पाया जाता है जिससे विद्युत तरंगें उत्पन्न होती हैं जिनकी मदद से तारपीडो अपने दुश्मनों से अपनी रक्षा करती है तथा अपना शिकार पकड़ती है।

×—कुछ झींगा मछलियाँ शरीर से एक प्रकार का जलता हुआ द्रव छोड़ती हैं जो पानी से मिलकर जल उठता है और तेज रोशनी हो जाती है। इसी के सहारे वे शत्रुओं से बचाव करती हैं।

×—सोहना नामक जंगली कुत्ता जब संकट देखता है, तो अपनी पूँछ को अपने मूत्र से भिगोकर चारों घुमाता है। इसका मूत्र इतना विषैला होता है कि जिस पर भी पड़ता है उसकी मुसीबत हो जाती है।

×—अमेरिका में एक दिशा ज्ञान कराने वाला विचित्र वृक्ष पाया जाता है जिसके पत्तों की नोक कुतुबनुमा के समान सदा उत्तर की ओर रहती है। इसे 'कुतुबनुमा' वृक्ष कहते हैं।

×—जापान में एक ऐसा वृक्ष है जिससे सूर्यास्त के बाद धुंआ निकलता है।

×—वनस्पति जगत में सबसे विशाल फूल 'रेफ्लेसिया' तथा सबसे सूक्ष्म 'वोलफियो' का है।

×—कैलीफोर्निया में दुनिया के सबसे ऊँचे सिकोइया नाम के वृक्ष पाए जाते हैं। इनमें सबसे ऊँचे पेड़ को 'फाउडर्स ट्री' कहते हैं जिसकी ऊँचाई 364 फुट है तथा जमीन के पास का घेरा 47 फुट है। इसकी जड़ के समीप खोखला करके मोटरकार गुजरने के लिए रास्ता बनाया गया है।

×—बेनेजुएला प्रांत में एक प्रकार का पेड़ पाया जाता है जिसे 'काउट्री' कहते हैं। इस पेड़ के तने में किसी औजार से छेद करने से सफेद रंग का द्रव निकलता है जो दूध की ही भाँति मीठा और बलदायक होता है। इस प्रदेश के निवासी इसे दूध के ही रूप में प्रयोग में लाते हैं।

×—सुमात्रा में पानी बरसाने वाले पेड़ पाए जाते हैं जिन्हें 'बादल वृक्ष' कहते हैं। यह वृक्ष चारों ओर से वायुमंडल से नमी चूसता है। दोपहर में जब सूर्य का ताप बढ़ जाता है तो पेड़ के चारों ओर एकत्र नमी पानी की बूंदों के रूप में टपकने लगती है। कभी-कभी वर्षा कई इंच तक हो जाती है।

×—आकार की दृष्टि से 'विक्टोरिया रीजिया' नाम के पौधे की पत्तियाँ सबसे विशाल होती हैं।

×—मेडागास्कर में पथिकों के लिए एक बड़ा उपकारी पौधा पाया जाता है जिसे 'ट्रैवलर्स ट्री' या खजूर पंखी कहते हैं। इस वृक्ष में जिस स्थान से पत्तियाँ निकलती हैं वहाँ प्रचुर मात्रा में पानी एकत्रित रहता है। पत्तियों में छेद करने से उससे पानी टपकने लगता है। भूखे प्यासे यात्री इससे अपनी प्यास बुझाते हैं।

×—कहा जाता है दुनिया में सबके स्वादिष्ट फल 'डुरियन ट्री' का होता है जो खाने में अति स्वादिष्ट होने के साथ ही अति दुर्गन्ध युक्त भी होता है।

क्रमशः

भौतिक विज्ञान में संरक्षणता के नियम

डा० सुरेन्द्र रावत

कई शताब्दियों से दार्शनिकों तथा विचारकों ने कुछ भौतिक राशियों के सर्वव्यापकता पर विश्वास किया है जो हमारे चारों तरफ विभिन्न प्रकार के कार्यकलाप करवाते हैं। इस ब्रह्मांड में द्रव्य नित्य तथा निरंतर परिवर्त्तित होते रहते हैं लेकिन ये परिवर्त्तन कुछ विशेष आधारभूत नियमों के अन्तर्गत होते हैं। ये नियम हमेशा तथा हर जगह एक समान रहते हैं तथा इनके स्वरूप में कोई परिवर्त्तन नहीं होता है। उदाहरणार्थ, द्रव्यों के रूपान्तरण के दौरान अनुसन्धानकर्त्ताओं ने अपने अनुभवों से यह धारणा बनाई है कि रूपान्तरण से पहले द्रव्यों की कुल संहति रूपान्तरण के बाद के कुल संहति के हमेशा बराबर रहती है अर्थात संहति पर रूपान्तरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस नियम को संहति के संरक्षण का नियम कहते हैं। इससे पता चलता है कि द्रव्य को न तो उत्पन्न किया जा सकता है और न ही इसका क्षय किया जा सकता है। अतः सभी रसायनिक क्रियाओं में भौतिक पदार्थों की कुल संहति में कोई परिवर्त्तन नहीं होता है।

कुछ भौतिक राशियों के अध्ययन से यह पता चलता है कि कुछ और राशियों के संरक्षण के नियम प्राप्त हो सकते हैं। अनुभवों से यह पता चला है कि जब द्रव्य को किसी भी प्रभावित क्षेत्र में नहीं रखा जाता है तो द्रव्य में रेखीय संवेग, कोणीय संवेग, ऊर्जा तथा आवेश के परिमाण समयानुसार अपरिवर्त्तनशील रहते हैं। केवल इन राशियों के रूप में परिवर्त्तन हो सकता है। इन संरक्षणों के नियमों को बहुत अधिक अनुभवों के परिणामानुसार तथा असंख्य विभिन्न प्रयोगों द्वारा मोटे तौर पर पूर्णतः सिद्ध किया जा चुका है और यह विश्वास किया जाता है कि ये संरक्षण के नियम सूक्ष्म स्तर पर भी सत्य सिद्ध होंगे। आधुनिक भौतिकी का सम्पूर्ण स्वरूप इन संरक्षणों के नियमों की वैधता पर आधारित है। चूंकि ये नियम अनुभवजन्य हैं और किसी भी समय इन नियमों के खण्डन होने की सम्भावना हो सकती है। अतः इन नियमों को समय-समय पर नये प्रयोगों द्वारा परखना अति आवश्यक हो जाता है। इस बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में इलक्ट्रॉन कण की खोज होने से तथा परमाणु के विखण्डन होने से संहति के संरक्षण का नियम अवैध सिद्ध हो गया था लेकिन आईंस्टीन ने संहति तथा ऊर्जा ($E = mc^2$) में सम्बन्ध बतलाकर इन नियम को अवैध होते से बचा लिया। आईंस्टीन के अनुसार ऊर्जा को संहति में तथा संहति को ऊर्जा में रूपान्तरित कर सकते हैं। अतः संहति तथा ऊर्जा एक ही भौतिक राशि के दो रूप हैं इसलिए सूक्ष्म स्तर पर संहति का संरक्षण का नियम ऊर्जा के संरक्षण के नियम में परिवर्त्तन हो जाता है।

इन संरक्षण के नियमों की सत्यता को सूक्ष्म स्तर पर परखने के लिए द्रव्य के मूलभूत कणों के क्षेत्र में इन नियमों को प्रयोग में लाया जा सकता है। मुख्य कारण यह है कि इन कणों को सभी सम्भव प्रभावित क्षेत्रों से दूर रखा जा सकता है। यह हमेशा ध्यान में रखना होगा कि सभी ज्ञात संरक्षण के नियम एक साथ अन्योन्य-क्रियाओं में सन्तुष्ट होने चाहिये अन्यथा इससे गलत परिणाम निकल सकते हैं। उदाहरणार्थ, संवेग का संरक्षण का नियम यह बताता है कि यदि समान संहति वाले दो कण विपरीत दशा में समान गति से चलकर टकराते हैं तो टकराने से पहले कुल संवेग टक्कर के बाद के कुल संवेग के बराबर होता है अर्थात् इस विशिष्ट में कुल संवेग शून्य के बराबर होगा। लेकिन

यह सिद्धान्त यह नहीं बतलाता है कि टक्कर के बाद दोनों कणों का क्या वेग होगा। कणों के अन्तिम वेग टक्कर से पहले वाले वेगों से भी अधिक हो सकते हैं तथा इस समय भी संवेग का संरक्षण का नियम वैध रहता है। लेकिन यह सम्भव नहीं है क्योंकि इससे ऊर्जा का संरक्षण का नियम भंग हो जाता है। इस नियम के अनुसार कणों की कुल ऊर्जा अपरिवर्त्तित रहनी चाहिए। संवेग तथा ऊर्जा के संरक्षण के संयुक्त नियमों से प्राप्त परिणाम मूलभूत कणों से सम्बन्धित सैकड़ों प्रयोगों में सत्य सिद्ध हुए हैं। यहाँ पर ऊर्जा में कण की विश्रांत ऊर्जा भी सम्मिलित है। कण तथा इसके प्रतिकण के आपसी टक्कर से एक या एक से अधिक फोटॉन तथा उच्च ऊर्जा वाले दूसरे कण प्राप्त होते हैं। इलक्ट्रॉन e^- (ई ऋण) तथा इसका प्रतिकण पोजीट्रॉन e^+ (ई धन) के आपसी टक्कर से गामा किरण के दो फोटॉन γ (गामा) प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार बुदबुद कक्ष प्रयोगों से पता चलता है कि प्रोटॉन p^+ (पी धन) तथा प्रतिप्रोटॉन p^- (पी ऋण) के विध्वंसन से π^- (पाई ऋण) तथा π^+ (पाई धन) कण प्राप्त होते हैं। साधारणत: इस प्रकार के टक्करों में कण स्थिर रहता है और प्रतिकण का वेग माध्यम के साथ विद्युत प्रभाव को वजह से मंद हो जाता है इसलिए आपतित कणों का कुल संवेग शून्य के लगभग होगा तथा संवेग के संरक्षण के नियम के अनुसार निर्मित कणों का कुल संवेग भी शून्य के लगभग होगा। इस दशा में आपतित कणों की विश्रांत ऊर्जा, उत्पादित कणों की विश्रांत ऊर्जा तथा गतिज ऊर्जा में परिवर्त्तित हो जाती है। इलक्ट्रॉन को स्थिर रखना अत्यन्त कठिन है अत: टक्कर से पहले संवेग शून्य के बराबर नहीं होता है। दूसरे प्रकार का प्रयोग जिसमें संवेग तथा ऊर्जा के संरक्षण के नियम सत्यापित होते हैं, "मौसाब्यार प्रभाव" है। इसके आविष्कार पर 1961 में प्रो० मौसाब्यार को भौतिक विज्ञान पर नोबल पुरस्कार मिला था। इसके अनुसार, उत्तेजित नाभिक गामा किरणों के फोटॉन उत्सर्जित करता है जो उसी प्रकार के नाभिक द्वारा पुन: अवशोषित हो जाता है जो इसे उत्सर्जित करता है। इस तथ्य को "अनुनाद अवशोषण" कहते हैं। यह प्रभाव गामा किरणों की गतिज ऊर्जा सुग्राही तरीके से मापने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

ये संरक्षण के नियम न केवल इस वजह से हितकारी है कि अन्योन्यक्रिया में उचित ऊर्जा वाले सभी कण देते हैं बल्कि ये दूसरी वजह से भी लाभप्रद साबित हुए हैं। ये हमें यह भी बताते हैं कि किसी अन्योन्यक्रिया में क्या होगा और क्या नहीं होगा। इन नियमों से सम्भावित गुणों वाले कई नये मूलभूत कणों की खोज हो सकी है। न्यूट्रिनो υ (न्यू) उन्हीं कणों में से एक मूलभूत कण है। संवेग तथा ऊर्जा के संरक्षणों के नियमों से यह पता चलता है कि इलक्ट्रॉन e^-, न्यूट्रिनो υ तथा फोटॉन γ में क्षय हो सकता है इस अन्योन्यक्रिया में इलक्ट्रॉन की विश्रान्त ऊर्जा भी सम्मिलित है। लेकिन इस प्रकार की अन्योन्यक्रिया में आवेश के संरक्षण का नियम भंग हो जाता है अत: यह अन्योन्यक्रिया सम्भव नहीं है। इलक्ट्रॉन का आवेश—1 तथा न्यूट्रिनों तथा फोटॉन का आवेश शून्य होता है। यह संरक्षण का नियम लगभग एक शताब्दी पुराना है। इस नियम को सर्व प्रथम फ्रेंकलिन ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया था। इस नियम के अनुसार किसी भी अभिक्रिया में आवेश की कुल मात्रा परिवर्त्तन के बाद भी उतनी ही रहती है जितनी पहले थी अर्थात आवेश की मात्रा पर परिवर्त्तन का कोई प्रभाव नहीं होता है। उपरोक्त अन्योन्यक्रिया में, हाँ, यह सम्भव हो सकता है कि इलक्ट्रॉन अपने से कम संहति वाले तथा समान आवेश वाले कण में क्षय हो जाये लेकिन इस प्रकार का कोई आवेशित कण अभी तक प्रयोगों द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है। इस प्रकार संवेग तथा ऊर्जा के संरक्षण के साथ-साथ आवेश का संरक्षण का नियम इलक्ट्रॉन के क्षय को निषेध कर देता है। ब्रूकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला, अमेरीका में लाखों प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि इलक्ट्रॉन का क्षय नहीं होता है यदि होगा तो उसे कम से कम 10^{17} वर्ष लगेंगे जो दुर्बल अन्योन्यक्रिया में कणों के क्षय के मध्यमान समय से 10^{34} गुना अधिक है। दुर्बल अन्योन्यक्रिया में अभिलाक्षणिक जीवन-काल

10^{-10} सेकंड के लगभग होता है। इसका उदाहरण बीटा क्षय है। इस प्रकार के क्षय में रेडियोधर्मिता पदार्थ में से इलक्ट्रॉन तथा न्यूट्रिनो कण प्रक्षेपित होते है। दूसरे प्रकार के अन्योन्यक्रिया को सबल अन्योन्य-क्रिया कहते हैं। इसमें अन्योन्यक्रिया का अभिलाक्षणिक जीवन-काल 10^{-23} सेकंड के लगभग होता है। इस सबल अन्योन्यक्रिया में मुख्यत: प्रोटॉन, न्यूट्रॉन तथा अधिक भारी कण भाग लेते हैं।

इसी तरह से यह भी सोचा जा सकता है कि न्यूट्रॉन n° (एन जीरो), न्यूट्रिनों υ तथा फोटॉन γ या इसी तरह के दूसरे कणों में क्षय हो सकता है क्योंकि न्यूट्रॉन, न्यूट्रिनों तथा फोटॉन सभी आवेश रहित कण है तथा संवेग, ऊर्जा तथा आवेश के संरक्षण के नियम पूर्णतया लागू होते हैं। इसी प्रकार प्रोट्रॉन भी इसी तरह के अन्य एक या एक से अधिक कण तथा फोटॉन में क्षय हो सकता है। लेकिन प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन के क्षय सम्भव नही है क्योंकि परमाणुओं के नाभिक इन्हीं दोनों कणों से मिलकर बने हैं। यदि सम्भव होता तो पूरा का पूरा ब्रह्माण्ड कभी का विखण्डित हो जाता। इसीलिए हमें दूसरे प्रकार के संरक्षण के नियम खोजने होंगे जो प्रोटॉन तथा न्यूट्रॉन के क्षय को रोकते हों। स्टकल वर्ग तथा विग्नर ने इस भौतिक राशि को बरायन संख्या कहा जो इस प्रकार के मूलभूत कणों के अन्योन्य क्रियाओं में संरक्षित रहता है। इस बारयन संख्या की भौतिक प्रकृति अभी तक मालूम नहीं हो पाई है। यदि प्रोटॉन वह कण है। जिसपर यह संख्या है तो प्रोटॉन से भारी वे सभी कण n (न्यूट्रॉन), Λ° (लेम्डा जीरो) Σ^{+} (सिग्मा धन), Σ^{-}(सिग्मा ऋण), Σ° (सिग्मा जीरो), Ξ° (जाई जीरो), Ξ^{-} (जाई ऋण) तथा Ω^{-}(उमेगा ऋण) में भी संख्या होगी जो प्रोटॉन में है। ये सभी कण बारयन कण कहलाते हैं। इनकी बारयन संख्या +1 होती है तथा इन सभी कणों के प्रतिकणों की बारयन संख्या −1 होगी इन्हें प्रति बारयन कण कहते हैं और अन्य सभी कणों की बारयन संख्या शून्य होती है। उदाहरणार्थं Λ° का क्षय प्रोटॉन p^{+} तथा π^{-}में सम्भव है क्योंकि बारयन संख्या +1 क्षय से पहले तथा बाद में अपरिवर्त्तित रहती है लेकिन Λ° का क्षय p^{-} तथा π^{+} में सम्भव नहीं है क्योंकि बारयन संख्या +1 से परिवर्त्तित होकर $-1+0=-1$ हो जाती है। बारयन संख्या किसी भी अन्योयक्रिया में क्षय से पहले जितनी होती है उतनी ही क्षय के बाद हो तो इसे बारयन संख्या के संरक्षण का नियम कहते हैं। इसी प्रकार संहति हल्के कणों के लिए लिप्टॉन संख्या के संरक्षण का नियम लागू होता है। लिप्टॉन संख्या इलक्ट्रॉन, न्यूट्रिनों तथा μ^{-} (म्यू ऋण) कणों की +1 होती है तथा इनके प्रतिकण क्रमश: पोजीट्रॉन, प्रति-न्यूट्रिनों तथा μ^{+} (म्यू धन) की लिप्टॉन संख्या −1 होती है। इन कणों के सम्बन्धित अभिक्रियाओं में लिप्टॉन संख्या क्षय के प्रारम्भ में तथा बाद में हमेशा बराबर रहती है। लिप्टॉन संख्या का संरक्षण का नियम कुछ प्रकार के क्षयों को रोकता है जो दूसरे संरक्षणों के नियम द्वारा सम्भव हो सकता है। उदाहरणार्थ $\mu^{+} \rightarrow e^{+}+\upsilon+\upsilon$ का क्षय सम्भव है क्योंकि μ^{+} की लिप्टॉन संख्या −1 है तथा $e^{+}+\upsilon+\upsilon$ के भी लिप्टॉन संख्या $-1+1+1=-1$ है अत: यहाँ पर लिप्टान संख्या का संरक्षण का नियम सत्यापित हो जाता है। लेकिन $\mu^{+} \rightarrow e^{+}+\upsilon+\upsilon$ सम्भव नहीं है क्योंकि क्षय के बाद लिप्टान संख्या वही नहीं रहती जो क्षय से पहले थी।

बारयन संख्या के संरक्षण के नियम को बुदबुद कक्ष में प्रोटॉन के क्षय के अवलोकन के जाँच सकते हैं। प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात है कि 10^{23} वर्षों में भी प्रोटॉन का क्षय नहीं होता है। यह समय सबल अन्योन्यक्रिया-क्रिया के अभिलक्षणिक जीवन-काल से 10^{51} गुना अधिक है।

जहाँ संरक्षण के नियमों को सत्यापित करने वाले असंख्य प्रयोग हैं। वहाँ कुछ ऐसे भी प्रयोग है जिनमें संरक्षण का नियम असफल हो जाता है। इन्हीं में से संरक्षण का नियम है जिसे स्ट्रेंजनैस के संरक्षण का नियम कहते हैं। यह नियम विद्युत चुम्बकीय तथा सबल अन्योन्यक्रिया में पूर्णतया सफल रहा है लेकिन दुर्बल अन्योन्यक्रिया में असफल हो जाता है। यह गुण केवल

K^+, K^0, Λ^0, Σ^+, Σ^0, Σ^-, Ξ^0, Ξ^- तथा Ω^- कणों के साथ संलग्न है। किसी भी उपरोक्त कण का स्ट्रेंजनैस संख्या $S = 2(z - Tp) - B$ सूत्र से ज्ञात कर सकते हैं यहाँ 8 कण पर आवेश की मात्रा (इलक्ट्रॉन आवेश की इकाई में), B कण की बारयन संख्या तथा Tp समस्थानिकिय चकण का प्रक्षेप है। इस नियम के अनुसार अभिक्रिया के प्रारम्भ में कुल स्ट्रेंजनैस संख्या अभिक्रिया के बाद कुल स्ट्रेंजनैस संख्या के बराबर रहती है। स्ट्रेंजनैस संख्या के संरक्षण का नियम दुर्बल अन्योन्यक्रिया में असफल सिद्ध होना वास्तव में अनुसन्धानकर्त्ताओं की असफलता की द्योतक है क्योंकि जैसा कि पहले कहा गया है कि सभी संरक्षण के नियम हमेशा तथा हर जगह सत्यापित होने चाहिये। यह पहला संरक्षण का नियम नहीं है जो असफल हो जाता है। एक और संरक्षण का नियम है जो दुर्बल अन्योन्यक्रिया में भंग हो जाता है। उसे समता का संरक्षण का नियम कहते हैं। इस समता के संरक्षण के नियम को दुर्बल अन्योन्यक्रिया में असफल सिद्ध करने पर भौतिक शास्त्री ली तथा यंग को 1957 में नोबल पुरस्कार मिला है। इस संरक्षण के नियम के अनुसार दो कण, जो एक दूसरे के दार्पणिक प्रतिबिम्ब हैं, समान भौतिक नियमों का पालन करते है।

जिस तेजी से पहले से अधिक ऊर्जा वाले प्रेक्षप कण नये तथा अधिक ऊर्जा देने वाले त्वरक बनने के कारण उपलब्ध हो रहे हैं उतनी ही तेजी से नये संरक्षण के नियम प्राप्त हो रहे हैं तथा कई संरक्षण के नियम भी असफल सिद्ध हो रहे है। चूँकि समता के संरक्षण का नियम दुर्बल अन्योन्यक्रिया में भंग हो गया है इसीलिए कुछ भौतिक शास्त्रियों ते "CP निश्चरता सिद्धान्त" को मान्यता दी है। इस सिद्धान्त के अनुसार समता संकारक तथा आवेश संकारक का गुणनफल किसी भी अन्योन्यक्रिया में अपरिवर्त्तनशील समता संकारक का अर्थ है कि स्थिति को प्रदर्शित करने वाला तरंग फलन में निर्देशांक x से $-x$, 5 से -5 तथा z से $-z$ कर दें तथा आवेश संकारक का अर्थ है कि कण की जगह प्रतिकण ले लें तो इन दोनों संकारकों के एक साथ करने पर अन्योन्यक्रिया बिल्कुल वैसी ही होगी जैसे इन संकारकों के पहले अन्योन्यक्रिया थी। CP का मान अन्योन्यक्रिया में अभी तक संरक्षित पाया गया है।

कुछ वर्षों से यह सम्भावना की जा रही है कि CP निश्चरता किसी भी समय असफल हो सकता है यदि यह सम्भव हो गया तो CP के साथ-साथ T संकारक भी असफल हो जायेगा लेकिन CP तथा T का गुणनफल अर्थात CPT का मान निश्चर रहेगा इसे "CPT निश्चरता सिद्धान्त" कहते है। T संकारक का अर्थ है कि समय को विपरीत दिशा में ले जाएं। भौतिक शास्त्रियों की हमेशा से यह हार्दिक इच्छा रही है कि सभी उपलब्ध नियम कम से कम नियमों में परिवर्तित हो जाएँ लेकिन स्थिति कुछ निरुत्साहित सी दिखाई देती हैं। भौतिक शास्त्री वह अन्तिम मनुष्य होगा जो साहस छोड़ देगा।

इस बर्तमान शताब्दी से पहले जितने भी संरक्षण के नियम (संवेग, कोणीय संवेग, ऊर्जा तथा आवेश) बनाये गये हैं। वे सभी तथा हर जगह प्रत्येक अन्योन्यक्रिया में पूर्णतः सफल हुए हैं लेकिन बीसवीं शताब्दी की सबसे बड़ी असफलता यह रही है कि जितने भी संरक्षण के नियम इस शताब्दी में बने हैं वे कहीं न कहीं असफल होते दिखाई दे रहे हैं।

डा० सुरेन्द्र रावत
भौतिकी विभाग
राजकीय महाविद्यालय
कोटपूतली, जयपुर

श्वसन का रासायनिक नियन्त्रण

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश आमेटा

मनुष्य जीवन में श्वसन बहुत ही महत्वपूर्ण है। यदि मनुष्य की श्वसन क्रिया को थोड़ी देर के लिए रोक दिया जाय, तो उसकी मृत्यु भी हो सकती है। श्वसन में हम ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन डाई-आक्साईड बाहर निकालते हैं। साधारणतया: मनुष्य में श्वसन की गति लगभग 12 से 20 बार प्रति मिनट होती है। श्वांस अन्दर लेने की क्रिया को निश्वसन और श्वांस बाहर निकालने को नि:श्वासन कहते हैं। प्राय: एक श्वांस में स्वस्थ आदमी 500 मी०ली० हवा अन्दर लेता है।

श्वांस द्वारा ली गई हवा नासाछिद्रों द्वारा होती हुई फुफ्फुस में पहुँचती है, जहां उसकी ऑक्सीजन रुधिर में स्थानान्तरित हो जाती है और रुधिर में घुली कार्बनडाई-ऑक्साईड हवा में आ जाती है। नि:श्वासन में यह हवा बाहर निकल जाती है। श्वसन की यह क्रिया विधि प्रतिपल बनी रहती है और हमें इसका मान तक नहीं होता है। वास्तव में श्वसन पर मस्तिष्क द्वारा स्वत: ही नियंत्रण होता है। श्वसन को नियंत्रित करने वाले केन्द्र, मेडूला आबलाग्रेटा के ऊपरी व पोन्स के निचले भाग में स्थिति होते हैं। साधारण अवस्था में श्वसन का नियंत्रण ये ही केन्द्र करते हैं परन्तु विशेष अवस्थाओं में इसका नियंत्रण करने में रासायनिक कर्मकों का भी प्रमुख स्थान है। श्वसन पर नियंत्रण करने वाले कर्मक निम्न है :—

(1) कार्बन-डाई-ऑक्साईड।
(2) हाईड्रोजन आयन
(3) ऑक्सीजन

(1) कार्बन-डाई-ऑक्साईड :—साधारणतया हम श्वसन द्वारा जिस हवा को लेते हैं, उसमें कार्बन डाई-आक्साईड की सान्द्रता 0.3% ही होती है परन्तु हम श्वास द्वारा जिस हवा को छोड़ते हैं, उसमें इसकी सान्द्रता 4 से 5% तक हो जाती है। इस प्रकार साधारण अवस्थाओं में इसका (CO_2) का श्वसन पर कोई नियंत्रण नहीं रहता है।

विशेष अवस्थाओं में जब कार्बन-डाई ऑक्साईड का आंशिक दबाव रक्त में 60 मी० मी० पारे के लगभग या इससे अधिक हो जाता है (साधारण अवस्था में यह 44 से 54 मी० मी० पारे के लगभग रहता है), तब इस कार्बन-डाई-ऑक्साईड (अतिरिक्त) को फुफ्फुस बाहर निकालने में असमर्थ रहते हैं। तब ये CO_2 जो कि रक्त में घुली रहती है, रुधिर परिवहन साथ मष्तिस्क में स्थित श्वसन केन्द्रों पर सीधा असर करती हैं। ये केन्द्र रक्त में घुली CO_2 की मात्रा के प्रति बहुत संवेदी होते हैं। जब CO_2 का सान्द्रण रक्त में बढ़ जाता है तो ये केन्द्र कुछ आवेग विसर्जित करते हैं जिससे कि श्वसन की गति व गहराई बढ़ जाती है। इस प्रकार अधिक बनी CO_2 शरीर के बाहर निकल जाती है।

ज्यों-ज्यों CO_2 का सान्द्रण रक्त में बढ़ता है वैसे ही श्वसन की गति व गहराई भी बढ़ती चली जाती है। यदि हम CO_2 का सान्द्रण एक सीमा से भी अधिक बढ़ा दे तो फुफ्फुस इस अधिक CO_2 को बाहर निकालने में असमर्थ होंगे और जिससे फलस्वरूप रक्त में उसकी मात्रा और अधिक बढ़ जायेगी। अब ये बढ़ी हुई CO_2 श्वसन केन्द्रों को उत्तेजित करने की बजाय उनका अवनमन करती है और परिणाम स्वरूप स्वस्थ मनुष्य बेहोशी की अवस्था में आ आता है।

ऊपर की गई विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक निश्चित सीमा तक कार्बन-डाई-ऑक्साईड श्वसन

केन्द्रों को उद्दीपित करती है। इसलिए कृत्रिम श्वसन देते समय चिकित्सक हवा में CO_2 की मात्रा ज्यादा रखते हैं।

(2) हाईड्रोजन आयन :—कार्बन-डाई-ऑक्साइड गैस की तरह ही हाईड्रोजन आयन (H^+) भी श्वसन केन्द्रों को उधीपत करते हैं। जब भी शरीर में अम्लीयता बढ़ जाती है अथवा मुक्त H^+ की सौन्द्रता रक्त में बढ़ जाती है तो ये कैरोटिड व एओरेटिक बाड़ी के माध्यम से श्वसन केन्द्रों को उद्दीपित करते हैं (कैरोटिड व एओरेटिक बाड़ी मनुष्य के शरीर में स्थित दो छोटे आकार की रसायन–ग्राही रचनाएँ हैं, ये रसायन ग्राही हमारे रक्त में उपस्थित H^+ के छोटे से परिवर्तन के प्रति भी संवेदनशील होते हैं।)

जब रक्त में H^+ बढ़ते हैं तो ये इन रसायन ग्राही को उद्दीपित करते हैं। इसके पश्चात ये रसायन ग्राही कुछ आवेग विसर्जित करते हैं जो श्वसन केन्द्रों तक पहुँचते हैं। अन्त में श्वसन केन्द्र, श्वसन की गति और गहराई को बढ़ा देते हैं।

इस प्रकार यह कहा जाता है कि रक्त में उपस्थित H^+ भी श्वसन पर नियंत्रण करते हैं।

CO_2 एवं H^+ की नियंत्रण क्रिया विधि :—कुछ विद्वानों का मत है कि H^+ श्वसन केन्द्रों को उद्दीपित करते हैं और कुछ दूसरे वैज्ञानिकों का कथन है कि श्वसन केन्द्रों को उद्दीपित CO_2 करती है। इन दो मतों पर शरीर क्रिया विज्ञान शास्त्रियों में आपस में विरोध है। परन्तु CO_2 के उद्दीपित करने के पक्ष में कुछ प्रमाण भी है (i) कार्बन डाई-ऑक्साईड चूंकि एक गैस है, अतः यह H^+ की अपेक्षा श्वसन केन्द्रों में जल्दी विसरित होती है (ii) CO_2 वहां उपस्थित पानी से संयोग करके (कार्बन एनहाईड्रेज एन्जाईम की उपस्थिति में) कार्बोनिक अम्ल (H_2CO_3) देती है जो कि एक अस्थायी यौगिक है और टूट कर H आयन ही देता है।

$$H_2O + CO_2 \rightleftharpoons H_2CO_3$$
$$H_2CO_3 \rightleftharpoons H^+ + HCO_3^-$$
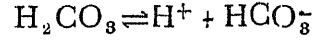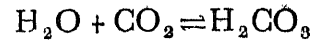
इस प्रकार दोनों बातों से यह सिद्ध हो जाता है कि CO_2, हाईड्रोजन आयनों की अपेक्षा श्वसन केन्द्रों को उध्र्ववर्ती है।

(iii) CO_2 एक प्रबल श्वसन उद्दीपित करते हैं क्योंकि यह दो तरीकों से काम करती है (अ) CO_2 श्वसन केन्द्रों को सीधे उद्दीपित करती है। (ब) CO_2 रसायन ग्राहीयों के माध्यम से भी श्वसन को उद्दीपित करती है। जबकि हाईड्रोजन आयन केवल दूसरी विधि द्वारा ही उद्दीपित करते पाये गये हैं।

(3) आक्सीजन—उपरोक्त दो रासायनिक कर्मकों की तुलना में ऑक्सीजन श्वसन केन्द्रों को निर्बलता से उद्दीपित करता है। जब रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा बहुत कम हो जाती है तो यह भी H की तरह ही रसायन ग्राहीयों के माध्यम से श्वसन केन्द्रों को उद्दीपित करता है।

शरीर में ऑक्सीजन कमी चार प्रकार से होती है जिसमें से CO_2 विषाक्तन को छोड़ कर बाकी तीनों ऑक्सीजन कमी वाली अवस्थाएँ श्वसन की गतियों को बढ़ाती है। विषाक्तन द्वारा हुई ऑक्सीजन की कमी चाहे कितनी ही खतरनाक क्यों न हो, वह श्वसन उद्दीपित करने में असमर्थ रहती है।

अतः इस प्रकार हम देखते हैं कि रासायनिक कर्मक श्वसन नियन्त्रण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा
प्राध्यापक, रसायन विभाग, सं० म० बि० रा० महाविद्यालय नाथद्वारा (राज०)
संप्तम अर्द्धसत्र आयुर्विज्ञान र०ना० टै० आयु० महाविद्यालय, उदयपुर (राज०)

रेह वाली भूमि पर कृषि की सम्भावनाएँ

संकलित

भारत में लाखों एकड़ भूमि व्यर्थ पड़ी हुई है। इसका कारण उसका रेह युक्त अथवा क्षारीय होना है। किसान रेह वाली भूमि को 'ऊसर' अथवा 'कल्लर' कहते हैं। सामान्य भाषा में इसे 'अनुर्वर', 'अनुत्पादक' अथवा बंजर भी कहा जाता है। अनुमानतः भारत में इस प्रकार की लगभग 26 लाख हेक्टयर भूमि है। इसमें से अधिकांश पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में है।

अब भारत सरकार ने अपना ध्यान इस बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने पर केन्द्रित किया है और इन प्रयत्नों के आशाजनक परिणाम दिखाई देने लगे हैं।

क्षारीय भूमि को उर्वरा बनाने के लिए करनाल (हरियाणा) स्थित केन्द्रीय क्षारीय भूमि अनुसंधान संस्थान और रायबरेली (उत्तर प्रदेश) स्थित 'भारतीय राज्य फार्म निगम' (स्टेट फार्म कारपोरेशन आव् इंडिया) अनवरत प्रयास कर रहे हैं। इन दोनों ही संस्थानों ने इस दिशा में उत्साहवर्धक सफलता प्राप्त की है।

करनाल के 'केन्द्रीय क्षारीय भूमि अनुसंधान संस्थान' की स्थापना चार वर्ष पूर्व की गयी थी। यह संस्थान कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। इस संस्थान में किये जा रहे अनुसंधानों के आधार पर अब रेह युक्त भूमि को उर्वरा भूमि में बदल पाना सम्भव हो सका है। धान की खेती के लिए यह भूमि विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकेगी।

"क्षारीय भूमि को कृषि योग्य बनाने सम्बन्धी अन्य आवश्यकताओं में भूमि को समानान्तर करना, पानी की समुचित व्यवस्था करना, और नाइट्रोजनीय उर्वरकों एवं जिंक सल्फेट का विवेकशील प्रयोग करना सम्मिलित है। यह कार्य महत्वपूर्ण है क्योंकि क्षारीय भूमि में नाइट्रोजन और जिंक (जस्त) की अत्यधिक कमी होती है।"

क्षारीय भूमि को कृषिजन्य भूमि में परिणत करने के कुछ अन्य लाभ भी है। क्षारीय भूमि बाढ़ आदि के जल को अपने ऊपर रोक रखती है और इस भूमि का एक अवगुण यह है कि यह जल को सोख पाने में समर्थ नहीं होती। मामूली सी वर्षा से भी इस भूमि में बाढ़ आ जाती है। परन्तु, यदि एक बार इस भूमि को कृषि योग्य बना दिया जाय तो उसका यह दोष स्वतः ही दूर हो जाता है।

आजकल यह संस्थान इस बारे में अनुसंधान कर रहा है कि क्या धान, मक्का तथा अन्य अनाजों की सुधरी हुई किस्मों को इस प्रकार कृषि योग्य बनाई गई भूमि पर सफलता से उगाया जा सकेगा।

रायबरेली के 'भारतीय राज्य फार्म निगम भी इसी प्रकार की एक अन्य अनुसंधान योजना पर कार्य कर रहा है। अब तक प्राप्त परिणाम काफी उत्साहवर्धक है।

'उत्तर प्रदेश में तीन लाख एकड़ से अधिक भूमि रेह वाली होने के कारण बंजर पड़ी है। अकेले रायबरेली में ही 80 हजार एकड़ क्षारीय भूमि है। निगम के वैज्ञानिक क्षारीय भूमि को उर्वरा बनाने के लिए उसके रेह को पानी के साथ बहा देते हैं। इसके लिए वह पहले भूमि को खोदते हैं फिर उस पर पानी की धार छोड़ कर रेह वाली मिट्टी को बहा देते हैं। तत्पश्चात उसमें जिप्सम मिलाया जाता है। इस प्रकार यह भूमि उपजाऊ बन जाती है।" यह विधि वैसी ही है जैसी कि कैलिफोर्निया में क्षारीय भूमि को क्षाररहित करने के लिए अपनायी जाती है। वहाँ अधिकांश भूमि की सिंचाई कोलाराडो नदी के जल से की जाती है।

डॉ० कृष्ण के अनुसार परीक्षण के द्रुतगामी परिणाम प्राप्त हुए हैं और तीन हजार एकड़ परीक्षित भूमि में से लगभग ढाई हजार एकड़ भूमि कृषि योग्य बनाई जा चुकी है। इस भूमि पर प्रारम्भ में धान का

[शेष पृष्ठ 19 पर]

विश्वविख्यात वैज्ञानिक प्रोफेसर सत्येन बोस

डा० ओम प्रकाश

जग प्रसिद्ध तथा राष्ट्रीय प्रोफेसर श्री सत्येन बोस का 4 फरवरी 1974 को प्रातः 6 बजे अल्पकालीन बीमारी के पश्चात् निधन हो गया। आप 80 वर्ष के थे। गत 1 जनवरी को समस्त देश में आपकी 80वीं वर्ष गाँठ मनाई गई थी उसके कुछ दिन पश्चात् दिल का दौरा पड़ जाने के कारण अस्वस्थ हो गये थे।

प्रो० बोस का जन्म 1 जनवरी 1894 में कलकत्ता में हुआ था। बचपन से आप कुशाग्र बुद्धि के थे तथा गणित में विशेष रुचि रखते थे। आपने सभी परीक्षाओं में सदैव प्रथम स्थान प्राप्त किया। सन् 1915 में कलकत्ता विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में एम० एस-सी० की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त उसी विश्वविद्यालय में भौतिक विज्ञान के प्रवक्ता नियुक्त हो गये। प्रो० बोस ने प्रो० मेघनन्द साहा के सहयोग से सर्वप्रथम विश्वविख्यात आइन्स्टीन के 'सापेक्षता सिद्धांत' का अनुवाद किया जिसको बाद में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने प्रकाशित किया। फिर आप दो वर्षों के लिये यूरोप चले गये और वहाँ मैडम क्यूरी के साथ उनकी प्रयोगशाला में शोध कार्य किया। बाद में एलबर्ट आइन्स्टीन के साथ भी कार्य किया। (कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि प्रो० बोस की भेंट आइन्स्टीन से कभी भी नहीं हुई)। सन् 1921 में आप ढाका विश्वविद्यालय में भौतिकी के रीडर नियुक्त हुए और आगे चलकर सन् 1927 में विभागाध्यक्ष का कार्य भार सँभाला। आपके कुशल नेतृत्व में यह विभाग उत्तरोत्तर विज्ञान में सर्वतोन्मुखी प्रगति करता रहा। अठारह वर्षों तक इस विभाग में कार्य करने के पश्चात् प्रोफेसर के रूप में आप कलकत्ता विश्वविद्यालय वापस लौट आये। उसके कुछ वर्षों उपरांत आप विश्व भारती विद्यालय के उपकुल पति नियुक्त हो गये। सन् 1958 में आप नेशनल प्रोफेसर हुए। प्रो० बोस सन् 1944 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अध्यक्ष थे। आप राज्य सभा के सदस्य भी मनोनीत हुए थे।

सैद्धान्तिक भौतिकी में अवस्था समीकरण पर प्रो० साहा के साथ आपका शोध कार्य 1917 में फिलासफिकल मैगज़ीन में छपा जो आगे चलकर साहा बोस 'अवस्था समीकरण' के नाम से विख्यात हुआ। सन् 1924 में बोस के 'प्लांक का नियम तथा प्रकाश क्वाण्टय प्राक्कल्पन' शीर्षक शोध कार्य के प्रकाशित होने के शीघ्रोपरान्त आइन्स्टीन ने इस कार्य के महत्व को समझा तथा उसका जर्मन भाषा में अनुवाद करके जर्मन भौतिकी पत्रिका त्सा० फिजि० (Z·it Physik) में प्रकाशित कराया। इस कार्य ने प्रो० बोस का नाम विज्ञान इतिहास में सदा के लिये अमर कर दिया। बोस-सांख्यिकी के पूर्व मैक्सवेल-बोल्ट्जमान सांख्यिकी प्रचलित थी पर उसके आधार पर फोटान के व्यवहार गुणों के स्पष्ट करने के हेतु किये गये प्रयोगों के परिणामों में विसंगति थी। प्रो० बोस ने एक नई गणना के आधार पर दूसरी सांख्यिक की सहायता से फोटान के व्यवहार व गुणों को समझने में अधिक सफलता प्राप्त हुई। ऐसे कण को नाम जो बोस सांख्यिकी की पुष्टि करते हैं, अनुसंधानकर्त्ता बोस के सम्मान में 'बोसान' रक्खा गया।

प्रो० बोस का दूसरा अमर शोध कार्य आइन्स्टीन के एकीकृत क्षेत्रवाद पर है। इस सिद्धान्त से संबंधित कुछ समीकरणों को हल करने में आपको आशातीत सफलता प्राप्त हुई जिससे हल करने में आइन्स्टीन को स्वयं कठिनाई पड़ रही थी। इस कार्य को 1953-55 में प्रो० बोस ने फ्रांस के प्रसिद्ध शोध पत्रिका में प्रकाशित

करवाया जिसको आगे चलकर समस्त विश्व में मान्यता प्राप्त हुई।

प्रायोगिक भौतिकी में भी आपका सराहनीय योगदान रहा। इस संबंध में 'ताप ज्योति' पर आपका कार्य उल्लेखनीय है। आपके कुशल नेतृत्व में 'एक्स-किरण क्रिस्टल रचना', 'मृदु एक्सकिरण स्पेक्ट्राकोपी' तथा ठोसों के प्रदीप्ति पर महत्वपूर्ण प्रयोग किये गये। विज्ञान के विभिन्न शाखाओं जैसे भौतिकी, गणित, सांख्यिकी, रसायनशास्त्र व खनिज विज्ञान संबंधी शोध कार्यों में रत विद्यार्थियों का समान स्नेह व उत्साह के साथ मार्ग दर्शन किया करते थे।

सन् 1958 में आपको लन्दन के राजकीय समिति का फेलो निर्वाचित किया गया। सन् 1961 में विश्व भारती विश्वविद्यालय ने आपको सर्वोच्च सम्मान 'देशिकोटम्' से सुशोभित किया। 10 जनवरी 1974 को अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों के एक सम्मेलन में आपका अभिनन्दन किया गया तथा इस अवसर पर आपकी प्रमात्रा सांख्यिकी' का जिस प्रो० आइन्स्टीन ने मान्यता प्रदान की थी, स्वर्ण जयन्ती समारोह मनाया गया। प्रो० बोस समाज के प्रति वैज्ञानिक के कर्त्तव्य को बहुत महत्व देते थे। वस्तुतः प्रो० बोस न केवल महान वैज्ञानिक थे वरन् महान मानववादी भी थे। ऐसे महान पुरुष का जीवन युवा वैज्ञानिकों को सदैव प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

[पृष्ठ 17 का शेषांश]

खेती करना निश्चित किया गया है, क्योंकि धान की खेती पानी के बहाव को रोकती है। बाद में इस भूमि पर गेहूँ आदि अन्य फसलें भी उगायी जा सकेंगी।

अनुमानतः भारत में लगभग 26 लाख हेक्टेयर क्षारीय भूमि है। इसमें से अधिकांश पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, बिहार और मध्य प्रदेश में है। इस संस्थान में किये गये अनुसंधानों के आधार पर इस प्रकार की भूमि से प्रतिवर्ष प्रति हेक्टेयर लगभग 5 टन अनाज प्राप्त हो सकेगा। इस प्रकार यदि सम्पूर्ण ऊसर भूमि पर खेती की जा सके, तो भारत को प्रतिवर्ष लगभग 1 करोड़ 50 लाख टन अतिरिक्त अनाज उपलब्ध हो सकता है, तथा राष्ट्रीय आय में भी अत्यधिक वृद्धि हो हो सकती है।

इस प्रकार क्षारीय भूमि को कृषि योग्य भूमि में परिणत कर भारत अपनी खाद्य-समस्या को हल करने में निश्चय ही सफल हो सकता है। इससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होने के साथ-साथ उद्योग-धन्धों की संख्या भी बढ़ेगी तथा बेकार लोगों को रोजगार मिलेगा।

विज्ञान-वार्ता

(1) दिल का दौरा पड़ने पर विटामिन-सी एक उपयोगी दवा

सामान्यत: 'विटामिन-सी' सर्दी-जुकाम की एक उपयोगी दवा के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु, अब विशेषज्ञों का मत है कि यह हृदाक्षेप (दिल का दौरा) रोग में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने में सक्षम औषधि सिद्ध होगी।

ब्राटिसलावा के एक चेकोस्लावाकिया वंशी डा० एमिल गिण्टर का कथन है कि उनके द्वारा गायना सुअरों पर किये गये परीक्षणों से यह सिद्ध हुआ है कि विटामिन-सी शरीर में विद्यमान मोम जैसे एक रसायन 'कोलेस्ट्राल' को निकालने में अति सहायक है। कोलेस्ट्राल पदार्थ की अधिकता हो जाने पर यह महाधमनी में चिपक जाता है, जिसके कारण हृद-रोग होने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

डा० गिण्टर ने गायना सुअरों के ऐसे दो वर्गों का अध्ययन किया, जिनमें एक वर्ग के सुअरों में विटामिन-सी की मात्रा सामान्य थी तथा दूसरे वर्ग के सुअरों में विटामिन-सी की कमी थी। उन्होंने पाया कि विटामिन-सी की कमी वाले सुअर अपने शरीर से स्वाभाविक रूप में कालेस्ट्राल पदार्थ का प्रवाह मुश्किल से ही कर पाते थे।

डा० गिण्टर का विश्वास है कि विटामिन-सी द्वारा यकृत में एन्जाइमों को कौलेस्ट्राल का पित्त-पदार्थ में परिवर्तित करने में सहायता मिलती है और इस प्रकार यह स्वाभाविक रूप में शरीर से निरस्त हो जाता है।

(2) पक्षाघात रोग के कारणों सम्बन्धी एक नवीन धारणा

चिकित्सक अभी भी पक्षाघात होने के सुनिश्चित कारणों का पता नहीं लगा सके हैं। परन्तु, अब एक अर्जेण्टीनी वैज्ञानिक द्वारा की गयी नाड़ी-छोरों से सम्बन्धित खोजों के आधार पर पक्षाघात रोग होने के अज्ञात कारणों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है। डा० एडुअर्डो डी० रोबर्टिस का कथन है कि अब तक यही समझा जाता रहा है कि पक्षाघात रोग होने का कारण नाड़ियों की संप्रेषण-इन्द्रियों में गड़बड़ उत्पन्न होना है। परन्तु उनके, मतानुसार, वस्तुत:, नाड़ियों की संग्राही-प्रणाली में उत्पन्न दोष ही इसका कारण है। नाड़ी-कोशिकाएं एक-दूसरे से उसी प्रकार सम्बद्ध होती हैं, जिस प्रकार विद्युतीय संयोजक आपस में सम्बद्ध होते हैं। विद्युदाणविक सूक्ष्मदर्शी यन्त्र से देखने पर पता चलता है कि नाड़ियों का यह अन्तर्ग्रंथन मस्तिष्क के ग्रे-मेटर (मस्तिष्क का वाह्य धूसर क्रियाशील भाग) का लगभग 60 प्रतिशत भाग घेरे हुए है।

जब कोई संवेग या सन्देश नाड़ियों से होकर गुजरता है, तो सम्प्रेषण इन्द्रियों के छोर पर एक रसायन का सृजन होता है। यह रसायन नाड़ियों के अन्तर्ग्रंथन के छोर पर प्रोटीन की प्रतिक्रिया को गतिशील कर सम्वेग का पारेषण करता है। डा० डी० रोबर्टिस ने ऐसी असंख्य प्रोटीनों को पृथक करने में सफलता प्राप्त की है, जो पारेषी रसायन पर प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं।

उन्होंने इस कार्य प्रणाली की एक क्रियाशील प्रतिकृति (वर्किंग मॉडेल) तैयार की है। इसमें कुछ संग्राहक प्रोटीनों को कृत्रिम झिल्लियों में प्रस्थापित किया गया है। ये प्रोटीनें निष्क्रिय झिल्लियों को सम्वाही बनाती हैं। प्रेषण उपकरण द्वारा एक रसायन छोड़े जाने पर ये प्रोटीनें सक्रिय हो उठती हैं जिससे नाड़ियों से होकर उसके दूसरे छोर पर विद्युतीय सम्वेग पहुँच पाना सम्भव होता है। यदि संग्राहक प्रोटीनें संज्ञाहीन हो जाती हैं तो वे पारेषी रसायन द्वारा

क्रियाशील नहीं हो पातीं। इस प्रकार नाड़ियां संवाही नहीं होतीं और इससे होकर संवेग संयोजन तक नहीं पहुँच पाता।

(3) क्या आपका बच्चा अस्पताल जाने से डरता है ?

स्वभावत: अधिकांश बच्चे चिकित्सा के लिए अस्पताल ले जाने के लिए माता-पिता को काफी प्रयत्न करना पड़ता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि ऐसे बच्चों के अभिभावक उन्हें किस प्रकार तैयार करते। बच्चों में पायी जाने वाली इस भय की स्थिति के कारणों का पता लगाने के लिए, हाल ही में, लॉस एंजेलस के चिकित्सा और बाल क्रियाकलाप कार्यक्रम के विशेषज्ञों ने 4 वर्ष से 14 वर्ष की आयु के कुछ बालक और बालिकाओं और उनकी माताओं का अध्ययन किया।

इन चिकित्सकों के अनुसन्धान के अनुसार, जो डाक्टरों की दूकान अथवा अस्पताल जाने से डरते हैं। उनको चिकित्सा के लिए अभिभावक अपने बच्चों की जिज्ञासा अथवा आशंका का पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण नहीं करते अथवा उन्हें उसके प्रति विस्तार से नहीं बताते, उनके बच्चे अधिक भयभीत होते हैं। इसके विपरीत, वे बच्चे जिनकी जिज्ञासा का सही ढंग से और विस्तार के साथ स्पष्टीकरण कर दिया जाता है, कम भयभीत होते हैं। इसी प्रकार, ऐसे बच्चों में भी, जिनके माता-पिता उनके रोने आदि के समय उन्हें रोकते-टोकते हैं अथवा डराते धमकाते हैं, भय की भावना जन्म लेती है। परंतु ऐसे अभिभावक जो बच्चों के रोने पर कोई ध्यान नहीं देते, बच्चों में भय की इस प्रवृत्ति को कम करने में सहायक होते हैं। बच्चों में अजनबियों द्वारा छुये जाने, पीड़ा की अनुभूति और चाहे थोड़े समय के लिए ही सही, अपनी माँ से बिछुड़ने में एक प्रकार का स्वाभाविक भय और चिन्ता विद्यमान रहती है।

(4) नियमित आहार का चिड़ियाघर के प्राणियों पर प्रभाव

प्राय: देखा गया है कि चिड़ियाघर के जीव जन्तुओं में प्रजनन-क्षमता घट जाती है। तत्सम्बन्धी नवीन खोजों के अनुसार, इसका कारण उनको दिया जाने वाला दैनिक आहार है।

अमेरिका के 'नेशनल ज्योलोजीकल पार्क' के डाक्टर, रावर्ट एम० सीअर, ने इस चिड़ियाघर के जीव जन्तुओं पर अनुसन्धान करने के उपरान्त, सम्प्रति यह विचार प्रकट किया है कि अनेक प्राणियों में विटामिन 'ई' और सैलेनियम तत्व की कमी हो जाती है। यह कमी विशेष रूप से खुर वाले, रेंगने वाले और परों वाले जीव जन्तुओं में अधिक होती है।

डा० सीअर ने कहा कि इन दोनों तत्वों-विटामिन 'ई' तथा सेलेनियम—की कमी के कारण इन प्राणियों पर कई प्रकार के प्रभाव दिखायी देते हैं। इनमें से निम्न तीन प्रभाव उल्लेखनीय हैं—(1) उनकी प्रजनन-क्षमता कम होती है; (2) वे मरे हुए बच्चों को जन्म देते हैं; अथवा (3) उनके बच्चे जन्म लेने के तुरन्त बाद मर जाते हैं।

इनके अनुसार, इसका कारण उनके दैनिक भोजन में पौष्टिक तत्वों की कमी का होना है। उनके लिए, प्राय: जिस भोजन का चुनाव किया जाता है, उसमें केवल इसी बात का ध्यान रखा जाता है कि वह सहज प्राप्त हो और सस्ता भी हो।

डा० सीअर का सुझाव है कि इन जीव जन्तुओं को 'सेलेनियम' से भरपूर भोजन दिया जाना चाहिये और उसमें विटामिन 'ई' की अतिरिक्त मात्रा मिलायी जानी चाहिये।

(5) आणविक औषधियाँ

शीघ्र ही दवा विक्रेताओं की दूकानों पर कुछेक ऐसी रेडियोसक्रिय दवाएं दिखाई देने लगेंगी, जिनसे हृदरोग और अरक्तता रोग की सही सही जांच कर पाना सम्भव होगा। इन रेडियोसक्रिय दवाओं में तीन हैं—(1) सेसियम-127; (2) सेसियम-129; और (3) आइरन-52। प्रथम दो दवाएं दिल का दौरा पड़ने के कारण हृदय को पहुंची क्षति का पता लगाने में सहायक हैं और तीसरी दवा के प्रयोग द्वारा अरक्तता रोग की सही-सही जाँचकर पाना सम्भव है।

इन दवाओं के परीक्षणात्मक प्रयोग बहुत ही संतोषजनक रहे हैं। साथ ही, इनकी रेडियोसक्रियता का रोगी पर अत्यल्प प्रभाव दिखायी देता है।

इन औषधियों की निर्माण विधि का विकास अमेरिका के खाद्य एवं औषधि प्रशासन विभाग की परमाणु औषधि प्रयोगशाला के कार्यकारी अध्यक्ष, डा० विन्सेण्ट जे० सोड, ने किया है। डा० सोड का कहना है कि यह दवाएं अभी बाजार में उपलब्ध नहीं हैं, परन्तु उन्हें आशा है कि उनके द्वारा विकसित विधि द्वारा निर्माण किये जाने के कारण, ये शीघ्र ही आम जनता के उपयोगार्थ उपलब्ध हो सकेंगी।

(6) हृदरोग की चिकित्सा में कम्प्यूटर का प्रयोग

हृदरोग की चिकित्सा में अब कम्प्यूटर बड़े ही उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। मिशिगन विश्वविद्यालय के चिकित्सालय में इन कम्प्यूटरों का प्रयोग हृदरोग की शल्य-चिकित्सा वाले रोगियों की भली प्रकार देख-भाल में किया जा रहा है। ऐसी चिकित्सा में, पूर्व विधि की अपेक्षा कम्प्यूटर द्वारा रोगियों की देखभाल की इस विधि से एक ही समय में अब अधिक रोगियों की और अच्छी प्रकार देखभाल की जा सकती है। इस नयी विधि के प्रयोग से, जहाँ एक ओर, रोगियों की देखभाल के स्तर में सुधार हुआ है, वहीं दूसरी ओर, उनकी देखरेख में लगने वाले समय की बचत के कारण चिकित्सा कर्मचारियों को अब उनकी ओर और अधिक ध्यान दे पाने के लिए अवकाश रहेगा। इन चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार, इस विधि के अन्तर्गत कम्प्यूटर द्वारा स्वत: ही रोगी की जैव-क्रिया का निरीक्षण किया जाता है, शारीरिक द्रव्य के संतुलन बनाये रखने के लिए औषधियाँ दी जाती हैं और आवश्यकता होने पर रोगी को रक्त और प्लाज्मा भी दिया जाता है।

(7) कैन्सर की व्यापकता के विरुद्ध अभियान

कैन्सर एक संसार-व्यापी समस्या है। पश्चिमी देशों में यह मृत्यु का प्रधान कारण है। हृदरोग के बाद इसका दूसरा स्थान है। भारत में, विशेषकर दक्षिण पूर्व एशिया में, 8 में से 6 मृत्युएँ कैन्सर के कारण ही होती हैं। परन्तु, तेजी से होते औद्योगीकरण, नगरीकरण और संचारी बीमारियों पर नियन्त्रण के कारण, दक्षिण-पूर्व एशिया में इसका और अधिक फैलने की सम्भावना है। अत:, इस सम्भावना के दुष्परिणामों से बचने के लिए। हाल ही में, नई दिल्ली में, भारतीय चिकित्सा अनुसन्धान परिषद, ने 'विश्व स्वास्थ संगठन' तथा 'अन्तर्राष्ट्रीय' कैन्सर अनुसन्धान एजेन्सी' के सहयोग से 'दक्षिण-पूर्व एशिया में कैन्सर को संक्रामकता' विषय पर एक सम्मेलन का आयोजन किया।

सम्मेलन के उद्घाटन अवसर पर भाषण करते हुए, 'भारतीय चिकित्सा-अनुसन्धान परिषद' के निदेशक, डा० पी० एन० वाही, ने कहा।

"इस सम्मेलन का उद्देश्य कैन्सर रोग से सम्बन्धित बैज्ञानिकों का आपस में मिलकर विचार-विनिमय करना और रोग के उन्मूलन एवं नियन्त्रण से सम्बन्धित अनुसन्धानों की प्रगति का आदान-प्रदान करना है। क्योंकि यह एक विश्वव्यापी समस्या है और अधिकांशत: सब जगह एक ही प्रकार के कैन्सर पाये जाते हैं, जैसे—मुँह का कैन्सर; गर्भाशय तथा गर्भाशय-ग्रीवा का कैन्सर; ग्रासिका (अन्न नली) तथा कण्ठ का कैन्सर; आदि। अत:, जब समस्या एक समान ही है, तब व्यक्तिगत प्रयासों की अपेक्षा, समान एवं सम्मिलित प्रयास द्वारा ही इसे हल करना श्रेयस्कर है। इस प्रकार हम जानकारी और अनुसन्धान-ज्ञान को एक स्थान पर संग्रह कर सकते है और अपने सम्मिलित प्रयासों को आगे बढ़ा सकते हैं।"

इस सम्मेलन की एक महत्वपूर्ण सफलता समस्या से प्रति 'वातावरण की भूमिका' पर विचार करना भी था। दक्षिण-पूर्व एशिया में, आमतौर पर, 80 प्रतिशत लोग तम्बाकू का प्रयोग करते हैं। यह कैन्सर रोग होने का प्रमुखतम कारण है। इस समस्या से निपटने के लिए डा० वाही ने लोगों को इस आदत के दुष्परिणामों के प्रति सचेत करने का सुझाव दिया।

सम्मेलन की महत्वपूर्ण सफलता अनेक देशों के लिए एक संयुक्त प्रशिक्षण-केन्द्र की स्थापना है। डा०

वाही के अनुसार, 'यद्यपि कैन्सर हमारा भयंकरतम शत्रु है, फिर भी, संयुक्त प्रयासों की सम्भावना द्वारा हम इस समस्या पर विजय पाने में सक्षम हो सकते हैं।''

(8) वायुयान चालकों के लिए चेतावनी-सूचक यन्त्र का विकास

कभी-कभी मध्य आकाश में उड़ते किन्हीं दो विमानों के आपस में टकराने के समाचार सुनने में आते रहते हैं। परन्तु, अब कदाचित इस प्रकार की भिडन्त की सम्भावना नहीं रहेगी। कैम्ब्रिज, मैसाचुसेट्स, की एक महिला ने एक ऐसा आविष्कार किया है जिसकी सहायता से वायुयान चालक किसी अन्य यान से टकराने से बच सकेगा।

महिला अभियान्त्रिको वैज्ञानिक, डा० एनी स्टॉरी, ने एक ऐसे 'चेतावनी संकेतक' यन्त्र का आविष्कार किया है, जो वायुयान चालक को उसके मार्ग में आने वाले अन्य विमान के प्रति तत्काल सावधान कर सकता है। इस नये यन्त्र में चालक की कनखियों से देख पाने की समर्थता का लाभ उठाया गया है। इस विधि के अन्तर्गत, संकेत सूचक बल्ब से युक्त एक फलक चालक के सम्मुख लगा रहता है। यह यंत्र सामने की ओर देखने वाली खिड़को से सम्बद्ध रहता है, जिससे यह यसकी दृष्टि परिधि में रहे। वायुयान चालक को आकाश-मार्ग में आने वाले अन्य विमान के दीखने से पूर्व ही, यह यन्त्र संसूचक फलक पर लगे बल्बों में से किन्हीं विशेष बल्बों का प्रकाशित कर के, चालक को तत्काल ही अन्य वायुयान की उपस्थिति के प्रति सचेत कर देता है। यही नहीं, चालक नेत्र घुमाये बिना हो जान लेता है कि अन्य यान किस दिशा से आ रहा है और इस प्रकार उसके टकरा सकने से पूर्व ही वह अपने विमान को दूसरी दिशा में उड़ा कर सुरक्षित बच सकता है।

स्वर्ण-पदक वितरण

14 जनवरी, 1974 को विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद के भवन में दो स्वर्ण-पदकों का वितरण किया गया। इस अवसर पर डा० बाबू राम सक्सेना, सभापति विज्ञान परिषद ने अध्यक्षता को तथा श्री राम सहाय, उपकुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, मुख्य अतिथि थे।

1973 का डा० रत्नकुमारी स्वर्ण-पदक विज्ञान परिषद् अनुसन्धान पत्रिका में 1971-72 में प्रकाशित सर्वोत्कृष्ट शोध निबन्ध 'बहु विद्युत अपघट्यों की रुद्धोष्म संपीड्यता के पराश्रव्य की (अल्ट्रासौनिक) अध्ययन के लिये डा पी० राय चौधरी को प्रदान किया गया। डा० राय चौधरी राष्ट्रीय रसायन प्रयोगशाला पूना में साइंटिस्ट के पद पर कार्य करते हैं।

दूसरा पुरस्कार 1973 का स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक श्री ए० सी० सहगल को उनकी पुस्तक 'नवीन बनस्पति विज्ञान' पर प्रदान किया गया जो 1970-72 में प्रकाशित हिन्दी की वैज्ञानिक पुस्तकों में सर्वोत्तम घोषित की गई। श्री सहगल ने राज्य विज्ञान संस्थान में बनस्पति विज्ञान के प्रोफेसर पद से हाल ही में अवकाश ग्रहण किया।

डा० रत्नकुमारी स्वर्ण-पदक के लिये डा० सत्य प्रकाश ने एक निधि प्रदान की है जिसमें से हर दूसरे वर्ष विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका में प्रकाशित सर्वोत्तम शोध पत्र के लेखक को शोधस्वर्ण-पदक दिया जाता है। स्वामी हरिशरण नन्द स्वर्ण-पदक पंजाब आयुर्वेद फार्मेसी के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय हरिशरण नन्द की स्मृति में दिया जाता है जिसके लिये स्वामी जी द्वारा पुरस्कार के लिये दी गई धन-राशि का उपयोग किया जाता है।

पुस्तक समीक्षा

1. भारत की सम्पदा (पूरक खण्ड)—पशुधन और कुक्कुट-पालन। प्रकाशक—प्रकाशन एवं सूचना निदेशालय, नई दिल्ली। 1973 पृष्ठ 242

यह खण्ड 'भारत की सम्पदा – प्राकृतिक पदार्थ' ग्रन्थमाला का पूरक खण्ड है और उस श्रृंखला की चौथी कड़ी है जिसका प्रकाशन 1971 में प्रारम्भ हुआ। यह हर्ष एवं प्रशंसा की बात है कि तीन वर्ष के भीतर चार खण्ड प्रकाशित होकर हिन्दी पाठकों के सम्मुख हैं।

इस पूरक खण्ड का मुख्य विषय पशुधन है जिसमें विभिन्न पालतू, घरेलू, उपयोगी पशुओं तथा पक्षियों के सम्बन्ध में आधिकारिक सामग्री प्रस्तुत है। इस खण्ड में 11 अनुभाग हैं। यह मूल रूप में "लाइव स्टाक सप्लीमेंट" के नाम से प्रकाशित हुआ था। इसका अनुवाद जिन छह विद्वानों ने किया है उनमें से तीन विश्वविद्यालयों से हैं। यह मात्र अनुवाद नहीं है, इसमें आये विवरण एवं आँकड़े अद्यतन कर दिये गये हैं जिससे इस खण्ड की उपयोगिता मूल से बढ़ गई है।

इस ग्रंथ के अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची तथा अनुक्रमणिका दी हुई है।

ग्रंथ में कई रंगीन चित्र भी हैं। इसकी छपाई अत्यन्त आकर्षक है। छापे की बहुत ही कम भूलें हैं।

अपने देश में दूध-दही, मांस, ऊन, चमड़ा आदि की स्थिति से परिचित होने तथा पशु धन से प्राप्त इन विविध उत्पादों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक जानकारी के लिए यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। कुक्कुट-पालन के सम्बन्ध में दिया गया अध्ययन भी सर्वांगीण है।

प्रत्येक पुस्तकालय तथा प्रत्येक कृषि-विद्यालय एवं डेरी के लिए यह ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय सिद्ध होगा।

2. पादप रसायन भाग 1—लेखक डा० शिव गोपाल मिश्र। प्रकाशक—उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ। पृष्ठ सं 290 मूल्य 10-50 रु० दिसम्बर 1973.

यह हिन्दी में प्रकाशित पहली पुस्तक है जो पादप रसायन के विभिन्न अंगों की पूर्ति के उद्देश्य से लिखी गई है। यह भारत के कृषि विश्वविद्यालयों की बी-एस० सी० तथा एम०एससी० (कृषि) कक्षाओं के लिये सर्वथा नवीन एवं उपयोगी पुस्तक है।

प्रथम खण्ड के लेखक हिन्दी के सुपरिचित व्यक्ति हैं जिन्हें इलाहाबाद विश्वविद्यालय में कृषि रसायन अध्यापन का दीर्घकालीन अनुभव प्राप्त है। फलत: पुस्तक शैली तथा भाषा की दृष्टि से ही नहीं वरन् सामग्री की दृष्टि से भी अत्यन्त प्रामाणिक है।

इस खण्ड में कुल 12 अध्याय हैं—ऐतिहासिक, पदार्थों की रासायनिक संरचना, कार्बोहाइड्रेट, लिपिड, ग्लाइकोसाइड, टैनिन, ऐल्कैलायड, पादपों के रंजक पदार्थ, टर्पीन, पादप अम्ल, प्रोटीन तथा ऐमीनो अम्ल एवं न्यूक्लियोसाइड। इस पुस्तक में जैवरसायन सम्बन्धी आधुनिकतम साहित्य का समावेश है। प्रसंगानुसार चित्र एवं सारिणियाँ दी गई हैं। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक कोष भी है।

आशा है कि विश्वविद्यालयों के छात्रों एवं अध्यापकों के लिए यह पुस्तक समान रूप से लाभकर होगी। पुस्तकालयों के लिये यह सर्वथा संग्रहणीय है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111	फाल्गुन 2031 विक्र०, 1894 शकाब्द अप्रैल 1974	संख्या 4

हमारी राष्ट्रीय अनुसंधानशालायें—

औद्योगिक विष-विज्ञान अनुसंधान केन्द्र

राजेश गुप्त

आज के उद्योग प्रधान युग में जब कि सर्वत्र औद्योगिक क्रान्ति की लहर चल रही है उद्योगों में चाहे वह गृह-उद्योग, कुटीर-उद्योग, लघु उद्योग अथवा भारी उद्योग ही क्यों न हों उनमें अब अनेक नये कार्बनिक यौगिकों, रसायनों तथा विषैली धातुओं का प्रयोग होने लगा है जिसके कारण उद्योगकर्मियों को न केवल इन विषैले पदार्थों के संसर्ग में रहना पड़ता है वरन् उन्हें पान भी करना पड़ता है। ये विषैले पदार्थ उनके शरीर में ज्यों के त्यों या उत्पाद के रूप में जमा होकर काफी क्षति पहुँचाते हैं और उनमें अनेक प्रकार के व्यावसायिक रोग उत्पन्न करके उन्हें शनैः-शनैः मृत्यु की ओर ढकेलते हैं। इसके साथ ही साथ कल-कारखानों से निकलने वाला व्यर्थ दूषित जल व उनकी चिमनियों से निकलने वाला भूरा धुँआ ने वायु, जल एवं भूमि को इतना अधिक प्रदूषित किया है कि मनुष्य के साथ-साथ जीव जन्तुओं तक का इस धरा पर जीवन दूभर हो गया। यह समस्या राष्ट्र के सामने एक चुनौती बन गई जिससे हमारी सरकार को एक ऐसे अनुसंधान केन्द्र की स्थापना करने का संकल्प करना पड़ा जो उद्योग-धंधों से निकलने वाले विषों के मानव जीवन पर पड़ने वाले कुप्रभावों का विधिवत अध्ययन करे।

इस योजना के अन्तर्गत वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद् ने सन् 1965 में औद्योगिक विष-विज्ञान अनुसंधान केन्द्र की लखनऊ में स्थापना की जिसका उद्देश्य उद्योगों में विष की तलाश कर उनकी तात्कालिक और दीर्घकालिक विषालुता की जानकारी करना है फिर उनका सही निदान, उपचार तथा बचाव का मार्ग प्रशस्त करना इस केन्द्र के कार्यक्षेत्र

में आता है। इसके अतिरिक्त इस केन्द्र ने दैनिक जीवन में प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं, खाद्य-सामग्रियों में मिलावट के सम्बन्ध में जिन तथ्यों का पता लगाया है वे सिर्फ चौंका देने वाले ही नहीं वरन् आश्चर्यप्रद भी हैं।

खाद्य-सामग्री में जान लेवा रंगों की मिलावट

उत्तर प्रदेश के विभिन्न नगरों से प्राप्त खाद्य सामग्री के नमूनों की जाँच करने पर इस केन्द्र ने यह पाया कि उनमें से 70 प्रतिशत नमूनों में ऐसे रंगों की मिलावट है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं और शरीर में जमा होने पर प्रजनन शक्ति में ह्रास, 'कैंसर' तथा ट्यूमर आदि जटिल बीमारियों को जन्म देते हैं अवैध रंगों में 'गऊ मार्का' पीला रंग का प्रयोग सबसे अधिक होता है और इसकी सबसे ज्यादा मिलावट अरहर, चने, मटर की दालों को रंगने में तथा हलवाइयों द्वारा मिठाइयाँ और नमकीन बनाने में होती है। इस केन्द्र ने इस रंग पर शोध द्वारा ज्ञात किया कि इसमें ऐसे रसायन मिले हुए हैं जो अनेक रोगों को जन्म देते हैं तथा मनुष्य की प्रजनन शक्ति का ह्रास करते हैं। यह अवैध रंग पानी में घुलनशील है अतः जनता को चाहिये कि वह दालों का प्रयोग पानी में कई बार धोने के बाद करे तथा हलवाइयों से मिठाइयाँ तथा नमकीन न मोल ले।

संश्लेषित रंजक

आजकल हमारे देश में लगभग 272 रंजकों (डाईस) का उपयोग कताई-बुनाई उद्योग, कीटनाशी उद्योग तथा रसायन उद्योग आदि में होता है। इनमें 'वैजेन्थ्रोन' रंजक प्रमुख है। इस रंजक ने मफतलाल ग्रुप की 'इण्डियन डाईस्टफ इण्डस्ट्री, कल्याण, बम्बई में उद्योगकर्मियों की त्वचा में जलन, खुजली के साथ-साथ चेहरे पर काले निशान व धब्बे उत्पन्न किये हैं। यह व्यावसायिक रोग इस केन्द्र को विचार विमर्श के लिए सौंपा गया और रोग के सम्बन्ध में काफी अध्ययन-अनुसंधान कार्य द्वारा यह ज्ञात किया गया कि यदि उद्योगकर्मियों को उचित मात्रा में 'ऐस्कार्बिक एसिड' (विटामिन (सी) खाने को दिया जाय और काले निशान व धब्बों पर हाइड्रोक्यूनोन से बना मरहम लगाया जाय तो वे इस भयंकर रोग से मुक्ति पा सकते हैं।

धूल-प्रदूषण का एक कारण

हमारे चारों तरफ किसी न किसी चीज की धूल हमेशा उड़ती रहती है। इस धूल में परागकणों, रोगाणुओं के अलावा अनेक प्रकार के रसायनों के बारीक कण भी मिले रहते हैं। साँस के साथ ये कण जब शरीर में घुसपैठ कर जाते हैं तो अस्थमा, जुकाम तथा शरीर के अन्य तंत्रों की कार्य प्रणाली में 'एलर्जी-जन्य' रोग हो जाते हैं। हमारे उद्योगों में भी अनेक प्रकार के कच्चे माल के उपयोग होने के फलस्वरूप बड़ी मात्रा में धूल निकलती है जिसका बुरा प्रभाव उद्योग कर्मियों पर पड़ता है और फलस्वरूप 'फुफ्फस धूलिमयता' नामक रोग ही हो जाता है। यह रोग भी अनेक प्रकार का होता है। उदाहरणार्थ 'सिलिका'—धूल के कारण उत्पन्न हुई फुफ्फुस धूलिमयता 'सिकतामयता' कहलाती है और 'एस्वेस्टास' धूल जन्य फुफ्फुस धूलिमयता 'एस्वेस्टासिस'। सिकतामयता के रोगी संसार के सभी देशों में पाये जाते हैं। फ्लिट, बलुआ पत्थर, ग्रेनाइट आदि का उपयोग करने वाले उद्योगों तथा पाँटरी, स्लेट, उत्खनन, लोहा और इस्पात ढलाई उद्योगों में काम करने वालों को सिकतामयता रोग सबसे ज्यादा होता है। इस रोग के आरम्भ में श्वसनीशोथ के लक्षण प्रकट होते हैं और अधिक समय तक 'सिलिका' धूल के प्रभाव में रहने पर रोगी पूर्णतः असमर्थ हो जाता है, हृदय का आकार बढ़ जाता है और हृदयगत्यवरोध भी हो सकता है। यह भी पाया गया है कि सिकतामयता के रोगियों में से 75 प्रतिशत को यक्ष्मा रोग भी हो जाता है और वे रोग जटिलता में ही काल को प्राप्त होते हैं। इस रोग के सम्बन्ध में इस केन्द्र में अध्ययन अनुसंधान कार्य केन्द्र के वर्तमान निदेशक डा० एस० एच० जैदी की देखरेख में हुआ है जिससे कि यह निष्कर्ष निकला कि भोजन में पोषक पदार्थों की कमी का इस रोग पर कोई असर नहीं पड़ता है। 'एस्वेस्टासिस' नामक रोग उत्पन्न करने वाले एस्वेस्टास में मैग्नीशियम और लोहे के सिलिकेट होते हैं जिससे उद्योगकर्मियों को फेफेड़ा कैंसर और

,मीजोथीलियोमा' आदि रोग हो सकते हैं। इसके अलावा लोहे की धूल, कोयले की धूल, कपास की धूल तथा पाउडरटिन आदि से भी विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं।

कृषि के आधुनिकीकरण के कारण मशीनों का प्रयोग कृषि में बढ़ा है और अब कृषक अपनी फसलों को काटने तथा खाद्यान्नों को इकट्ठा करने में विभिन्न प्रकार की मशीनों का प्रयोग करने लगा है जिसके कारण कृषकों को खाद्य पदार्थों की धूल के प्रभावाधीन रहना पड़ता है और धूल के फेफड़ों के घुसपैठ के कारण उनके फेफड़ों को विशेष प्रकार का रोग हो जाता है जिसे 'फारमंसलंग' या कृषक फुफ्फुस कहते हैं। इस रोग के लक्षण साँस लेने में कठिनाई, खाँसी तथा हल्का ज्वर है। इस केन्द्र में इस रोग के कारण तथा रोकथाम पर अध्ययन चल रहा है और यहां के वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह रोग मुख्यतया सूखी घास की धूल के कारण होता है।

धूल प्रदूषण के अतिरिक्त धुँए, कोहरे तथा विषैली गैसों जैसे कार्बन मानो आक्साइड, सल्फर डाई आक्साइड, नाइट्स आक्साइड और ओजोन आदि के द्वारा भी औद्योगिक बस्तियों की वायु प्रदूषित होती रहती है जिसके निदान हेतु यहाँ वृहत्तर कार्य हो रहा है और इस सम्बन्ध में युवा वैज्ञानिकों का मत है कि पहले अपने कल-कारखानों को जो कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद और कानपुर आदि नगरों में केन्द्रित हैं उन्हें पूरे देश में फैला देना चाहिये तथा जहाँ नई उद्योग बस्तियाँ बनाई जाँय वहाँ पर काफी खुली जगह और बाग बगीचों का प्रबन्ध हो, सड़कों के किनारे-किनारे जंगल जलेबी, आम, पीपल, बरगद, नीम तथा यूक्लिपट्स आदि के वृक्षों की कतारे हों क्योंकि प्रकृति की देन पेड़-पौधे हवा के बहाव की गति को कम करके तथा विषैली गैसों का शोषण करके वायु प्रदूषण के निदान में योगदान देंगे और प्रकृति के कोमल संतुलन को बनाये रखने में हमारे सहायक सिद्ध होंगे।

धातुएँ रसायन और कार्बनिक यौगिक भी विषैले

विभिन्न उद्योगों में प्रयोग होने वाले बहुत से रसायन और धातुएँ ऐसी हैं जो उद्योगकर्मियों में विभिन्न प्रकार के व्यावसायिक रोगों को जन्म देती हैं। सीसा खनन भारत का एक प्रमुख उद्योग है और इस धातु का विषैला प्रभाव बच्चों के लिये अत्यन्त गम्भीर होता है क्योंकि इससे हड्डियाँ गल जाती हैं? सीसा धातु का प्रयोग पाँटरी, जहाजों तथा कोच पेंटिंग में होता है। इसके अलावा सफेदा, सिंदूर, लेड क्रोमेट, लिथार्ज तथा रबड़ उद्योगों में काम करने वाले व्यक्तियों को भी सीसा विषाक्तता का सामना करना पड़ता है। यह सीसा फेफड़ों तथा आमाशयांत्र में पहुँचकर धीरे-धीरे जमा हो जाता है और इसके प्रभाव स्वरूप रोगी के रक्त में सीसे के आयनों की सान्द्रता बढ़ जाती है और सीसक शूल, रक्ताल्पता, मणिबंधपात तथा दंतक्षय आदि हो जाता है। सीसाजन्य प्रदूषण आज मनुष्य के लिये एक चुनौती है और इसलिये सीसा विष-विज्ञान के अन्तर्गत इस केन्द्र ने चिनहट (लखनऊ) की बनी पाँट रोज में खाद्य पदार्थों के संग्रह द्वारा उत्पन्न सीसा विषालुता, विभिन्न प्रकार की पेंट्स तथा कानपुर और लखनऊ शहर के पानी के नमूनों में सीसा आयनों का अध्ययन किया और रोगी में सीसा विषालुता किस प्रकार दूर की जाय पर अनुसंधान कर आशातीत सफलता प्राप्त की।

मैगनीज अयस्क उत्पादन में भारत का तृतीय स्थान है और इस उद्योग में लगभग 69,000 व्यक्ति कार्य कर रहे हैं। इन उद्योगकर्मियों को मैगनीज विषाक्तता का खतरा बना रहता है और रोगी में माँसपेशियों में दर्द, अस्थिर चाल, बोलने में हकलाहट तथा चेहरे का भावहीन होना आदि लक्षण पैदा हो जाते हैं। चिरकारी विषाक्तता से मानसिक तथा तंत्रिका विकार उत्पन्न हो जाते हैं और न्यूमोनिया तक होते देखा गया है। इस संस्थान ने प्रारम्भिक अवस्था में ही मैगनीज विषाक्तता का पता लगाने के उपाय खोजे और इस विषाक्तता से शरीर को मुक्त करने के लिये नये 'चीलेट' यौगिकों का निर्माण किया गया है।

कृषि-कर्म भी विषों से अछूता नहीं

उर्वरकों तथा कीट-नाशकों के प्रयोग से अब हम खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने में काफी सफल हो

गये हैं लेकिन पौध संरक्षण विशेषज्ञों का मत है कि कीटनाशकों के अन्धाधुन्ध प्रयोग ने किसानों और उनके पालतू जानवरों को अनेक रोग दिये हैं। डी०डी०टी०, लिंडेन, ऐल्ड्रिन और डाईऐल्ड्रिन आदि कीटनाशकों से रक्ताल्पता होने की आशंका रहती है। इस केन्द्र ने डी०डी०टी० के विषाक्त पदार्थ पर अनुसंधान किया और यह बताया कि इससे त्वचा की कोशिकाओं में परिवर्तन हो जाता है तथा बाल बहुत तेजी से गिरने लगते हैं। चूहों को डी०डी०टी० खिलाने पर उसके लिंग हारमोनों पर दुष्प्रभाव पड़ता है जिससे उनकी प्रजनन शक्ति में कमी आ जाती है। इसके अलावा अन्य कीटनाशी रसायन पैराथियोन, डाईएजियान और भूमि से खरपतवार हटाने वाले रसायन 2, 4 डी तथा 2, 4, 5 टी पर भी इस केन्द्र में अध्ययन चल रहा है और ऐसे रसायनिक यौगिकों की खोज की जा रही है जो सस्ते, तीव्र तथा मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये अहितकर हों। केन्द्र के वैज्ञानिकों का मत है कि कीटनाशी का प्रयोग किसान को जानकार व्यक्तियों की देखरेख में करना चाहिये जिससे उस फसल के लिये विशेष कीटनाशी की सही मात्रा उचित समय पर प्रयोग की जाय और पौधों पर कीटनाशी का छिड़काव करते समय शरीर के अधिक से अधिक अंगों को ढका होना चाहिये तथा हाथ में रबड़ के दस्ताने पहनना चाहिये।

इस प्रकार प्रत्येक उद्योग के अपने-अपने अलग-अलग प्रकार के स्वास्थ्य संकट हैं अतः यह नितान्त आवश्यक है कि आधुनिक उद्योगों की योजना में उद्योग-कर्मियों के स्वास्थ्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाये। यदि उद्योगकर्मियों का स्वास्थ्य उत्तम रहेगा तो निश्चय ही उत्पादकता भी बढ़ेगी और देश की आर्थिक प्रगति तीव्र गति से होगी। इसलिए इस संस्थान से निकट भविष्य में यह आशा की जा सकती है कि यह उद्योगों से निकलने वाले विषों से उद्योगकर्मियों को मुक्ति दिलाने में सहायक ही सिद्ध नहीं होगा वरन् नीलकंठ के सदृश्य समस्त जहर पीकर देश की जनता को औद्योगिक अमृत देने की चेष्टा करेगा।

राजेश गुप्त
औद्योगिक विष-विज्ञान अनुसंधान केन्द्र, लखनऊ
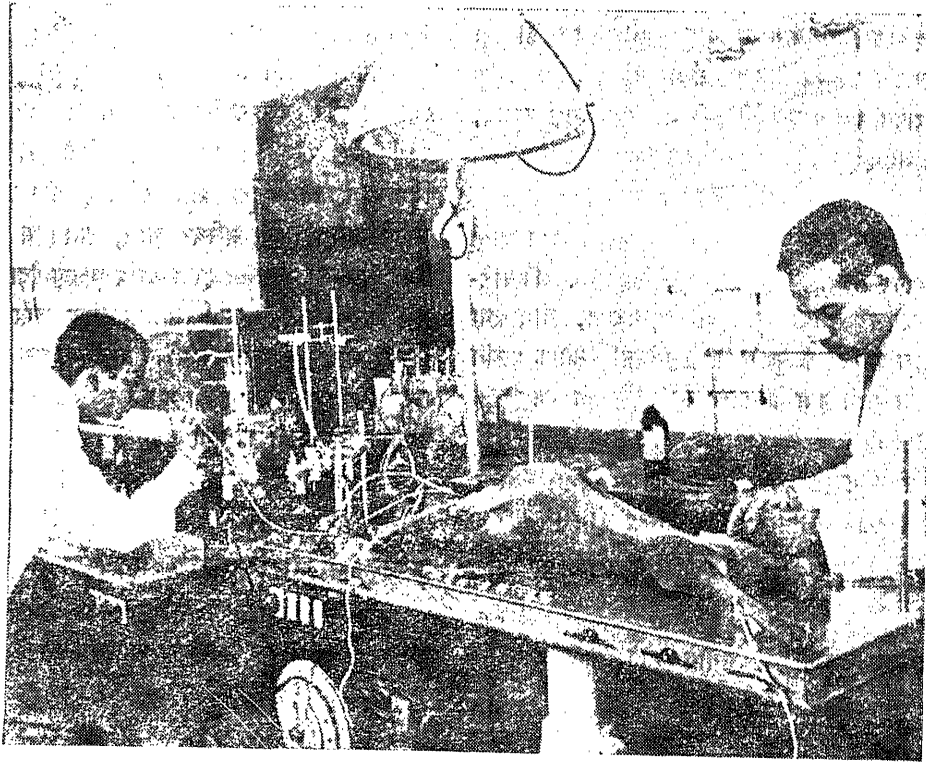
शोध कार्य में रत प्रयोगशाला के दो वैज्ञानिक

दशमलव ज्यामिति

अब्दुल गफ्फार मंसूरी

वर्तमान ज्यामिति में वृत की इकाई 360° अंशों के रूप में प्राचीन काल से ही मानते रहे हैं। यह इकाई षट् दशांक पद्धति पर आधारित है। दाश्मिक पद्धति के आविष्कार के साथ रेखाएँ एवं दूरी नापने के लिए पूर्ण रूप से दशमलव पद्धति का प्रयोग होने लगा, किन्तु वृत अंश अथवा कोणों को नापने का आधार वही रहा।

सन् 1824 में एक पत्र द्वारा जर्मनी के एक प्रसिद्ध गणितज्ञ डा० गौस (1777-1855) ने अपने विचार व्यक्त किये थे कि यदि यह मान लिया जाय कि त्रिकोण के तीनों अन्तर्कोणों का योग 180° अंश से कम है तो युक्लिड ज्यामिति से नितान्त भिन्न एक नई ज्यामिति का निर्माण किया जा सकता है।

किन्तु ऐसा होना वर्तमान ज्यामिति के अनुसार तभी सम्भव है जब कि एक त्रिकोण की तीनों भुजाएँ अपने समतल पर सीधी न होकर उत्तल (कानवेक्स) अथवा अवतल (कानकेव) आकृति में हो अथवा वह तल जिस पर त्रिकोण बनाया जाय उत्तल या अवतल हो, यदि इसी आकृति को समतल पर रेखांकित किया जाय तो ऐसी स्थिति में त्रिकोण का प्रत्येक कोण 180° डिग्री से कम अथवा अधिक होगा, किन्तु इससे ज्यामिति की मूल इकाई में कोई परिवर्तन नहीं होता है। यह तो केवल मात्र धरातल अथवा रेखाओं की स्थिति का परिवर्तन है।

फिर भी डा० गौस के उपर्युक्त विचारों से प्रेरित होकर विश्व के कई प्रसिद्ध गणितज्ञों ने युक्लिड ज्यामिति के दायरे से परे हट कर एक नई अ-युक्लिड ज्यामिति का निर्माण कर लिया, किन्तु वृत की मूल इकाई का आधार वही रहा।

मेरे अनुसार वृत में 10 डेका डिग्री (अंश) है और मूल इकाई सतांश है जो कि वृत को 100 भागों में विभाजित करती है, इससे दस गुणोत्तर मिनिट (कला) है जो कि वृत को हजार भागों में विभाजित करते हैं। इस प्रकार क्रमश: एक दूसरे से दस गुणोत्तर मान मिनिट तक है।

⊙ वृत = 10° द अंश (10°D) = .0
या = 100° सतांश (100°c) = 10 × 10
या = 1000′ मिनिट या कला = 10 × 10 × 10

इसके साथ ही सूक्ष्म विभाजन के रूप में क्रमश: सेकंड, सेन्टिसेकन्ड, एवं माइक्रो सेकन्ड है, जो कि एक दूसरे से क्रमश: 100 गुणोत्तर है।

1′ मिनिट = 100″ सेकंड (विकला)
1″ सेकंड = 100″′ सेन्टि सेकन्ड (सत विकला)
1″′ स सेकंड = 100 मा. सेकन्ड (माइक्रोबि)

इस प्रकार दशमलव ज्यामिति के अनुसार माइक्रो सेकन्ड डिग्री सबसे छोटी इकाई के रूप में है। जो कि वृत को एक अरब भागों में विभाजित करती है। जब कि वर्तमान ज्यामिति में सेकन्ड (विकला) ही अंतिम छोटी इकाई है। इसके अनुसार 1296000 सेकन्ड होते हैं।

अत: दशमलव ज्यामिति के अनुसार वृत 360 अंश का न होकर 100°, सतांश का होगा। एक त्रिकोण अथवा अर्ध वृत 180° अंश के स्थान पर 50° सतांश एवं एक राइट एन्गल 25° सतांश या 25° मिनिट का होगा। एक डिग्री सतांश = 3·6° अंश या 216′ मिनिट (कला) के तुल्य है।

अब्दुल गफ्फार मंसूरी
शाहपुरा (भीलवाड़ा)

उच्छिष्ट पदार्थों से बहुमूल्य उत्पाद

संकलित

अमेरिकी अनुसन्धानकर्ताओं के अनुसार, 'एन्जाइम टेक्नोलाजी' (प्रकिण्व प्रौद्योगिकी) द्वारा सभी प्रकार के खाद्य पदार्थ, वस्त्र, औषधियाँ और लोगों की आवश्यकता की प्रायः सभी अन्य वस्तुएँ प्रचुर मात्रा में और सस्ते भाव पर उपलब्ध की जा सकती हैं।

एन्जाइम ऐसे तत्व हैं, जो जीवित पौधों, पशुओं और मनुष्यों के कोषाणुओं में पाये जाते हैं। वे अन्य तत्वों में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं और इस प्रकार पाचन क्रिया और विकास में उनकी आवश्यकता पड़ती है।

अमेरिकी अनुसन्धानकर्ता सूक्ष्माणुओं से प्राप्त एन्जाइमों का प्रयोग कचरों या उच्छिष्ट पदार्थों को उपयोगी वस्तुओं में परिवर्तित करने तथा अतीव प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों को आवश्यक किन्तु दुर्लभ कच्चो सामग्रियों में परिणत करने के लिए कर रहे हैं।

हाल में, अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान प्रतिष्ठान के 'आर० ए० एन० एन०, कार्यक्रम द्वारा वाशिंगटन डी० सी० में आयोजित एक दो-दिवसीय विचार गोष्ठी में एक रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसमें इस अनुसन्धान के महत्व पर और संसार के सर्वत्र लोगों के जीवन के लिए इसकी उपयोगिता पर सम्यक् प्रकाश डाला गया था।

आर० ए० एन० एन० 'रिसर्च एप्लाइड टु नैशनल नीड्स' का संक्षिप्त रूप है। यह एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसे अमेरिकी सरकार ने स्वास्थ्य, सुरक्षा, कृषि, पर्यावरण-संरक्षण एवं सुधार, ऊर्जा उत्पादन, प्रकृति संरक्षण तथा अन्य क्षेत्रों में प्रगति को तीव्रतर बनाने के लिए लागू किया है।

विचार-गोष्ठी में, उद्योगों, विश्वविद्यालयों, नगर एवं राज्य सरकारों तथा निजी अनुसन्धान-प्रयोगशालाओं के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। दो वर्ष पूर्व 'आर० ए० एन० एन०' कार्यक्रम लागू होने के बाद, यह पहला अवसर था, जब गोष्ठी में भाग लेने वालों में व्यापक रूप से विचारों और जानकारियों का आदान-प्रदान हुआ। इस कार्यक्रम के फलस्वरूप प्रादुर्भूत विचारों और जानकारियों से विश्व भर के वैज्ञानिक, इन्जिनीयर उद्योग और सरकारें लाभान्वित हो सकती हैं।

सूक्ष्माणु-एन्जाइमों का उपयोग उद्योग के लिए कोई नई चीज नहीं है। कुछ खाद्य पदार्थों में तो इनका विशेष रूप से प्रयोग होता आ रहा है। इन उद्देश्यों के लिए प्रयुक्त एन्जाइम मुख्यतः पाचक एन्जाइम होते हैं, जो सूक्ष्माणविक कोषाणुओं के बाहर से आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं।

हाल में, यूरोप और जापान में हुई कुछ प्रगतियों के फलस्वरूप ऐसी नयी विधियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनके द्वारा कोषाणुओं के भीतर से एन्जाइमों को निकाल कर उन्हें अनेक व्यापारिक प्रयोगों में लाया जा सकता है। आशा की जाती है कि 'आर० ए० एन०' के अन्तर्गत हो रहे अनुसन्धान के फलस्वरूप अन्ततः इन अन्तर कोषाणविक-एन्जाइमों की पाँच किस्में प्राप्त हो जायँगी, जिनका व्यापारिक स्तर पर प्रयोग किया जा सकेगा।

वैज्ञानिक इन एन्जाइमों का प्रयोग इस प्रकार करने के लिए प्रयत्नशील हैं, ताकि उनके द्वारा अवांछनीय तत्वों को नष्ट करके उन्हें वांछनीय तत्वों में रूपान्तरित किया जा सके। फिलाडेल्फिया में पेन्सिल्वेनिया विश्वविद्यालय के स्कूल आव् मेडिसन में जीव-रसायन विज्ञान-विभाग के सहयोगी प्रोफेसर, डा० ई० कण्डल पाई, ने कहा कि वह एक द्विचरणीय एन्जाइम-प्रविधि

के विषय में खोज कर रहे हैं, जिसका उद्देश्य बूचड़खानों में उत्पन्न पशुओं के उच्छिष्ट अंगों से निकाली गयी कालिक एसिड को 'चैनोडियोक्सीकोलैट' नामक तत्व में परिणत करना है। यह तत्व पथरी रोग की बढ़िया औषधि है। इस तत्व को यदि निगल लिया जाए तो उससे पथरी को गलाया जा सकता है। इस प्रकार, बगैर शल्य-क्रिया के पथरी के रोग से पीड़ित करोड़ों व्यक्तियों को रोगमुक्त किया जा सकता है। अनुमान लगाया गया है कि एन्जाइम-प्रविधि द्वारा इस तत्व के उत्पादन की लागत वर्तमान लागत के २।। प्रतिशत के बराबर ही पड़ेगी।

इसी प्रकार डा० पाई ने बताया कि कोयले को कोक में परिणत करने के सिलसिले में 'फेनोल' नामक तत्व प्रचुर मात्रा में उच्छिष्ट पदार्थ के रूप में उत्पन्न होता है। इस बुझे हुए कोयले या कोक को प्राय: तालाबों या नदियों में उड़ेल दिया जाता है, जहाँ वह पानी को दूषित कर देता है।

किन्तु कोषाणुओं के बाहर से निकाले गये एन्जाइमों द्वारा 'फेनोल' को 'केटोडिपिक एसिड' में परिणत किया जा सकता है, जिससे नाइलोन जैसे कृत्रिम वस्त्रों के लिए कच्ची सामग्री बहुत ही कम लागत से प्राप्त हो सकती है। इस समय यह एसिड बहुत महँगी होती है, इसलिए इस प्रकार के वस्त्रों में उपयोग के लिए इसके बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

डा० पाई ने कहा कि एन्जाइम-प्रविधि द्वारा मक्के के स्टार्च से बहुत ही सस्ती ग्लूकोज़ तैयार की जा सकती है। इस प्रकार, जिन देशों में मक्का अधिक होता है और गन्ना कम होता है, और बड़े पैमाने पर चीनी का आयात करना पड़ता है, उन्हें चीनी का सस्ता विकल्प प्राप्त हो सकता है। यह विधि इस समय नमूने के कारखाने के स्तर पर प्रयुक्त हो रही है।

अमेरिका के कई अन्य विश्वविद्यालयों तथा औद्योगिक प्रयोगशालाओं में भी एन्जाइम-प्रविधियों पर अनुसन्धान जारी हैं। कैम्ब्रिज, मैसाचूसेट्स, के मैसाचूसेट्स इन्स्टिट्यूट आव् टेक्नौलाजी में ऐसी ऐण्टी-बायोटिक औषधियाँ बनाने के लिए एन्जाइम सम्बन्धी अनुसन्धान हो रहा है, जिनके विरुद्ध रोग तत्व प्रतिरोधी क्षमता आसानी से विकसित नहीं कर सकते।

डा० पाई ने कहा कि एन्जाइम प्रौद्योगिकी का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। यद्यपि चिकित्सा के क्षेत्र में एन्जाइमों के कुछ प्रयोगों की ओर लोगों का ध्यान व्यापक रूप से आकृष्ट हुआ है, फिर भी इन प्रयोगों के परिणामों को औद्योगिक प्रविधियों पर लागू करने की ओर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है।

●●

पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति में कमी आ रही है इसका संकेत मिला है। 150 पौण्ड वज़न वाले व्यक्ति के भार में सत्तर लाख में एक भाग की कमी हो रही है।

"हिपेरिन : एक प्रबल आंतचनरोधी"

—सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा

आंतचनरोधी पदार्थ उन यौगिकों को कहा जाता है, जो शरीर में रुधिर का थक्का बनने की क्रिया को रोकते हैं। हिपेरिन ऐसे ही पदार्थों की श्रेणी में आता है। यह साधारण अवस्था में रक्त में उपस्थित रहकर उसके थक्का बनने से बचाता है। हिपेरिन के अतिरिक्त अन्य कई रासायनिक पदार्थ भी आंतचनरोधी गुण दर्शाते हैं परन्तु उनकी प्रतिक्रिया-क्षमता बहुत कम होती है; जैसे डाइकुमेरोल, सीनट्रोन, फेनिन डाई ओन आदि।

हिपेरिन का प्रमुख कार्य रक्त की तरलता को बनाये रखना है। यह एक जटिल संरचना वाला कार्बनिक यौगिक है, जो सल्फेट आयनों की अधिकता के कारण ऋणावेशित होता है। कुछ विद्वानों के मतानुसार यही ऋणावेश उसके आंतचनरोधी गुणों के लिये उत्तरदायी होता है। हिपेरिन का निर्माण शरीर में मास्ट कोशिकाओं द्वारा किया जाता है। मास्ट कोशिकायें गोल-छोटी कोशाएँ होती हैं, जिनके कोशिका द्रव्य में कई छोटे-छोटे दाने के आकार की रचनायें होती हैं। इन्ही दानों में हिपेरिन स्थित रहता है। कुछ प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित किया जा चुका है कि जब भी हिपेरिन की आवश्यकता पड़ती है, ये दानेदार रचनायें कोशिकाओं से गायब हो जाती हैं। इस प्रकार की कोशिकायें प्रमुखतया: यकृत, प्लीहा, अस्थियों एवं संयोजी उतकों में पाई जाती हैं।

हिपेरिन की सही रासायनिक संरचना का पूर्ण चित्रण अभी तक नहीं हो पाया है परन्तु फिर भी कुछ वैज्ञानिकों ने इसे म्युकोईटीन बहु सल्फ्यूरिक अम्ल के रूप में मान्यता प्रदान कर दी है। यह एक प्रकार की बहुशर्करा (जिसमें हेक्सोसामीन एवं हेक्सोनिक नामक अम्लीय मूलक होता है) के सल्फ्यूरिक अम्ल के एस्टर के रूप में उपस्थित पाया गया है। हिपेरिन एक सफ़ेद या हल्के गन्दुमी रंग का पदार्थ होता है। यह पानी में विलेय होकर अम्लीय विलयन बनाता है परन्तु इसके सोडियम लवण पर किसी तरह का आवेश नहीं होता है। इसे सर्वप्रथम यकृत से निकाला गया था, अत: इसे हिपेरिन नाम दे दिया गया।

क्रियाविधि

हिपेरिन शरीर के बाहर और अन्दर दोनों ही जगह आंतचनरोधी का कार्य करता है। यह सक्रियता इनमें सल्फ़ेट-आयन जनित ऋणावेश के कारण बतायी जाती है। साधारण अवस्था में हिपेरिन आंतचनरोधी का गुण नहीं रखता परन्तु रक्त में उपस्थित अपने सहायक (cofactor) की उपस्थिति में यह उसके साथ क्रिया करके एक जटिल संरचना वाला अणु बनाता है। यही जटिल, हिपेरिन की सभी आंतचनरोधी प्रक्रियाओं की महत्वपूर्ण भूमिकायें निभाता है। हिपेरिन का यह सहायक अब अपरिचित नहीं हैं, इसे सभी α-ग्लोबीन नामक प्रोटीन के रूप में जानते हैं। यह प्रोटीन रक्त में वांछित मात्रा में उपस्थित करता है।

उपरोक्त जटिल थक्का बनने की क्रियाओं को प्रत्येक पद पर रोकता है। मात्र दो ही ऐसी क्रियायें हैं, जिन्हें यह जटिल प्रभावित नहीं कर पाता है, जो निम्न है :

(i) Co^{++}आयन की प्रक्रिया

एवं (ii) फ़िब्रिनोजन के फ़िबिन में बदलने की क्रिया

ऊपर दिये गये वर्णन से लगने लगता है कि हिपेरिन का कार्य-क्षेत्र बहुत विस्तृत है, परन्तु कुछ विचारकों के

अनुसार इस आंतचनरोधी की क्रिया का प्रमुख स्थान थ्रोम्बीन है, जो कि थक्का बनने की क्रिया में एक उत्प्रेरक के रूप में बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। हिपेरिन इसके निर्माण में गड़बड़ी पैदा करने के साथ ही इसके क्रिया-स्थान पर भी बाधा उत्पन्न कर देता है, जिसके परिणाम स्वरूप थक्का बनने की क्रिया एकाएक ठप्प सी हो जाती है।

विभिन्न प्रकार के रक्त-विकारों एवं उनसे सम्बन्धित रोगों में इसका उपयोग किया जाता है। हृदय के दौरे तथा अन्य कई दुस्वार रोगों में हिपेरिन की 5 से 100 हजार इकाई मात्रा शिरा के अन्दर अंतःक्षिप्त की जाती है। तत्पश्चात आवश्यकता होने पर 1000 इकाई मात्रा दी जानी चाहिये। इसकी 1 इकाई मात्रा 0 01 मिग्रा होती है। अंतःक्षिप्त किया गया हिपेरिन शीघ्र ही उत्सर्जित कर दिया जाता है। कुछ जानवरों में वैज्ञानिकों ने हिपेरिनेज़ नामक यौगिक खोज लिया है। जो हिपेरिन को शीघ्र ही समाप्त करने में सक्षम पाया गया है।

अधिक मात्रा में प्रयुक्त किया जाने पर हिपेरिन शरीर में कई खराबियाँ उत्पन्न कर देता है। इनमें रक्त-स्राव होना बहुत महत्वपूर्ण है। इस स्थिति में जरा सी चोट लगने पर रक्त बहना आरम्भ होने पर स्राव रुकता नहीं है। इसके लिये प्रोटामीन सल्फ़ेट (सालमीन मछली से) 100 किग्रा मात्रा पुनः शिरा में अंतःक्षिप्त कर दिया जाता है।

हिपेरिन चूँकि एक प्रोटीन है, अतः यह शरीर में अति पर संवेदन-शीलता भी उत्पन्न कर देता है, अतः इसका उपयोग सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये।

—सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा
प्राध्यापक, रसायन विभाग,
से० म० बि० रा० महाविद्यालय,
नाथद्वारा (राज०)

रूसी वैज्ञानिकों व तकनीशियों ने ऐसी योजना बनाई है जिसके अन्तर्गत विस्फोट कराकर बाँध बनाया जायगा। यह बाँध वर्षों या महीनों में नहीं कुल सेकण्डों में बनकर तैयार हो जायगा। जो विस्फोट होगा उसकी शक्ति हीरोशिमा पर डाले गए बम के विस्फोट से कई सौ गुना अधिक होगा।

क्या आप जानते हैं ?

शुकदेव प्रसाद

× मनुष्य के पूरे शरीर में कुल मिलाकर छोटी-बड़ी २०६ हड्डियाँ होती हैं।

× स्नायुओं के सूत्र 140 फुट प्रति सेकेन्ड की गति से मस्तिष्क को सम्वाद ले जाते हैं और क्रियाशील तन्तु 110 फुट प्रति सेकेन्ड की गति से आज्ञा लाते हैं।

× ईसा से पाँच सौ वर्ष पहले ग्रीस के 'हिपोक्रेटीज' नामक व्यक्ति ने पहली बार औषधों का प्रयोग किया; इसलिए वह आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का जनक माना जाता है।

× फेफड़ों में आकर शुद्ध होने के सिलसिले में पूरे शरीर का $\frac{1}{4}$ भाग रक्त प्रायः हर समय रहता है।

× हृदय जब शुद्ध रक्त को धमनियों में धकेलता है, तो उससे जो आवाज पैदा होती है; उसे दिल की धड़कन कहते हैं।

× त्वचा से पसीना हमेशा निकलता रहता है। हमारे शरीर से लगभग 20 औंस पसीना प्रतिदिन निकल जाता है।

× जन्म के समय बच्चे का आकार सगर्भित डिम्ब के आकार का 3000 गुना बड़ा होता है।

× जन्म के बाद बच्चा तुरन्त रोता है, परन्तु वह इसलिए नहीं रोता है कि उसे कुछ तकलीफ होती है बल्कि रोने के माध्यम से वह साँस लेना शुरू करता है; क्योंकि शुद्ध वायु 'आक्सीजन' उसकी पहली आवश्यकता होती है।

× शरीर को स्वस्थ और जीवित रखने के लिए हर घंटे करीब 18 सेर आक्सीजन की आवश्यकता पड़ती है।

× हृदय एक घंटे में करीब 6 मन रक्त को लगभग 4500 बार 'पंप' करके शरीर भर में पहुँचाता है।

× समूची पृथ्वी पर हवा का वजन करीब 5,000, 000,000,000,000 टन है।

× एक आदमी के शरीर पर लगभग 14 टन हवा का भार पड़ता है।

× हर आदमी चौबीस घंटे में करीब 26,000 बार सांस लेता है।

× फेफड़ों में लगभग 6000 वायु के थैले और 75 करोड़ वायु कोष्ठ होते हैं।

× छींक का वेग 100 मील प्रतिघंटा तक होता है। उसके इस जोर के कारण ही उसके साथ शरीर को गहरा धक्का लगता है।

× सारी पृथ्वी से प्रतिमिनट 36,000,000,000 टन पानी का वाष्पन होता है।

× वैज्ञानिक हेनरी कैवेंडिश ने हिसाब लगाकर बताया था कि पृथ्वी का वजन 15,000,000,000, 000,000,000,000 मन है।

× एक सेकेन्ड वह समयान्तराल है जिसमें परमाणु घड़ी में सीजियम परमाणु 9,192,631,770 बार कम्पन करता है।

शहरी वातावरण का प्रमुख वायु-प्रदूषक : एथिलीन गैस

श्याम सुन्दर पुरोहित

यह एक शाश्वत सत्य है कि पिछली एक शताब्दी से पर्यावरण हर पहलू से दूषित हो रहा है। वायुमण्डल में ऑक्सीजन की मात्रा में निरन्तर न्यूनता आ रही है और इसके बदले में विभिन्न प्रकार की कुछ ऐसी विषाक्त गैसें पर्यावरण में निरन्तर मिल रही हैं जो कि मानव समाज के लिए ही नहीं वरन् सम्पूर्ण सजीव जगत के लिये अहितकर है। इन विषाक्त एवं हानिकारक गैसों में एथिलीन प्रमुख है। यद्यपि वायु-मंडल में ओजोन, सल्फर डाइऑक्साइड जैसी गैसें भी विद्यमान रहती हैं लेकिन वे एथिलीन जितनी हानिकारक नहीं होती हैं। मनुष्य मोटर गाड़ियों तथा पेट्रोल एवं डिज़ल से चलने वाली विभिन्न मशीनों को उपयोग में लाकर, पर्यावरण में इस गैस की मात्रा में वृद्धि कर रहा है। शहर का हर सम्पन्न नागारिक स्वयं के आराम हेतु वाहन की मांग करता है। शहरों की बात छोड़िये गाँव वाले भी विद्युत के अभाव के कारण डीज़ल से चलने वाले इन्जनों के द्वारा एथिलीन की मांग में वृद्धि कर रहे हैं। लेकिन ऐसे गाँवों की संख्या बहुत कम है। पौधे भी एथिलीन का निर्माण कर प्रदूषण में योगदान देते हैं। लेकिन इनके निर्माण द्वारा निर्मित एथिलीन की मात्रा कृत्रिम ऐथिलीन की तुलना में गण्य होती है। पौधे एक साल में केवल 20 हजार मेट्रिक टन एथिलीन का निर्माण कर पाते हैं। उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि पर्यावरण एथिलीन की मात्रा, शहरी वातावरण की तुलना में गाँवों में अत्यधिक कम होती है। सामान्यतया गाँवों तथा औद्योगीकृत शहरों में एथिलीन की मात्रा का अनुपात 1:20 रहता है। यदि चारों ओर एथिलीन की मात्रा में अधिक वृद्धि हो गई तो पृथ्वी पर सजीवों का जीना दुरूह हो जायेगा।

एथिलीन के ज्ञान का इतिहास

वैज्ञानिकों को एथिलीन का ज्ञान आज से लगभग एक शताब्दी पूर्व ही हो चुका था। सन् 1864 में गिरडिन ने अपने शोध-पत्र में इंगित किया था कि एथिलीन वातावरण में विद्यमान एक ऐसी गैस है जो कि मानव के लिए अहितकर है। विनार्ड ने सन् 1931 में एथिलीन द्वारा वनस्पतियों पर होने वाले दुष्प्रभावों का वर्णन किया है। लेकिन रूस के पादप कार्याकी वक्ता डा० डी० एन० निलज्यूकोबो ने सन् 1901 में ही बता दिया था कि एथिलीन पौधों की विभिन्न उपाय-चयी क्रियाओं पर निरोधक प्रभावी होती हैं।

कुछ आँकड़े

वातावरण में एथिलीन की मात्रा को बढ़ाने वाला मुख्य कारक ओटोमोबाइल हैं। अमेरिकी वैज्ञानिकों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अमेरिका में सन् 1966 में विभिन्न उद्योगों तथा मोटर गाड़ियों ने 120 लाख मेट्रिक टन तथा ज्वलन भट्टियों एवं साधारण लकड़ी धूवें ने 10 लाख मेट्रिक टन एथिलीन का निर्माण किया। उपर्युक्त निर्मित एथिलीन पर्यावरण में छोड़ दी गयी।

प्रभाव

एथिलीन पौधों की वृद्धि तथा परिवर्धन के लिए विषाक्त प्रमाणित हुई है। उदाहरण के लिए एथिलीन पौधों के पुष्पन, फल-परिवर्धन बीज निर्माण, पत्तियों के आकार आदि पर निरोधक या संभदक प्रभाव दर्शाती है। पर्यावरण में उपस्थित केवल 25 भाग प्रति बिलीयन एथिलीन पौधों पर विषाक्त प्रभावी होती है। इसी प्रकार वातावरण में अधिक (लगभग 80%) में उपस्थित एथिलीन मनुष्य के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालती है। एथिलीन अधिक सान्द्रता मनुष्य को नींद तथा बेहोशी को प्रेरित करती है। पुराने सभय में भी एथिलीन मनुष्यों को बेहोश करने में प्रयुक्त की जाती थी।

उपाय

वैज्ञानिक साधनों से ही हम पर्यावरण में और अधिक एथिलीन की मात्रा को बढ़ने से रोक सकते हैं। ये उपाय निम्नांकित है—

(1) पेट्रोल तथा डीज़ल से चलने वाले वाहनों को कम उपयोग में लाने से अथवा इन वाहनों के उर्जा स्रोत के रूप में ऐसे कुछ रसायन काम में लिये जावें जो कि जलने पर एथिलीन का निर्माण न करते हों। इसी समस्या को केन्द्र मानकर हाल ही में इटली निवासी इन्सिको ईग्नेस्ति ने एक ऐसी कार का आविष्कार किया है जिसके इंजन को चालू करने के लिए ईंधन के रूप में केवल जल प्रयोग किया जाता है; अर्थात् इस कार में न तो पेट्रोल की आवश्यकता रहेगी और न ही ऑक्सीजन की।

(2) इसके अतिरिक्त और भी कई यांत्रिकी तथा रासायनिक साधनों द्वारा पर्यावरण में उपस्थित एथिलीन की बढ़ती हुई मात्रा को नियन्त्रित किया जा सकता है। जिसमें ओजोन क्रिया तथा नाइट्रिक आक्साइड द्वारा जल-अपघटन क्रिया मुख्य है। लेकिन इन दोनों में नाइट्रिक आक्साइड द्वारा जल-अपघटन क्रिया को सर्वश्रेष्ठ माना गया है क्योंकि इस क्रिया के अन्त में पेरा ऐसीटाइल नाइट्रेट रसायन का उत्पाद के रूप में निर्माण नहीं होता है। पेराऐसीटाइल नाइट्रेट स्वयं भी एक वायु-प्रदूषक है।

प्रकृति भी पर्यावरण में उपस्थित एथिलीन की मात्रा को कम करने में साथ नहीं दे रही है। पृथ्वी पर हरे पौधे ही दूषित वायु को शुद्ध करते हैं। लेकिन दुर्भाग्य की बात है कि स्वयं पौधे ही एथिलीन का निर्माण करते हैं।

आज सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एथिलीन की समस्या इतनी तेजी के साथ बढ़ रही है कि इसका कोई न कोई ठोस उपाय हमें निकालना ही होगा अन्यथा वनस्पति पर घातक प्रभाव करने वाली यह गैस एक दिन इतनी बढ़ जायेगी कि पृथ्वी पर वनस्पति का उगना दुर्बल हो जायेगा जिसका परिणाम आप स्वयं जानते है।

श्यामसुन्दर पुरोहित
प्राध्यापक, वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय महा-विद्यालय, नाथद्वारा (राज०)

एन्टिबॉडी की रचना

डा० अरुण कुमार सक्सेना

युद्ध भूमि में रक्षा पंक्तियाँ होती हैं जो कि शत्रु के सेनाओं को भीतर प्रविष्ट करने से रोकती हैं और शत्रु सेना आगे बढ़ने का प्रयत्न करती है तो भयंकर युद्ध होता है। इसी प्रकार मानव शरीर में भी व्याधियों को रोकने के लिए एक मुख्य शक्तिशाली तथा प्रभावशाली रक्षा पंक्ति होती हैं जिन्हें हम एन्टिबॉडी के नाम से पुकारते हैं। किसी भी रोग के जीवाणु या कीटाणु यदि शरीर में प्रविष्ट होकर या पनपने का प्रयास कर फैलने की चेष्टा करते हैं तो बचाव की सही रक्षा पंक्ति उनका डट कर सामना करती है। इसी आधार पर चिकित्सकों ने टीका लगाने की पद्धति का श्री गणेश किया था और इस दिशा में अभी तक उनको आशातीत सफलता भी प्राप्त होती गई। अंगों के प्रत्यारोपण में यही एन्टिबॉडी विशेष रोड़ा अटकते हैं और आज के शोधकर्त्ता इन पर नियंत्रण पाने के लिए भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं। सर्व प्रथम इनके बारे में विस्तारपूर्वक अध्ययन की आवश्यकता होगी कि ये किस प्रकार बनते हैं तथा इनका कार्यकलाप का ढंग किस प्रकार का है। अभी तक इसकी किसी को भी जानकारी नहीं है। आइये जरा हम लोग वैज्ञानिकों के शोध-कार्यों के आधार पर इस दिशा में ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करें।

वैज्ञानिकों के दो समूह अलग-अलग इनकी रासायनिक संरचना को ज्ञात करने के लिए अध्ययन करते रहें और 1960 के अन्त में उन्होंने इसे ज्ञात ही कर लिया। इसी कारण इन दोनों समूह के नेताओं को इसी कार्य पर विश्व का सर्वसम्मानित नोवेल पुरस्कार औषधि विज्ञान के क्षेत्र में 1972 ई० में प्रदान किया गया। प्रथम समूह के नेता न्यूयार्क स्थित रौकफ्लेर विश्व-विद्यालय डा० ग्रैराल्ड ए० ईडेलमैन थे तथा द्वितीय समूह के नेता डा० रोडनीपोर्टर आक्सफर्ड विश्वविद्यालय इंगलैंड के थे। दोनों की आयु क्रमशः 43 तथा 55 वर्ष की है।

डाक्टर ईडेलमैन तथा पोर्टर ने इस दिशा में अपने-अपने शोध-कार्य 1972 ई० से पन्द्रह वर्ष पूर्व अलग-अलग आरम्भ किये थे। इन दोनों ने एक विशेष प्रकार के ऐन्टिवॉडी पर जिसे (Multiple Myelomo) के नाम से पुकारा जाता है, पर शोध-कार्य किया। इन दानों ने विभाजित सर्वप्रथम इस प्रकार प्राप्त सर्वबोडी को विभाजित किया फिर उन भागों का रासायनिक परीक्षण भी किया। डा० पोर्टर ने एक रासायनिक पदार्थ पेपेन के द्वारा एन्टिवॉडी, जो कि अँग्रेजी के ही 'T' के अक्षर के आकार का था, के तीन टुकड़े किये और उनका अलग अलग परीक्षण भी किया। ईडेलमैन ने इस एन्टिवॉडी के विशेष बन्धनों को तोड़ कर उनसे सीधे वे रासायनिक पदार्थ प्राप्त किये जिनसे कि एन्टिवॉडी का निर्माण हुआ था।

इन दोनों वैज्ञानिकों के शोध-कार्यों ने यह सिद्ध कर दिया है कि यह पदार्थ अर्थात् एन्टिवॉडी एक बड़ा जैवकीय अणु है और इसकी संरचना भी बड़ी ही जटिल है। इसमें 19,996 परमाणु हैं जो 1320 इकाइयों के समूह में अमीनों अम्लों के साथ जुड़े हुए हैं। यह इकाइयाँ, पुनः चार श्रृंखलाओं के द्वारा जुड़ी होती हैं। इन्हें पुनः चार भागों में विभाजित किया गया है दो हल्की तथा दो भारी। हल्की शृंखलाओं में 214 अमीनों अम्ल तथा भारी में भी 446 अमीनों अम्ल जुड़े होते हैं। इन दोनों वैज्ञानिकों ने एन्टिवॉडी का माडल बनाया भी है जिससे कि यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि यदि कोई भी बाहरी शत्रु इस भीष्म पितामह के व्यूह में घुसने का प्रयास करता है तो वे इसे किस प्रकार घेर कर समाप्त कर देते हैं।

1972 ई० के सम्भावित दोनों वैज्ञानिकों के शोध-कार्य में औषधि विज्ञान जगत् में एक क्रान्ति कर मानव जाति का एक महान कल्याण किया है जिसका मानव सदैव आभारी रहेगा। भविष्य में इस और शोध-कार्यों का सिलसिला बढ़ेगा तथा और भी विचित्र तथ्य सामने आयेंगे जिससे कि मानव स्तम्भित रह जायगा।

मद्यपान के प्रभावों का मछलियों पर अध्ययन

मानवीय क्रियाकलापों की विवेचना करते समय प्रायः, पशुओं के स्वभावों के उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं—जैसे घोड़े के समान खाना, हिरन की भाँति कुलाचें भरना और मछली की भांति पीना। परन्तु, क्या कभी किसी ने मछली को पीते देखा है? जी हाँ, बोस्टन, मैसाचूसेट्स, अनुसन्धानकर्ताओं ने उन्हें पीते देखा है। ये अनुसन्धानकर्ता वैज्ञानिक जानबूझ कर मछलियों को मद्यपान कराते हैं।

बोस्टन के बेलमोण्ट उपनगर के मैक्लिन अस्पताल के ये शोधकर्ता वैज्ञानिक पालतू सुनहरी मछलियों के तालाब में वोदका, जिन तथा अन्य प्रकार की मद्य (शराब) की कुछ मात्रा मिला देते हैं और मछलियों का अध्ययन करते हैं। उन्होंने अपने अध्ययन में देखा कि ये मछलियां भी एक सामान्य व्यक्ति की भांति मद्यपान करती रहती हैं। डा० राल्फ रिवेक और डेविड इंगिल ने मछलियों का चुनाव प्राणियों पर अल्कोहल (मद्य) के प्रभाव, प्रकृति और लता तथा उसकी चिकित्सा से सम्बन्धित अध्ययन के लिए किया।

इस अध्ययन के लिए मछलियों का ही चुनाव करने के कारण पर प्रकाश डालते हुए, उन्होंने बताया कि यद्यपि मछलियों के मस्तिष्क की संरचना मनुष्य और अन्य जानवरों की तुलना में सरल होती है, फिर भी, यह इतना संश्लिष्ट होती है कि कुछ साधारण से कार्य सीख पाना इनके लिए सम्भव होता है, जैसे किसी एक विशेष दिशा तैरना, आदि। मछलियों का शरीर निरन्तर उसी दर से मद्य का सेवन कर पाने में समर्थ होता है जिस दर से मनुष्य का शरीर कर सकता है।

अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि नशे की अवस्था में मछलियां भी मनुष्यों के सदृश व्यवहार करती हैं। मनुष्यों की भांति ही सात-आठ बार मद्यपान करने के उपरान्त मछलियां नशे में अपनी बगलों के बल तैरने लगती हैं, पल्टनियां खाती हैं और तालाब में उथल-पुथल करती हैं।

मद्य की मात्रा बढ़ जाने पर, वे इतनी अधिक नशे में हो जाती हैं कि भोजन की तश्तरी से अपना भोजन भी नहीं पकड़ पातीं और भोजन उनके मुँह से पानी में गिर जाता है। नशा समाप्त होने पर उनमें भी पियक्कड़ व्यक्ति के नशा उतरते समय के प्रभाव दिखलायी पड़ते हैं। अनुसन्धानकर्ता मछलियों का नशा करवा कर इस सम्भावना का अध्ययन कर रहे हैं कि मस्तिष्क में विद्यमान एक रसायन, 'सैरोटिन' की मात्रा घटा देने से मस्तिष्क पर मद्य के दुष्परिणाम को कम करना क्या सम्भव है।

जब एक मद्य मिश्रित तालाब में एक ऐसी दवा मिला दी गयी जो उक्त सैरोटिन रसायन की मात्रा को कम करती है तो उस मद्य का पान करने पर इन मछलियों पर, उन मछलियों की अपेक्षा, जिन्होंने दूसरे तालाब में दवा रहित मद्य का पान किया था, नशे का कम प्रभाव दिखलायी दिया। इस प्रकार, अनुसन्धानकर्ताओं को आशा है कि वे एक ऐसी अहानिकर दवा का आविष्कार कर सकेंगे जिसके प्रयोग से, व्यक्तियों द्वारा अधिक मद्यपान करने पर भी, उन पर नशे का कम प्रभाव दिखलायी देगा।

ज्वालामुखी

विजय कान्त श्रीवास्तव

भूतल में उस छिद्र या दरार को ज्वालामुखी कहते हैं जिसमें से प्रज्वलित गैस, तरल लावा, शैल खण्ड आदि पदार्थ विस्फोट के साथ निकलता है। ये उद्गार प्रायः भीषण विस्फोट के साथ होते हैं परन्तु कभी-कभी शांत उद्गार भी होता है। गैसों के साथ तप्त शिला खण्ड भी बाहर आते हैं। विस्फोट प्रायः तीव्र होता है तथा इसकी आवाज दूर तक जाती है।

आकार—वृत्ताकार वाले शंकु ज्वालामुख का मुख ऊपर होता है तथा इसके तीन भाग होते हैं। (1) ज्वालामुख द्वार (2) शंकु (3) द्वितीयक शंकु।

शंकु— यह सामान्यतः शंकु के आकार का पर्वत होता है। इसका आकार उद्गीर्ण पदार्थ की प्रकृति तथा मात्रा पर निर्भर करता है।

गर्त या विवर्ण—शंकु के शिखर पर गर्त पाया जाता है, इसमें से ज्वालामुखीय पदार्थ निकलता है। कभी-कभी लसदार पदार्थ नली में जम जाते हैं जिससे गौण द्वार बन जाया करते हैं।

ज्वालामुखी पदार्थ—ज्वालामुख से 3 प्रकार के पदार्थ निकलते हैं: (1) गैस (2) तरल (3) ठोस।

गैस—यह उच्च ताप पर निकलता है तथा आग्नेय होता है। CO_2, N_2, SO_2, H_2, NH_3, Cl_2 आदि प्रमुख गैसें हैं जो इस प्रकार निकलती हैं। ये गैसे निकले पदार्थ का 1% होती हैं।

तरल—मैग्मा तथा लावा तरल पदार्थ होते हैं कम दाब के क्षेत्र में निकलने वाला लावा जल्दी जमता है। लावा का फैलाव उसकी तरलता पर निर्भर करता है। अधि सिलिक लावा अधिक दूर तक फैलता है तथा इसका रंग गुलाबी होता है। अल्प सिलिक लावा लाल रंग का होता है। सामुद्रिक उद्गार प्रायः इसी प्रकार के होते हैं।

लावा उद्गार के आकार

(1) ब्लाक लावा तीव्र गति के कारण लावा के अत्यधिक मात्रा में जम जाने के कारण ब्लाक का आकार बन जाता है। ऊपर की पपड़ी के नीचे का लावा तरल होता है।

(2) रज्जुक लावा—बसाल्टिक लावा में कभी-कभी रस्सी के आकार का बल पड़ जाया करता है जिसके कारण इसे रज्जुक लावा कहते हैं।

(3) तकिये के आकार का लावा—जब बसाल्टिक लावा जल के संपर्क में आता है तो तकिये का आकार बन जाता है। समुद्री उद्गार में प्रायः ऐसे आकार बनते हैं।

(4) सीढ़ीदार आकार का लावा—तरल बसाल्टिक लावा आकार कभी-कभी सीढ़ीदार भी बन जाया करता है। हवाई द्वीप में ऐसी आकृतियाँ प्रायः पायी जाती हैं।

(5) लावा सुरंग—तरल बसाल्टिक लावा ठंडा होने पर पपड़ी सा बन जाता है। पपड़ी जल्दी ही कड़ी हो जाती है। पपड़ी के नीचे तरल लावा सुरंग क आकार बना लेता है।

(6) लावा स्तूप – कभी-कभी आधा शीतल या गरम लावा परतों के ऊपर परतों के रूप में जमा होता जाता है। इस प्रकार से स्तूप का निर्माण हो जाता है। हवाई द्वीप में ऐसी आकृतियाँ प्रायः पायी जाती हैं।

पायरोक्लास्ट—ये छोटे-छोटे खंड होते हैं जो उद्गार के समय बाहर आते हैं। इनका आकार विविध

प्रकार का होता है। आकार के आधार पर इनका नामकरण इस प्रकार है—

खंड का नाम	आकार व्यास m. m.)
राख	0·001 से कम
धूल	0·01—1·00
बालू	1·00—4·00
लैपिली	4·00 — 32·00

इन सबको सामूहिक रूप से सिंडर कहते हैं।

ब्लाक	32·00 से अधिक।

छिद्र वाले लावा को स्कोरिया कहा जाता है। लावा के झाग को झाँवा कहते हैं। इनके राख को टुफ कहा जाता है।

कुछ प्रमुख लावा उद्गार

ज्वालामुखी	स्थान	वर्ष	आयतन (किमी³)
1. लाकी स्तर	आई लैण्ड	1783	12·5
2. मोनालोवा	हवाई द्वीप	1880	0·5
		1907	0·2
		1950	0·5
		1955	5·0
3. कामुरागिरा	कांगो	1894	3·6
		1938	2·5
हेकला	आईलैण्ड	1845	0·5
एटना	सिसिली	1669	1·0
		1852	0·4
		1879	0·6
पेराकुटीन	मेक्सिको	1943	0·7
क्रेटर झील	स० रा० अ०		50
ताम्वोरा	इंगेनेशिया	1815	140
क्राकेटोआ	,,	1883	18
काटमाई	अलास्का	1912	20
सक्कुराजिमा	जापान	1947	1·0

विस्फोट के प्रकार—ज्वालामुखीय विस्फोट के 6 प्रकार होते हैं।

(1) शांत या हवाई—इसमें तरल बसाल्टी लावा तथा गैस का उद्गार शांतपूर्वक होता है। इनके विवर विशाल होते हैं।

(2) स्ट्राम्बोली—इसमें पायरोक्लास्टिक खंड अधिक पाये जाते हैं। विषुवत प्रदेशीय ज्वालामुखी इस प्रकार के होते हैं।

(3) विसूवियस—इसमें गैस तथा पायरोम्लास्टिक पदार्थ दोनों अधिक पाये जाते हैं। इनका आकार गोभी के समान होता है।

(4) पीलियन—इसमें गैस अधिक पाया जाता है। इसमें लावा गुम्बद के आकार में निकलता है।

(5) वल्केनियन—इसमें गैस तथा लावा एवं पायरोम्लासिक पदार्थ सब समुचित मात्रा में निकलता है। लावा अत्यन्त वेग से निकलता है।

(6) विदरो—इसमें लम्बे-लम्बे दरार बन जाते हैं जिससे लावा निकलता है। विस्फोट शांतिपूर्वक है तथा पठारों पर जम जाता है।

ज्वालामुखी कुण्ड—ये विशाल विवर कुंड होते हैं जिसका व्यास 1 cm से 50 Km. तक पाया जाता है। इनके बनने के निम्न कारण हैं—

(1) भीतरी भाग के लावा का नीचे चला जाना या गिर जाना।

(2) विस्फोट के कारण शंकु के ऊपरी भाग का उड़ जाना।

(3) शैलखंडों का गिर जाना।

(4) फनेल का आकार बन जाना।

कुछ प्रसिद्ध ज्वालामुखी कुंड निम्न हैं—

कुंड—	स्थान	विस्तार (ल × य किमी)
टोवा झील—	सुमात्रा	50 × 20
कुन्डोर—	,,	43 × 21
एराकुंड—	जापान	25 × 24
वुलाशो—	जापान	26 × 20
केटर—	स० रा० अ०	10 × 10
क्रकाटोआ—	हिन्देशिया—	7 × 6
ताम्वोली—	,,	6 × 6
वेजाईमियानी—	रूस	2 × 1

निम्न प्रकार से ज्वालामुखी विस्फोट की भविष्य-वाणी की जाती है।

(1) मंद धक्के

(2) ज्वालामुखीन द्वार से वाष्प का निकालना

(3) वाष्प तथा गर्म स्रोतों का अचानक बढ़ना

(4) चुम्बकीय मानों में परिवर्तन होने से।

भारत में निम्न समय में ज्वालामुखी का उद्गार पाया जाता है।

समय—	स्थान—	रूप
प्लीस्टोसीन—	वर्तमान काल के शैल—	विस्फोटी मृत
इयोसीन—	दक्षिण ट्रैप—	बसाल्टी
उत्तर क्रेटेसेस—	राजमहल ट्रैप—	बसाल्टी
उत्तर कार्बोनीफेरस—	पीरपंजाल ट्रैप—	बसाल्टी तथा ग्रेनाइटिक
विध्यन—	मलानी—	ग्रेनाइट
बुड्घा—		बसाल्टी
धाखाड़—	डालमा ट्रैप—	बसाल्टिक

फीमरोल—निष्क्रिय ज्वालामुखी क्षेत्र में अनेक स्थलों पर वाष्प निकलते रहते हैं। इनका तापमान 650°C तक पाया जाता है। इनसे भूमितल में जल बनता रहता है। यह जल गीजर के रूप में बाहर निकलता है। इसको फीमरोल कहा जाता है। यह अलास्का, कारमाई ज्वालामुखी क्षेत्र में अधिक पाया जाता है।

गर्मस्रोत—जिन स्रोतों से उद्गार के बाद उष्ण जल निकलता है उसे गर्मस्रोत कहते हैं। ऐसे स्रोत येलास्टोन पार्क (स० रा० अ०), इटली तथा भारत के कई स्थानों में पाये जाते हैं।

गीजर–कुछ मंद विस्फोट के बाद उष्ण जल निकलता है जिसे गीजर कहते है। इसमें बड़ा हल्का विस्फोट होता है। गीजर येलोस्टोन पार्क (स० रा अ०), अलास्का, इटली तथा भारत के कई क्षेत्रों में पाया जाता है।

पंक ज्वालामुखी—यह भी ज्वालामुखी के समान होता है परन्तु इसमें से पंक तथा गैस अधिक निकलता है। ये प्रायः पेट्रोलियम क्षेत्र में पाये जाते हैं।

उल्कागर्त—ये विवर्त उल्काओं द्वारा बनाये जाते हैं। इनका आकार लगभग ज्वालामुखी निवर्त के समान हो जाता है। कुछ प्रमुख उल्कागर्त में उल्काभील, घाना झील, कनाडा में चुब क्रेटर, आस्ट्रेलिया का बुल्क क्रीक क्रेटर का नाम लिया जाता है।

ज्वालामुखी का आर्थिक महत्व—ज्वालामुखी के निम्न आर्थिक महत्व हैं—

(1) विवर्त तथा छिद्रों में भौमगत जल और वाष्प की प्राप्ति से शक्ति उत्पन्न होती है।

(2) इनसे अनेक गैसें तथा खनिज प्राप्त होते हैं।

(3) इनसे गंधक मिलता है।

(4) उष्ण जल में चर्म रोग नष्ट करने की शक्ति पायी जाती है।

(5) बसाल्टी शैल पर काली मिट्टी बनती है जो उपजाऊ होती है।

(6) नाना प्रकार के शैल बनते हैं।

भारत में गरम जल के सोते—भारत में गर्म जल के स्रोते प्रायः प्रत्येक प्रान्त में पाये जाते हैं परन्तु कहीं भी इनका पूर्ण उपयोग नहीं होता है। कुछ स्रोते रेडियोधर्मी है और कुछ में चर्म नाशक, खनिज पाये जाते हैं। कुछ प्रधान सोते निम्न है :—

बिहार—में मुंगेर, पटना और हजारीबाग में सर्वाधिक झरने हैं। मुंगेर में लक्ष्मीकुंड, जनक, कुण्ड भीमकुण्ड तथा हजारीबाग में सूरजकुण्ड तथा पटना में राजगीर और तपोवन झरने प्रसिद्ध हैं। कोयला क्षेत्र में अनेक छोटे-छोटे झरने पाये जाते हैं।

मध्य प्रदेश—होशंगाबाद जिले में सवोनी गरम झरना है। सरगुजा में तातापानी झरना में गंधक पाया जाता है। छिंदवाड़ा में बनखेड़ी तथा अनहोनी ढ़ोना स्थान पर सोता पाया जाता है।

महाराष्ट्र—थाना जिले में कई गरम सोते हैं। कोरा तथा सतीवली स्थान के झरने रेडियोधर्मी हैं।

[शेष पृष्ठ 24 पर]

सूक्ष्ममात्रिक तत्व

डा० शिवगोपाल मिश्र

कृषि रसायन की भाषा में ऐसे तत्व, जो पौधों की वृद्धि तथा उनके समुचित विकास के लिए अत्यल्प मात्रा में आवश्यक होते हैं, **सूक्ष्ममात्रिक तत्व** अथवा **लेशतत्व** (Micronutrients, Trace elements) कहलाते हैं (निकोलस, 1961)। अभी तक कुल मिलाकर 7 तत्व इस श्रेणी में परिगणित हैं जिनके नाम हैं **ताम्र, जस्ता, बोरान, मैंगनीज, मालिब्डनम, लोह** तथा **क्लोरीन**। जैसा कि नाम से आभास मिलता है इन तत्वों की अत्यन्त ही न्यून मात्रा पौधों द्वारा अवशोषित होती है किन्तु फसलोत्पादन में इनकी महत्ता किसी भी रूप में मुख्य आवश्यक तत्वों से कम नहीं है। इन तत्वों की कमी हुई नहीं कि पौधे अनेक प्रकार के न्यूनता रोगों से ग्रस्त होने लगते हैं और उपज घटने लगती है।

आवश्यक तत्वों की संख्या में जिस गति से उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है उसको देखते हुए यह पूर्वानुमान किया जा सकता है कि कालान्तर में कुछ और नवीन तत्व आवश्यक तत्वों की श्रेणी में सम्मिलित हो जावेंगे। ऐसे तत्वों में सम्भवतः कोबाल्ट, सेलीनियम, आयोडीन, निकेल तथा क्रोमियम प्रमुख होंगे जो कम महत्वपूर्ण सूक्ष्ममात्रिक तत्व कहे जा सकते हैं।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की न्यूनता होने पर पौधे अनेक प्रकार के न्यूनता रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। यह अत्यन्त रोचक बात है कि पृथक-पृथक तत्वों की न्यूनता होने पर कुछ विशिष्ट लक्षण प्रकट होने लगते हैं जिनसे संगत सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का पता चल जाता है। विभिन्न तत्वों के कार्यों एवं उनकी न्यूनता के लक्षणों का विवरण निम्नांकित प्रकार है :

ताम्र—यह पौधों में ऐस्कार्बिक अम्ल तथा फीनालों के उपचयन में सक्रिय हाथ बटाता है। इसकी न्यूनता होने से पौधों की शीर्ष कलिकाएँ सूखने तथा पत्तियाँ पीली पड़ने लगती हैं परन्तु पत्तियों की शिराएँ हरी की हरी बनी रहती हैं। ताम्र की न्यूनता से नींबू जाति के पौधे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।

जस्ता—यह कार्बोहाइड्रेटों के उपापचय तथा जैविक फास्फोरस यौगिकों के स्थानान्तरण में प्रमुख कार्य करता है। आक्सिजन के उत्पादन में भी यह तत्व महत्वपूर्ण है। इसकी न्यूनता होने पर पहले पुरानी पत्तियाँ ग्रस्त होती हैं और गम्भीर न्यूनता की स्थिति में पूरा पौधा सफेद दिखाई पड़ने लगता है। कभी-कभी पत्तियों की शिराएँ सामान्य पत्तियों की अपेक्षा अधिक हरी दिखाई पड़ती हैं।

बोरान—यह पौधों के नवीन ऊतकों की समान वृद्धि के लिए उत्तरदायी है। इसकी न्यूनता से पौधों के अन्दर विलेय नाइट्रोजन यौगिकों तथा कार्बोहाइड्रेटों का संग्रह होने लगता है और प्रोटीन-संश्लेषण घट जाता है। इसकी कमी होने पर शीर्ष कलिका निष्क्रिय हो जाती है। कुछ पौधों में, जैसे तम्बाकू में, बोरान की अत्यन्त न्यूनता होने पर पत्तियाँ सिकुड़ जाती हैं।

मैंगनीज़—पौधों में क्लोरोफिल-संश्लेषण के हेतु मैंगनीज़ आवश्यक है। यह कतिपय पादप-एंजाइमों को सक्रिय बनाने में भी सहायक है। इस तत्व की न्यूनता होने पर पौधे पीले पड़ जाते हैं, शीर्ष कलिका के समीप की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं और धीरे-धीरे सम्पूर्ण पौधा गम्भीर पीतिमा से ग्रस्त हो जाता है।

मालिब्डनम—इसका प्रमुख कार्य ऐज़ोटोबैक्टर तथा ग्रंथि-जीवाणुओं द्वारा मिट्टी में नाइट्रोजन-योगिकीकरण के सन्दर्भ में है। यह नाइट्रेट अपचयन में भी

सहायक बनता है। इस तत्व की न्यूनता से ग्रस्त पौधे हल्के पीले पड़ जाते हैं। इसकी न्यूनता से द्विदलीय पौधे सर्वाधिक प्रभावित होते हैं।

लोह—यह पौधों में क्लोरोफिल-संश्लेषण के लिए परमावश्यक होते हुए भी उसका अंग स्वरूप नहीं रहता। यह पौधों की अनेक उपचयन क्रियाओं में भी भाग लेता है। लोह की न्यूनता से प्रभावित पौधे छोटे तथा पीले पड़ जाते हैं, पत्तियों की शिराओं का केन्द्रीय स्थान क्लोरोफिल रहित हो जाता है और नींबू जाति के पोधों की टहनियाँ सूख जाती हैं।

क्लोरीन—सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की श्रेणी में यह सर्वथा नवीन तत्व है। अभी तक इसकी न्यूनता नहीं देखी गई है किन्तु यदि पौधों को इस तत्व की बिलकुल ही प्राप्ति न हो तो वे पीले पड़ने लगते हैं।

सूक्ष्ममात्रिक तत्वों के अभाव से जनित न्यूनता रोगों को दूर करने की दो विधियाँ सर्वसम्मत से स्वीकृत हैं। ये हैं—मिट्टी में इन तत्वों को मिलाना या पौधों पर इन तत्वों का छिड़काव। यदि इन तत्वों की न्यूनता बनी रही आती है तो अन्य आवश्यक तत्वों के डाले जाने पर भी इनका पूरा-पूरा लाभ प्राप्त नहीं हो पाता। अत: आवश्यक तत्वों के साथ-साथ सूक्ष्ममात्रिक तत्वों के प्रयोग से उपज में बृद्धि सहज सम्भाव्य है किन्तु स्मरण रहे कि उर्वरक के रूप में इनकी अत्यल्प मात्रा ही प्रयुक्त की जानी चाहिए जो कुछ औंस प्रति हेक्टर भूमि से लेकर 20 किलोग्राम प्रति हेक्टर तक है। लेकिन इतनी ही मात्रा के उपयोग से उपज में चमत्कारिक वृद्धि होती है। कहने को तो ये लेश तत्व होते हैं किन्तु इनका अत्यधिक महत्व है। पौधों या फसलों के लिए इन तत्वों की उपलब्धि मिट्टियों में प्राप्य इनकी उपलब्ध मात्रा पर निर्भर करती है अत: मिट्टियों में इन तत्वों के वितरण एवं उर्वरक के रूप में प्रयुक्त करने पर मिट्टियों में इनकी अभिक्रियाओं का अध्ययन सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की शोध में अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अनिवार्यता—सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का वांछनीय अभिलक्षण उनकी अनिवार्यता है किन्तु यदि उनसे केवल पौदों की वृद्धि हो तो यह अनिवार्यता का प्रमाण नहीं होगा क्योंकि ऐसे अनेक तत्व हैं जिनसे पौदों की वृद्धि होती है किन्तु वे अनिवार्य नहीं हैं। अनिवार्यता के तीन मापदण्ड माने गये हैं (आर्बन तथा स्काउट)

(1) ऐसे तत्व की न्यूनता के कारण पौदे अपना जीवन चक्र पूरा नहीं कर पाते।

(2) यह न्यूनता विचाराधीन तत्व के लिए विशिष्ट होती है और उसकी क्षति पूर्ति उसी तत्व द्वारा की जा सकती है।

(3) ऐसा तत्व पादप-पोषण में प्रत्यक्ष भाग लेता है।

पशुओं में सूक्ष्ममात्रिक तत्व

वास्तव में पशुओं से ही इन तत्वों की खोज शुरू हुई। अण्डरवुड का मत है कि सबसे पहले 1847 ई० में हार्लेस नाम के वैज्ञानिक ने इन तत्वों की जैव महत्ता पर प्रकाश डाला। 1928 ई० में हार्ट तथा उसके सहयोगियों ने सिद्ध किया कि चूहों के लिए ताम्र अनिवार्य है। 1931 ई० में रैमेज नामक वैज्ञानिक ने 43 समूचे पशुओं का विश्लेषण किया। उन सब में ताम्र पाया गया। इसी प्रकार मैंगनीज भी सब में पाया गया। स्तनी वर्ग तथा पक्षी वर्ग के लिए मैंगनीज तथा जिंक की अनिवार्यता प्रदर्शित की गई। जल तथा चारे में आयोडीन की कमी से घेघा, रोग के फैलने तथा चारागाहों और मिट्टियों में कोबाल्ट की कमी से भेड़ों में घातक रोग होने की सूचनाएँ आस्ट्रेलिया तथा न्यूजीलैंड से प्राप्त हुई। इसी प्रकार सेलीनियम तथा मालिब्डनम की अधिकता से तरह तरह के रोगों के होने की सूचना मिली।

शोधों के फलस्वरूप पशुओं में अपरिहार्य तत्वों की संख्या 8 है और उनके अतिरिक्त क्लोरीन, क्रोमियम, निकेल, टिन तथा वनैडियम - ये पाँच तत्व भी पोषण में महत्वपूर्ण माने जाते हैं।

सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का रसायन

सूक्ष्ममात्रिक तत्वों में कोई व्यवस्था लक्षित नहीं होती। इनमें से चार तत्व प्रथम संक्रमण समूह की धातुयें हैं, मालिकबडन द्वितीय संक्रमण की भारी धातु है और बोरान तथा क्लोरीन अधातुएँ हैं। इनकी परमाणु

संख्याएँ 5 से लेकर 42 तक के बीच हैं। न तो ये हल्के तत्व हैं और न अधिक भारी ही।

इनकी संयोजकताएँ 2, 3, तथा 6 तक हैं। यदि मालिब्डनम तथा बोरान लघु आकार वाले हैं तो इनमें आवेश अत्यधिक है और ये सह-संयोजक बन्ध बनाते हैं। इन तत्वों में सबसे राजसी ताम्र और सबसे कम राजसी मैंगनीज है।

लोह, मैंगनीज, ताम्र तथा जिंक बैसाल्टी लावा में और मालिब्डनम तथा बोरान ग्रैनाइट शैलों में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। पृथ्वी की पर्पटी मुख्यत: बैसाल्ट, ग्रैनाइट तथा शैल शैलों से बनी है अत: मिट्टियों में सारे के सारे सूक्ष्ममात्रिक तत्व पाये जाते हैं।

भारतीय मिट्टियों में सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का वितरण

हमारे देश में 25 प्रकार की मिट्टियाँ हैं किन्तु अभी तक बहुत से ऐसे प्रदेश हैं जहाँ सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की मात्रा ज्ञात नहीं की जा सकी। फिर भी हमारे देश में 1936 ई० से ही छुटपुट कार्य प्रारम्भ हो गया था। भारतीय मिट्टियों में विभिन्न सूक्ष्ममात्रिक तत्वों का वितरण निम्न प्रकार है।

मैंगनीज 300 1600 अंश; ताम्र 1-100 अंश; जिंक 10-300 अंश, मालिब्डनम 0·2-5·0 अंश तथा बोरान 7-630 अंश प्रति दशलक्षांश।

ज्ञात हो कि यह मात्रा कुछ औंस प्रति एकड़ से लेकर कई सौ पौंड प्रति एकड़ बैठती है लेकिन यह भी ध्यान में रखना होगा कि एक एकड़ की मिट्टी का भार 1000 टन होता है। अत: सूक्ष्ममात्रिक तत्व मानों समुद्र के अथाह जल में वर्षा की बूंदों के सदृश हों। इतने पर भी ऊपर से तुर्रा यह है कि इनकी समस्त मात्रा पौदों के लिए उपलब्ध नहीं होती। यही कारण है कि इन तत्वों की उपलब्धि ज्ञात करने के लिए नाना प्रकार की विधियाँ ढूँढ निकाली गईं। सन्तोष की बात है कि कृषि-वैज्ञानिकों को अपने अथक प्रयासों में सफलता मिली है। उन्होंने उन अनेक कारकों को ढूँढ निकाला है जो विभिन्न सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। आज वे ऐसी स्थिति में हैं कि प्रयोगशालाओं में सम्पन्न मृदा विश्लेषणों के आधार पर यह बता सकते हैं कि किस मिट्टी में कितनी मात्रा इन तत्वों की है।

उर्वरकों के रूप में सूक्ष्ममात्रिक तत्व

मिट्टियों में निहित सूक्ष्म तत्वों पर अत्यधिक आश्रित न रहकर कृषि वैज्ञानिकों ने इन तत्वों को उर्वरक रूप में प्रयुक्त करने की ठानी। आज कल अमरीका में इन तत्वों के उर्वरकों का उत्पादन होता है और अच्छी खपत है।

विशेषतया अम्लीय तथा क्षारीय मिट्टियों में इन उर्वरकों के डाले जाने की आवश्यकता होती है। इन्हें प्रमुख उर्वरकों के साथ मिलाकर खेतों में डाला जाता है जिससे अधिक खर्च नहीं बैठता।

अब ऐसे मानचित्र भी तैयार हो चुके हैं जिनके अनुसार मिट्टियों में एक से अधिक सूक्ष्म तत्वों को न्यूनता का पता चल सकता है। किन्तु व्यावहारिक रूप में संतुलित सूक्ष्ममात्रिक तत्व उर्वरक प्रयोग में लाये जाते हैं जिसके प्रयोग करते समय किसी भी तत्व की न्यूनता जानने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ऐसा संतुलित उर्वरक 1 हेक्टर से अपहृत सूक्ष्ममात्रिक तत्व की मात्रा के तुल्य तत्वों की मात्रा से युक्त रहता है।

विशेष रूप से लोह तथा जिंक के उर्वरकों का प्रचलन अधिक है किन्तु जिस गति से फसल की प्रणाली में परिवर्तन लाया जाने वहाँ उसे देखते हुए यह आशा रखनी चाहिए कि भविष्य में इन तत्वों की अधिकाधिक आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु आवश्यक रूप से अधिक मात्रा डाल देने से ये तत्व विषैले बन जाते हैं और पहले तो पशुओं फिर अन्त में मनुष्यों के लिए जान लेवा सिद्ध हो सकते हैं। अत: इन तत्वों के उपयोग में विशेष सतर्कता बरतने की आवश्यकता है।

डा० शिवगोपाल मिश्र
प्राध्यापक कृषि रसायन
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

विज्ञान-वार्ता

(1) शनिग्रह के 'टाइटन' चन्द्रमा पर जीवन सम्भव

अन्य ग्रहों पर जीवन की सम्भावनाओं में विश्वास रखने वालों के लिए यह एक सुखद समाचार है कि वैज्ञानिकों को ऐसे संकेत मिले हैं, जिनके आधार पर यह माना जा सकता है कि 'टाइटन' नामक उपग्रह पर जीवन का अस्तित्व हो सकता है।

कार्नेल विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों ने घोषणा की है कि उन्हें 'टाइटन' उपग्रह पर, जो शनिग्रह के 10 चन्द्रमाओं (उपग्रहों) में सबसे बड़ा है, पृथ्वी से मिलते-जुलते वातावरण होने की जानकारी प्राप्त हुई है। इससे पूर्व, अनेक वैज्ञानिकों की धारणा इसके विपरीत थी।

उक्त विश्वविद्यालय की ग्रह अध्ययन प्रयोगशाला के वैज्ञानिक, डा॰ कार्ल सैगान का विश्वास है कि 'टाइटन' पर उसी प्रकार के जैव-व्यूहाणु विद्यमान हैं, जिस प्रकार के जीवाणु पृथ्वी पर जीवन प्रारम्भ होने के समय विद्यमान थे।

(2) वायुयानों को सुरक्षित उतारने के लिए सूक्ष्म रेडियो-तरंगों का उपयोग

वायुयान को सुरक्षित धरती पर उतारने में सहायता करने वाले एक नवीन उपकरण का अब अमेरिका में व्यापक उपयोग होने लगा है। पहले यह उपकरण केवल अमेरिकी वायुसेना प्रयोग में ला रही थी। यह उपकरण उन छोटे हवाई अड्डों के लिए अति उपयोगी है जहाँ वायुयान उतारने के बड़े उपकरणों का प्रयोग सम्भव नहीं है।

इस आधुनिक विद्युदाणविक प्रणाली द्वारा अब अधिकांश हवाई अड्डे खराब मौसम में भी कर सकेंगे। साथ ही, इस विधि की सहायता से वायुयान को उतारते समय होने वाली घातक दुर्घटनाओं में भी काफी कमी हो सकेगी।

यद्यपि खराब मौसम के समय वायुयान-उतराव में विद्युदाणविक उपकरणों का प्रयोग पिछले 25 वर्षों से हो रहा है, परन्तु यह नवीन विद्युदाणविक प्रणाली सूक्ष्म तरंग फ्रीक्वेसियों (माइक्रोवेव फ्रीक्वेंसीज) पर आधारित है। यह प्रणाली ऐसे हवाई अड्डों के लिए भी उपयुक्त है वहाँ वायु-यातायात बहुत कम है अथवा जहाँ की भूमि चतुर्दिक ऊबड़-खाबड़ है और जहाँ वृहदाकार प्रणाली जिसे 'आई एल एस' अथवा इन्स्ट्रूमेंण्ट लैण्डिग सिस्टम (उपकरण अवतरणीय प्रणाली) कहा जाता है, स्थापित करना सम्भव नहीं है। 'आई एल एस' एक ऐसा अदृश्य विद्युदाणविक-पथ है, जिस पर वायुयान रनवे (वायुयान की दौड़-पट्टी) पर फिसलता चला जाता है, जैसे कि वह किसी मध्यम ढलान पर लुढ़क रहा हो। यह पथ दौड़-पट्टी के क्षेत्र से प्रसरित रेडियो-किरणों द्वारा निर्मित होता है। वायुयान को इस पथ पर स्थिर रखने के लिए चालक को यान के काकपिट में लगे उपकरण के संकेतकों को केन्द्रित रखना होता है। इनमें से एक संकेतक द्वारा चालक को यह जानकारी रहती है कि यान पथ से कितना दायें अथवा बायें है और दूसरे संकेतक से उसे पता चलता है कि वह बहुत अधिक ऊँचाई अथवा नीचाई पर तो नहीं है।

'आई एल एस' प्रणाली की एक कमी इसमें उन फ्रीक्वेंसीज की न्यूनता है जिन पर रेडियो-किरणों प्रसारित होती हैं। दूसरे, इसके लिए यह भी अनिवार्य है कि ऊँचाई-नीचाई की सूचना देने वाला संकेतक विशुद्ध रूप से यान के फिसलाव का दिशा ज्ञान कराये, जिसके लिए दौड़-पट्टी के चहुँ ओर का स्थान समतल होना आवश्यक है। साथ ही, 'आई एल एस' प्रणाली की किरणें समीपस्थ पहाड़ियों एवं भवनों द्वारा नष्ट हो सकती हैं।

'सूक्ष्म तरंग प्रणाली' इन सभी दोषों से सर्वथा मुक्त है। इस प्रणाली में रेडियो-किरणों को इस प्रकार नियन्त्रित किया जाता है कि इसके रनवे की समीपस्थ

भूमि का समतल होना आवश्यक नहीं और न ही समीपस्थ पहाड़ियों अथवा भवनों से इनमें कोई रुकावट आती है। सूक्ष्म तरंग प्रणाली की स्थापना उन स्थानों के लिए अति उत्तम है जहाँ 'आई एल एस' प्रणाली काफी मँहगी बैठती हो अथवा यह प्रणाली सुचारु रूप से कार्य नहीं कर सके।

वायु-यातायात अधिकारियों का विश्वास है कि सूक्ष्म-तरंग प्रणाली वायुयानों के लम्बवत् उतराव और लघु उतराव-पथ वाले हवाई अड्डों के लिए भी उपयुक्त सिद्ध होगी।

(3) न फिसलने वाला टायर

आवश्यकता आविष्कार की जननी है, अर्थात् मानव परिस्थितियों के अनुरूप अपने लिए वातावरण एवं वस्तुओं का निर्माण कर लेता है। आईसलैण्ड के बर्फीले नगर रेक्याविक के एक अनुसन्धानकर्ता ने एक न फिसलने वाले टायर का आविष्कार किया है। इसमें एक प्रकार की खूँटियाँ लगी हैं जिन्हें आवश्यकतानुसार बढ़ाया या घटाया जा सकता है। आइनर आइनरसन नामक इस अनुसन्धानकर्ता को सरकार से समर्थन प्राप्त हुआ है और अनेक उद्योगों ने इसमें अपनी रुचि प्रदर्शित की है। खूँटियाँ टायरों के किनारों में लगी होती हैं। टायर को फुलाये रखने की व्यवस्था के साथ-साथ इसमें ऐसी व्यवस्था भी है जो खूँटियों पर नियन्त्रण रखती है। एक छोटी रैंच की सहायता से इसमें लगे एक छोटे बाल्व को घुमाने से इन खूँटियों को बढ़ाया या घटाया जा सकता है। साथ ही, कार अथवा मोटर वाहन के डेशबोर्ड से भी इन्हें नियन्त्रित किया जा सकता है। खूंटी की व्यवस्था उन स्थानों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगी जहाँ बर्फीले मार्गों पर फिससन को रोकने के लिए टायरों पर जंजीर (चेन) लगाने की आवश्यकता पड़ती है।

(4) सूर्य को देख कर सूखे की भविष्यवाणी संभव

ब्रिटिश रेडियो व अंतरिक्ष अनुसंधान केन्द्र के सदस्य डा० जे० डब्ल्यू० किंग का कहना है कि उनके पास इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि सूर्य धरती की जल वायु के हेरफेर में दखल देता है तथा उसकी स्थिति का अध्ययन कर विभिन्न भागों में पड़ने वाले सूखे की भविष्यवाणी की जा सकती है।

'नेचर' पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट में डा० किंग ने दावा किया है कि सूखे सौरचक्र पर इतना निर्भर करते हैं कि यदि मौसम-विज्ञानी 'सौर गतिविधियों' का सूक्ष्म अध्ययन करें तो वे इनकी भविष्यवाणी बड़ी आसानी के कर सकते हैं।

डा० किंग के कथनानुसार जब सूर्य में विस्फोट होता है तो उसमें से निकल कर करोड़ों सशक्त कण पृथ्वी की ओर आते हैं। सूर्य के वातावरण से प्रभावित ये कण उत्तरी अटलांटिक के मौसम को एकदम बदल डालते हैं। इस क्षेत्र की हवा के दबाव और तापमान में होने वाला यह परिवर्तन कई बार समूचे विश्व को प्रभावित करता है।

उन्होंने आगे लिखा है कि जब सूर्य में अधिक सक्रियता (तीव्र विस्फोट) होती है तो उत्तर भारत में सर्दियों में बहुत कम वर्षा होती है।

दूसरी ओर सौर गतिविधि में जब क्षीणता होती है तो कियू (स्काटलैंड) में सर्दियों में एकदम सूखा रहता है। पिछले 4 वर्ष के वर्षा के आँकड़ों को देखने से इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

इसी प्रकार पिछले 50 वर्ष के तापमान के आँकड़ों को आधार बनाकर डा० किंग ने दिखाया है कि तापमान सौर चक्र के अनुसार घटता-बढ़ता है। 'ग्रोइंग सीजन' का पता भी इसी से चलता है। 'ग्रोइंग सीजन' वर्ष के वे कुछ दिन होते हैं जब तापमान 5·6 अंश सेन्टीग्रेट से बढ़ जाता है। यह कृषि उत्पादन के लिए उपयुक्त जलवायु जानने का बड़ा महत्वपूर्ण साधन है।

डा० किंग का कहना है कि सौर गतिविधि का अत्यन्त सूक्ष्म अध्ययन मौसन की भविष्यवाणी वर्षों पहले (11 वर्ष तक) कर सकता है।

(5) शलजम की अगाही किस्म: पूसा चन्द्रिमा

हिमाचल प्रदेश में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के कटरैन स्थित सब्जी अनुसंधान केन्द्र ने शलजम की एक नयी किस्म निकाली है जिसे पूसा चन्द्रिमा कहते हैं। यह किस्म 'स्नोबाल' के मुकाबले ज्यादा पैदावार देती है तथा जल्दी पक जाती है। पूसा चन्द्रिमा योरुप की स्नोबाल किस्म और एशिया की जापानी व्हाइट किस्मों के मेल से निकाली गयी है।

इसकी फसल बोआई से 55 से 60 दिन के भीतर तैयार हो जाती है। बोआई के समय खेत में फी हैक्टर 400 क्विन्टल गोबर कूड़े की खाद, 250 किलो डायमोनियम फास्फेट, 100 किलो म्यूरियेट आफ पोटाश डालने तथा 250 किलो कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट का खड़ी फसल पर भुरकाव करने से पहाड़ी इलाकों में 600 क्विन्टल और मैदानी इलाकों में लगभग 230 क्विन्टल प्रति हैक्टर शलजम की पैदावार मिल जाती है।

इस किस्म के बीज हिमाचल प्रदेश में कटरैन स्थित सब्जी अनुसंधान केन्द्र के सब्जी विशेषज्ञ अथवा भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नयी दिल्ली के सब्जियों एवं पुष्पोत्पादन डिवीजन के अध्यक्ष से प्राप्त किये जा सकते हैं।

(6) पशुओं के दुग्ध ज्वर की रोकथाम के तरीके

लुधियाना स्थित पंजाब कृषि विश्वविद्यालय के पशु चिकित्सक औषध महाविद्यालय के विशेषज्ञों के अनुसार दुधारू गाय एवं भैंसों के कैल्शियम, बोरोग्लूकोनेट तथा मिफैक्स के टीके लगाकर दुग्ध ज्वर का इलाज किया जा सकता है

आमतौर से ब्याने के 12 से 72 घंटों के भीतर पशुओं को दुग्ध ज्वर हो जाता है। यह रोग अधिक दूध देने वाले पशुओं को ज्यादा होता है।

रोगी पशु चारा खाना बन्द कर देता है, हिलना डुलना पंसद नहीं करता, उसकी आँख के तारे फैल जाते हैं तथा आँखें मलिन और चढ़ी हुई दिखाई देती हैं तथा उसे आमतौर पर कब्ज हो जाती है। उसे 97° से 100° तक बुखार हो जाता है।

घटिया किस्म का चारा खिलाने तथा भूखा रखने, चारे में कैल्शियम, मैगनीसम तथा फास्फोरस की अत्यधिक कमी तथा दुधारू पशुओं के ब्याने के पहले दो दिनों के भीतर ज्यादा प्रोटीनयुक्त खुराक खिलाने से ज्यादातर यह रोग हो जाता है।

दुग्ध ज्वर की रोकथाम के लिये पशु को प्रति दिन गेहूँ की भूसी, हरा चारा, 25 ग्राम मिनोमिक्स या सुपरमिंडिफ जैसी पोषक तत्वों से युक्त तथा आसानी से हजम होने वाली खुराक खिलायें। पशु के ब्याने के पहले 12 घंटों में उनका दूध नहीं निकालना चाहिए तथा पहले दो दिनों तक केवल 70 प्रतिशत ही दूध दुहना चाहिए।

सूचना

हमें खेद है कि इस अंक से 'विज्ञान' के मूल्य में वृद्धि की जा रही है। कागज का अभाव व उसकी मूल्य वृद्धि, छपाई के व्यय में वृद्धि तथा अन्य आर्थिक कठिनाइयों के कारण हमें मूल्य में परिवर्तन करने के लिये बाध्य होना पड़ा है। सभी पत्रिकाओं व समाचार पत्रों ने मूल्य बढ़ा दिये थे। हमारा प्रयत्न था कि उसी मूल्य में हम अपने पाठकों को विज्ञान की सामग्री बराबर देते रहें। परन्तु विवश होकर हमें यह निर्णय लेना पड़ा क्योंकि पत्रिका का निकलते रहना अर्थ के अभाव में असम्भव सा दिखाई पड़ने लगा है। इन कठिनाइयों के बावजूद भी हमने मूल्य में अधिक परिवर्तन नहीं किया। प्रति अंक अब तक 40 पैसा था अप्रैल से 50 पैसा हो जायगा और वार्षिक चन्दा 4 रुपया से 6 रुपया किया जा रहा है। हमें आशा व विश्वास है कि परिस्थितियों को ध्यान में रख कर पाठकगण भविष्य में भी पहले जैसा ही सहयोग प्रदान करते रहेंगे। आपके सहयोग से हमें बल मिलता है। हिन्दी के माध्यम से विज्ञान के प्रचार व प्रसार का हम जो भी लघु प्रयास कर रहे हैं वह हिन्दी व विज्ञान दोनों ही के दृष्टि से आवश्यक है। पत्रिका आप सब की सेवा करती रहे इसके लिये हमें आप सभी पाठकों व लेखकों के सहयोग की अत्यधिक आवश्यकता है। आप अपने चन्दा का नवीकरण कराते समय नये दर को ध्यान में रखें।

—सम्पादक

[पृष्ठ 17 का शेषांश]

कश्मीर—पूंछ जिले में गंधक का झरना है। रजौरी में गर्म जल का झरना है। पूगा घाटी में अनेक झरने हैं।

पंजाब—कांगड़ा जिले में ज्वालामुखी और कुलू घाटी में मनीकरण के झरने प्रसिद्ध हैं।

विजय कान्त श्रीवास्तव
C—386 सेक्टर सी
महानगर, लखनऊ

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111 | फाल्गुन 2031 विक्र०, 1894 शकाब्द मई 1974 | संख्या 4

सौर ऊर्जा—प्रकृति द्वारा मानव को वरदान

शुकदेव प्रसाद

हमारे दैनिक जीवन में सूर्य का बहुत महत्व है। यदि सूर्य का अस्तित्व न होता तो पृथ्वी पर जीवन सम्भव न था। हम अपने चारों ओर जो हरी भरी वनस्पतियाँ देखते हैं, उनका भी जीवन सूर्य पर ही निर्भर है। ये वनस्पतियाँ सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में वायु से कार्बनडाइ आक्साइड साँस के रूप में लेकर वायुमंडल को दूषित होने से बचाती हैं तथा अपना खाद्य तैयार करती हैं। हम भी अपना खाद्य इन्हीं वनस्पतियों से लेते हैं। यदि सूर्य न होता तो पेड़ इन पौधों का अस्तित्व न होता और इनके अभाव में न तो हमें खाद्य सामग्री मिल पाती और वातावरण इतना विषाक्त हो जाता कि एक मिनट भी जीना असम्भव था। अत: सूर्य का अस्तित्व प्रकृति की ओर से धरती के लिए अमूल्य बरदान है।

इस शती के वैज्ञानिक सौर ऊर्जा के अन्य उपयोगों के बारे में शोध कर रहे हैं। इस संदर्भ में कुछ वैज्ञानिक उपलब्धियाँ निम्न हैं।

1—सूर्य के प्रकाश से विजली—(सौर-बैटरियों का निर्माण) इस समय सारी दुनिया ऊर्जा संकट से गुजर रही है। ऊर्जा के भंडार सीमित हैं। पूरे विश्व में व्यापक रूप से इसके लिए चिंता व्यक्त की जा रही है। ऊर्जा के समाधान हेतु सारे विश्व के वैज्ञानिक हल ढूँढ़ रहे हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल सौर ऊर्जा है। वैज्ञानिकों ने सूर्य की धूप से बिजली उत्पन्न करने की विधि ज्ञात कर ली है। और इसका उपयोग भी हो रहा है। सौभाग्य से हमारा देश संसार के उन थोड़े से देशों में से एक है जिनके पास विपुल मात्रा में सौर ऊर्जा है। सौर ऊर्जा के उपयोग के सम्बंध में भारत के राष्ट्रीय

भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने काफी कार्य किया है तथा सौर ऊर्जा से चलने वाले तमाम उपकरणों का निर्माण किया है। उदाहरणार्थ—सौर चूल्हा (सोलर कूकर) पानी गरम करने का सौर उपकरण, पानी शुद्ध करने का सौर उपकरण आदि। सूर्य की धूप से बिजली उत्पन्न करने के लिए 'सोलर सेल्स' या सौर बैटरियों का विकास किया गया है। सौर बैटरियों को बनाने के लिए सिलिकॉन नामक पदार्थ काम में लाया जाता है और इसकी सहायता से प्रकाश को ऊर्जा में बदला जाता है।

सौर बैटरियों का सबसे बड़ा उपयोग स्काईलैब में, अमेरिका द्वारा पृथ्वी की परिक्रमा कक्षा में स्थापित अन्तरिक्ष स्टेशन 'स्काईलैब' के जीवन पोषक उपकरणों को चालू रखने और वैज्ञानिक अनुसन्धान कार्यों के लिए आवश्यक बिजली सूर्य की धूप से उत्पन्न की जा रही है। स्काईलैब के लिए सूर्य की धूप से बिजली उत्पन्न करने के उद्देश्य से जो विद्युत यन्त्र तैयार किया गया है, वह अन्तरिक्ष में अब तक काम में लाये गए इस प्रकार के यन्त्रों में सबसे बड़ा है। इस विद्युत उत्पादन-प्रणाली की सहायता से स्काईलैब लगभग आठ मास तक अन्तरिक्ष में पृथ्वी की परिक्रमा करती रहेगी।

स्काईलैब के लिए निर्मित विद्युत उत्पादन-प्रणाली में 3,12,000 सौर बैटरियाँ हैं, जो सूर्य की धूप को बिजली में बदलेंगी। ये सब बैटरियाँ कुल मिलाकर 2,355 वर्ग फुट (120 वर्गमीटर) स्थान में फिट हैं। वे जितना स्थान घेरे हुए हैं उनका क्षेत्रफल टेनिस कोर्ट के बराबर है। यह प्रणाली उस समय, जब अन्तरिक्ष स्टेशन अपनी कक्षा पर परिक्रमा करते हुए सूर्य के प्रकाश वाले क्षेत्र में रहेगा, सामान्यत: 12 हजार वाट बिजली उत्पन्न करेगी, जो तीन शयन कक्ष वाले औसत आकार के पाँच मकानों की आवश्यकता पूरी करने के लिए पर्याप्त होगी। धूप मिलने का समय 58 से 69 मिनट तक होगा। यह इस बात पर निर्भर होगा कि अन्तरिक्ष में 93 मिनट में पृथ्वी की एक परिक्रमा पूरी करने वाली स्काइलैब का उड्डयन पथ कैसा होता है।

इस अवधि में स्काईलैब के विद्युत उत्पादक संयंत्र द्वारा जो अतिरिक्त बिजली तैयार होगी, वह पुन: चार्ज होने योग्य (निकेल कैडमियम) बैटरियों में स्वत: चली जायगी। उन बैटरियों से उस समय बिजली प्राप्त की जा सकेगी, जब अन्तरिक्ष स्टेशन पृथ्वी की छाया अर्थात् अंधेरे वाले क्षेत्र से गुजर रहा होगा।

स्काईलैब के पीपेनुमा मुख्य ढाँचे के दोनों बाजू, पंखों की तरह के दो पट निकले होंगे। इन पटों पर कुल मिलाकर 1,47,840 सौर बैटरियाँ लगी हैं। प्रत्येक बैटरी .078 इंच चौड़ी और 1.57 इंच लम्बी है। ये दोनों पट सौर बैटरियों वाले ? 155 वर्ग फुट (107 वर्गमीटर) क्षेत्र को सूर्य के प्रकाश के सामने खुला रखते हैं। ये पट प्रक्षेपण के समय बंद रहेंगे, परन्तु स्टेशन के अन्तरिक्षीय कक्ष में पहुँचते ही खुल जायेंगे।

सौर बैटरियाँ इस हिसाब से बनायी गयी हैं ताकि वे कुल मिलाकर 10,496 वाट बिजली प्रदान कर सकें। इन्हें आठ समूहों में तारों से इस प्रकार बाँधा है कि प्रत्येक समूह का अपना अलग चार्जर, बैटरी और रेगुलेटर है। इस प्रकार, प्रत्येक समूह दूसरे समूह से स्वतन्त्र है। इस व्यवस्था का एक मुख्य लाभ यह है कि कोई एक बैटरी समूह किसी उल्का पिंड के आ टकराने से क्षतिग्रस्त हो जाय और अपना काम करना बंद कर दे, तो इससे होने वाली हानि कुल विद्युत संचार क्षमता के आठवें अंश के बराबर ही होगी।

2—सौर जल शुद्धि उपकरण (सोलर डिस्टीलेशन प्लांट)—इस उपकरण का निर्माण भारत के राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने किया है। इस समय इसका उपयोग भी कई स्थानों पर किया जा रहा है। महाराष्ट्र के भावनगर क्षेत्र में एक जगह है, जहाँ समुद्र के खारे पानी को सौर ऊर्जा द्वारा शुद्ध करके पीने योग्य बनाया जा रहा है। इस उपकरण में काले काँच की छतें होती हैं और इन छतों के नीचे ट्रे लगी होती है, जिनमें गंदा या खारा पानी एक नल से आता है। काली काँच की छतें सूर्य की उष्मा को सोख कर पानी का भाप बनाती हैं और ढलान वाली छत से यह भाप बनकर दूसरी नलियों में जल ले जाती है।

इस विधि का उपयोग गंदे या खारे पानी को शुद्ध करके पीने योग्य बनाने में किया जाता है। हमारे देश के कुछ गाँवों में पोखरों का पानी पीने के काम में लाया जाता है। जो कि स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यंत हानिकारक होता है। यह उपकरण ऐसे जलों को शुद्ध करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

3—सौर शक्ति से जैविक पदार्थों को ऊर्जा में बदलना—इस दिशा में हमारे यहाँ के वैज्ञानिकों ने काफी कार्य किया है। हमारे वैज्ञानिक पानी में उगने वाली काई को सौर शक्ति की सहायता से ऊर्जा बना रहे हैं। काई से मीथेन तथा हाइड्रोजन गैस बना सकते हैं। जो हमारे लिए अत्यंत उपयोगी हैं। हमारे देश में प्राकृतिक गैस के भंडार नहीं हैं। लेकिन पानी की तो कमी नहीं है। अतः इस विधि से हम पानी में काई उगाकर इस इस समस्या को हल कर सकते हैं।

4—सूर्य ऊर्जा से चलने वाली घड़ियाँ—सूर्य की ऊर्जा से चलने वाली सबसे पहली हाथघड़ी 'सन्क्रोनर' अमरीकी बाजार में आ गयी है। यह घड़ी चलने के लिए सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करती है। इसके ऊपर लगे हुए सौर-सेल अंदर रखी हुई बैटरियों को चार्ज करते हैं। सिन्क्रोनर के निर्माताओं के अनुसार इस घड़ी को चौबीस घंटे में सिर्फ एक बार दस-पंद्रह मिनट के लिए सूर्य के सामने रखना पड़ता है। यदि धूप न हो तो साधारण विद्युत बल्ब से भी काम लिया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त सौर ऊर्जा से चलने वाले कई अन्य उपकरण वैज्ञानिकों ने बनाया है। भारतीय वैज्ञानिकों ने सौर ऊर्जा के उपयोग से अनाज और इमारती लकड़ी सुखाने के उपकरण का निर्माण किया है। तथा पानी गरम करने के उपकरण भी बनाए हैं। फ्रांस जैसे देश में ऐसे पम्प बना लिये गए हैं जिन्हें सौर ऊर्जा से परिचालित किया जाता है। उपर्युक्त विवरण से सौर ऊर्जा के विविध उपयोग स्पष्ट हैं। जिसमें सबसे बड़ी उपलब्धि सूर्य से बिजली प्राप्त करना है। यदि वैज्ञानिकों में इस दिशा में और कार्य किया तो वह दिन दूर नहीं जब कि गाँवों और शहरों में विद्युत 'सौर-बिजली घरों' द्वारा पहुँचाई जायगी।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद—2

प्रकाश और जीवविज्ञान

डॉ० रूप किशोर गर्ग एवम् हर नारायण गौड़

परमशक्ति का दूसरा नाम प्रकृति है। वैज्ञानिक लोग प्रकृति को एक अलौकिक, अनादि, अनंत, अभेद प्रयोगशाला कहते हैं। प्रकृति में प्रकाश का एकमात्र स्रोत सूर्य है, जो कि इलेक्ट्रॉन चुम्बकीय तरंगों द्वारा प्रकाश को पृथ्वी पर उड़ेलता है।

प्रकाश का सभी प्रकार के जीव जन्तुओं से बाहरी एवम् आन्तरिक रूप से घनिष्ठ सम्बन्ध है। द्रव्य तथा प्रकाश ऊर्जा की पारस्परिक क्रिया ही पृथ्वी पर जीवन का आधार है। पौधों में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तथा दीप्तिकालिता पृथ्वी और सूर्य की विभिन्न स्थितियों पर निर्भर करती है। संक्षिप्त में हम यह कह सकते हैं कि प्रकाश जैविक क्रिया में एक अप्रत्याशित परिवर्तन कर सकता है। तीव्र ऊर्जा के विकिरण से उत्परिवर्तन होते हैं तथा केन्सर और विभिन्न चर्म रोगों का इलाज भी किया जाता है। प्रकाश जीव विज्ञान का उल्लेख करने से पहले उसे आण्विक रूप से समझना अधिक उचित होगा। प्रकाश जीव विज्ञान की व्याख्या हम अणुओं द्वारा अवशोषित प्रकाश के सिद्धान्तों को समझकर कर सकते हैं।

प्रकाश रसायनशास्त्र और प्रकाश जीवविज्ञान का सम्बन्ध नितान्त समान है, क्योंकि दोनों का सम्बन्ध इलेक्ट्रॉनीय उत्तेजित अणुओं की प्रतिक्रिया से सम्बन्धित है। प्रकाश जीवविज्ञान विज्ञान की एक नवीनतम शाखा है, जिसमें वैज्ञानिकों को उन्हीं साधनों एवम् विचारों की आवश्यकता है जो कि विज्ञान की अन्य शाखाओं के लिए आवश्यक है।

यहाँ यह समझना आवश्यकीय होगा कि एक भौतिक वैज्ञानिक एवम् एक जैव वैज्ञानिक के उपयोग में आने वाली भाषा में अन्तर होता है। एक रासायनिक या भौतिक वैज्ञानिक 10^{-9} से 2 या 3 सैकण्ड तक उत्तेजित अणुओं की प्रतिक्रिया देखता है। परन्तु एक जैव वैज्ञानिक उत्तेजित अणुओं की जीवों में प्रतिक्रियाएँ माइक्रो सैकण्डों में न व्यक्त करके उसे मिनिटों व घण्टों में व्यक्त करता है। भौतिक व रासायनिक वैज्ञानिक समय की लघुता में अधिक विश्वास करते हैं और उसी प्रकार व्यक्त भी करते हैं; जबकि जैव-वैज्ञानिक को वही क्रियाएँ कुछ समय बाद सत्य होती हुई प्रतीत होती है।

एकत्रित और परिवहन योग्य इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा जो अधिक समय से चलने वाली किसी भी क्रिया में उपस्थित होती है, वह ऊर्जा का केवल रासायनिक रूप है। प्रकृति ने इस कला को बड़े सुनियोजित रूप से रचा है। तथा वैज्ञानिकों ने यह खोज निकाला है कि इलेक्ट्रॉनिक ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा के रूप में परिरक्षण करना सम्भव है। जैसे कि ऑर्थोफास्फेट के अणुओं को एक दूसरे से जोड़ने पर पी० ओ० पी० बन्ध बनते है जो किए टी पी (A T P) के अग्र फॉस्फेट्स पर देखे जा सकते हैं।

शायद बहुत से विज्ञान प्रेमी यह सोचते होंगे कि प्रकृति ने डी एन ए और आर एन ए संश्लेषण के लिये केवल प्यूरीनो और पिरिमिडिनो को ही आधार इकाई के रूप में क्यों चयन किया ? इस चयन का मुख्य कारण अवश्य ही इन अणुओं द्वारा किये गए कार्य रहे होंगे। डी एन ए अणु जिसमें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जीवन चक्र चलाने के आधार कोड उपस्थित होते हैं। ये कोड अवश्य ही अपनी बनावट में कुछ ऐसी दृढ़ता रखते होंगे जिससे कि वे जनन के लिये त्रिक की तरह कार्य कर सके क्योंकि इस बड़े अणु को किसी जगह पर खण्डित होने की भी आवश्यकता हो सकती है, अतः उनके दो समान भागों में बँटा रहने की आवश्यकता है और बीच में एक दूसरे की पकड़ कमजोर बल जैसे कि हाइड्रोजन बन्ध की होनी चाहिये। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन क्षारों का चुनाव निम्न बातों पर निर्भर करता है—

1—उनकी बनावट की स्थिरता 2—कमजोर बन्ध बनाने की क्षमता 3—शोषित ऊर्जा को आवश्यक समय तक संग्रह करने की क्षमता।

क्वांटम मेकेनिकल केलकुलेशन्स ने यह बताया है कि प्यूरीन और पिरिमिडीन में संयुग्मित द्वि बन्ध प्रणाली होने के कारण विशिष्ट बनावट तथा ऊर्जा को स्थाई रख सकते हैं। इलेक्ट्रॉन्स के एकाकी इलेक्ट्रॉन युग्म एन अथवा जो के ऊपर लम्बे समय तक ऊर्जा रहने का स्थान बना देते हैं। इन क्षारों की विकिरण, संवेदनशीलता इस तरह होती है—

एडेमीन < गुएनीन < सायटोसीन < थायमीन विकिरण संवेदनशीलता इनके अनुनाद स्थायित्व ऊर्जा प्रति π इलेक्ट्रान के विपरीत होती है। विशेषतया एडेनीन का उच्चतम मान होने के कारण यह जैविक तत्वों में पाये जाने वाले सभी प्यूरीनों और परिमिडीनों में अधिक थर्मोडायनेमिकली स्थाई होता है। एडेनीन का मुख्य कार्य ऊर्जा संग्रह करना है तथा ए टी पी व ए डी पी की जंजीर में यह पायरोफॉस्फेट्स का वाहक होता है। प्रश्न यह उठता है कि प्रकृति ने ऐसे मुख्य जीव रसायन परिपूरक अवयव ही क्यों काम में लिये ? प्रकृति के इस चयन के पीछे एक बहुत बड़ा उद्देश्य है, वह यह कि प्रकृति को एक ऐसा स्थाई आधार चाहिये था, जो लम्बे समय तक स्थाई रहने वाली ऊर्जा, पारस्परिक क्रिया और हाइड्रोजन बन्ध की सुविधा दे सके। इनमें थायमिन ही न्यूनतम स्थाई है जो कि विकिरण द्वारा क्षतिग्रस्त होकर नष्ट हो जाता है।

पृथ्वी पर पूर्व जीवन का उद्भव कैसे संभव हो पाया ? ऐसा माना जाता है कि यह अवश्य एक प्रकाश रासायनिक प्रतिक्रिया रही होगी, जो कि संयोग से साधारण गैसों (वायु) जैसे—अमोनियाँ, मिथेन, पानी और कार्बन मोनोऑक्साइड के अणुओं एवम् परमाणुओं की सुशुप्त विद्युतीय विसर्जन अथवा लघु तरङ्ग विकिरण के द्वारा, वायुमण्डल के ऊपर भाग में या समुद्र की सतह पर पारस्परिक क्रिया सम्भव हुई।

अतः हम देखते हैं कि पृथ्वी पर सभी जैविक क्रियाएँ प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सूर्य के प्रकाश द्वारा संचालित होती हैं। सूर्य द्वारा प्राप्त विद्युत चुंबकीय प्रकाश का केवल कुछ ही भाग पृथ्वी तक तक पहुँचता है। विकिरण ऊर्जा का केवल 310 n m से 760 nm तक की तरंग दैर्ध्य का भाग ही मानव नेत्रों द्वारा देखा जा सकता है।

प्रकाश द्वारा मुख्यतः पौधों की निम्न क्रियाएँ संचालित होती है—

1. प्रकाश संश्लेषण 2. प्रकाश अनुवर्तन पौधों का प्रकाश की तरफ झुकाव 3. प्रकाश अनुचलन पौधों व जन्तुओं का प्रकाश की तरफ आकर्षित होना अथवा दूर भागना 4. दीप्तिकालिता प्रकाश के प्रदीप्तिकाल का पौधों के संवर्धन पर प्रभाव, इत्यादि।

उपरोक्त सभी क्रियाएँ 310-760 nm तरंग दैर्ध्य वाले प्रकाश में सम्पन्न होती हैं। केवल तरंग दैर्ध्य की इसी परास का चयन कोई आकस्मिक प्रतिक्रिया नहीं है बल्कि वास्तविकता तो यह है कि यही प्रकाश प्रकृति की प्रयोगशाला में विभिन्न जैविक क्रियाओं को कर सकने

की क्षमता रखता है। सभी रासायनिक क्रियाओं में या तो बन्ध बनते हैं या विलग होते हैं, जिसके लिए करीब 40-120 कि० केलोरी ऊर्जा प्रति परमाणु की आवश्यकता होती है। यह ऊर्जा केवल 240-900 nm तरंग दैर्ध्य वाला प्रकाश ही दे सकता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न रासायनिक क्रियाओं में प्रकाश व ताप के रूप में आवश्यक ऊर्जा सूर्य द्वारा ही ग्रहण की जाती है।

पौधों व जन्तुओं की विभिन्न शारीरिक क्रियाएँ प्रकाश तरंग दैर्ध्य व प्रकाश तीव्रता पर अधिक निर्भर करती हैं, जैसे अगर सेव के फल को परा-बैंगनी किरणें न मिले तो फल अपरिपक्व रह जायेंगे; केवल लाल रङ्ग की रोशनी न प्राप्त होने पर मारनिंग ग्लोरी के पुष्प नहीं खिलेंगे। इन दिनों में "प्रकाश-जैव शारीरिक क्रिया" पर विदेशों में विभिन्न वैज्ञानिक कार्यरत हैं। विभिन्न वैज्ञानिक एवम् संरचना जटिलताओं को सुचारु रूप से समझने के लिए फोटोमार्फोजिनेसिस को आण्विक स्तर पर परखा जा रहा है।

कोशिका में आनुवंशिक सूचना न्यूक्लिइक अम्लों द्वारा पहुँचाई जाती है। 300 nm से कम तरंग दैर्ध्य का प्रकाश इन दीर्घ अणुओं को क्षति पहुँचा सकता है, अत: या तो कोशिकाओं में उत्परिवर्तन हो जाता है अथवा कोशिकाएँ नष्ट हो जाती हैं। अस्पतालों में कीट नाशक दीपक का उपयोग, परा बैंगनी किरणों का वायरस व बेक्टोरिया पर प्रभाव तथा इनका टीके तैय्यार करने में योगदान, इत्यादि प्रकाश-जीवविज्ञान के दैनिक उपयोग हैं। डाक्टर लोग कवकानि की वृद्धि को रोकने के लिए कुछ विशिष्ट रंग के घोल काम में लेते समय शायद यह भूल जाते हैं कि इसमें भी प्रकाश गतिक ही मुख्यतया क्रियाशील है। स्पष्ट है कि प्रकाश-जीवविज्ञान का क्षेत्र काफी विस्तृत है तथा विज्ञान की इस नवीनतम शाखा को अधिक रुचिपूर्ण बनाने के लिए इसके विभिन्न पक्षों को पूर्ण रूप से समझने की आवश्यकता है।

डॉ० रूप किशोर गर्ग,
वनस्पति विज्ञान विभाग, विद्याभवन
रूरल इन्स्टीट्यूट उदयपुर (राज०)

हर नारायण गौड़
वनस्पति विज्ञान विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

वायु संदूषण तथा उसकी रोक थाम—१

सत्येन्द्र प्रसाद संगल

आज का युग मशीनी युग है। विज्ञान तथा टैक्नौलाजी की उन्नति के साथ-साथ मनुष्य की सुविधायें भी बढ़ती जा रही हैं। आज 118° F तापमान में भी एयरकंडीशनर द्वारा आप आराम से रह सकते हैं। वायुयान, रेलगाड़ियों तथा मोटर गाड़ियों ने तो दुनिया को बहुत ही छोटा बना दिया है। आप सबेरे भारत में नाश्ता करके शाम को लंदन में चाय पी सकते हैं। आज मनुष्य चाँद तक की उड़ान कर रहा है। तरह-तरह की चीजें बनाने के लिए कल-कारखाने बढ़ते ही जा रहे हैं। संसार की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये खाद्य पदार्थों का उत्पादन बढ़ाने के लिये नये-नये फरटिलायजर प्लान्टस लगाये जा रहे हैं। आज के युग में जिस देश में जितना अधिक यांत्रिकीकरण हुआ है वह देश उतना ही अधिक समृद्धिशील समझा जाता है। संसार के बड़े-बड़े देश जैसे अमरीका, कनाडा, जापान, इंगलैंड सभी आज अपने यांत्रिकीकरण से परेशान हैं। वे लोग जिस वायु में साँस लेते हैं उनको देख भी सकते हैं क्योंकि कल-कारखानों से निकले हुए दूषित पदार्थ उस वायु में मिले रहते हैं। यह संदूषित वायु जीव जन्तुओं तथा वनस्पति के लिये बहुत ही हानिकारक है। इसीलिये अधिक से अधिक लोग कल-कारखानों से दूर रहना पसंद करते हैं।

वायु मण्डल की हवा में लगभग 78 प्रतिशत नाईट्रोजन, 21 प्रतिशत आक्सीजन तथा एक प्रतिशत और अन्य गैसें कार्बनडाइ आक्साइड, वाष्प, व विरला गैसें होती हैं। इन पदार्थों के अतिरिक्त यदि और कोई अन्य पदार्थ वायु में रहते हैं तो उसको संदूषक (पोलूटैंट) कहते हैं वायुमंडल का रासायनिक संतुलन कुछ प्राकृतिक चक्रों द्वारा संतुलित रहता है। कार्बन 8 डाइ-ऑक्साइड के चक्र में जीव जन्तु वायु से ऑक्सीजन लेकर कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ देते हैं तथा हरे पौधे प्रकाश संश्लेषण द्वारा वायु से कार्बन-डाइ-ऑक्साइड लेकर वाष्प तथा ऑक्सीजन वायु में छोड़ देते हैं। इसी प्रकार पौधे वायु से नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। जीव-जंतु पौधों से नाइट्रोजन लेते हैं। पौधों तथा जीव-जन्तुओं के शरीर के नष्ट होने पर यह नाइट्रोजन फिर से वायु में मिल जाती है। इस क्रिया को नाइट्रोजन चक्र कहते हैं जिसके कारण वायु में नाइट्रोजन तथा ऑक्सीजन का अनुपात स्थिर रहता है।

अब यही कारखाने, वायुयान, मोटरगाड़ियाँ, आकर्षक शक्ति केन्द्र वातावरण में बहुत अधिक मात्रा में संदूषक छोड़ते हैं तो वायु का रासायनिक संतुलन बिगड़ जाता है और वातावरण संदूषित हो जाता है। भिन्न-भिन्न कल-कारखानों से जो संदूषक निकलते हैं उनको तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है।

(अ) कण युक्त पदार्थ

(ब) अकार्बनिक गैसें

(क) कार्बनिक पदार्थ

(अ) कण युक्त पदार्थ—ठोस तथा तरल दूषित पदार्थ छोटे-छोटे कणों के रूप में वायु में बिखरे रहते है। जैसे धूलिकण (डस्ट), कालिका (सूट), राख (ऐश), धातुकण (मेटल-पार्टिकलस) जैसे ऐड, निकल, कॅडमिअम व बेरिलियम।

(ब) अकार्बनिक गैसें—नाइट्रोजन के ऑक्साईड, कार्बन के ऑक्साईड, सल्फर के ऑक्साइड, अमोनिया, क्लोरीन, व हाइड्रोजन सल्फाईड कुछ ऐसी गैसें हैं जो

भिन्न-भिन्न प्रकार के रासायनिक उद्योग केंद्रों द्वारा वायु को संदूषित करती हैं।

(क) कार्बनिक पदार्थ—कुछ कार्बनिक रसायन उद्योग केंद्रों से वायु को संदूषित करने वाले पदार्थ निम्नलिखित हैं।

हायड्रोकार्बन (मेथेन, एथेन, एथिलिन, एसिटिलीन), एलडिहाईड्, किटोन्, अल्कोहॉल तथा कार्बनिक अम्ल।

वातावरण को संदूषित करने के मुख्य कारण :—

वातावरण को दूषित करने के मुख्य दो कारण हैं।

(अ) आन्तरिक ज्वलन एंजिन

(ब) कल-कारखाने तथा आण्विक शक्ति केंद्र

आन्तरिक ज्वलन एंजिन-मोटर गाड़ियों तथा वायुयानों में आन्तरिक ज्वलन इंजिनों का प्रयोग किया जाता है। इस एंजिन में ईंधन को पूरी तरह से न जलने के कारण वाष्प, कार्बन-डाई-ऑक्साईड, नाइट्रोजन के ऑक्साईड, कालिक, कार्बन-मोनोऑक्साईड, हायड्रोकार्बन, एलटिहाईड व लेड के कण वायु में छोड़ दिये जाते हैं। नाइट्रोजन के ऑक्साईड तथा हायड्रोकार्बन सूर्य कि किरण द्वारा मिलकर एक वायुरूपी योगिक तैयार करते हैं जो आँख तथा गले में जलन पैदा करता है। लॉस-एंजिलिस तथा सिडनी जैसे बड़े शहरों में जहाँ मोटरगाड़ियों की संख्या बहुत अधिक है वहाँ की वायु में कार्बन डाई ऑक्साइड का अनुपात संसार में सबसे अधिक है।

कलकारखाने तथा आण्विक शक्ति केन्द्रों में शक्ति उत्पन्न करने के लिये कोयला वा तेल जलाया जाता है। जिससे कार्बन डाइआक्साइड उत्पन्न होती है। एक हजार मेगावाट वाले शक्ति केन्द्र में लगभग आठ हज़ार पाँच सौ टन कोयला रोज जलाया जाता है जिससे लगभग दस से पंद्रह प्रतिशत कार्बन डाइआक्साईड गैस उत्पन्न होती है। अब यदि कोयले में लगभग 4 प्रतिशत सल्फर हो तो एक दिन में 600 टन सल्फर डाइआक्साइड गैस वायु में छोड़ दी जाती हैं। इसी प्रकार चूने की भट्टियों तथा किण्वन की क्रिया में भी बहुत मात्रा में कार्बन डाइ आक्साइड गैस उत्पन्न होती है और वातावरण को संदूषित करती है। फरटिलायजर पलान्टस में फ्लोरऐपिटाइट पत्थर को जब सल्फ्यूरिक अम्ल के साथ मिलाया जाता है तो सुपर फास्फेट बनता है और अधिक मात्रा में क्लोरीन गैस उत्पन्न होती है जो वायु को संदूषित करती हैं। इस प्रकार होती है।

इसी प्रकार कास्टिक सोड़ा के उत्पादन में क्लोरीन गैस तथा नाइट्रिक अम्ल का उत्पादन नाइट्रोजन के आक्साईड उत्पन्न होते हैं और वायु को संदूषित करते हैं। प्राकृतिक गैस में हाइड्रोन सल्फाईड रहती है जो वायु को संदूषित करने में भाग लेती है।

वायु संदूषण का प्रभाव

जलवायु पर वायु संदूषण का प्रभाव मुख्यतः दो प्रकार से पड़ता है।

(अ) कार्बन डाईआक्साइड द्वारा

(ब) कण युक्त पदार्थ द्वारा

कार्बन डाइ आक्साइड सूर्य की विकिरण ऊर्जा को वातावरण में प्रवेश तो करने देती है पर ऊष्मा को वातावरण से बाहर नहीं निकलने देती। इस लिये यदि वातावरण में कार्बन डाइ आक्साइड की मात्रा बहुत अधिक बढ़ जाये तो धीरे 2 वायुमंडल का तापमान बढ़ता जायेगा जिनके फलस्वरूप ध्रुवों पर का सारा बर्फ पिघल कर समुद्रों की सतह को बढ़ा देगा और समुद्री तट पर के बड़े-बड़े शहर जैन न्यूयार्क, लंदन, जापान आदि को डुबो देगा।

इसी प्रकार कण युक्त पदार्थ जो हलका होने के कारण वायुमंडल के ऊपर एक सतह बना लेते हैं जो सूर्य की गर्मी को वायुमंडल में घुसने नहीं देते जिसके फलस्वरूप वायुमंडल का तापमान धीरे-धीरे कम हो जाता है। इसलिये यदि बहुत मात्रा में कणयुक्त पदार्थ वायु में प्रस्तुत हों तो पृथ्वी का तापमान धीरे-धीरे कम हो जायेगा और एक नव हिम युग को सृष्टि होगी।

जीव जन्तुओं तथा वनस्पति पर वायु संदूषण का प्रभाव

वायु में भिन्न-भिन्न प्रकार के दूषित पदार्थ जीव

जन्तुओं तथा वनस्पति के लिये बहुत हानिकारक हैं। बहुत से रोग जैसे कार्डियो वैस्क्यूलर मृत्यु, ब्रोंकाइटिन, कैन्सर, एस्थका आदि सभी दूषित वायु में साँस लेने से होते हैं। वायु में अधिक मात्रा में धूल कण में साँस लेने से सिलिकोसिस नाम की फेफड़ों की बीमारी होती है इसी प्रकार ब्लैक लंग रोग, बैरिलियोसिस, एस्बैस्टौसिस आदि सभी बीमारियाँ संदूषित वायु में साँस लेने से होती हैं।

27 अक्टूबर, 1948 को डोबोरा (पैनसिलवेनिया) में एक बहुत भयानक संदूषित कोहरे ने पूरे शहर को चार दिन तक ढक रक्खा जिससे बीस लोग मर गये व 6000 लोग बीमार पड़ गये। इसी प्रकार 1952 में लंदन में एक हिंसक कोहरे ने लगभग 4000 लोगों को मौत के घाट उतार दिया। 1970 में टोक्यो शहर में सलफ्युरस अम्ल से दूषित वायु के कोहरे ने पाँच दिन तक पूरे शहर को ढक कर रक्खा जिसके कारण 8000 लोग आँख, नाक व गले की बीमारियों से पीड़ित रहे।

हाइड्रोकार्बन, कार्बन मानोआक्साइड, ओज़ोन, गंधक के योगिक व अम्ल बनस्पति के लिये सबसे हानिकारक हैं। पौधे अपनी पत्तियों द्वारा इन सब दूषित पदार्थों का शोषण करते हैं जिससे पत्तियों में छिद्र हो जाते हैं, उनका रंग बदल जाता है और अन्त में वे नष्ट हो जाते हैं। टोकियो के शाही महल के बगीचे में पेड़ और पौधे दूषित वायु के कारण नष्ट होते जा रहे हैं। सोवियत यूनियन में लियोटाल्स्टाय की पुरानी स्टेट के पास का सुप्रसिद्ध पाईन व ओक का जंगल एक रासायनिक उद्योग केन्द्र के कारण करीब-करीब नष्ट हो गया है।

जीव जन्तु व वनस्पति के अतिरिक्त संदूषित वायु बड़ी-बड़ी इमारतों तथा रचनाओं को भी नष्ट करती है। सल्फर युक्त वायु स्पात, जस्ते तथा पत्थर की रचनाओं के लिये बड़ी ही हानिकारक है। ओज़ोन गैस रबर तथा टैक्स्टाईल का रंग नष्ट करती हैं तथा उनकी आयु घटाती हैं। कण युक्त पदार्थ मकानों का रंग नष्ट करते हैं व कपड़े तथा कारों को मैला करते हैं। संदूषित वायू में देखने में रुकावट पैदा होती है जिसके कारण वायुयानों तथा मोटर गाड़ियों की दुर्घटनायें होती हैं।

वायु संदूषण की रोक

बहुत सी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय योजनायें वायु संदूषण को रोकने की चेष्टा कर रही हैं। लगभग प्रत्येक कारखाने में शक्ति उत्पादन के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार की भट्टियाँ प्रयोग में आती हैं इन भट्टियों में इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिये कि कम से कम दूषित पदार्थ वायु में जाने पाये। कण युक्त पदार्थों को रोकने के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के फिल्टर्स, वाशिंग तथा स्क्रबिंग विधियाँ तथा इलैक्ट्रो स्टेटिक प्रेसिपिटेटर्स का उपयोग करना चाहिये।

पानी में घुलनशील गैसें जैसे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल या नाइट्रोजन के आक्साईड उनको रोकने के लिये चिमनी के धुयें को बबल कैप टावर से गुजारते हैं और यह गैसें वायु में जाने से रोक ली जाती हैं।

कार्बन डाइ आक्साइड, सल्फर डाइ आक्साइड, हाइड्रोजन सल्फाइड इनको भी भिन्न-भिन्न तरीकों से चिमनी से निकाल कर इनका उपयुक्त उपयोग हो सकता है।

वायु संदूषण की रोक के तरीकों का विस्तार में वर्णन अगले भाग में किया जायेगा।

●

अथर्ववेद एवं सूक्ष्म-जीव-विज्ञान

श्याम सुन्दर पुरोहित

आज विश्व में सूक्ष्म-जीव-विज्ञान (Microbiology) का क्षेत्र अत्यधिक प्रगति पर है। भारत में भी पूना (पिंपरी) हिन्दुस्तान ऐन्टिबायोटिक्स अनुसंधान केन्द्र इसका एक उदाहरण है लेकिन प्रश्न यह है कि विज्ञान की इस शाखा का अंकुरण कब व कहाँ से हुआ। वैसे तो इसके बारे में कई मत हमारे सामने आते हैं लेकिन इसके लिए हमें ठोस प्रमाण की प्राप्ति भारत के प्राचीनतम् ग्रंथ 'अथर्ववेद' में मिलती है। आज के विज्ञान की सब से महत्वपूर्ण शाखा का ज्ञान ऋषि-मुनियों को आज से हजारों वर्ष पूर्व ही हो चुका था। वे जानते थे कि मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होने वाली विभिन्न बीमारियों का मुख्य कारण पर्यावरण में उपस्थित छोटे-छोटे रोगाणु हैं तथा ये असंख्य प्रकार के होते हैं।

अथर्ववेद में इन रोगाणु को कृमियों या जीवाणुओं के नाम से अभिहित किया गया है जिसका कि आभास निम्नांकित श्लोक से होता है—

उत पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टा अदृष्टहा।
दृष्टांश्चघ्नम् अदृष्टांश्च सर्वाश्च प्रमृणन क्रिमनि

—अथर्ववेद ५ । २३ ।६

अर्थात्—सूर्य पूर्व दिशा में उदय होता है तथा उदयमान् सूर्य अपनी किरणों द्वारा पर्यावरण में दिखने व न दिखने वाले सभी कृमियों (जीवाणुओं) का नाश करता है।

उपर्युक्त श्लोक इस तथ्य को इंगित करता है कि अथर्ववेद की रचना के समय ऋषि-मुनियों को रोग फैलाने वाले जीवाणुओं का ज्ञान हो चुका था तथा वे यह भी जानते थे कि सूर्य की हानिकारक किरणों द्वारा इनका नाश होता है। आधुनिक चिकित्सा-शास्त्र भी इसी बात को मानता है कि विभिन्न रोगों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण जीवाणु हैं।

आज जीवाणुओं को नाश करने के लिए विभिन्न प्रकार की कृत्रिम किरणों जैसे गामा किरणें, क्ष-किरणें पराबैंगनी किरणें, सुदूर लाल किरणें, अवरक्त किरणों का प्रयोग होता है। उक्त सभी किरणें सूर्य विकीरत किरणों में अदृश्यमान् प्रकाश के रूप में विद्यमान रहती हैं।

इतना ही नहीं, अथर्ववेद की रचना के समय ऋषि-मुनियों ने विभिन्न प्रकार के रोग जीवाणुओं को भी रोग के आधार पर वर्गीकृत कर दिया था जिसका वर्णन निम्नांकित श्लोक में मिलता है—

आश्दराति निऋति परो ग्राहि क्रव्यादः पिशाचान्।
रक्षो पत्सर्वं दूभूतं इत्तम इवाय हान्मि।

अ० ८ । २ । ११-१२

अर्थात्—अराति, निऋति, ग्राही क्रव्याद पिशाच, दूर्भूत और सभी राक्षसों (जीवाणुओं) को जो प्राणियों में रोग उत्पन्न करते हैं, उन सबको इस तरह भगाता है जैसे दीपक अँधेरे को भगाता है। उपर्युक्त वर्णन में सूक्ष्म जीवाणुओं को राक्षसों के समतुल्य माना है। अथर्ववेद में इसी प्रकार के जीवाणुओं का उल्लेख रोगों के आधार पर किया गया है ये निम्नांकित हैं—

1. निऋति—

ये जीवाणु मानव शरीर को नाश की ओर ले जाते हैं। वैज्ञानिक आधार पर इनकी तुलना आज टिटेनस (**क्लोस्ट्रेडियम टिटेनाई**), टी० बी० (स्पाइरोचिट्स समूह के जीवाणु), प्लेग (**पेस्टूरला पोस्टिस**), डिफ्तिरिया (**कार्नोबेक्टीरियम डिफ्तिरियाई**) जैसे

जीवाणुओं से की जा सकती है। आज से लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व लिखे गये इस वर्णन से ऐसा लगता है मानो आजकल में लिखी गई किसी सूक्ष्म जीव विज्ञान की पुस्तक का वर्णन पढ़ रहे हों।

2. ग्राही—

अथर्ववेद के अनुसार ये जीवाणु यदि मानव शरीर में एक बार रोग उत्पन्न कर देते हैं तो वे शरीर को मरते दम तक नहीं छोड़ते हैं। इन रोगाणुओं की तुलना सिफलिस उत्पन्न करने वाले स्पाइरोचिट्स समूह के जीवाणुओं से की जा सकती है। टी० बी० एवं रेबीज उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं को भी अथर्ववेद में वर्णित ग्राही जीवाणुओं के समतुल्य माना जा सकता है।

3. क्रव्याद —

वेद के अनुसार ये मानव शरीर के मांस पर रहने वाले जीवाणु हैं जो मांस को क्षीण कर उसे सुखा देते हैं। आज भी इसकी तुलना काला आजार तथा टी० बी० उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं से की जा सकती है।

4. पिशाच—

अथर्ववेद में इस वर्ग के जीवाणुओं को रक्त में उत्पन्न होने वाले बीमारियों का मुख्य कारण बतलाया है क्योंकि ये जीवाणु अपना जीवन निर्वाह रक्त पर ही करते हैं। आज भी इन जीवाणुओं को मलेरिया, काला-आजार, हुक वर्म आदि रोग-रोग उत्पन्न करने वाले रोगाणुओं से की जा सकती है।

5. दुर्भुनंत—

अथर्ववेद के अनुसार इस वर्ग के रोगाणु शरीर की स्थिति को क्षीण एवं विपरीत कर मनुष्य का अन्त कर देते हैं। आधुनिक जगत में दुर्भुनंत रोगाणुओं की तुलना **स्ट्रेप्टो कोक.ई, निसोकोकाई** आदि जीवाणुओं से की जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

(अ) असुरा (अ=नहीं, सुरा=सूर्य) अर्थात् सूर्य की अनुपस्थिति में आवास करने वाले जीवाणु। इस वर्त में वर्तमान् युग में वर्णित सभी समूहों के जीवाणुओं को शामिल किया जा सकता है।

(ब) सुर-द्विष—अर्थात् सूर्य से द्वेष करने वाले जीवाणु—

हम जानते हैं कि ताप की एक विशिष्ट सीमा पर सभी जीवाणु जीवित रहते हैं। पर्यावरण में ताप का मुख्य स्रोत सूर्य ही है अर्थात् अथर्ववेद में असुरा एवं सुरद्विष वर्ग के जीवाणुओं का वर्णन सम्भवत: जीवाणुओं की एन्जायमेटिक अभिक्रियाओं के आधार पर किया गया हो। प्रत्येक जीवाणु की कार्यक्षमता उसमें कार्यरत एन्जाइमों पर निर्भर रहती है यदि तापक्रम अधिक होगा तो वे कार्य करने में सक्षम नहीं ही पायेंगे।

रोगाणुओं की बाह्य आकृति का वर्णन—

उपर्युक्त वर्णित रोगाणुओं की बाह्य आकृति का वर्णन भी मिलता है जैसे—

विश्वरूप चतुरक्षं क्रमि सारग अर्जुनम।

अ० वे० २। ३२। २

त्रिशीर्षाण त्रिकुकुद क्रमि सारंगमजुनम्।

अ० वे० ५। २३। ६

अर्थात् क्रमि (रोगाणु) कई आकार के होते हैं जिनमें चार नेत्रों वाले, अनेक रंग वाले, श्वेत रंग वाले, तीन सिर वाले, तीन कुकुद वाले आदि प्रमुख हैं।

अथर्ववेद में इसी प्रकार एक और वर्णन सामने आता है—

श्रृणाम्यस्य पृष्टिरपि वृश्चामि याच्छेर।

भिनद्मि ते कुसुमं यस्ते विषधान। अ० वे० २।६।१

अर्थात्—जीवाणुओं के दो सींग होते हैं तथा ये आकार में लम्बे होते हैं। उक्त सभी प्रकार के रोगाणु प्राणियों को पीड़ा का अनुभव कराते हैं। इन रोगाणुओं की विष-थैली दंशस्थान पर पीड़ा पहुँचाती है। मैं (सूर्य) उक्त सभी क्रमियों का नाश करता हूँ। उक्त नाशक का अभिप्राय सूर्य की किरणों से है।

आज सूक्ष्म जीव वैज्ञानिकों ने हजारों जीवाणुओं की आकृतियों को वर्णित किया है। उपर्युक्त आकृतियों की तुलना वर्तमान में वर्णित जीवाणुओं की आकृतियों से भी की जा सकती है। **टीनिया सोलिम** तथा **टिनिया सेजिनेटा** के चूषकों की तुलना अथर्ववेद में

[शेष पृष्ठ 15 पर

तत्वों की उत्पत्ति

आशबिन्दु सिंह

आदिम काल से ही जिज्ञासु मानव ब्रह्माण्ड में होने वाली घटनाओं तथा रहस्यों के अन्तराल में प्रविष्ट हो तन्निहित गूह्यतम अंशों को उद्‌घाटित करने के प्रयास में तल्लीन रहा है। पर ब्रह्माण्ड की प्रकृति एवं इतिहास के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि हम उसकी संरचना का अध्ययन करें। हमारे ब्रह्माण्ड में हाइड्रोजन जैसे हल्के तत्वों से लेकर यूरेनियम जैसे भारी तत्वों की उपस्थिति पाई जाती है। इन तत्वों की उत्पत्ति कैसे हुई? भारी तत्वों का निर्माण कैसे हुआ? इन प्रश्नों का उत्तर पाना आवश्यक है।

तत्वों की उत्पत्ति के बारे में सर्वाधिक ज्ञान ब्रह्माण्ड में उपस्थित विभिन्न तत्वों के सापेक्ष बाहुल्य से प्राप्त होता है। तत्वों की वर्तमान बहुलता पृथ्वी, तारों व आकाश-गंगा के इतिहास की तरफ संकेत करती है। क्योंकि बाहुल्य वक्र इसी इतिहास का फल है और इसका आकार कॉस्मिक घटनाओं द्वारा निर्धारित होता है। हम तत्वों के सार्वभौमिक बहुलता के बारे में कई तरह से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। प्रथम, हम अपने ग्रह पर क्रस्ट, समुद्र, वातावरण आदि की संरचना का विश्लेषण कर सकते हैं। फिर आकाश में पदार्थ की हानि एवं पृथ्वी के भीतर पदार्थ के पुनर्वितरण को ध्यान में रखकर पृथ्वी के जन्म के समय तत्वों के अनुपात का पता लगा सकते हैं। द्वितीय, बाहरी अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर बहुत सी उल्काएँ आई हैं। इन नमूनों का काफी महत्व है क्योंकि इनके भीतर के पदार्थ एवं पृथ्वी क्रस्ट के भीतरी पदार्थों से कम परिवर्तन हुआ है। तृतीय, जब तारों से आती हुई किरणों को स्पेक्ट्रोस्कोप की सहायता से विश्लेषित करने से उसके सतह पर उपस्थित तत्वों के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। प्रत्येक तत्व एक विशेष प्रकार की खास प्रकाशीय रंगीन पट्टियाँ उत्सर्जित व अवशोषित करता है। इस प्रकार तत्वों की बहुलता विकिरण के तीव्रता से निकाला जा सकता है। आकाश गंगा व सुदूर स्थित तारों से रेडियो तरंगें सुनायी देती हैं। रेडियो—खगोलशास्त्री इनकी सहायता से अन्तरिक्ष में तत्वों के बहुलता के बारे में बता सकते हैं। कास्मिक किरणें जो सदैव पृथ्वी पर बरस रही हैं, हमारे ग्रह के बाहर से पदार्थ का नमूना ला रही हैं। इस भाँति हम ब्रह्माण्ड में तत्वों की उत्पत्ति एवं निर्माण पर प्रकाश डाल सकते हैं।

इस प्रकार से प्राप्त ज्ञान अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि हमें अधिकतर सूचना अपने ही आकाश गंगा व सौर-मण्डल से मिल रही है। इस जानकारी के आधार पर सारे ब्रह्माण्ड के बारे में सही धारणा बता पाना मुश्किल है। फिर भी इस भाँति प्राप्त ज्ञान अन्य कठिन व अधिक सही विधियों से प्राप्त ज्ञान से मिलता जुलता है। अतः इन पर एक सीमा तक विश्वास किया जा सकता है।

अब तक प्राप्त ज्ञान के अनुसार ब्रह्माण्ड में हाइड्रोजन की बहुलता सबसे अधिक है। ब्रह्माण्ड के कुल भार का 76 प्रतिशत हाइड्रोजन तथा 23 प्रतिशत हीलियम है। परमाणु भार के साथ-साथ तत्वों की बहुलता घटती जाती है। लोह-समूह को छोड़ कर जो अपने पड़ौसी तत्वों से दस हजार गुना बहुल है, साधारणतया यह घटाव सभी तत्वों पर लागू होता दिखाई देता है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि हीलियम के बाद के सभी तत्व मिलकर पूरे ब्रह्माण्ड के भार में एक प्रतिशत से थोड़े से अधिक योगदान करते हैं। सभी तत्व इलेक्ट्रान, प्रोटान व न्यूट्रान से मिलकर बने हैं। सबसे हल्के तत्व हाइड्रोजन का नाभिक प्रोटान होता है। शताब्दियों पूर्व रसायनज्ञ प्राउट ने सुझाया था कि सभी

तत्व हाइड्रोजन से मिलकर बने हैं। आज प्राउट की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होती दिखाई देती है। यद्यपि स्थिति मूल रूप से पूर्णतया भिन्न है।

अब हम तत्वों की उत्पत्ति के बारे में प्रचलित कुछ सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे। इसमें सबसे लोकप्रिय सिद्धान्त रूस में जन्मे अमरीकी वैज्ञानिक जार्ज गेमोव का है।

इसके अनुसार ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति अत्यन्त घने पदार्थ से हुई। शुरू-शुरू में ऊर्जा की मात्रा पदार्थ से अधिक थी। आइन्स्टाइन के अनुसार पदार्थ एवं ऊर्जा को एक दूसरे में बदला जा सकता है। यदि मान लिया कि शुरू-शुरू में ब्रह्माण्ड में सिर्फ विकिरण ऊर्जा मौजूद थी तो गणना द्वारा हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ब्रह्माण्ड के जन्म से एक घन्टे बाद इसका तापक्रम 2;0 डिग्री हुआ होगा। धीरे-धीरे तापक्रम गिरता गया। फिर प्रश्न उठता है कि रासायनिक तत्वों की उत्पत्ति कैसे हुई ?

प्रारम्भ में पदार्थ इलेक्ट्रान, प्रोटान तथा न्यूट्रान के रूप में था। पांच मिनट पश्चात ब्रह्माण्ड इस तापक्रम पर पहुँच गया होगा कि न्यूट्रान, प्रोटान हाइड्रोजन से लेकर अन्य भारी तत्वों में संयुक्त हो गये होंगे। इस क्रिया के पूर्ण होने में तीस मिनट लगें होंगे। अब सबसे आश्चर्य की बात यह लगती है कि हमारे ब्रह्माण्ड की रासायनिक संरचना आधे घन्टे में निश्चित हो गई। फर्मी ने अपने प्रयोगों द्वारा दिखाया कि इस प्रकार की प्रक्रियायों में 99 प्रतिशत हाइड्रोजन व हीलियम पैदा होते हैं। हम जानते हैं कि पूरे ब्रह्माण्ड का 99 प्रतिशत भाग हाइड्रोजन व हीलियम है। बाकी भारी तत्वों का निर्माण न्यूट्रान ग्रहण करने से हुआ।

पर गेमोव के सिद्धान्त में कुछ कमियां हैं। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि परमाणु-भारों के क्रम में क्रम संख्या 5 व 8 खाली है। इसका अर्थ यह है कि परमाणु भारों के क्रम में 5 व 8 भार का कोई स्थाई परमाणु है ही नहीं। हम जानते हैं कि न्यूट्रान से हीलियम—4 पर बमबारी कराकर हिलियम—5 बना सकते हैं। पर यह तुरन्त ही हीलियम—4 में टूट जाता है। इसी प्रकार क्षण भर के लिये हम बैरीलियम—8 का समस्थानिक पैदा कर सकते है जो दो हीलियम—4 में टूट जाता है। प्रश्न यह उठता है कि यदि तत्व न्यूट्रान ग्रहण करने से बने हैं तो ये स्थान रिक्त क्यों हैं ?

दूसरे सिद्धान्त के अनुसार तत्वों की उत्पत्ति प्रारम्भिक विस्फोट से नहीं अपितु तारों के गरम अन्तराल में हुआ। प्रोफेसर हान्स बेदे ने तारों व सूर्य से प्राप्त होने वाली विशाल ऊर्जा के उत्पत्ति के कारणों पर प्रकाश डालने के लिये नाभिकीय-शृंखला प्रक्रियाओं की कल्पना प्रस्तुत की। इन प्रक्रियाओं को प्रोटान-प्रोटान संगलन एवं कार्बन नाइट्रोजन चक्र के नाम से जाना जाता है। इन प्रकियाओं को आधार मानकर तत्वों के संश्लेषण का एक नया सिद्धान्त कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के खगोलशास्त्री प्रो० फ्रेड हायल ने प्रस्तुत किया।

इसके अनुसार ब्रह्माण्ड का निर्माण ठण्डे तनु हाइड्रोजन के परमाणुओं के मिलने से हुआ है। गुरुत्वाकर्षण द्वारा गैसों का कुछ भाग सितारों मे संघनित हो गया। जैसे-जैसे तारे गुरुत्वाकर्षण द्वारा संकुचित होते गये, उनका अन्तराल घना एवं गर्म होता गया। जब केन्द्र का तापमान 5 करोड़ डिग्री हो गया तो प्रोटान फ्यूज करके ड्यूट्रान का निर्माण किए। आगे ड्यूट्रान—प्रोटान से मिलकर हीलियम—3 बनाया। दो हीलियम—3 मिलकर हीलियम—4 का निर्माण किए। अतः प्रोटान-प्रोटान श्रंखला द्वारा चार हाइड्रोजन परमाणु एक हीलियम परमाणु में बदल गये। इसी भाँति अन्य भारी तत्वों का निर्माण हुआ।

आशबिन्दु सिंह
शोध छात्र भौतिकी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय,
वाराणसी

अनाज को कीड़ों से बचाइये

भोपालसिंह

भण्डार में नमी, तापक्रम और कीड़ों से अनाज खराब होता है। यदि अच्छे प्रकार के भण्डार में, अनाज को धूप में खूब सुखा कर रखा जाय तथा भण्डार का तापक्रम एक सा रखा जाय तो नमी और तापक्रम से मुक्ति मिल सकती है। परन्तु कीड़ों की रोकथाम करना इतना आसान नहीं है तथा इसके द्वारा बहुत अधिक हानि भी होती है। अण्डों से निकले लारवा खुरच कर या अन्दर सुरंग बनाकर अनाज को खाते हैं। फलस्वरूप अनाज का भार कम और स्वाद खराब हो जाता है। फलस्वरूप धन तथा स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है।

इन कीड़ों के अण्डों, लारवा, प्यूपा या प्रौढ़ भण्डार की दीवारों में पाई जाने वाली दरारों में छिपे रहते हैं समय आने पर ये अनाज को हानि पहुँचाना प्रारम्भ कर देते हैं। भण्डार में पड़े कूड़ा-करकट या पुराने अनाज में छिपी, कीड़ों के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ, नये अनाज को हानि पहुँचाती हैं। पुरानी बोरियों के माध्यम से भी ये जीव नये अनाज को प्रभावित करते हैं।

आज के वैज्ञानिक युग में अनेक प्रकार की कीट-नाशक औषधियों का प्रचलन हो गया है। परन्तु इन औषधियों का प्रयोग करते समय बहुत समझ से काम लेना भी आवश्यक है। आमतौर पर कुछ लोग एक बड़ी गलती अज्ञानवश यह करते हैं कि गैमक्सीन (बी० एच० सी०) या डी० डी० टी० का चूर्ण, अनाज में मिला देते हैं। इन औषधियों से अनाज में कीड़े तो नहीं पनप पाते परन्तु इनसे प्रभावित अनाज मनुष्यों तथा पशुओं को खाने पर बहुत अधिक हानि पहुँचाता है तथा बुआई के लिये यदि प्रयोग किया जाय तो खेत में अंकुरण पर्याप्त नहीं पाता अतः भूलकर भी अनुपयुक्त औषधियों का प्रयोग अनाज में मिलाने का नहीं करना चाहिये। तथा सैरेसन या एग्रोसिन जी० एन० आदि से प्रभावित बीज को भी खाने या रातब के लिये प्रयोग नहीं करना चाहिये। अनाज को सुरक्षित रखने के लिये बहुत सारी औषधियाँ हैं जिनमें से एक या अधिक का प्रयोग किया जा सकता सकता है। किन्तु वे कीटनाशक औषधियाँ उत्तम समझी जाती हैं—जो सरलता से उपलब्ध हो सकें,—जिसका उपयोग करना सरल हो,—मनुष्य तथा पशुओं को हानिकारक न हों तथा कीड़ों को पूर्ण रूप से नष्ट कर दें। उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर ईथाईलीन डाई-ब्रोमाइड (जिसे संक्षेप में ई० डी० बी० कहते हैं) को सर्वश्रेष्ठ पाते हैं।

ई० डी० बी० विभिन्न आकार की शीशियों में मिलती हैं। ये छोटी-छोटी शीशियाँ रूई की पतली परत में लिपटी होती हैं तथा कपड़े की थैली में बन्द रहती हैं। दवाई तरल रूप में रहती है। जब इस दवाई का प्रयोग अनाज की टिन की कोठियों कुठलों या गोदामों में किया जाता है तो यह दवाई धीरे-धीरे गैस के रूप में परिवर्तित होकर धीरे-धीरे चारों ओर फैल जाती है तथा कीड़ों की विभिन्न अवस्थायें और प्रकार समाप्त हो जाते हैं। साथ ही यह मनुष्य और पशुओं को हानिकारक भी नहीं है। अनाज को केवल 2—3 घंटे धूप में सुखाकर खाने के काम में लिया जा सकता है।

ई० डी० बी० के एम्पयूल अनाज के ढेर के ऊपर पत्थर या धातु के टुकड़ों के बीच पकड़ कर धीरे से दबाकर मुहरबन्द शीशी का मुँह तोड़ दीजिये। टूटी हुई शीशी

की थैली अनाज की ढेरी के अन्दर लगभग 15 से० मी० की गहराई तक किसी लकड़ी आदि से धकेल दीजिये तथा तुरन्त बाद गोदाम की गोली चिकनी मिट्टी से बन्द कर दीजिये। इस प्रकार गोदाम को कम से कम सात दिन तक बन्द रहने दीजिये। यदि भण्डार में नीचे की ओर से अनाज निकालने का स्थान है तो इस स्थान के द्वारा ही अनाज को बिना छेड़े निकालते रहना चाहिये।

ई० डी० बी० के एम्पयूल कई आकार में मिलते हैं जिन्हें भण्डार की क्षमता के अनुसार खरीदना चाहिये। नीचे की सारिणी में एम्प्यूल का आकार मूल्य तथा अनाज की वह मात्रा, जिसमें प्रयोग किया जाना चाहिये लिखा गया है।

एम्प्यूल का आकार मिली लीटर में	अनाज की मात्रा क्विन्टल में	मूल्य (पैसों में)
3	1	30
6	2	40
10	3	55
15	5	70
30	10	110

ई० डी० बी० का प्रयोग तिलहन तथा आटा आदि में नहीं करना चाहिये। यदि एम्प्यूल तोड़ते समय दवाई शरीर के किसी हिस्से पर गिर जाय तो तुरन्त पानी, साबुन से धो देना चाहिये ऐसा न करने पर फफोले पड़ सकते हैं। भण्डार खोलने के तुरन्त बाद भण्डार में नहीं घुसना चाहिये। कम से कम चार पाँच घंटे भण्डार खुला रखकर हवा का संचार होने दें, जिससे सारी गैस बाहर निकल जाय।

इस प्रकार थोड़े से खर्च के द्वारा आप अपने अनाज को कीड़ों से बचा सकते हैं।

भोपालसिंह
फार्म अधीक्षक, शिक्षक प्रशिक्षण
महाविद्यालय सरदार शहर (राज०)

[पृष्ठ 11 का शेषांश]

वर्णित जीवाणुओं के सींग तथा सिर से की जा सकती है। एकाइलास्ट्रोमा डुडोनेल की भी तुलना अथर्ववेद में वर्णित जीवाणुओं से की जा सकती है। ये जीवाणु आमाशय में निवास करते हैं तथा अपने चूषकों (सींगों या सिर) द्वारा शरीर को नाश करते हैं।

पिछले वर्ष से कई ऐसे तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं जो यह आभास दिलाते हैं कि भारत में वैज्ञानिक ज्ञान का अंकुरण आज से तीन हजार साल पूर्व ही विकसित हो चुका था। अन्त में मैं यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि उक्त लेख में मेरे द्वारा किये गये सूक्ष्म जीवों का अध्ययन तुलनात्मक मात्र है, इसमें मेरे निजी विश्वास का कोई भी अंकुर नहीं है लेकिन फिर भी मैं चाहूँगा कि यदि इस ओर आपके कुछ सुझाव प्राप्त होते रहे तो मेरे ज्ञान में वृद्धि होगी।

श्याम सुन्दर पुरोहित
प्राध्यापक वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय महा-विद्यालय, नाथद्वारा (राज०)
राष्ट्रधर्म, से साभार

ये यांत्रिक गौ मातायें

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं रमेश कुमार दशोरा

दूध को एक पौष्टिक आहार माना जाता है क्योंकि शरीर की वृद्धि एवं ऊर्जा के लिये वांछित सभी चीजें इसमें पूर्ण मात्रा में उपस्थित रहती हैं। वैसे तो कई पशु अपने बच्चों के पालन के लिये दूध देते हैं परन्तु उनमें गाय प्रमुख है। गाय का दूध पीने के काम आता है और इसे दूसरे दूधों से उत्तम मान कर गौ की माता से तुलना की जाती है। गाय अधिकतर घास-पत्ती आदि खाकर दूध का उत्पादन कर देती है, जो कि मानव नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में वैज्ञानिकों का इस ओर आकर्षित होना अस्वाभाविक नहीं है कि घास-पत्ती से दूध का निर्माण प्रयोगशाला में भी किया जा सकता है या नहीं ?

सर्वप्रथम इंगलैंड के एक जीव रसायनज्ञ डॉ० ह्यूग फैंकलिन का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने अपनी प्रयोगशाला में दूध-निर्माण पर प्रयोग करने आरम्भ कर दिये। ऐसे ही प्रयासों के अन्तर्गत उन्होंने सोयाबीन से सोया-दूध प्राप्त किया, जो गुणों में प्राकृतिक दूध के समान ही था, परन्तु अपनी इस सफलता से ही वह संतुष्ट नहीं हुए। उनका इरादा एक ऐसी मशीन ईजाद करने का था, जो शाक-पत्तियों का प्रयोग कर उसके बदले उन्हें दूध दे सके। अन्ततोगत्वा उन्हें इन प्रयोगों में सफलता प्राप्त हुई और उन्होंने अपने अन्य सहयोगियों की सहायता से 15 गैलन दूध का निर्माण कर ही लिया। आहार के विशेषज्ञों द्वारा इसकी जाँच की गई, जिसमें इसे सन्तोषजनक पाया गया। इस प्रकार से निर्मित दूध स्वाद तथा पोषण के लिहाज से प्राकृतिक दूध के समान ही था। फ्रैंकलिन के इस प्रयोग ने प्राचीन धारणाओं में तो क्रान्ति सी ला दी।

यह मशीन एक यांत्रिक गाय के रूप में बनाई गई, जो एक घूमने वाले घास-पत्ती काटने वाले चाकू की बनी होती है। यह चाकू 3,000 परिक्रमण प्रति मिनट की गति से घूमते हुए घास-पत्ती काटकर एक लेई बना देता है। इस लेई का पानी में विलयन बनाकर इसे एक अन्य यन्त्र में भेजा जाता है, जहाँ इसमें से क्लोरोफ़िल हटा लिया जाता है। इसके पश्चात इस निष्कर्ष को जीवाण्विक क्रियाओं द्वारा स्थिर (स्थायी) बना दिया जाता है। इसमें आवश्यक वसा एवं कार्बो-हाइड्रेट की मात्रा मिला दी जाती है। इसके बाद इरिशमोस की उपस्थिति में यह सारा मिश्रण पायसाभ के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। प्राकृतिक दूध भी वसा, प्रोटीन्स, विटामिन्स, खनिज कार्बोहाइड्रेट आदि का पानी में बना एक पायसाभ ही तो होता है।

इस प्रकार से प्राप्त दूध के एक औंस में 10 मिग्रा० कैल्शियम, 0.18 मिग्रा० विटामिन B_2, 0·01 माइक्रो ग्रा० विटामिन B_{12}, 20 I. U. विटामिन D एवं 250 I. U. विटामिन A उपस्थित होता है, जो कि किसी भी प्रकार प्राकृतिक दूध से कम नहीं है। इस प्रकार के निर्मित दूध से कुछ अन्य लाभ और हैं, जिनमें से प्रमुख निम्न हैं :

गाय के दूध को अधिक लम्बे समय तक रखने के लिये उसका पास्चुरीकरण कर देते हैं परन्तु फिर भी उसे अधिक समय तक खराब होने से बचा रखने में संदेह है। इसके विपरीत निर्मित दूध को बिना पास्चुरी-कृत किये भी काफी लम्बे समय तक रखा जा सकता है।

जो बच्चे गाय या माँ का दूध लेक्टोस गलन एकीकरण के कारण नहीं पचा पाते, वे ही इस कृत्रिम दूध को आराम से पचा लेते हैं।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए तो यांत्रिक गाय द्वारा निर्मित दूध संसार को एक बहुत बड़ी देन है। आवश्यकता इस बात की है कि यह जन साधारण को शीघ्र सुलभ हो सके, इसके लिए वैज्ञानिकों को प्रयत्न करने पड़ेंगे।

—सुरेश चन्द्र आमेटा एवं रमेश कुमार दशोरा
राजकीय महाविद्यालय
नाथद्वारा (राज०)

मैरिनर—10 द्वारा बुधग्रह के सम्बन्ध में विस्मयकारी तथ्यों का उद्घाटन

संकलित

अन्ततोगत्वा, बुधग्रह पर पड़ा पर्दा गत सप्ताह हट गया और इस पर्दे के हटने पर बुधग्रह का जो विस्मयजनक रूप दृष्टिगोचर हुआ, उसने संसार भर के वैज्ञानिकों को चकित कर दिया है। यद्यपि, उन्हें बुधग्रह के बारे में कुछ आश्चर्यजनक तथ्य प्रकट होने की पहले से ही आशा थी, परन्तु इस ग्रह का जो आश्चर्यजनक रूप नेत्रों के समक्ष आया वह वैज्ञानिकों के लिए सर्वथा अप्रत्याशित था।

अमेरिका का मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान 29 मार्च को बुधग्रह से 438 मील (704 किलोमीटर) की दूरी से गुजरा। मैरिनर-10 द्वारा भेजी गयी सूचनाओं के अनुसार, बुधग्रह का वायुमण्डल विरल है, उसका अपना चुम्बकीय क्षेत्र है तथा अत्यन्त शक्तिशाली कण समूहों से युक्त एक क्षेत्र है। मैरिनर-10 द्वारा प्रेषित चित्रों के अनुसार उसका अपना ध्रुवीय प्रकाश क्षेत्र भी है तथा चन्द्रमा के धरातल (पृष्ठ भाग) की तरह उसका धरातल भी छोटे-बड़े गड्ढों से भरा है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि बुधग्रह के भी सम्भवतः एक या एक से अधिक चन्द्रमा हैं।

वैज्ञानिकों की शब्दावली में, बुधग्रह एक भिन्न प्रकार का ग्रह है। इसका बाहरी भाग बहुत कुछ चंद्रमा से तथा भीतरी भाग बहुत कुछ पृथ्वी से मिलता-जुलता है। लेकिन, और बातों में यह अन्य सभी ग्रहों से भिन्न है।

बुधग्रह के सम्बन्ध में नाटकीय रहस्योद्घाटन का सिलसिला उस समय प्रारम्भ हुआ, जब गत सप्ताह मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान ने बुधग्रह के निकट से गुजरते हुए उसके चित्र भेजना प्रारम्भ किया। यह नाटकीय घटनाक्रम अभी भी जारी है क्योंकि पैसाडीना, कैलिफोर्निया स्थित जेट प्रोपल्सन लेबोरेटरी के वैज्ञानिक बुधग्रह की कक्षा में मौजूद एक विचित्र वस्तु का टेलिविजन कैमरों द्वारा पता लगाने की कोशिश कर रहे हैं। इस विचित्र वस्तु की उपस्थिति की सूचना एक अन्य उपकरण से मिली थी। इसके साथ ही ये वैज्ञानिक मैरिनर अन्तरिक्षयान को कुछ और अधिक समय तक सक्रिय रखने की कोशिश कर रहे हैं ताकि आकाशगंगा में विद्यमान एक अन्य विचित्र वस्तु को भी देखा जा सके।

बुधग्रह के निकट से गुजरने के दो दिन बाद मैरिनर-10 में कुछ दोष उत्पन्न हो गया है तथा 'नैसा' के अधिकारियों को ऐसी आशंका है कि आगे मैरिनर-10 अपना निर्धारित कार्य सफलता के साथ पूरा नहीं कर सकेगा।

यद्यपि 3 नवम्बर, 1973 को अपनी यात्रा प्रारम्भ करने के बाद से लेकर अब तक मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है, परन्तु अभी तक उसने अपने सभी निर्धारित कार्य विलक्षण और अविश्वसनीय सफलता के साथ सम्पन्न किये हैं। इस अवधि में मैरिनर-10 में विद्यमान यन्त्रों ने पृथ्वी, चन्द्रमा, शुक्र, बुध, पुच्छलतारा कोहूटेक तथा सैकड़ों अन्य नक्षत्रों का सूक्ष्म अध्ययन और निरीक्षण किया है।

स सप्ताह इसका अन्तिम काम आकाशगंगा में विद्यमान एक ऐसी विचित्र वस्तु पर अपने अल्ट्रावायोलेट स्पेक्ट्रोमीटर को केन्द्रित करना होगा जिससे एक प्रकार का विचित्र स्पन्दन होता है। स्पन्दन की अवधि एक मिनट होती है। यदि मैरिनर-10 के अल्ट्रावायोलेट स्पेक्ट्रोमीटर ने इसका पता लगा लिया तो यह विश्व में सबसे अधिक समय तक स्पन्दन करने वाली वस्तु होगी।

'नासा' के प्रोजेक्ट-मैनेजर ने कहा कि हम अन्तिम क्षण तक मैरिनर-10 को काम लायक बनाये रखने की कोशिश नहीं छोड़ेंगे।

बुधग्रह सम्बन्धी नाटकीय तथ्यों के उद्घाटन का सिलसिला मैरिनर-10 के बुधग्रह के निकट से गुजरने के एक दिन बाद शुरू हुआ।

किटी पीक नेशनल लेबोरेटरी के डा० ए० लिली ब्रॉडफुट तथा हारवर्ड विश्वविद्यालय के डॉ० माइकेल बी० मेकलरोय को अल्ट्रावायोलेट स्पेक्ट्रोमीटर पर प्रकाश का एक विचित्र स्रोत दृष्टिगोचर हुआ। प्रकाश का यह स्रोत कुछ समय तक प्रकट रह कर फिर लुप्त हो जाता था। प्रकाश का यह स्रोत निश्चय ही बुधग्रह नहीं था। वैज्ञानिकों ने सोचा कि क्या यह प्रकाश अन्तरिक्ष में व्याप्त कचरे या धूल से निकल रहा था या किसी प्रकार की गैस इसका उद्गम थी ?

उन्होंने यह देखा कि प्रकाश का यह अज्ञात स्रोत 4 किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से यात्रा कर रहा था। वैज्ञानिकों ने यह पता लगाया कि यह अज्ञात वस्तु बुधग्रह के धरातल से लगभग 5,000 किलोमीटर की दूरी पर थी और उसका पथ सम्भवतः अण्डाकार था। यदि यह वस्तु चन्द्रमा थी तो सौरमण्डल में यह तैंतीसवाँ चन्द्रमा होगा तथा अन्तरिक्षयान द्वारा खोज निकाला जाने वाला सर्वप्रथम चन्द्रमा होगा। इसके बाद केवल शुक्रग्रह और प्लूटो ग्रह ही ऐसे रह जायेंगे, जिनके कोई चन्द्रमा नहीं हैं।

वैज्ञानिकों को यह आशा है कि मैरिनर-10 के टेलीविजन कैमरे इतनी देर तक कार्य कर सकेंगे कि इस वस्तु के चित्र प्राप्त हो सकेंगे।

31 मार्च को एक प्रेस-सम्मेलन में वैज्ञानिकों ने इस रहस्य का भी उद्घाटन किया कि बुधग्रह का अपना चुम्बकीय क्षेत्र है। अब तक वैज्ञानिकों को यह विश्वास था कि केवल पृथ्वी और वृहस्पतिग्रह के ही अपने चुम्बकीय क्षेत्र है। अभी तक वैज्ञानिक इस पहेली को हल नहीं कर पाये हैं कि बुधग्रह के चुम्बकीय क्षेत्र का मूल स्रोत क्या है।

इसके अतिरिक्त, अभी तक केवल पृथ्वी और वृहस्पति के विषय में ही यह जानकारी प्राप्त थी कि उन पर ऐसे विद्युदणु विद्यमान हैं, जिनसे रेडियो-उर्मियों का निस्सरण होता है।

शिकागो विश्वविद्यालय के डा० जान सिम्पसन के अनुसार, बुधग्रह पर यह विकिरण एक सर्वथा नये ढंग पर नियन्त्रित या प्रादुर्भूत हो सकती है।

बुधग्रह के विषय में एक अन्य गौण खोज यह की गयी है कि उसका वायुमण्डल बहुत ही विरल है और उसका निर्माण हीलियम, आर्गन और नियोन जैसी उत्कृष्ट गैसों से हुआ है। हो सकता है कि ये गैसें सौर आंधी से प्रादुर्भूत हुई हों, अथवा वे स्वयं इस ग्रह की पपड़ी के भीतर यूरेनियम, थोरियम और पोटैशियम के रेडियो सक्रिय क्षरण के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हों।

उदाहरण के लिए, यदि हीलियम इस ग्रह से प्रादुर्भूत हो रही हो, तो इसका अर्थ यह हुआ कि बुधग्रह पर बहुत बड़ी मात्रा में—पृथ्वी के बराबर या उससे भी अधिक—यूरेनियम और थोरियम का भण्डार है।

अन्तरिक्षयान के टेलिविजन कैमरों ने बुधग्रह की लगभग आधी सतह का चित्रांकन किया। प्राप्त चित्रों से पता चलता है कि बुधग्रह की सतह बहुत-कुछ पृथ्वी के धरातल जैसी हैं, और भूतत्व विदों ने भी यही भविष्य-वाणी की थी।

बुधग्रह की सतह के दृश्यांचल पर जगह जगह एक-के-बाद दूसरे गह्वरों और ज्वालामुखियों के चिह्न हैं। यह सतह धूल से ढकी है। ऐसा प्रतीत होता है कि भूतकाल में बहुत से ज्वालामुखियों और गह्वरों के मुख राख से भर गये थे। कहीं-कहीं रेखाओं जैसे चिह्न दिखलायी पड़ते हैं, जो ऐसा लगता है कि ज्वालामुखियों की उबलती राख के प्रवाह से बन गये हैं।

कहीं-कहीं कुछ टीले और पहाड़ियाँ भी हैं। किन्तु इन पर बहुत से ऐसे विशाल नये टीले भी दिखलायी पड़ते हैं, जो पहले कभी नहीं देखे गये थे।

कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट आव् टेक्नोलाजी के डा० ब्रूस सी० मुरे पूछते हैं। "ऐसा क्यों है कि बुधग्रह बाहर की ओर तो चन्द्रमा जैसा दिखलायी पड़ता है किन्तु भीतर की ओर चन्द्रमा जैसा नहीं है ? स्पष्ट है कि बुध एक भिन्न प्रकार का ग्रह है।"

बुधग्रह के पार्श्व से मैरिनर-10 की सफल उड़ान से अमेरिका के लिए ग्रह-विज्ञान के क्षेत्र में एक स्वर्ण युग पूरा हुआ है। 'नासा' के प्रशासक डॉ० जेम्स सी० फ्लेचर का कहना है। "अब हम भीतरी ग्रहों के पर्यवेक्षण का अभियान पूरा कर चुके हैं?"

अन्तरिक्ष से बुध, शुक्र, पृथ्वी और मंगल ग्रहों का पर्यवेक्षण कर लिया गया है। फ्लेचर कहते हैं। "समूचे रूप में, इन उड़ानों के फलस्वरूप, ऐसी जानकारियाँ प्राप्त होंगी, जिनकी सहायता से हम सौरमण्डल की संरचना, स्वरूप, और भविष्य का मूल्यांकन करने में समर्थ हो सकते हैं। साथ ही, हम स्वयं अपने ग्रह अर्थात् पृथ्वी, के भविष्य की भी श्रेष्ठतर जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

की विस्कोने, फ्लोरिडा, स्थित अस्थायी राष्ट्रपति-निवास से डॉ० फ्लेचर के पास भेजे गये एक सन्देश में, राष्ट्रपति निक्सन ने कहा है। "मैरिनर-10 की बुधग्रह तक की सफल उड़ान अमेरिका द्वारा सौरमण्डल की अनवरत खोज के इतिहास में एक अन्य प्रगति सूचक चिह्न हैं। इस उड़ान के फलस्वरूप, सूर्य के निकट स्थित हमारे इस पड़ोसी ग्रह के विषय में सदियों से चली आ रही कपोल कल्पनाओं का अन्त होना प्रारम्भ हो जायेगा।

"मैं सभी अमेरिकावासियों की ओर से 'नासा' और मैरिनर-10 की टोली को उनकी महत्वपूर्ण सफलता के लिए हार्दिक बधायी देता हूँ। मैरिनर-10 की उड़ान सफल बनाने में जिस अध्यवसाय, कौशल और प्रतिभा ने योग दिया है, वह हमारी ऐतिहासिक परम्परा के अनुरूप ही है।"

●

सूचना

हम एक बाल विशेषांक निकालने की योजना बना रहे हैं। लेखकों से अनुरोध है कि रुचिकर सामग्री १५ जून तक भेजने की कृपा करें।

नयी गणित की नयी विधियाँ

ओम प्रकाश दुबे, एम० एस-सी०

सभी विज्ञानों की आधारशिला गणित है। आधुनिक अन्तरिक्ष युग में अकथ मानवीय प्रयासों तथा अनुसंधानों द्वारा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान की सीमाएँ अधिकाधिक विस्तृत हो रही हैं। मानव के चिन्तन, मनन और समस्याओं को हल करने की विधियों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रभाव पड़ रहा है। अतएव नयी गणित की नयी विधियों के अध्ययन की महत्ता अपने राष्ट्र में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में अनुभव की जा रही है। प्रारम्भ में गणित को संख्याओं एवं गणनाओं का विषय माना गया था, किन्तु अब गणित को तर्क का विषय माना जाता है। नयी गणित में तर्क के माध्यम से सत्य की खोज की जाती है। उदाहरणार्थ—गणित में हम रेखा की परिभाषा इस प्रकार देते हैं, जिसमें लम्बाई हो, किन्तु चौड़ाई न हो। एक तेज विद्यार्थी पूछ सकता है कि लम्बाई और चौड़ाई क्या है। इस प्रकार से पूछे जाने वाले प्रश्नों का अन्त नहीं होगा। अब यदि छात्र समुच्चय या सेट* को जानता है तो समुच्चय की सहायता से रेखा की परिभाषा बड़ी सरलतापूर्वक समझायी जा सकती है। "रेखा एक निश्चित दिशा में रखे गये बिन्दुओं का समुच्चय होती है।" नयी गणित में छात्र उचित एवं सही गणितीय भाषा का प्रयोग करना सीखता है।

बीजगणित में हम कहते हैं कि यदि $b^2 - 4ac$ एक पूर्ण वर्ग हो, तो समीकरण $a x^2 + bx + c = o$ के मूल परिमेय होंगे। किन्तु यह कथन गलत है, क्योंकि यदि समीकरण $x^2 + 5x + 6 = o$ लिया जाय, तो इसके लिये $b^2 - 4\ ac = 25 - 24 = 1$ एक पूर्ण वर्ग है। किन्तु इसी समीकरण के मूल परिमेय संख्या नहीं है। अत: सही कथन इस प्रकार है—यदि a, b, c परिमेय हों और $b^2 - 4ac$ एक परिमेय संख्या का वर्ग हो, तो समीकरण $ax^2 + bx + c = o$ के मूल परिमेय होंगे।

नयी गणित में प्रारम्भिक सिद्धान्तों का सही ढंग से स्पष्टीकरण हो जाता है। महत्तम समापवर्तक (म०स०) और लघुत्तम समापवर्त्य (ल०स०) को नयी गणित में बहुत ही तार्किक ढंग से ज्ञात किया जाता है। नयी विधि द्वारा म०स० और ल०स० को हल करने पर छात्र इनके प्रारम्भिक सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेते हैं।

उदाहरण—मान लीजिए 8, 16 और 24 का म०स० ज्ञात करना है।

नयी विधि से म०स० ज्ञात करने के लिये सर्व प्रथम 8, 16 और 24 के अपवर्तकों का समुच्चय ज्ञात करते हैं।

8 के अपवर्तकों का समुच्चय {1, 2, 4, 8} है।

16 के अपवर्तकों का समुच्चय {1, 2, 4, 8, 16} हैं।

और 24 के अपवर्तकों का समुच्चय { 1, 2, 3, 4, 6, 8, 12, 24} हैं।

अब 8, 16 और 24 के उभयनिष्ठ अपवर्तकों का समुच्चय {1, 2, 4, 8} है जिनमें 8 महत्तम उभयनिष्ठ अपवर्तक है।

[शेष पृष्ठ 24 पर

*पूर्व निश्चित नियम के अन्तर्गत एकत्रित कुछ वस्तुओं के समूह को समुच्चय कहते हैं। विशेष ज्ञान के लिये इन्डियन प्रेस, इलाहाबाद से प्रकाशित तथा ओम प्रकाश दुबे द्वारा लिखित प्रारम्भिक समुच्चय सिद्धान्त पढ़ें।

विज्ञान-वार्ता

1—खसरा रोग का टीका ही बचाव का एकमात्र उपाय

नौ वर्ष के अनुसंधान के पश्चात् एटलाण्टा, ज्यार्जिया, स्थित अमेरिका के सरकारी रोग नियन्त्रण केन्द्र के चिकित्साशास्त्रियों का कहना है कि बच्चों को खसरा रोग का टीका देना ही इस संक्रामक रोग को रोकने के लिए सर्वोत्तम उपाय है। केन्द्र के अनुसंधान-कर्ताओं के अनुसार, खसरा-विषाणु से तैयार टीके के प्रयोग से इसके रोगियों की संख्या जो 1963 में 4,80,000 थी, घटकर 1971 में 75,000 रह गयी। इसी प्रकार खसरे से मरने वालों की संख्या भी जो 1962 में 408 थी, 1968 में घट कर केवल 24 रह गयी।

इन चिकित्सकों का कहना है कि यद्यपि खसरा-विषाणु टीका से कभी-कभी कुछ जटिलताएँ भी उत्पन्न होती हैं, फिर भी, टीका लगाने में जो जोखिम है, वह बच्चों में फैलने वाली उस संक्रमणता के खतरे की तुलना में, जो टीका न लगाये जाने की स्थिति में उत्पन्न होता है, अपेक्षाकृत बहुत ही कम है।

2—मधुमेह की पहचान की नवीन विधि

इजरायल में वहां के एक सहयोगी वैज्ञानिक के साथ अनुसंधान कर रहा टैक्सास (अमेरिका) का एक वैज्ञानिक एक ऐसी चिकित्सा विधि के विकास में प्रयत्नशील है, जिसकी सहायता से मधुमेह रोग के प्रत्यक्ष लक्षण दिखायी देने के बहुत पहले ही इस रोग की पहचान कर पाना सम्भव हो जायेगा। टैक्सास विश्वविद्यालय के डा० मार्विन सिपरस्टीन और जेरुसलम के हदासा चिकित्सा संगठन के डा० डेविड रोबिन विद्युदणु सूक्ष्मदर्शी विधि के प्रयोग द्वारा उस अवस्था का पता लगाने में व्यस्त हैं, जिसे 'डायविटिक माइक्रो-जियोपैथी' कहा जाता है। इसमें सूक्ष्म रक्तवाहिकाओं की भित्ति स्थूल होने लगती है, जो मधुमेह की सूचक है।

ये वैज्ञानिक इस तकनीक का परीक्षण इजरायल की एक आप्रवासी जनजाति पर कर रहे हैं। इस जनजाति के लोग इस परीक्षण के लिए सर्वथा उपयुक्त माने जाते हैं क्योंकि उन्होंने इजरायल में बसने पर अपनी जीवनयापन विधियों को बहुत शीघ्रता से परिवर्तित किया है। अनुसंधानकर्त्ताओं को विश्वास है कि इस अनुसंधान द्वारा मधुमेह रोग की पहचान कर पाने में काफी सहायता मिल सकेगी। वस्तुत:, मधुमेह की पहचान कर पाना एक दुस्तर कार्य है क्योंकि इसके लक्षण प्राय: अन्य रोगों के लक्षणों से काफी मिलते-जुलते होते हैं।

3—अबोध शिशुओं को शिक्षा देना लाभकारी

क्या बहुत छोटी आयु के शिशुओं को शिक्षा देना लाभकारी है? इस विषय में अमेरिका के रुटगर्स विश्वविद्यालय में परीक्षण किये जा रहे हैं। इन परीक्षणों के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि बहुत छोटी आयु में शिक्षा द्वारा शिशुओं के विकास और शारीरिक क्षमता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। यद्यपि, उक्त परीक्षण अभी मानव शिशुओं पर नहीं किये गये हैं, तथापि पशु-शावकों पर किये गये परीक्षणों के आधार पर उक्त सम्भावना सत्य प्रमाणित हुई है।

परीक्षणकर्ता प्रो० रोजनब्लाट दिल्ली के नवजात बच्चों पर परीक्षण के उपरान्त, इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बिल्ली शावक कुछ चीजें बड़ी द्रुतता से सीख लेते हैं, जैसे शीघ्र ही अपने पिंजरे की गंध जानना, प्रेरक तथा अनुभूति प्रक्रियाओं में शीघ्र परिपक्व होना आदि। साथ ही उनमें शीघ्र ही भविष्य में स्वावलम्बी होने के लक्षण दिखायी देने लगते हैं।

4—अन्धी झिंगा मछली के व्यापार में वृद्धि सम्भव

अनुसंधानों से ज्ञात हुआ है कि अन्धी बच्चा झिंगा मछली नेत्रों वाली झिंगा मछली की तुलना में शीघ्रता से बढ़ती हैं। मैन (अमेरिका) में किये जा रहे अनुसंधानों से पता चला है कि अंधी झिंगाओं की बढ़त, देख पाने में समर्थ सामान्य झिंगाओं की तुलना में 10 गुना अधिक है। और, इसी कारण ये अन्धी झिंगा मछलियां प्रारम्भ में अपना कवच जल्दी-जल्दी बदलती हैं क्योंकि यह उनके बढ़ते आकार के लिए शीघ्र ही छोटा पड़ जाता है। अन्धी झिंगा मछली रंग में सामान्य झिंगाओं से अलग होती हैं। इनका रंग संतरी-लाल होता है, जबकि सामान्य झिंगा मछलियां नीले-हरे रंग की होती हैं।

साधारणतः अन्धी झिंगा मछली पांच हजार में एक ही होती है। अनुसंधानकर्ताओं ने अपने अनुसंधान के दौरान देखा कि यद्यपि अंधी झिंगाएँ सामान्य झिंगाओं की भाँति ही भोजन करती हैं, परन्तु इनकी बढ़त दर सामान्य झिंगाओं की अपेक्षा अधिक तीव्र होती है। यह भी ज्ञात हुआ कि झिंगा मछलियों की आंखों में एक प्रकार का हारमोन होता है जो उनकी वृद्धि पर नियन्त्रण रखता है।

अंधी झिंगा मछलियां केवल कृत्रिम वातावरण में अथवा सुरक्षित जलागारों में ही पाली जा सकती हैं क्योंकि देख पाने में असमर्थ होने के कारण ये अन्य पशुभक्षी हमलावरों से अपना बचाव कर पाने में असमर्थ होती हैं।

अनुसन्धानकर्ताओं का उद्देश्य झिंगाओं के सम्पूर्ण जीवन-चक्र का अध्ययन करना है, जिससे अन्धी समुद्री झिंगा मछलियों के आकार में तीव्रता से होने वाली वृद्धि के कारण का पता लगाया जा सके और इस प्रकार इस मछली के व्यापार में बढ़ोत्तरी की जा सके।

5—ईंधन के रूप में उद्जन का प्रयोग

हाल में, ऊर्जा के नये स्रोतों की जो खोज प्रारम्भ हुई है, उसके फलस्वरूप, अमेरिका में यह प्रस्ताव पुनः सामने आया है कि ऐसी प्रविधियाँ विकसित होनी चाहिये, जिनके फलस्वरूप, उद्जन का प्रयोग लोकप्रिय ईंधन के रूप में किया जा सके।

उद्जन पानी से प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हो सकता है। उसे पाइपों द्वारा बिजली की अपेक्षा कम लागत पर दूर-दूर तक पहुँचाया जा सकता है।

6—कम बिजली से अल्यूमीनियम

1973 के दौरान अल्यूमीनियम के उत्पादन की दो नयी प्रविधियाँ सामने आयीं। पिछले 85 वर्षों से यह उद्योग कच्ची धातु या अयस्क से अल्यूमीनियम आक्साइड निकालने के लिए एक ही प्रकार की विधियों का प्रयोग करता रहा है। इन पुरानी विधियों के अन्तर्गत अल्यूमीनियम का उत्पादन करने के लिए बड़ी मात्रा में बिजली की आवश्यकता है और यह बिजली उत्तरोत्तर अधिक मंहगी होती जा रही है।

1973 में विकसित नयी विधियों में से एक को पिट्सबर्ग (पैन्सिल्वैनिया) की अल्यूमिनियम कम्पनी आव् अमेरिका (अलको) ने विकसित किया है। यह अधिकांश पुरानी विधियों की तरह ही एक विद्युत रासायनिक विधि है, किन्तु इसमें उनकी अपेक्षा लगभग 30 प्रतिशत कम बिजली की आवश्यकता होती है।

दूसरी नयी विधि को न्यू ओर्लियन्स (लुइजियाना) के टाथ अल्यूमीनियम कारपोरेशन ने विकसित किया है। यह विशुद्ध रूप से एक रासायनिक विधि है। आशा की जाती है कि इसमें जितनी बिजली खर्च होगी, वह पुरानी विधियों में प्रयुक्त बिजली के केवल 5 से 10 प्रतिशत के ही बराबर होगी।

'अलको' ने नई विधि पर आधारित अपना नया कारखाना प्रारम्भ कर दिया है। इसमें प्रतिवर्ष 15 हजार टन तक अल्युमिनियम का उत्पादन होगा। टाथ कारपोरेशन अपनी नयी विधि पर आधारित अपना कारखाना मार्च 1975 से चालू करेगा।

7—कृत्रिम सुपरकण्डक्टर

एक नया मानव-निर्मित पदार्थ, जिसका नाम उच्चारण की दृष्टि से जटिल है, काफी चर्चा का विषय

बन गया है। यह एक जैव घोल है, जिसे रसायनशास्त्री ('टी टी एफ') ('टी सी एन क्यू') के रूप में जानते हैं। इसकी एक विशिष्ट और असामान्य विद्युतीय विशेषता यह है कि जब इसे अत्यन्त न्यून तक ठण्डा कर दिया जाता है, तो इसमें बिजली का प्रतिरोध करने की कोई भी क्षमता नहीं रह पाती।

इस प्रकार के गुणों वाली धातुओं और मिश्रित धातुओं को सुपर कण्डक्टर कहा जाता है। नये पदार्थ से 10 वर्ष पूर्व की गयी यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हो जायेगी कि कृत्रिम जैव सुपरकण्डक्टरों में ऐसी विशेषताएँ होंगी, जो प्राकृतिक धात्विक सुपरकण्डक्टरों के गुणों से श्रेष्ठतर होंगी।

('टी टी एफ') ('टी सी एन क्यू') के निर्माण और उसके कुछ गुणों के विषय में सबसे पहले जान्स हापकिन्स विश्वविद्यालय, बाल्टीमोर (मेरिलैण्ड), के डी० ओ० कोवन और ए० एन० ब्लाच ने रिपोर्ट प्रस्तुत की।

इस नये कृत्रिम पदार्थ का विकास हो जाने पर कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों ने यह विश्वास व्यक्त किया है कि अब ऐसी कृत्रिम सामग्रियों के निर्माण की दिशा में पहला चरण पूरा हो गया है, जो कमरे के तापमान के अनुरूप सुपरकण्डक्टर सिद्ध होंगी। अभी कोई ऐसी सामग्री विद्यमान नहीं है।

8—मानव शरीर पर धूम्रपान की प्रतिक्रिया

यदि आप किसी सिगरेट पीने वाले से पूँछें कि वह धूम्रपान क्यों करता है, तो शायद उसका उत्तर होगा कि इससे उसे 'आराम' का अनुभव होता है। परन्तु, यदि आप एक वैज्ञानिक से प्रश्न करें कि मानव शरीर पर धूम्रपान की क्या प्रतिक्रिया होती है, तब वह कहेगा कि इससे शरीर में एक प्रकार की 'उत्तेजना' उत्पन्न होती है।

यह एक अनोखा विरोधाभास है। हाल ही में, मनोवैज्ञानिक पाल डी० नैसविट के अध्ययन से इस बात के संकेत मिले हैं कि धूम्रपान के मनोवैज्ञानिक और शरीर विज्ञान सम्बन्धी प्रभाव भिन्न क्यों होते हैं।

कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में किये गये अपने अध्ययनों के आधार पर, डा० नैसविट इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि धूम्रपान करने वालों में, उस समय की अपेक्षा जब वे सिगरेट नहीं पी रहे हों, सिगरेट पीते समय भावनाओं का उद्वेग निश्चय हीं कम होता है। इसके अतिरिक्त, सिगरेट में निकोटीन—एक ऐसा रसायन जिसके कारण हृदय-गति में तीव्रता आती है और समग्रत: इसका शरीर पर प्रभाव उद्दीपक होता है—की उच्च मात्रा के कारण पीने वाले को कुछ आराम की अनुभूति होती है। सारांशत:, अधिक सिगरेट पीने से शारीरिक प्रक्रिया प्रभावित होती है और उसकी मनोदशा पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

9—बर्गलर एलार्म !

चोर महाशय, सावधान ! हो सकता है, सामने वाले मकान में जिसमें आप सेंध लगाने की सोच रहे हैं, 'मेस' रसायन अथवा 'बर्गलर अलार्म' लगा हो और आप पकड़े जायें।

पिट्सबर्ग (पेन्सिल्वेनिया) के श्री एलन लिटमैन ने जान-माल की रक्षा करने में अति सहायक दो वस्तुओं का आविष्कार किया है, जिनमें एक है रासायनिक 'मेस', और दूसरा है 'बर्गलर एलार्म'।

'मेस' एक ऐसा रसायन है जिसके छिड़काव से हमलावर निरुपाय और असमर्थ हो जाता है, जबकि 'बर्गलर एलार्म' खतरे की सूचना तार अथवा रेडियो के बजाय फ्लैश द्वारा देता है।

'बर्गलर एलार्म' जिसे 'फ्लैशगार्ड' कहा गया है, फोटोग्राफर के काम आने वाली फ्लेश (तीव्र प्रकाश प्रक्षेपक) के सदृश्य ही एक प्रकार की फ्लैश है। यह 'फ्लैशगार्ड' उन दरवाजों और खिड़कियों पर लगा दिया जाता है जिनकी सुरक्षा आवश्यक समझी जाती है। यदि कोई चोर या लुटेरा इनसे अन्दर घुसने की कोशिश करता है तो इन 'फ्लेशगार्डों' से एक प्रकार का तीव्र प्रकाश निकलने लगता है तथा इनसे सम्बद्ध एक एलार्म बजने लगता है। लुटेरा इस प्रकाश को देखकर डर कर भाग खड़ा होता है अथवा पकड़ा जाता है।

सम्पूर्ण भवन की सुरक्षा के लिए इस प्रकार के अनेक यन्त्र लगाने पड़ते हैं।

इस यन्त्र की एकमात्र समस्या यह है कि यह यन्त्र अपने दृष्टिपथ के अन्दर ही कार्यक्षम है, कोनों अथवा मध्य दीवार में सेंध लगाकर घुसने वाले लुटेरों को न देख सकने के कारण, उनके बारे में कोई सूचना नहीं दे पाता।

श्री लिटमैन के अनुसार, उन्होंने एक अन्य सुधरे किस्म के 'फ्लैशगार्ड' का भी आविष्कार किया है, जो उष्णता को अनुभव कर, आग चलने पर चेतावनी-सूचक घण्टी की भाँति कार्य करता है।

[पृष्ठ 20 का शेषांश]

अतः 8, 16 और 24 का म० स० 8 है।

स्पष्ट है कि इस विधि में 'महत्तम समापवर्तक' नाम का उपयोग किया गया है जबकि भाग या गुणन-खण्ड द्वारा स० म० ज्ञात करने की विधि में नाम की सार्थकता प्रगट नहीं होती है।

उदाहरण—मान लीजिए 12, 15 और 20 का ल० स० ज्ञात करना है।

सर्वप्रथम 12, 15 और 20 के अपवर्त्यों का समुच्चय ज्ञात किया जाएगा।

12 के अपवर्त्यों का समुच्चय।

{ 0, 12, 24, 36, 48, 60, 72, 84, 96, 108, 120, 132, 144, 156, 168, 180 ......इत्यादि } है।

15 के अपवर्त्यों का समुच्चय

{0, 15, 30, 45, 60, 75, 90, 105, 120, 135, 150, 165, 180, 195,...... इत्यादि } है।

20 के अपवर्त्यों का समुच्चय

{ 0, 20, 40, 60, 80, 100, 120, 140, 160, 180, 200, 220, 240, 260,...... इत्यादि } है।

अब 12, 15 और 20 के उभयनिष्ठ अपवर्त्यों का समुच्चय {0, 60, 120, 180,.. ...इत्यादि } है जिसमें लघुत्तम उभयनिष्ठ अपवर्त्य, जो शून्यन हो, 60 है।

अतः 12, 15 और 20 का ल० स० 60 है।

स्पष्टतः इस विधि में नाम की सार्थकता प्रदर्शित हो रही है।

इसी प्रकार गणित के अनेकानेक प्रश्नों को समुच्चय की सहायता से तार्किक ढंग से हल किया जा सकता है।

ओम प्रकाश दुबे
गणित प्रवक्ता
आदर्श कालेज, सराय आकिल
इलाहाबाद

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111 | आषाढ़ 2031 विक्र०, 1894 शकाब्द जून, जुलाई 1974 | संख्या 6

नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ—भारतीय संदर्भ में

(लेखमाला—भाग 1)

शुकदेव प्रसाद

[हमारे वैज्ञानिक बड़ी लगन से अनुसंधानकार्य में रत हैं। विज्ञान और तकनीकी विकास की दर में दिनोदिन प्रगति हो रही है। अभी हाल की कुछ नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियों के विषय में इस लेखमाला में चर्चा की जायगी। प्रस्तुत है इस लेखमाला की पहली कड़ी—भारत का प्रथम परमाण्विक विस्फोट]

भारत का प्रथम परमाण्विक विस्फोट—

जोधपुर और जैसलमेर के बीच पोकरण क्षेत्र। पाकिस्तान की सीमा से कोई 150 किलोमीटर दूर। 18 मई की प्रातःकालीन बेला। थोड़ी ही देर में विश्व के इतिहास में नया पृष्ठ जुड़ने जा रहा था। भारत के मूर्धन्य अणु वैज्ञानिक दिलों की धड़कन थामे खड़े थे। जैसे ही समय हुआ शीर्ष वैज्ञानिकों ने विस्फोट करने के लिए अपने कनिष्ट साथियों से बटन दबाने को कहा। बटन दबाते ही विस्फोट हुआ और उसके दृश्य को वैज्ञानिकों ने साँस रोककर टेलिविजन पर देखा। भारतीय अणुशक्ति आयोग के अध्यक्ष डा० सेठना हर्षोल्लसित होकर फूट पड़े 'हमने इसे कर दिया' (We have done it) खुशी में झूम कर सारे वैज्ञानिकों ने एक दूसरे को आलिंग बद्ध कर लिया और बधाई दी और यह रही भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा 18 मई, 1974 को राजस्थान के पोकरण क्षेत्र में प्रातः 8 बजकर 5 मिनट पर की गयी सफल भूमिगत परमाणु परीक्षण की झाँकी!

भारत के इस प्रथम भूमिगत परमाणु परीक्षण से देश के परमाणु-युग के प्रणेता डॉ० होमी जहाँगीर भाभा

और भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू का सपना साकार हुआ। इस सफल आण्विक विस्फोट के द्वारा भारत ने विश्व के पाँच आण्विक देशों के परमाणु एकधिकार को समाप्त करके विश्व में अपना नया कीर्तिमान स्थापित किया है।

आण्विक क्षेत्र में इस विशिष्ट तथा गौरवपूर्ण उपलब्धि के लिए हमारे भारतीय वैज्ञानिक विशेषकर भारतीय अणु शक्ति आयोग के अध्यक्ष डा० एच० एन० सेठना एवं भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्रॉम्बे के डायरेक्टर डा० राजा रामन्ना, जिनके कुशल निर्देशन में भारत का प्रथम भूमिगत परमाणु परीक्षण सफल रहा, बधाई के पात्र हैं एवं हमारी सरकार भी क्यों इस गोपनीयता की विस्फोट के पहले किसी को खबर तक न हुई।

इस सुखद घटना का प्रत्येक भारतवासी ने सहर्ष स्वागत किया है। चारों ओर प्रसन्नता की लहर फैल गई।

भारत ने भूमिगत परीक्षण ही क्यों किया ?— उल्लेखनीय है कि पानी या वायुमंडल में परमाणु परीक्षण से रेडीयधर्मिता बहुत दूर तक फैल जाती है। विस्फोट से निकले रेडियो विकिरण लम्बी अवधि तक जीवन के लिए बहुत खतरनाक होते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण सामने है। अमेरिका द्वारा जापान के प्रमुख नगर हीरोशिमा और नागासाकी पर डाले गए बम द्वारा कितनी क्षति हुई है। यह सब को ज्ञात है। हीरोशिमा नगर के 92 हजार 1 सौ 33 व्यक्ति मौत के घाट उतर गए थे एवं नागासाकी के 39 हजार व्यक्ति मर गए एवं 25 हजार विकलांग हो गए। उन विस्फोटों के द्वारा निकले हुए तीव्र विकिरणों का असर अभी नहीं समाप्त हुआ है। वहाँ की जनता में अब भी दोष पाए जाते हैं। लूले-लंगड़े, बहरे-अंधे अब भी पैदा होते हैं।

पीढ़ी एकान्तरण द्वारा यह सब विचित्रताएँ आने वाली पीढ़ियों में अर्जित होती रहती हैं। इस घटना से आप विस्फोट के घातक परिणामों का अन्दाजा लगा सकते हैं। लेकिन भूमिगत परीक्षणों में ऐसी बात नहीं है। इन बातों को देखते हुए परमाणु परीक्षण प्रतिवंध पर समझौता हुआ। भारत ने 1963 के आंशिक नाभिकीय परीक्षण निषेध संधि पर हस्ताक्षर किया था जिसके अंतर्गत वायुमंडल या पानी में नाभिकीय परीक्षण विस्फोट निषिद्ध है। भारत ने 1968 के नाभिकीय प्रसार निषेध संधि पर हस्ताक्षर नहीं किया था क्योंकि इस सिलसिले में भारत ने अन्य देशों के साथ यह आपत्ति उठायी थी कि महाशक्तियाँ नाभिकीय अनुसंधान क्षेत्र पर एकाधिकार जमा कर विकासशील राष्ट्रों को विज्ञान के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र से वंचित रखना चाहती हैं।

अतः भारत ने अपने वायदे के मुताबिक भूमिगत परमाणु परीक्षण किया क्योंकि समझौते में भूमिगत परीक्षण के लिए मनाही नहीं थी।

इस सम्बन्ध में भारतीय अणु-शक्ति आयोग के अध्यक्ष डा० एच० एन० सेठना ने कहा है कि "भारत पहला देश है जिसने अपना प्रथम परमाणु विस्फोट भूमिगत किया है। हमने ऐसा इसलिए किया कि हम यह नहीं चाहते थे कि परिस्थितियों में बाधा पड़े तथा रेडियो विकिरणशीलता में और वृद्धि हो।"

भारत के इस विस्फोट के लिए तैयारी में चार वर्ष का समय लगा जबकि अमेरिका, ब्रिटेन, सोवियत-संघ, फ्रांस और चीन को इस प्रकार की तैयारी में सात से 10 वर्ष तक का समय लगा। इससे स्पष्ट है कि भारत का तकनीकी विकास दर इन राष्ट्रों से काफी आगे है। एक महत्वपूर्ण बात यह भी है कि भारत के परमाणु विस्फोट से रेडियो विकिरण प्रक्रिया बहुत कम हुई है। यह बात विशेषरूप से उल्लेखनीय है कि उक्त परीक्षण विस्फोट पूर्णतया भारत में प्राप्त साधनों और स्रोतों के उपयोग से ही किया गया है। भारतीय तकनीकी आत्मनिर्भरता का यह गौरवशाली उदाहरण है।

प्रतिक्रियाएँ—भारत ने अपना प्रथम परमाणु परीक्षण करके पूरे विश्व में तहलका मचा दिया है। इस घटना से कुछ राष्ट्र खिन्न भी हैं।

यद्यपि भारतीय परमाणु शक्ति आयोग एवं प्रधान मंत्री श्रीमती गांधी ने स्पष्ट कर दिया है कि यह परमाणु विस्फोट पूर्णतया शांतिपूर्ण कार्यों के लिए किया गया है तथापि कुछ राष्ट्रों में इससे व्यर्थ की आशंका उत्पन्न

हो गई है। खासतौर से पाकिस्तान बेहद आशंकित हो उठा है। अमेरिका, कनाडा और जापान ने भी भारत के विस्फोट का विरोध किया है। यह भी पता चला है कि कनाडा अणु शक्ति संबंधी कार्यक्रमों के लिए दी जाने वाली सहायता बन्द करने जा रहा है।

लेकिन हमारी प्रगति पर कोई असर नहीं - गत 23 मई को कनाडा के विदेशमन्त्री मिचेल शार्प ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि, "कनाडा सरकार भारत को परमाण्विक संयंत्र और सामग्री का प्रेषण स्थगित करने जा रही है। इसके साथ ही दोनों देशों में परमाण्विक तकनीकी के बारे में सूचनाओं का आदान प्रदान भी समाप्त किया जा रहा है।"

सरकारी पर्यवेक्षकों के अनुसार आण्विक परीक्षण के क्षेत्र में भारत के साथ कनाडा का सहयोग अब कोई खास अहमियत नहीं रखता और यदि यह बन्द भी हो जाता है तो उसका भारत के आण्विक कार्यक्रमों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

परमाणु शक्ति द्वारा उर्जा उत्पादन के लिए यूरेनियम एक बुनियादी वस्तु है। भारत में यूरेनियम दो स्थानों जादूगड़ा तथा नरवा पहाड़ में उपलब्ध है और इसके भण्डार में लगभग 11 हजार टन यूरेनियम मौजूद है। इसके अतिरिक्त यूरेनियम सिंहभूमि (बिहार), मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमांचल प्रदेश और उत्तर प्रदेश में भी पाया जाता है, जिसकी खुदाई का काम प्रारम्भिक चरण में है।

एक अनुमान के अनुसार भारत में यूरेनियम के भण्डार पाँच हजार से दस हजार मेगावाट क्षमता वाले बिजली-घरों के लिए पर्याप्त हैं। यूरेनियम के बाद थोरियम भी एक महत्वपूर्ण पदार्थ है, जो परमाणु शक्ति के लिए अत्यंत आवश्यक है। विश्व भर में सबसे अधिक थोरियम का उत्पादन भारत में होता है।

तारापुर परमाणु बिजलीघर ने 1969 के जुलाई मास में 380 मेगावाट की क्षमता से उत्पादन आरम्भ कर दिया था, जबकि राजस्थान परमाणु बिजलीघर अन्तिम चरण में है। मद्रास के निकट कलापकम के स्थान पर एक तीसरा परमाणु बिजलीघर भी स्थापित किये जाने की संभावना है। चौथा परमाणु बिजलीघर उत्तर प्रदेश में नरौरा में स्थापित किया जायगा।

भारत के परमाणु विस्फोट का विवरण— विखंडनीय पदार्थ राजस्थान की मरुभूमि में 'एल' आकार के 100 मीटर के एक गहरे गढ्डे में रखा गया था जो चार किलोमीटर दूर स्थित नियंत्रण कक्ष से करीब दस भूमिगत तारों से जुड़ा था। इनमें से कुछ तार विभिन्न यंत्रों से जुड़े थे जिनके द्वारा परीक्षण के विभिन्न प्रभावों, ध्वनि तरंगें, दबाव, भूस्खलन कंपन आदि को मापा गया। विस्फोट स्थल लगातार दूरदर्शन कैमरा की परिधि में रहा और वैज्ञानिक सम्पूर्ण गति विधि को देखते रहे।

भारतीय परमाणु विस्फोट में प्लूटोनियम का प्रयोग किया गया। राजस्थान में 10-15 किलो टन क्षमता वाला विस्फोट किया गया। नागासाकी पर गिराए गए बम से यह विस्फोट अधिक है। इस विस्फोट के सिलसिले में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें विस्फोट के बदले अंतः स्फोट प्रक्रिया का उपयोग किया गया।

लगभग 20 किलोग्राम प्लूटोनियम 239 को 1—1 किलोग्राम वाले अलग-अलग पेटियों में रखकर इनको एक बड़े धातु के गोले में लगाया गया। फिर गोले के अन्दर दूर से विद्युत कन्ट्रोल या स्विच द्वारा रासायनिक विस्फोट किया गया, जिससे प्लूटोनियम की पेटियाँ एक सेकेन्ड के हजारवें हिस्से में गोले के बीच में आ जायं। ऐसा इसलिए किया गया कि प्लूटोनियम 'क्रिटिकल भार' पर आ जाय और तुरन्त विस्फोट हो जाय। सामान्यतया विखंडनीय पदार्थ का विस्फोट तब तक नहीं होता जब तक उसकी एक निश्चित मात्रा (क्रिटिकल भार) नहीं बनती। इसीलिए कई हिस्सों को आपस में भिड़ाकर विस्फोट कराया जाता है। इस प्रकार के गोले के अन्दर रासायनिक विस्फोट करके प्लूटोनियम को विस्फोट की स्थिति तक पहुँचाने की प्रक्रिया को अंतः विस्फोट कहते है। जब प्लूटोनियम का 'क्रिट्रिकल भार' एक शृंखलावद्ध प्रक्रिया जारी करता है तो अपार उर्जा निकलती है।

विस्फोट क्षेत्र में मनोहारी कृत्रिम पहाड़ी निर्मित—भारत में किए गए भूमिगत अणु परीक्षण से उस क्षेत्र की भूमि का धरातल परिवर्तित हो गया है। परीक्षण स्थल पर एक अत्यंत सुन्दर पहाड़ी तैयार हो है। यह बात एक रेडियो साक्षात्कार में भाभा एटामिक शोध केन्द्र के निदेशक डा राजा रामन्ना ने अपने साक्षी में कहा है। उनके अनुसार, "विस्फोट होने के बाद भूमि के पत्थरों में भारी उथल-पुथल हुई। यह सब हमने चार किलोमीटर से देखा है। निरीक्षण विभाग से यह रिपोर्ट पाकर कि उक्त क्षेत्र में रेडियो तत्व कम हो रहे हैं, तब हम लोग 100 मीटर की दूरी तक जा सके। उक्त दूरी से हम लोगों ने इस नवनिर्मित मनोहारी पर्वत श्रेणी का अवलोकन किया।"

रेडियधर्मिता-बहुत कम—विस्फोट के तुरंत बाद दो हेलीकाप्टरों द्वारा सम्पूर्ण स्थल का निरीक्षण किया गया। हेलीकाप्टर 30 फुट ऊँचाईं पर उड़े। महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं के चित्र भी लिये गये हैं। ज्ञातव्य है कि इतने बड़े विस्फोट से बहुत कम रेडियधर्मिता पैदा हो सकी।

उल्लेखनीय है कि परमाण्विक परीक्षण स्थल से एकत्र की गयी वस्तुओं के प्राथमिक परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि वे विकिरणधर्मी नहीं हुई हैं। ट्राम्बे में परमाणु वैज्ञानिकों ने इन नमूनों का रासायनिक विश्लेषण किया जिससे पता लगा कि उनमें उतना ही विकिरणधर्मिता है जितनी सामान्यत: अन्यत्र रहती है।

इस आरम्भिक छानबीन से श्री० एच० एन सेठना के गत 18 मई के दिल्ली के उस वक्तव्य की पुष्टि हुई है, जिसमे कहा गया था कि विस्फोट से विकिरण का प्रभाव नहीं पड़ा। न तो वहाँ के बालू पर इसका प्रभाव पड़ा और न विस्फोट स्थल के 30 मीटर ऊपर वायु पर ही।

यद्यपि परीक्षण-स्थल पर बाहर की वस्तुओं पर तो कोई रेडियधर्मी प्रभाव नहीं पड़ा तथापि परमाण्विक उर्जा आयोग जमीन के अन्दर रेडियधर्मिता के प्रभाव का जाँच अभी बाद में करेगी। इसके लिए परीक्षण-स्थल पर जमीन में कई जगह सूराख बनाकर नीचे की मिट्टी, चट्टानों के टुकड़े आदि का संग्रह नमूने के तौर पर किया जायगा और फिर उनका परीक्षण किया जायगा।

अगले 6 मास के दौरान सभी उपलब्ध आँकड़ों का विश्लेषण किया जायेगा और निष्कर्षों को उचित अवसर पर प्रकाशित किया जायगा।

विस्फोट के लिए उपयोगी पदार्थ—प्लूटोनियम—परमाणु उर्जा उत्पादनहेतु यूरेनियम 235 और प्लूटोनियम दोनों का उपयोग होता है। भारत में यूरेनियम तो प्रचुर मात्रा में पाया जाता है मगर इसे घनीभूत करने की सुविधाएँ संभवतया देश में नहीं हैं। इसीलिए भारतीय परमाणु विस्फोट में यूरेनियम की जगह प्लूटोनियम का उपयोग किया गया। प्लूटोनियम मानव निर्मित धातु है जो अत्यन्त रेडियो सक्रिय विषाक्त होती है। परमाणु उर्जा तैयार करने वालों रियेक्टरों में यह प्राकृतिक यूरेनियम से बनाया जा सकता है। न्यूट्रानों की बौछार से पहले यूरेनियम नेपच्यूनियम में बदलता है और फिर प्लूटोनियम में जिसका परमाणु भार 239 होता है। रियेक्टर में ईंधन प्रयोग होने के बाद उसके उच्छिष्ट में प्लूटोनियम मिलता है। ट्राम्बे में एक प्लूटोनियम सयंत्र है जिसमें सक्रिय यूरेनियम से प्लूटोनियम बनाया जाता है। अवशिष्ट यूरेनियम ईंधन से प्लूटोनियम के नि:सारण का कार्य दक्ष वैज्ञानिक विकिरण सह पोशाक, नकाब और दस्ताने पहन कर चार फुट मोटी कंकरीट की दीवार की आड़ से दूर नियंत्रण उपकरणों द्वारा करते हैं।

तारापुर में प्लूटोनियम नि:सारण का जो दूसरा संयंत्र स्थापित किया जा रहा है वह तारापुर तथा राजस्थान के राणाप्रताप सागर के परमाणु बिजलीघरों से प्राप्त यूरेनियम ईंधन से प्लूटोनियम निस्सारित करेगा। दोनों केन्द्रों के अवशिष्ट ईंधन से क्रमश: 97 किलोग्राम और 130 किलोग्राम प्लूटोनियम का वार्षिक उत्पादन होगा। मद्रास में कलापकम और उत्तर प्रदेश के नरोरा नामक स्थान पर जो दो और परमाणु बिजलीघर बनने वाले हैं वे भारत के लिए प्लूटोनियम के अच्छे स्रोत होंगे।

चूंकि प्राकृतिक यूरेनियम 238 में से यूरेनियम

235 के निस्सारण की प्रक्रिया अत्यंत जटिल और खर्चीली भी है इसलिए भारत को दूसरे ही इंधनों पर निर्भर रहना पड़ेगा। प्लूटोनियम के साथ थोरियम का प्रयोग करने पर भारत को एक और नया इंधन 'यूरेनियम-233' प्राप्त हो जायगा। भारत के पास थोरियम का भण्डार है। अतः परमाणु इंधन की चिन्ता नहीं है। केरल के समुद्र-तटवर्ती भाग में थोरियम का अपरिमित भण्डार है।

उर्जा के विपुल भण्डार परमाणु—परमाणु शक्ति का स्रोत परमाणु का नाभिक है। प्रत्येक परमाणु का नाभिक धनावेषित कण 'प्रोटान' और शून्य आवेषित कण 'न्यूट्रान' से बने होते हैं। ऋणावेषितकण 'इलेक्ट्रान' नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। जब परमाणु का नाभिक टूटता है तो प्रोटान अल्फा किरणों के रूप में, इलेक्ट्रान बीटा किरणों के रूप में और न्यूट्रान घातक गामा किरणों के रूप में निकलते हैं। इस प्रकार परमाणु उर्जा में परिवर्तित हो जाता है।

आइन्सटीन के समीकरण $E = mc^2$ के अनुसार (E उर्जा, m = संहति और c=प्रकाशवेग सेंटीमीटर में) केवल एक ग्राम पदार्थ को उर्जा में परिवर्तित करने पर चार हजार अश्वशक्ति का इंजन लगातार एक वर्ष तक चलाया जा सकता है। इसी से आज परमाणुओं में निहित विपुल उर्जा के भण्डार की कल्पना कर सकते हैं।

परमाणु उर्जा का उपयोग—इस शक्ति का उपयोग विनाशकारी एवं शांतिपूर्ण दोनों कार्यों के लिए हो सकता है। हमने यह घोषणा की है हम इसका उपयोग शांतिपूर्ण कार्यों के ही लिए करेंगे।

10 मई, 1954 को लोकसभा में बोलते हुए स्व० पं जवाहर लाल नेहरू ने कहा था, "मैं सदन को इस बात की याद दिलाना चाहता हूँ कि शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए परमाणु शक्ति का उपयोग भारत जैसे देश के लिए, 'जहाँ कि उर्जा के स्रोत सीमित हैं, ज्यादा महत्वपूर्ण है, बनिस्बत फ्रांस जैसे औद्योगिक दृष्टि से विकसित देश के लिए।

भारत ने विस्फोट करके निःसन्देह तकनीकी प्रगति की एक मंजिल पार कर ली है। उत्पादन प्रक्रिया विद्युत उत्पादन और टेक्नालोजिकल विकास में इससे जो सहायता मिलेगी उससे आर्थिक विकास की हमारी क्षमता बढ़ेगी।

भूमिगत परमाणु विस्फोटों द्वारा नहरें खोदना, धातुओं तेल व गैस आदि को जमीन से निकालना, नदियों का बहाव मोड़ना, बन्दरगाहों की सफाई करना आदि उपयोग हो सकते हैं। डा० सेठना के अनुसार यह विस्फोट केवल वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए किया गया है—"हम यह देखना चाहते थे कि धरती के नीचे चट्टानों को तोड़ने में यह कितना सहायक सिद्ध हो सकता है। नाभिकीय विस्फोटों के शांतिपूर्ण उपयोगों के अध्ययन के कार्यक्रम के अन्तर्गत भारत सरकार ने इस क्षेत्र में हो रहे विकास के साथ-साथ चलने के लिए एक कार्यक्रम प्रारम्भ किया है और हमारा ध्येय है खनिकर्म तथा चट्टानों को तोड़ने फोड़ने में इस टेक्नालॉजी के उपयोग का अध्ययन करना।"

(क्रमशः)

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

सबसे पहले........

शुकदेव प्रसाद

● अमरीकी भौतिक शास्त्री—अर्नेस्ट लारेंस ने 1930 में सबसे पहले साइक्लोट्रान बनाया और इसके कार्य के लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार से विभूषित किया गया।

● एडमण्ड हेली (1656-1742) ने सबसे पहले यह बताया कि पुच्छल तारे सौर-मण्डल के ही सदस्य हैं जो कि दीर्घ वृत्तीय कक्षाओं में घूमते रहते हैं।

● सबसे पहले 1968 में वैज्ञानिक फैनसेस्को रेडी ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया कि जीव की उत्पत्ति जीव से ही सम्भव है।

● सबसे पहले 1917 में रदरफर्ड ने रेडियोधर्मी पदार्थ से उत्सर्जित होने वाले अल्फाकणों की मदद से नाइट्रोजन को आक्सीजन में परिवर्तित कर दिया। यह पहली मानव नियंत्रित नाभकीय प्रतिक्रिया थी।

● कैलीफोर्निया के प्रो० ली के मानव वृद्धिकर हार्मोन में 188 एमीनों अम्ल हैं। इस हार्मोन का अणु अब तक प्रयोगशाला में संश्लेषित अणुओं में सबसे बड़ा है।

● सबसे पहले मुलर ने 1927 में एक्स-रे प्रेरित उत्परिवर्तन का अध्ययन ड्रासोफिला नामक मक्खी में किया जिसके लिए उन्हें 1946 में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया गया।

● 1895 में प्रोफेसर विल्हेल्म कोनराड रूण्टगेन ने पहली बार एक ऐसी विधि निकाली जिससे वह अनेक अपारदर्शी पदार्थों के आर पार देख सकता था। वह विधि थी एक्स-किरणों की खोज जो कि मानव के लिए वरदान सिद्ध हुई।

● सबसे पहले 1962 में वाटसन और क्रिक ने डी० एन० ए० की संरचना ज्ञात की और उसका माडल प्रस्तुत किया।

● सबसे पहले जून 1970 में डा० हरगोविन्द खुराना ने परखनली में 77 न्यूक्लिओटाइडो युक्त यीस्ट के प्राकृतिक जीन की पतिकृति तैयार की थी। इस वर्ष उन्होंने 177 न्यूक्लिओटाइडो युक्त कृत्रिम परखनली में संश्लेषित किया है। इसके पुरस्कार स्वरूप उन्हें अमेरिका का उच्चतम सम्मानीय पदक 'गिब्स मेडल' प्रदान किया गया।

● सबसे पहले 1663 में लन्दन में रॉवर्ट हुक नामक वैज्ञानिक ने जब कार्क की एक बहुत पतली सी काट (Section) को अपने सूक्ष्मदर्शी से देखा तो उसे कुछ कोष्ट जैसी रचनाएं दिखाई पड़ीं। उसने इन रचनाओं को सेल 'कोशिका' नाम दिया।

● सबसे पहले 1839 में जर्मन वैज्ञानिक थियोडर इवान ने कोशिका और जीवों के संबंध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए कहा था कि "कोशिका जीव हैं और समस्त जन्तु व पौधे निश्चित नियमों के अनुसार व्यवस्थित इन्हीं जीवों के समूह मात्र हैं।"

———

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

सरिता एवं सरिता कार्य

विजय कान्त श्रीवास्तव

पृथ्वी पर प्रतिवर्ष लगभग 1,20,000 घन किमी जल (हिम सहित) बरसता है। नदियाँ भूमिगत जल तथा हिमनद से प्रारम्भ होती हैं या उनके जल से पूर्ति करती हैं। नदियों के लिए जल की विशाल मात्रा तथा प्रवाह के लिए ढाल आवश्यक है। अधिकांश नदियाँ किसी ऊँचे स्थल से निकलती हैं तथा ढाल की ओर जाती हैं। जल की मात्रा, रास्ते का ढाल तथा मार्ग के चट्टान पर नदियों का मार्ग निर्भर करता है। जो नदियाँ साल भर बहती हैं उन्हें स्थायी कहते हैं तथा वर्षाकाल में बहने वाली नदियों को आंतरायिक कहते हैं। प्रायः नदियाँ समुद्र में गिरती है परन्तु कुछ झीलों तथा दलदलों में भी गिरती हैं।

सरिता रूप—जो नदियाँ ढाल के अनुसार बहती हैं उसे अनुवर्ती कहा जाता है। गंगा, ताप्ती, सिन्धु अनुवर्ती हैं। प्रधान नदी में सहायक के रूप में मिलने वाली नदियों को उत्तरवर्ती कहा जाता है। कोशी, गंडक, सोन आदि नदियाँ उत्तरवर्ती हैं। ये सभी गंगा में मिल जाती हैं। उत्तरवर्ती नदियों की घाटियों में विकसित होने वाली नदियों को प्रत्यनुवर्ती कहा जाता है। पर्वत मालाओं के उत्थान के समय से ही विद्यमान सरिता को पूर्ववर्ती कहा जाता है। हिमालय के आर-पार बहती हुई गंगा, सिन्धु सतलज, ब्रह्मपुत्र आदि पूर्ववर्ती नदियाँ हैं। उपरिशायी चट्टानों में घाटी बनाकर जो सरिता बहती है उसे अध्यारोपित नदी कहा जाता है।

सरिता पद्धति—उद्भव से लेकर अवसान तक प्रधान नदी में कई सहायक नदियाँ मिलती हैं तथा ये नदियाँ छोटी-छोटी शाखाओं के रूप में रचना विन्यास का निर्माण करती हैं। ऐसे विन्यासों में प्रमुख द्रुमाकृतिक कोणीय, अपसृत तथा संसृत विन्यास प्रमुख हैं।

सरिता कार्य—नदियाँ अपरदन, विस्थापन तथा अवसादन का कार्य करती हैं। संक्षारण, द्रवपेरित अपरदन बलकृत अपरदन एवं सन्निघर्षण विधियाँ अपरदान में सहायक होती हैं। नदी का जल प्रवाह सीधा न होकर संक्षुब्ध होता है अतः बोझ के कारण पदार्थ जल्दी बैठते नहीं परन्तु आगे बढ़ते जाते हैं। तीव्र धारा में विस्थापन तीव्र तथा कम में कम होता है। कुछ बड़े शैलखण्ड जो तैर नहीं सकते लुढ़कते चलते हैं। नदी जल में कैलशियम, मैग्नीशियम के कार्बोनेट, सल्फेट सथा अन्य अनेक पदार्थ घुले रहते हैं जो घुली अवस्था में ही प्रवाहित होते हैं। इन अवसादों का अवसादन नदी अपनी पूर्ण अवस्था में करती है। ऐसा अनुमान है कि गगा, ब्रह्मपुत्र कोशी नदी प्रतिदिन क्रमश: 9,60,000 टन, 10,00000 टन तथा 10,00000 टन अवसाद लाती हैं।

नदी अपहरण—अपरदन कार्य में रत नदियों में प्राय: छोटी नदियों का अपहरण बड़ी नदियों द्वारा हो जाता है। जिस नदी का अपहरण होता है उसे अपहृत तथा मोड़ को अपहरण मोड़ एवं नदी अपहरण से बने शुष्क स्थान को वाताकाश कहा जाता है। नदी अपहरण का उदाहरण सरस्वती नदी है। गंगा यमुना के संगम में सरस्वती नदी विलीन हो गयी। दूसरा विशिष्ट उदाहरण तिब्बत की साँपो नदी का ब्रह्मपुत्र नदी द्वारा अपहरण है।

सरिता का क्रमिक विकास——नदी का ढाल समुद्र की ओर होता है। समुद्रत्व के नीचे नदी का अपरदन कार्य नहीं हो सकता। अत: धरातल के नीचे समुद्र तल का काल्पनिक विस्तार अपरदन का चरम स्तर कहा जाता है। उद्गम से लेकर समुद्र में गिरने तक की

अवस्था में सरिता का क्रमिक विकास होता है। जैसे-जैसे नदी आगे बढ़ती जाती है नदी के शक्ति में कमी आती है। एक अवस्था में अपरदन तथा अवसादन में साम्य स्थापित हो जाता है। इस स्थिति को नदी का क्रमण कहते हैं तथा इस स्थिति को प्राप्त नदी को क्रमित नदी कहते हैं।

विसर्पण—मैदान में पहुँचने पर नदी का वेग कम हो जाता है। थोड़ा भी बाधा मिलने पर नदी मुड़ जाती है और इस प्रकार घुमावदार मार्ग बनता है। घुमावदार वक्रों की कड़ी को विसर्पण कहा जाता है। अधिक वक्रता आने पर नदी पुन: एक स्थान पर आती है और पुराने वक्र को नदी छोड़ देती है। परित्यक्त वक्र झील का रूप धारण करता है इसे झाड़न झील कहा जाता है।

घाटी एवं खड्ड—गहरी, संकीर्ण तथा तीव्र ढाल वाली घाटियों को तंग घाटी कहा जाता है। तंग घाटियों की गहराई चौड़ाई से कई गुना अधिक होती है। अत्यधिक गहरा होने पर इन्हें खड्ड कहा जाता है। ये घाटियाँ तथा खड्ड सरिता द्वारा तीव्र कटाव, कठोर शिला, उदग्र भ्रंश या प्रपातों के कारण बनती है। निम्न तालिका में संसार के प्रमुख खड्ड दिये गये हैं।

तालिका—1

नाम	स्थान	नदी	गहराई मीटर
अरिजोना	अरिजोना सं० रा० अ	कोलोएडो	18 5
जियोन	ऊटा सं० रा० अ०	वजिन	457-1200
रायल गार्ज	कैनियन सिटी सं० रा० अ०	अर्कन्यास	350
येलोस्टोन	येलोस्टोन नेशनल पार्क सं० रा० अ०	येलोस्टोन	300
किंग्स	सिएरा नेवादा	किंग्स	2070
सतलज	शिपकी तथा राक्षस ताल भारत	सतलज	900

भारत में ऐसे खड्ड कंचन चंघा, (3900 मीटर) तथा बन्दरपूँछ (6216 मीटर) श्रीकान्त स्थानों में पाया जाता है। ऐसे अनेक छोटे तथा बड़े घाटी तथा खड्ड भागीरथी, यमुना, कोशी, काली, गंडक, ब्रह्मपुत्र, सतलज, नर्वदा तथा सोन नदियों के मार्ग में पाये जाते हैं।

नदी वेदिका—नदी घाटी के पार्श्वों में चौरस मंच सोपान की तरह व्यवस्थित पाये जाते हैं। इन्हें नदी वेदिका कहा जाता है।

बाढ़ मैदान—नदी घाटी का जो भाग बाढ़ के समय जलमग्न हो जाता है उसे बाढ़ मैदान कहा जाता है। बाढ़ के समय दोनों तरफ नदी अपना बोझ डालती है जिससे विशाल क्षेत्र में समतल भूमि बन जाता है इसे प्राय: समभूमि कहा जाता है।

डेल्टा—समुद्र के मुहाने पर जहाँ ज्वार कम होता है वहाँ नदी का अधिक बोझ अवसादित होता है। इनका आकार प्राय: ग्रीक अक्षर डेल्टा ($\triangle$) की भाँति होता है इसी से इस रचना को डेल्टा कहा जाता है।

भारत में गंगा ब्रह्मपुत्र का डेल्टा 125000 वर्ग कि० मी० क्षेत्रफल में पाया जाता है। सिन्धु नदी का डेल्टा 7680 व कि० मी० क्षेत्रफल में पाया जाता है। कावेरी नदी का डेल्टा उर्वरता के कारण दक्षिण भारत का उद्यान कहा जाता है।

पुनर्युवन—नदी क्रम के सामान्य विकास के किसी चरण में विघ्न उपस्थित होने पर विकास अवरुद्ध हो जाता है। रुका हुआ विकास पुन: बढ़ने पर नदी पुनर्युवनित कही जाती है। पुनर्युवन क्रिया भू-उत्थान, निकास का नीचे फँसना या समुद्र तल के पतन के कारण होता है।

जलप्रपात—किसी तीक्ष्ण ढाल पर सरिता के प्रवाह को उच्छलिक कहा जाता है परन्तु जब ढाल तीव्र हो तथा जल सीधे नीचे वेग से गिरता हो तो जलप्रपात कहा जाता है। प्रपात कभी-कभी सोपान की तरह पाये जाते हैं इसे क्रमिक-प्रपात कहा जाता है। जब जल की अत्यधिक विशाल मात्रा प्रपात में गिरती हो तो उसे महाजल प्रपात कहा जाता है। प्रपात के निर्माण के अनेक कारण हैं। प्राय: क्षेतिज तथा कठोर चट्टानों से,

कोमल तथा कठोर चट्टानों से, संवटन, संधियों तथा भ्रंश आदि कारणों से प्रपात का निर्माण होता है।

भारत के प्रमुख जलप्रपात

नाम	स्थिति	नदी	ऊँचाई मीटर
जोग	पं० घाट मैसूर	सारस्वती	255
येला	महाबलेश्वर	,,	180
विहार	म० प्र०	टोंस	111
टुण्डू	राँची विहार	स्वर्ण रेखा	96
शिवसमुद्रम्	मद्रास	कावेरी	90
गोकाक	बेल्गाँव	गोकाक	54
धुँआधार	भेड़ाघाट म० प्र०	नर्मदा	9

भारत की प्रमुख नदियाँ

नदी	उद्गम	निकाश	लम्बाई कि० मी०	सहायक नदी
गंगा	गंगोत्री	बंगाल की खाड़ी	—	भागीरथी, अलकनंदा, पिडार, यमुना, काली, कर्नाली, गोमती, गोगरा, रामगंगा, गंडक, कोशी, सोन, दामोदर
यमुना	यमुनोत्री	गंगा नदी (प्रयाग)	1376	तोंस, गिरि, आसन, चंबल, किंध बेतवा, केन
कोशी	गोसाई थान	गंगा (मनिहारी)	—	अरुण, सनकोशी, तैमूरकोशी
ब्रह्मपुत्र	कैलाश पर्वत	पद्मा नदी प० बंगाल	2880	अमोचू, रायदक संकोश, मनास, भरेली, सुवर्णश्री, दिवंग, लोहित, लिस्ता

सिन्धु	कैलाश पर्वत	अरब सागर	—	जोस्कर, द्रास, शियोक शिगार, गिलगिट, काबुल, हाड़, सोंग्रा, झेलम, चेनाव, रावी, व्यास, सतलज
सतलज	कैलाश पर्वत	सिन्धु नदी	1440	समीर्ती
दामोदर	टोरी (पलामू)	हुगली पं० बंगाल	592	गुहड़ी, बोकारो, कोनार जमुनिया, बराकर
गोदावरी	नासिक	बंगाल की खाड़ी	1440	पूर्णा, मनेर, प्रणहिता इन्द्रावती, ताल सवरी
कृष्णा	महाबलेश्वर	,,	1280	कोचना, घाटप्रभा, मालप्रभा, भीमा, तुंगभद्रा
कावेरी	कुर्ग	,,	760	भवानी, नोइल अमरावती
महानदी	सिहावा	,,	880	शिवनाथ
ताप्ती	सतपुड़ा	कच्छ की खाड़ी	696	पूर्णा
नर्मदा	अमर कंटक	,,	1100	—
सोन	,,	गंगा नदी (मनेर, पटना)	776	महानदी, बनास, गोपत, रिहन्द, कुन्हार
चंबल	मऊ	यमुना नदी (इटावा)	960	—

यकृत-शोथ के विरुद्ध अभियान

संकलित

सन् 1973 में अमेरिकी वैज्ञानिकों ने चिकित्सा-अनुसन्धान के क्षेत्र में जो महत्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कीं, उनमें यकृत-शोथ अर्थात् जिगर के सूजन रोग पर नियन्त्रण की दिशा में हुई प्रगति विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस अनुसन्धान के परिणामों से ऐसे संकेत प्राप्त हुए हैं कि अब वह समय दूर नहीं, जब यकृत-शोथ—पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करने के प्रभावकारी उपाय ढूँढ़ लिये जायेंगे।

यदि यकृत-शोथ के विरुद्ध इस प्रकार के सुरक्षात्मक उपाय विकसित हो गये, तो वे विश्व स्वास्थ्य को बढ़ावा देने में एक प्रमुख योगदान और चिकित्सा-अनुसन्धान के इतिहास में एक महान् सफलता सिद्ध होंगे।

इन दोनों प्रकार के यकृत-विकारों के कारण प्रतिवर्ष विश्व में हजारों लोग मृत्यु के ग्रास बन जाते हैं और अगणित लोग कई-कई महीनों तक अपने सामान्य क्रियाकलाप चलाने में असमर्थ हो जाते हैं।

अमेरिका में एलर्जी और छूत के रोगों सम्बन्धी राष्ट्रीय संस्थान में, जो अमेरिका के नेशनल इंस्टिट्यूट्स आव् हेल्थ का एक अंग है, अनुसन्धानकर्ताओं ने विगत नवम्बर मास में घोषणा की कि उन्होंने एक ऐसे विषाणु की पहचान कर ली है और उसका छायाचित्र भी खींचा है, जो छुतहे यकृत-शोथ को, जिसे प्राय: 'हेपटाइटिस-ए' कहते हैं, जन्म देता है।

यह रोग प्राय: पीने के पानी या समुद्री खाद्य-पदार्थों के गन्दा या विषाक्त हो जाने के कारण फैलता है। यह छूत का रोग है और रोगी के निकट सम्पर्क में आने पर भी उत्पन्न हो जाता है। इसमें जिगर में सूजन और जलन उत्पन्न हो जाती है। इसे उत्पन्न करने वाला विषाणु अंतड़ियों में प्रविष्ट हो जाता है और शरीर से बाहर निकल कर गन्दे पानी में मिल कर नदी-नालों और समुद्र में पहुँच जाता है। इस विषाणु का आकार गोल होता है जिसका व्यास एक सेण्टीमीटर के 25 लाखवें अंश के बराबर होता है। वैज्ञानिकों ने इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों के शरीर से निकली गन्दगी से निकाल कर इस विषाणु की पहचान कर ली है।

यकृत-शोथ की दूसरी किस्म सीरम या 'हेपटाइटिस-बी' कहलाती है। यह रोग रुग्ण व्यक्तियों के रक्त को दूसरों के शरीर में प्रविष्ट करने या चिकित्सा में प्रयुक्त औजारों की गन्दगी से उत्पन्न होता है। यह रोग उतना सामान्य नहीं जितना छूत का यकृत-शोथ होता है, किन्तु यह अधिक घातक होता है।

सीरम यकृत-शोथ के विषाणु को रुग्ण व्यक्तियों के रक्त से पृथक करने का श्रेय कैलिफोर्निया के स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय और मोलेक्यूलर एनाटमी प्रोग्राम लैबोरेटरी के अनुसन्धानकर्ताओं की एक टोली को है। मोलेक्यूलर लैबोरेटरी का संचालन अमेरिकी अणुशक्ति आयोग और राकविल (मैरिलैण्ड) स्थिति राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान द्वारा संयुक्त रूप में होता है।

रोग फैलाने वाले तत्व की खोज होने का एक तात्कालिक लाभ यह है कि सीरम यकृत-शोथ के लक्षणों का पता लगाने के लिए अब शरीर में संचारित किये जाने वाले रक्त का विश्लेषण किया जा सकता है। इसी प्रकार, जिस खाद्य-पदार्थ और पानी में छूत के यकृत-शोथ के विषाणु होने का सन्देह होगा, उसका विश्लेषण किया जा सकेगा।

विषाणु की सही पहचान हो जाने से एक लाभ यह हुआ है कि अब हम इस रोग से बचाव के लिए टीकों की खोज को जा सकती है। यदि इस तरह के

टीकों की खोज हो सकी तो इस रोग को समूल नष्ट कर देना सम्भव हो जायेगा। किन्तु, इसमें अभी कई वर्ष लगने की सम्भावना है।

यदि 1973 की खोजों के फलस्वरूप इस तरह के टीके तैयार करने में सफलता मिल गयी, तो यकृत-शोथ भी उन्हीं रोगों की कोटि मे आ जायेगा, जिनसे लोगों को रोग-निरुद्ध करना सम्भव हो गया है।

रोग-निरुद्धता सम्बन्धी अनुसन्धान

मानव-स्वास्थ्य से सम्बन्धित 1973 में किये जाने वाले अनुसन्धानों में 'रोग-निरुद्धता' से सम्बन्धित अनुसन्धान भी शामिल हैं। इस विषय से सम्बन्धित वैज्ञानिकों के प्रयास दो परस्पर विरोधी दिशाओं के परिचायक हैं। कुछ वैज्ञानिक शरीर की रोग-निरोध क्षमता को बढ़ाने की दिशा में अग्रसर हैं, जबकि अन्य वैज्ञानिक रोग-निरुद्धता को कम करने के लिए प्रयत्नरत हैं।

रोग-निरुद्ध क्षमता को कमजोर करने के पक्षपोषी-वैज्ञानिक अंग-प्रत्यारोपण के समर्थक हैं। परन्तु, इस प्रणाली की सबसे बड़ी कमी यह है कि शरीर नये अंग को अस्वीकार कर देता है और इस प्रकार प्रत्यारोपित अंग निष्क्रिय हो जाता है। यद्यपि अब शल्यक्रिया की विधियाँ इतनी अधिक विकसित हो गयी हैं कि रोगी-अंग के स्थान पर प्रत्यारोपित अंग के अग्राह्य होने की सम्भावनाएँ कम हो चली हैं।

प्रत्यारोपित अंग को सक्रिय बनाने के लिए रोग-निरोध क्षमता को कम करने का एक दुष्परिणाम यह भी है कि शरीर की रोगाक्रमण सहने की क्षमता घट जाने के कारण अकस्मात मृत्यु की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं।

न्यूयार्क के स्लोन-केटरिंग इन्स्टट्यूशन के, एक 35 वर्षीय चिकित्सक, डॉ० विलियम टी० समरलिन ने, गत मार्च में इस समस्या के एक सम्भावित हल का प्रदर्शन किया था। उन्होंने दिखाया कि शरीर से अलग किये गये त्वचा के एक अंश को कुछ दिनों तक प्रयोगशाला में एक रसायन में रखे जाने के उपरान्त उसे किसी अन्य शरीर में प्रत्यारोपित करने पर, उसके अग्राह्य होने की सम्भावना नहीं रहती।

उन्होंने अपने अनुसन्धान के एक प्रदर्शन में, एक सफेद चूहे की त्वचा को उक्त प्रकार से संशोधित कर काले चूहे की त्वचा के स्थान पर प्रत्यारोपित किया। उन्होंने इसी प्रकार को रसायन-शोधित त्वचा के सफल परीक्षण मानव त्वचा पर भी किये हैं। आजकल, वह इस विधि द्वारा शरीर के अन्य अंगों के प्रत्यारोपण सम्बन्धी परीक्षण जानवरों पर कर रहे हैं।

रोग-निरुद्धता को शक्तिवान बनाने के पक्षपोषी वैज्ञानिकों को आशा है कि वे इस प्रकार कैंसर रोग की चिकित्सा का उपाय ढूँढ़ने में सफल हो जायेंगे।

कुछ वैज्ञानिक रोग-निरोध क्षमता में वृद्धि करने के उपायों की खोज में सन् 1972 से संलग्न हैं, जिससे कैंसर आदि दुरूह रोगों पर नियन्त्रण पाया जा सके।

परन्तु, वह अभी तक अपने प्रयासों में सफल नहीं हुए हैं और यद्यपि निकट भविष्य में ऐसी आशा भी नहीं है, फिर भी इन प्रयासों द्वारा चिकित्सा-जगत में अवश्य ही आशा की एक ज्योति प्रज्वलित हुई है।

वाईरस और कैन्सर

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा

वाईरस रोगों का इतिहास तो वैसे बहुत पुराना है, परन्तु पिछले 20-25 वर्षों से इसमें जो परिवर्तन हुए वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। कुछ लोगों ने इसके साथ कैन्सर का नाम भी जोड़ कर इनकी प्रसिद्धि को और बढ़ा-चढ़ा दिया है। वैसे वास्तव में कैन्सर जैसे रोग के साथ इसका संबंध है या नहीं यह सिद्ध हो जाना अपने आप में एक बड़ी बात ही मानी जायेगी।

अत्यधिक खोजों के बाद भी अभी तक कैन्सर के सही कारण का निदान नहीं हो पाया है। कुछ लोगों की राय में इसका कारण कुछ है और तो दूसरों की राय में इसका कारण कुछ और आधुनिक विद्वानों के मतानुसार इसका कारण वाईरस सिद्ध किया जाने लगा है, परन्तु मनुष्य में इसकी पुष्टि अभी बाकी है। फिर भी अभी तक ज्ञात कैन्सर के कारणों में वाईरस एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कुछ वैज्ञानिकों ने कैन्सर कोशा का जीवाणु रहित निष्कर्ष (सार) को विभिन्न जन्तुओं में अंतक्षिप्त कर उनमें कैन्सर उत्पन्न होने की संभावना को, प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाया है। ऐसे वाईरस जो कैन्सर पैदा करने की क्षमता रखते हैं, ओंकाजेनिक वाईरस कहलाते हैं। इस प्रकार के प्रयासों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं—

(i) सर्वप्रथम पायटन राऊस (1911) ने मुर्गे के सारकोमा (कैन्सर) का कोशा रहित निष्कर्ष (सार) दूसरे मुर्गे में अंतक्षिप्त करके उसमें उसी प्रकार के कैन्सर पैदा करने की सफलता प्राप्त की। साँप नामक वैज्ञानिक ने इसी प्रकार के प्रयोग को सन् 1932 में दोहराया।

(ii) बिटनर नामक वैज्ञानिक ने बताया कि यदि अधिक कैन्सर की संभावना वाली जाति की मादा, यदि कम कैन्सर की संभावना वाली जाति (एक ही जानवर के) बच्चों को दूध पिलाती है, तो उन बच्चों में कैन्सर होने की संभावना भी बढ़ जाती है।

(iii) स्टीवार्ट इडी ने ल्यूकीमीया (रक्त कैन्सर) की कोशा रहित निष्कर्ष को लगभग 10-20 कैन्सरों का कारण बताया। इसे उसने पीलोंया का नाम दिया।

(iv) वांग्ट और डलबैको ने कैन्सर कोशाओं को प्रयोगशाला में बड़ा (प्रजनन) करने और उनकी बढ़ोतरी पर विभिन्न चीजों का प्रभाव देखने की विधि खोज निकाली।

(v) इसके साथ ही बिटनर ने अधिक कैन्सर संभावना वाली जाति की माताओं (MICE) के दूध (कोशा रहित निष्कर्ष) का इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन किया और पाया कि इस प्रकार की मादाओं के दूध में गोलाकार, गहरे रंग के लगभग 100 mμ आकार वाले जीव पाये गये (ये जीव साधारण, अथवा कम कैन्सर की संभावना वाली माताओं के दूध में भी उपस्थित होते हैं)। इनकी उपस्थिति संख्या कैन्सर की संभावनाओं के साथ सीधा संबंध रखती है।

बिटनर द्वारा किये गये प्रयोगों द्वारा कैन्सर का का कारण जान लेने के कई रास्ते साफ हो गये हैं। इन प्रयोगों से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया है कि कैन्सर और वाईरस में कोई गहरा संबंध जरूर है।

कैन्सर होने की संभावना केवल वाईरस पर निर्भर करती है, यह मान लेना भी थोड़ी भूल ही होगी। वाईरस के अलावा भी कुछ दूसरे कारक कैन्सर की शुरुआत में मदद करते हैं। अत: यदि वाईरस कैन्सर रूपी पेड़ की जड़ है तो दूसरे कारक डालियाँ और पत्ते

[शेष पृष्ठ 15 पर

मक्का के खरपतवार नष्ट करें

भोपाल सिंह

मक्का खरीफ की प्रमुख फसल है। भारत में इसकी खेती लगभग 43.5 लाख हेक्टेयर भूमि में की जा रही है। इसकी पैदावार केवल 9.07 क्विन्टल प्रति हेक्टेयर है। यह उपज बहुत कम है। अच्छे किस्म के बीज, ठीक गहराई तथा दूरी पर बुआई, उपयुक्त मात्रा में खाद, उर्वरक तथा सिंचाई के समुचित प्रबंधों के होने के साथ खरपतवारों का नष्ट किया जाना भी बहुत आवश्यक है।

खरपतवार नष्ट करने का कार्य भी कष्ट साध्य और खर्चीला है। इस कारण बहुत से किसान खरपतवारों के कारण मक्का की बुआई न करके अन्य फसलें उगाते हैं जबकि वे उन फसलों से किसान को इतना आर्थिक लाभ नहीं हो पाता जितना कि मक्का से हो सकता है। जो किसान बुआई करते भी हैं समय पर निकाई के लिये पर्याप्त कर्मचारी न मिल पाने के कारण खेत के खरपतवार नष्ट नहीं हो पाते फलस्वरूप उपज पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः इस हानि से बचने के लिये हमें रासयनिक पदार्थों का प्रयोग करना पड़ेगा। आर्थिक दृष्टि से देखा जाय तो रासायनिक पदार्थों द्वारा खरपतवार नष्ट करना अपेक्षाकृत अधिक सस्ता भी बैठता है।

मक्का की फसल में हानि पहुँचाने वाले खरपतवारों में पथरचटा, हजारदाना, मोथा तथा साई घास प्रमुख है। इनमें से प्रत्येक को कर्षण क्रियाओं द्वारा नष्ट करना उतना सरल नहीं है। आमतौर पर देखा गया है कि निकाई का कार्य पूरा होता नहीं है तथा खेत में पुनः वही खरपतवार दिखाई देने लगती हैं तथा मक्का की फसल के प्रारम्भिक काल में खरपतवारों द्वारा हुई हानि की पूर्ति बाद में किया जाना असम्भव है।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि बुआई के पहले से ही खरपतवारों को नष्ट करने के प्रयास करना चाहिये। सबसे अच्छी विधि यह रहती है कि ग्रीष्म ऋतु में खेत की जुताई की जाय जिससे कि वर्षा ऋतु में उगने वाले खरपतवारों के बीज तेज धूप से नष्ट हो जायँ तथा खेत का पलेवा एक के स्थान पर दो बार किया जाय ऐसा करने पर प्रायः सभी खरपतवारों के बीज अंकुरित हो जाते हैं तथा बुआई के लिये खेत की तैयारी करते समय नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार एक अतिरिक्त किंतु सिंचाई से अधिकांश खरपतवार नष्ट किये जा सकते हैं।

रासायनिक नियंत्रण

बीज की बुआई के बाद और अंकुरण से पहले हल्की मिट्टियों में 1·5 से दो किलो तथा भारी मिट्टी में 2-3 कि· सिमजिन (टेफाजिन 50%) का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर मिट्टी की सतह पर समान रूप से छिड़क देना चाहिए। इस छिड़काव के बाद निकाई गुड़ाई आदि नहीं करनी चाहिये। इसके तीन या चार सप्ताह बाद। किलो 2, 4-1 सोडियम साल्ट 15 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से 500 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। छिड़काव के एक दो दिन बाद वर्षा होने की सम्भावना नहीं होनी चाहिये। वर्षा होने पर रसायन का पूरा प्रभाव खरपतवारों पर नहीं हो पाता।

इस छिड़काव के तीन दिन बाद पौधों पर मिट्टी चढ़ा देना चाहिये। मिट्टी चढ़ाते समय इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि जड़ें न कटने पायें अन्यथा उत्पादन कम हो जायेगा। मिट्टी चढ़ाने से

खेत में नाइट्रोजन वाले उर्वरकों को दूसरी खेप भी डाल देनी चाहिये।

सावधानियाँ

रसायनों द्वारा खरपतवारों की रोकथाम करते समय निम्नलिखित बातों को विशेष ध्यान में रखना चाहिये ऐसा न करने पर लाभ के स्थान पर फसल को हानि होने की सम्भावना रहती है।

(1) रसायनों का छिड़काव निर्धारित मात्रा और ठीक समय पर करना चाहिये।

(2) छिड़काव एक साथ तथा ऐसे समय पर करना चाहिये जबकि तेज हवा न चल रही हो। इसके लिए सामान्यतया प्रातःकाल या संध्या का समय अच्छा रहता है।

भोपाल सिंह
फार्म अधीक्षक
सरदार शहर (राज०)

[13 का शेषांश]

हैं। जिनके बिना पेड़ कभी पूरा नहीं हो सकता। इस विचारधारणाओं को ध्यान में रख कर किसी भी कैन्सर के जन्म के लिए मोटे तौर पर तीन चीजों का होना अत्यावश्यक है :

(क) पैतृक सम्भावना

(ब) हार्मोन्स

(स) वाईरस

यदि ये कारक तीनों इकट्ठे मिल कर काम करें तो उस जीव में कैन्सर उत्पन्न होने की संभावना बहुत कुछ बढ़ जाती है।

उपरोक्त दी गई मान्यताएँ और प्रयोग अभी तक प्रयोगशालाओं तक ही सीमित हैं और मनुष्य पर इनका प्रयोग अभी बाकी है। परन्तु वाईरस के बढ़ते हुए प्रभाव और क्षेत्र को देख कर यह संभव जान पड़ने लगा है कि आज नहीं तो कल मानव इस सत्य को अवश्य स्वीकार कर लेगा कि कैन्सर का जनक वाईरस ही है और तब मानव जाति को इस दुर्जेय रोग से छुड़ा लाना बहुत कुछ आसान हो जावेगा।

मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान द्वारा कुछ नई जानकारी

संकलित

मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान द्वारा पृथ्वी को जो आँकड़े भेजे गये हैं उनसे वैज्ञानिकों के समक्ष शुक्रग्रह का एक नया रूप उभर रहा है।

आंकड़ों के प्रारम्भिक अध्ययन से पता चला है कि शुक्रग्रह के वातावरण में विद्यमान मेघपुंज का स्वरूप पृथ्वी तथा मंगल ग्रहों के वातावरण में विद्यमान बादलों के स्वरूप से न मिलकर बृहस्पति ग्रह के वातावरण में विद्यमान बादलों के स्वरूप से मिलता-जुलता है।

मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान 5 फरवरी को शुक्रग्रह से 5,760 किलोमीटर (2,600 मील) की दूरी से गुजरा। पिछले मैरिनर यान की तुलना में मैरिनर-.0 अन्तरिक्षयान ने त्रुटरहित ढंग से अपना कार्य किया तथा शुक्रग्रह के अत्यन्त श्रेष्ठ चित्र पृथ्वी को प्रेषित किये। मैरिनर-10 में स्थित टेलीविजन कैमरों तथा अन्य वैज्ञानिक यन्त्रों ने भी आशा के अनुसार बिल्कुल ठीक ढंग पर कार्य किया।

मैरिनर-10 ने सामान्य प्रकाश में शुक्रग्रह के जो चित्र उतारे हैं, वे बहुत अधिक स्पष्ट प्रतीत नहीं होते। लेकिन, अतिकाशिनी (अल्ट्रावयलेट) कैमरों का प्रयोग करते ही शुक्रग्रह का एक विलक्षण दृश्य उभरने लगा। ग्रह की विषुवत रेखा के लगभग समानान्तर बादलों के उसी प्रकार के पुंज दृष्टिगोचर होने लगे जैसे बृहस्पति ग्रह पर दृष्टिगोचर हुए थे।

शुक्रग्रह के अतिकाशनी चित्रों में कुछ श्वेत और काले रंग के निशान भी स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। ये वे रहस्यपूर्ण निशान हैं जो शुक्रग्रह के वातावरण में वैज्ञानिकों को दृष्टिगोचर होते हैं। ये निशान बहुत तेजी से घूमते हैं और लगभग चार दिन में शुक्रग्रह की एक परिक्रमा पूरी कर लेते हैं, जबकि शुक्रग्रह को अपनी धुरी पर एक परिक्रमा पूरी करने में 243 दिन लगते हैं।

अनेक मौसम-विशेषज्ञों का यह अनुमान है कि शुक्रग्रह के वातावरण में दृष्टिगोचर वृत्ताकार निशान वहां के वातावरण में विद्यमान बादलों की चोटियों के तापमान को (धरातल से 60 किलोमीटर की ऊँचाई पर अपेक्षाकृत समान बनाये रखते हैं। इसके विपरीत पृथ्वी और मंगल ग्रहों पर ध्रुवीय क्षेत्र विषुवत क्षेत्रों की तुलना में अधिक ठण्डे होते हैं। दिन में शुक्रग्रह के वातावरण में विद्यमान बादलों की चोटियों के तापमान में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता।

विस्कौसिन विश्वविद्यालय के डा० वर्न सोनी ने पैसाडीना स्थित जेट प्राप्लशन लेवोरेटरी में सम्वाददाताओं को बताया कि विषुवत क्षेत्र से ध्रुवीय क्षेत्रों की ओर ताप प्रवाहित होता रहता है तथा अतिकाशनी संकेतों से ताप के उक्त प्रवाह का स्पष्ट पता चलता है।

यह नहीं कहा जा सकता कि यह ताप प्रवाह किस प्रकार नियन्त्रित होता है, लेकिन वैज्ञानिकों को यह विश्वास है कि नयी खोजों से शुक्रग्रह के वातावरण से सम्बन्धित रहस्यों का उद्घाटन करने में मदद मिलेगी।

मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान में फिट टेलीविजन कैमरे शुक्रग्रह के वायु मण्डल के चित्र उतार रहे हैं तथा अन्य वैज्ञानिक उपकरण यह मालूम करने की कोशिश कर रहे हैं कि शुक्रग्रह के वायुमण्डल का निर्माण किन-किन तत्वों से हुआ है तथा उसका तापमान क्या है?

अन्तरिक्षयान में मौजूद अल्ट्रा वायोलैट स्पेक्ट्रोमीटर ने पहली बार शुक्रग्रह में हिलियम गैस की विद्यमानता का पता लगाया है। हिलियम के अलावा वहाँ हाइड्रोजन आक्सीजन और कारवन गैसों के विद्यमान होने की सूचना मिली है। यह भी सम्भव है कि वहाँ अरेगोन और नियोन गैसें भी विद्यमान हों।

यद्यपि कार्बन डाइग्राक्साइड की तुलना में (शुक्रग्रह के वायुमण्डल में कार्बन डाइग्राक्साइड की मात्रा लगभग 90 प्रतिशत है) उद्जन और हिलियम की मात्रा बहुत कम होगी लेकिन हाइड्रोजन की विद्यमानता से शुक्रग्रह की उत्पत्ति और विकास की जानकारी प्राप्त करने में बहुत मदद मिलेगी।

किट पीक नेशनल वेधशाला के डा० ए० लिली ब्राडफुट तथा मिचैल वेल्टन एवं हारवर्ड विश्वविद्यालय के डा० माइकेल बी० मेकलौरी को यह आशा है कि यह मालूम किया जा सकेगा कि उक्त दोनों गैसें कितने परिमाण में विद्यमान हैं तथा किस गति से वह शुक्र के वायुमण्डल से बाहर निकल रही हैं। इससे यह मालूम किया जा सकेगा कि इन गैसों का मूल स्रोत तथा वर्तमान स्रोत कहाँ है।

डा० मैकलौरी ने कहा है कि शुक्रग्रह के ऊपरी वायुमण्डल में विद्यमान हिलियम से हम यह मालूम करने में समर्थ हो सकेंगे कि शुक्रग्रह के धरातल पर हिलियम का निर्माण किस गति से हो रहा है। पृथ्वी पर हिलियम एक उपोत्पाद है जिसका सृजन पृथ्वी की पपड़ी में निहित रेडियो सक्रिय पदार्थों के क्षय की प्रक्रिया के दौरान होता है।

शुक्रग्रह के वायुमण्डल में हाइड्रोजन की भाप से और भी अधिक महत्वपूर्ण संकेत प्राप्त होंगे। शुक्रग्रह में हाइड्रोजन मुख्यत: वायुमण्डल में अधिकतर जल वाष्प के रूप में पाया जाता है। लेकिन, प्रश्न उठता है कि मूल हाइड्रोजन कहाँ से आया? इसके सम्बन्ध में तीन सम्भावनाएँ हो सकती हैं। एक सम्भावना यह है कि शुक्रग्रह के उद्भव की प्रक्रिया के दौरान ही वायुमण्डल में उद्जन का अस्तित्व बना रहा यद्यपि नवजात सौर-मण्डल की परिस्थितियों सम्बन्धी मान्यताओं के आधार शुक्रग्रह का निर्माण हाइड्रोजन के बिना ही होना चाहिए। शुक्रग्रह की कक्षा का तापमान उस समय इतना अधिक था कि वायुमण्डल में जल का अस्तित्व किसी प्रकार सम्भव नहीं था।

शुक्रग्रह पर हाइड्रोजन की विद्यमानता का दूसरा कारण सौर-आँधियाँ, उल्का-पिण्ड और पुच्छल तारे भी हो सकते हैं। मैरिनर-10 द्वारा भेजे गये नये चित्रों से वैज्ञानिक यह पता लगा सकेंगे कि शुक्रग्रह पर उद्जन की विद्यमानता के लिए उक्त स्रोत कहाँ तक जिम्मेदार है।

मैरिनर-10 द्वारा प्रेषित अन्य आंकड़ों से पता चलता है कि शुक्रग्रह के वायुमण्डल में विद्यमान घने बादलों के ऊपर एक प्रकार का हल्का धुंध है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि शुक्रग्रह के वायुमण्डल में बादलों की तीन प्रकार की परतें हैं। बादलों की सबसे ऊपरी परत धरातल से लगभग 60 किलोमीटर की ऊँचाई पर है। जिस समय मैरिनर-10 शुक्रग्रह के निकट से गुजर रहा था, अन्तरिक्षयान द्वारा प्रेषित रेडियो संकेत इन बादलों को भेद कर धरातल से 45 किलोमीटर की ऊँचाई तक पहुँचे। इस बात का अध्ययन कर कि रेडियो तरंगों ने बादलों की परत को किस प्रकार भेदा, वैज्ञानिक सम्भवतः यह मालूम कर सकेंगे कि ऊपरी परत या परतों का स्वरूप कैसा है?

मौसम वैज्ञानिकों और वायुमण्डल विशेषज्ञों को शुक्रग्रह के चित्रों का विस्तृत और सूक्ष्म विश्लेषण करने में अभी कई माह लग जायेंगे।

मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान में विद्यमान यन्त्रों ने बुध ग्रह के निकट विचित्र वस्तु के विद्यमान होने की सूचना दी थी। प्राप्त आंकड़ों और सूचना के आधार पर वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया था कि यह वस्तु सम्भवतः बुधग्रह की परिक्रमा करने वाला 'चन्द्रमा' है। यद्यपि अभी तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि बुधग्रह के निकट दृष्टिगोचर 'अल्ट्रावायोलेट प्रकाश निःसृत करने वाली यह रहस्यमय वस्तु क्या है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह चन्द्रमा नहीं बल्कि एक नक्षत्र है।

वैज्ञानिकों ने इस नक्षत्र का नाम '31-क्रेटर' रखा है। यह बी-5 श्रेणी का बहुत ही तप्त नक्षत्र है जो पृथ्वी से 580 महाशंख मील की दूरी पर 'कोरवस' नामक नक्षत्रमण्डल में स्थित है।

इस नक्षत्र के अस्तित्व का पता 29 मार्च को उस समय चला जब जेट प्रोपल्सन लेबोरेटरी में मैरिनर-10 के यन्त्रों द्वारा प्रेषित आंकड़ों का अध्ययन करने वाले

3

वैज्ञानिकों ने बुधग्रह की कक्षा में विद्यमान अज्ञात वस्तु को खोज निकालने के लिए लगातार 16 घंटे तक खोज की।

विद्युदणु गणक यन्त्र की गणनाओं से टेलीविजन कैमरों द्वारा खींचे गये चित्रों की तुलना कर वैज्ञानिकों ने अन्त में बुधग्रह की कक्षा में विद्यमान अज्ञात वस्तु को ढूंढ़ निकाला और इसका नाम '31-क्रेटर' रख दिया। इस नक्षत्र को सबसे पहले 'किट पीक राष्ट्रीय वेधशाला' के वैज्ञानिकों डा० ए० लिले ब्रांडफुट ने अपने क्षेत्र में देखा। मैरिनर-10 के अल्ट्रावायोलेट स्पेक्ट्रोमीटर का नियन्त्रण डा० ब्रांडफुट ही कर रहे हैं।

पहले डा० ब्रांडफुट तथा उनके सहयोगी वैज्ञानिक डा० माइकेल मेकलोरी को यह संदेह हुआ था कि अति-काशनी प्रकाश निःसृत करने वाली यह अज्ञात वस्तु सम्भवतः बुधग्रह का चन्द्रमा है। लेकिन विद्युदणु गणक यन्त्रों की गणनाओं के आधार पर यह विदित हुआ कि अन्तरिक्षयान, बुधग्रह और अतिकाशनी यन्त्र की सम्मिलित गति तथा सूर्य के सन्दर्भ में बुधग्रह और मैरिनर-10 की सापेक्ष गति यह इंगित करती है कि यह नक्षत्र गतिमान है। वस्तुतः जब इसकी अनुमानित कक्षा का अध्ययन करने की कोशिश की गयी तो यह मालूम हुआ कि इसकी स्थिति बुधग्रह के चारों ओर अण्डाकार है।

यद्यपि, अब यह पता चल गया है कि यह वस्तु बुधग्रह का चन्द्रमा न होकर एक नक्षत्र है परन्तु रहस्य का पूरी तरह उद्घाटन अभी तक नहीं हुआ है। 27 मार्च को, जब मैरिनर-10 बुधग्रह के निकट पहुँचते हुए भी उससे कई लाख मील दूर था, अन्तरिक्षयान में विद्यमान यन्त्रों ने प्रकाशपुंज के इसी स्रोत की झलक देखी थी। उस समय सभी यन्त्रपुंज बुधग्रह की ओर केन्द्रित कर दिये गये थे और इसी कारण उस समय उस नक्षत्र को देखा नहीं जा सका था।

डा० मेकलोरी ने बताया कि उस समय उनके समक्ष तीन मुख्य सम्भावनाएँ उपस्थित थीं : हमारे उपकरण ठीक काम नहीं कर रहे थे, ग्रह के पीछे कोई विचित्र नक्षत्र विद्यमान था अथवा बुधग्रह के किसी क्षेत्र में तीव्र विकिरण का स्रोत विद्यमान था।

कुछ समय बाद विकिरण का स्पष्ट आभास फिर मिलने लगा। इस समय अन्तरिक्षयान का अतिकिशनी उपकरण बुधग्रह की कोर पर केन्द्रित था। बुधग्रह की परिक्रमा करने के बाद, जब उपकरण ने पलट कर, बुधग्रह का निरीक्षण करना शुरू किया, उस समय भी आकाश के उसी क्षेत्र में उसे पुनः तीव्र प्रकाशपुंज दृष्टिगोचर हुआ।

वैज्ञानिकों को तीन दिन की अवधि में आकाश के तीन भिन्न क्षेत्रों का निरीक्षण करते समय वही प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ और इसी आधार पर उन्होंने यह धारणा बनाई कि शायद बुधग्रह के चन्द्रमा का भी अस्तित्व है।

अब महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि बुधग्रह के निकट पहुँचने तथा उसके बाद दृष्टिगोचर प्रकाशपूर्ण स्रोत एक ही था तब उस प्रकाश का स्रोत क्या था जो दो दिन पूर्व उस समय दृष्टिगोचर हुआ था जब अन्त-रिक्षयान बुधग्रह का निरीक्षण कर रहा था?

डा० मेकलोरी ने बताया कि इस प्रश्न का समाधान करना बहुत आवश्यक है क्योंकि यह बहुत विचित्र प्रतीत होती है कि दो विचित्र वस्तुएँ आकाश के एक ही क्षेत्र में, बुधग्रह के पृष्ठ भाग में तथा उसके चारों ओर, दृष्टिगोचर हों। डा० मेकलोरी ने यह भी कहा कि इस बात की पूरी सम्भावना है कि बुधग्रह का वह भाग, जो अंधेरे में रहता है, विकिरण प्रकाश का उद्गम हो और एक प्रकार के प्रभामण्डल की सृष्टि करता हो। उन्होंने कहा कि इस प्रभामण्डल का निर्माण उन शक्तिमान इलेक्ट्रानों द्वारा हो सकता है जिनकी उपस्थिति का पता मैरिनर-10 अन्तरिक्षयान ने लगाया है।

इस खोज ने एक और नई पहेली को जन्म दिया है। यह पहेली इस नए नक्षत्र से सम्बन्धित है। वैज्ञानिकों का अब तक यह विचार रहा है कि यदि लघुतरंग दैर्घ्य पर अल्ट्रावायोलेट प्रकाश का निःसरण हो तो वह अन्तरिक्ष में ही शोषित हो जाता है तथा यह प्रकाश मैरिनर-10 के संवेदनशील उपकरणों तक नहीं पहुँच सकता। लेकिन, जब अन्तरिक्षयान के यन्त्र इस नक्षत्र पर केन्द्रित किये गये तो उन्होंने लघुतरंग दैर्घ्य पर प्रवाहित हो रहे विकिरण की विद्यमानता की सूचना दी।

सस्ता पौष्टिक आहार

शरीर को विभिन्न प्रकार के कार्यों के हेतु शक्ति अथवा उर्जा की आवश्यकता होती है। यह उर्जा उसको भोजन के अनेक प्रकार के तत्वों जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन व खनिज लवणों से प्राप्त होती है। यदि भोजन में इन सभी तत्वों का समुचित मिश्रण रहे तो उसको हम सन्तुलित आहार कहते हैं।

मनुष्य के लिये भोजन के विभिन्न अवयवों की आवश्यकता उस व्यक्ति-विशेष द्वारा दैनिक कार्यों के प्रकृति पर निर्भर करती है। जैसे एक मजदूर को दिन भर में यदि चार से साढ़े चार हजार कलौरी (उर्जा नापने की इकाई) की जरूरत है तो साधारण कार्य करने वाले के लिये तीन से साढ़े तीन हजार कलौरी काफी है।

आइये, अब हम भोजन के विभिन्न अवयवों पर एक विहंगम दृष्टि डालें।

प्रोटीन भोजन का एक प्रमुख भाग है। यह हमको वनस्पति एवं जन्तु जगत दोनों से मिलता है। चूँकि जन्तुओं से प्राप्त प्रोटीन जल्दी एवं ज्यादा मात्रा में पचता है अतएव इसको प्रथम श्रेणी का प्रोटीन भी कहते हैं? परन्तु मांसाहारियों को मांस की किस्म पर विशेष ध्यान देना चाहिये। यदि हम एक बीमार या बुड्ढे जानवर का मांस खायेंगे तो यह हमको लाभ के स्थान पर हानि अधिक करेगा। वनस्पति जगत से मिलने वाला प्रोटीन जन्तु जगत में पाया जाने वाला प्रोटीन की अपेक्षा हमारे शरीर के लिये अधिक लाभकारी है। और न ही यह शीघ्र पच जाता है। पर दालों में प्रोटीन की मात्रा बहुत होती है चाहे दाल अरहर की हो, चने की या मूँग की। इसलिए हमको अपने भोजन में दालों को उचित मात्रा में स्थान देना चाहिये। साधारण काम करने वाले को दिन भर में 88 ग्राम दाल खाना चाहिये। सभी दालों में प्रोटीन की मात्रा लगभग एक बराबर होती है। दालों के सम्बन्ध में खसहरी की दाल का मैं यहाँ पर उल्लेख करना चाहूँगा। खसहरी की दाल मध्य भारत में अधिक मात्रा में उगती-उगायी जाती है। वहाँ के आदिवासी एवं गरीब-अपढ़ ग्रामवासी इसको दाल के स्थान पर प्रयोग करते हैं क्योंकि यह काफी सस्ती एवं स्वाद में अन्य दालों से कुछ खास भिन्न नहीं होती है। इसको खाने से आदमी को लेथाइरिज्म नामक रोग हो जाता है जिसमें शुरुआत में पिंडलियों में दर्द, पैर में कमजोरी और कमर में दर्द होता है। यदि रोग बढ़ता गया तो पैरों में कमजोरी लगने लगती है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति पहले एक डंडे के सहारे चलता है। धीमे-धीमे पक्षाघात जिसमें केवल पैरों में असर आता है हो जाता है जिसके कारण से व्यक्ति अपाहिज हो जाता है।

सोयाबीन, जो कि आसानी से उगाया जा सकता है, में प्रोटीन बहुत होती है। इसको चाहे सब्जी के रूप में खायें या आटे के रूप में सोयाबीन काफी लाभप्रद एवं सस्ता होता है।

शरीर को गर्मी प्राप्त करने में कार्बोहाइड्रेट की जरूरत होती है। यह अधिकतर स्टार्च और चीनी के रूप में पाया जाता है। शाकाहारी भोजन में इसकी मात्रा अधिक होती है। गेहूँ, जौ, चावल, आलू और अरुई आदि में स्टार्च बहुत होता है। गन्ना और अन्य फलों में चीनी की मात्रा अधिक होती है। साधारण मेहनत करने वाले को 406 ग्राम गेहूँ, या जौ दिन भर में लेना चाहिये। हमको चाहिये कि अपने भोजन में जौ आदि के साथ ही आलू तथा अरुई आदि भी उचित मात्रा में लें ताकि शरीर की जरूरत भी पूरी हो और भोजन में एकरसता न आने पाये।

मीठे फलों में हम अमरूद, आम, पपीता, केला आदि ले सकते हैं। ये काफी मात्रा में कार्बोहाइड्रेट प्रदान करते हैं।

चर्बी से भी हमें उर्जा प्राप्त होती है। यह दूध, घी, मक्खन, तरकारियों, फलों के बीज व तल से प्राप्त होती है। माँस, दूध आदि से मिली चर्बी आसानी से पच जाती है। कुछ चर्बी हमारी त्वचा के नीचे जमा हो जाती है। भोजन न मिलने पर शरीर इसी चर्बी का प्रयोग करता है। साधारणतया शाकाहारी को 406 ग्राम दूध और यदि मांसाहारी है तो लगभग 116 ग्राम अण्डा मांस या मछली खाना चाहिये।

विटामिन, जिनको शरीर पर्याप्त मात्रा में नहीं बना पाता है, हमारे शरीर में हो रही अनेक कार्यों (क्रियाओं) में सहायक होते हैं। ये दो तरह के होते हैं, एक वे जो कि चर्बी में घुल जाते हैं जैसे विटामिन ए, डी, इ, के और दूसरे वे जो जल में घुलते हैं जैसे कि काम्पलेक्स, सी आदि।

विटामिन ए, नाक, कान, गले एवं त्वचा की रक्षा करता है। इसकी कमी से आँखों में कमजोरी आ जाती है। आदमी को रतौंधी आने लगती है। इसके अतिरिक्त टान्सिल एवं त्वचा के बहुत से रोग इसकी कमी से होने लगते हैं। यह हमको दूध, घी, अण्डा आदि के अलावा हरी सब्जियों में जैसे पातगोभी, पालक, भिंडी, तरोई, गाजर, सोयामेथी का साग, टमाटर आलू आदि में भी अच्छी मात्रा में मिलता है। फलों जैसे आम, अमरूद, खरबूजा, खीरा, ककड़ी, केला, पपीता आदि में भी विटामिन ए होता है। साधारण मेहनत करने वाले को 3000 00 यू० विटामिन की जरूरत होती है।

विटामिन डी भी लगभग उन सभी चीजों में पाया जाता है जिनमें विटामिन ए होता है। सूर्य की किरणें भी कुछ पदार्थों को इस विटामिन में बदल देती हैं। इसकी कमी से हड्डियाँ मुलायम पड़ जाती हैं जिससे रिकेट्स नामक रोग हो जाता है और दांत खराब हो जाते हैं। औसतन लगभग 4001·4 विटामिन डी की जरूरत होती है।

विटामिन के खून जमने में सहायता करता है। यह ताजी हरी सब्जियों में पाया जाता है। गोभी में इसकी मात्रा अधिक होती है। जन्तु-जगत से मिलने वाले भोजन में इसकी मात्रा कम होती है।

दाँतों और हड्डियों को मजबूत बनाये रखने के लिए विटामिन सी की भी जरूरत होती है। यह विटामिन ताजे हरे और रसदार फलों में जैसे नींबू, चकोतरा, सन्तरा, मुसम्मी, हरी सब्जियाँ जैसे पालक, तरोई, टमाटर आदि में पाया जाता है। आँवला विटामिन सी का सबसे सस्ता और अच्छा साधन है। किसी पदार्थ में विटामिन सी की उपयोगिता उसके खाई हुई मात्रा पर निर्भर करती है। इसकी कमी से पायरिया और स्कर्वी नामक रोग होने का डर रहता है। एक साधारण मेहनत करने वाले व्यक्ति को दिन भर में 30 मिलीग्राम विटामिन की जरूरत होती है। यूं तो दाल और अनाजों में इसकी मात्रा कम होती है लेकिन भिगोने के बाद जब उनमें अंकुर निकल आते हैं तो विटामिन डी की मात्रा बहुत बढ़ जाती है। इसलिये हमको चाहिए कि प्रतिदिन कुछ मात्रा जैसे 100 ग्राम चना रोज पानी में भिगोकर रख दें और जब उनमें अंकुर निकल आयें तो उसे खायें।

विटामिन बी कामप्लेक्स में विटामिन बी$_1$ और बी$_2$ प्रमुख होते हैं।

विटामिन बी$_1$ जिसे थाइमिन भी कहते हैं शरीर को स्वस्थ और बढ़ाने में सहायता करता है। यह मटर, सेम, गेहूँ, जौ, चावल और दालों में पाया जाता है। इसके अतिरिक्त हरी सब्जियों और अमरूद, आम, पपीता, केला जैसे फलों में भी पाया जाता है। मिलों से साफ किये गये चावल में इसकी मात्रा बहुत कम होती है, इसलिये हमको चाहिए कि जहाँ तक हो सके घर में ही धान से चावल निकालें ताकि विटामिन की मात्रा नष्ट न होने पाये। इसकी कमी से बेरी-बेरी नामक रोग हो जाता है। प्रतिदिन एक आदमी को लगभग 1 मि० ग्राम विटामिन की जरूरत होती है।

विटामिन बी 1 कलेजी, अंडा व मांस में अधिक मात्रा में मिलता है। लेकिन हरी सब्जियों और दूध

में भी मिलता है। यूँ तो यह भोजन बनाने की साधारणतय: प्रयोग में लाने वाली विधियों में नष्ट नहीं होता है लेकिन यदि पानी जिसमें हम हरी सब्जियाँ उबालते हैं, फेंक दें तो काफी मात्रा में यह नष्ट हो जाता है। औसतन 1·5 से $_2$ मिलीग्राम विटामिन बी$_2$ की जरूरत होती है।

हरी सब्जियों, दूध और फलों से हमें खनिज लवण उचित मात्रा में मिलते हैं।

बहुत से पौष्टिक तत्व हमारे गलत ढंग से भोजन पकाने में नष्ट हो जाते हैं। भाप के द्वारा भोजन पकाने में पौष्टिक तत्वों के नष्ट होने की कोई सम्भावना नहीं रहती है इसलिये इस विधि से पकाया भोजन सबसे अधिक लाभकारी होता है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि यदि हम अपने भोजन के प्रति कुछ सचेत हो जायें तो हमको सस्ता और पौष्टिक आहार आसानी से मिल सकता है।

डॉ० राकेश कुमार श्रीवास्तव
३८ चैथम्स् लाइन, प्रयाग

●●

योजनानुसार बाल विशेषांक सितम्बर मास में निकलने वाला है। किशोरों के लिए उपयोगी विज्ञान सामग्री अगस्त के प्रथम सप्ताह तक आमंत्रित है। लेख के साथ चित्र और लेखक का संक्षिप्त परिचय दीजिये।

●●

विज्ञान-वार्ता

1—धान की खेती के लिए बहु-उद्देश्यीय ट्रैक्टर

अमेरिका की दो कम्पनियों ने धान की खेती में प्रयुक्त करने के लिए एक नये प्रकार का बहु-उद्देशीय ट्रैक्टर तैयार किया है, जो 1974 के पतझड़ तक विश्व भर के बाजारों में बिकने के लिए उपलब्ध हो जायेगा। यह ट्रैक्टर इन कम्पनियों द्वारा विशेष रूप से मलयेशिया के कृषि विकास प्राधिकरण के लिए तैयार किया गया है।

इस ट्रैक्टर का नाम 'पैडी टाइगर' है। इस ट्रैक्टर द्वारा खेत की जुताई से लेकर फसल की कटाई तक सभी कार्य किये जा सकते हैं। धान के खेत की जुताई के लिए यह ट्रैक्टर 'रोटोबैटर' नामक एक उपकरण का प्रयोग करता है। जब ट्रैक्टर खेत की ऊंची मेंड़ पर पहुँचता है, और उसे पार करना चाहता है, तब यह रोटोवैटर ऊपर उठ जाता है और ट्रैक्टर मेंड़ को हानि पहुँचाये बगैर ही अगले खेत में पहुँच जाता है। खेत में धान के पौधे की रोपायी के लिए इसमें 'प्लाण्टर' नामक उपकरण जोड़ दिया जाता है, जो समान रूप और त्वरित गति से धान के पौधे रोप देता है। बाद में, इसमें एक 'हारवेस्टर' जोड़ कर पकी फसल को काट लिया जाता है, और उसके बोरे या डण्ठल के गट्ठर बांध लिये जाते हैं।

जब 'पैडी टाइगर' का प्रयोग धान की खेती के लिए नहीं होता, तब ट्रैक्टर में एक ट्रेलर लगा कर उसे सामान की ढुलाई के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

'पैडी टाइगर' को थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ खेती के कई अन्य कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकता है।

इसकी डिजाइन धान की खेती सम्बन्धी समस्याओं के गहन अध्ययन के बाद तैयार की गयी है। टाइगर टियेरा इन्कापोरेटेड और कोलम्बिया एफिलियेटेड ग्रुप्स नामक दो फर्मों ने धान के किसानों की आवश्यकताओं और मलयेशिया में अन्य उपकरणों के असफल होने के कारणों की जाँच-पड़ताल की। 'पैडी टाइगर' उसी जाँच-पड़ताल का परिणाम है।

रोटोवेटर सहित ट्रैक्टर की लागत 25,000 डालर है। इसे कोलम्बिया एफिलियेटेड ग्रुप्स, इन्क०, के यहाँ से खरीदा जा सकता है जिसका पता है : कैसकेड प्लाजा सूट 206, 2828 एस० डब्ल्यू० कारेबेट, पोटलैण्ड, ओरेगान 97201। (टेलेक्स संख्या, 36-0812 और केबुल का पता—'कोलैग' है)।

2—कार में चिकनाई के लिए तेल देने की सरल विधि

कार में चिकनाई लाने के लिए उसके पुर्जों में तेल देने के लिए किसी समय कार को ऊपर उठाने वाले उपकरण की आवश्यकता हुआ करती थी। किन्तु अब लुब्रिकेशन का यह काम कार का मालिक स्वयं ही अपने घर पर कर सकला है। इसके लिए एक नया उत्पाद तैयार किया गया है, जिसका नाम 'सेण्ट्रल-ल्यूब' है। इसके द्वारा हुड के भीतर से ही कार में तेल डाल कर चिकनाहट पैदा की जा सकती है।

कार का मालिक या कोई मेकेनिक सेण्ट्रल-ल्यूब के उपकरण को बड़ी जल्दी कार में लगा सकता है। लुब्रिकेशन की क्रिया इंजिन वाले खाने या किसी अन्य आसान जगह से सम्पन्न हो सकती है। सेण्ट्रल-ल्यूब के उपकरण में नाइलोम की एक नलिका शामिल होती है, जो ग्रीज को उन सभी जगहों तक आसानी से पहुँचा देती है, जो घूम नहीं सकते। सेण्ट्रल-ल्यूब सम्बन्धी थैले में 10 स्थानों तक ग्रीज पहुँचाने के लिए सभी उपकरण शामिल होते हैं। थैले में 10 बैंको ग्रीज फिटिंग, नाइलोन ट्यूब उण्ट्रल ल्यूब' पैनेल ट्यूबिंग टाई और इस उपकरण को कार में लगाने की विधि सम्बन्धी निर्देशन-पुस्तिका शामिल है। ये थैले मोटरगाड़ियों, ट्रकों, खेती की मशीनों या अन्य वाहनों के लिए जिन के कल-पुर्जों

में समय-समय पर ग्रीज देकर उन्हें चिकना बनाये रखना आवश्यक है, उपलब्ध हैं।

मोटरगाड़ियों के लिए बनाये गये 10 यूनिट के पैनेल वाले थैले का प्रारम्भिक मूल्य 14·95 डालर से लेकर 19·95 डालर तक है। ट्रकों तथा अन्य वाहनों के थैले का मूल्य 24·95 डालर तक है। सेण्ट्रल-ल्यूब को बेंकों इण्डस्ट्रीज के यहाँ से खरीदा जा सकता है, जिसका पता है—बेंकों इण्डस्ट्रीज, पो० बाक्स 2922, क्लीवलैण्ड, ओहायो 44116।

3—तेल शोधन संयंत्र में भट्टी और ट्यूब के तापमान की जाँच के लिए नया थर्मामीटर

इस समय एक असम्पर्की अति-रक्त थर्मामीटर बाजार में उपलब्ध है, जिसका निर्माण विशेष रूप से प्रतिकूल वातावरण में दीर्घकालीन प्रयोग के लिए किया गया है।

विलियमसन माडेल-1211 नामक यह थर्मामीटर केमिकल और हाइड्रोकार्बन विधायन संयंत्रों में तापमान को अंकित करने के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। है। इसके निर्माता का कहना है कि भट्टी की लपट या तप्त गैसों की तेज गर्मी से इसकी तापक्रम-मापक क्षमता पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

इस थर्मामीटर का वजन 6॥ पौण्ड है। यह 600 अंश फारेनहाइट से लेकर 3,000 अंश फारेनहाइट (300 अंश सेण्टीग्रेड से लेकर 1650 अंश सेण्टीग्रेड तक) तापमान का माप कर सकता है।

निर्माता का कहना है कि इस थर्मामीटर की सहायता से भट्टी में तापक्रम को अनुकूलित किया जा सकता है। इसके द्वारा भट्टी में सर्वत्र एक सा तापक्रम उत्पन्न किया जा सकता है जिससे बर्नर की क्षमता का अधिकतम उपयोग हो सकता है।

यह थर्मामीटर विलियमसन कार्पोरेशन से खरीदा जा सकता है जिसका पता है—विलियमसन कार्पोरेशन, 1152 मेन स्ट्रीट, कोनकार्ड, मैसाचूसेट्स 01742। इसका मूल्य 2 हजार से 3 हजार डालर तक है। कार्पोरेशन ने इंग्लैण्ड, फ्रांस और जापान में मरम्मती सुविधा की पूरी व्यवस्था कर रखी है।

4—जानवरों के चारे-दाने में धातु की चीजें न मिलने पायें

चारे-दाने के साथ सुई, पेंच, पिन, तार के टुकड़े, कील आदि निगल जाने से पशुओं को काफी तकलीफ भोगनी पड़ती है। इन चीजों के बहुत समय तक जानवरों के शरीर में रहने से उनकी मृत्यु तक भी हो सकती है।

लुधियाना स्थित पंजाब कृषि विश्वविद्यालय में पशु चिकित्सा औषधि महाविद्यालय में काम करने वाले वैज्ञानिकों ने किसानों को निम्नलिखित सावधानी के तरीके अपनाने की सलाह दी है :—

(1) जानवरों के चारे-दाने में धातुओं की चीजें न मिलने दें।

(2) लोहे के टुकड़ों को निकालने के लिये जानवरों का चारा और दाना किसी चुम्बक वाले बर्तन में डाल कर जानवरों को डालें।

(3) यदि हो सके, तो जानवरों के नथुनों में चुम्बकयुक्त छल्ले पहना दें जिससे चारे-दाने में मिले हुए लोहे के टुकड़े छल्लों द्वारा अलग किये जा सकें।

5—'एलर्जी' और उसका निरोध

'एलर्जी' कुछ पदार्थों की संवेदनशीलता का नाम है जिसके कारण श्वसन की विकट समस्याएं उत्पन्न हो सकती है।

प्रायः देखा जाता है कि कुछ व्यक्तियों की एलर्जी होती है और कुछ को नहीं। शायद इसका कारण एलर्जी पीड़ितों की रोग-निरोध क्षमता में कुछ विकार का होना होता है।

जार्जटाउन विश्वविद्यालय के चिकित्सा-केन्द्र के शोधकर्ता, जान सैन्टिली, के अनुसार, इसका कारण एलर्जी वाले व्यक्तियों के रुधिर की श्वेत कोशिकाओं की क्रियाशीलता में विकार का होना होता है। परीक्षण के दौरान डा० सैन्टिल को ज्ञात हुआ कि एलर्जी वाले व्यक्ति की श्वेत कोशिकाएँ पादप-पराग अथवा विजातीय तत्वों का प्रतिकार अथवा अवशोषण करने में उतनी समर्थ नहीं होतीं, जितनी एलर्जी विहीन व्यक्ति की श्वेत कोशिकाएँ होती हैं। उनके अनुसार, ऐसी अवस्था

में एलर्जी वाले व्यक्ति के रक्त में पराग अथवा विजातीय तत्व काफी समय तक विद्यमान रहता है जिसके परिणामस्वरूप, उस पर एलर्जी की प्रतिक्रिया होती है।

उनके अनुसंधान के फलस्वरूप इसे साधारण रक्त परीक्षण द्वारा पहचानना सरल हो जायेगा। यह परीक्षण अत्यन्त सरल होता है और इसमें एलर्जी सम्बन्धी नवीन त्वचा-परीक्षण विधि की अपेक्षा बहुत कम खतरा होता है।

6—नींद की अधिकतम सीमा

सामान्य मत के अनुसार, रात्रि में आठ घण्टे नींद लेना पर्याप्त होता है। परन्तु, फिलाडेल्फिया, पेन्सिल्वेनिया, में हाल ही में किये गये परीक्षण के आधार पर, अनुसंधानकर्ता इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि एक स्वस्थ व्यक्ति प्रति रात्रि 10 घण्टे तक की गहरी नींद ले सकता है।

डा० यूजीन एसरिंस्की ने यह पता लगाने के लिए एक परीक्षण किया कि कोई स्वस्थ वयस्क व्यक्ति, किसी प्रकार की औषधि सेवन किये बिना, 24 घण्टे में कितने समय तक नींद लेने में समर्थ है। उनके अनुसार, यद्यपि कुछ रोगी व्यक्ति 16 घण्टे तक नींद लेते पाये गये, परन्तु डा० एसरिंस्की ने पाया कि कोई भी स्वस्थ व्यक्ति 10 घण्टे से अधिक समय तक नींद नहीं ले सका। अपने परिणामों के आधार पर, उन्होंने बताया कि किसी भी व्यक्ति ने यदि इस अवधि से अधिक नींद लेने का प्रयास किया भी, तो उसे अगली रात नींद न आने की शिकायत हो गयी।

इस कालावधि के कारण का पता लगाने के लिए डा० एसरिंस्की ने जो विधि अपनायी, उसके अन्तर्गत उन्होंने इन व्यक्तियों की आँखों पर एक प्रकार के सूक्ष्म इलेक्ट्रोड लगा दिये जिनका सम्बन्ध एक ऐसे यन्त्र से था जो सोते समय उनके नेत्रों के परिचालन का मापांकन करते थे। इस परिचालन को चिकित्सा जगत में 'नेत्रों का तीव्रतर परिचालन' (आर ई एम कहा जाता है और इसका सम्बन्ध स्वप्नावस्था से माना जाता है। एक रात्रि में ऐसे परिचालन (आर ई एम) के क्रमशः पाँच दौरे आते हैं और प्रति दौरे का काल पहले दौरे की अपेक्षा अधिक होता है। कुछ प्रारम्भिक परीक्षणों से उन्हें ज्ञात हुआ कि ऐसे प्रति दौरे में नेत्रों की परिचालन गति, पूर्व दौरे की अपेक्षा, क्रमशः तीव्र से तीव्रतर होती जाती है।

10 घण्टे की नींद ले लेने पर, व्यक्ति के नेत्रों की परिचालन गति समान होने लगती है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति ने अपनी नींद पूरी कर ली है और वह नींद के इस स्तर पर पूर्ण तृप्त हो चुका है। तृप्ति भर नींद के लिए 10 घण्टे की कालावधि की आवश्यकता के प्रति विचार व्यक्त करते हुए, डा० एसरिंस्की ने यह विश्वास प्रकट किया कि उनके अनुसन्धानों द्वारा शरीर में एक ऐसे रसायन-तत्व की विद्यमानता का पता चला है, जो जागने की क्रिया सम्पन्न करता है। इस रसायन का निर्माण सुप्तावस्था में ही होता है और जागृति-काल में इसका क्षरण होता रहता है।

डा० एसरिंस्की का कथन है कि यदि इस रसायन की पहचान सम्भव हो सकी तो चिकित्सा विशेषज्ञ आवश्यकतानुसार नींद की अवधि को कम या अधिक कर सकने में सफल हो सकेंगे।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111 | सावन-भादों 2031 विक्र०, 1869 शकाब्द | अगस्त–सितम्बर 1974 | संख्या 8, 9

विषय-सूची

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-110004

PRESIDENT'S SECRETARIAT,
RASHTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI-110004.

पत्रावली सं० 8-एम /74

जुलाई 19, 1974

प्रिय महोदय,

दिनांक 8 जुलाई के आपके पत्र से यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप अपने परिषद् की मुख-पत्रिका "विज्ञान" का "बाल-विशेषांक" प्रकाशित करने का आयोजन कर रहे हैं। विशेषांक की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनायें भेजते हैं।

भवदीय
(खेमराज गुप्त)
राष्ट्रपति का उप-सचिव

श्री शिवप्रकाश,
सम्पादक-"विज्ञान",
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-211002

× × ×

सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर
हिन्दी अधिकारी

प्रधान मंत्री सचिवालय
नई दिल्ली-११
PRIME MINISTER'S SECRETARIAT
NEW DELHI-11

सं० 1019/74-हि

12 जुलाई, 1974

प्रिय महोदय,

प्रधान मन्त्री को आपका पत्र मिला, धन्यवाद।

उनको यह जानकर खुशी हुई कि "विज्ञान" का एक बाल-विशेषांक निकाला जा रहा है।

प्रधान मन्त्री जी इस विशेषांक की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ भेजती हैं।

भवदीय
(सुरेन्द्र नारायण दफ्तुआर)

श्री शिवप्रकाश,
संपादक, 'विज्ञान',
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-211002

विधान भवन,
लखनऊ
12 जुलाई, 1974

प्रिय शिव प्रकाश जी,

मुझे यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि विज्ञान परिषद आगामी 15 अगस्त के पावन अवसर पर "बाल विशेषांक" निकालने जा रहा है।

आज के वैज्ञानिक युग में वैज्ञानिक तकनीकी में उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिये प्रत्येक राष्ट्र होड़ लगा रहा है और वही राष्ट्र सर्वतोन्मुखी माना जाता है जो वैज्ञानिक तकनीक में सम्पन्न है। हमारा देश भी वैज्ञानिकों का आभारी है जिन्होंने आणविक विस्फोट शांतिप्रिय उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सफलतापूर्वक किया और देश को समृद्धि की ओर अग्रसर करने के प्रयास में अब भी रत हैं।

आज के बच्चे कल के देश के कर्णधार हैं। आपका बाल विशेषांक बच्चों में विज्ञान के प्रति रुचि पैदा करे जिससे आगे आने वाली पीढ़ी वैज्ञानिक तकनीक में उन्नति के शिखर पर पहुँचे और देश की समस्याओं को हल करने एवं जन-समुदाय की भलाई एवं उनके लाभार्थ समस्याओं को शांति पूर्ण ढंग से हल करने में उसका उपयोग करे। साथ ही वैज्ञानिक उन्नति कर शांति के पथ पर अग्रसर होने का विश्व के समक्ष एक जीता जागता उदाहरण पेश करे।

आपकी पत्रिका सर्वाधिक लोकप्रिय होकर देश सेवा में रत रहे और वैज्ञानिक क्षेत्र में बच्चों के भविष्य का निर्माण अधिकाधिक करती रहे, यही मेरी कामना है।

अंत में मैं एक बार पुनः सभी विज्ञान प्रेमियों को धन्यवाद देता हूँ जिनके सद्प्रयत्नों से हमारा देश वैज्ञानिक उन्नति प्राप्त करने की दशा में अग्रसर हो रहा है।

सद्भावनाओं सहित

आपका,
(हेमवती नन्दन बहुगुणा)

श्री शिव प्रकाश,
सम्पादक-विज्ञान,
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद्
COUNCIL OF SCIENTIFIC & INDUSTRIAL RESEARCH
नई दिल्ली-१ NEW DELHI-1, जुलाई 1974।

क्रमांक : डी० जी०/१/हिन्दी/७४
प्रोफेसर यलवती नायुडम्मा,
सचिव, भारत सरकार एवं
महानिदेशक

—: शुभकामना सन्देश :—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद अपनी मुख-पत्रिका "विज्ञान" मासिक का बाल-विशेषांक 15 अगस्त स्वतन्त्रता दिवस की पावन तिथि पर प्रकाशित कर रही है। विज्ञान परिषद् का यह बाल-विशेषांक स्कूल, कालेज के बच्चों, छात्रों और शिक्षकों के विज्ञान और तकनोकी प्रेम का प्रतीक है। परिषद् के बाल-विशेषांक के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनायें।

(येलवर्ती नायुडम्मा)

सेवा में :

सम्पादक,
विज्ञान, विज्ञान परिषद्,
महर्षि दयानन्द मार्ग,
इलाहाबाद-211002

जन्तुओं की विचित्र दुनिया में

★ शुकदेव प्रसाद

बच्चो ! तुम अपने आस-पास के बहुत से जन्तुओं के बारे में जानते होगे, जैसे कि कुत्ता, हाथी, घोड़ा, बन्दर, मेढक, चिड़ियाँ, खरगोश, गिलहरी आदि। लेकिन आज मैं तुम्हारा परिचय ऐसे अद्‌भुत प्रकृति वाले जन्तुओं से कराऊँगा जिनके बारे में जानकर तुम दंग रह जाओगे और उनके विषय में जानकारी हासिल करने की तुम्हारी जिज्ञासा भी बढ़ेगी।

प्रकृति में बहुत से अद्‌भुत प्रकृति वाले प्राणी पाये जाते हैं। इन प्राणियों में से बहुतों के शरीर की बनावट, कुछ के भोजन प्राप्ति के अजीब ढंग, कुछ के आत्म रक्षार्थ विशेष अंग इत्यादि बातें अपने में बड़ी अजीब एवं कुतूहलवर्धक हैं।

जीता-जागता बिजलीघर

प्रकृति ने कुछ ऐसे जन्तुओं का निर्माण किया है जिनमें विद्युत उत्पादन क्षमता होती है। अपने शरीर में उत्पन्न इस विद्युत से ये जन्तु अपना शिकार पकड़ते हैं तथा अपने शत्रुओं से आत्मरक्षा भी करते हैं। इन जन्तुओं द्वारा उत्पन्न विद्युत से बल्ब जल सकता है तथा यदि तुम इनको छूओ तो तुम्हें बिजली का धक्का भी लगेगा। यह जन्तु हैं न जीते-जागते बिजलीघर !

कुछ ऐसी मछलियाँ होती हैं जिनको प्रकृति ने विद्युत उत्पादन की अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है। इन मछलियों में इलेक्ट्रिक-रे तथा इलेक्ट्रिक-ईल काफी प्रसिद्ध हैं। 'टॉरपीडो' एक इलेक्ट्रिक-रे है जो कि भारत में पाई जाती है। यह भूमध्य तथा हिन्द महासागर में पाई जाती है। इसके शरीर का अगला भाग काफी चपटा एवं गोलाकार होता है। दो वृक्काकार विद्युत उत्पादक अंग इसके सर में मस्तिष्क के दोनों तरफ स्थित होते हैं। विद्युत इसी भाग की मांस पेशियों के कोष्ठों में उत्पन्न होती हैं।

इलेक्ट्रिक-रे

प्रत्येक विद्युत उत्पादक अंग कई हिस्सों में बँटा होता है। प्रत्येक हिस्से को 'इलेक्ट्रोप्लेट' कहते हैं।
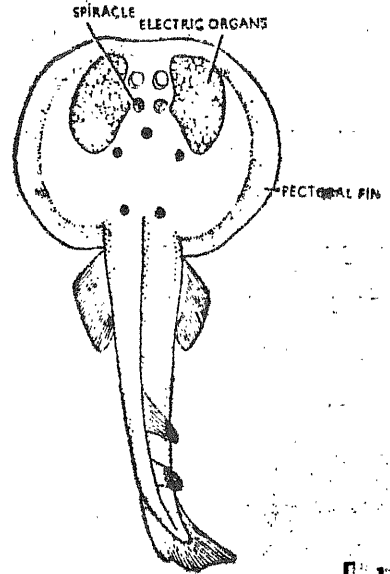
इलेक्ट्रोप्लेट तीन सतहों का बना होता है। प्रत्येक प्लेट की ऊपरी सतह धनात्मक एवं निचली सतह ऋणात्मक आवेश युक्त होती है। विद्युतधारा का प्रवाह ऊपरी सतह से निचली सतह की ओर होता है। औसत आकार की मछली से 50-60 वोल्ट तक की विद्युत उत्पन्न होती है। इस विद्युत से टॉरपीडो शत्रुओं से आत्मरक्षा भी करती है तथा शिकार पकड़ने में भी मदद लेती है। इसके शरीर के स्पर्श से इसका शिकार बेहोश हो जाता है और यह उसको निगल जाती है।

इलेक्ट्रिक-ईल-मछलियों के पूँछ वाले हिस्से में विद्युत उत्पन्न होती है। अनुमानतः एक मछली की पूँछ में 200 वोल्ट तक की विद्युत उत्पन्न होती है। यदि 10,000 इलेक्ट्रिक-ईल एक साथ रखी जायँ तो एक बिजली की रेलगाड़ी 8-10 मिनट तक आसानी से चल सकती है।

चलता फिरता राडार

विधाता ने मानव का निर्माण करते समय उसके साथ एक कमी छोड़ दी है। वह कमी है मनुष्य का अंधेरे में कुछ न देख सकना क्योंकि हमारी आखें उसी वस्तु को देख सकती हैं जिससे टकरा कर परावर्तित प्रकाश हमारी आँख तक पहुँच जाये। अँधेरे में परावर्तित किरणें आँख तक नहीं पहुँच पातीं इसीलिये इस प्राकृतिक कमी को मानव 'राडार' द्वारा पूरा करने में सफल रहा है।

प्रकृति ने भी ऐसे जन्तुओं का निर्माण किया है जिनके वस्तुओं को देखने की प्रणाली 'राडार' से मिलती-जुलती है। प्रकृति के ये अद्भुत जन्तु हैं चमगादड़। तुमने शाम के समय या रात के अँधेरे में बड़ी सफाई से चमगादड़ों को उड़ते हुए देखा होगा। चमगादड़ अंधे होते हैं लेकिन उड़ते इतनी सफाई से हैं कि उनके सामने तीव्र दृष्टि सम्पन्न पक्षी भी मात खा जायँ।

चमगादड़ देखता है नाक और कान के सहारे। इसके नाक और कान क्रमशः ट्रांसमिटर एवं रिसीवर का काम करते हैं। वह अपनी नाक से इतनी सुरीली और तेज कम्पन की ध्वनि प्रसारित करता है कि हमारे कान सुन पाने में सर्वथा असमर्थ होते हैं लेकिन चमगादड़ स्वयं उसे बखूबी समझ सकता है। चमगादड़ द्वारा उत्पन्न ध्वनि तरंगें पराश्रब्य तरंगें कहलाती हैं जिनको सुन पाने में हमारा कान असमर्थ होता है। हमारे कान 15,000 से 25,000 कम्पन प्रति सेकेंड तक की ध्वनियाँ ही सुन सकने योग्य हैं लेकिन चमगादड़ द्वारा प्रसारित ध्वनि का कंपन 10,0000 से 12,0000 प्रति सेकेंड होता है। चमगादड़

अपनी प्रसारित तीव्रध्वनि तथा किसी वस्तु से टकराकर आने वाली मद्धिम ध्वनि के अंतर को भी बड़ी सावधानी से समझ लेता है। इस प्रकार अंधेरे में और स्वयं अंधा होते हुए भी, ध्वनि प्रतिध्वनि के आधार पर अपने सामने आने वाली वस्तु के रूप-आकार का चमगादड़ को आभास हो जाता है और उड़ते-उड़ते उसके अति समीप पहुँच कर भी उससे टकराने से खुद को बचा लेता है। चमगादड़ की यह 'राडार' प्रणाली अपना कार्य सम्पन्न करने में अत्यन्त क्रियाशील होती है। इसकी अत्यन्त क्रियाशीलता का अंदाज हम इसी बात से लगा सकते हैं कि चमगादड़ अपने सम्मुख उपस्थित व्यवधान का पूरा अता-पता सेकेंड के सौवें भाग में सही लगा लेता है।

प्रकृति का अद्भुत जन्तु शिल्पकार

मानव निर्माण कला को चुनौती देने वाला यह जन्तु शिल्पकार एक स्तनी जन्तु, बीवर है जिसकी शिल्पकारी देख कर विस्मित हो जाना पड़ता है। यह जन्तु शिल्पकार मनुष्य की ही भाँति सुन्दर और सुरक्षित घर बना सकता है, बाँध बनाकर नदी की धारा को रोक सकता है तथा काफी लम्बी नहरें तैयार कर सकता है।

बीवर छोटे आकार के स्तनी जन्तु हैं, जो उत्तरी एशिया तथा उत्तरी अमेरिका में पाए जाते हैं। सदा जल से भरी नदियों के तट पर इनका वास होता है। यदि किसी कारणवश जल कष्ट की सम्भावना हुई तो बीवर साधारण जन्तु होते हुए भी बलपूर्वक सरिता को अपनी जल की आवश्यकता की पूर्ति के लिये बाध्य करते हैं। मोटे-मोटे पेड़ के तनों और शाखादि को काटकर जलराशि जुटा लेते हैं। इस प्रकार कभी-कभी मीलों तक पचासों बाँध बनकर तैयार हो जाते हैं।

बीवर बाँध तैयार करने में प्रायः पेड़ के तनों, शाखाओं आदि की सहायता लेते हैं। बड़े-बड़े पेड़ों को अपने तेज दाँतों से काटकर गिरा देते हैं। जब पेड़ कटकर गिर जाता है तो उसके तनों को कई टुकड़ों में काट डालते हैं। बड़ी होशियारी और कुशलता से ये बाँध का निर्माण करते हैं। बाँध में प्रत्येक टुकड़ा ढंग से रखा जान पड़ता है; जहाँ जैसे टुकड़ों की आवश्यकता हुई वहाँ वैसे ही टुकड़े लगे होते हैं। बाँधों के बनाने में धारा प्रवाह का भी ध्यान रखा जाता है। जहाँ पर पानी धीरे-धीरे बहता है वहाँ बाँध बिल्कुल सीधे होते हैं किन्तु जहाँ प्रवाह तीव्र होता है वहाँ पर धारा का ध्यान रखकर बाँध वक्राकार बनाते हैं। इस कारण उन पर धारा का बल नहीं लगता है। इनका कौशल निपुण इंजीनियरों से भी बढ़ा-चढ़ा होता है।

अंधेरे में टिमटिमाता लैम्प

रात में अंधेरे में तुमने टिमटिमाते हुए जुगनू को अवश्य देखा होगा। जुगनू को खते ही मन में प्रश्न उठा होगा कि इनमें यह प्रकाश कहाँ से पैदा होता है। इस विषय ं बहुत काफी जानकारी तो नहीं मिल पायी है लेकिन अभी भी वैज्ञानिक अनुसंधान हो हे हैं। 'जुगनू के शरीर के अन्दर प्रकाशवान सेलों के ऊपर दर्पण लगा होता है। यह पानी ं अघुलनशील रवों की तह से बना होता है। इनसे प्रकाश नीचे की ओर परावर्तित होता है जिसके कारण प्रकाश बहुत तेज मालूम पड़ता है। इन सेलों के अन्दर ही ल्यूसिफेरिन और ल्यूसिफेरेज़ रहते हैं और सेलों के बीच-बीच में वायु से भरी छोटी-छोटी असंख्य ालियाँ होती हैं। जैसे ही जुगनू आकाश में उड़ता है वायु इन नलिकाओं में भर जाती है और वहाँ पर उसका आक्सीजन दीप्तिकारक पदार्थों पर प्रभाव करके प्रकाश उत्पन्न करता है।

अक्षय सुगन्धि का भण्डार

मानव जीवन में सुगन्धियों का अपना विशेष महत्व है। सुगन्ध द्रव्य वनस्पतियों तथा जीवों से प्राप्त किये जाते हैं। जीवों से प्राप्त सुगन्ध द्रव्यों का उपयोग किसी वस्तु को स्थायी सुगन्ध प्रदान करने के लिये किया जाता है।

सुगन्ध द्रव्यों में कस्तूरी प्राचीन समय से ही विख्यात है तथा इसे सर्वोत्तम 'सुगन्ध द्रव्य' माना जाता है। यह नर कस्तूरी मृग के ग्रंथीय पुटक का एक सूखा स्राव है। इस मृग की पिछली टांगें लम्बी होती हैं। शरीर के बाल लम्बे-लम्बे, मोटे और कोमल होते हैं, रंग में लाली लिये हुए हल्के भूरे होते हैं, जिनमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर सफेद धब्बे पड़ जाते हैं। यह एशिया के मध्य भाग के पहाड़ी देशों के पास वनों में रहते हैं और हिमालय, भोपाल के इलाकों में पाए जाते हैं। यह मृग प्रायः ऊँचे स्थानों पर ही रहते हैं।

यह फुर्तीला और शीघ्रगामी होता है। गहरे खड्डों और पर्वतों की कष्टप्रद घाटियों को फलांगने में अद्वितीय है। पहाड़ की घास, पत्ते आदि इसके भोजन हैं।

कस्तूरी का पोटा जो केवल नर में होता है, छोटी नारंगी के तुल्य होता है और पेट के नीचे खाल पर नाभि-स्थान पर होता है। कस्तूरी, जिससे यह भरा रहता है, श्याम वर्ण भूरी या कत्थे रंग की होती है, पड़ी रहने से कुछ समय बाद सूख जाती है और दानेदार हो जाती है।

कस्तूरी वाले मृग से कस्तूरी प्राप्त करने के लिये इसकी हिंसा की जाती है। पोटा काट लिया जाता है और उसे धूप में या गर्म शिला पर रखकर या गरम तेल में कई बार डुबाकर सुखा लिया जाता है। प्रायः उत्तम कस्तूरी सूखी हुई, छूने में चिकनी और चखने में कड़वी होती है।

सब जन्तुओं में अधिक बुद्धिमान

जन्तुओं में बन्दर, कुत्ते, हाथी और घोड़े सबसे अधिक समझदार माने जाते हैं। मगर नहीं, इनसे भी अधिक समझदार एक जन्तु है। यह एक समुद्री मछली है जिसका नाम है डालफिन।

डालफिन समुद्र का सबसे बुद्धिमान जीव है। यह संसार का एकमात्र जीव है जिसका मस्तिष्क मानवीय मस्तिष्क से भी बड़ा है। मनुष्य का मस्तिष्क सवा तीन पौण्ड का होता है जब कि डालफिन का मस्तिष्क पौने चार पौण्ड का होता है।

यह डालफिन अन्य मछलियों की तरह अण्डे नहीं देती है बल्कि बच्चे जनती है और उन्हें अपना दूध पिलाकर पालती है।

वैज्ञानिकों का विचार है कि मनुष्य के बाद सबसे अधिक समझदार प्राणी डालफिन ही है। मानव के अतिरिक्त डालफिन संसार का एकमात्र जीव है जिसे निमोनिया और हृदय रोग होते हैं। कई डालफिन 'हार्ट-अटैक' से मरती हैं। वास्तव में डालफिन और मनुष्य की शारीरिक आकृति में एकरूपता है तथा इसकी बहुत सारी आदतें मनुष्य से मिलती-जुलती है।

सहानुभूति और मदद की भावना भी इसमें निहित होती है। एक बार एक आदमी न जाने कैसे शार्क मछलियों की लपेट में आ गया। शार्क मछलियाँ उसको टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहती थीं कि इतने में बहुत सी डालफिन वहाँ पहुँच गयीं और उस आदमी को अपने घेरे में ले लिया। एक डालफिन ने उस आदमी को अपनी पीठ पर बैठाया और तेजी से तैरती हुई शार्क मछलियों की लपेट से बाहर निकाल कर किनारे पर सुरक्षित छोड़ कर समुद्र में गायब हो गई।

डालफिन गहरे समुद्र में बहने वाली मछली है। यह लगभग 10 फुट लम्बी और काफी वजनी होती है। इसका मुँह पक्षियों की चोंच की तरह लम्बा सा होता है। इसकी तैरने की रफ्तार कभी-कभी 40 मील प्रति घन्टा से भी अधिक होती है।

यूनान की एक पुरानी कहानी में एक लड़के और डालफिन की दोस्ती का जिक्र आया है। यह मछली रोज सुबह बच्चे को अपनी पीठ पर बैठाकर स्कूल तक पहुँचा आती थी और शाम को वापस भी ले आती थी। गत शताब्दी में एक डालफिन ने कई जहाजों का पथ-प्रदर्शन कर जलीय चट्टानों से टकराते हुए बचाया था। अभी हाल में कुछ लोगों के आंखों की देखी हुई घटना यों है। 1943 में एक युवा स्त्री फ्लोरिडा के तट पर तैरती हुई दूर खुले हुए समुद्र में चली गयी। तट आँखों से ओझल होने के बाद उसका साहस जवाब दे गया और वह बेहोश हो गयी। आँखें खुलने पर उसने अपने को तट पर पाया। एक डालफिन ने उस डूबती हुई महिला को बचा लिया था और हिफाजत से लाकर किनारे डाल दिया था।

एक वैज्ञानिक जान लिली के अनुसार डालफिन आपस में बातचीत भी करती हैं। उनका तो दावा यहाँ तक है कि यदि प्रयत्न किया जाय तो डालफिन आदमी की तरह बातचीत भी कर सकती हैं। वह कई डालफिनों पर प्रयोग कर रहे हैं। उनमें से सबसे समझदार डालफिन को, जिसका नाम 'एलोरा' है, जान लिली ने बात करना सिखाने की कोशिश की है। वह कुछ अंग्रेजी शब्दों जैसे 'स्पीक', 'लाउड' को बोल लेती है तथा उनका अर्थ भी समझती है।

पेट में प्रकाश संश्लेषण

आहार की विचित्रतम प्रणालियों में से एक है इंगलिश चैनल के रेतीले तट पर पाये जाने वाले सपाट कीड़ों की आहार-प्रणाली। कन्वोल्यूटा रोस्कोफेन्सिस नामक यह सपाट कीड़ा बड़ा होकर मुँह से खाना बन्द कर देता है और अपने अन्दर ही शैवाल की खेती करके उसे खाता है।

वसंत के दिनों में जब यह कीड़ा अंडा फोड़कर बाहर निकलता है, इसके पास एक मुँह होता है, जिससे यह जल्दी-जल्दी कुछ विशेष प्रकार की समुद्री शैवालें निगलने लगता है। शैवाल निगल जाने पर भी जीवित रहते हैं और हजम होने के बजाय अन्दर उगने बढ़ने लगते हैं। कीड़ों की त्वचा पारदर्शी होने के कारण जल्दी ही यह सिर से पाँव तक हरा दिखने लगता है। इसके बाद कीड़ा मुँह से खाना बन्द कर देता है और इसके अन्दर के शैवाल प्रकाश-संश्लेषण की प्रक्रिया से जो स्टार्च पैदा करते हैं, उसी पर वह पलने लगता है।

कीड़ा अपने सहज ज्ञान से इस बात को समझ लेता है कि इस क्रिया के लिए धूप

आवश्यक है। इसीलिए समुद्र का ज्वार उतरने पर वह अपना प्रत्येक क्षण तट पर धूप खाने में बिताता है। धूप प्रतिक्रिया से उसके अन्दर के शैवाल हाइड्रोजन, आक्सीजन और कार्बन को शर्करा और स्टार्च में बदल देते हैं जिन्हें कीड़ा हजम कर लेता है। बाहर से इसको खाने को कोई आवश्यकता नहीं पड़ती है, इसलिए इसका मुँह बेकार पड़े रहने के के कारण सड़-गलकर नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार पाचन संस्थान भी काम करना बन्द करके लगभग समाप्त हो जाता है। आगे चलकर ज्यों-ज्यों कीड़ा प्रौढ़ होने लगता है, उसे भोजन की और आवश्यकता पड़ती है। वह धीरे-धीरे पीछे की ओर से अपने अंदर का खेत खाना शुरू कर देता है और जब सारी खेती समाप्त हो जाती है, वह भूख से मर जाता है।

लुप्त हुए विशालकाय जन्तु

तुम शायद यह न जानते होगे कि एक समय मानव सृष्टि से पहले, पृथ्वी पर विशाल दैत्याकार सरीसृपों का राज्य था। ये दैत्याकार बदलती हुई दुनिया की दौड़ में पिछड़ गए और सदा के लिए काल की गोद में विलीन हो गए। केवल उनकी प्रस्तरीभूत
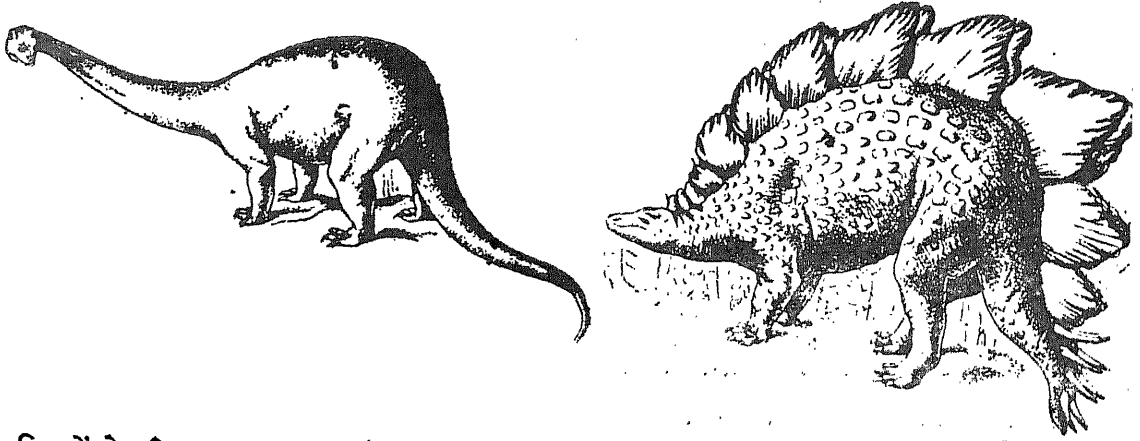
अस्थियों के ही आधार पर उनके आकार का पता लगता है। वैज्ञानिकों ने हजारों फुट की गहराई से चट्टानों के बीच से इन जन्तुओं के अस्थिपंजर खोद निकाले हैं और उन्हीं के आधार पर इनके शरीर की बनावट का अनुमान करते हुए चित्र बनाया है।

वैज्ञानिक इनको डायनोसॉर (भयंकर छिपकली) नामक विराट सरीसृप से सम्बोधित करते हैं (ऊपर के दो चित्र)। पृथ्वी पर लगभग 12 करोड़ वर्षों तक इन डायनोसॉरों का राज्य रहा और आज से लगभग सात करोड़ वर्ष पहले इनका एकदम लोप हो गया। इनमें कुछ 10 फुट तक लम्बे होते थे। डायनोसॉर के चार पैर थे। कँगारू के समान आगे के दो पैर छोटे तथा

[शेष पृष्ठ 18 पर देखें]

तितलियों का जीवन चक्र

★ प्रो० उमाशंकर श्रीवास्तव

अपने रंग-बिरंगे पंखों के कारण तितलियां अत्यन्त आकर्षक जन्तुओं में से समझी जाती हैं। तुम कदाचित यह भी जानते होगे कि ये केवल तरल पदार्थों के ही रूप में भोजन लेती हैं। वास्तव में इनका स्वाभाविक आहार फूलों का मधु है और इसको ग्रहण करने के लिये सहायक अंग भी रोचक हैं। तितली के मुखांग एक लम्बी नलिका के रूप में होते हैं जो विश्रामावस्था में या उड़ते समय घड़ी की कमानी की तरह लिपटी होती है, किन्तु फूल पर बैठते ही यह कमानी खुलकर सीधी हो जाती है और नलिका का खुला सिरा फूल की गहराई में स्थित मधु में पहुँच जाता है और फिर इस नलिका द्वारा मधु खींच लिया जाता है।

जितना रोचक तितलियों का रंग या उनका रहन-सहन है, उतना ही उनका जीवन-चक्र शिक्षाप्रद है। आओ, नींबू या संतरे के पौधों पर बहुधा उड़ती तितली के उदाहरण से इसका अध्ययन करें।

तितली अपने आहार वाले पौधे पर, सामान्यतः उनके कोमल कोपलों पर अंडे देती है। अंडे छोटे पोस्ते के दानों के समान होते हैं और पत्ती से चिपके होते हैं। आठ-दस दिनों में प्रत्येक अंडे से एक नन्हा शिशु निकलता है जो शीघ्र ही नन्हीं, कोमल पत्तियों के किनारों को कुतर कर खाने लगता है और साथ ही इसमें वृद्धि होने लगती है। यदि इस शिशु को हम ध्यान से देखें तो हमको इस बात पर बहुत आश्चर्य होगा कि इसके तथा तितली के बीच किसी प्रकार की समानता नहीं है। तितली के दो जोड़ा अथवा चार बड़े पंख होते हैं, शिशु पंखविहीन होता है, तितली के 3 जोड़ा पतली, लम्बी टांगें होती हैं, शिशु के शरीर में अनेक छोटी-मोटी टांगें होती है, तितली के मुखांग गोलाकार तथा तरल आहार ग्रहण करने वाले हैं, शिशु के मुखांग ठोस भोजन को कुतरने वाले इत्यादि। रचना के अनुरूप तितली उड़ने वाली और तरल भोजन करने वाली है, शिशु रेंगने वाला और ठोस आहार कुतर कर खाने वाला प्राणी है तितली के ऐसे शिशु को लार्वा या कैटरपिलर कहते हैं।

अंडे से निकलने पर शिशु लगभग चींटी की नाप का होता है। लगभग एक महीने में मरभुखों की तरह बड़ी मात्रा के भोजन खाकर, यह करीब पांच सेंटीमीटर लम्बा और आधा सेंटीमीटर मोटा हो जाता है किन्तु इसके रहन-सहन अथवा बनावट में कोई विशेष अंतर नहीं होता।

शिशु की वृद्धि क्रमिक नहीं होती, बल्कि एक विशेष रीति से होती है। अंडे से निकलने वाला शिशु तीन-चार दिन तक बढ़ता है। फिर उसकी बाढ़ रुक जाती है और
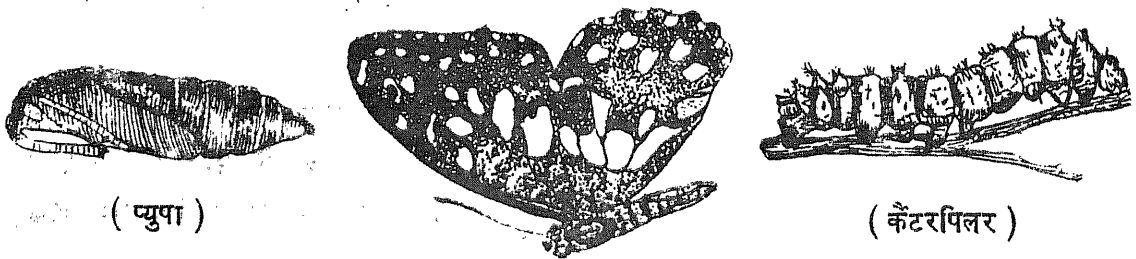
(प्युपा) (कैटरपिलर)

वह भोजन ग्रहण करना भी बंद कर देता है। एक-दो दिन बाद एक विचित्र क्रिया होती है। शिशु अपनी त्वचा का परित्याग करता है अर्थात् उसकी खाल की ऊपरी, पतली पर्त निकल जाती है। इस क्रिया को हम त्वक्पतन कह सकते हैं। त्वकपतन होते ही शिशु पुनः तेजी से आहार भक्षण करने लगता है और उसमें साथ ही तेजी से वृद्धि होने लगती है। पांच-छः दिनों के बाद फिर वृद्धि रुक जाती है, शिशु भोजन ग्रहण करना बन्द कर देता है और अन्त में पुनः त्वक्पतन की क्रिया होती है। इस प्रकार शिशु की सम्पूर्ण वृद्धि क्रमिक न होकर पाँच स्पष्ट अवस्थाओं या पगों में होतो है। दो त्वक्पतन की क्रियाओं के बीच की अवस्था को बहुधा "इंस्टार" कहते हैं, अतः तितली के शिशु जोवन में सामान्यतः पाँच इंस्टार होते हैं।

कदाचित तुम्हारे मन में इस सम्बन्ध में यह प्रश्न उठता होगा कि एक रंगीन, उड़ने वाली, तरल भोजन करने वाली तितली का शिशु क्योंकर उससे इतना भिन्न क्यों होता है ? और इस शिशु से किस प्रकार तितली बनती है ? पहले हम तुम्हारे दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करेंगे।

पांच बार त्वक्पतन के पश्चात शिशु की नाप अधिकतम पहुँच जाती है और अब पुनः एकबार यह आहार-ग्रहण करना बन्द कर देता है और इसकी वृद्धि रुक जाती है। यह अत्यंत शिथिल हो जाता है और सिकुड़ने लग जाता है और फलतः इसकी लम्बाई आधी या उससे भी कम रह जाती है और इसके चारों ओर किसी प्रकार की आरक्षक

खोल बन जाती है। कई तितलियों में यह खोल रेशम-जैसे धागों की या मकड़ी के जाले-जैसी होती है, कुछ में (जैसे मदार के पौधे पर पाई जाने वाली तितली के) यह मोम-जैसी होती है, इत्यादि। इस खोल में शिशु पूर्णतः निष्क्रिय अवस्था में लगभग एक सप्ताह पड़ा रहता है और इसके वाह्य रंग-रूप में तो परिवर्तन हो ही जाता है। इसके भीतरी अंगों में—बल्कि सम्पूर्ण संरचना में—भीषण परिवर्तन होते हैं। खोल के भीतर स्थित इस अवस्था को हम "प्युपा" कहते हैं। प्युपा निर्माण के पहले, तथा इस अवस्था के अन्त में भी त्वक्पतन होता है इसलिये यह भी एक "इंस्टार" है। इन दो त्वक्पतनों के बीच की अवधि को "प्युपल अवधि" या "प्युपल काल" कहते हैं।

जैसा ऊपर कहा गया है प्युपल अवधि में इस कीट की समस्त वाह्य तथा आन्तरिक संरचना में गम्भीर परिवर्तन होते हैं जिसके फलस्वरूप इस अवधि के अन्त में आरक्षक खोल में से अब हर प्रकार से पूर्ण, पंखदार तितली निकलती है। स्पष्ट है कि इस बीच दो प्रकार की क्रियायें हुई होंगी—शिशु अथवा लार्वा के शरीर के अनेक लाक्षणिक अंग जैसे भोजन कुतरने वाले मुख भाग, टाँगें, आदि नष्ट हुये होंगे और साथ ही तितली के विशिष्ट अंग जैसे पंख, मुख भाग, टाँगें, अनेक आंतरिक अंग, आदि का नव-निर्माण हुआ होगा। सारांश यह है कि इस बीच समस्त शरीर की ही संरचना बदल जाती है। प्युपल काल में होने वाले इन सम्पूर्ण परिवर्तनों को एकसाथ "कायान्तरण" या "रचनान्तरण" कहते हैं और कायान्तरण के फलस्वरूप तितली का शिशु प्रौढ़ तितली में बदल जाता है अर्थात् एक रेंगने वाला, पत्ती खाने वाला लम्बा, अनेक टाँगों वाला कीट, उड़ने वाले, रंगीन पंखों वाले, ३ जोड़ा टाँगों वाले तथा केवल तरल आहार ग्रहण करने वाले कीट में बदल जाता है। अतः आरक्षक खोल से निकलने वाली पंख-युक्त तितली उड़ती फिरती, फूलों से मधु ग्रहण करती है और जनन क्रिया में रत होकर पौधों पर अंडे देती है जिससे इनकी दूसरी पीढ़ी आरम्भ होती है।

कायान्तरण और त्वक्पतन कीटों की प्रमुख विशेषतायें हैं और इन क्रियाओं का कीट जीवन में बहुत महत्व है। आओ इस पर संक्षेप में विचार करें।

कीटों की शरीर रचना की विशेषता है उनकी खाल में कड़े क्युटिकल नामक पदार्थ के स्तर की उपस्थिति। इस पदार्थ के कारण जहाँ एक ओर कीट की रक्षा होती है वहाँ दूसरी ओर यह उसकी वृद्धि में बाधक होती है। दूसरे शब्दों में एक नन्हें शिशु कीट की वृद्धि, इस स्तर के कारण एक सीमा तक ही सम्भव है। प्रश्न उठता है कि ऐसी

दशा में शिशु की आवश्यकतानुसार वृद्धि कैसे हो ? इस समस्या का हल त्वक्तपन की क्रिया के द्वारा किया गया है। जब एक बार कीट शिशु वृद्धि की ऐसी सीमा पर पहुँच जाता है कि और अधिक वृद्धि क्युटिकल स्तर के कारण असंभव हो जाती है तब वृद्धि में अवरोध उत्पन्न करने वाले क्युटिकल स्तर का ही परित्याग हो जाता है। इस अवरोध के हटने पर कीट शिशु पुन: तेजी से बढ़ता है और फिर वृद्धि की सीमा प्राप्त होने पर त्वक्पतन की क्रिया होती है। इस तरह क्युटिकल के लाभ के साथ उससे होने वाली असुविधा दूर हो जाती है।

जीव-वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कायान्तरण तो बहुत ही महत्पूर्ण है। तितली वायतीय प्रकृति का कीट है और कुछ सीमित पौधों के फूलों से मधु के रूप में भोजन प्राप्त करती है। यह भोजन अल्प मात्रा में ही उपलब्ध है। यदि शिशु को सारे जीवन के लिये इसी आहार पर निर्भर रहना हो तो निश्चय ही यह अर्याप्त होगा। फिर यदि शिशु तितली जैसा ही हो तो वह फूल की गहराई में स्थित मधु तक कैसे पहुँच पायेगा और यदि पहुँच जाय तो बाहर निकलना लगभग असंभव होगा। अत: तितली का शिशु मधु पर निर्भर न रह कर पत्ती के रूप में ठोस भोजन ग्रहण करता है जो बहुत बड़ी मात्रा में उपलब्ध है और जिससे जीवनयापन के लिये अब एक बड़ा क्षेत्र प्राप्त हो गया। पत्ती खाने के लिये मुख-मार्ग को कुतरने, चबाने वाला होना चाहिये और पत्ती पर जगह-जगह घूमकर उपयुक्त स्थान पर पहुँचने के लिये शिशु में रेंगने की शक्ति होनी चाहिये। इस प्रकार शिशु का समस्त शरीर-विन्यास ठोस पत्ती जैसे भोजन ग्रहण करने के लिये अनुकूलित है। अब तितली के जीवन-काल में दो स्पष्टत: विविध रहन-सहन और संरचना वाले जीव हो गये—शिशु तथा प्रौढ़। सभी जन्तुओं में शिशु से प्रौढ़ बनता है। यह क्रिया कीट में भी होती है लेकिन दोनों अवस्थाओं में इतना अन्तर होने के कारण यह क्रिया अत्यन्त जटिल रूप से कायान्तरण के द्वारा होती है।

कुछ तितलियों, मक्खी, मच्छर आदि के जीवन चक्र का अध्ययन करो और देखो किस प्रकार ये जीव प्रकृति के बड़े क्षेत्र का, तथा विविध वातावरणों और आहार का उपयोग अपने जीवन में करते हैं और कैसे ये जीव अपने छोटे से जीवन काल में विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न वातावरण या रहन-सहन के लिये अनुकूलित हैं।

o o o

प्रकाशमय जुगनू

★ डॉ० अजय कुमार बोस

बरसात के दिनों सांझ के समय झुण्ड के रूप में बाहर निकले हुए प्रकाश बिखेरते हुए भृङ्गों के सुन्दर दृश्य को देखकर किसी कवि के मुँह से यह बोल फूटे—

'तारे सारे गगन के जैसे, धरती पर उतर आये,
चमक उठी बगिया सारी, मन झूम झूम जाये।'

हाँ, यही जुगनू हैं जिनकी जीवन प्रणाली तथा प्रकाश की रहस्य गाथा का वर्णन यहाँ पर करेंगे।

जुगनू छोटे जीव हैं। ये साधारणतया नम स्थानों और नम वातावरण में पाये जाते हैं। शिशु जुगनू के शरीर के निचले भाग में एक पट्टी पर कई सफेद-सफेद बिन्दु होते हैं जिन्हें हम प्रकाश अंग कह सकते हैं। प्रौढ़ जुगनुओं में केवल पेट के अन्तिम तीन चार खंड ही प्रकाश अंग होते हैं। ये प्रकाश अंग जाल की तरह बिछी हुई वायु नलिकाओं द्वारा जुड़े रहते हैं। जब जुगनुओं को अपने प्रकाश अंग टिमटिमाने की इच्छा होती है तो वे इन वायु नलिकाओं में वायु लेते तथा निकालते रहते हैं जिससे प्रकाश अंग जलते-बुझते रहते हैं।

शिशु जुगनू पंखहीन होता है अतः यह उड़ नहीं सकता और धरती पर रेंगता है। शिशु जुगनू के दूसर नाम ज्योतिरिंग, ज्योतिरिंमण व खद्योत शावक हैं। साधारणतया नर जुगनू ही उड़ता है, मादा जुगनू धरती पर ही रहती है। नर जुगनुओं को इसीलिये खद्योत या खज्योति (ख=आकाश, खज्योति=आकाश ज्योति) व मादा जुगनुओं को तमोमणि या तमोज्योति (तम=अंधेरा, तमोज्योति=अंधेरे की ज्योति) कहते हैं। जुगनुओं के कई अन्य नाम भी हैं जैसे उपसूर्य्यक, तमोभिद्, निमेषिक, दृष्टिबन्धु, चिलमीलिका, त्रिशंकु नीलमीलिक, ध्वान्तोन्मेष, प्रभाकीट, ध्वान्तक्ति आदि।

नर जुगनू के उड़ने का ढंग अनोखा होता है। यह पहले कुछ ऊँचाई तक उठता है फिर कुछ फुट नीचे गिरता है, फिर ऊपर उठता है और फिर नीचे गिरता है। एक बात ध्यान रखने योग्य है कि नर जुगनू सदैव प्रकाश उसी समय देता है जब वह ऊपर उठ रहा

हो। गिरते समय उसका प्रकाश बन्द रहता है। नरों का प्रकाश मादाओं के प्रकाश से अधिक तीव्र होता है।
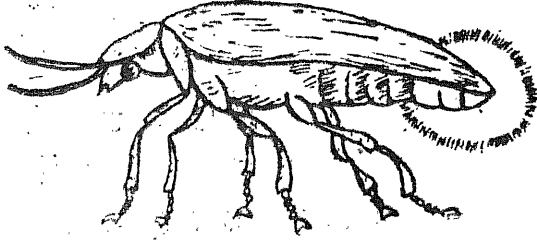
बैठा हुआ जुगनू
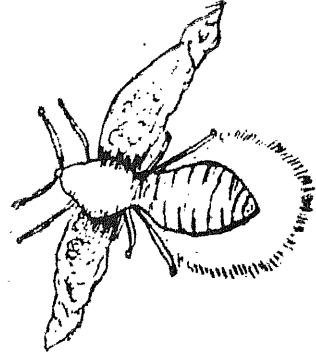
उड़ता हुआ जुगनू

जुगनू के प्रकाश का रंग विभिन्न जाति के जुगनुओं से भिन्न-भिन्न होता है—किसी में हरापन लिए हुए पीला, किसी में नारंगी आदि। कुछ जाति के जुगनुओं के अंडे भी चमकते हैं।

अपने प्रकाश संकेत द्वारा नर जुगनू उड़ते हुए मादा जुगनू को अपनी उपस्थिति बताते हैं जिसका उत्तर मादा जुगनू नजाकत के साथ अपने प्रकाश द्वारा देती है। हर जाति के जुगनुओं में यह प्रकाश संकेत यानी प्रकाश अंगों के जलने-बुझने का समयान्तर लगभग निश्चित रहता है। इस प्रकार एक जाति का नर जुगनू अपनी ही जाति के मादा जुगनू के पास पहुँच जाता है। इस प्रकार इनका प्रकाश संकेत इनकी प्रणयलीला में सहायता करता है।

घोंघे तथा केंचुए इनके भोजन हैं। घोंघे को मारने का तरीका भी इनका कोई कम आश्चर्यजनक नहीं। घोंघे पर आक्रमण कर ये अपने हँसिया जैसे अंग द्वारा उसके शरीर में एक प्रकार का विष भर देते हैं जिससे घोंघा बेहोश हो जाता है। बेहोश घोंघे को तब वे मार कर खा जाते हैं। यह बात बड़ी अजीब लगती है कि घोंघे को खाने पर इस विष का प्रभाव इन पर नहीं पड़ता है। भूख लगने पर मादा जुगनू कभी-कभी दूसरी जाति के नर जुगनू को आकर्षित कर पास बुलाकर मार डालती है और खा जाती है। यही नहीं, अधिक भूख लगने पर ये अपनी जाति के नर जुगनू को भी नहीं छोड़ती। मेढ़क व भेक इनके मुख्य शत्रु हैं।

फ्रांस के वैज्ञानिक राफेल दुबोआ ने जुगनुओं के प्रकाश पर महत्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने अपने अनुसंधान द्वारा जुगनू के प्रकाश अंगों में दो पदार्थ 'लूसीफेरिन' तथा 'लूसीफरेज' (लूसीफर=प्रकाश का वाहक) का पता लगाया। डॉ० डब्ल्यू० टी० मैककेलरॉय तथा डॉ० एच० एच० सेलिगर ने एक प्रकार के फायरफ्लाई से प्राप्त लूसीफेरिन की रासायनिक संरचना पर भी शोध कार्य किया और प्रयोगशाला में इसका संश्लेषण भी किया! लूसीफेरिन एक प्रोटीन है और लूसीफरेज एक एंजाइम। यह लूसीफेरिन ऊर्जा देने वाले रासायनिक एडीनोसिन ट्राइफॉस्फेट के साथ लूसीफरेज एंजाइम को उपस्थिति में वायु के ऑक्सीजन के आने पर चमक उठता है। यह एक रासायनिक प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप प्रकाश की उत्पत्ति होती है। लूसीफरेज इस प्रक्रिया में उत्प्रेरक का कार्य करता है।

यह प्रक्रिया प्रकाश रसायन प्रक्रिया के विपरीत है क्योंकि प्रकाश रसायन प्रक्रिया में प्रकाश की सहायता से रासायनिक प्रक्रिया की जाती है जबकि इस प्रक्रिया में प्रकाश की उत्पत्ति होती है। इस प्रक्रिया में एक अणु लूसीफेरिन के आक्सीकृत होने पर एक क्वांटम प्रकाश उत्पन्न होता है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इनके शरीर से उत्पन्न इस प्रकाश में ताप नहीं होता। अतः इस प्रकाश को हम 'शीतल प्रकाश' भी कह सकते हैं। वैज्ञानिक शीतल प्रकाश उत्पन्न करने में रत हैं पर अभी सफलता नहीं मिली है।

यह प्रकाश-क्षमता जुगनुओं के अलावा कुछ जाति के जीवाणु, स्पन्ज, निमटिएन्स, रेडोलियन्स, टीनोफ्रोर्स, कोरल्स, फ्लैजिलेट्स, घोंघे, क्रस्टेशिअन्स, क्लैम, कांतर या कनखजूरा, स्क्विड्स, मिलीपीड तथा गहरे समुद्र में मिलने वाली कुछ मछलियों में भी पायी जाती हैं।

यह प्रकाश कुछ रासायनिक प्रक्रियाओं में भी पायी जाती है—जैसे फास्फोरस या उसके ट्राईऑक्साइड के जलने में नीला प्रकाश, ग्रिगनार्ड रिएजेन्ट का हवा या ऑक्सीजन से ऑक्सीकृत करने पर हरापन लिए हुए नीला प्रकाश (आई० लिफशिट्ज व ओ० ई० कालबरर, 1932) ग्रिगनार्ड रिएजेन्ट का क्लोरोपिक्रिन के साथ प्रक्रिया में प्रकाश (ई० वेडेकिन्ड, 1906), स्ट्रॉन्शियम क्लोराइड को सल्फ्यूरिक एसिड में मिलाने से प्रकाश, अलकली धातुओं के वाष्प का हैलोजनों व कार्बनिक हैलाइडों से निम्न दाब पर प्रक्रिया में प्रकाश (एफ० हेबर व डब्ल्यू० जिश, 1922), परमाणु हाइड्रोजन का पारे की सतह पर गिरने से नीला प्रकाश (के० बोनहोफर, 1925), कैल्शियम सिलीकेट तथा हाइड्रोक्लोरिक एसिड की प्रक्रिया से प्राप्त जटिल ठोस उत्पाद का हवा या ऑक्सीजन से आक्सीकृत होने पर प्रकाश (एच० कौट्सकी, 1922-26), इसके कई उदाहरण हैं। इन

प्रक्रियाओं को केमील्यूमीनीसेन्स एवं जीव के शरीर में होने वाली प्रक्रिया को बायोल्यूमीनी-सेन्स (या जीव दीप्ति) कहते हैं। इन दोनों प्रक्रियों में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि केमील्यूमीनीसेन्स प्रक्रिया में उत्पन्न प्रकाश में ताप होता है जबकि बायोल्यूमीनीसेन्स प्रक्रिया में उत्पन्न प्रकाश में ताप नहीं होता है।

इस जीवदीप्ति की उत्पत्ति पर डॉ० मैककेलराय तथा डॉ० सेलिगर के विचारानुसार प्राचीन काल के जीवधारी एनेरोविक थे जिनका उद्भव ऑक्सीजन की उनुपस्थिति में हुआ। बाद में जल वाष्प के विघटन और प्रकाश संश्लेषण द्वारा ऑक्सीजन की उत्पत्ति हुयी जो इन जीवधारियों के लिए असहयनीय थी। इन जीवधारियों को इससे बचने के लिए ऑक्सीजन को रासायनिक विधि द्वारा जल निर्माण कर छुटकारा पाने का उपाय ही शेष था। अतः इन जीवधारियों के शरीर में विद्यमान कार्बनिक पदार्थों के ऑक्सीजन से जल बनाने की प्रक्रिया में उत्पन्न ऊर्जा प्रकाश के रूप में बाहर आयी। इस प्रकार के प्राणी जीवदीप्त हो गए। बाद में ऐरोबिक जीवधारियों का विकास हुआ जिनका जीवन ऑक्सीजन पर निर्भर था।

वैज्ञानिकों के सामने यह शोध का विषय है कि 'शीतल प्रकाश' कैसे उत्पन्न किया जाय क्योंकि अब तक प्राप्त सभी प्रकार के प्रकाश में ताप अनिवार्य रूप से पाया गया है। अगर ऐसा 'शीतल प्रकाश' हम बना सकें तो खानों में काम करने वालों के लिए यह एक सुखदकर घटना होगी क्योंकि इससे ज्वलनशील गैसों के जलने की संभावना बिलकुल न रहेगी।

कुछ देशों में लोग जुगनुओं को प्रकाश-साधन के रूप में प्रयोग में लाते हैं। इसके प्रकाश का उपयोग बया पक्षी भी अपने घोंसले को प्रकाशित रखने के लिए करती है। जापान में विशेष उत्सवों के अवसर पर जुगनुओं को घर की शोभा बढ़ाने के लिए लता और झाड़ियों के ऊपर रखते हैं।

जुगनू तथा उसका प्रकाश-रहस्य कीट-जगत का एक अनोखा उदाहरण है।

o o o

चमत्कारी आँख—राडार

★ डा० शिवप्रकाश

तुम पूछ सकते हो कि आँख तो आँख चमत्कारी आँख क्या होती है ? तो लो इस आँख का वर्णन यहां प्रस्तुत है। आकाश में अगर कोई वायुयान उड़ रहा हो तो कुछ दूर तक हम उसे देख सकते हैं पर सीमा से अधिक दूर होने पर हम उसे देख नहीं सकते। वायुयान या किसी भी वस्तु की दूरी और दिशा जानने के लिये हम जिस उक्ति को उपयोग में लाते हैं उसे राडार कहते हैं। राडार की खोज होने से हवाई जहाज और समुद्री जहाज बहुत से खतरों से बचाये जा सकते हैं।

राडार अंग्रेजी अक्षर **Radar** से बना है। इसका पूरा नाम हुआ रेडियो डिटेक्शन एन्ड रेंजिंग। स्वच्छ आकाश में ही नहीं वरन् अंधेरे में, आँधी, तूफान, कोहरा या वर्षा में भी इस यन्त्र की सहायता से दूर की अदृश्य चीजों का पता लगाया जा सकता है। यह यन्त्र रेडियो तरंगे प्रेषित करता है जो लक्ष्य से टकरा कर भेजने वाले तक वापस आ जाती हैं। रेडियो तरंगें जितना समय लक्ष्य तक जाने में लेती हैं उतने ही समय में वह वापस लौटती हैं। यह रेडियो तरंगे आने जाने में कितना समय लेती हैं यह जानकर लक्ष्य की दूरी का पता किया जाता है। इस रेडियो गूँज के प्रायोगिक महत्व को निकोला टेस्ला ने 1893 में सर्वप्रथम पहचाना था।

ध्वनि तरंगे एक सेकन्ड में 1100 फीट दूरी तै करती है जबकि रेडियो तरंगें एक सेकन्ड में 186000 मील की दूरी तै करती हैं। इस गति का अर्थ यह हुआ कि रेडियो तरंग लक्ष्य तक जाने और उससे टकराकर वापस आने में एक सेकन्ड लेती है तो लक्ष्य की दूरी 186294 का आधा अर्थात् 93147 मील है। जिस यन्त्र द्वारा ये रेडियो तरंगें प्रेषित की जाती हैं उसे मैग्नेट्रान कहते हैं। मैग्नेट्रॉन से ये तरंगें घूमते हुये ऐंटेना में जाती हैं जो इसे आकाश की ओर प्रेषित कर देता है। ये तरंगें जब किसी लक्ष्य से टकराती हैं और वापस आती हैं तो ऐंटेना में हल्की सी गूँज पहुँचती है और जिस यन्त्र पर इसका संकेत अंकित होता है उसे कैथोड-रे ऑसिलोग्राफ कहते हैं। यह ऐंटेना इस प्रकार

बराबर घूमता रहता है कि इससे निकली तरंगें सभी दिशाओं में फैलती रहती हैं। इसका महत्व युद्ध के समय बढ़ जाता है क्योंकि शत्रु का जहाज किसी भी दिशा से आकर हमला कर सकता है। उसकी उपस्थिति और दूरी जानकर शीघ्र ही कार्यवाही की जाती है।

रेडियो तरंगें वापस आकर जब ऑसिलोग्राफ पर ग्रहण होती हैं तो जलयान या वायुयान का धुन्धला सा चित्र बन जाता है। इस चित्र को देख कर ही इंजीनियर यह निर्णय करते हैं कि ये तरंगें किसी जहाज से टकराकर आई हैं या अन्य किसी वस्तु से।

जहाज कितनी ऊँचाई पर उड़ रहा है इस बात की जानकारी जहाज चालक को अवश्य होनी चाहिये। 1000 फीट से कम ऊँचाई होने पर राडार द्वारा ऊँचाई का पता नहीं चलाया जा सकता। वायुयानों में राडार बेकन लगे होते हैं जिस पर किसी शहर के हवाई अड्डे या उस शहर के प्रमुख मीनारों, इमारतों या पहाड़ी का चित्र अंकित हो जाता है और पायलट सावधान हो जाते हैं।

चाहे घना कोहरा हो या भीषण वर्षा या तूफान, यदि वायुयान में राडार लगा है तो वह बेधड़क उड़ता जायगा। रात में उड़ान भरते समय यदि पायलट देखता है कि राडार यन्त्र पर कोई चित्र अंकित हो रहा है तो उसे तुरन्त यह पता चल जाता है कि उसके रास्ते में कोई बाधा है। समुद्री जहाजों के रास्ते में पड़ने वाले हिम शैलों का भी इसी प्रकार पता चल जाता है और बचाव का उपाय कर लिया जाता है। यदि युद्ध का समय है तो यह जानकर कि शत्रु का जहाज उसका पीछा कर रहा है तो या तो समय रहने पर बचाव किया जा सकता है या फिर बमबारी करके शत्रु का जहाज नष्ट कर दिया जाता है।

इधर पिछली लड़ाइयों में सभी बड़े नगरों में खतरे की सूचना देने के लिये सायरन बजाये जाते थे। यह सायरन इसी राडार द्वारा शत्रु के बमवर्षक जहाजों का पता लगा कर बजाया जाता है।

युद्ध के समय पृथ्वी पर से ही शत्रु के बमवर्षक का पता राडार द्वारा चलाने पर एन्टीएयर क्राफ्ट तोपों का मुँह स्वतः शत्रु के बमवर्षक की ओर हो जाता है और साथ ही साथ सर्चलाइट भी प्रकाशमान हो जाती है। इस प्रकार राडार को अग्नि कन्ट्रोल राडार कहते हैं।

o o o

● कजाखस्थान (रूस) में पाई जाने वाली दीर्घाकार किलनी के जंघों पर ऐसा अंग होता है जो राडार का काम करता है।

[पृष्ठ 7 का शेष]

पीछे के पैर बहुत ही बड़े होते थे। ये पिछले दो पैरों पर ही अपने भारी भरकम शरीर को संभालते थे। इनकी पूँछ भी बहुत लम्बी और वजनी होती थी। डायनोसॉर अपने पूँछ से ही अपने स्थूल शरीर का सन्तुलन कर पाता था।

अफ्रीका में एक डायनोसॉर की हड्डियाँ मिली हैं। यह सबसे बड़ा जन्तु समझा जाता है। कन्धे के नीचे इसकी हड्डियाँ 20 फुट ऊँची हैं अर्थात् इसके कन्धे का हिस्सा एक मनुष्य की ऊँचाई से लगभग चौगुना रहा होगा। यह अपना सर पृथ्वी से लगभग 35 फीट ऊपर उठा सकता था। शरीर के बनावट की इस विशेषता के अतिरिक्त एक बात यह थी कि डायनोसॉर महामूर्ख जन्तु था क्योंकि उसका मस्तिष्क उसके शरीर की तुलना में बहुत छोटा था। डायनोसॉर का शरीर उसके मस्तिष्क से 25,000 गुना भारी था।

अब जरा विचार करो कि यदि ये विराट जानवर जीवित होते तो क्या होता ? क्या हम इन्हें भी हाथी, घोड़ों और ऊँटों की भाँति ही पाल सकते थे ?

o o o

'विज्ञान' आपकी मन पसन्द पत्रिका है इसको पढ़ें और इसके लिये पाठक तैयार करें।

तरल सोने की कहानी

★ अब्दुल गफ्फार मंसूरी

प्यारे बच्चो ! पेट्रोलियम के नाम से तो आप सभी परिचित हैं। यही खनिज तेल आज के युग का "तरल सोना" है जो हमें धरती के गर्भ से प्राप्त होता है। आज के युग में हमारे दैनिक जीवन की अधिकांश आवश्यकताएँ पेट्रोलियम के उत्पादों से पूरी होती हैं। इसलिए जिस देश में यह खनिज तेल जितना अधिक पाया जाता है, वह देश उतना ही समृद्ध समझा जाता है। आज आपको इस मूल्यवान तेल की कहानी सुनाते हैं।

आज से करोड़ों वर्ष पहले समुद्र के तल में मरे हुए समुद्री जीव-जन्तुओं तथा पौधों पर क्रमशः मिट्टी की परतें जमती चली गईं। यही परतें धीरे-धीरे एक दूसरे पर जमती हुई कई किलोमीटर मोटी, प्रस्तरीभूत चट्टानें बन गईं। इनके दाब और पृथ्वी के भीतरी ताप के कारण समुद्री पौधों एवं मृत जन्तुओं के अवशेष सड़-गल कर पेट्रोलियम के रूप में बदल गए। किन्तु पृथ्वी की आन्तरिक शक्तियों के कारण हुए परिवर्तनों के फलस्वरूप कालान्तर ऐसे समुद्रों के कई भाग थल भू-भाग बन गए।

पेट्रोलियम संसार के किसी भी भाग में पाया जा सकता है। चाहे वे झुलसते हुए रेगिस्तान हों या घने जंगल, कोहरा से ढके प्रदेश हों या अथाह जल से भरे हुये समुद्र तल। किन्तु भूमि के गर्भ में जहाँ "प्रस्तरीभूत" चट्टानें (परतवाली, सरन्ध्री चट्टानें) पाई जाती हैं उन्हीं स्थानों पर पेट्रोलियम के पाये जाने की सम्भवना होती है। ऐसे स्थानों की खोज का कार्य भू-वैज्ञानिक करते हैं। विमान, हेलीकाप्टर तथा अन्य अनगिनत जटिल यन्त्र तथा विभिन्न मशीनें इस काम में उसकी सहायता करती हैं। यन्त्रों द्वारा जहाँ पेट्रोलियम के पाए जाने के संकेत मिलते हैं, वहाँ तेल के कूओं की खुदाई का कार्य प्रारम्भ कर दिया जाता है।

जहाँ तेल का कूआँ लगाना होता है उस स्थान पर एक मंचनुमा ढाँचा तैयार किया जाता है जिस पर बर्मा मशीन लगा दी जाती है। इसके साथ एक चूड़ीदार बर्मा लगाया जाता है। मशीन बर्मे को जैसे-जैसे नीचे की ओर धकेलती रहती है, वैसे-वैसे भूमि में छेद

होता चला जाता है। इसी के साथ-साथ एक के बाद एक पाइप जोड़ते जाते हैं। अन्त में चट्टानों से तेल फूट निकलता है। तब तो प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रहती है। वास्तव में किसी भी देश के लिए इससे अधिक प्रसन्नता की और क्या बात हो सकती है जिस पेट्रोलियम में उस देश की समृद्धि निहित है।

भूमि के गर्भ में स्थित प्राकृतिक गैस, तेल एवं लवण जल
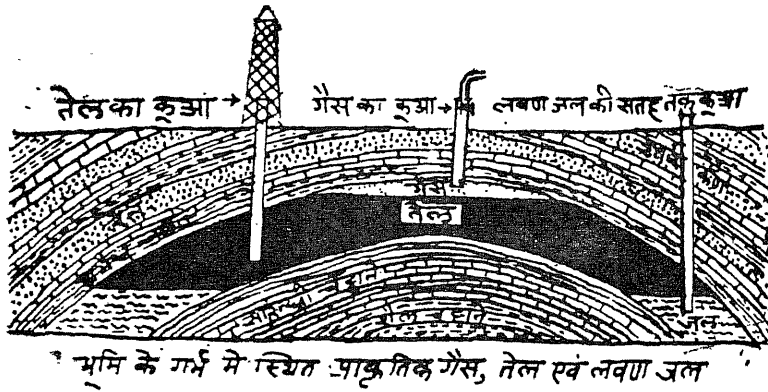
किन्तु यह सफलता इतनी सरलता से प्राप्त नहीं होती है। इसके लिए महीनों तक निरन्तर प्रयास करना पड़ता है। भूमि के गर्भ में लगभग दो-तीन किलोमीटर गहरा छेद करना पड़ता है। तब कहीं पेट्रोलियम की तह तक छेद हो पाता है जिसके लिए करोड़ों रुपयों की लागत आती है। फिर भी जितने कूएँ लगाए जाते हैं, उनमें से कुछ ही कूओं से प्रर्याप्त मात्रा में तेल प्राप्त होता है।

समुद्र तल से तेल प्राप्त करना तो और भी अधिक कठिन कार्य है। किन्तु भविष्य में समुद्र तलों से ही प्रर्याप्त मात्रा में तेल मिलने की सम्भावना है। इसके लिए जलयानों पर ड्रिल डेरिक लगाकर समुद्र के तल में छेद किया जाता है। इसमें खर्चे की लागत अधिक आती है। ('सागर सम्राट' की सहायता से भारत में समुद्री पेट्रोल की खोज की जा रही है)।

तेल की सतह तक पहुँचने पर अधिकांश कूओं से पहले प्राकृतिक गैस निकलती है जिसे पाइप लाइनों द्वारा बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों में पहुँचाया जाता है जहाँ ईंधन के रूप में इसका उपयोग होता है। कभी-कभी यह गैस काफी लम्बे समय तक निरंतर निकलती ही रहती है और कभी-कभी इसका दाब (प्रेशर) इतना अधिक होता है कि इसे नियन्त्रित करना भी एक समस्या बन जाती है।

प्राकृतिक गैस के नीचे पेट्रोलियम रहता है जो कि सरन्ध्री चट्टानों से रिस-

रिस कर अभेद्य चट्टानों के पास जमा होता रहता है। यह गहरे काले रंग का कुछ गाढ़ा, तरल, बदबूदार पदार्थ होता है, इसलिए इसे 'काला सोना' भी कहते हैं। पेट्रोलियम पानी से हल्का तथा पानी में अविलेय होता है। पेट्रोलियम की सतह के नीचे खारा (नमकीन) पानी होता है। अभेद्य चट्टानें पेट्रोलियम को अन्य स्थानों में रिसने से रोके रखती हैं।

कुओं से पेट्रोलियम निकालते समय कभी-कभी यह अत्यधिक वेग के साथ फव्वारे के रूप में फूट निकलता है। ऐसी स्थिति में इसे यन्त्रों द्वारा नियन्त्रित करके निकाला जाता है। आन्तरिक दबाव (प्रेशर) कम हो जाने पर इसे पम्प द्वारा निकाला जाता है।

इसके बाद तेल को साफ करने (शोधन) के लिए पाइप लाइनों या जलयानों अथवा माल गाड़ियों द्वारा तेल-शोधक कारखानों (रिफाइनरीज़) में पहुँचाया जाता है जहाँ इस कच्चे तेल को विभिन्न क्वथनांक पर बड़े-बड़े वाष्पित्रों (बायलरों) में उबाला जाता है। तेल के उबालने से बनी वाष्प को भिन्न-भिन्न ताप पर ठन्डा करके (संघनित) विभिन्न पदार्थ प्राप्त किए जाते हैं।

सबसे कम क्वथनांक पर वाष्पित होने वाला भाग पेट्रोलियम गैस (कुकिंग गैस) है। इसका उपयोग हमारे घरों में इंधन के रूप में भोजन बनाने में किया जाता है। यह गैस धुआँ नहीं देती है इसलिए स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक नहीं है।

पेट्रोलियम ईथर, लगभग 40° सेन्टीग्रेड पर वाष्पित होने वाला भाग है। यह रबर, चमड़ा एवं चिकने पदार्थों का अच्छा विलायक है। सूखी धुलाई एवं दवाओं में इसका उपयोग होता हैं। साधारण ताप पर इसे खुला छोड़ने पर शीघ्र ही वाष्पित हो जाता है अतः इसे ठन्डे स्थान पर एवं टाइट कार्क वाले पात्रों में सुरक्षित रखा जाता है।

पेट्रोल (गैसोलीन) 40°—140° सेन्टीग्रेड पर प्राप्त होता है। पेट्रोल से वायुयान, मोटर वाहन, कारें, जीपें, टेम्पो, टेक्सियाँ, स्कूटर, आदि चलते हैं जिससे हमारे आवागमन के साधन सुलभ होते हैं। आप कई स्थानों पर प्रायः देखते हैं कि जहाँ "एस्सो", कालटेक्स, बर्माशेल आदि अंग्रेजी के बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा होता है, इन पेट्रोल पम्पों पर पेट्रोल मिलता है। यहाँ भूमिगत टैंकों में पेट्रोल रखा जाता है। कारण कि पेट्रोल अधिक ज्वलनशील द्रव्य होने से हर समय इसमें आग लगने का खतरा रहता है। अतः इसे अग्नि एवं अधिक ताप के प्रभाव से बचाने के लिए भूमिगत गोदामों में

सुरक्षित रखा जाता है। इन पेट्रोल पम्पों के पास बीडी, सिगरेट अथवा जलती हुई कोई वस्तु ले जाना निषिद्ध हे।

मिट्टी का तेल (केरोसीन) 140°—260° पर प्राप्त होता है। हमारे घरों में लेम्प जलाने एवं भोजन बनाने या पानी गरम करने के लिए स्टोव जलाने में, ईंधन के रूप में, आधुनिक जेट विमान एवं कृषि यन्त्रों में इसका उपयोग होता है।

इसके बाद डीजल तेल प्राप्त होता है। इसका क्वथनांक लगभग 260° से० होता है। आजकल डीजल का उपयोग अधिक होने लगा है। मोटर वाहन, अन्तर दहन इंजिन ट्रकों, जलयान, वाटर पम्प, विद्युत उत्पादन सयंत्र, माल गाड़ियाँ, एवं टैक्टर आदि में इसका उपयोग होता है।

डीजल के बाद भारी तेल बच रहते हैं। ये स्नेहक तेल होते हैं। इनका उपयोग मशीनों में चिकनाई देने के लिए होता है—जैसे ट्रान्सफार्मर आयल बिजली घरों में, वाइट आयल सौन्दर्य सामग्रियों में, एवं ग्रीस का उपयोग मोटर वाहनों, ट्रकों एवं अन्य कई प्रकार की मशीनों में किया जाता है (ग्रीस को गाढ़ा करने के लिए इसमें साबुन एवं कुछ अन्य पदार्थ मिलाए जाते हैं)।

स्नेहक तेलों के बाद अधिक गाढ़ा स्नेहक तेल वेसलीन (पेट्रोलियम जेली) होता है जो मरहम बनाने एवं सौन्दर्य सामग्रियों में प्रयुक्त होता है। इसके बाद मोम प्राप्त होता है। मोम से मोम बत्तियाँ, एवं मोम पालिश बनता है। जलरोधी के रूप में, दवाओं एवं वायु से नमी सोखने वाले पदार्थों को नमी से बचाने हेतु, शीशियों के ढक्कनों पर इसका उपयोग होता है।

इस प्रकार जैसे-जैसे आसवन विधि द्वारा तेल शोधित होता जाता है, क्रमशः भारी मिश्रण नीचे बचते जाते हैं। इसके साथ ही इनका क्वथनांक भी बढ़ता जाता है। पेट्रोलियम के बचे हुए गाढ़े काले अवशेष (टार) से भी अनेक उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं जिनसे कई प्रकार के रसायनिक पदार्थ बनाये जाते हैं। इनमें से कुछ रंग, दवाइयाँ, विस्फोटक, एल्कोहल, रबर, प्लास्टिक, टेरेलीन एवं नाइलोन के कृत्रिम धागे, कीटनाशक दवाइयाँ खेतों के लिए उर्वरक आदि बनाए जाते हैं। जिस पत्रिका को आप पढ़ रहे हैं उसकी स्याही भी इसी के उप-पदार्थ से बनाई गई है। अन्तिम उप-पदार्थ बिटुमिन, एस्फाल भी ईंधन के रूप में एवं सड़कें बनाने के उपयोग में आता है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि संसार के लगभग दो हजार प्रकार के छोटे बड़े उद्योग सिर्फ पेट्रोलियम

के उत्पादों पर आधारित हैं। इस प्रकार हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि वास्तव में पेट्रोलियम के बिना किसी भी देश को औद्योगिक प्रगति सम्भव नहीं है। सच बात तो यह है कि पेट्रोलियम ही आज के युग की गति है।

संसार के तेल उत्पादन करने वाले देशों में पश्चिम एशिया के देश (साऊदी अरब, ईरान, ईराक, सीरिया, जोर्डन आदि) प्रमुख हैं जहाँ से संसार की कुल पेट्रोलियम सप्लाई का 50 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। सबसे अधिक पेट्रोलियम का उत्पादन संयुक्त-राज्य अमेरिका में होता है। इसके बाद क्रमशः रूस, बेनेजुएला और कुवैत हैं।

हमारे देश में तेल मुख्यतः आसाम तथा गुजरात में मिलता है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश में तेल उद्योग को विकसित करने की दिशा में अधिक ध्यान दिया गया। विदेशी तेल विशेषज्ञों की सहायता से धरती के नीचे छुपे तेल भन्डारों का पता लगाया गया। तेल-शोधक के नए कारखाने स्थापित किए गए। कुल मिलाकर इस समय हमारे देश में 9 तेल-शोधक-कारखाने (तेल-शोधनियाँ) हैं। इसके अलावा 3 शोधनियाँ (रिफाइनरीज) निर्माणाधीन हैं। इन सबमें मथुरा के निकट तेल-शोधनी प्रमुख है जो सोवियत संघ के सहयोग से निर्मित, सोवियत-भारत मैत्री का प्रतीक है। इसमें लगभग 60-70 लाख टन तेल शोधित हुआ करेगा। इससे 6 खाद कारखानों को नेफ्था मिलेगा। साथ ही अन्य पेट्रो-रसायन भी तैयार किए जावेंगे, जिनसे कृत्रिम रबर, प्लास्टिक, टेरीन के धागे आदि सहायक उद्योगों को बढ़ावा मिलेगा।

इस समय हमारे देश लगभग 70-80 लाख टन प्रतिवर्ष तेल का उत्पादन होता है। फिर भी कई लाख टन खनिज तेल विदेशों से प्रतिवर्ष मँगवाना पड़ता है जिसमें कई करोड़ रुपयों की विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है। जहाँ एक ओर हमारे देश में तेल का उत्पादन निरन्तर बढ़ रहा है वहाँ दूसरी ओर तेल की खपत भी अत्यधिक तेजी से बढ़ती ही जा रही है इसलिए तेल उद्योग में आत्म निर्भरता की दिशा में हमारे देश की सरकार अधिक प्रयत्नशील है।

हमारे देश में तेल के नए स्रोतों की खोज का कार्य निन्तर तेज गति से चल रहा है। अब तक कई नए स्रोतों का पता लग चुका है, जहाँ तेल के विशाल भन्डार मौजूद हैं जिनके आधार पर हमारे देश का भविष्य उज्जवल नजर आता है। तब हम निश्चित रूप से यह कह सकते हैं कि हमारे देश की पवित्र भूमि पर जिस प्रकार कभी दूध की नदियाँ बहा करतीं थी, उसी प्रकार भविष्य में "तरल सोने" की नदियाँ बहने लगेंगी, और हमारी यह कहानी साकार होगी।

ooo

धरती–हमारी माता

★ डा० शिव गोपाल मिश्र

धरती सबकी माता है क्योंकि इससे भोजन मिलता है। धरती ही इतनी उदार है कि एक का तीन देती है। थोड़े से बीजों के बोने पर अपार शस्य उपजाती है। तभी तो हमारे ऋषियों-मुनियों ने इसके गुन गाये हैं, इसे धरित्री, पृथ्वी, और न जाने किन किन शब्दों से सम्बोधित किया है। इसकी धूलि में न जाने कितनी पीढ़ियाँ लोट-पोट कर बड़ी हुई हैं। तभी तो कवियों ने धरती को माता कहा है। कितनी दयालु है वह।

यद्यपि धरती से सभी का नाता है, किसान और बैल ये दोनों 'धरती के पूत' कहलाते हैं। इनका सारा जीवन धरती के साथ बीतता है। एक वर्ग और है जिसका सम्बन्ध धरती से है—यह है मृदा वैज्ञानिकों का। ये वे विज्ञानवेत्ता हैं जो धरती के गुणों की परख करते हैं और अपना सारा जीवन उसके सम्बर्धन में लगा देते हैं।

आइये इस धरती के अन्तर में प्रवेश करें, इसके बारे में कुछ जानने का यत्न करें। सभी प्राकृतिक पदार्थों में यही ऐसी है जिसकी पहले पहल उत्पत्ति हुई, फिर वनस्पतियाँ उगीं और तब प्राणियों का विकास हुआ।

धरती को पृथ्वी, अवनी, मिट्टी, मृदा, भूमि जैसे शब्दों से पुकारा जाता है। ये शब्द वैसे मोटे रूप में भले ही एक ही अर्थ का द्योतन कराने में समर्थ हों, किन्तु इनमें मौलिक अन्तर है। जिसे किसान 'धरती' कहता है वह मिट्टी अथवा मृदा है।

मृदा की परिभाषा इस प्रकार की जाती है : यह वह पदार्थ है जो प्रकृति में उपलब्ध है, जिसकी एक निश्चित गहराई, गठन और जिसकी विशेषता उर्वरता है। गमले में भरी मिट्टी मृदा नहीं, न ही छत पर डाली गई मिट्टी मृदा है, भले ही वह वनस्पति उगाने के काम आती हो। तात्पर्य यह कि प्राकृतिक परिवेश में विकसित पदार्थ के रूप में मृदा का महत्व है।

मृदा कैसे बनी, इसकी क्या आयु है और यह किस प्रकार शस्योत्पादन में सहायक है—ये तीन मूलभूत प्रश्न हैं जिनके सही सही समाधान की आवश्यकता है। इनकी ही

जानकारी 'मृदा विज्ञान' है। यह विज्ञान मानव के भरण और पोषण में आज सबसे उपयोगी विज्ञान बन गया है। जिस राष्ट्र का मृदा विज्ञान पिछड़ा होगा वहाँ भुखमरी होगी और लोग परमुखापेक्षी होंगे।

भारतीय संस्कृति कृषि संस्कृति रही है। आर्यों ने धरती पर अन्न उपजाने की कला सीखी। उन्होने 'उर्वरता' की पूजा की। उन्होंने मार्ग प्रशस्त किया जीवित रहने का। किन्तु कालान्तर में कृषि के प्रति सभ्य समाज में वितृष्णा उत्पन्न होने लगी। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की माता धरती थी, वहाँ अब वह किसानों की सम्पदा बन गई। स्वाभाविक था कि कृषि सम्बन्धी ज्ञान में निरन्तर ह्रास आता।

सौर मण्डल से बिछुड़ने के बाद पृथ्वी दहकते हुये पिंड से किस प्रकार शीतल हुई, यह भूगोल का विषय है। शीतल पृथ्वी की ऊपरी पपड़ी में जो परिवर्तन हुये वह मृदा विज्ञान से सम्बन्धित है। न जाने, जीवन भर मिट्टी को देखते रहने पर भी लोगों के मन में इसके प्रति जागरूकता क्यों नहीं उत्पन्न होती जब कि मिट्टी अपने आप में एक रहस्यमय लोक की झाँकी प्रस्तुत करने में समर्थ है। लोग मिट्टी से डरते हैं, कपड़े गन्दे होने के भय से इससे प्रीति नहीं दिखाते। बड़े-बड़े प्रासाद निर्मित होते देखकर प्रसन्नता होती है किन्तु जुते खेतों को देखकर मन में विरक्ति का अनुभव होता है। यह मिट्टी के तात्विक ज्ञान न होने के कारण है।

मिट्टी की उत्पत्ति बड़े बड़े शैल खंडों से हुई है। हिमालय-जैसे पर्वत भी शैल खण्डों से बने हैं। कालान्तर में ये मिट्टी में परिणत हो जावेंगे। तभी तो विंध्याचल पर्वत घिस कर पठार बन चुके हैं और उस पर खेती होने लगी है।

मिट्टी का बनना एक निरन्तर क्रिया है। इसे अपक्षय कहते हैं जिसके द्वारा शैल खण्ड चूर्ण चूर्ण होकर मिट्टी का रूप धारण करते हैं। वास्तव में मिट्टी की पहचान उसका कणाकार है। अत्यन्त सूक्ष्म कणों से लेकर रोड़े जैसे खण्ड इसके कणाकार के अंग होते हैं।

अपक्षय उन शैलों का विखण्डन है जो ऐल्यूमिनो सिलिकेट से बने होते हैं। इनमें ऐल्यूमिनियम तथा सिलिकन इन दो प्रधान तत्वों के अतिरिक्त लोह, कैल्सियम, मैग्नीशियम, सोडियम, पोटैशियम जैसे कुल मिलाकर 30-35 तत्व रहते हैं। ये सभी तत्व विशिष्ट क्रिस्टलों के रूप में—खनिज रूप में—विद्यमान रहते हैं। विलयन, आक्सी-करण, अपचयन, कार्बोनेटीकरण आदि विभिन्न रासायनिक प्रक्रियायें तथा ताप में परिवर्तन

वर्षा, हिम, वायुक्षरण आदि विभिन्न भौतिक प्रक्रियायें अपक्षय में योग देती हैं। इनके फलस्वरूप बड़े बड़े शैल—चाहें तो चट्टान कह लें—चूर-चूर हो जाते हैं—वे आकर्षण-बल नष्ट हो जाते हैं जिनसे विभिन्न तत्व परस्पर मिले रहते हैं इस प्रकार शैलों का बहुत सा अंश विलयित हो जाता है, वह बहकर, दूर-दूर की यात्रा करता है और अन्त में निक्षेपित हो जाता है। शेष अंश अपने मूल स्थान पर रहा आता है और धीरे-धीरे अपक्षीण होता रहता है।

कालान्तर में शैल छोटे-बड़े कणों की मोटी सतह (कुछ सेंटीमीटर से कई सौ मीटर तक) का रूप धारण कर लेते हैं। दृढ़ बद्ध पदार्थ छितरे हुये कणों की राशि में परिणत हो जाता है। यही मिट्टी है, किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है वनस्पतियाँ उग कर इन कणों को बाँधने के लिये आवश्यक कार्बनिक पदार्थ प्रदान करती चलती हैं; गिरे छितरे कण तब आबद्ध होकर नवीन संरचनायें उत्पन्न करते हैं। कणों की विशिष्ट व्यवस्था 'मृदा विन्यास' कहलाता है। शस्यों के उगने तथा बढ़ने, जल के शोषण आदि में यह विन्यास अत्यन्त सहायक है। मृदा का दूसरा गुण उस का विन्यास है।

मृदा का मूलभूत गुण उसकी उर्वरता है। पौधे केवल जल तथा वायु से जीवित नहीं रह सकते। उनके लिये भोजन चाहिये। यह भोजन अथवा 'पोषण' खनिजों से युक्त होता है। ये खनिज वे ही तत्व हैं जिनमें शैलों का विघटन हुआ रहता है। पौधों के उगने के लिये इसीलिये मिट्टी की आवश्यकता होती है क्योंकि उसमें वे तत्व पाये जाते हैं जो पौधों के पोषण हैं। ये ही तत्व उर्वरता के सूचक हैं। पौधों को कुछ विशिष्ट तत्वों की आवश्यकता होती है। उनके बिना वे बढ़ नहीं पाते। नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम ये ऐसे ही तीन तत्व हैं। इनके अतिरिक्त कैल्सियम, मैग्नीशियम, गंधक आदि की आवश्यकता पड़ती है। कुछ तत्व अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में आवश्यक होते हैं—ये

उन सामान्य बच्चों की अपेक्षा, जो पूरा गर्भकाल भोगने के पश्चात् जन्म लेते हैं, वही बच्चे अधिक संख्या में मौत के ग्रास होते हैं जो समय से पूर्व ही जन्म लेते हैं। समय से पूर्व ही जन्मे बच्चों की मृत्यु दर अधिक होने का एक कारण उनकी श्वसन प्रक्रिया में गतिरोध है। क्योंकि ऐसे बच्चों के फेफड़े पूर्ण विकसित नहीं हो पाते, अतः वह उतनी मात्रा में आक्सीजन का शोषण नहीं कर पाते जितनी कि जीवन के लिए आवश्यक है। अब ऐसी आशा की जाने लगी है कि इन बच्चों की यह कमी दूर की जा सकती है।

स्टाकहोम के कारोलिन्सका अस्पताल के डा० गर्टी ग्रासमैन ने फेफड़े के वातकोशों से एक ऐसे आलेप का विकास किया है, जिसे समयपूर्व जन्मे बच्चों के गले पर प्रलेप कर देने पर, उनकी श्वांस लेने की क्षमता में अत्यधिक सुधार होता है। अभी यह परीक्षण पशुओं पर किया जा रहा है।

सूक्ष्ममात्रिक तत्व कहलाते हैं—यथा ताम्र, जिंक, बोरान, मालिब्डनम आदि। मिट्टी में सभी तत्व पाये जाते हैं। पौधों की वृद्धि के लिये मिट्टी ही सर्वोपयुक्त माध्यम है। किन्तु कब तक ? जब तक उसमें ये सारे तत्व रहें।

मिट्टी के अपरदन से ऊपरी सतह विनष्ट हो जाती है जिससे उर्वरता का ह्रास होता है। इसीलिये जिन मिट्टियों का अपरदन होता है, उनमें फसलें ठीक से नहीं उगतीं और उगे भी क्यों ? अपरदन तो मिट्टी की उपेक्षा के कारण होता है। यदि किसान जागरूक नहीं है तो उसकी सम्पदा का अक्षय भण्डार 'उर्वरता' तो लुटता ही रहेगा। इसी लिये 'भूमि संरक्षण' जैसी बड़ी-बड़ी योजनायें राष्ट्रव्यापी स्तर पर अपनाई जा रही हैं। अपरदन मिट्टी का सबसे बड़ा शत्रु है, लुटेरा है। हजारों-लाखों वर्षों में बनी मिट्टी की ऊपरी सतह देखते ही देखते लुप्त हो जाती है।

अपरदन को रोकने के लिये मिट्टी की संरचना को बनाये रखना आवश्यक है। उचित संरचना होने से वर्षा का जल मिट्टी के भीतर ठीक से प्रविष्ट होता रहता है। यही जल गहराई पर एकत्र होकर बाद में कूप जल, उत्स्रुत जल आदि के रूप में प्रकट होता है। मिट्टी की उचित देखभाल से जल की सुरक्षा और सदुपयोग होते हैं। अन्यथा यही जल नदियों में जाकर बाढ़ें लाता है जिनसे धन और जन दोनों की हानि होती है।

मिट्टी के सम्बन्ध में एक बात और स्मरणीय है। यह निरी निर्जीव कणों से नहीं बनी होती। इसमें असंख्य सूक्ष्मजीवाणु निवास करते हैं—इतने सूक्ष्म कि सूक्ष्मदर्शी के बिना देखे नहीं जा सकते। ये जीवाणु जीवित सूक्ष्म प्राणी हैं—इनमें गति करने, बढ़ने और मरने के गुण पाये जाते हैं। ये जीवाणु भूमि उर्वरता को बनाये रखने में सहायक हैं। इनकी लाखों वर्षों की क्रिया-तपस्या के फलस्वरूप मिट्टी में उर्वरता का गुण उत्पन्न हुआ और वह इन्हीं की तत्परता से स्थिर भी है।

ऐसी मिट्टी का—धरती का—क्यों न नमन एवं संकीर्तन किया जाय। वही हमारी पोषिका है, हमारी माँ है।

o o o

हिन्दी में पठन-पाठन का अभ्यास डालें। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है।

विज्ञान-कथा

ग्रहों की सैर

★ डॉ० चन्द्रविजय चतुर्वेदी

रात होते ही सभी बच्चे गुड़िया, सोना, बबलू, पप्पू, दादी माँ को घेर कर कहानी सुनने के लिए बैठ गये। बैठते ही सोना ने कहा—"दादी माँ ! आपने कहा था कि जब तू रानी बिटिया हो जायेगी तो तुझे नील परी की कहानी सुनाऊँगी। अब तो मैं रानी बिटिया हो गई हूँ, आज मैं एक बार भी रोई नहीं हूँ। दूध भी पिया है। स्कूल का होमवर्क भी किया है।" सोना को गोद में बैठाते हुये दादी माँ बोली—"अच्छा ! मेरी रानी बिटिया तुझे आज नील परी की कहानी सुनाऊँगी।"

"दादी माँ ! मैं एक ही सवाल पूछूँगा"—बबलू ने कहा—"यह नील परी जो सितारों से बहुत दूर परीलोक में रहती है, सपनों में राकेट पर चढ़कर आती है क्या ?"

"नील परी अपने पंखों के सहारे राकेट से भी तेज उड़ती है"—दादी माँ ने कहा।

दादी माँ से नील परी की कहानी सुनते-सुनते गुड़िया, बबलू और पप्पू तो सो गये पर सोना की आंखों में नींद कहाँ ! वह आकाश की ओर निहारती रही ! मन ही मन में नील परी को याद करती रही कि नील परी जो आ जाती तो उसके संग चाँद-सितारों की सैर करने जाती। कल्पना में डूबती, उतराती सोना को जैसे ही झपकी आई उसे लगा जैसे कोई धीरे-धीरे जगा रहा हो। एक आवाज आ रही थी—"सोना देखो मैं आ गई।"

सोना ने आँखें खोल दी। देखा सिरहाने नीलपरी बैठी थी। सोना खुशी से लिपट गई। दादी माँ की कहानी जैसी ही नीलपरी—नीले-नीले मोर पंख, सोने की गुड़िया सी।

खुशी से झूमते हुये सोना ने कहा—"मेरी अच्छी परी मौसी, मुझे चाँद-तारों तक ले चलो और सबेरे मम्मी-पापा के जगने तक वापस कर जाना।"

सोना चलने को तैयार हो गई। अचानक उसे पप्पू का ध्यान आ गया वह बोली—"परी मौसी ! साथ में पप्पू को भी ले लूँ। मुझे दो बातों का डर है। एक तो सितारों की

सैर करके लौटने पर जो मैं देर से जगी तो पप्पू नाश्ता में मेरे हिस्से का भी हलुआ चट कर जायगा। दूसरे सैर की बात जो बबलू से बताऊँगी तो वह उसे गप्प मान लेगा। भला पप्पू गवाही देने के लिये तो रहेगा।"

सोना ने पप्पू को भी जगा लिया। परी मौसी से मिलकर पप्पू खुशी से नाच उठा। थोड़ी देर में दोनों परी मौसी के साथ आकाश में उड़ने लगे।

आकाश में उड़ते हुये परी मौसी ने कहा—"सोना पहले तुम कहाँ जाना चाहोगी ?"

सोना बोली—"परी मौसी ! रात में सूरज किस गुफा में सोता है ? पहले वहीं चलें।"

"अरे पगली ! सूरज किसी गुफा में छिपता नहीं। तुम्हारी यह पृथ्वी माँ अपनी कीली पर घूमती रहती है जिसके कारण दिन और रात होते हैं। कीली पर घूमने पर पृथ्वी का जो भाग सूर्य के सामने होता है वहाँ दिन होता है और बाकी आधे भाग में रात होती है।"

"मौसी ! पृथ्वी से सूरज कितनी दूर है ?" पप्पू ने पूछा। "बेटे ! सूर्य पृथ्वी से 14 करोड़ 95 लाख किलोमीटर दूर है।"

"अच्छा मौसी ! दादी माँ कहती हैं कि सूरज के सात घोड़े जो सूरज से प्रकाश लेकर पृथ्वी पर पहुँचाते हैं उनकी रफ्तार दुनिया में हर रफ्तार से तेज है। अगर हम सूरज के इन प्रकाश के घोड़ों पर बैठकर जायँ तो सूरज तक कितनी देर में पहुँच सकते हैं ?" सोना ने पूछा।

"तुम्हारी दादी माँ जिन्हें सूरज के घोड़े कहती हैं वे प्रकाश की तरंगें हैं। एक सेकेण्ड में ये तरंगें 3 लाख किलोमीटर की दूरी तै कर सकती हैं। यदि तुम इन तरंगों पर बैठ कर जाओ तो सूरज तक 8 मिनट में पहुँच सकते हो।"

"अरे ! मजा आ जाय मौसी ! जो सूरज का घोड़ा किसी दिन मिल जाता तो आठ मिनट में सूरज तक पहुँच जाते। पापा की कार से हम घर से स्कूल तक पाँच मिनट में पहुँचते हैं।"—चहकते हुये पप्पू ने कहा। परी मौसी से अनुरोध करते हुये सोना ने कहा—"परी मौसी, आप सूरज का कोई एक घोड़ा ला सकती हैं ?"

हँसते हुये नील परी ने कहा— "बेटे ! सूरज के घोड़े पकड़े नहीं जा सकते और सूरज तक पहुँचना न तो सम्भव है और न ही उचित। सूरज पर 6000° सें० ताप रहता है जिसमें तुम न केवल झुलस ही जाओगे बल्कि जल कर गैस बन जाओगे। सूरज का

धरातल ठोस नहीं बल्कि गैसीय है। पृथ्वी का कोई भी पदार्थ वहाँ साबूत नहीं बच सकता। बच्चों ! हम लोग आसमान में बहुत दूर तक आ गये हैं, तुम्हें हम सूरज के परिवार से मिलायेंगें।"

सूरज के परिवार में कौन कौन लोग हैं ?' पप्पू ने पूछा।

'सूरज का परिवार बहुत बड़ा है। नौ तो उसके लड़के-लड़कियाँ हैं जो उसके इर्द गिर्द चक्कर काटते रहते हैं। किसान की भाषा में इन्हें ग्रह कहा जाता है। इन ग्रहों के नाम हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, वारुणि, वरुण और यम। इसके अलावा सूरज के परिवार में उपग्रह हैं। शनि के कुल 9 उपग्रह हैं। पृथ्वी का एक उपग्रह है—चन्द्रमा। वृहस्पति के बारह उपग्रह हैं। मंगल और वरुण के दो दो उपग्रह हैं। ये उपग्रह, ग्रहों का चक्कर काटते रहते हैं।
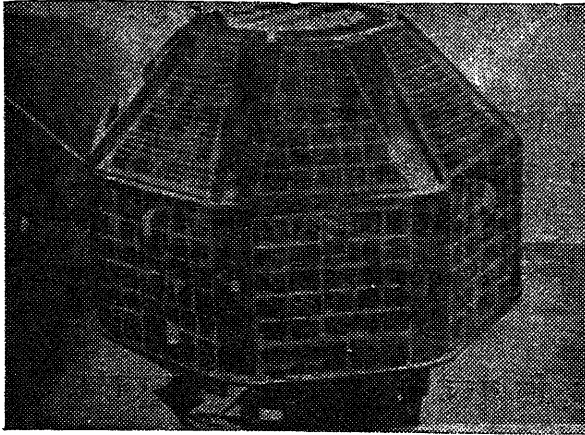
भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा बनाया गया प्रथम उपग्रह बंगलौर में तैयार हो रहा है जो1974 के अंत तक एक रूसी कास्मोड्रम से आकाश में छोड़ा जायगा। उपग्रह को ऊर्जा और शक्ति सिलिकॉन सौर सेलों तथा निकेल-कैडमियम बैटरियों से मिलेगी। सौर सेल, सौर विकिरण द्वारा प्राप्त ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तित करेंगे। जब उपग्रह अपनी कक्षा के अंधियारे हिस्से में आयेगा, तब निकेल-कैडमियम बैटरियाँ काम शुरू कर देंगी। जब उपग्रह प्रकाश में आयेगा तब ये बैटरियाँ पुन: आवेशित हो जायेंगीं। सौर सेलों को समूहों में जोड़कर उपग्रह पर लगाया गया है। इस प्रणाली से कुल 50 वाट विद्युत निकलेगी, जिससे सारे यन्त्र और उपकरण चल सकेंगे।

नील परी सोना और पप्पू को इन ग्रहों को दिखलाती है। वह सबसे पहले बुध की ओर चलती है। बुध के समीप जाकर परी मौसी ने कहा—'देखो यह बुध है, जो सूरज के सबसे नजदीक है--लगभग 6 करोड़ किलोमीटर सूरज से दूर। बुध के एक भाग में सदा दिन रहता है तथा दूसरे भाग में सदा रात। बुध का एक दिन हमारे 9 दिनों के बराबर होता है। बुध में वायुमण्डल नहीं के बराबर है। पृथ्वी की भाँति यहाँ न तो बादल होते हैं और न ही वर्षा होती है। इसका धरातल पथरीला होता है।"

"क्या चन्द्रमा की भाँति ?"—सोना ने पूछा।

"हाँ चन्द्रमा की भाँति ही।"—परी मौसी ने उत्तर दिया।

इसके बाद सोना और पप्पू को लेकर नील परी शुक्र ग्रह की ओर चल पड़ी।

'यह ग्रह बुध से कितनी दूरी पर है ?'—पप्पू ने पूछा।

'हम बुध से 4 करोड़ 80 लाख किलोमीटर की दूरी तय करने पर शुक्र ग्रह तक पहुँचेंगे। यह ग्रह पृथ्वी से कुछ छोटा है। इसका वर्ष हमारे 225 दिनों के बराबर है।" शुक्र ग्रह पर पहुँचकर पप्पू और सोना ने देखा कि यहाँ धूल की तेज आँधियाँ, गड़गड़ाते बादल और धमाकों से गूँजते हुये तूफान झलकते रहते हैं।" इस ग्रह पर बादलों को देखकर सोना ने पूछा—'मौसी ! ये बादल तो पानी बरसाते होंगे और इस ग्रह पर मोर और पपीहे तो जरूर रहते होंगे ?" इस पर नील परी ने कहा—'नहीं बच्चों ! इस ग्रह पर जीवन ही नहीं है। न तो बेचारे मोर नाचते हैं और न ही पपीहे पी पी करते हैं। ये जो बादल दिखाई दे रहे हैं ये घातक गैस कार्बन डाइ आक्साइड के हैं। थोड़ा बहुत पानी इन बादलों में अवश्य रहता है जो बरसता भी है पर इस ग्रह के धरातल को छूने के पहले ही भाप बनकर उड़ जाता है।"

शुक्र ग्रह से पप्पू और सोना बहुत निराश हुये। नीलपरी इन बच्चों को लेकर मंगल ग्रह की ओर चल पड़ी जो शुक्र ग्रह से 12 करोड़ 80 लाख किलोमीटर की दूरी पर है। नील परी ने बतलाया कि यह छोटा ग्रह है, हमारी पृथ्वी का आधा। इसका वर्ष हमारे 387 दिनों के बराबर होता है। इस ग्रह के नजदीक पहुँच कर पप्पू चिल्ला पड़ा—'अरे सोना ! यह ग्रह तो बिल्कुल लाल है।' उस पर नील परी ने कहा—'इसके धरातल का रंग लाल है क्योंकि मंगल की चट्टानों और रेत में लोहे का अंश है। इसका लाल धरातल रेतीले मैदानों से बना है जिसमें रेतीले तूफान उठते रहते हैं।'

मंगल ग्रह के बाद वे वृहस्पति की ओर बढ़े। यह ग्रह सूर्य से काफी दूर है, लगभग 78 करोड़ किलोमीटर। वृहस्पति के नजदीक पहुँच कर नीलपरी ने बतलाया—'यह सूर्य का भारी भरकम पुत्र है। क्षेत्रफल में पृथ्वी से लगभग 120 गुना बड़ा और वजन में 313 गुना अधिक। भारी भरकम होने के बावजूद यह है बहुत ही चुस्त।'

सोना और पप्पू ने देखा कि वृहस्पति के धरातल पर भयानक शीतलता है। नीलपरी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि यहाँ का ताप बर्फ के जमने से भी 130° सें० कम है।

वृहस्पति के बाद वे शनि की ओर बढ़े। परी मौसी ने उन्हें बताया—'यह भी एक

भारी भरकम ग्रह है, बड़ा ही शान वाला। इसे पगड़ी वाला ग्रह भी कहते हैं। यह सूर्य से 142 करोड़ 70 लाख किलोमीटर की दूरी पर बसा है। इसका ताप बर्फ के जमने से लगभग 180° सें० कम होता है।

इतनी यात्रा तक पप्पू को झपकी आने लगी। सोना ने कहा—'परी मौसी ! कहीं रात बीत न जाय और सुबह होने पर हम दोनों को न पाकर मम्मी पापा परेशान होने लगें।' नीलपरी बच्चों को लेकर लौट पड़ी। सोना ने रास्ते में कहा—'मौसी ! वारुणि, वरुण और यम के बारे में भी कुछ बताती चलो।'

नीलपरी ने कहा—'ये तीनों ग्रह बहुत ही दूर हैं। वारुणि सूर्य से 285 करोड़ किलोमीटर, वरुण 450 करोड़ किलोमीटर और यम 590 करोड़ किलोमीटर दूर हैं। वारुणि का 1 वर्ष हमारे 84 वर्ष के बराबर है।'

सोना भी सो गई। नीलपरी पृथ्वी तक पहुँच भी चुकी थी। पप्पू और सोना को उनके बिस्तर पर सुला कर नीलपरी परलोक को वापस चली गई।

सुबह होने पर नाश्ते के टेबुल पर सोना बड़ी शान से नीलपरी के साथ की यात्रा, मम्मी डैडी को सुनाने लगी, इस पर बबलू ने कहा—'आण्टी जी ! सोना क्या किसी गप्प कम्पटीशन के लिये तैयार हो रही है ?'

पप्पू ने बिगड़ कर कहा—'जी नहीं। यह गप्प नहीं है। मैं भी साथ गया था।'

'लगता है रात में सोना ने तुम्हें टाफी खिला दी है।' बबलू ने कहा, सब हँस पड़े।

o o o

[पृष्ठ 36 का शेष]

कैन्सर भी हो जाता है, पेट गड़बड़ जैसे पेप्टिक अल्सर, कब्ज, अस्थि रोग जैसे पोलियो, हृदय रोग, उच्च रक्त चाप आदि रोग सामान्यतः पाये जाते हैं।

अतः अन्त में हम कह सकते हैं कि शर्करा वास्तव में एक मीठा जहर है। हमें इसका कम से कम प्रयोग करना चाहिये। हमारा आहार शर्करा से यथासम्भव मुक्त एवं प्रोटीन आधिक्य से युक्त होना चाहिये। यह अटल सत्य है कि उपरोक्त सभी रोगों को प्रोटीन आधिक्य युक्त भोजन, जो कम शर्करा से मुक्त हो, निरन्तर प्रयोग करने से दूर किया जा सकता है।

o o o

गुलाबी–गुलाब

★ श्याम सुन्दर पुरोहित

बच्चों ! गुलाब को तुम सभी जानते हो। यह एक ओर भगवान को चढ़ाया जाता है तो दूसरी ओर मनुष्य अपने स्वयं के लिए उपयोग में लाता है। वैज्ञानिक इसे रोजा के नाम से वर्णित करते हैं। रोजा की कई जातियाँ हैं जिनमें से रोजा इंवोलुक्रेटा, रोजा डेमरोना तथा रोजा बोरबोनिका मुख्य हैं। वनस्पतिविदों ने भारतवर्ष में गुलाब की लगभग 200 जंगली जातियाँ प्रेक्षित की हैं। इन्हीं जातियों के संकरीकरण से इन्होंने लगभग 8000 से भी अधिक नई किस्में तैयार कर ली हैं। गुलाब को विभिन्न जातियों के फूलों के आकार, रंग, सुगन्ध तथा पौधों के आकार के द्वारा पहचाना जा सकता है। सर्वप्रथम बाबर ने ही गुलाब का परिचय भारतवासियों को सन् 1526 में करवाया। गुलाब से निकलने वाली भीनी-भीनी सुगन्ध को आटो कहते हैं। आटो निसारित करने की सर्वप्रथम विधि नूरजहाँ की माता सुलताना बेगम ने सन् 1615 में आविष्कृत की थी। आटो वास्तव में गुलाब में उपस्थित उड़नशील तेल को कहते हैं। भारत में फसली गुलाब को दमस्क के नाम से जाना जाता है।

गुलाब की खेती

भारत में गुलाब की खेती भी होती है क्योंकि यह फूल आर्थिक महत्ता की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में गुलाब के बड़े-बड़े खेत हैं। उत्तर प्रदेश में इसकी खेती गाजीपुर, हाथरस, सिकन्दरा राव, कन्नौज तथा इसके आसपास के क्षेत्रों में होती है। राजस्थान में इसकी अत्यधिक खेती नाथद्वारा (उदयपुर) से 10 मील दूरी पर स्थिति ऐतिहासिक स्थान हल्दीघाटी व खमनोर के आसपास के क्षेत्रों में की जाती है। मेवाड़ के लोगों की ऐसी धारणा है कि राणाप्रताप के सैनिकों का युद्ध के दौरान जितना खून बहा था वही खून आज गुलाब के रंग के रूप में हमारे सामने आ रहा है।

उत्तर प्रदेश व राजस्थान के उपर्युक्त इलाकों की भूमि और जलवायु गुलाब की खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त है। गुलाब की विभिन्न किस्मों का पुष्पन भिन्न-भिन्न समय पर होता है। उदाहरणार्थ गुलाब की दमस्क किस्म जनवरी के मध्य में फूल देना आरम्भ

करती है तथा 40 से 45 दिनों तक निरन्तर फूल देती रहती है। गुलाब की एड्वर्ड किस्म, उत्तर प्रदेश में, मार्च एवं अप्रैल महीनों में तथा मद्रास से अक्टूबर से जनवरी तक फूल देती है। गुलाब की बुसरा किस्म मुख्य रूप से गर्मी से पुष्पन करती है।

गुलाब की आर्थिक महत्ता

भारत के बहुत से कुटीर-उद्योग गुलाब की फसल पर निर्भर रहते हैं। गुलाब की भिन्न-भिन्न किस्में सुगन्धित तेल, गुलाब जल, गुलकन्द, तथा इससे सम्बन्धित वस्तुएँ तैयार करने में काम आती हैं। ऐसा अनुमान है कि भारत में हर साल 600,000 पौंड दमस्क के तथा 500,000 पौंड बुसरा के फूलों की प्राप्ति होती है। दमस्क किस्म के फूलों की फसल के अधिकांश भाग को गुलाब जल तैयार करने में उपयोग किया जाता है। इसी किस्म के गुलाब से निस्सारण विधि द्वारा सुगन्धित तेल की भी प्राप्ति की जाती है। फसल के कुछ भाग को गुलकन्द, इत्र, केशतेल आदि के निर्माण में भी प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार एडवर्ड किस्म के फूलों की फसल से आटो, इत्र, गुलकन्द आदि तैयार किया जाता है।

आटो का रासायनिक संघटन

आटो विभिन्न प्रकार के कार्बनिक रसायनों के मिश्रण से बना होता है। इसके मुख्य घटक फिनाइल, ईथाइल, स्टीयरोप्टीन, नेरोल, एस्टर, सिट्रल, नोनाइल, एल्डीहाइड, यूजीनोल, सेक्स्वीटरपीन एल्कोहल आदि हैं।

एडवर्ड गुलाब से प्राप्त किये आसवित आटो का आपेक्षित घनत्व 15.5015, वर्तनांक 1.5015, अम्लीयता 5.8, एस्टरमान 33.9, ऐसीटिलेशन के पश्चात् प्राप्त हुआ एस्टरमान 278.7, स्टीयरोप्टीन की मात्रा 9.7 प्रतिशत अंकित की गई है।

भारत का सबसे प्राचीन सुगन्धित तेल व इत्र बनाने का कारखाना गाजीपुर (उत्तर प्रदेश) में आज से लगभग 315 वर्षों पहले स्थापित किया गया था। वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश में हाथरस, सिकन्दरराव, कन्नौज आदि क्षेत्र मुख्य हैं। भारत में अत्यधिक गुलकन्द का उत्पादन कोलेगल में होता है।

राजस्थान में गुलकन्द, इत्र, आदि बनाने का सबसे बड़ा केन्द्र नाथद्वारा (उदयपुर) में है।

o o o

शर्करा, अपराध एवं रोग

★ दीपक

प्रत्येक जीव को अपने जीवन को बनाये रखने के लिये प्रत्येक समय कुछ न कुछ ऊर्जा की आवश्यकता होती है। लगभग 99 प्रतिशत जीव इस ऊर्जा को अपने शरीर की कोशाओं में माइटोकोन्ड्रिया नामक कणों द्वारा शर्करा को विखन्डित कर उत्पन्न करते हैं और यह शर्करा जीवों को सेल्यूलोज, सुक्रोज, माल्टोज, लैक्टोज या ग्लूकोज के रूप में प्राप्त होती है। एक स्वस्थ मनुष्य को प्रतिदिन 58 ग्राम शर्करा की आवश्यकता होती है। यह विभिन्न कार्बोहाइड्रेट्रों के रूप में ग्रहण की जाती है। पाचन क्रिया के पश्चात् यह शर्करा ग्लूकोज के रूप में आँतों में स्थित रक्त वाहिनियों द्वारा अवशोषित कर ली जाती है एवं फिर यह यकृत निवाहिका शिरा (हिपेटिक पोर्टल वेन) द्वारा यकृत में पहुँचा दी जाती है।

यकृत में आने के पश्चात् आवश्यकता से अधिक शर्करा का अनेक एन्जाइमों एवं इन्सुलिन हार्मोन (पैंक्रियाज से स्रावित) की सहायता से ग्लाइकोजन में परिवर्तन हो जाता है। शेष शर्करा हृदय में होती हुई शरीर के अन्य अंगों में पहुंचती है। यहाँ पर यह नवनिर्माण व ऊर्जा उत्पन्न करने के काम आती है।

प्राय: देखा जाता है कि कुछ लोग शर्करा का प्रयोग बहुत अधिक करते हैं। इनमें से कुछ लोगों के रक्त में शर्करा सामान्य मात्रा (104 मिलीग्राम) से अधिक तथा कुछ लोगों में कम मात्रा में पाई जाती है। ये दोनों स्थितियाँ ही रोग एवं अपराधों की मुख्यतम् कारणों में से हैं।

प्रश्न उठता है कि शर्करा अर्थात् मीठा खाने से मनुष्य के रक्त में शर्करा की मात्रा सामान्य मात्रा से बढ़ भी जाती है और कम भी हो जाती है परन्तु कैसे ? इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—(1) शर्करा का अधिक मात्रा में प्रयोग करने से रक्त में अधिक शर्करा आती रहती है जो कि शरीर के अंगों द्वारा पूर्ण रूप से प्रयोग में नहीं आ पाती है और शर्करा रक्त में अधिक रह आती है जो कि शरीर के वृक्कों

द्वारा मूत्र के साथ निकाल दी जाती है और मनुष्य को डायबेटिज् (शुगर की बीमारी) होती है। (2) शर्करा के रक्त में अधिक मात्रा में आ जाने के कारण पैन्क्रियाज उत्तेजित होकर अधिक से अधिक इन्सुलिन स्रावित करने लगता है और रक्त की शर्करा ग्लाइकोजन में परिणत हो जाती है और रक्त में शर्करा मात्रा कम हो जाती है। रक्त में शर्करा की मात्रा कम हो जाने को हाइपोग्लाइसीमिया कहते हैं। हाइपोग्लाइसीमिया कई रोगों का कारण बनता है।

शर्करा का यकृत द्वारा ग्लाइकोजन में परिवर्तन कोई ऐसी क्रिया नहीं है जो निरन्तर चलती रहे। ग्लाइकोजन की अधिकतम मात्रा जो यकृत में रह सकती है लगभग 150 ग्राम है। इससे अधिक ग्लाइकोजन हो जाने पर शेष शर्करा वसा में परिणत होने लगती है और रक्त के साथ यह वसा विभिन्न शिराओं व धमनियों की भीतरी दीवार पर जमा होने लगती है जिससे रक्त वाहिनियाँ रुद्ध हो जाती है एवं रक्तदाब अधिक हो जाता है। कभी-कभी हार्टफेल भी हो जाता है।

प्रयोगों द्वारा ज्ञात हुआ है कि रक्त में शर्करा को कमी मानसिक असन्तुलन का कारण है। भावुकता, क्रोध, विचार अस्थैर्य्य, व्याकुलता, अदूरदर्शिता आदि मानसिक असन्तुलित अवस्थायें इसी हाइपोग्लाइसीमिया के कारण से ही उत्पन्न होती हैं। आज तक जितने अपराधी, बदमाश, गुन्डे, देशद्रोही एवं हत्यारे लोगों का परीक्षण किया गया है उनके रक्त में शर्करा की कमी पाई गई है। यह तथ्य इस बात का समर्थन करता है कि शर्करा की घटती-बढ़ती मात्रा (रक्त में) अपराधजन्य है। महारानी एलिजाबेथ प्रथम अत्यन्त बुद्धिमान व उच्चतम् कोटि की राजनीतिज्ञ थीं परन्तु मीठा (शर्करा) अधिक प्रयोग करने के कारण उनके रक्त में शर्करा का मान गिर गया, एक दाँत को कीड़ा लग गया एवं इसी के साथ-साथ उनके विचारों में अस्थिरता आ गई तथा वे इतनी व्याकुल व भावुक हो गयी थीं कि वे किसी भी घटना के एक उचित निष्कर्ष पर नही पहुँच पाती थीं।

अनेक डॉक्टर-वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा ज्ञात किया है कि कुछ साधारण रोगों के होने का मुख्य कारण रक्त में शर्करा के मान में कमी आ जाना है। शर्करा का अधिक प्रयोग करने वालों (अर्थात् सामान्यतः हाइपोग्लाइसीमिया से पीड़ित लोगों) में दाँत कमजोर हो जाते हैं, दाँतों में कीड़ा लग जाता है व दाँतों के चारों ओर पल्प के गड्ढे (पेरिऔडॉन्टॉइस) हो जाते हैं, त्वचा पर फोड़े, फुन्सियाँ हो जाती हैं व कभी-कभी त्वचा

[शेष पृष्ठ 32 पर देखिये]

अपने वैज्ञानिकों को जानो

★ (संकलित)

डॉ० विक्रम अम्बालाल साराभाई

भारत को विश्व के आधुनिक विज्ञान मानचित्र पर एक सम्मानित स्थान पर लाने वाले विभिन्न वैज्ञानिकों में डा० साराभाई उन विभूतियों में से थे जिन्हें भविष्य का भारत सदैव हसरत की निगाह से देखेगा। निरन्तर कार्यरत रह कर भारत को मान प्रतिष्ठा के उच्च सिंहासन पर विराजमान करते हुए डा० साराभाई ने जो योगदान दिया है, उसके लिए हम सदैव उनके ऋणी रहेंगे। अणु विज्ञान के क्षेत्र में भी उनके योगदानों को भुलाया नहीं जा सकता है। इस विषय से सम्बन्धित उनकी योजना को हमारे वैज्ञानिकों ने साकार किया, इस अवसर पर हम पुनः डा० साराभाई के जीवन पर दृष्टि-पात करेंगे।
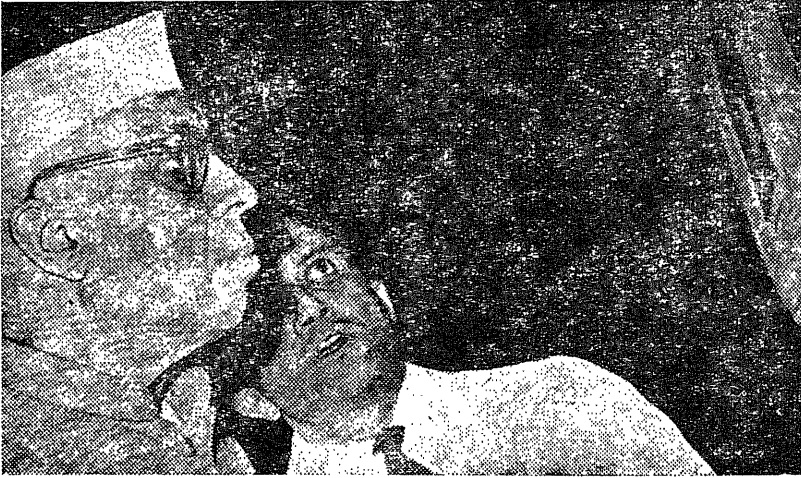
नाम : विक्रम अम्बालाल साराभाई।
जन्म : अहमदाबाद, 12 अगस्त 1919।
प्रारम्भिक शिक्षा : वहीं स्थानीय कालेज में इन्टरमीडिएट तक।

उच्च-शिक्षा : गुजरात कालेज अहमदाबाद से इन्टरमीडिएट पास कर के इंगलैंड चले गए। 1947 में नाभिकीय भौतिकी में डाक्टर की उपाधि मिली।

सेवाएँ :—

1956 : औद्योगिक कार्यों में निर्देशक के रूप में कार्य किया।

1961-62 : भारतीय विज्ञान कांग्रेस में भौतिक कर्त्ताओं के सम्मेलन की अध्यक्षता।

1962 : अंतरिक्ष अनुसंधान की राष्ट्रीय समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

1963 : नवम्बर 1963 में केरल में थुम्बा स्थान पर इनके निर्देशन में राकेट प्रक्षेपण केन्द्र स्थापित।
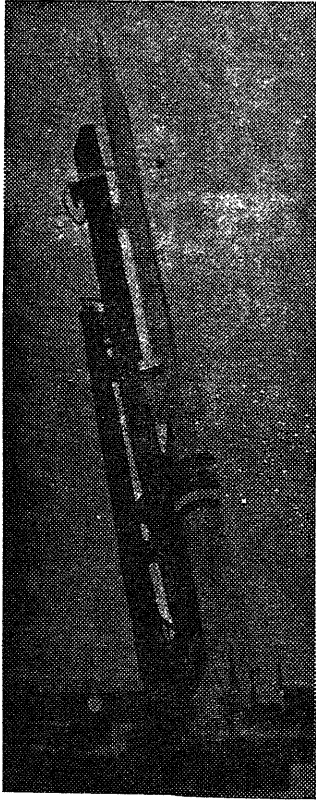
आर एच-560 नामक भारतीय रॉकेट

1965-1968 : मन्त्रिमंडल के वैज्ञानिक सलाहकार समिति के सदस्य के रूप में कार्य किया।

1966 : परमाणु आयोग के अध्यक्ष नियुक्त हुए।

1967 : इलेक्ट्रानिक समिति के अध्यक्ष।

1968-71 : विज्ञान टेक्नालाजी के सद य।

सम्मान : डा० साराभाई के योगदानों के कारण और समय-समय पर विभिन्न पुरस्कारों तथा उपाधियों से विभूषित किया गया था।

1962 : शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार प्रदान किया गया।

1966 : भारत सरकार ने आपको 'पद्म-भूषण' उपाधि से सम्मानित किया।

निधन : इस महान कर्मयोगी ने 30 सितम्बर, 1971 की रात को इस नश्वर संसार से अन्तिम बिदाई ली।

डॉ० होमी एन० सेठना

गत 18 मई को राजस्थान के पोकरण क्षेत्र में भारतीय वैज्ञानिकों ने प्रथम भारतीय परमाणु विस्फोट कर भारतवर्ष का नाम ऊँचा कर दिया है। विश्व के पाँच परमाणविक शक्ति वाले राष्ट्रों का इस क्षेत्र में एकाधिकार समाप्त कर भारत ने अपना नया कीर्तिमान स्थापित किया है। इस परीक्षण को सम्पन्न करने में हमारे वैज्ञानिकों ने बड़े परिश्रम से कार्य किया है। इसमें सबसे बड़ा श्रेय 'भारतीय अणु ऊर्जा आयोग' के वर्त्तमान अध्यक्ष डॉ० होमी नौसेरवांजी सेठना को है जिनके कुशल एवं विद्वतापूर्ण निर्देशन में यह कार्य सफल हुआ। इस क्षेत्र में डॉ० सेठना काफी अरसे से कार्यरत हैं। यहाँ प्रस्तुत है 51 वर्षीय केमिकल इंन्जीनियर तथा परमाणु विशेषज्ञ डॉ० सेठना का संक्षिप्त जीवन परिचय।

नाम : होमी नौसेरवांजी सेठना।

जन्म : बम्बई, 24 अगस्त, 1923।

प्रारम्भिक शिक्षा बम्बई में।

उच्च-शिक्षा : बम्बई विश्वविद्यालय से बी० एस०-सी० और बी० एस०-सी० (टेक्निकल) एवं अन्य परीक्षाएँ पास की।

सेवाएँ : विश्वविद्यालय अध्ययन के बाद 'इन्डियन रेयर अर्थ्स लिमिटेड' में काम करना प्रारम्भ किया।

1959 : परमाणु शक्ति संस्थान, ट्राम्बे (अब भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र) में मुख्य वैज्ञानिक अधिकारी नियुक्त हुए। इसी वर्ष भारत सरकार ने ट्राम्बे में प्लूटोनियम प्लान्ट लगाने की जिम्मेदारी सौंपी जो डॉ० सेठना के निर्देशन में 1964 में पूरा हुआ। इसी प्लान्ट के साथ ही जडु-गोडा स्थित यूरेनियम मिल के निर्माण कार्य की देखरेख करते रहे और यह 1967 में पूरा हुआ।

1966 : भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के निदेशक नियुक्त हुए।

वर्त्तमान : इस समय डॉ० सेठना 'परमाणु ऊर्जा आयोग' के अध्यक्ष हैं।

सम्मान : डॉ० सेठना की कार्यक्षमता सूझबूझ एवं उनके शोधकार्यों से प्रभावित

होकर भारत सरकार एवं देशी-विदेशी तमाम संस्थाओं ने उनका सम्मान किया है।

1959 : भारत सरकार ने आपको 'पद्मश्री' की उपाधि दी।

1960 : 'डॉ० शान्ति स्वरूप भटनागर पुरस्कार' से सम्मानित किये गए।

1966 : भारत सरकार ने आपको 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया। इसी वर्ष भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के अध्यक्ष नियुक्त हुये।

1967 : मिशिगन विश्वविद्यालय ने डॉ० सेठना के 'नौलेज, विजडम एन्ड करेज टु सर्व' कृति पर 'सेसकोसेन्टीनियल पुरस्कार' प्रदान किया। आप अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा समिति के वैज्ञानिक सलाहकारों में से एक हैं।

भारत का प्रथम परमाणु परीक्षण हमारे लिए गौरवपूर्ण उपलब्धि है जिसका श्रेय डॉ० सेठना को है। इस उपलब्धि के लिए हमारे अन्य वैज्ञानिक एवं डॉ० सेठना बधाई के पात्र हैं। हमारी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि वह शतायु हों। अभी डॉ० सेठना से हमें बहुत कुछ आशाएँ हैं।

चन्द्रशेखर वेंकट रामन

भारत का शीश ऊँचा उठाने में जिस वैज्ञानिक का योगदान सर्वाधिक है वह हैं चन्द्रशेखर वेंकट रामन। भौतिकी का नोबेल पुरस्कार जीतकर संसार के इने-गिने वैज्ञानिकों की श्रेणी में आने वाले इस महान वैज्ञानिक का जन्म त्रिचनापल्ली में 7 नवम्बर 1888 को हुआ था। रामन की प्रारम्भिक शिक्षा विशाखा पटनम के हिन्दू कालेज तथा मद्रास के प्रेसीडेंसी कालेज में हुई। अभी वह पढ़ ही रहे थे कि उन्होंने ध्वनि की तथा प्रकाशिकी में भौतिक अनुसंधान करना आरम्भ कर दिया और जब उनकी अवस्था केवल 18 वर्ष की थी तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त जूर्नाल 'फिलासाफिकल मैगजीन' में उनका पहला शोध पत्र 1906 में छपा था। यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी और 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की उक्ति चरितार्थ होती थी।

इस मेधावी वैज्ञानिक ने भारत सरकार के वित्त-विभाग में उच्च पद पर कार्य संभाला। किन्तु विज्ञान में रुचि कम न हुई इसलिये कलकत्ता में रात में तथा छुट्टियों के दिन वह अनुसंधान कार्य करते रहे। 1917 में उनकी वैज्ञानिक

प्रतिभा की परख हुई और 29 वर्ष की अवस्था में कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालित प्रोफेसर नियुक्त हो गये। उन्होंने अपने विभाग को देखते-देखते प्रकाशिकी, ध्वनि, प्रकाशिकी, विद्युत, चुम्बकत्व, आदि क्षेत्रों में एक सम्मान-प्राप्त शोध केन्द्र बना दिया। 1921 में रामन ने प्रकाश प्रकीर्णन पर कार्य आरम्भ किया और 1927 में उन्होंने जो सिद्धान्त प्रस्तुत किया उसने क्रान्ति पैदा कर दी और अगले दस वर्षों में उनकी खोज 'रामन प्रभाव' पर सैकड़ों शोधपत्र प्रकाशित हुये। यही खोज थी जिसके लिये रामन को नोबेल पुरस्कार मिला।
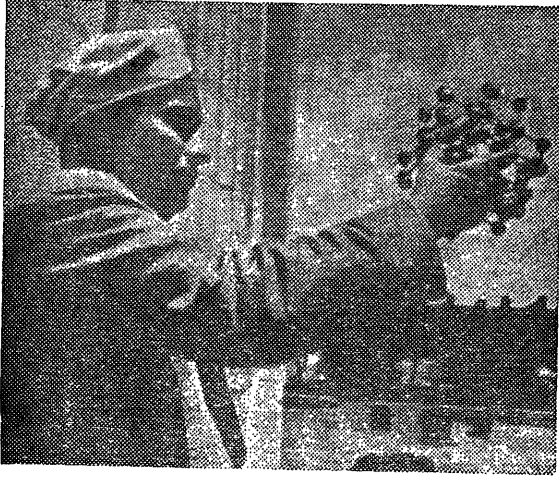
1924 : लन्दन की रायल सोसाइटी के सदस्य निर्वाचित।

1927 : रामन प्रभाव की घोषणा।

1930 : भौतिकी का नोबेल पुरस्कार मिला।

1947 : रामन इन्स्टीट्यूट की स्थापना।

1957 : अन्तर्राष्ट्रीय लेनिन पुरस्कार।

ध्यान रहे कि जितनी अद्भुत बातों को तुम स्कूल में अपनी कक्षा में सीखते हो वह कई पीढ़ी का कार्य है जिसे असीम व अथक परिश्रम से सभी देशों के वैज्ञानिकों ने किया है। यह सब कुछ तुम्हें उत्तराधिकार में मिला है और आशा की जाती है कि तुम इस ज्ञान का आदर करोगे। इसमें वृद्धि करोगे और बाद में आने वाले बच्चों को सौंप दोगे। इसी प्रकार से हम नश्वर प्राणी आपस में जो कुछ करके समाज के सामने लाते हैं उसे चिरंजीवी बनाते हैं।

—अल्बर्ट आइन्सटाइन

वे लन्दन, फ्रांस, अमरीका, स्विटजरलैन्ड, हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, रूमानिया, रूस व चीन की वैज्ञानिक अकादमियों के फेलो रहे।

भारत सरकार ने रामन को पहला राष्ट्रीय प्रोफेसर नियुक्त किया और देश की सर्वोच्च उपाधि 'भारत रत्न' से उन्हें विभूषित किया। उन्हें कई विश्वविद्यालयों से डाक्टरेट की उपाधि भी मिली। आचार्य रामन को फूल बहुत अच्छे लगते थे। अंत में 21 नवम्बर 1970 को यह सितारा डूब गया पर अपनी ज्योति छोड़ गया।

o oo

झ ल कि याँ

महान वैज्ञानिकों के जीवन सम्बन्धी

माइकेल फैराडे मामूली लोहार के लड़के थे और जिल्दसाजी का काम करते थे। एक दिन इग्लैंड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हम्फ्री डेवी ने अपनी एक पुस्तक जिसका नाम 'विद्युत' था जिल्द बाँधने को दी। जिल्द बाँधने के बाद फैराडे ने आदत के अनुसार पुस्तक को पढ़ना आरम्भ कर दिया। अभी वह पुस्तक पढ़ ही रहे थे कि डेवी महाशय आ गये। 12 वर्षीय बालक को वह पुस्तक पढ़ते देख उन्हें अचरज हुआ। उनके आश्चर्य का ठिकाना तब न रहा जब उन्होंने उस पुस्तक में से कुछ प्रश्न पूछे और कठिन होते हुये भी बालक फैराडे ने उनका सही उत्तर दे दिया। डेवी ने फैराडे को अपने भाषण में आने को कहा। फैराडे की भौतिकी में रुचि दिनो-दिन बढ़ती गई। एक दिन उन्होंने रायल इंस्टीट्यूट की प्रयोगशाला में छोटा-मोटा काम करने के लिये डेवी से प्रार्थना किया। अध्यक्ष ने उन्हें बोतल धोने का काम दिया। बोतल धोने वाला यह बालक आगे चलकर एक महान वैज्ञानिक बन गया जिसके भौतिक व रसायन शास्त्र दोनों में ही किये गये आविष्कार महत्वपूर्ण हैं।

× × ×

गैलीलियो के पिता संगीतज्ञ तथा गणितज्ञ थे और वह चाहते थे कि बेटा व्यवसाय करे। पर बेटे की इच्छा औषधि तथा फिलासफी का अध्ययन करना था। बचपन से ही गैलीलियो का मस्तिष्क प्रयोग करके स्वयं प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने को प्रेरित रहता था। वह क्यों व कैसे के बिना किसी बात को मानता न था। एक दिन उसने देखा कि तेज हवा चलने के कारण उसके कमरे में लगा लैम्प झूल रहा है। उसने तुरन्त ही प्रयोग आरम्भ कर दिया। हाथ की नब्ज की सहायता से उसने गिना कि अमुख समय में लैम्प कितनी बार दोलन करता है। उसने लैम्प की डोरी को कम ज्यादा करके भी दोलन के समय पर उसके प्रभाव का निरीक्षण किया और इस प्रकार इस छोटी-सी घटना के आधार पर

उसने पेन्डुलम का नियम प्रतिपादित किया। आगे चलकर गैलीलियो ने कई नियम तो बनाये ही पर माइक्रोस्कोप व टेलिस्कोप का आविष्कार करके वह अमर हो गया।

× × ×

महान भौतिक शास्त्री व गणितज्ञ न्यूटन की माँ चाहती थी कि बेटा खेती-किसानी का काम करे पर बेटे का मन उसमें कहाँ लगने वाला था। अच्छा ही हुआ नहीं तो संसार उसकी महान देनों से वंचित रह जाता। बचपन से ही वह प्रतिभाशाली था। अपनी खिड़की के पत्थर पर उसने 'सनडायल' बनाया था। उसका मन पढ़ने में नहीं लगता था और कक्षा में वह सबसे निचली श्रेणी का माना जाता था। एक दिन एक शरारती लड़के से उसका झगड़ा हो गया। न्यूटन ने उसे पटक दिया और उसकी नाक को दीवार से रगड़ दिया। उसके बाद ही उसके मस्तिष्क में आया कि मैं इसे पढ़ाई में भी पछाड़ूँगा। उसने पढ़ाई में मन लगाया और शीघ्र ही कक्षा का सबसे कुशाग्र बुद्धि वाला विद्यार्थी बन गया।

न्यूटन का मन प्रयोग करने में ही लगा रहता। एक दिन वह खेत पर टहल रहा था कि बड़े जोर का तूफान आया जिससे फसल को व जानवरों को बहुत हानि होने की सम्भावना थी। वह उसका विचार न करके तूफान के वेग को ज्ञात करने में लग गया। वह हवा की दिशा में तथा हवा की विपरीत दिशा में होकर कूदने लगा और यह देखा कि दोनों में से किस दशा में वह अधिक दूर तक कूद सकता है। खेत पर काम न कर सकने पर वह विश्वविद्यालय में भेज दिया गया जहाँ अपनी फीस देने के लिए वह नौकर का काम करने लगा।

× × ×

जिस समय प्रो० सत्येन बोस एम० एस-सी० में थे उनके साथ मेघनाद साहा, जे० एन० मुकर्जी, जे० सी० घोष तथा पी० वी० सरकार भी उसी कक्षा में थे। सबके सब विद्यार्थी अत्यन्त मेधावी थे और सभी आगे चलकर महान वैज्ञानिक बने। बोस सदैव से यही प्रयत्न करते कि वह कक्षा में प्रथम आयें। सत्येन बोस की प्रतिभा का भय अन्य विद्यार्थियों पर इतना पड़ा कि कुछ ने तो विषय बदल दिये और कुछ उस वर्ष (1915) परीक्षा में बैठे ही नहीं। सत्येन बोस गणित ही में नहीं सारे विश्वविद्यालय में प्रथम आये।

× × ×

एक्स-रे के आविष्कारक रुण्टगेन की प्रारम्भिक शिक्षा हालैन्ड में हुई। पर एक दिन क्या हुआ कि इन्होंने एक अध्यापक का मखौल उड़ाया तो उन्हें स्कूल से निकाल दिया गया। उनकी पढ़ाई में बाधा आ गई। निजी तौर पर एक शिक्षक रखकर उन्हें पढ़ाया गया और 'एन्ट्रेंस परीक्षा' दिलाई गई। परन्तु जिस बोर्ड ने रुण्टगेन को स्कूल से निष्कासित किया था उसी के एक सदस्य के पास रुण्टगेन की कापी गई और उस परीक्षक ने उन्हें फेल कर दिया। बड़ी मुश्किल से ज्युरिख के स्कूल में उन्हें प्रवेश मिल सका।

× × ×

आज हम टेलीविजन के पर्दे पर रंगारंग कार्यक्रम देखकर प्रसन्न होते हैं। पर क्या तुम्हें यह पता है कि टेलीविजन का आविष्कारक कितना निर्धन था। खाली जेब तथा खोजी प्रकृति टेलीविजन के आविष्कारक बेयर्ड की निधि थी। 1923 में टेलीविजन पर हाथ आजमाने से पूर्व बेयर्ड ग्लाइडर उड़ाने, हीरा बनाने, मोजे बेचने और साबुन जमाने से लेकर शहद और खाद के क्रय-विक्रय तक सारे धन्धे कर चुका था। इसीलिये पहला सेट टीन की प्लेट और गत्ते के डिब्बे तथा बिना पंखुडियों वाले बिजली के पंखे की सहायता से बनाया गया था।

× × ×

आयकर के कार्यालय में लोगों की पंक्ति लम्बी और बेचैन होती जा रही थी। इस पंक्ति में सबसे आगे वाला व्यक्ति अनावश्यक देर करवा रहा था क्योंकि वह क्लर्क को अपना नाम नहीं बता पा रहा था। वह अपनी जेबों में से कोई ऐसा कागज या लिफाफा ढूँढ़ रहा था जिसे देख कर उसे अपना नाम याद आ जाय। उसके पीछे खड़े एक व्यक्ति ने तब क्लर्क से कहा, "सुनिये ! मैं इस व्यक्ति को जानता हूँ। इसका कार्यालय मेरे ही ब्लॉक में है। इनका नाम है थामस एलवा एडिसन।" ऐसे थे बल्ब व ग्रामोफोन के आविष्कारक एडिसन साहब।

o o o

● विज्ञान विचारों का कब्रिस्तान है —लुई पास्तूर

[पृष्ठ 50 का उत्तर—दोनों बराबर]

राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ

किसी देश की प्रगति में विज्ञान का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर स्वर्गीय जवाहर लाल नेहरू व शान्ति स्वरूप भटनागर ने देश में प्रयोगशालाओं की एक शृङ्खला स्थापित कर दी। क्या तुम जानते हो कि यह कौन-कौन सी प्रयोगशालाएँ हैं और कहाँ पर स्थापित हैं ? यदि नहीं तो इस निम्नांकित सूची से तुम्हें इसकी जानकारी मिल जायगी। वैज्ञानिक तथा प्राद्योगिक अनुसन्धान परिषद् के अन्तर्गत यह कार्य करती हैं।

1. केन्द्रीय खनन अनुसन्धान केन्द्र (धनबाद)
2. केन्द्रीय ईंधन अनुसन्धान संस्थान (जलगोड़ा)
3. केन्द्रीय नमक एवं समुद्री रसायन अनुसन्धान संस्थान (भावनगर)
4. केन्द्रीय भवन अनुसन्धान संस्थान (रुड़की)
5. राष्ट्रीय रासायनिक प्रयोगशाला (पूना)
6. राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला (देहली)
7. केन्द्रीय औषधि अनुसन्धानशाला (लखनऊ)
8. केन्द्रीय चर्म संस्थान (मद्रास)
9. केन्द्रीय काँच तथा सिरेमिक अनुसन्धान संस्थान (कलकत्ता)
10. राष्ट्रीय वैमानिक प्रयोगशाला (बैंग्लोर)
11. राष्ट्रीय धातु-कर्म प्रयोगशाला (जमशेदपुर)
12. राष्ट्रीय भू-भौतिक अनुसन्धान संस्थान (हैदराबाद)
13. तुम्बा विषवत रेखीय रॉकेट क्षेपण केन्द्र (तुम्बा)
14. भारतीय कृषि अनुसन्धान केन्द्र (देहली)
15. टाटा सैद्धान्तिक अनुसन्धान संस्थान (बम्बई)
16. भाभा परमाणु अनुसन्धान केन्द्र (बम्बई)
17. हिन्दुस्तान एन्टिबायोटिक्स (पिम्परी)
18. केन्द्रीय खाद्य प्राद्योगिक अनुसन्धान संस्थान (मैसूर)

19. राष्ट्रीय वानस्पतिक उद्यान (लखनऊ)
20. कैंसर अनुसन्धान संस्थान (बम्बई)
21. केन्द्रीय पथ-अनुसन्धानशाला (देहली)
22. विद्युत रासायनिक अनुसन्धानशाला (कराईकुडी)

अब हम तुम्हें इनमें से चार के बारे में कुछ बतायेंगे। इनके भवनों के चित्र भी यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं।

केन्द्रीय पथ अनुसन्धानशाला

देहली मथुरा मार्ग पर 10 वें मील पर स्थित यह प्रयोगशाला 13 एकड़ जमीन पर बनी है। इस प्रयोगशाला के विभाग हैं: मृत्तिका, लचकदार मार्ग, दृढ़ मार्ग, सड़क, यातायात तथा आर्थिक। इसके अधिष्ठाता स्विटजरलैंड के प्रसिद्ध रोड इंजीनियर डा० एर्न्स्ट जिप्केस 1950 में नियुक्त हुये थे। इस प्रयोगशाला का उद्देश्य है (1) सड़क बनाने की कला
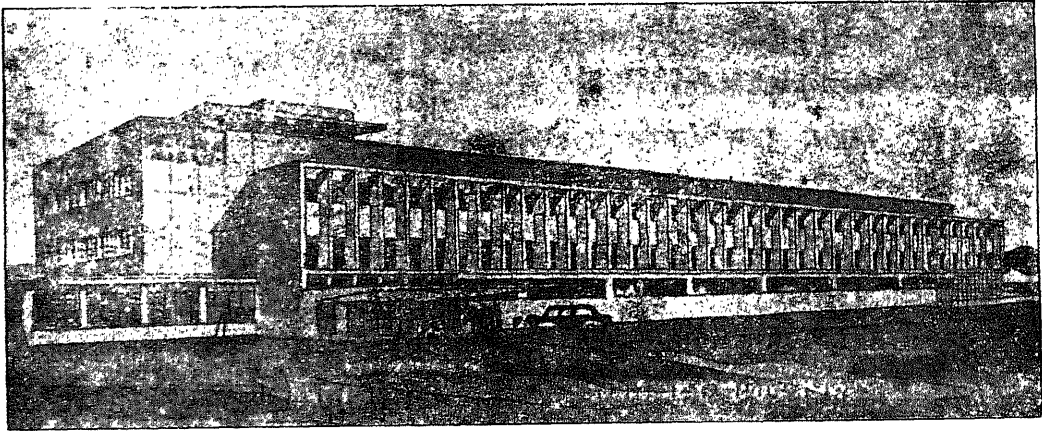
और सड़क बनाने के द्रव्यों की विवेचना (2) द्रव्यों के आवश्यक गुणों का परीक्षण और आदर्शीकरण (3) परीक्षणों में काम आने वाले यंत्रों का आविष्कार (4) जिस जमीन पर सड़कें बनती हैं उसकी मिट्टी की जाँच, ताकि सब ऋतुओं के अनुकूल सड़कें बन सकें (5) सड़कों पर दुर्घटना की संख्या की और उनके कारणों की जाँच पड़ताल।

राष्ट्रीय रासायनिक अनुसंधानशाला

1949 में इस प्रयोगशाला के प्रथम संचालक प्रोफेसर जे० डब्लू मैकबेन नियुक्त हुये थे और उनकी देखरेख में यह बराबर आगे बढ़ती गई। गणेश खिन्द रोड, पूना पर स्थित यह प्रयोगशाला 475 एकड़ भूमि पर बनी है। रसायनशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये

यह एक आकर्षण क्षेत्र बन गयी। इसमें 300 से अधिक जर्नल प्रति मास आते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य व्यापारिक तथा शिल्पीय संस्थाओं को जैसी भी जानकारी रासायनिक विषय पर ज्ञात करना है वह जानकारी प्रदान करना है। इसके प्रमुख अंग हैं : जीव रसायन अनुभाग, कार्बनिक, अकार्बनिक तथा भौतिक अनुभाग, उच्च बहुलक व रासायनिक इन्जिनियरी के विभाग। इस प्रयोगशाला में से कई ऐसी खोजें हुई हैं जो व्यवसाय की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं और उनका पेटेन्ट कराया गया है।

राष्ट्रीय धातुकर्म प्रयोगशाला

इस प्रयोगशाला का उद्‌घाटन श्री जवाहर लाल नेहरू ने जमशेदपुर में 1950 में किया था। इस प्रयोगशाला के लिये आवश्यक भूमि टाटा कम्पनी ने दान में दिया था जो लगभग 50,000 वर्ग फीट है। धातु अनुसंधान शाला में आधुनिकतम उपकरणों व
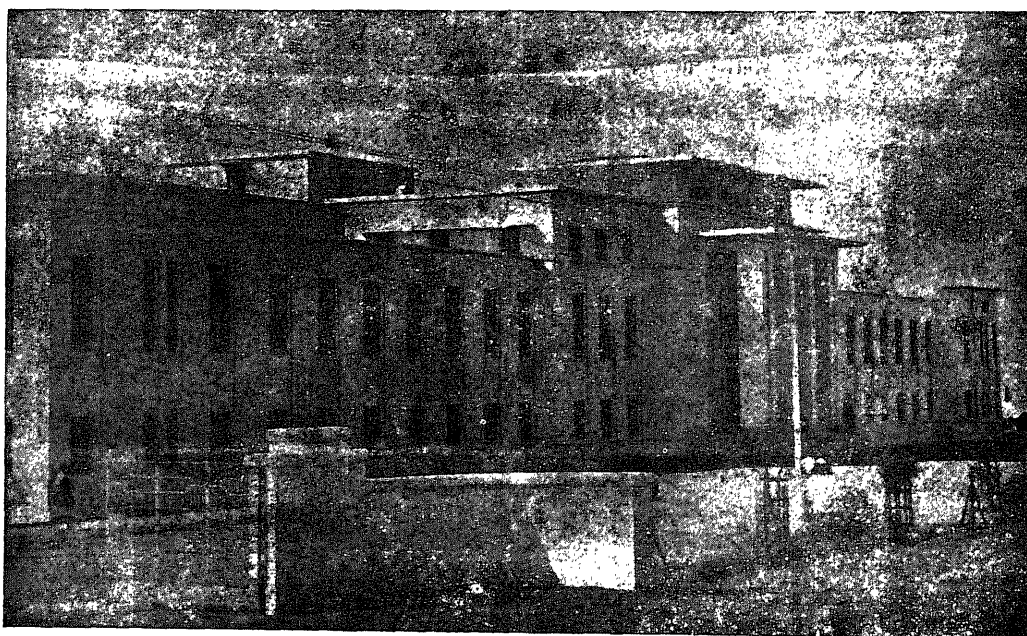
यन्त्रों को जुटाया गया है। धातु तथा इससे सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार के कार्य के लिये अलग-अलग विभाग हैं। धातु-उद्योग में कच्ची धातु से खनिजों को पृथक करना और फिर उनसे धातु प्राप्त करने का काम सबसे महत्वपूर्ण होता है और इस कार्य के लिये यह प्रथम खनिज खोज विभाग खोला गया है। अग्नि रोधक पदार्थों सम्बन्धी खोज के लिये भी एक अलग विभाग है। धातुओं के आयात, निर्यात व उत्पादन सम्बन्धी आंकड़ों का

संकलन व अध्ययन, खनिजों का रासायनिक अध्ययन, खनिजों का परीक्षण व उनसे धातु निकालना, धातुओं पर ताप का प्रभाव का अध्ययन, विद्युत द्वारा धातु का अवशोषण आदि यहाँ के प्रमुख क्षेत्र हैं जिनमें काम होता है।

केन्द्रीय औषधि अनुसंधानशाला

अवध के ऐतिहासिक भवन छतर मंजिल, लखनऊ में यह अनुसंधानशाला स्थापित की गई। 1951 में इस भवन को वैज्ञानिक अनुसंधान के योग्य बनाया गया। इस अनुसंधान शाला के बहुमुखी उपयोग हैं जिनमें विशेषकर औषधियों के अनुसंधान को बढ़ावा देना, नई औषधियों की प्रमाणिकता की परीक्षा करना और वैज्ञानिकों तथा विश्वविद्यालयों को उपयोगी सुविधा प्रदान करना है। यह अनुसंधान शाला निम्नलिखित जांच विभागों में बांटी गई है : रसायन, जीव रसायन, फारमेकोलाजी माइक्रोबायलाँजी तथा पैरासाइटोलाजी तथा क्लीनिकल साइंस। पशुगृह इसका मुख्य अंग है जिसमें परीक्षण हेतु पशुओं को रखा जाता है। इसके सर्वप्रथम संचालक सर एडवर्ड मेलेनबी थे। जड़ी-बूटियों पर भी महत्वपूर्ण खोजें इस प्रयोगशाला में की गई हैं।
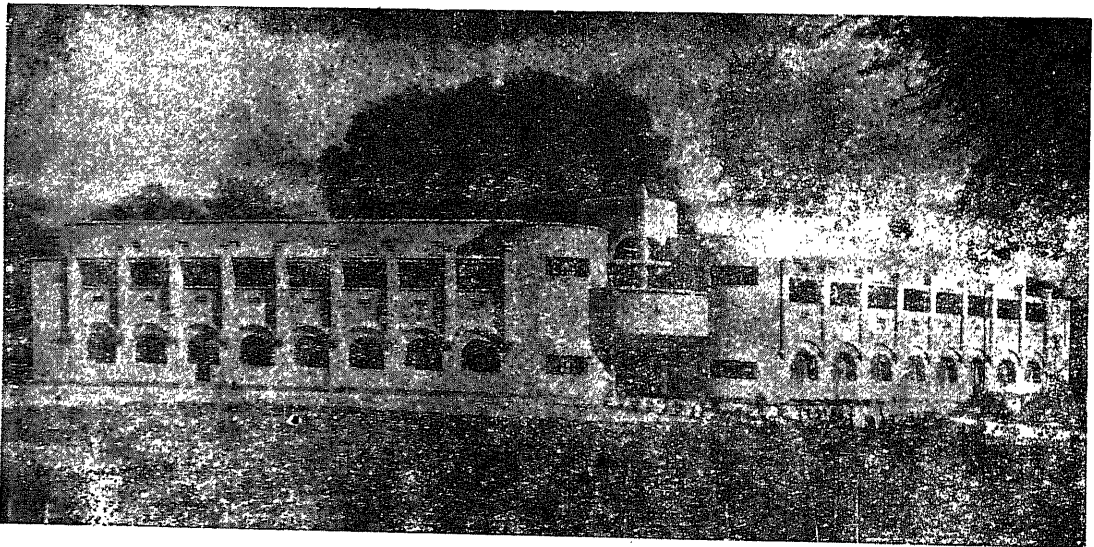
> "मैं इन वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं को बढ़ते देखना चाहता हूँ क्योंकि मुझे विश्वास और आशा है कि वे शनैः-शनैः भारतवासियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाला बनाएँगी। वैज्ञानिक इस अर्थ में नहीं कि केवल परखनलियों और प्रयोग भवनों या इसी प्रकार के खिलवाड़ में संलग्न रहें बल्कि इस प्रकार के मस्तिष्क तथा विचार धारा को प्रस्तुत करें जिन्हें वैज्ञानिकों को रखना चाहिए और सदा वे वैसा नहीं रखते।"
>
> —जवाहर लाल नेहरू

पशु-गृह (केन्द्रीय औषधि अनुसंधानशाला)

o o o

खेल खेल में विज्ञान

(1) एक चीनी मिट्टी का प्याला लो। इस प्याले में एक रुपया या पचास पैसे का सिक्का रखो। अब प्याले को मेज़ पर रख कर धीरे धीरे पीछे की ओर खिसकाते जाओ। इतना पीछे खिसकाओ कि सिक्का ठीक छिप जाय अर्थात् तनिक सा भी सर आगे बढ़ाने पर सिक्का दिखाई पड़े। जिस स्थिति में हो वहां तुम्हें सिक्का नहीं दिखाई पड़ रहा है। अब अपने छोटे भाई या छोटी बहन से कहो कि प्याले में किसी बर्तन से धीरे धीरे पानी डाले। प्याले में थोड़ा पानी आने पर क्या हुआ? जो सिक्का तुम्हें नहीं दिखाई पड़ रहा था अब फिर से उसी स्थिति में दिखाई पड़ने लगा। क्या तुम बता सकते हो ऐसा क्यों होता है? पानी पड़ने पर माध्यम सघन हो गया। हवा का माध्यम विरल होता है। सघन से विरल माध्यम में जाने के कारण किरणें इस प्रकार मुड़ जाती हैं कि वे आंखों तक पहुँच जाती हैं और सिक्का दिखाई पड़ जाता है।

(2) सफेद रंग का एक सादा कागज़ लो। एक क़लम लो जिसकी निब पर स्याही न लगी हो बल्कि साफ़ हो अब एक नींबू काट कर उसका कुछ रस निब पर गिरा लो और उससे काग़ज़ के ऊपर 'बन्दे मातरम' या कोई भी अपनी इच्छा से शब्द या अपने किसी मित्र का नाम लिखो। अक्षर कुछ बड़ा रखना। जब रस सूख जायगा तो काग़ज पर कुछ भी लिखा हुआ दिखाई नहीं पड़ेगा। अपने मित्रों को सादा काग़ज़ दिखा सकते हो। कोई नहीं कह सकता कि काग़ज़ पर कुछ लिखा भी है या नहीं। अब एक मोमबत्ती जलाओ और उस काग़ज को लौ के इतने दूर रखो कि उसकी गर्मी तो काग़ज़ तक पहुँचे पर कागज जलने न पाये। जैसे ही काग़ज़ गरम होगा भूरे रंग के अक्षर साफ़ दिखाई देने लगेंगे और तुम्हारे मित्रों को जादू का खेल सा लगेगा। ऐसा अधिक ताप पर आक्सीजन का नींबू के रस पर प्रभाव पड़ता है इसलिये रंग आ जाता है।

(3) एक कांच की गिलास लो और उसमें पानी भर लो। अब इस पानी भरे गिलास को दफ्ती के एक चौकोर टुकड़े से ढक दो। दफ्ती को हथेली से दबा लो और

दबाये हुये ही गिलास को एकदम उलट दो। अब अपनी हथेली हटा लो। आश्चर्य की बात है कि गिलास उलट गई पर न तो दफ्ती ही गिर रही है और न पानी ही। तुम जानते हो ऐसा क्यों होता है ? पानी नीचे गिरना तो चाहता है पर उसका दाब इतना नहीं है जितना कि उसके चारों ओर की हवा का है। अब दफ्ती को एक कोने पर ज़रा सा तिरछा कर दो। पानी बुलबुल करके गिरने लगेगा और दफ्ती भी। हवा के अन्दर जाने पर दाब बढ़ जाता है इसलिये पानी व दफ्तो दोनों गिर जाते हैं।

(4) दो चुम्बक लो। एक चुम्बक के उत्तरी ध्रुव पर सीता की तस्वीर लटका दो और चुम्बक को डोरे से बांधकर किसी स्टैण्ड पर लटका दो। दूसरे चुम्बक के दक्षिणी ध्रुव पर राम की और उत्तरी ध्रुव पर रावण की तस्वीर लगाकर इस चुम्बक को भी दूसरे स्टैण्ड पर लटका दो। अब सीता की तस्वीर को रावण की तस्वोर के पास लाओ। सीता की तस्वीर रावण की तस्वीर से हट कर दूसरी ओर घूम जायगी। सीता की तस्वीर राम की तस्वीर की ओर लाओ। इस बार सीता उसी ओर खिचती जाती हैं, दूर नहीं भागतीं। जानते हो क्यों ? विपरीत ध्रुव एक दूसरे को आकर्षित तथा समान ध्रुव एक दूसरे को प्रतिकर्षित करते हैं।

किस ओर की संख्याओं का योग अधिक है दाहिनी ओर की या बाईं ओर की (उत्तर अन्यत्र देखिये) ?

987654321	123456789
87654321	12345678
7654321	1234567
654321	123456
54321	12345
4321	1234
321	123
21	12
1	1

o o o

जादुई बोतल बनाकर देखो

—सुरेश चन्द्र आमेटा

आइये, आपको हम जादुई बोतल तैयार करना सिखायें जिससे आप अपना एवं अपने साथियों का मनोरंजन करने के साथ ही अपने आपको जादूगर प्रमाणित कर सकें। लीजिये जादुई बोतल बनाने का नुस्खा :

सबसे पहले आपको कुछ तैयारियाँ करनी होंगी, जिसमें आपको निम्न चीजों की आवश्यकता पड़ेगी।

(i) समतल पेंदे वाला 500 मि॰ली॰ का एक फलास्क
(ii) ग्लूकोज 10 ग्राम
(iii) कास्टिक सोडा 7 ग्राम
(iv) मेथिलिन ब्लू (एक रंग)
(v) कार्क (फलास्क के लिये)

अब ग्लूकोज, काँस्टिक सोडा एवं मेथिलिन ब्लू को करीब 400 मि॰ली॰ पानी में घोलकर फ्लास्क में भर दो तथा फ्लास्क को कार्क से बन्द कर दो। पानी के घोल का रंग नीला होगा, जो कि धीमे धीमे हल्का पड़ता-पड़ता रंगहीन हो जायेगा। अब आप अपने साथियों को यह बोतल दे दीजिये तथा कहिये कि इसे जैसे चाहें ऊपर नीचे करें और इसमें फिर से नीला रंग ला दें। वे आखिर में असफल रहकर बोतल आपको लौटा देंगे तब आप उनकी नजरें बचाकर इसे एक झटका दीजिये और फ्लास्क के पानी का रंग फिर से नीला हो जायेगा। अब आप अपने साथियों के हाथ में फ्लास्क दे दीजिये और फ्लास्क का पानी फिर रंगहीन हो जायेगा। हो गई न आपकी इज्जत अपने मित्रों में, जो अब आपको वास्तविक जादूगर मानने लगे हैं।

तथ्य

बच्चों तुम्हें ज्ञात है, हर जादुई खेल के पीछे कोई न कोई वैज्ञानिक तथ्य छिपा रहता है। इसमें भी एक रासायनिक क्रिया इसके आधार में है। ग्लूकोज तथा कास्टिक

सोडा के विलयन से एक आयन का निर्माण होता है, जो मेथिलिन ब्लू को रंगहीन बना देता है। इसीलिये पानी के घोल का रंग नीले से रंगहीन हो जाता है और आपके साथी इसे फिर से नीला नहीं कर पाते।

रंगहीन मेथिलिन ब्लू वायु में उपस्थित ऑक्सीजन से क्रिया कर लेती है, यदि ऑक्सीजन जल में घोल दी जाय। इसके लिये 500 मि० ली० के फ्लास्क में मात्र 400 मि० ली० जगह तक ही पानी का घोल भरा गया था ताकि 100 मि० ली० स्थान वायु घेर सके। झटका मारने पर वायु पानी में घुल जाती है तथा मेथिलिन ब्लू फिर से नीला रंग दे देता है परन्तु जैसे ही वायु बुलबुलों के रूप में बाहर निकल आती है, विलयन फिर से रंगहीन हो जाता है।

०००

कहाँ क्या बजा है ?

नई दिल्ली में शाम के 5-30 बजेंगे तो संसार के बड़े शहरों में क्या बजेगा।

शहर का नाम	समय	शहर का नाम	समय
अमेस्टडर्म	दिन का 1	कराँची	शाम के 5
बर्लिन	दिन का 1	काहिरा	दोपहर के 3
बर्न	दिन का 1	अंकारा	दोपहर के 2
रोम	दिन का 1	बैंकाक	प्रातः के 7
स्टाकहीम	दिन का 1	बगदाद	दोपहर के 3
सिंगापुर	रात के 7-30	पेकिंग	रात के 8
मेलबोर्न	रात के 10	हनना	प्रातः के 7
न्यूयार्क	प्रातः के 7	पेरिस	दिन का 1
ब्यूनोस आयर्स	प्रातः के 8	बोस्टन	प्रातः के 7
डबिलन	दोपहर के 12	हांगकांग	रात के 8

—राजेश जांगिड़ "विद्यार्थी"

क्या आप जानते हैं ?

1. याक (चमरी) का दूध गुलाबी रंग का होता है।
2. मूर्गी के बच्चे के लगभग 8000 पर होते हैं।
3. "रन" शब्द के 32 अर्थ होते हैं।
4. ऊँट के पेट में पानी जमा करने के लिये लगभग 400 छोटी-छोटी थैलियाँ होती हैं।
5. मेजो नामक चिड़िया अपने ही आकार के अन्डे देती है।
6. तूफान के समय बादल लगभग 36 मील प्रति घन्टा की चाल से चलते हैं।
7. कबूतर पक्षी एक घन्टे में 60 मील की गति से उड़ सकता है।
8. तेरहवीं श्रेणी के सितारों का प्रकाश पृथ्वी पर 27 वर्ष में आता है।
9. साँप के शरीर में कुल 300 हड्डियाँ होती हैं।
10. एक किलो शहद के लिये मधुमक्खी को 8 लाख फलों का रस चूसना पड़ता है।
11. हमारे शरीर की नाड़ियों में खून आठ मील प्रति घन्टा की रफ्तार से बहता है।
12. हाथी केवल तीन रंगों के पाये जाते हैं—काले, भूरे तथा सफेद।
13. जिराफ बिना पानी पिये हफ्तों जिन्दा रह सकता है।
14. वायु मन्डल का भार 70000000 टन है।
15. पृथ्वी एक सेकेन्ड में 18 मील घूमती है।
16. तोता ही एक ऐसा पक्षी है जो जम्हाई लेता है।
17. 'टेपी' नस्ल की बिल्ली अजीब ढंग से दूध पीती है। दूध में पहले वह पंजा डुबो देती है, फिर पंजे को चाटती है।
18. गेलियम को हथेली पर रखने से पिघलने लगता है।

—दिनेश चन्द्र आमेटा

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—अन्तरिक्ष यान, 'प्रोब' तथा राँकेट क्या है ?

उत्तर—आकाश में जाने वाले सभी प्रकार के यानों को अन्तरिक्ष यान कहते हैं। उपग्रह व 'प्रोब' इसके अन्तर रखे जा सकते हैं। उपग्रह धरती के चारों ओर एक निर्धारित कक्षा में घूमने के लिये छोड़े जाते हैं। 'प्रोब' धरती से दूर आकाश की ऊँचाइयों में भेजे जाते हैं। जैसे चन्द्रमा, वृहस्पति या बुध की ओर भेजे गये यान। राकेट एक ऐसी गाड़ी है जो उपग्रह या 'प्रोब' को किसी विशेष दूरी या ऊँचाई तक ले जाता है और यह कोई आवश्यक नहीं कि वह उन्हें लक्ष्य तक पहुँचाये।

प्रश्न—सिनेमा में कलाकारों की ध्वनि कैसे सुनाई पड़ती है ?

उत्तर—यदि तुमने कोई रील देखी है तो तुम्हें ध्यान होगा कि उसके दोनों ओर कटे हुये छिद्र से होते हैं। हर फिल्म के दाँई ओर लगभग 0·6 से० मी० की एक पट्टी होती है। शूटिंग के समय कलाकार जो कुछ बोलते हैं या गाना गाते हैं उस ध्वनि की विद्युत तरंगों को इस पर रिकार्ड कर लिया जाता है। जब फिल्म दिखाई जाती है तो विद्युत की सहायता से कलाकार की मूल ध्वनि पुनः उत्पन्न की जाती है। इसे फोटो विद्युत प्रविधि कहते हैं।

प्रश्न—जीन्स क्या है ?

उत्तर—हमारे शरीर में अनेक कोशिकायें हैं। इन कोशिकाओं को बनाने वाली इकाई को ही जीन्स कहते हैं।

प्रश्न—बन्द कमरे में अंगीठी जलाकर सोने से लोग मर क्यों जाते हैं ?

उत्तर—जब कोयला जलता है तो उसमें से अन्य गैसों के साथ कार्बन मोनो आक्साइड नामक गैस भी निकलती है। यह गैस जहरीली होती है। कमरा बन्द होने से बाहर

की ताजी हवा अन्दर नहीं आ पाती। जहरीली हवा में सांस लेने से दम घुट जाता है और मृत्यु हो जाती है।

प्रश्न—जिगर कैसे कार्य करता है?

उत्तर—जिगर का कार्य बड़े महत्व का है। यह गहरे लाल या कत्थई रंग का काफी बड़ा ठोस अंग है। यह आमाशय के ठीक ऊपर होता है और काफी दूर तक आमाशय के किनारे-किनारे फैला होता है। जिगर में हरे रंग का रस बनता है जिसे हम पित्त कहते हैं। पित्त एक थैली में जमा होता है जो पित्ताशय कहलाती है। इस थैली से एक नली में होता हुआ पित्त ग्रहणी में पहुँचता है और चिकनाई वाले पदार्थ को पचाता है।

प्रश्न—कोयला कैसे बनता है?

उत्तर—बहुत पुराने समय में जंगलों के पेड़-पौधे टूट कर मिट्टी में दब गये। पृथ्वी के नीचे दबे हुये पुराने पेड़ों को ऊपर से दबाव और अन्दर से गर्मी मिली। बहुत समय के बाद गर्मी व दबाव से दबे हुये पेड़ कोयले में बदल गये।

प्रश्न—ज्वार भाटा क्यों आते हैं?

उत्तर—तुम जानते हो कि चाँद पृथ्वी को अपनी ओर खींचता है। इस खिचाव के कारण पानी का तल घटता-बढ़ता है। पृथ्वी अपनी कीली पर घूमती रहती है इस कारण ज्वार-भाटा की जगह बदलती रहती है। लगभग 12 घन्टे के बाद पुनः किसी स्थान पर ज्वार या भाटा आता है।

परखनली शिशु

ब्रिटेन के एक डॉक्टर के अनुसार इस समय तीन ऐसे बच्चे हैं जिनका जन्म परख नली में हुआ था और भ्रूण को बाद में उचित समय पर और अनुकूल परिस्थित में उनकी माताओं के गर्भ में आरोपित कर दिया गया था।

० ० ०

सम्पादकीय :

विज्ञान के मई अंक में हमने सूचना दी थी कि हम एक बाल-विशेषांक निकालने जा रहे हैं। अभावों के चक्कर में पड़कर हम शीघ्र इस योजना को कार्यान्वित न कर सके। हर्ष है कि अब यह अनुष्ठान पूरा हो गया है ।

किसी देश की उन्नति उस देश की वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति से आँकी जाती है और विज्ञान का प्रचार व प्रसार मातृभाषा में करना ही 'विज्ञान' का उद्देश्य है। आज के छोटे बच्चे कल के महान वैज्ञानिक बन सकते हैं। विज्ञान-जैसे गम्भीर विषय में बालकों व किशोरों में रुचि उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि विषय को सरल एवं सुगम ढंग से उनके सामने प्रस्तुत किया जाय। यह लघु प्रयास इसी दिशा में है और हमें आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास भी है कि इस अंक की सामग्री बच्चों को पसन्द आएगी और इससे उन्हें कुछ आवश्यक, रुचिकर सूचानायें प्राप्त हो सकेंगी। हमारे देश के युवकों में बुद्धि की किसी प्रकार से कमी नहीं है । वे बौद्धिक स्तर पर किसी भी विकसित देश से लोहा ले सकते हैं। आज के बच्चे कल के नागरिक होंगे तो उन्हें इस दृष्टि से तैयार करने के लिये मासिक पत्रिकाओं व छोटी-छोटी पुस्तकों की सहायता से विज्ञान के प्रति प्रेम जगाकर उन्हें भविष्य के कर्ण धारों के रूप में ढालने का समय-समय पर प्रयास होना चाहिये। हमें आशा है कि आगे चलकर हम इस प्रकार के और विशेषांक निकाल सकेंगे। हमने जूनियर हाई स्कूल तक के बच्चों के लिये सामग्री जुटाने का प्रयास किया है। यदि बच्चों को यह अंक पसन्द आया तो हम इसे अपनी सफलता मानेंगे । इस विशेषांक के निकालने में हमें डॉ० शिवगोपाल मिश्र से विशेष सहायता मिली है। जिन लेखकों और अन्य लोगों का हमें सहयोग मिला है हम उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं और उनसे अनुरोध करते हैं कि अपना सद्भाव बनाये रखें।

o o o

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111 | आश्विन 2031 विक्र०, 1896 शकाब्द अक्टूबर 1974 | संख्या 10

थोरियम-न्युक्लीक उर्जा का नया स्रोत

डा० रामचन्द्र कपूर

भारत में यूरेनियम के भंडार बहुत बड़े नहीं हैं। अनुमान है कि लगभग 6000 मैगावाट परमाणु बिजली बना सकने के लिये काफी यूरेनियम है, लेकिन थोरियम विश्व में सबसे अधिक यहीं है। आठ से दस प्रतिशत थोरियम वाले धातु के ज्ञात भंडार पाँच लाख टन से कम नहीं हैं। एक टन थोरियम से इतनी उर्जा बनेगी जितनी 20 लाख टन कोयले से बनती है अतः यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि थोरियम, भविष्य में उर्जा का प्रमुख स्रोत होगा।

थोरियम की खोज का श्रेय बर्जीलियस को है और उसी ने स्कैंडीनेविया के युद्ध के देवता, 'थार' के नाम पर ही इस धातु का नाम थोरियम रखा। लेली व हैमबरजर ने थोरियम क्लोराइड व सोडियम का हवा की अनुपस्थिति में आसवन करके सर्वप्रथम 99% शुद्ध थोरियम प्राप्त किया। मैडम क्यूरी ने सन् 1898 में सर्वप्रथम इसके रेडियधर्मी गुणों की खोज की।

थोरियम, प्राकृतिक रूप में बहुतायत से पाया जाता है। इसका प्रमुख स्रोत मोनाजाइट है, जो कि केरल (भारत) व ब्राजील के बालुतटों में पाया जाता है। इस बालुतट में मोनाजाइट के साथ अन्य खनिज भी होते हैं जैसे, इल्मेनाइट, रूटाइल आदि। भारत में यह बालुतट कन्याकुमारी के 30 किलोमीटर उत्तर में मानवलाकुरिचि से त्रिवेंद्रम के 110 किलोमीटर उत्तर में कायमकुलम तक, अर्थात 200 किलोमीटर तक के क्षेत्र में पाया जाता है। इस खनिज बालु के दो मुख्य भंडार केरल में क्विलौन के निकट चवरा में और तामिलनाडु के मानवलाकुरिचि में हैं। इस क्षेत्र में मोनाजाइट के भंडार का अनुमान 15 से 20 लाख टन के बीच लगाया गया

है। 1956 में पता चला कि थोरियम खनिज का एक और बेहतर भंडार बिहार में और उड़ीसा के तटवर्ती क्षेत्र गोपालपुर-छत्रपुर के बलुआ टीलों में भी है।

मोनाजाइट से थोरियम का निष्कर्षण—बालुतटों से प्राप्त मोनाजाइट का सर्वप्रथम सांद्रण व परिष्करण किया जाता है, और इस प्रकार से प्राप्त परिष्कृत मोनाजाइट का औसत संगठन निम्न होता है—रेयर अर्थ्स 62·5%, थोरिया 6·5%, फॉस्फोरस पेन्टाक्साइड 29·5% व सिलिका 1·5%।

परिष्कृत मोनाजाइट को सान्द्र सल्फ्यूरिक एसिड के साथ 200° सेंटीग्रेड पर गर्म किया जाता है। इस क्रिया द्वारा मोनाजाइट में उपस्थिति सभी तत्व (सीरियम व रेयर अर्थ्स) सल्फेटों में बदल जाते हैं। इस प्रकार से प्राप्त उत्पाद को पानी में मिला दिया जाता है, और धात्विक सल्फेटों का घोल प्राप्त हो जाता है। इस घोल से जिसमें कि धात्विक सल्फेट, मुक्त फॉस्फोरिक एसिड व बचा हुआ सल्फ्यूरिक एसिड होता है, थोरियम का थोरियम फॉस्फेट के रूप में क्षार द्वारा प्रभाजी अवक्षेपण किया जाता है।

इस प्रकार से प्राप्त थोरियम फॉस्फेट के अवक्षेप को, जिसमें कि अभी भी रेयर अर्थ्स के फॉस्फेट थोड़ी-बहुत मात्रा में मौजूद रहते हैं, सान्द्र हाइड्रोक्लोरिक एसिड में घोला जाता है, तथा प्राप्त घोल में आक्जेलिक एसिड का विलयन मिलाया जाता है जिससे कि थोरियम का थोरियम आक्ज़लेट के रूप में अवक्षेपण हो जाता है। इस थोरियम आक्ज़लेट के अवक्षेप का फिर सोडियम कार्बोनेट के घोल के साथ उपचारण किया जाता है, और इस प्रकार थोरियम, एक जटिल लवण, सोडियम कार्बोनेटोथोरेट, के रूप में घोल में चला जाता है तथा अन्य रेयर अर्थ्स अघुलित अवस्था में बच रहते हैं।

सोडियम कार्बोनेटोथोरेट के घोल में सल्फ्यूरिक एसिड मिलाया जाता है और इस प्रकार थोरियम सल्फेट के मणिभ प्राप्त हो जाते हैं। इन मणिभों का पुनः मणिभीकरण किया जाता है जिससे कि शुद्ध थोरियम सल्फेट आक्टाहाइड्रेट प्राप्त होता है।

थोरियम धातु की प्राप्ति—थोरियम धातु को प्राप्त करना कोई आसान कार्य नहीं है क्योंकि यह बहुत ही शीघ्रता से हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, आक्सीजन व अन्य तत्वों से क्रिया कर लेता है, तथा इसका द्रवणांक भी काफी ऊँचा है। फिर भी धातु के रूप में यह निम्न विधियों से प्राप्त किया जा सकता है:—

(i) थोरियम टेट्राक्लोराइड का कैल्सियम द्वारा जिंक क्लोराइड या अन्य किसी फ्लक्स की उपस्थिति में अवकरण करके, (ii) थोरियम ऑक्साइड या टेट्राक्लोराइड का कैल्सियम, मैग्नीशियम या सोडियम द्वारा अवकरण करके, (iii) थोरियम टेट्राक्लोराइड, पोटैशियम सायनाइड और सोडियम क्लोराइड के संगलित मिश्रण का विद्युत-विच्छेदन करके, (iv) बहुत ही शुद्ध धातु, थोरियम टेट्राआयोडाइड के उष्मीय विघटन द्वारा प्राप्त की जा सकती है।

गुण—थोरियम एक मुलायम सफेद धातु है जिसको कि पीटा जा सकता है तथा तार खींचे जा सकते हैं। यह हवा में काला पड़ जाता है, तथा आक्सीजन के साथ क्रिया करके थोरियम ऑक्साइड बनाता है। नाइट्रोजन के साथ 800° सेंटीग्रेड पर यह नाइट्राइड बनाता है, तथा क्लोरीन, ब्रोमीन व आयोडीन के साथ 500° सेंटीग्रेड पर क्रिया करके विभिन्न टेट्राहैलाइड बनाता है। थोरियम का सबसे महत्वपूर्ण गुण उसकी रेडियोधर्मिता है।

उपयोग—थोरियम का आजकल सबसे अधिक उपयोग न्यूक्लीय उर्जा उत्पादन में किया जाता है। यहाँ उल्लेख करना अनुचित न होगा कि भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, ट्राम्बे के वैज्ञानिकों ने एक ऐसी प्रयोगशाला बनायी है जहाँ मोनाजाइट से तैयार किये थोरियम ऑक्साइड के अवकरण से थोरियम धातु चूर्ण बनाया जाता है। किरणीयत थोरियम से बहुत शुद्ध यूरेनियम प्राप्त हुआ है और उसे न्यूक्लीय ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। थोरियम, गैस मैंटल उद्योग में भी काफी प्रचुर मात्रा में प्रयोग की जाती है।

इसके अन्य उपयोग हैं:—(i) टंगस्टन फिलामेंट,

[शेष पृष्ठ 21 पर

भारतवर्ष में शीत गृहों का महत्व और उनका निर्माण

के० एन० अग्रवाल तथा वी० वी० वर्मा

मानव जीवन की रोगों से रक्षा और उसकी वृद्धि के लिए इसके भोजन में पत्तों, अंडों, दूध, मछली तथा अन्य पदार्थों का अत्यन्त महत्व है। मछली, अंडे तथा अन्य सब्जियाँ सड़ने गलने वाले पदार्थ हैं, इस कारण से इनके उत्पादन का बहुत बड़ा भाग मौसम के दिनों में ही व्यर्थ चला जाता है। आलू जैसे खाद्य पदार्थ को भी बहुत दिनों तक सुरक्षित नहीं रखा जा सकता था। यह फसल के दिनों में बहुत सस्ते होते हैं और फसल समाप्त होने पर इनके दाम बहुत बढ़ जाते हैं। इस कारण से प्रत्येक मौसम में सामान्य व्यक्ति के लिए इनका प्रयोग बहुत कठिन हो जाता है।

इस कठिनाई को बहुत हद तक शीत गृहों में, मौसम के दिनों में इनका भंडार करके दूर की जा सकती है। शीत गृहों के भंडार के कई लाभ हैं।

1. इनको सड़ने गलने से बचाना।

2. पूरे वर्ष के लिए इनकी उपलब्धि।

3. इनकी कीमतों को स्थिर रखना।

4. उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों को उचित लाभ तथा मूल्य पर यह वस्तुएँ उपलब्ध कराना।

इन कारणों से ऐसे स्थानों में जहाँ पर इन पदार्थों की बहुतायत हो अथवा इनकी खपत बहुत अधिक हो, शीत गृहों का निर्माण अत्यन्त लाभकारी एवं महत्वपूर्ण है। शीत गृहों में जमा किये गये खाद्य पदार्थों के स्वाद तथा उनकी खुराक क्षमता में किसी प्रकार की कोई कमी नहीं होती है।

देश में शीत गृह भण्डारों के निर्माण की आवश्यकता :—

शीत गृहों का निर्माण दो मुख्य बातों पर निर्भर है,

1. सड़ने गलने वाले खाद्य पदार्थों का उत्पादन।

2. अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों में उनका उपयोग।

तालिका—1

खाद्य पदार्थों का वार्षिक उत्पादन

1. दूध	216·1	लाख टन
2. अंडे	2·0	,, ,,
3. आलू	40·9	,, ,,
4. मछली	16·0	,, ,,
5. फल	81·0	,, ,,
6. सब्जियाँ	27·1	,, ,,
7. माँस	27·5	,, ,,
8. मुर्गी का गोश्त	2·0	,, ,,
कुल	400·80	लाख टन

तालिका (1) में भारतवर्ष में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन दिया गया है। इससे विदित होता है कि देश में ऐसे खाद्य पदार्थों का उत्पादन 4 करोड़ मीट्रीक टन के लगभग है। ऐसा समझा जाता है कि यदि इसका दस प्रतिशत भाग भी शीत गृहों में रखा जाये तो 40 लाख टन क्षमता के लिए शीत गृहों की आवश्यकता पड़ेगी। जबकि इस समय देश में इनकी क्षमता 14 लाख टन के लगभग है और अधिकतर शीत गृहों में आलू ही रखे जाते हैं।

यद्यपि शीत गृहों के निर्माण में वृद्धि बहुत तेजी से हुई है फिर भी उनकी क्षमता पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में दुगनी करने की आवश्यकता है। इस समय देश में लगभग 1500 शीत गृह हैं। प्रत्येक प्रान्त के शीत गृहों की संख्या तालिका (2) में दी गयी है। उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक शीत गृह लगभग 446 हैं। दूसरा नम्बर पश्चिम बंगाल तथा बिहार का है। 70 प्रतिशत शीत गृहों में मुख्यतः आलू का ही भंडार किया जाता है। शीत गृहों का व्यापार मुख्यतः व्यक्तिगत लोगों के ही हाथों में है। प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकारें भी निम्न प्रान्तों में सहकारिता के सहयोग से शीत गृहों के निर्माण में प्रयत्नशील हैं। जिससे इनकी कमी को कुछ तक हद पूरा किया जा सके।

तालिका—2

प्रान्तों के शीत गृहों की अनुमानित संख्या और उनकी क्षमता

क्रम संख्या	प्रान्त	शीत गृहों की संख्या	क्षमता टन हजार
1.	आन्ध्र प्रदेश	20	2·700
2.	अन्डमान द्वीप	2	0·620
3.	आसाम	70	0·425
4.	बिहार	170	190· 35
5.	देहली	40	34· 90
6.	गोआ दमन तथा दीऊ	6	0·935
7.	गुजरात	40	17·412
8.	हरियाणा	50	48·103
9.	केरल	80	6·034
10.	मद्रास	40	3·502
11.	मैसूर	25	1·832
12.	महाराष्ट्र	70	6·645
13.	उड़ीसा	20	8·910
14.	पांडीचेरी	4	0·026
15.	पंजाब	100	90·154
16.	राजस्थान	20	14·894
17.	चन्डीगढ़	15	8·540
18.	त्रिपुरा	4	0·900
19.	मध्य प्रदेश	14	24·930
20.	उत्तर प्रदेश	446	687· 49
21.	पश्चिम बंगाल	150	300·018
	कुल	1490	1474·015

इनकी महत्ता को देखते हुए भारत सरकार के कृषि तथा खाद्य मंत्रालय ने 1964 में एक शीत गृह-अधिनियम प्रकाशित किया तथा एक शीत गृह परामर्शदात्री समिति की स्थापना की। यद्यपि इससे शीत गृहों के निर्माण तथा उनके व्यवस्थित ढंग से कार्य करने में सहायता मिली, फिर भी अभी तक इस विषय में कोई वैज्ञानिक अनुसंधान नहीं हुआ। इसी बात को ध्यान में रखते हुए तथा इनके रचना तथा निर्माण में मितव्ययता और क्षमता बढ़ाने के लिए केन्द्रीय भवन अनुसंधान संस्थान, रुड़की ने इस विषय में कुछ महत्वपूर्ण शोध किए। इसके आधार पर कुछ महत्वपूर्ण सुझाव शीत गृह उद्योग को उनके उत्तम कार्य क्षमता के विषय में दिये गये हैं।

शीत संग्रहागार के निर्माण में कार्य क्षमता तथा मितव्ययता की दृष्टि उचित आधार-शिला तथा तापीय रूपांकन का होना आवश्यक है। इस निबन्ध का मुख्य उद्देश्य संग्रह स्थल भवन, विसंवाहन तथा प्रशीतन मशीन के लिए कुछ सुझाव प्रदान करना है जो कि आलू की शीत संग्रहागार के रूपांकन में लाभदायक होंगे।

स्थान की अपेक्षायें—

शीत संग्रहागार में उसके आयतन के अनुसार ही वस्तुओं का संग्रह किया जा सकता है, किन्तु इसमें उद्भरण तथा शोषण मंच मशीन तथा कार्यालय कक्ष पूर्व-शीतल कक्ष तथा कमरे के बाहर के अन्य स्थान नहीं आते। कक्ष का प्रकार, पदार्थ की मात्रा सवेष्टन-विधि तथा गमनागमन के लिए पर्याप्त स्थान के ऊपर निर्भर करता है। उचित संग्रहण एवं शीत वायु परिवहन हेतु प्रतिटन आलू के लिए 3·4 घन मीटर संग्रह स्थान अधिक उपयुक्त होता है। शीत वायु के सम वितरण तथा उचित परिवहन के लिए कक्ष की ऊँचाई 5 मीटर से 10 मीटर तक रखी जा सकती है। पदार्थों को रखने व हटाने के कार्यों की सुगमता हेतु कुछ सुझाव नीचे दिये गये हैं।

1. निलय की पंक्तियों के मध्य का पथ 75 से० मी० से कम नहीं होना चाहिये।

2. निलय को दीवार से कम से कम 20 से 25 से० मी० दूर रखना चाहिये।

3. प्रत्येक निलय की उपरितम शैल्व में उद्भरण पदार्थ तथा छत में 30 से० मी० का रिक्त स्थान होना चाहिये।

आलू के शीत संग्रहागार के लिए कमरों की विभिन्न ऊँचाइयों के लिए फर्श का क्षेत्रफल तालिका (3) में

तालिका—3

आलू के शीत-संग्रहागार की विभिन्न ऊँचाईयों के लिए शीत-संग्रहागार की क्षमता

क्रम सं०	फर्श का क्षेत्रफल (मी०)^2	संग्राहक पदार्थ की मात्रा (टनों में) कमरे की ऊँचाई (मीटरों में)			
		4	6	8	10
1.	50	64	96	128	160
2.	100	128	192	256	320
3.	150	192	288	384	480
4.	200	256	384	512	640
5.	250	320	480	640	800
6.	300	384	576	768	960
7.	350	448	672	896	1120
8.	400	512	768	1014	1280
9.	450	576	864	1142	1440
10.	500	640	960	1270	1600

दिया गया है। इस तालिका से फर्श का क्षेत्रफल कमरे की किसी विशेष ऊँचाई के लिए गणित किया जा सकता है।

भवन अभिकल्प :—

किसी भी स्थान पर प्रचलित पद्धति के अनुसार ही भवन की रचना ईंटों, पत्थर या प्रचलित कंक्रीट से की जा सकती है। दीवार और छत की मोटाई मुख्यत: संरचनात्मक उद्भरण की आवश्यकता पर निश्चित की जा सकती है। साधारणत: 45 से० मी० से ज्यादा मोटी दीवार की आवश्यकता नहीं होती। छत या तो चपटी या ए० सी० शीटों की ढालूदार होनी चाहिये।

तापीय विसंवाहन—

शीत संग्रहागार उचित पदार्थों से विसंवाहित होने चाहिये जिसके लिए ऐक्पैन्डिड पोलिस्ट्रीन, रेजिन वोनडिड फाईवर ग्लास, खनिज उर्ण फ्रोम कंक्रीट, लकड़ी का बुरादा तथा चावल की भूसी जैसे पदार्थों को प्रयोग में लाया जा सकता है। विसंवाहन के मूल्य को नियंत्रित करके उसकी मोटाई की मात्रा निर्धारित की जा सकती है, जिससे शीत संयंत्र एवं उसके चलाने का व्यय विसंवाहन के मूल्य से अधिक न हो जाये। इसके अतिरिक्त प्रयोगिक विसंवाहन की मात्रा संघनन को रोकने के लिए पर्याप्त होनी चाहिये अर्थात् धरातल का तापक्रम ओसांक से ऊपर रखना चाहिये। आलू के शीत-संग्रहागार की दीवारों, छत तथा फर्श के लिए मितव्ययी न्यूनतम विसंवाहन की मोटाई तालिका (4) में दी गयी है। यह देखा गया है कि छतों तथा दीवारों पर, जिन पर सूर्य का विकिरण पड़ता हो, के लिए फर्शों के अपेक्षाकृत अधिक—विसंवाहन की आवश्यकता होती है।

तालिका 4

आलू के शीत-संग्रहागार के भवन कक्ष के लिए अभिस्ताविक न्यूनतम विसंवाहन की मात्रा

क्रम संख्या	विसंवाही पदार्थ	घनत्व कि० ग्राम/मी०	मोटाई से० मी०		
			छत	दीवार	फर्श
1.	कार्क	164·0	8·0	7·0	5·0
2.	फाईवर ग्लास	26·5	7·5	7·0	5·0
3.	एक्सपैन्डिड पोलिस्ट्रिन	18·4	7·0	7·0	5·0
4.	मिनरल वूल	72.5	7·5	7·0	5·0
5.	फ्रेम कंक्रीट	320·0	18·5	15·0	10·0
6.	लकड़ी का बुरादा तथा चावल की भूसी	150·0	25·0	20·0	15·0

विभाजक भित्ति के लिए विसंवाहन की मात्रा बाहरी दीवार से आधे से कम नहीं होनी चाहिये तथा विसंवाहन का दोनों ओर प्रयोग होना चाहिये। विसं-वाहन पद्धति की सफलता वाष्प अवरोधक के उचित प्रयोग पर निर्भर करती है। बाह्य स्तर को जितना संभव हो सके अभेद्य बनाना चाहिये। आन्तरिक स्तर अधिक प्रति बेध्य किस्म का हो जिससे विसंवाहन में संघनन नहीं हो सके, यदि निम्नलिखित सावधानियाँ प्रयोग में लाई जावें तो विसंवाहन में संघनन तथा श्याम जल जैसी कठिनाइयों को कम किया जा सकता है।

1. वाष्प अवरोधक बिटूमैन पर आधारित पदार्थ, एल्यूमीनियम-फाईल तथा पौली इथाईलीन कागज का

प्रयोग विसंवाही पदार्थों के पहले करना चाहिये क्योंकि यह ऊँचे वाष्प दबाव विभव का क्षेत्र होना चाहिये।

2. वाष्प अवरोधक पदार्थों की संधियों की उचित प्रकार समुंदरण करने से पर्याप्त सावधानी रखनी चाहिये।

3. वाष्प अवरोधक पदार्थों का उपयोग विसंवाही पदार्थों के बाद नहीं करना चाहिये, ऐसा करने पर सीलन जो विसंवाहन में अनेक कारणों से रिस गयी है बाहर नहीं निकल पायेगी तथा विसंवाहन नष्ट हो जायेगी।

प्रशीतन संयंत्र की क्षमता तथा मशीनरी का चुनाव —

सम्पीडक प्रशीतन यंत्र का सबसे महत्वपूर्ण अंग होता है। अतः इसका चुनाव बहुत सावधानी से करना चाहिये। मंद गति वाला संपीडक हमारी परिस्थितियों के लिए अधिक अनुकूल है। तालिका (5) में 500, 1000 तथा 2000 टन आलू की क्षमता वाले शीत संग्रहागार के फर्श का क्षेत्रफल, कक्ष की संख्या व ऊँचाई तथा अनुमानित प्रशीतन संयंत्र की क्षमता दी गयी है। यदि संपूर्ण प्रशीतन को दो संपीडकों पर इस प्रकार से विभाजित किया जाये कि प्रत्येक पर अनुमानित क्षमता से कुछ ही अधिक भार पड़े तो यह अधिक उपयुक्त रहता है।

तालिका 5

विभिन्न क्षमताओं के शीत संग्रहागारों का विस्तृत अभिकल्प

क्रम संख्या	आलू की मात्रा जो संचित करना है (टनों में)	कक्ष की ऊँचाई	फर्श का क्षेत्रफल वर्गमीटर	कमरों की संख्या	अनुमानित प्रशी/तन क्षमता (टनों में)
1.	500	6	283	1	13·5
		10	170	1	12·5
2.	1000	6	566	2	25·0
		10	340	1	23·0
3.	2000	6	1132	4	48·0
		10	640	2	45·0

पानी के तापमान को ध्यान में रखते हुए संघनित का चयन संपीडन की क्षमता के अनुसार करना चाहिये। वायु शीलन संघनित्र आलू के शीत संग्रहागार के लिए अधिक उपयुक्त होता है, क्योंकि इसके प्रयोग में आसानी होती है। सामान्य रूप से अमोनिया, फ्रीऑन-12 तथा फ्रीऑन-22 नामक प्रशीतन प्रयोग में लाये जाते हैं तथा रिसने से पदार्थों को कोई हानि नहीं पहुँचती किन्तु फ्रीआन प्रशीतक में तेल के बहाव को ठीक रखने के लिए नलियों के अभिकल्प में सावधानी रखनी चाहिये। यदि हम प्रारम्भिक मूल्य पर ध्यान दें तो अमोनिया या फ्रीआन संयंत्रों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। एक टन आलू के प्रशीतन के लिए दोनों संयंत्रों में बिजली की खपत भी लगभग समान ही आती है। अमोनिया संयंत्र में आने वाले खर्चे बहुत कम हैं क्योंकि अमोनिया का मूल्य फ्रीऑन का चौथाई है। इसलिए ज्यादातर अमोनिया सम्पीडक ही आलू के शीत गृहों में प्रयोग किया जाता है।

विद्युत के खर्च में मितव्ययता के कुछ सुझाव :—

वर्तमान विद्युत संकट के समय शीत गृहों को सुचारु रूप से चलाने के लिए अत्यन्त आवश्यक है कि उनको

कार्य तथा तापीय क्षमता को बढ़ाया जाये, जिससे कम से कम बिजली खर्च से शीत गृहों को चलाया सके। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना अत्यन्त आवश्यक है।

1. अधिकतर यह देखा जाता है कि आरक्षित सम्पीडक के लिए उतनी ही क्षमता वाले सम्पीडक का इस्तेमाल किया जाता है जितना कि उसका सम्पूर्ण प्रशीतन उद्भरण है। इसको कुल क्षमता में बराबर में दो सम्पीडकों में विभाजित करके पूरा किया जा सकता है। इससे न केवल शुरू के खर्च में बल्कि गर्मी के दिनों में अधिक क्षमता के सम्पीडकों से कार्य किया जा सकता है। साथ ही साथ इस विधि द्वारा आरक्षित सम्पीडकों की आवश्यकता भी पूरी होती है।

2. यह देखा गया है कि आलू को ठंडा करने के पश्चात शीतगृहों से उष्मा संचार के द्वारा जितना ताप बाहर से आता है वह कुल प्रशीतन उद्भरण का तीसरा भाग है। इसलिए गर्मी के दिनों में शीत गृहों को पूरे चौबीस घंटे की अवधि में केवल 8 घंटे ही चलाकर उनके तापक्रम तथा आपेक्षिक आर्द्रता को स्थिर रखा जा सकता है।

3. कुचालक पदार्थों में पानी का अंश होने से उनकी क्षमता घट जाती है और इस कारण बिजली का खर्च भी बढ़ जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि कुचालक पदार्थों को हमेशा सूखा रखा जाये और वो उत्तम प्रकार के हों।

4. शीत गृहों के दरवाजे दिन में अधिक बार नहीं खोलने चाहिये, इससे बाहर की हवा अन्दर आ जाती है और इसको ठंडा करने में अतिरिक्त बिजली की आवश्यकता होती है।

5. बाहर से आने वाले आलू को शीत गृहों में अन्दर ले जाने से पहले उनको लगभग 24 घंटे प्रीकुलिंग चैम्बर में रखा जाना चाहिये जिससे कुछ अंश तक उनकी गर्मी कम की जा सके।

6. विद्युत का प्रकार तथा पंखों का संचालन उसी समय किया जाये जब आलू को अन्दर या बाहर ले जाया जाना हो।

आभार :—

प्रस्तुत लेख केन्द्रीय भवन अनुसंधान के नियमित शोध-कार्य का एक अंश है तथा निदेशक महोदय की अनुमति से प्रकाशित किया जा रहा है।

संदर्भ :

1. एयर कंडीशनिंग-रेफ्रीजरेशन डेटा बुक, 1955-1959
2. थरमल इंन्सुलेशन आफ कोल्ड स्टोरेज स्ट्रेक्चरस पब्लिस्ड एट दी प्रोसिडिंग आफ सिम्पोजियम आन कोल्ड स्टोरेज एट आई० आई० टी०, कानपुर, 1968
3. थरमल इन्सुलेशन एट लो टैम्पेरेचर-बिल्डिंग डाईजेस्ट नं 72
4. स्यूटेबिलिटी आफ राईस हस्क एंड सा-डस्ट फार कोल्ड स्टोरेज एप्लीकेशन-बिल्डिंग डाईजेस्ट नं० 85
5. रिवाइज्ड ड्राफ्ट आई० एस० 661-1964 फार थरमल इन्सुलेशन एंड सेफ आपरेशन आफ कोल्ड स्टोरेज।
6. एस्टीमेशन आफ रेफरीजरेशन प्लांट कैपेसिटी एंड थिकनेस आफ इन्सुलेशन फॉर पोटेटो कोल्ड स्टोरेज पब्लिस्ड इन दी जनरल 'क्लाईमेट कन्ट्रोल' दिसम्बर—1973

अणु-द्रवण क्रिया द्वारा जल से असीमित उर्जा प्राप्त करना सम्भव

संकलित

क्या अणु द्रवण प्रक्रिया का आश्रय लेकर विश्व को निरन्तर गम्भीर हो रहे उर्जा संकट से मुक्त किया जा सकता है ?

अमेरिका के एक प्रख्यात लैसर-वैज्ञानिक डा० हेनरी गोमवर्ग का दृढ़ विश्वास है कि यह सम्भव है। उनकी मान्यता है कि यह प्रक्रिया, अगले कुछ वर्षों में पूर्णता को प्राप्त होने के बाद, उर्जा के अभाव को सदा-सदैव के लिए दूर कर देगी।

इस प्रक्रिया के अन्तर्गत, जलकणों को हाइड्रोजन और आक्सीजन में विखण्डित कर दिया जाएगा और इस प्रकार पृथक किये गये दोनों तत्वों को बड़े पैमाने पर अलग-अलग कार्यों में प्रयुक्त किया जा सकेगा। हाइड्रोजन का उपयोग असीमित परिमाण में ईंधन सुलभ करने हेतु तथा आक्सीजन का उपयोग पृथ्वी के निरन्तर दूषित हो रहे वातावरण को शुद्ध करने के लिए होगा। डा० गोमवर्ग का कहना है कि यह कोरी वैज्ञानिक कपोल-कल्पना नहीं है बल्कि वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि अब वह समय आ गया है जबकि इस विचार को यथार्थ रूप दिया जा सके।

डा० गोमवर्ग के अनुसार उर्जा-संकट पर विजय प्राप्त करने के लिए उर्जा के कई वैकल्पिक स्रोतों के बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जा रहा है। इसमें विद्युतशक्ति उत्पादन के लिए अणु-द्रवण प्रक्रिया का उपयोग करना भी शामिल है। लेकिन, 25 वर्षों तक निरन्तर प्रयास करने के बाद भी, अणु-द्रवण प्रक्रिया द्वारा विद्युत शक्ति उत्पादन के मार्ग में आने वाली कुछ समस्याओं को हल नहीं किया जा सका है।

'के०एम०एस० इनकारपोरेटेड', नामक अनुसंधान-संघटन, आजकल अणु-द्रवण प्रक्रिया द्वारा विद्युत शक्ति का उत्पादन करने की एक अद्वितीय प्रक्रिया के बारे में प्रयोग कर रहा है। इसमें लेसर-किरणों द्वारा संचालित अणु-द्रवण प्रक्रिया का उपयोग जल अणुओं को हाइ-ड्रोजन और आक्सीजन में विभक्त करने के लिए किया जाता है। अत्यन्त सस्ती लागत पर उत्पादित इस हाइ-ड्रोजन का उपयोग ईंधन के रूप में किया जा सकता है।

इस प्रक्रिया में इलेक्ट्रोलिसिस प्लाण्ट के संचालन हेतु विद्युतशक्ति उत्पन्न करने की जरूरत नहीं पड़ती और इस प्रकार बेकार का खर्च बच जाता है। इसके अलावा इस प्रक्रिया में उन बहुत सी इंजीनियरिंग समस्याओं का सामना भी नहीं करना पड़ेगा जिनका सामना हाइड्रोजन-संयंत्रों में विद्युतशक्ति उत्पन्न के सिलसिले में करना पड़ता है। अन्य महान आविष्कारों की तरह यह प्रक्रिया भी बहुत सरल और बोधगम्य प्रतीत होती है।

लेसर द्रवण प्रक्रिया में, ड्युटीरियम टिट्रियम जैसे ईंधन की एक टिकिया का उपयोग किया जाएगा, जिसका वजन माइक्रोग्राम से भी बहुत कम होगा। इस टिकिया पर दोनों तरफ से 'नियोडीनियम ग्लास-लैसर' किरणों का प्रहार किया जाएगा। इस प्रकार, टिकिया पर लैसर-किरणों का एक समान विस्तार होगा। इस समय लैसर-किरण ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके द्वारा तत्क्षण उर्जा का प्रचण्ड परन्तु नियंत्रित विस्फोट सम्भव है।

उर्जा का सृजन एक सेकेण्ड के एक अरब भाग में ही हो जाएगा। यद्यपि इसका कुछ भाग प्रतिबिम्बित

होने के कारण नष्ट हो जाएगा परन्तु शेष ईंधन की टिकिया द्वारा जज्ब कर लिया जाएगा। यद्यपि टिकिया की ऊपरी सतह जल जाएगी या उड़ जाएगी परन्तु इसका क्रोड 'अन्तरविस्फोट' की प्रक्रिया के कारण बहुत अधिक घनीभूत हो जाएगा। यह प्रक्रिया 'विस्फोट' की विपरीत प्रक्रिया है। इससे टिकिया के पदार्थ का घनत्व सूर्य के क्रोड के घनत्व से भी कई गुना अधिक हो जाएगा।

अब तक इस प्रकार के लगभग एक हजार परीक्षण किए जा चुके हैं। एक्स-रे पिनहोल कैमरों तथा अन्य उपकरणों द्वारा टिकिया के क्रोड के अधिक घनीभूत रूप का निरीक्षण करना सम्भव हो गया है। इससे इस बात की भी पुष्टि हो गई है कि यह प्रक्रिया निश्चय ही घटित होती है। विश्व में पानी की कमी नहीं है और यह प्रक्रिया सफल हो गई तो उर्जा का संकट समाप्त हो जायगा।

प्रारम्भ में लैसर-किरणों का उर्जा स्तर 30 'जूल्स' रहेगा परन्तु कुछ महीनों में, लैसर किरणों का उर्जा-स्तर बढ़ा कर 1,000 'जूल्स' तक ले जाया जाएगा। इस चरण में, अन्तर विस्फोट की प्रक्रिया इतनी शक्तिशाली हो जाएगी कि वह टिकिया (पेलेट) के क्रोड को 2 करोड़ डिग्री के चरम ताप तक पहुँचा देगी। चरम ताप के इस बिन्दु पर अणु-द्रवण की शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया चालू हो जाएगी।

'के० एम० एस०' के वैज्ञानिकों को आशा है कि 1975 तक ईंधन की उक्त टिकिया (पेलेट) से इतनी उर्जा का उत्पादन होने लगेगा जितनी उर्जा लैसर-किरण उत्पन्न करने में सक्षम है।

जब ईंधन की उक्त टिकिया में द्रवण-प्रक्रिया सक्रिय हो जाएगी, तब इसमें न्यूट्रोन, एक्स-रे तथा अन्य प्रकार के विकिरणों का प्रादुर्भाव भी होने लगेगा। 'के० एम० एस०' कम्पनी द्वारा संचालित प्रयोगों में, अब तक एक टिकिया (पेलेट) से 5 लाख तक न्यूट्रोन उत्पन्न किए जा चुके हैं।

इस प्रकार से प्राप्त विकिरण को जल अणुओं को उद्जन और आक्सीजन में तोड़ने की एक सर्वथा नई प्रक्रिया में इस्तेमाल किया जाएगा। इस उद्जन का उपयोग या तो विशुद्ध रूप में या कार्बन के साथ मिलाकर हाइड्रोकार्बन ईंधनों का निर्माण करने के लिए किया जा सकेगा।

इस सिद्धांत को कार्यरूप देने वाला प्रथम संयंत्र सम्भवत: 1978 के अन्त तक स्थापित हो जाएगा। प्रारम्भ में यह अपनी 40 प्रतिशत क्षमता से काम करेगा। यदि यह सफल रहा तो सबसे कम लागत पर उद्जन का उत्पादन करेगा। परम्परागत संयंत्रों की तुलना में इसके निर्माण पर कम लागत आएगी।

इसका एक सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि आक्सीजन एक उपोत्पाद के रूप में प्राप्त होगा जिसका उपयोग कई आर्थिक उद्योगों में तथा वातावरण में सुधार करने के लिए किया जा सकेगा। इसके अलावा झीलों तथा अन्य जलाशयों के जल में आक्सीजन की मात्रा भी बढ़ाई जा सकेगी और इस प्रकार मछलियों तथा अन्य जलचरों की संख्या में वृद्धि करना सम्भव हो सकेगा। न्यूट्रान से निकलने वाली शक्तिशाली किरणों का उपयोग कई प्रकार के कैंसरों का इलाज करने के लिए हो सकेगा। संसार के कई प्रमुख अस्पताल इस क्षेत्र में परीक्षण कर रहे हैं।

डा० गोमबर्ग ने अन्त में यह विश्वास प्रकट किया कि लैसर द्रवण द्वारा संचालित हाइड्रोजन-उत्पादक उपकरण संसार के समक्ष विद्यमान उर्जा के गम्भीर संकट को सदा के लिए दूर कर देंगे।

नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ— भारतीय संदर्भ में

भारत के गांवों में टेलिविज़न द्वारा शिक्षण कार्यक्रम

—शुकदेव प्रसाद

[लेखमाला के पहले भाग में आपने भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा राजस्थान में की गई सफल भूमिगत परमाणु परीक्षण से सम्बन्धित सम्पूर्ण विवरणों का लेखा-जोखा पढ़ा। शिक्षा के क्षेत्र में हमारा देश अभी बहुत पिछड़ा है। इस दिशा में प्रगति हेतु हम एक महत्वपूर्ण प्रयोग करने जा रहे हैं जो कि हमारे देश की अलग-थलग पड़ी बस्तियों को जोड़ने का एक सम्पर्क सूत्र होगा एवं उच्च पैमाने पर अधिकाधिक संख्या में भारतीय ग्रामीणों को शिक्षित बनाने में मदद करेगा या होगा और यह सम्भावना निहित है एक भारत-अमेरिकी प्रयोग में जो एक अमेरिकी भू-उपग्रह के माध्यम से शैक्षणिक टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित करने के उद्देश्य से किया जायगा। सम्पूर्ण विवरण हेतु यहाँ प्रस्तुत है लेखमाला की दूसरी कड़ी—भारत के गाँवों में टेलीविजन द्वारा शिक्षण कार्यक्रम]

18 सितम्बर, 1969 को भारत और अमेरिका ने एक समझौते पर हस्ताक्षर किया जिसका उद्देश्य था अन्तरिक्ष युग को भारत के लगभग पाँच हजार गाँवों में पहुँचाना। भारतीय ग्रामीण निवासियों के लिए यह सम्भावना निहित है, एक भारत-अमेरिकी प्रयोग में, जो एक अमेरिकी भू-उपग्रह के माध्यम से शैक्षणिक टेलिविजन कार्यक्रम प्रसारित करने के उद्देश्य से किया जाने वाला है। समझौता पत्र पर भारत की ओर से भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन के तत्कालीन अध्यक्ष, डा० विक्रम अम्बालाल साराभाई ने हस्ताक्षर किया था। उन्होंने इस योजना की सराहना करते हुए कहा था, "इसमें सही अर्थ में अमित सम्भावनाएं निहित हैं।"

'नासा' के तत्कालीन प्रशासक, डा० टामस ओ० पेन ने समझौते की सराहना करते हुए कहा था कि, "यह इस बात का एक सुन्दर उदाहरण है कि अन्तरिक्ष युग में भिन्न-भिन्न राष्ट्र ऐसा कुछ कर सकने के लिए जो किसी अकेले देश की सामर्थ्य के बाहर हो, किस प्रकार परस्पर सहयोग कर सकते हैं।"

इस सुआयोजित शैक्षणिक टेजिविजन के प्रयोग के अन्तर्गत, कार्यक्रम के अनुसार, 30 मई, 1974 को 'ए० टी० एस० एफ०' (एप्लोकेशन्स टेक्नालोजी सेटेलाइट) नामक अमरीकी भू-उपग्रह को केपकेनेवरल, फ्लोरीडा, से अन्तरिक्ष, में प्रक्षिप्त किया गया है। इस उपग्रह का निर्माण विशेष रूप से अमेरिकी राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन 'नासा' के लिए हुआ है। प्रारम्भ में एक वर्ष तक अमेरिका के कुछ क्षेत्रों के निवासियों द्वारा उसका परीक्षण किया जायगा। इसका प्रयोग वहाँ के ग्रामीण समुदायों के लाभार्थ शैक्षणिक कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए किया जायगा। उसके बाद 1975 से मध्य काल में उपग्रही शैक्षणिक टेलिविजन प्रयोग (एस० आई० टी० ई०) नामक संयुक्त भारत-अमेरिकी परियोजना प्रारम्भ करने के लिए 'ए० टी० एस० एफ०' को हटाकर हिन्द महासागर के ऊपर एक स्थान पर स्थापित कर दिया जायगा, जहाँ से इसका प्रयोग भारत के 6 राज्यों के गाँवों में सीधे टेलिविजन रिसीवरों पर हो शैक्षणिक

कार्यक्रम सम्प्रेषित करने के लिए किया जायगा। इस प्रयोग का नाम भू-उपग्रही शैक्षणिक टेलिविजन प्रयोग (सेटेलाइट इस्ट्रक्शनल टेलिविजन एक्सपैरिमेन्ट) जिसकी लागत लगभग 17 करोड़ रुपये है। इस प्रयोग का मुख्य उद्देश्य भारत को उसकी दूरस्थ और अलग-अलग पड़ी ग्रामीण बस्तियों से अपना सम्पर्क बनाए रखने में सहायता प्रदान करना है।

संरचना एवं कार्यक्रम की योजना

शक्तिशाली संकेतों के सम्प्रेषण को सम्भव बनाने हेतु 'ए० टी० एस० एफ०' में नौ मीटर व्यास का एक शक्तिशाली एण्टेना लगाया गया है। अब तक इतना बड़ा एण्टेना किसी अन्य संचार भू-उपग्रह में नहीं लगाया गया था। इसका 80 वाट क्षमता वाला ट्रांसमीटर इतना शक्तिशाली होगा कि यह टेलिविजन प्रसारण को सीधे छोटे आकार के सस्ते डिस एण्टेनाओं तक और उनके माध्यम से टेलिविजन सेटों पर प्रक्षिप्त करने में समर्थ होगा। जून 1975 तक भारत के बहुत से गाँव 36,000 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित इस उपकरण द्वारा राष्ट्रीय विकास की मुख्यधारा से सम्बद्ध हो जावेंगे।

भारतीय गाँवों में जो टेलिविजन रिसीवर लगाए जायेंगे उन्हें भारतीय वैज्ञानिकों ने विशेष रूप से इस बात को दृष्टिगत रखकर तैयार कराया है, ताकि वे सीधे भू-उपग्रह से ही संकेतों को ग्रहण कर सकें। जब भू-उपग्रहों और सम्प्रेषण प्रविधियों में आगे चलकर कुछ और सुधार हो जायगा तो घरों पर लगाए गए साधारण टेलिविजन रिसीवरों में साधारण सा संशोधन करके सीधे उन्हीं पर प्रसारणों को ग्रहण किया जा सकेगा।

वर्तमान परियोजना सम्बन्धी समस्त भूतलीय प्रणाली की व्यवस्था अहमदाबाद का, 'एस० ए० सी०' (स्पेश एप्लिकेशन सेन्टर) कर रहा है। कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य और परिवार नियोजन विषयक टेलिविजन कार्यक्रम 'ई० सी० एस० ई० एस० (एक्सपेरिमेण्टल-कम्युनिकेशन्स सेटेलाइट अर्थ स्टेशन) द्वारा, जिसकी भी स्थापना अहमदाबाद में की गई है, ए० टी० एस० एफ० तक सम्प्रेषित किये जायेंगे। दिल्ली में एक नया वैकल्पित भूतलीय स्टेशन स्थापित किया जा रहा है जिसके द्वारा भी कुछ कार्यक्रम सम्प्रेषित होंगे। उपग्रह से इनका प्रसारण होगा और दिल्ली, बम्बई तथा श्रीनगर स्थित भूकेन्द्र इनका पुनर्प्रसारण करेंगे। लगभग 5,000 टेलिविजन सेट विभिन्न गाँवों में लगाये जायेंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर 5 हजार गाँव इस कार्यक्रम को यहाँ देख-सुन सकेंगे।

प्रत्यक्षग्राही टेलीविजन सेटों के लिये 2400 गाँवों का चुनाव करना एक कठिन कार्य है। इन गाँवों का चुनाव करने के लिए 'एस० ए० सी०' की टोलियाँ लगभग 4,000 गाँवों का दौरा करेंगी और विस्तृत सर्वेक्षण और भेंट वार्ताओं के बाद, उनमें से 2,400 गाँवों को चुनेंगी। इन गाँवों को 6 ग्राम समुदायों में विभाजित किया जायगा, जो मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, मैसूर और आन्ध्र प्रदेश में स्थित होंगे। प्रत्येक ग्राम समुदाय के लिए किसी शहर में एक रख-रखाव केन्द्र स्थापित होगा।

अमेरिकी भूउपग्रह के माध्यम से जो टेलिविजन कार्यक्रम प्रसारित होंगे उनके आयोजक और निर्माता एकमात्र भारतीय विशेषज्ञ ही होंगे। आकाशवाणी द्वारा दिल्ली, हैदराबाद, कटक और अहमदाबाद, बम्बई में स्टूडियो स्थापित किये जा रहे हैं, जहाँ इस परीक्षण के लिए कार्यक्रम तैयार किये जायेंगे। कार्यक्रम तैयार करने की जिम्मेदारी आकाशवाणी पर होगी जो 'एस० ए० सी०' के सहयोग से यह कार्य सम्पन्न करेगी। इन कार्यक्रमों को तैयार करने में संस्कृति, भाषा, सामाजिक ढांचा, कृषि प्रणाली, जलवायु और परिस्थिति की विविधता और अन्तर को ध्यान में रखा जायगा।

जो कार्यक्रम प्रसारित किये जायेंगे वे चार भाषाओं, हिन्दी, कन्नड़, उड़िया और तेलगू में होंगे। प्रतिदिन कुल चार घण्टे के प्रसारण का आयोजन किया गया है। इनमें से नब्बे मिनट का प्रसारण प्रातःकाल स्कूली बच्चों और शिक्षकों का होगा। शेष ढाई घण्टे का प्रसारण शाम को होगा। समाचार भी प्रसारित किये जायेंगे।

प्रगति के नई किरण की आशा

भारत और अमेरिका के पारस्परिक सहयोग से क्रियान्वित होने वाली इस परियोजना का उद्देश्य भारत की कृषि में सुधार करना, ग्रामीण शिक्षा और विकास को विस्तृत करना, परिवार नियोजन को बढ़ावा देना और अलग-अलग पड़े गाँवों को एक सूत्र में आबद्ध करना। संक्षेप में भारत के दूरस्थ गाँवों को त्वरित वेग से 20वीं शताब्दी में पहुँचाने में सहायता प्रदान करना है। आशा की जाती है कि बड़े पैमाने पर सूचनाओं के इस प्रसारण के फलस्वरूप अब तक की अपेक्षा कहीं अधिक संख्या में किसान मानवीय ज्ञान से लाभान्वित होंगे।

स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों द्वारा अनेक रोगों के नियन्त्रण और उपचार, शिशु स्वास्थ्य, पोषण तत्व, परिवार नियोजन, आदि के बारे में जानकारी प्रसारित करने का प्रयत्न किया जायगा। इसके फलस्वरूप, लोग वर्तमान ग्रामीण स्वास्थ्य सुविधाओं का अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए प्रेरित होंगे। साथ ही उन्हें आधुनिक औषधियों, सफाई की विधियों, रोग निरोधक उपायों को स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं होगी।

प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था को अधिक सक्षम बनाने के उद्देश्य से, इन कार्यक्रमों को पढ़ाई-लिखाई के अतिरिक्त ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं पर आधारित किया जायगा।

आशा है कि इन कार्यक्रमों से बच्चों में पढ़ाई-लिखाई की इच्छा जाग्रत होगी, उनके दृष्टिकोणों में आधुनिकता का संचार होगा और वे अपने गाँव के बाहर के संसार में हो रही प्रगतियों से अधिक परिचित होंगे।

शैक्षणिक उपग्रह अति उपयोगी—भारतीय वैज्ञानिकों की नजरों में—

"शिक्षा प्रसार के लिए उपग्रह का उपयोग करने से भारत में निरक्षरता का उन्मूलन करने में मदद मिलेगी तथा देश की अर्थ-व्यवस्था में निश्चय ही सुधार होगा।"

उक्त उद्‌गार भारत के उन अधिकारियों के द्वारा व्यक्त किये गये जो 'ए० टी० एस०' उपग्रह के प्रक्षेपण के अवसर पर केपकेनेवटल (फ्लोरीडा) नामक प्रक्षेपण स्थल पर उपस्थित थे।

भारतीय टेलीविजन के डाइरेक्टर जनरल श्री पी० वी० कृष्णमूर्त्ति ने एक विशेष भेंट में कहा : समय बहुत कीमती है। भारत अधिक समय तक इन्तजार नहीं कर सकता। बैलगाड़ी जैसी धीमें साधनों से हमारा काम नहीं चल सकता। नये विचार नये माध्यम या वाहन—उपग्रह टेलीविजन कार्यक्रम—के द्वारा प्रसारित किये जाने चाहिये।

उन्होंने आगे कहा—"संचार के क्षेत्र में हमारे समक्ष तीन बड़ी समस्याएँ हैं। सबसे पहली समस्या अगम्यता की है। देश का आकार इतना विशाल है कि सभी स्थानों तक पहुँच पाना हमारे बस की बात नहीं। दूसरी समस्या है, निरक्षरता की। भारत की 7 प्रतिशत जनता आज भी लिख-पढ़ नहीं सकती। तीसरी समस्या है कार्यकर्त्ताओं का अभाव......।"

श्री कृष्णमूर्त्ति का विश्वास है कि संचार-उपग्रह का सहारा लेकर इन समस्याओं को हल किया जा सकता है तथा देश के विकास की गति तेज की जा सकती है।

उन्होंने कहा कि टेलीविजन पर प्रस्तुत किये जाने वाले कार्यक्रमों को तैयार करने के लिए प्रामाणिकता या विश्वसनीयता परम अनिवार्य है। उदाहरणार्थ, श्री कृष्णमूर्त्ति ने यह योजना बनाई है कि किसानों को यह समझने के लिए कि उन्नत विधियों का प्रयोग कर वह अपनी उपज कैसे बढ़ा सकते हैं, किसानों के खेतों पर जाकर ही फिल्में तैयार की जायेंगी। इस प्रकार की फिल्में तैयार करने से लोगों में विश्वास पैदा होगा।

श्री कृष्णमूर्त्ति को पूरा विश्वास है कि भारतीय बालक-बालिकाओं पर टेलीविजन शिक्षा का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा। उन्होंने कहा कि मुश्किल से 4 प्रतिशत बच्चे 5वीं कक्षा तक पहुँच पाते हैं और बहुत से तो बीच में ही स्कूल छोड़ जाते हैं। उन्होंने कहा कि उपग्रह द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था से शिक्षकों को बहुत सहायता मिलेगी तथा शिक्षा बालकों को पहले से कहीं अधिक रुचिकर प्रतीत होने लगेगी। हमारी

स्कूल-प्रणाली पर उसका बहुत दूरगामी प्रभाव पड़ेगा।

भारतीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान-संस्थान के 'स्पेस एप्लीकेशन सेण्टर' के निदेशक श्री यशपाल ने कहा कि 'ए. टी. एस.' उपग्रह से यह पता चलेगा कि क्या भारत संचार के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ सकता है तथा कम से कम समय में दूरस्थ क्षेत्रों से सम्पर्क स्थापित कर सकता है। उन्होंने कहा कि उपग्रह का प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने के लिए जितने धन की जरूरत है उसका केवल 10 से लेकर 20 प्रतिशत भाग उपग्रह की स्थापना पर खर्च होगा।

श्री यशपाल ने कहा कि सबसे पहले कृषि सम्बन्धी टैक्निकल जानकारी का प्रसार करने के लिए इसका उपयोग होना चाहिए क्योंकि हमारा 50 प्रतिशत राष्ट्रीय उत्पादन कृषि पर निर्भर है। यदि हम कृषि विकास में योग देते हैं तो इससे हमारी सम्पूर्ण अर्थ-व्यवस्था को बल मिलता है। भोजन हमारी सबसे बड़ी समस्या है और हमारी अर्थ-व्यवस्था में तभी सुधार हो सकता है जबकि हमारी कृषि प्रगति करे।

उन्होंने आगे कहा : लाखों लोग देखकर जल्दी कोई भी काम सीख सकते हैं। किसान बहुत ही अनुदार होता है क्योंकि प्रचलित कृषि विधियों का प्रयोग निरन्तर सैकड़ों वर्षों से कर रहा है। वह अपने तरीकों को उस समय तक नहीं बदल सकता जब तक उसे यह विश्वास न हो जाये कि नये तरीके अधिक प्रभावशाली हैं क्योंकि उसका सम्पूर्ण जीवन कृषि पर निर्भर है।

'सेटेलाइट इन्स्ट्रक्शनल टेलीविजन एक्सपेरिमेण्ट' (साइट) के प्रोग्राम मैनेजर प्रोफेसर ई० वी० चिटनीस ने कहा : ''यह पहला अवसर होगा जबकि ग्रामों में रहने वाली अधिकांश भारतीय जनता पहली बार टेलीविजन का दर्शन करेगी। सामूहिक प्रचार के माध्यम अभी तक उन तक नहीं पहुँच पाये हैं। हमें एक ऐसे माध्यम की जरूरत है जिसमें लिखने या पढ़ने की जरूरत न पड़ती हो। अगले 5 वर्ष की अवधि में भारत हर ग्राम तक पहुँचने का इरादा रखता है।

उन्होंने आगे कहा : ''इसका अर्थ यह हुआ कि 1981 तक हम भारत के अधिकांश भाग को इस कार्य-क्रम में शामिल कर लेंगे तथा प्रत्येक ग्राम में कम से कम एक टेलीविजन सेट हो जायेगा। लेकिन, टेलीविजन सेट दे देने से ही सभी समस्याएँ हल नहीं हो जायेंगी। हम यह प्रयास तभी सार्थक समझेंगे, जब लोगों को यह विश्वास हो जाये कि चेचक दैवी-प्रकोप नहीं, बल्कि एक रोग मात्र है जिसका उन्मूलन किया जा सकता है। यह प्रयास तब भी सार्थक होगा यदि हम इसके द्वारा लोगों को संतुलित पोषण और परिवार नियोजन की शिक्षा दे सकें और यह बता सकें कि वह किस प्रकार साफ-सुथरे रह सकते हैं और स्वच्छ जल प्राप्त कर सकते हैं।

'आई० एस० आर० ओ०' के प्रोजेक्ट-मैनेजर प्रमोद काले ने कहा कि अधिकारियों को उम्मीद है कि पहले वर्ष में कम से कम 10 लाख लोग 'ए टी एस' उपग्रह द्वारा प्रसारित कार्यक्रम देख सकेंगे। उन्होंने आगे कहा कि—'ए टी एस' उपग्रह भारत में नयी संचार-प्रणाली और शिक्षा-क्रान्ति को जन्म देगा। इतिहास में पहली बार हम ग्रामीण क्षेत्रों में आधुनिक शिक्षा, कृषि और परिवार-नियोजन का प्रसार करने में समर्थ होंगे।

(क्रमशः)

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

लहसुन का रासायनिक परिचय

श्याम सुन्दर पुरोहित

भारत का प्रत्येक नागरिक लहसुन के नाम से भली भाँति परिचित है। वह प्रतिदिन किसी न किसी रूप से उसका उपयोग करता है। लहसुन साल भर तक पैदा होने वाली वह वनस्पति है जिसका कि उद्भव-स्थान मध्य एशिया है लेकिन आजकल इसे दक्षिण यूरोपीय देशों में भी व्यापक रूप से प्रयोग में लाया जा रहा है। लहसुन हमारे दैनिक भोजन के स्वाद में न केवल अभिवृद्धि करता है वरन् इसे विविध प्रकार के रोगों के उपचार में भी प्रयोग में लाया जाता है। लहसुन के रस की बूँदों को कीट दंश तथा बिच्छू काटने पर उसके घाव पर लगाया जाता है। इतना ही नहीं लहसुन शरीर में उत्पन्न होने वाले विभिन्न विकारों जैसे अपचन की शिकायत, मिरगी आना, रक्तस्राव, त्वचा रोग, फुस्फुस आदि के निवारण में भी प्रयोग में लाया जाता है।

हाल ही में जैव-रासायनिक चिह्नों द्वारा किये गये लहसुन के रासायनिक विश्लेषणों से ज्ञात हुआ है कि लहसुन का अर्क एक विशिष्ट प्रकार के ऐरोमेटिक तेल का बना होता है जिसे "गार्लिक आयल" कहते हैं। यह आयल रंग में पीला या मटमैला, अम्लधर्मी तथा तीखी गंध वाला होता है। तेल का प्रमुख घटक ऐलिल सल्फाइड $(CH_2=CH-CH_2)_2S$ होता है। इस घटक के अतिरिक्त लहसुन में दो और महत्वपूर्ण द्रव्य विद्यमान् रहते हैं जिन्हें "डायऐलिल डायसल्फाइड" $(CH_2=CH-CH_2)_2S_2$ तथा "डायऐलिल ट्रायसल्फाइड" $(CH_2=CH-CH_2)_2S$ कहते हैं।

उपर्युक्त रसायन छोटे-छोटे सूक्ष्म जीवाणुओं तथा जन्तु जगत के प्राथमिक सूक्ष्म जन्तु "प्रोटोजोवा" पर नाशक प्रभावी होते हैं। लहसुन से प्राप्त की गई वाष्प प्रोटाजोवा आदि पर घातक प्रभाव दर्शाती है। लहसुन का रस ग्राम-प्रोजेटिव तथा ग्राम-नेगेटिव दोनों ही प्रकार के जीवाणुओं का भी नाश करने में सहायक होता है। अत: यही कारण है कि लहसुन को मुँह चबाने के मुँह की सड़ान व बदबू दूर हो जाती है। लहसुन के रस में "एलिसेटिन" तथा "गार्लिसन" नामक पदार्थ भी विद्यमान् रहते हैं। इन रसायनों को नहाने के साबुन-निर्माण के प्रयोग में लाया जा रहा है! लहसुन में उपस्थित विभिन्न घटकों का ब्योरा निम्नांकित है :—

1.	जलांश	=	62 प्रतिशत
2.	पिष्टमय पदार्थ	=	29 ,, ,,
3.	प्रोटीन	=	6·3 ,, ,,
4.	स्निग्ध पदार्थ	=	0·1 ,, ,,
5.	फास्फोरस	=	0·03 ,, ,,
6.	लोहा	=	1·3 मि० ग्रा० प्रति 100 ग्राम
7.	ताम्र व गंधक	=	अत्यधिक अल्प मात्रा में
8.	विटामिन-सी	=	13 मि० ग्रा० प्रति 100 ग्राम
9.	विटामिन-बी	=	18·7 मि० ग्रा० प्रति 100 ग्राम
10.	रिबोफ्लेविन	=	32 मि० ग्रा० प्रति 100 ग्राम
11.	ऐलिन, अक्रोलाइन, ऐलिसिन, ऐलिसेटिन आदि सूक्ष्म मात्रा में		

तो आपने देखा कितनी महत्वपूर्ण रासायनिक संरचना है लहसुन की यदि आप इसे रोज प्रयोग में लावें तो बीमारी आपके पास कभी नहीं आवेगी।

श्यामसुन्दर पुरोहित
प्राध्यापक वनस्पति विज्ञान विभाग
राजकीय महा-विद्यालय, नाथद्वारा (राज०)

ऑक्सीजन संकट : अब दूर नहीं

श्याम सुन्दर पुरोहित

अब वह दिन दूर नहीं है जब हमें खाद्य संकट, जनसंख्या संकट, पेट्रोल संकट जैसे कई संकटों की सूची में ऑक्सीजन संकट का नाम भी सम्मिलित करना पड़ेगा। हम जानते हैं कि पर्यावरण में आक्सीजन का मुख्य स्रोत केवल पृथ्वी पर विद्यमान हरे पौधे हैं जो प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा कार्बन डाई आक्साइड का अवशोषण कर आक्सीजन की निर्मुक्ति करते हैं। वास्तव में हरे पौधे ही प्रकृति में आक्सीजन के संतुलन को बनाये रखते हैं। जब पृथ्वी पर मानव का उद्भव नहीं हुआ था तो पर्यावरण में पर्याप्त मात्रा में आक्सीजन विद्यमान थी लेकिन जब से मनुष्य ने पृथ्वी पर पदार्पण किया है उसने आक्सीजन सन्तुलन में गड़बड़ी आरम्भ कर दी है। मनुष्य ने अपनी खेती, जलाने की लकड़ी तथा अन्य उपयोग के लिए जंगलों का काटना आरम्भ कर दिया। एक आंकड़े के अनुसार मनुष्य ने पिछले एक लाख वर्षों में हमारी पृथ्वी पर उग रहे 500 से 800 लाख वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में पनप रहे जंगलों के दो-तिहाई भाग को नष्ट कर दिया है। मानव की इस विनाशकारी प्रक्रिया से मनुष्य को तो पर्याप्त लकड़ी आदि की प्राप्ति हो गई लेकिन इसके फलस्वरूप पर्यावरण में आक्सीजन पैदा होने की क्रिया घट गयी। यद्यपि बड़े-बड़े पेड़ों के स्थान पर विभिन्न प्रकार की घासें इत्यादि पनप रही हैं लेकिन वे अधिक मात्रा में आक्सीजन का निर्माण करने में सक्षम नहीं होती हैं। मनुष्य ने जब से इंधन को उर्जा-स्रोत के रूप में प्रयोग करना आरम्भ किया है आक्सीजन की खपत और भी बढ़ गयी है। ईंधन आदि जलाने में लगभग 26,30,000 लाख टन आक्सीजन की समाप्ति होती है क्योंकि आक्सीजन कार्बनयुक्त पदार्थों के दहन में सहायक होती है जिसमें कार्बन-डाई आक्साइड व उसी का निर्माण होता है। पिछले पचास वर्षों में पर्यावरण में कार्बन-डाई-आक्साइड की मात्रा में 20 से 12 प्रतिशत वृद्धि हुई है अर्थात् आक्सीजन में कमी हुई है।

विश्व के विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों की दहन भट्टियाँ प्रतिवर्ष 1,13,000 लाख टन आक्सीजन भस्म कर रही हैं जिसके फलस्वरूप लगभग 1,14,000 लाख टन कार्बन-डाइ-आक्साइड की निर्मुक्ति हो रही है। आक्सीजन की खपत व कार्बन-डाइ आक्साइड की निर्मुक्ति 6 प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ रही है और यदि कार्बन-डाइ आक्साइड के निर्माण की दर 100 प्रतिशत हो गई तो मनुष्य श्वास के लिए आक्सीजन कहाँ से लेगा।

जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है, आक्सीजन तेजी से घट रही है और यदि मनुष्य इसी प्रकार के विनाशकारी कार्य करता रहा तो विश्व के अन्य संकटों की सूची में "आक्सीजन संकट" का नाम भी जोड़ दिया जायेगा। मनुष्य ने पेट्रोल के कृत्रिम संकट को विश्व के समक्ष प्रस्तुत कर जन-हित को बहुत बड़ा लाभ पहुँचाया है। यदि पेट्रोल अथवा डीजल जैसे दहनकारी पदार्थों का उपयोग किसी सीमा तक कम किया गया तो आक्सीजन संकट से बचने में अधिक सहायता मिलेगी। जल प्रपातों अथवा बांधों से निर्मित होने वाली विद्युत इस संकट को दूर करने में हमारी सहायता कर सकती है। यदि पेट्रोल, लकड़ी अथवा दहनकारी पदार्थों से चलने वाली सभी मशीनें विद्युत से चलाई जावें तो पर्यावरण में उपस्थित ऑक्सीजन की खपत कम होगी। वनों के निर्माण की बात हर कोई करता है भारत में हर साल वनमहोत्सव मनाया जाता है लेकिन इस दिन लगाये जाने वाले पौधों कि कितनी देख-भाल होती है ये या तो उन पेड़ों से पूछिये या उनके रक्षकों को? यदि इन वनों की ही

भली-भाँति देखभाल कर ली जाय तो ऑक्सीजन संकट दूर हो सकता है।

प्रगतिशील देश परमाण्वीय-परीक्षणों द्वारा दूषित पर्यावरण को और अधिक दूषित बना रहे हैं। समुद्र में हो रहे उक्त परीक्षण, समुद्र में उपस्थित ऑक्सीजन की कहीं इतनी कमी न कर दें जिससे समुद्र में श्वास ले रही मछलियों एवं जीवों का श्वास लेना कठिन हो जाये। ऑक्सीजन नहीं रहेगी तो मछलियाँ नहीं रहेंगी व मछलियां नहीं रहेंगी तो मनुष्य को खाना नहीं मिलेगा अर्थात् खाद्य की एक और समस्या का उद्भव होगा।

वातावरण में उपस्थित ऑक्सीजन के शुद्धिकरण के कुछ उपाय निम्नांकित हैं :-

भट्टियों अथवा मोटर गाड़ियों के इंजनों से निष्कासित होने वाली गैसों के निष्कासन के पूर्व ही उन्हें इतना शुद्ध कर दिया जावे जिससे उनकी विषाक्तता में कमी हो जावे। अधिकाधिक जंगलों का निर्माण तथा शहर के हर व्यापक क्षेत्र में उद्यानों को बनाना तथा सड़क के दोनों ओर अधिक संख्या में छायादार पेड़ों को लगाना आदि।

लेकिन फिर भी नवागत पीढ़ी के शोधविदों को यह समस्या एक चुनौती के रूप में ललकार रही है। देखते हैं वे इसका क्या हल निकालते हैं। हाल ही में रूस की मास्को रोड इंस्टीट्यूट ने विद्युत से चलने वाली एक ऐसी कार का आविष्कार किया है जिसमें कि विद्युत जनरेटर की सहायता से बैटरियाँ चालू की जाती हैं। इस कार में न तो पेट्रोल का उपयोग होगा न ऑक्सीजन की खपत। इसी प्रकार इटली में भी एक ऐसी कार का निर्माण किया है जिसके इंजन को चालू करने में ईंधन के रूप में केवल जल की आवश्यकता रहती है। इस कार की डिजाइन इटली निवासी इन्सिकोईग्नेस्ति ने बनाई है। इस कार में सर्वप्रथम जल को हाइड्रोजन एवं ऑक्सीजन में अपघटित किया जाता है। इसके बाद ऊर्जा के स्रोत के रूप में हाइड्रोजन का प्रयोग होता है। कार में जल को अपघटित करने वाले यंत्र को पेट्रोल की टंकी से प्रतिस्थापित किया जाता है। यदि इस प्रकार के आविष्कार निरन्तर होते रहे तो पृथ्वी पर कभी भी ऑक्सीजन संकट नहीं आयेगा।

("गन्तव्य" नई दिल्ली के सभार)

●●

सूचना

विज्ञान परिषद की नियमावली में कुछ संशोधनों पर परिषद के अन्तरंगी सदस्यों की आगामी बैठक में विचार किया जायगा। पाठकों तथा सदस्यों से अनुरोध है कि वह अपने सुझाव परिषद कार्यालय को लिख भेजें।

क्या आप जानते हैं ?

- एक मन कोयला जलाने के लिये 14 मन हवा की जरूरत होती है ।
- संतरे के पेड़ से 150 वर्षों तक फल लिया जा सकता है ।
- दायें फेफड़े का वज़न 20 औंस व बायें का 21 औंस होता है ।
- चीता सबसे तेज़ चलने वाला जानवर है । बाज़ सबसे तेज़ उड़ने वाला पक्षी है ।
- रोगों के उपचार में एकुपंचर प्रविधि का उपयोग चीन में 4000 वर्षों पूर्व आरम्भ किया गया था । इसमें सूइयों की सहायता से उपचार किया जाता है ।
- विषाणु एक इंच के ढाई करोड़वें हिस्से जितने छोटे जीवाणु होते हैं ।
- बृहस्पति ग्रह सूर्य से 552000000 किलोमीटर की दूरी पर है और वजन के हिसाब से यह सूर्य का 1047वां भाग है जब कि पृथ्वी से 317 गुना बड़ा है । बृहस्पति पर जो लाल विशाल धब्बे दिखाई पड़ते हैं वे 30000 मील लम्बे व 8000 मील चौड़े हैं ।
- एलबेट्रॉस एक बड़ा ही अजीब पक्षी है । इसे प्रायः समुद्र का पक्षी कहा जाता है । इसके पंखों की लम्बाई साधारण पक्षियों से तीन गुना अधिक होती है । 1957 में पश्चिमी आस्ट्रेलिया में ही ऐसा एक एलबेट्रॉस पक्षी पाया गया था जिसके पंखे की लम्बाई 3·6 मीटर थी ।
- बनमुर्गी एक घण्टे में 400-475 किलोमीटर तक उड़ सकती है ।
- हाथी एक दिन में 40 गैलेन पानी पी सकता है जबकि ऊँट एक समय में 27 गैलन पानी पी सकता है ।

●●

भारत में निर्मित उपग्रह प्रक्षेपण वेहकिल (एस. एल. वी. 3) का सफल परीक्षण हो गया है । इस वेहकिल की सहायता से 40 किग्रा का उपग्रह गोलीय कक्षा में 400 किमी० तक प्रक्षेपित हो सकता है । यह चार चरणों का रॉकेट है ।

कैन्सर एक घातक रोग

सुरेशचन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द आमेटा

कैन्सर आधुनिक युग का एक बढ़ता हुआ रोग है। प्रतिदिन इसके रोगियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। बहुत समय तक कार्य करने के बाद भी वैज्ञानिक इसका सही निदान नहीं खोज पाये हैं। कैन्सर जितने शीघ्र बढ़ने वाले और प्राणघातक रोगों की संख्या आयुर्विज्ञान में गिनी चुनी ही है। विज्ञान की नई-नई खोजों के साथ कैन्सर के रोगियों की लाइनें भी लम्बी होती चली जा रही हैं। वैसे तो इस रोग का सही कारण अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है, परन्तु समय-समय पर विद्वानों ने इसके बारे में अपने-अपने विचार प्रकट किये। इन धारणाओं में से कौन सही है, इसका निर्णय होना भी एक कठिन कार्य है।

कैन्सर को जन्म देने वाले पदार्थों को कार्सिनोजन कहते हैं। अभी तक खोजे गये कार्सिनोजनों में निम्न प्रमुख हैं :

(i) रासायनिक, (ii) आयनीकरण करने वाले विकिरण, (iii) हार्मोन्स, (iv) जलवायु और कारोबार, (v) को-कार्सिनोजन

(i) रासायनिक—सर्व प्रथम सन् 1775 में यह पाया गया कि राल के साथ काम करने वाले लोगों में कैन्सर की संभावना अधिक रहती है। उसके लगभग 150 वर्ष बाद कुछ वैज्ञानिकों ने राल को खरगोश की चमड़ी पर लगाकर कैन्सर पैदा किया। इस खोज के बाद विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित होने लग गया और इसके कुछ ही वर्षों बाद लोगों ने राल का रासायनिक विश्लेषण किया। इस विश्लेषण के आधार पर यह पाया गया कि राल में उपस्थित बेन्जपाइरिन नामक पदार्थ तीव्र कार्सिनोजन है। आगे की खोज करने के बाद एक नया कार्सिनोजन, जो कि 1:2:5:6 बेन्ज-एन्थ्रासीन नामक कार्बनिक यौगिक है, पुराने सभी कार्सिनोजन से तेज और विश्वसनीय है। इन सभी कार्सिनोजन के साथ यह कठिनाई थी कि वे रासायनिक पदार्थ थे और साधारण मनुष्य इनके सम्पर्क में नहीं आ पाता है। इस विवाद को लेकर कुछ ही वर्ष बाद नये कोर्सिनोजन मिथाइलशैल एन्थ्रासीन का प्रादुर्भाव हुआ जो कि शरीर में साधारण अवस्था में बन सकता है। कुछ लोगों ने इस पदार्थ को अलग कर उसका अंतःक्षेपण शरीर के विभिन्न अंगों में किया और वे उन अंगों में कैन्सर पैदा करने में समर्थ रहे। इसके कुछ ही बाद एसीटाइल एसीट्कमाइनो क्लोरीन नामक कीट नाशक औषधि भी तीव्र कार्सिनोजन सिद्ध हुई। इस पदार्थ के खाने मात्र से कैन्सर पैदा हो सकता था।

इन सभी पदार्थों का गहन अध्ययन कर यह सिद्ध हो गया कि ये सभी यौगिक किसी न किसी तरह से फिनेनथ्रीन वलय से सम्बन्धित है। परन्तु ये सभी पदार्थ साधारणतया मानव शरीर की चयापचय क्रियाओं से सम्बन्धित नहीं थे, अतः अगली विभिन्न खोजों से यह बात अधिक साबित सिद्ध होने लगी कि ये कार्सिनोजन वास्तव में बिगड़ी या खराब चयापचयन की क्रिया के फलस्वरूप पैदा हुए पदार्थ हैं। अतः लिंग हार्मोन पित अम्ल और स्टीरोल—की चयापचय क्रिया में गड़बड़ी करने वाले रोगों के साथ कैन्सर का सम्बन्ध जोड़ा जाने लगा।

इन सभी यौगिकों का ज्ञान होने के पश्चात् लोगों ने देखा कि पैरा डाईमिथाईल अमाइनो ऐजो बेन्जीन और दूसरे ऐजो रंगों द्वारा लोग यकृत का कैन्सर होने की संभावना होती है परन्तु यह कैन्सर तभी संभव होता है जबकि शरीर में विटामिन B राइबो फ्लैविन की कमी हो। इससे वैज्ञानिकों ने अनुमान लगाया कि विटामिन B इस ऐजो रंग के उत्सर्जन और निम्नीकरण

में यकृत की मदद करता है और विटामिन B की अनुपस्थिति में इस रंग की मात्रा शरीर में बढ़ जाती है, तब यह कैन्सर को जन्म देती है।

इन सभी के अलावा एल्किलीकरण अभिकर्मक जैसे नाइट्रोजन मस्टर्ड आदि को भी कार्सिनोजन की लम्बी सूची में जोड़े जाने लगा। कुछ समय बाद यह ज्ञात हुआ कि एनिलीन रंग के साथ काम करने वाले लोगों को मूत्राशय का कैन्सर हो जाता है। अन्त में इस सूची को और बढ़ाने के लिए कोल्टा नामक सिगार, खंगारी नामक सिगड़ी को क्रमशः मुँह और पेट की चमड़ी पर होने वाले कैन्सर के साथ जोड़ा गया है। आजकल इस सूची में एक महत्वपूर्ण कारक सिगरेट को भी जोड़ लिया गया है। साधारण विद्वानों का अनुमान है कि सिगरेट एवं ऑटोमोबाइलों का धुँवा, जो कि शहरों में बहुतायत में होता है, फेफड़ों के कैन्सर में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ii) आयनीकरण करने वाले विकिरण—विभिन्न प्रकार के आयनिक विकिरण भी कैन्सर उत्पन्न करते हैं। हिरोशिमा व नागासाकी पर हुए घृणास्पद परमाणु बम विस्फोटन से आज भी वहां के निवासियों में कैन्सर होने की संभावना साधारण स्थिति से दस गुनी है।

इसी प्रकार क्ष किरणों के साथ काम करने वाले अधिकांश लोग अन्त में त्वचा के कैन्सर से पीड़ित हो जाते हैं। रक्त कैन्सर तो अब विकिरण शास्त्रियों के व्यावसायिक रोगों में गिना जाता है। एक रोगी जिसे कि होलकिन्स रोग के लिए विकिरणों से चिकित्सा की गई थी, दस वर्ष बाद फिर स्तनों के कैन्सर से पीड़ित हुआ। रेडियम का काम करने वालों में से अधिकतर लोगों को अस्थियों का कैन्सर हो जाता है। कई बच्चों को जिन्हें बचपन में थाईमस ग्रन्थि की वृद्धि को कम करने के लिए विकिरण दिये गये, उन्हें आगे चलकर थायराइड ग्रन्थि का कैन्सर हो गया। विभिन्न स्थानों पर यूरेनियम की खानों में काम करने वाले मजदूरों में भी इस प्रकार के रोगों की अधिकता पाई गई है। यही नहीं गोरे लोग जिन्हें गर्म प्रदेशों की धूप में काम करना पड़ता है, वे सूर्य की किरणों में उपस्थित हानिकारक विकिरणों के कारण होंठ और चमड़ी के कैन्सर के शिकार बनते देखे गये हैं। जबकि उसी जगह की काली चमड़ी वाले रोग स्वस्थ रहते हैं। इसका कारण यह है कि काली त्वचा में मैलेनिन नामक वर्णक की अधिकता होती है जो उन हानिकारक विकिरणों से हमारी रक्षा कर लेता है।

(iii) हार्मोन्स—शरीर में हार्मोन्स कई अवयवों पर नियन्त्रण रखते हैं। जब किसी कारण से रक्त में हार्मोन्स की मात्रा बढ़ जाती है तो ये हार्मोन्स उत्तक को अधिक संवेदित करते हैं जिससे उसमें अनियन्त्रित वृद्धि और अन्ततोगत्वा कैन्सर पैदा हो जाता है। उदाहरणार्थ जब कोई मनुष्य पर क्लोरेट या थायोयूरेसिल खा लेता है तब ये रासायनिक पदार्थ थायोराइड नामक ग्रन्थि की साधारण प्रक्रिया को मन्द कर देता है जिसके फलस्वरूप रक्त में थायोराइड हार्मोन्स की मात्रा घट जाती है। जब इन हार्मोन्स के घटने की सूचना आगे पिट्यूरी नामक उच्च ग्रन्थि के पास पहुँचती है तब वह थायोराइड ग्रन्थि को उत्तेजित करने के लिए एक हार्मोन्स रक्त में छोड़ देती है। इसके द्वारा थायोराइड की मन्द गति पुनः तीव्र हो जाती है। उसमें अधिक वृद्धि होने लगती है और अगर यही दशा थोड़े अधिक समय तक रहती है तो उक्त मनुष्य को थायोराइड ग्रन्थि का कैन्सर हो जाता है।

वास्तव में इन हार्मोन्स का महत्व लिंग ग्रन्थियों में अधिक रहता है। जिसके फलस्वरूप अधिक इस्ट्रोजन नामक हार्मोन की उपस्थिति से औरतों में अण्डाशय और स्तनों के कैन्सर की सम्भावना बढ़ जाती है। या हम यूँ कहें कि स्तन और अण्डाशय के कैन्सर वाली औरतों के रक्त में इस्ट्रोजन की मात्रा अधिक रहती है। ऊपर आये रासायनिक कैन्सर के कारकों के अन्तर्गत हमने यह देखा कि अधिकांश कारकों का स्वरूप इस्ट्रोजन से मिलता-जुलता होता है उदाहरणार्थ बेन्जापाईरीन आदि।

इन हार्मोन जनित कैन्सर में वंशानुगत गुण होना भी आवश्यक है। कुछ वंश में अधिक मात्रा में इस्ट्रोजन

होने पर भी कैन्सर नहीं हो पाता है और किन्हीं-किन्हीं में उसी मात्रा पर लगभग सभी होने वाले बच्चे कैन्सर से ग्रस्त हो जाते हैं। साधारण अवस्था में अण्डाशय और एड्रीनल द्वारा निर्मित यह हार्मोन यकृत द्वारा निष्क्रिय कर दिया जाता है परन्तु यदि किसी आदमी में यकृत खराब होने की वजह से स्त्री हार्मोन को पूरी तरह निष्क्रय नहीं कर पाता है तो उस पुरुष में स्त्रियों के गुण आने लग जाते हैं। स्त्रियों की तरह पुरुष के लिंग हार्मोन की अधिकता के कारण प्रोस्टेट नामक ग्रन्थि का कैन्सर हो जाता है।

इस हार्मोन द्वारा उत्पन्न कैन्सर का पूरा ज्ञान होने के बाद इन्हीं हार्मोन को कैन्सरों में प्रयुक्त किया जाने लगा है। स्त्री में जब भी इस्ट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है तो हम उसे तीन तरह से कम कर सकते हैं (i) उसका अण्डाशय हटा कर (अण्डाशय ही इस्ट्रोजन नामक हार्मोन बनाता है)

(ii) एडरीनल नामक ग्रन्थि को हटा कर।

(iii) पुरुष लिंग हार्मोन (टेस्टोस्टीरोन) देकर।

इसके ठीक विपरीत यानी कि पुरुष में होने वाले वृषण और पौस्टेटिक कैन्सर में हम इस्ट्रोजन हार्मोन प्रयुक्त कर सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कैन्सर के कारकों में हार्मोन्स का स्थान अब बढ़ता ही जा रहा है। अन्य दो कारकों का वर्णन हमारे किसी और लेख में ही किया जा सकेगा।

●●

[पृष्ठ 2 का शेषांश]

जिसमें कि 0·75% थोरियम होता है, आर्क लैम्पों में इस्तेमाल किये जाते हैं। (ii) फोटो इलेक्ट्रिक सेलों, ग्लो ट्यूब इलेक्ट्रोड व एक्स-रे टार्गेट में भी इसका इस्तेमाल किया जाता है।

डा० रामचन्द्र कपूर
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज,
कानपुर—208001.

●●

बाल विशेषांक के बारे में आपकी प्रतिक्रिया तथा आपके सुझावों का विज्ञान परिषद स्वागत करेगा। आप अपने विचार सम्पादक के पास भेज सकते हैं।

नये आविष्कार

डाक छांटने की स्वचालित विधि

अमेरिका में फुटकर बिक्री करने वाले बड़े-बड़े स्टोरों में डाक निपटाने के लिए एक ऐसी स्वचालित विधि का प्रयोग किया जा रहा है जिसके द्वारा एक घण्टे में 1,000 चिट्ठियों को निपटाया जा सकता है।

इस विधि के अन्तर्गत, एक मशीन में एक बार 800 लिफाफे डाल दिये जाते हैं। स्वचालित विधि के अन्तर्गत मशीन द्वारा ये लिफाफे खोले जाते हैं तथा खुली चिट्ठियां एक कनवेयर पट्टी द्वारा आपरेटर-स्टेशन तक पहुँच जाती हैं जहाँ उनकी छँटाई की जाती है। छँटाई के बाद ये चिट्ठियां सम्बन्धित शाखाओं को अन्तिम कार्यवाही के लिए भेज दी जाती हैं।

एक प्रमुख वस्तु निर्माता के अनुसार, यह विधि उन संघटनों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है जिन्हें डाक की छँटाई करते समय पत्र-बम आदि से बचने के लिए सावधानी और सुरक्षा की आवश्यकता रहती है।

डाक छाँटने की इस स्वचालित मशीन का मूल्य 14,000 डालर से लेकर 30,000 डालर तक है। इसका निर्माण कंसास राज्य की एक फर्म इण्डस्ट्रीज इनकार्पोरेटेड ने किया है। कीमत में मशीन को चलाने का सप्ताह का प्रशिक्षण व्यय भी शामिल है।

हल्की-फुल्की अग्निशामक यूनिट

न्यूमैक्सिको की एक फर्म, 'इनजेक्ट-ओ-मीटर मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी', ने आग बुझाने के लिए एक हल्की-फुल्की यूनिट का विकास किया है जिसमें एक छोटा सा पानी का टैंक, एक पम्प, एक हौज और एक नॉजेल रहता है। इस यूनिट की विशेषता यह है कि इसे आसानी से कुछ ही मिनट के अन्दर एक पिकअप ट्रक पर फिट किया जा सकता है। इससे काम लेने के लिए किसी विशेष उपकरण की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यह यूनिट विभिन्न आकारों में—100 गैलन से लेकर 500 गैलन की क्षमता तक—सुलभ है। यह यूनिट इतनी मजबूत है कि ऊँची-नीची धरती पर भी बड़ी आसानी से ले जायी जा सकती है। इसके टैंक इस्पात से बने हैं तथा इसमें फिट पम्प स्वच्छ जल के अलावा गंदले जल को भी पम्प करने में सक्षम हैं।

प्लास्टिक की वस्तुओं को जोड़ने वाला नया पेस्ट

आजकल विनियर प्लास्टिक से नाना प्रकार की वस्तुओं—फर्नीचर, लगेज उपकरण, कपड़ा, खिलौने आदि—का निर्माण होता है। लेकिन, निरंतर उपयोग के कारण ये वस्तुएं घिस कर टूट जाती हैं या फट जाती हैं। अब अमेरिका में एक ऐसे द्रव पेस्ट का विकास हुआ है जो प्लास्टिक की घिसी हुई वस्तुओं में हुए छिद्रों को भर देगा तथा टूटे हिस्सों को जोड़ देगा।

इसका उपयोग सामान्य 'पेस्ट' की तरह ही किया जा सकेगा। इस पेस्ट से जुड़ी हुई वस्तु पहले से भी अधिक मजबूत हो जायेगी। पेस्ट से जोड़ने के लिए ताप की कोई जरूरत नहीं पड़ेगी।

इस पेस्ट के एक ट्यूब का मूल्य 1 डालर से लेकर 3 डालर तक है। इसका निर्माण मिनासोटा राज्य की एक फर्म 'प्लास्टिक डिप इण्टरनेशनल' ने किया है।

नयी फ्लैशलाइट

अमेरिका के बाजारों में आजकल एक नयी फ्लैश लाइट बिक रही है। यह वस्तुत: अमेरिकी अन्तरिक्ष कार्यक्रम की देन है। इसमें एक ऐसा बैटरी सेल लगा है जो 5 वर्ष तक काम देता है। इसे 10 से लेकर 20 घंटे तक लगातार जलाया जा सकता है। इसमें बाहर की ओर कोई स्विच नहीं है और प्रयोग न होने पर इसकी बैटरी की शक्ति तनिक भी क्षीण नहीं होती।

इस फ्लैशलाइट का निर्माण हालीवुड (फ्लोरिडा) की 'क्रोमेलाय इलेक्ट्रोनिकस डिविजन' ने किया है और अलेक्जेण्डरिया, वर्जिनिया, की वैन ओस्डोल एण्ड एसोसियेट्स इसके निर्यातकर्ता हैं। ● ●

विज्ञान-वार्ता

वाष्पचालित मोटरकार

कई दशकों से, वैज्ञानिक वाष्पचालित श्रेष्ठ मोटर-कार का आविष्कार करने में जुटे हैं। यद्यपि कई नमूनों का विकास किया जा चुका है परन्तु अभी तक प्रयास पूरी तरह सफल नहीं हुआ है। वाष्पचालित मोटरकार के विकास में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि पानी को गर्म कर वाष्प का रूप देने में काफी समय लग जाता है। जब तक पानी वाष्प में परिणत न हो जाए तब तक कार गति नहीं पकड़ सकती। अब, मिशिगन के एक अणु विज्ञान-इन्जिनियर राल्फ सी० वोल्स, जूनियर ने इस समस्या का समाधान खोज निकालने का दावा किया है। उसने एक ऐसे इंजन का विकास कर लिया है जिसमें जल को तुरन्त वाष्प में परिणत करने के हेतु 'माइक्रोवेव ऊर्जा' का आश्रय लिया गया है। उसने अपने आविष्कार का पेटेंट भी करा लिया है।

उसके द्वारा आविष्कृत विधि निम्न प्रकार कार्य करती है। बैटरी से निःसृत विद्युतशक्ति उस माइक्रोवेव-कक्ष को ऊर्जा प्रदान करती है जिसमें से होकर जल के ट्यूब गुजरते हैं। गर्म होने पर इन ट्यूबों में मौजूद जल वाष्प में परिणत हो जाता है। यही वाष्प इंजन को गति देती है।

भूकम्प रोकने की विधि का विकास

अमेरिका के एक वैज्ञानिक डा० इमेनुएल एम० जोसेफसन ने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया है जिसकी सहायता से भूगर्भ खनन कार्य के दौरान धरातल पर भूकम्प की सम्भावना का निराकरण किया जा सकेगा। अक्सर ऐसा होता है कि जब खनिज पदार्थों को प्राप्त करने के लिए पृथ्वी के अन्दर गहरी खुदाई होती है तो चट्टानें या मिट्टी धँसने के कारण धरातल काँप उठता है। कई बार ऐसा भी होता है कि प्राकृतिक कारणों से मिट्टी धँस जाने के कारण शहरों में बहुत से मकान ध्वस्त हो जाते हैं। डा० जोसेफसन द्वारा विकसित विधि के अन्तर्गत, भूगर्भ से खनिज पदार्थों को निकालने के समय रिक्त होने वाली जगह में द्रव पदार्थ (समुद्र जल या नालियों का गंदा जल) भर दिया जाएगा। उनका कहना है कि ऐसा करने से भूमि के सहसा धँसने की सम्भावना नहीं रहेगी।

टेपांकित वार्तालाप को इच्छित गति पर सुना जा सकेगा

अमेरिका की मैगनेटिक विडियो कार्पोरेशन ने एक ऐसी विधि का विकास किया है जिसके द्वारा टेप रिकार्ड पर बजने वाले टेप की गति को इच्छानुसार नियंत्रित किया जा सकेगा। इस विधि के अन्तर्गत टेप सुनने वाला व्यक्ति अंकित वार्तालाप सुनते समय टेप की गति को इच्छानुसार घटा-बढ़ा सकेगा।

तैरती हुई फैक्टरी

अमेरिका की एक फर्म 'शोरलाइन प्रीकास्ट कम्पनी' के एक साझीदार डा० हैरी जे० स्कैनलैन ने एक ऐसी तैरती हुई फैक्टरी का निर्माण किया है जो निर्माण स्थल पर ही खड़ी की जा सकती है। इस फैक्टरी में कंक्रीट की भवन निर्माण सामग्रियां तैयार की जाती हैं। फैक्टरी उस स्थान पर खड़ी की जा सकती है जहाँ योजना का कार्य चल रहा हो। निर्माण कार्य पूरा हो जाने के बाद, फैक्टरी को बिना किसी कठिनाई के उस स्थान से हटा कर अन्यत्र ले जाया जा सकेगा।

तेज प्रकाश

अमेरिका की एक कम्पनी 'स्ट्रीमलाइट इनकार्पोरेटेड' ने एक ऐसी हलकी 'स्पाट लाइट' का विकास किया है, जो बहुत तेज प्रकाश देती है। इसका नाम 'स्ट्रीम लाइट वन मिलियन' रखा गया है।

इस 'स्पाट लाइट' का कुल वजन तीन किलोग्राम है तथा मोटर की हेडलाइटों से निकलने वाले प्रकाश की

तुलना में यह 50 गुना अधिक तेज है। कोहरे तथा धुएं से व्याप्त वातावरण के लिए यह प्रकाश विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। इसका प्रकाश कोहरे के सूक्ष्म कणों और धुएं के कणों से टकरा कर प्रतिविम्बित नहीं होगा।

इसमें 'एक्सनोन' नामक एक भारी और निष्क्रिय गैस का उपयोग किया गया है। लैम्प का विकास करने में जिस आधारभूत टैक्नौलाजी का उपयोग किया गया है उसका विकास 'नासा' द्वारा किया गया है। 'नासा' द्वारा विकसित अन्तरिक्ष यानों में पृथ्वी के वायुमण्डल के बाहर सूर्य प्रकाश जैसे तेज प्रकाश का निर्माण करने के लिए इसी टैक्नौलोजी का उपयोग किया गया है।

ओषधि में नोबेल पुरस्कार

1974 के लिये ओषधि के नोबेल पुरस्कार विजेताओं के नामों की घोषणा स्वेडेन में कर दी गई है। ये हैं (1) बेल्जियम के 57 वर्षीय वैज्ञानिक क्रिश्चियन द डूबे जिन्होंने रॉकफेलर विश्वविद्यालय, न्युयार्क तथा कैथोलिक विश्वविद्यालय, लूवेन में शोध-कार्य किया। (2) 68 वर्षीय जार्ज एमिल पालाडे जो जन्म से तो रुमानियन हैं पर अब अमरीका के नागरिक हैं। यह इस समय सेल विश्वविद्यालय में ओषधि विभाग के कोशिका जीवविज्ञान अनुभाग के अध्यक्ष हैं। (3) लक्ज़ेमबोर्ग में जन्मे 75 वर्षीय बेल्जियम के वैज्ञानिक अल्बर्ट क्लाड ने भी पहले रॉकफेलर विश्वविद्यालय में शोध-कार्य किया था पर अब वह ब्रूसेल के जूल्स बोर्डे संस्था के अध्यक्ष हैं। इन वैज्ञानिकों को उनके कोशिका से सम्बन्धित शोध-कार्य के लिये यह पुरस्कार मिला है। इस शोध से कैंसर की आरम्भ में पहचान करने में सहायता मिलेगी।

इन्डियन नेशनल साइंस एकेडेमी के पुरस्कार

इन्डियन नेशनल साइंस एकेडेमी ने 22 युवा वैज्ञानिकों को उनकी वैज्ञानिक कुशाग्रता के लिये पुरस्कृत किया है। ये वैज्ञानिक 30 वर्ष से कम अवस्था के हैं। इन्हें एक कांस्य पदक तथा 5000 रुपये की राशि पुरस्कार में दी जायगी। इन वैज्ञानिकों के नाम इस प्रकार हैं : विजय कुमार पटोदी, भामीदी विश्वेश्वर राव, प्रेधिमान कृष्ण का, विनोद चन्द्र सैनी, दलबीर सिंह राजोरिया, एम. चन्द्र शेखरइया, के. नरसिंह्मा स्वामी, चितरमल गुप्ता, पुष्प प्रकाश रस्तोगी, कुप्पू स्वामी, पद्मनाभन, वेद राम सिंह, च. सूर्य नरायन, सुमित कुमार रे, सम्पत कुमार टंडन, ब्रिज गोपाल, लालजी सिंह, एम. एम. संकरन, भवदीश नरायन जौहरी, अशोक कुमार कपूर, कु. एम. शैल, सुभ्रता सेनगुप्त तथा मोहन किशोर रायजादा (विस्कांसिन, अमरीका)।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 111 | कार्तिक-अगहन 2031 विक्र०, 1896 शकाब्द नवम्बर-दिसम्बर 1974 | संख्या 11-12

ऊर्जा संकट की चुनौती

श्री शीतला प्रसाद

अक्तूबर 1973 का अरब-इसरायली युद्ध क्या आया, विश्व भर में तेल संकट ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया। समूची धरती के निवासियों को और किसी घटना ने इतना नहीं हिलाया था—नागासाकी, हिरोशिमा के हत्याकांड ने भी नहीं। इससे स्पष्ट हो गया कि आर्थिक ढाँचे के बिखराव से जितना अधिक तथा जितना शीघ्र मनुष्य प्रभावित हो जाता है उतना विधाता की सृष्टि के विनाश से भी नहीं। मनुष्य की त्वचा और आत्मा की सहनशीलता में कितना अन्तर है?

इस तेल युद्ध के कारण परमाणविक शक्ति से लैस अहंकारी महाशक्तियों के सिंहासन भी हिल उठे। एक तहलका सा मच गया। राजनेताओं के दिल दहल गए। वैज्ञानिकों को इस संकटकालीन परिस्थिति से उबारने के उपाय सोचने के आदेश दे दिए गए। कार वालों ने स्कूटरों की शरण ली, स्कूटर का स्थान साइकिल ने लिया, मोटरकारों पर ब्लैक कम हुआ तथा स्कूटरों पर अधिक। इससे पहिले किसी को फुरसत न थी यह सोचने की भी।

तो आखिर यह ऊर्जा है क्या? पाषाण युग में पत्थरों की रगड़ से उष्मा और प्रकाश उत्पन्न हुआ। किन्तु ईंधन का काम लिया गया सदा से बन सम्पदा एवं पशु-मल से ही—उसे सूर्य की किरणों से सुखाकर। जल, थल तथा वायु के प्राणियों की चरबी, धरती से प्राप्त तेल के बीजों, पशु-धन से प्राप्त घी आदि से उष्मा और प्रकाश लिया जाने लगा। जीवाश्मी (अर्थात् फॉसिल) ईंधन—कोयला एवं पेट्रोल—तथा बिजली की खोज तो पिछली शताब्दियों की ही बात है। किन्तु इस शताब्दी की एक बहुत बड़ी देन है परमाणु ऊर्जा—जिसकी सहायता के बिना चन्द्रमा, मंगल आदि ग्रहों पर मनुष्य का पहुँच सकना संभव ही नहीं था।

आधुनिक वैज्ञानिक भाषा में ऊर्जा की सही परिभाषा 1807 ई० में अंग्रेज चिकित्सक एवं भौतिक-शास्त्री टामस यंग द्वारा दी गई। यंग ने 'कार्य कर सकने की क्षमता' को 'ऊर्जा' की संज्ञा दी।

युवा वैज्ञानिक गैलीलियो ने 1583 ई० में लोलकों की गति के प्रयोगों द्वारा गुरुत्वाकर्षण के महत्व-

पूर्ण प्रभाव देखे। इन प्रयोगों के मौलिक आधार पर ही यह सिद्ध हुआ कि लोलक के लटकन चाहे जितनी ऊँचाई से लटके हों बांई ओर की ऊँचाई पर लटकन की गतिज ऊर्जा शून्य तथा स्थितिज ऊर्जा अधिकतम होती है। जब यह लटकन बीचोबीच—निम्नतम स्थिति में—होता है तो वह समूची स्थितिज ऊर्जा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है और दांयी ओर सही गतिज ऊर्जा पूरी की पूरी स्थितिज ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। 1699 ई० में डच वैज्ञानिक हाइजिन्स ने ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। इसके अनुसार ऊर्जा कभी नष्ट नहीं होती। एक प्रकार की ऊर्जा को दूसरे प्रकार की ऊर्जा में परिवर्तित करने में कोई बिचौलिया बीच में ही अपना कमीशन नहीं मार खाता।

लिबनिज ने एक प्रकार से गतिज ऊर्जा का गणितीय रूप सत्रहवीं शताब्दी में (गतिज ऊर्जा = $\frac{1}{2}mv^2$) प्रतिपादित किया। लगाए गए बल और उसके द्वारा स्थानान्तरण-दूरी के गुणनफल को 'कार्य' तथा प्रति सेकण्ड कार्य किए जाने की दर को 'शक्ति' की संज्ञा दी गई। इसी बीच यंग द्वारा परिभाषित ऊर्जा के वर्ष 1807 ई० से आज तक—167 वर्ष की अवधि में—अनेक प्रकार की ऊर्जा से हमारा परिचय हुआ। इन सबमें 'यांत्रिक ऊर्जा' सबसे अधिक प्रकाश्य रूप में हमारे सामने आती है। किसी चलने फिरने वाली वस्तु की ऊर्जा को ही यांत्रिक ऊर्जा कहते हैं। सभी मशीनों की चाल के पीछे यही ऊर्जा काम करती है। रेल के इंजनों के हेराफेरी करने वाले पिस्टन यांत्रिक ऊर्जा की स्पष्ट मिसाल हैं। इन्हीं पिस्टनों के द्वारा पहिये घूमते हैं। कील ठोकने वाला हथौड़ा, गोल करने वाली हाकी स्टिक, चौका-छक्का मारने वाला क्रिकेट का बल्ला, पथराव करने वाली उग्र भीड़ द्वारा फेंका गया पत्थर आदि इसी यांत्रिक ऊर्जा के अनेक उदाहरण हैं। चलने-फिरने वाला हथौड़ा, स्टिक, बल्ला या पत्थर किसी न किसी वस्तु का स्थानान्तरण करके ही चैन लेता है।

इस यांत्रिक ऊर्जा के दो रूप हैं—एक गति या चाल से उत्पन्न होने वाली गतिज ऊर्जा ($= \frac{1}{2} mv^2$) और दूसरी स्थिति के फलस्वरूप प्राप्त स्थितिज ऊर्जा ($= m g h$)।

यांत्रिक ऊर्जा के अतिरिक्त ऊर्जा की अभिव्यक्ति और अनेक प्रकार से होती है—ऊष्मा एवं प्रकाशीय अथवा विकिरण ऊर्जा पर समस्त प्राणियों और-पेड़ पौधों का जीवन निर्भर करता है। प्रकाश के अतिरिक्त गामा किरण, एक्स किरण, परा-बैगनी किरण (अल्ट्रावायलट रे), अवरक्त किरण (इन्फ्रारेड रे), रेडियो विकिरण आदि मूल रूप से प्रकाशीय विकिरण ही है। इनमें से कुछ जीवनदात्री हैं तथा अन्य कुछ प्राणघातक।

रसायनिक-ऊर्जा भोजन तथा ईंधन के रूप में प्रकट होती है। अणुओं की अन्तर्निहित ऊर्जा ही यहाँ काम करती है। विद्युत ऊर्जा के लाभकारी प्रयोगों से तो हम सभी परिचित है।

नाभिकीय-ऊर्जा-परमाणुओं की विखण्डन ऊर्जा एवं संलयन ऊर्जा-के विध्वंसक रूप (एटम बम, हाइड्रोजन बम आदि) तथा जनहितकारी प्रयोगों (नाभिकीय बिजलीघर आदि) से हमारा परिचय पिछले पैंतालीस वर्षों की अवधि का है।

ऊर्जा के ये अनेक रूप परस्पर परिवर्तनीय हैं, किन्तु कुल मिलाकर सब प्रकार की समूची ऊर्जा अविनाशी है—अमर है। ऊर्जा की परिभाषा और प्रकारान्तर जानने के बाद प्रश्न उठता है कि इसको नापने की इकाई क्या हो। मौलिक रूप से इस इकाई का नाम 'अर्ग' है। यह बहुत छोटी इकाई है—इतनी छोटी कि यदि एक साधारण पेंसिल हमारे हाथ से गिर पड़े तो एक मीटर के लगभग गिरने पर इसकी 10 लाख अर्ग ऊर्जा कम हो जायेगी। इसको 'जूल' कहते हैं। कार्य यदि एक जूल प्रति सेकिंड की दर से किया जाय तो यह शक्ति 'वाट' कहलाती है और 746 वाट की शक्ति को अश्व शक्ति (हार्स पावर) कहते हैं। टाइपराइटर की एक टंकन में 10 लाख अर्ग ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है। हिरोशिमा पर गिराये गए बम में दस हजार खरब जूल ऊर्जा थी। किसी जबरदस्त भूकम्प में या 100 मैगाटन के हाइड्रोजन बम में ऊर्जा होती है दस करोड़ खरब जूल के बराबर। पृथ्वी के अपनी कीली पर घूमने पर खर्च होती है (या सूर्य की समूची वार्षिक उष्मा की देन) लगभग दस खरब खरब खरब जूल की ऊर्जा।

आज के जमाने में रेल, मोटर, स्कूटर, ट्रेक्टर, पानी या तेल निकालने के या आटा पीसने के इंजन— सबको शक्ति चाहिए। यह शक्ति अब तक या तो जीवाश्मी (फनेसिल) ईंधन—जैसे कोयला, पैट्रोल—से ली जाती रही है या बिजली से। ये जीवाश्मी ईंधन— कोयला और पैट्रोल—उन पेड़ों और पौधों के अवशेष है जो आज से करोड़ों वर्ष पहिले जल या थल की किसी महाविनाशकारी दुर्घटना (जैसे—विध्वंसक भूकम्प अथवा सामुद्रिक महा चक्रवात) के शिकार हुए थे। पौधों और विशाल वृक्ष दलदल में धँसने और चट्टानों आदि के अत्यधिक दबाव के कारण पत्थर जैसे सख्त बन जाते हैं। इनको ही कोयला कहते हैं। उधर पैट्रोल उन जल-जीवों के भग्नावशेष है जो सृष्टि के आदि काल में महासागरों की तली में या भूगर्भ में दब गए थे। इन करोड़ों वर्षों में ऊपरी चट्टानों अथवा सामुद्रिक जल के महान दबाव के कारण इन जीवावशेषों को चटनी सी बन गई—काली कीचड़ सी। कौन जानता था कि यह काली घिनौनी सी चीज सोना उगलेगी और इसे 'काला स्वर्ण' कहा जायगा। 1859 ई० में ड्रेक ने पहिला तेल कूप गलाया था। कहीं-कहीं बूंद-बूंद करके तेल निकला तो करता था उससे पहिले भी किन्तु वह हकीम के नुसखे के लायक ही था बस। आज अकेले अमरीका के संयुक्त राष्ट्र में ही 4 अरब पीपे प्रति वर्ष निकलते हैं इस काली चटनी के। मिट्टी का तेल (बढ़िया और साधारण) नैपथा, पैट्रोलियम जैली, डीज़ल, ईंधन तेल, मोमबत्तियों का मोम, अनेक पेंट तथा दवाइयां, चीउंगगम, तारकोल, रसोईघर की गैस, ऐस्फाल्ट आदि अनेक-अनेक पदार्थ आज इसी कीचड़ में से निकलते हैं। इसका उपयोग उर्वरक के कारखानों में कच्चे माल की तरह अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। अनेक उपायों से इस काली कीचड़ से प्रतिशत लाभकारी भाग 1920 से आज तक 26.1% से बढ़ाकर 46 प्रतिशत किया जा चुका है। इस बढ़ोत्तरी में प्रमुख भाग कैटेलिटिक रिफार्मर पोलीमेराइजेशन प्लांट, कैटेलिटिक क्रेकर, ब्लेंडिंग टैंक का होता है। इस प्रकार रसोई की गैस, पैट्रोल, जैट विमानों का ईंधन, डीज़ल ईंधन, फनेस तेल, मोबिल आयल, के अतिरिक्त यह काली कीचड़ आज अनेक अन्य उपयोगों में, जैसे टैरेलीन आदि कृत्रिम कपड़ों और उर्वरकों के लिए कच्चे माल के रूप में, भी वरदान सिद्ध हुई है।

जीवाश्मी ईंधनों के अतिरिक्त अब तक विद्युत का भी प्रयोग ऊर्जा के लिए खूब खुल कर हुआ है। सौर ऊर्जा से समुद्र का जल भाप बनता है, उससे होती है वर्षा और उससे चलता है जल विद्युत बिजलीघर। बिजली कोयले तथा डीजल से भी उत्पन्न की जाती है। किन्तु जल विद्युत को उत्पन्न करने के लिए प्राकृतिक श्रोत सूर्य की किरणों की गरमी ही है, जिसकी सहायता से वर्षा के उपरांत पहाड़ी झरनों, नदियों, नहरों तथा छोटे बड़े बाँधों में पानी की स्थितिज ऊर्जा (पोटेंशल एनर्जी) को विद्युतीय ऊर्जा में बदल दिया जाता है। यह सब पिछले प्रायः दो सौ वर्षों की सतत शोधों का ही परिणाम है।

किन्तु इस शताब्दी के प्रारम्भ में (1905 ई०) एलबर्ट आइंसटाइन ने 26 वर्ष की आयु में एक ऐसी क्रांतिकारी शोध की कि उससे पहिले की अनेक मान्यताएँ ऐसे धूल धूसरित हो गई जैसे कि प्रचण्ड भूकम्प में एक लकड़ी का भवन। वे उस समय ज्यूरिच में पेटेण्ट कार्यालय में एक क्लर्क थे। उनके द्वारा प्रतिपादित आपेक्षिकता सिद्धान्त ने सिद्ध कर दिया कि ऊर्जा में द्रव्यमान होता है। इसके अनुसार एक 15 वाट के बल्ब से जो प्रकाश निकलता है उसका द्रव्यमान एक ग्राम के एक लाखवें भाग का दस लाखवाँ अंश होता है। इस सिद्धान्त के अनुसार चुम्बकीय क्षेत्र भी तोला जा सकता है और एक साधारण चुम्बकीय क्षेत्र का द्रव्यमान एक ग्राम के एक करोड़वें भाग का दस करोड़वाँ भाग समझ लीजिए। एक किलो पानी को बर्फ के तापक्रम से भाप के तापक्रम तक गर्म करने में जितनी ऊर्जा खर्च होगी उसका द्रव्यमान 4 ग्राम के सौ करोड़वें भाग के बराबर होगा। दूसरी ओर किसी भी वस्तु के द्रव्यमान को ऊर्जा में परिवर्तित कर सकते हैं। इस प्रकार नागासाकी, हिरोशिमा पर गिराये गए एटम बम द्वारा महाविध्वंसकारी ऊर्जा उत्पन्न करने में केवल एक

ग्राम यूरेनियम का ईंधन खर्च हुआ था। (यह ऊर्जा 20 हजार टन टी०एन०टी० के विस्फोट से हो सकती थी।)

आइन्सटाइन के इस महान क्रान्तिकारी शोध ने सिद्ध कर दिया कि ऊर्जा एवं द्रव्यमान परस्पर परिवर्तनीय है ($E = MC^2$)। एक ग्राम द्रव्यमान वाली किसी वस्तु को पूर्ण रूपेण ऊर्जा में परिवर्तन करने पर 9×10^{20} अर्ग के बराबर ऊर्जा उत्पन्न होती है (= 9 अरब खरब अर्ग)। (उपरोक्त समीकरण में E = ऊर्जा, M = द्रव्यमान तथा C = प्रकाश की गति = 3×10^{10} सेमी० प्रति सेकण्ड अर्थात तीन लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड)। दूसरे शब्दों में बहुत तेज चलने वाली वस्तु का द्रव्यमान बढ़ जायगा। मगर यह बढ़ोत्तरी बेहद कम होती है। एक उदाहरण पर ध्यान दीजिये—एक तेज़ उड़ने वाले बड़े से बड़े जैट विमान को लें तो उसका द्रव्यमान केवल एक प्रतिशत का दस करोड़वाँ भाग ही बढ़ेगा। हाँ यदि एक किलोग्राम कोई भी वस्तु लें और उसे सम्पूर्ण रूप से ऊर्जा में परिवर्तित कर लें तो इतनी शक्ति उससे प्राप्त हो सकेगी कि उस की मदद से तीन लाख साठ हजार कारें पृथ्वी की परिक्रमा कर सकेंगी। संयुक्त राज्य अमेरिका की दस दिन की बिजली की मांग इससे पूरी हो जायेगी या तीस करोड़ अश्व शक्ति हमारे उद्योग को मिल सकेगी।

तो यह शक्ति आई कहाँ से? आइन्सटाइन ने मार्ग दिखाया। अनेक वैज्ञानिकों ने दिन-रात परिश्रम करके यह राह चलने लायक बनाई। फर्मी के द्वारा शृंखला अभिक्रिया के सुझाव ने इसी सड़क को प्रगति की कार को दौड़ाने योग्य बनाया। विखण्डन के सिद्धान्त का पता लगा, जिससे एटम बम का निर्माण हो सका। संलयन के सिद्धान्त ने हाइड्रोजन बम को जन्म दिया।

रसायनिक पदार्थों के जलने (अर्थात अत्यधिक आक्सीकरण) से ऊष्मा उत्पन्न होती है। एक किलो कोयले के जलने से 80 लाख कैलोरी, एक किलो मोम (पैरेफीन) से 110 लाख कैलोरी तथा इतने ही पेट्रोल से 115 लाख कैलोरी ऊष्मा उत्पन्न होती है। प्राकृतिक गैस से सबसे अधिक ऊष्मा पैदा होती है। हवा एवं धूप से धीमें आक्सीकरण के कारण साल दो साल के बाद साधारण कागज पीला पड़ जाता है। ये दोनों प्रकार के आक्सीकरण दहन के ही दो रूप हैं—एक शीघ्रता से होने वाला दहन और दूसरा धीमा-धीमा दहन।

परमाणुओं की रचना इस प्रकार की है कि मध्यवर्ती नाभिक के चारों ओर इलैक्ट्रॉन चक्कर काटते हैं—लगभग उसी प्रकार जिस तरह सूर्य के चारों ओर ग्रह। इन इलेक्ट्रॉनों के एक परमाणु से दूसरे परमाणु में अभिगमन होने से रसायनिक क्रिया होती है और परमाणुओं के सम्मिलन से अधिक या कम स्थायी अणु बनते हैं। किन्तु इस क्रिया में ऊष्मा उत्पन्न होती है—यथा हाइड्रोजन और कार्बन के ओषजन से क्रिया करने (ऑक्सीकरण) पर क्रमश: 68, 400 और 94,000 कैलोरी ऊष्मा उत्पन्न होती है। एक ग्राम हाइड्रोजन उतने ही कार्बन की अपेक्षा अधिक उष्मा उत्पन्न करती है। हाइड्रोजन आक्सीजन द्वारा परिचालित इंजनों से भावी राकेटों की दूसरी यात्रा अधिक सहज होने की सम्भावना है।

इन रसायनिक क्रियाओं को लाभकारी बनाने के लिए कभी-कभी अत्यधिक प्राथमिक ताप (300° सें.) की आवश्यकता होती है। किन्तु इतने ताप तक गर्म करना हमेशा न ही संभव होता है और न आर्थिक दृष्टि से लाभकारी ही। किन्तु कुछ रसायनिक पदार्थ ऐसे होते हैं कि उनकी उपस्थिति मात्र से रसायनिक क्रियाओं को बड़ी प्रेरणा मिलती है। परन्तु इन पदार्थों में इस क्रिया से कोई परिवर्तन नहीं होता। ऐसे प्रेरणा देने वाले पदार्थों को उत्प्रेरक (कैटेलिटिक ऐजेण्ट) कहते हैं। लोहे का जर या जंग, प्लेटीनम, ताँबा आदि इनके उदाहरण हैं। इन उत्प्रेरकों की उपस्थिति मात्र से रसायनिक क्रियाओं को वेगशील बनाया जा सकता है और इन उत्प्रेरकों का इस सहायता करने से न कोई लाभ ही होता है और न हानि ही। वे ज्यों की त्यों बची रह जाती हैं।

मनुष्य की ऊर्जा सम्बन्धी आवश्यकताएँ जितनी कार्बन के दहन द्वारा प्राप्त होती है उतनी किसी और से नहीं। खाद्य पदार्थ (चीनी, स्टार्च, कार्बोहाइड्रेट्स

प्रोटीन, घी आदि), कोयला, तेल, गैस, लकड़ी, मदिरा इत्यादि सभी में कार्बन की मात्रा अधिक होती है। ये सभी पदार्थ आज के या करोड़ों वर्ष पुराने पड़े पौधों या पशुओं से ही प्राप्त होते हैं। पेड़-पौधे, मिट्टी से पानी लेते हैं और हवा से कार्बन-डाई-आक्साइड। पानी को ये पौधे हाइड्रोजन आक्सीजन में विखंडित करते हैं जो कार्बन से मिल कर नये रसायनिक अणु-कार्बोहाइड्रेट्स बना डालते हैं। थोड़े से रसायनिक परिवर्तन से इन कार्बोहाइड्रेट्स से चीनी आदि अनेक खाद्य पदार्थ बन जाते हैं।

किन्तु यदि रसायनिक प्रयोगशाला में ये क्रियाएं कराई जायें तो 3000° से अधिक का ताप उत्पन्न करना होगा। पौधों या अन्य जीवों में—इतना तापक्रम कहाँ से आये? और आ भी जाये तो इतने तापक्रम पर इन बेचारी बनस्पतियों और प्राणियों में से क्या भग्नावशेष बच पायेंगे? इस प्रक्रिया में एक हरा वर्णक (ग्रीन पिग्मेण्ट) पर्णहरित (क्लोरोफिल) अत्यन्त महत्व-पूर्ण कार्य अदा करता है। सूर्य की किरणों से यह पौधे पहिले ही बहुत सी ऊर्जा ग्रहण किये होते हैं। इन पौधों में उपस्थित क्लोरोफिल सूर्य विकिरण से प्रभावित होकर तेजी से विकम्पित हो उठता है और पानी के अणु को तोड़ कर हाइड्रोजन और आक्सीजन में बदल डालता है। जिससे अनेक खाद्य पदार्थ (बिना 3000° के ताप के ही) बन जाते हैं। क्लोरोफिल का यह विकम्पन ऐसे ही कार्य करता है जैसे कि तेजी से उठता, गिरता हुआ लुहार का हथौड़ा।

जब हम कार्बोहाइड्रेट्स खाते हैं तो हमारे पेट में इनका दहन होता है और पानी के अणुओं का (हाइड्रोजन-आक्सीजन के पुनर्मिलन से) नव-निर्माण हो उठता है। इसी नव-निर्माण की प्रक्रिया से हमारे शरीर को ऊर्जा मिलती है।

प्राणी और पौधे अपने-अपने उत्तक तंत्र को इन कार्बोहाइड्रेटों आदि के सहारे ही सशक्त रख पाते हैं। एक उदाहरण पर गौर कीजिए। ग्लूकोस ($C_6H_{12}O_6$) के अनेक अणुओं के रसायनिक योग से सेलूलोस (C_{6000} H_{10000} O_{5000}) बनता है। यही सेलूलोस लकड़ी का मुख्य अंश होता है। किसी भी बड़े प्राणी के शरीर में ऐसे कैटेलिस्ट नहीं होते जो इन बड़े अणुओं को तोड़ कर ऊर्जा प्राप्त कर सकें। किन्तु दीमक की आंतों में ऐसे सूक्ष्म जीव होते हैं, जो लकड़ी को बड़े स्वाद से खाते ही नहीं वरन् इनसे शक्ति भी प्राप्त करते हैं। यही शक्ति दीमक को इन सूक्ष्म जीवों से मिल जाती है। इसी प्रकार घोड़ा, गाय, भैंस आदि घास, भूसा खाते हैं। घास भूसे में सेलूलोस की मात्रा बहुत अधिक होती है। गाय भैंस आदि के चारे पेटों में से एक में उपस्थित सूक्ष्म जीव (माइक्रो आर्गनिज्म) चारे को विखंडित कर डालते हैं, जिससे पशु उसको पचा सकें।

हमारे शरीर में चीनी की अपेक्षा घी से अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। ग्लूकोस ($C_6 H_{12} O_6$) के अणु का पेट में दहन (आक्सीकरण) होने से आक्सीजन के एक-एक परमाणु के लिए हाइड्रोजन के केवल दो परमाणु उपस्थिति रहते हैं, किन्तु घी ($C_{75} H_{104} O_6$) के अणु में इनकी संख्या 18 होती है। प्रोटीन से उसके अणु में कार्बन, हाइड्रोजन आक्सीजन के अतिरिक्त नाइट्रोजन की उपस्थिति के कारण हम उतनी लाभकारी ऊर्जा प्राप्त नहीं कर पाते हैं जितनी घी से। कारण यह है कि प्रोटीन के अणु के विखंडित होने पर हम नाइट्रोजन को नहीं पचा पाते। वह यूरिया की शक्ल में ऊर्जा का एक अच्छा अंश साथ लेकर मूत्र के साथ चला जाता है। इस खोई हुई ऊर्जा के कारण प्रोटीन की अपेक्षा घी से हमें अधिक ऊर्जा मिलती है। यदि इस नाइट्रोजन की ऊर्जा को हम प्राप्त कर सकते तो स्पष्ट है कि प्रोटीन हमारे शरीर को अधिक ऊर्जा दे सकते।

इस प्रकार हमने देख लिया कि मनुष्य, पशु, पौधों—सभी की गति, बढ़ोत्तरी और प्रजनन के लिए ऊर्जा खाद्य पदार्थों से मिलती है। और मनुष्य ने अपने व्यवहार में—दैनिक कारोबार में—ऊर्जा का प्रयोग किया है। पशु-शक्ति का भी उसने महत्व पहिचाना है तथा जीवाश्मी ईंधन, बिजली, परमाणु, जल शक्ति सभी का खुल कर प्रयोग भी किया है। किन्तु संसार

की समूची शक्ति का लेखा-जोखा लिया जाये तो पता चलेगा कि आज हमारे पास विश्व तथा भारत में ऊर्जा के श्रोत इस प्रकार हैं :—

	विश्व में	भारत में	प्रतिशत
कोयला	13 अरब टन	·58 ख०ट०	0·6 %
तेल	2·6 ,, ,,	50 लाख टन	$\frac{1}{500}$ %
प्राकृतिक गैस	2·6 करोड़ खरब घन फीट	28 अरब घ०फी०	$\frac{1}{10000}$ %
जल शक्ति	40 खरब यूनिट प्रतिवर्ष	7·7 अरब यूनिट	$\frac{1}{5}$ %
यूरेनियम थोरियम	:— 53 लाख टन	5·7 लाख टन	11 %

इनमें से जीवाश्मी इंधन का भंडार तो लगातार घट रहा है। कोयला दुनिया में 250 वर्षों में समाप्त हो जायेगा तथा भारत में 150 वर्षों में। तेल तो अभी भी हमारी पूरी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता। आयात पर ही हम निर्भर हैं। यदि कोयले और तेल के नये श्रोत नहीं मिल पाते तो हमारे शक्ति भण्डारों की दशा अत्यन्त दयनीय ही है। हाँ इधर बम्बई से 100 मील दूर 'सागर सम्राट' ने समुद्र तल से 900 मीटर गहरी खुदाई कर ली है और 500 पौ०/वर्ग इंच के दबाव वाला बहुत उम्दा तेल मिला है। सऊदी अरब में तेल का दबाव 2000 से 5000 पौ०/वर्ग इंच है। इस खुदाई को 2000 मीटर तक ले जाने का इरादा है। एक दूसरा स्थायी मंच और शीघ्र ही लग जाने के बाद हम 5 वर्षों में व्यापारिक स्तर पर तेल प्राप्त कर सकेंगे। मगर दुनिया भर के तेल का भंडार बहुत अधिक चलने वाला नहीं है और कोयले के नए भण्डारों का मिलना प्रायः असम्भव ही है। आज की खपत को देखते हुए हमारी खानों का कोयला 150 वर्षों तक चल सकता है। किन्तु सम्भावना यह अधिक है कि हमारे जैसे विकासशील देश में—खास तौर पर अन्य ऊर्जा श्रोतों की अनुपस्थिति में—कोयला ही हमारी बढ़ती हुई मांगों को पूरा करे और हमारे भण्डार 100 वर्षों से अधिक न चल पायें। गैस की स्थिति तो हमारी वैसे ही बहुत अच्छी नहीं कही जा सकती जो भी हो ये तेल के भण्डार तो दुनिया भर में ही 50-60 वर्षों से अधिक चलने वाले नहीं। 300 करोड़ टन का वार्षिक उत्पादन यदि बढ़ता ही रहा तो हमारे तेल भण्डार और भी जल्दी सूख सकते हैं।

अपने राष्ट्रीय अस्तित्व को बनाए रखने के लिए हमें निश्चय ही नये-नये ऊर्जा के विकल्प ढूँढ़ने होंगे। उर्वरकों के लिए या तो अधिक ऊर्जा के विकल्प हों या नये-नये खादों की तालाश करनी होगी। उदाहरण के लिए हमारे पास पशुधन बहुत है। उसके गोबर से हम खाद तथा गैस (गोबर गैस प्लांट के माध्यम से) दोनों ही प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे देश में चीनी मिलों, क्रेशरों तथा खांडसारी से प्राप्त शीरे से हम पावर अल्कोहल बना सकते हैं। अभी हम समूचे शीरे के भण्डारों का प्रयोग नहीं कर पा सके हैं। 1938 में यू०पी० एंड बिहार पावर अल्कोहल इंक्वायरी कमेटी की सिफारिशों के आधार पर उ०प्र० शासन ने पावर अल्कोहल अधिनियम पारित किया था। उसके अनुसार उ० प्र० में 1947-48 से 1961-62 तक पैट्रोल में 20% पावर अल्कोहल मिलाना अनिवार्य था। 1962 के बाद यह क्यों बन्द कर दिया गया तथा अब फिर इसे क्यों नहीं शुरू किया जा रहा है—यह आसानी से समझ में आने वाली बात नहीं है। विशेषकर इसलिए भी कि पावर अल्कोहल का नियंत्रित मूल्य 42 पै० लीटर है जो पैट्रोल के मूल्य का सातवाँ अंश मात्र है।

हमारे तेल-शोधक कारखाने हाइड्रोक्रैकिंग को शुरू नहीं करते यह एक और न समझ में आने वाली बात है। इस प्रक्रिया से हर 10 लाख टन फ्यूल आयल को दोबारा विश्लेषित करने पर 1·4 लाख टन बढ़िया पैट्रोल, 4·2 लाख टन मिट्टी का तेल तथा 3·2 लाख टन हाई स्पीड डीजल उत्पन्न होगा। इसलिए हम 40 लाख टन फ्यूल आयल के हाइड्रोक्रेकिंग से 72 लाख टन कच्चे तेल का आयात बचा सकते हैं और 350 करोड़ की विदेशी मुद्रा भी। कच्चे तेल के बजाय हम फ्यूल आयात करें तो पैसा बहुत बचेगा। पैट्रोल के दाम बढ़ने से एक तो यह लाभ हुआ कि इसकी खपत 25%

अवश्य कम हो जायेगी। हमारे तेल शोधक कारखानों की वर्तमान क्षमता 210 लाख टन कच्चे तेल की है। इसमें 75 लाख हम पैदा करते हैं तथा शेष आयात किया जाता है।

खाद्य-समस्या के समाधान के लिए उर्वरक का महत्व आज सब मानते हैं। आज हमारी उर्वरक की आवश्यकता 20 लाख टन के लगभग है, जो दिन प्रति दिन बढ़ती ही जा रही है। अगर हम उर्वरक अधिक बनाते हैं तो फिर पैट्रोल कम होना स्वाभाविक ही है। अतएव हमें फैसला करना होगा कि बढ़ती आबादी के पेट की आग बुझाना ज्यादा जरूरी है या पैट्रोल का इस्तेमाल।

अब तो हमारे सामने यही प्रश्न है कि हम शीघ्र से शीघ्र वैकल्पिक ऊर्जा श्रोतों को व्यवहारिक रूप से प्रयोग में लाने का प्रयास करें। अर्थात हमको चाहिए कि—

(1) विकेन्द्रित ऊर्जा श्रोतों की बढ़ोतरी करें, उदाहरण के लिए।

(क) पहाड़ी इलाकों की औद्योगिक बढ़ोतरी के लिए पर्वतीय नदियों से ऊर्जा उत्पन्न करें—जैसे छोटे बिजलीघर, पनचक्की, पन-इंजन आदि चालू करें।

(ख) हवा मिल तथा हवा बिजलीघर स्थापित करें।

(ग) सामुद्रिक ज्वार-भाटा से शक्ति उपार्जित करें।

(घ) शहरों के गन्दे नालों के पानी को उर्वरक के रूप में तुरन्त काम में लावें। अभी तो यह बेकार ही नहीं पड़े हैं बल्कि साथ ही वायु को दूषित भी करते हैं।

(च) गोबर गैस तथा साथ ही साथ उर्वरक का उत्पादन अधिक से अधिक करें।

(छ) आकाशीय विद्युत का लाभकारी उपयोग करने की दिशा में अनुसंधान करें। आदि आदि।

(२) सौर ऊर्जा का उपयोग करने की दिशा में उपयोगी अनुसंधान हो। हमारे देश में ऊर्जा का यह ऐसा श्रोत है कि जिसका भंडार असीम है। कभी समाप्त न होने वाला। इस दिशा में हमारी राष्ट्रीय प्रयोगशालाएँ अब और अधिक गति से अनुसंधान शुरू कर रही हैं।

(क) रेगिस्तान की गर्मी का प्रयोग नाइट्रोजन के पाइपों को गरम करके और फिर उससे पानी की भाप बना कर किया जा सकता है।

(ख) 15 मिनट में सौर ऊर्जा हमारी पृथ्वी पर इतनी अधिक आ जाती है जितनी कि सभी श्रोतों से आज हम पूरे वर्ष में प्रयोग में लाते हैं।

(ग) मौण्ट लुई पर सौर विकिरण की सहायता से 3000° सें० ताप उत्पन्न किया जा चुका है तथा 30 सेकण्ड में फौलाद की रेल में छेद किया जा चुका है।

(घ) उपग्रहों में सौर बैटरी का प्रयोग लाभकारी ढंग से किया ही गया है। आदि-आदि।

(3) बादलों की बिजली का भी प्रयोग किया जा सकता है।

(4) परमाणु ऊर्जा का प्रयोग करके हम शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। हमारे सरकारी परमाणु ऊर्जा विभाग ने बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है—उदाहरण के लिए—

(क) तारापुर बिजलीघर चालू किया गया।

(ख) कोटा बिजलीघर चालू किया गया।

(ग) मद्रास बिजलीघर में कार्य चालू है।

(घ) नरोरा (बुलन्दशहर) में भी बिजलीघर का काम शुरू हो गया है।

(च) 1991-92 तक 10,500 मेगावाट क्षमता वाले बिजलीघर तैयार हो जायेंगे।

(छ) हैदराबाद में न्यूक्लीय ईंधन सम्मिश्रक की स्थापना हो गई है।

(ज) ईंधन का पुर्नसंसाधन कृषि उद्योग सम्मिश्र का निर्माण, रिएक्टर अनुसंधान केन्द्र, परिवर्ती ऊर्जा साइक्लोट्रोन, परमाणु खनिज का अनुसंधान, रेडियो आइस्टोप, जीव विज्ञान एवं न्यूक्लीय भेषज आदि का काम हो चुका है।

(झ) उपग्रहों का निर्माण (वायुमंडलीय जांच के लिए) हो गया है।

(ट) राकेटों का निर्माण (उपग्रहों के लिए) हो रहा है। आदि-आदि।

[शेष पृष्ठ 11 पर

भारत में परमाणु ऊर्जा का विकास

कन्हैया लाल दायमा

18 मई, 1974 को भारत यकायक विश्व नाभिकीय क्लब का छठा सदस्य बन गया। इस दिन राजस्थान के पोकरण क्षेत्र (जोधपुर) में, धरती में 100 मीटर नीचे भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों ने प्रथम परमाणु-विस्फोट करके संसार में अपना अद्वितीय स्थान बना लिया था। भारत ही विश्व में ऐसा प्रथम देश है जिसने अपना प्रथम परमाणु-विस्फोट धरती में किया है। यह हमारे वैज्ञानिकों और तकनीशियनों की प्रतिमा और परिश्रम की महत्वपूर्ण सफलता थी। वर्तमान स्थिति पर पहुँचने की अपने आप में एक लम्बी कहानी है।

कहानी का आरम्भ इसके चरित्र डा० होमी जहाँगीर भाभा से होता है। जो एक युग द्रष्टा वैज्ञानिक थे। द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ जाने से वे जब अध्ययन हेतु वापस ब्रिटेन नहीं जा सके तो भारत में ही रहकर बेंगलोर स्थित 'इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स' में कॉस्मिक किरणों पर अन्वेषण करने लगे और साथ ही साथ अध्यापक भी। तभी उन्होंने अपने फूफा की सर दोराब जी टाटा ट्रस्ट को एक पत्र 12 मार्च 1974 को लिखा। पत्र में उन्होंने कहा कि जब कोई 20 वर्ष पश्चात ऊर्जा उत्पादन के लिए नाभिकीय ऊर्जा का उपयोग किया जायगा तब भारत को विशेषज्ञों के लिये विदेशों में नज़र नहीं दौड़ानी पड़ेगी। डा० भाभा ने इसके लिए कुछ तात्कालिक उपाय सुझाये थे। परिणाम यह हुआ कि ट्रस्ट ने अगले ही वर्ष 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामेन्टल रिसर्च' की स्थापना कर दी। इस संस्थान के निर्देशक के पद पर डा० भाभा की नियुक्ति की गयी। भारत में नाभिकीय क्षेत्र में अन्वेषण एवम् उपयोग की इस प्रकार शुरुआत हो गयी। बम्बई स्थित यह संस्थान आज विश्व के महानतम् वैज्ञानिक प्रतिष्ठानों में से एक है। सचमुच भारत आज टाटा परिवार का अत्यन्त आभारी है।

वर्तमान परमाणु ऊर्जा आयोग, जिसके आधीन शान्ति कार्यों के लिये नाभिकीय ऊर्जा का विकास करना और प्रयोग में लाना है, की स्थापना 10 अगस्त 1948 को की गयी थी। आयोग नाभिकीय ऊर्जा से विद्युत शक्ति का और समस्थानिकों का उत्पादन करके कृषि, उद्योग तथा अन्य क्षेत्रों में इनके उपयोग में लाने के कार्यों की देख-रेख कर रहा है। भारत सरकार ने परमाणु ऊर्जा की महत्ता को समझते हुए सन् 1954 में इसके लिये पृथक विभाग तत्कालीन प्रधान मंत्री स्वर्गीय पंडित नेहरू के अधीन स्थापित कर दिया। इस क्षेत्र में विशिष्ट अन्वेषण और विकास कार्य करने के लिए बम्बई के निकट ट्राम्बे में परमाणु अनुसन्धान केन्द्र की स्थापना की गयी, जिसका नामकरण अब स्वर्गीय डा० भाभा के नाम पर कर दिया गया है। सर्व प्रथम भारत और कनाडा के मध्य इस क्षेत्र में एक संधि पर 18 अप्रैल, सन् 1956 को हस्ताक्षर किये गये जिसके अनुसार एशिया की प्रथम परमाणु भट्टी का निर्माण भारत में किया गया। इसका विधिवत उद्घाटन स्वर्गीय पंडित नेहरू ने 20 जनवरी, 1957 को किया और इसका नाम 'अप्सरा' रखा गया। यह भट्टी तरण ताल जैसी है। इसकी क्षमता एक मेगावाट की है। 10 जुलाई, 1960 को कनाडा-भारत सहयोग की प्रतीक दूसरी परमाणु भट्टी 'साईरस' चालू हुई, इसकी क्षमता 40 मेगावाट थी। भारतीय वैज्ञानिकों और तकनीशियनों द्वारा अभिकल्पित तीसरी भट्टी 'जर्लीना क्रिटिकल' जनवरी 1961 में बनायी गयी थी। यह शून्य ऊर्जा वाली प्रायोगिक

भट्टी है। इस श्रृंखला की अन्तिम कड़ी है। 'पूर्निमा' नामक परमाणु भट्टी, जो मई 1972 में प्रारम्भ हुई। यह शून्य ऊर्जा वाली तीव्रगामी भट्टी है।

ऊर्जा के क्षेत्र में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के लिये प्रथम परमाणु बिजली के निर्माण का निर्णय 5 अगस्त, 1962 को लिया गया। इसके अनुसार इसे राजस्थान के राणा प्रताप सागर (कोटा के पास) नामक स्थान पर बनाया जाना था। जो अब ऊर्जा का व्यापारिक उत्पादन 20 अप्रैल 1973 से प्रारम्भ कर चुका है। हमारे देश में 'भारी पानी', जिसका परमाणु ऊर्जा प्राप्त करने में उपयोग होता है, बनाने का कारखाना सर्वप्रथम पंजाब में (नांगल) बनाया गया। अब इस प्रकार के भारी पानी के संयत्र कोटा (राजस्थान), बड़ौदा (गुजरात), टुटीकोरीन (तमिल नाडु) और तेलचर (उड़ीसा) में लगाये जा चुके हैं। 7 दिसम्बर 1963 को एक महत्वपूर्ण कदम और उठाया गया जिसके अनुसार संयुक्त राज्य अमेरिका से समझौता करके तारापुर में परमाणु बिजलीघर की स्थापना की गयी। जिसने जुलाई 1969 से 380 मेगावाट की क्षमता से उत्पादन प्रारम्भ कर दिया। देश का तीसरा परमाणु बिजलीघर कल्पक्कम (तमिलनाडु) में निर्माणाधीन है। जबकि चौथे की आधार शिला प्रधान मंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने 13 जनवरी, 1974 को नरोरा (उत्तर प्रदेश) में रखी है। इनकी, और नये बनाये जाने वाले बिजलीघरों के ईंधन हेतु एक नाभिकीय ईंधन कॉम्पलेक्स की स्थापना हैदराबाद में की गयी। इसके लिये विशिष्ट शोधशाला का निर्माण तारापुर में किया गया।

सन् 1965 में दो प्रायोजनाओं को और इस क्षेत्र में कार्यान्वित किया गया, जिनके अनुसार ट्राम्बे में एक एक प्लुटोनियम संयत्र का निर्माण किया गया तथा नाभिकीय विस्फोटों का पता लगाने वाले प्रथम केन्द्र की स्थापना बैंगलोर के निकट गौरी बिन्दानूर में की गयी। भारत में परमाणु ऊर्जा की प्रगति को उस समय बड़ा धक्का लगा जब न्यूयार्क जाते हुए इटली की आल्प्स पहाड़ियों में विमान दुर्घटना होने से डा० होमी जहाँगीर भाभा का निधन हो गया, वह 24 जनवरी, 1966 का दिन था। डा० विक्रम ए० साराभाई को 26 मई, 1966 को परमाणु ऊर्जा आयोग का दूसरा अध्यक्ष बनाया गया, उनके कार्यकाल में आयोग ने व्यापक उन्नति की।

भारतीय परमाणु ऊर्जा आयोग में इस क्षेत्र में शोध और विकास कार्य तथा परमाणु बिजलीघरों की देखभाल के अलावा जिन तीन सार्वजनिक प्रतिष्ठानों का कार्य देखता है वे हैं इलेक्ट्रॉनिक कार्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड, हैदराबाद, जो भारत में इलेक्ट्रॉनिक तथा नाभिकीय उपकरणों का निर्माण करता है। दूसरा प्रतिष्ठान है यूरेनियम कार्पोरेशन ऑफ इन्डिया, जादूगुड़ा (बिहार) जो इस धातु के खनन व समृद्धिकरण का कार्य देखता है और तीसरा प्रतिष्ठान इन्डियनरेयर अर्थस लिमिटेड चावर, केरल, दक्षिणी समुद्री किनारों की रेत से परमाणु खनिजों को प्राप्त करने का कार्य करता है।

ट्राम्बे में भाभा परमाणु केन्द्र के अलावा 5·5 मिलियन इलेक्ट्रॉन वोल्ट क्षमता वाला फान—डि-ग्राफ त्वरक थोरियम संयंत्र, इलेक्ट्रानिक प्रयोगशाला, यूरेनियम संयंत्र, ईंधन संयत्र (जहाँ साइरस और जर्लीना परमाणु भट्टियों के लिए ईंधन तैयार किया जाता है), जिसमें ईंधन के विकास के क्षेत्र में अन्वेषण कार्य किया जाताहै। परमाणु बिजलीघरों के लिये प्लुटोनियम संयत्र भी यही है।

रेडियो समस्थानिकों का चिकित्सा में उपयोग करने के लिए भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के अन्तर्गत 'रेडिएशन मेडिसिन सेन्टर' कार्यरत है। यही कार्य परमाणु ऊर्जा विभाग की देखरेख में 'टाटा मेमोरियल सेन्टर' बम्बई में भी किया जाता है।

हाल ही में किये गये परमाणु परीक्षण की एक व्यापक प्रतिक्रिया का प्रभाव पड़ा उससे प्रभावित होकर कनाडा के विदेश मंत्री मिचेल शार्प ने 23 मई, 1974 को कहा कि 'कनाडा सरकार भारत को परमाणु अनुसंधान से सम्बन्धित सामग्री व तकनीकी आदान-प्रदान बन्द कर रही है।' यद्यपि बाद में उन्होंने

इस घोषणा को कार्यान्वित नहीं किया पर हमारे पर्यवेक्षकों के अनुसार कनाडा की इस घोषणा से हमारे परमाणविक कार्यक्रमों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा यानी हम अब आत्मनिर्भर हैं।

जैसा कि ऊपर कहा गया है परमाणु ऊर्जा के लिए यूरेनियम एक बुनियादी धातु है। भारत में यह प्रचुर मात्रा में (लगभग 11 हजार टन) पाया जाता है। मुख्यत: यह जादूगुड़ा और नरवा पहाड़ में उपलब्ध है। इसके अलावा यह मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमालय प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश में पाया जाता है इसका खनन कार्य प्रथम चरण है। थोरियम, जो कि परमाणु शक्ति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, का विश्व में सबसे अधिक मात्रा में उत्पादन भारत में ही होता है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र में 350 से भी अधिक रेडियो समस्थानिक तैयार किए जाते हैं। जिन्हें लगभग 50 देशों को निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है। इनमें से कुछ देशों के नाम हैं आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टिना, ब्राजिल, बांगलादेश, बर्मा, कम्बोडिया, डेनमार्क, इथोपिया, फ्रान्स, घना, हंगरी, स्वीडेन आदि। हमारे देश में रेडियो औषधियों के लगभग 24 इंजेक्शन और 26 पेय विलयन बनाये जाते हैं। 108 कार्बन-14 एवम् 39 टिशियम अंकित योगिक भी हमारे यहाँ बनते हैं। भारत में ही संयुक्तराष्ट्र विकास कार्यक्रम की सहायता में परमाणु ऊर्जा के विभाग द्वारा ट्राम्बे में एक संयन्त्र 'आइसोमेड' स्थापित किया गया है जो चिकित्सा उपादानों को जीवाणु रहित करने के लिये गामा किरणों का उपयोग करता है। रेडियो समस्थानिकों की सहायता से हमारे देश के लगभग 12 बन्दरगाहों में सिल्ट मूवमेन्ट के अध्ययन के लिए—स्कैंडियम 92 युक्त कांच के पाउडर का सफल उपयोग किया गया है। रेडियो ट्रेसर द्वारा ही अलीयार और श्री साइलम बाँधों में रिसाव के पथों का पता लगाया गया है। रीडियम 192 और कोबाल्ट-60 विकिरण स्रोतों और सम्बन्धित उपकरणों का निर्माण औद्योगिक रेडियोग्राफी के लिए भारत में ही किया जाने लगा है।

कर्नाटक राज्य के गौरीबिदानुर नामक नगर में धरती के नीचे विभिन्न देशों में किए गये परमाणु विस्फोटों का पता लगाने वाला केन्द्र कार्य कर रहा है। इसका सम्पूर्ण कार्य भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र को देखरेख में होता है। वायु में किए गये नाभिकीय विस्फोटों से गिरने वाली रेडियोऐक्टिवता का पता लगाने के लिए हमारे देश में 11 केन्द्र कार्यरत हैं। आपको याद होगा 27 जून, 1973 को चीन द्वारा किए गये परमाणु परीक्षण का पता अमेरिका और स्वीडेन से पहले ही भारत ने लगा लिया था।

परमाणु ऊर्जा विभाग द्वारा कई अन्य अनुसंधान-शालाओं विश्वविद्यालयों और विभागों को आर्थिक सहायता दी जा रही हैं जहाँ नाभिकी भौतिकीय में अन्वेषण कार्य किया जाता है इनमें प्रमुख हैं—टाटा इंस्टीट्यूट आफ फण्डामेंटल रिसर्च बम्बई, शाहा इंस्टीट्यूट आफ न्युक्लियर फिकिक्स कलकत्ता आदि।

हमारे देश के नाभिकीय कार्यक्रम को एक और धक्का तब लगा जब परमाणु उर्जा आयोग के अध्यक्ष डा० विक्रम साराभाई का 30 दिसम्बर, 1971 को अचानक निधन हो गया ! इसके बाद यह कार्य भार कुशल वैज्ञानिक डा० होमी एन० सेठना को सौंपा गया उन्हीं ! के निर्देशन में भारत ने 4 वर्ष से कम समय की तैयारी में परमाणु विस्फोट कर दिखाया। यह विस्फोट मानव निर्मित धातु प्लुटोनियम—239 से किया गया था जो 15 किलो टन टी० एन० टी० शक्ति का था। धरती में यह विस्फोट किये जाने से भारत की शान्ति के कार्यों में इस शक्ति का उपयोग करने की नीति उजागर होती है। तभी तो 22 मई, 1974 को बी० बी० सी० के साथ एक साक्षात्कार में परमाणु ऊर्जा आयोग के सदस्य श्री पी० एन० हक्सर ने कहा था कि सम्पन्न राष्ट्रों के विस्फोट सैनिक उद्देश्य से प्रेरित होते हैं जबकि भारत द्वारा किया गया यह भूमिगत प्रयोग ऐसा कोई उद्देश्य नहीं रखता।

फिर भी अटकलों के बाजार सदा गर्म रहे हैं। पाकिस्तान ने बहुत हो-हल्ला मचाकर तत्कालीन वार्ताओं को बन्द करने की एक तरफा राय दी थी। "भारत पाकिस्तान के साथ परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग

कर सकता है।" हमारी प्रधान मंत्री के यह कहने पर ही वार्ताएँ वापस आरम्भ की जा सकी। यद्यपि इस विस्फोट के प्रोयोगिक परिणाम अब दो महीने बाद प्राप्त हो जावेंगे पर इस शक्ति स्रोत का उपयोग खानों से धातु अयस्क को निकालने, तेल का पता लगाने, नदियों की दिशा बदलने तथा घाटियों का समतल करने जैसे कई उद्देश्य हमारे सामने है जिन्हें पूरा करने में हम सफल होंगे।

हाल ही में प्राप्त एक जानकारी के अनुसार इस ऊर्जा का उपयोग राजस्थान के रेगिस्तान के नीचे स्थित विशाल घन भंडार से जल प्राप्त करने में किया जा सकता है। डा० सेठना के अनुसार ऐसा करने के लिये दो सौ किलो टन का परमाणु विस्फोट करना होगा। कुछ भी हो हम समृद्धि के द्वार पर पहुँच चुके है। इस क्षेत्र में हमारा भविष्य उज्ज्वल है। हम अपने वैज्ञानिकों के आभारी हैं।

कन्हैया लाल दायमा
वरिष्ठ अध्यापक, रसायन शास्त्र
रा० उ० मा० वि० बम्भोरा,
उदयपुर (राज०)

●●

[पृष्ठ 7 का शेषांश]

आज हम ऐसे संकट के कगार पर खड़े हैं कि हमारे लिए दो ही विकल्प हैं या तो जी तोड़ कर सभी संभव उपायों का उपयोग करें या दम तोड़ दें। या तो राष्ट्र को विकसित करने के लिए कुछ काम के (सार्थक) अनुसंधान में जुट जायें या आज के केवल डिग्री की ओर ध्यान रखके अनुसंधान के नाम अपनी आत्मा का हनन करें और होने दें। इन विकल्पों में से हमें छांटना होगा। या तो एक या दूसरा।

गत अक्तूबर का अरब-इसरायली युद्ध हमारे लिए अभिशाप सिद्ध होता है या वरदान, यह तो भविष्य ही बताएगा और भविष्य—व्यक्ति का भी और राष्ट्र का भी—बनता है व्यक्ति या व्यक्ति समूह के दृढ़ संकल्प से, समर्पित जीवन दान से एवं बुद्धि और प्रयासों के साम्य योग से। हमारे सामने एक चुनौती का अवसर है—प्राकृतिक परिस्थितियों ने हमको एक ललकार दी है। हम में दम हो तो उस चुनौती को वीरतापूर्वक स्वीकार कर लें या हथियार डाल कर अपने को और अपने राष्ट्र को नष्ट-भ्रष्ट होने दें। आइए, हम लोग तय करें कि हमें क्या करना है—इन दोनों विकल्पों में से किस को छाँटना है ?

श्री शीतल प्रसाद
भूतपूर्व कुलपति
आगरा विश्वविद्यालय।

●●

पौष्टिक एवं स्वादिष्ट आहार कुकुरमुत्ता (मसरूम)

डा० शरद चतुर्वेदी

मानव जाति में आधुनिक सभ्यता के सहस्त्रों वर्ष पूर्व आदिवासियों का आहार केवल प्राकृतिक वनस्पति की उपज—फल फूल, पत्ते, जड़ें इत्यादि ही था। सभ्यता की प्रगति के साथ-साथ इस प्राकृतिक उपज का प्रयोग विभिन्न रोगों की चिकित्सा के लिये आरम्भ हुआ। इसी प्राकृतिक वनस्पति का एक अंश कुकुरमुत्ता (मसरूम) है जो दूसरे पेड़-पौधों से सर्वथा भिन्न हैं क्योंकि ये स्वयं अपना भोजन नहीं तैयार कर सकते और पृथ्वी पर पड़े हुए वनस्पति के बेकार भागों पर उगते हैं। वर्षा काल में मसरूम वृक्षों की छाया में, गंदे स्थानों में अथवा चारागाहों में बहुधा दिखाई पड़ते हैं।

सब्जी के रूप में कुकुरमुत्ता का प्रयोग सदियों पुराना है। पौराणिक कहानियों के अनुसार यूनानी एवं रोमन नागरिक इसे देवताओं का भोजन मानते थे और विशेष पर्व पर इसे भिन्न भिन्न प्रकार से पका कर बड़े चाव से खाते थे।

कुकुरमुत्ता की कई विषैली किस्में भी होती हैं और इसी कारण अन्य कंद-मूलों (जैसे—गाजर, मूली, चुकन्दर, गांठगोभी आदि) की अपेक्षा इसे भोजन के रूप में कम प्रयोग किया जाता है। विषैली तथा भोज्य किस्मों को आसानी से नहीं पहचाना जा सकता। किन्तु अब वैज्ञानिक रीति से भोज्य किस्मों को उगाया जाता है जिससे उनके विषैले होने की आशंका नहीं रहती।

साधारण तौर पर अगेरिकस को मसरूम ही समझा जाता है, क्योंकि सर्वप्रथम भोजन के रूप में इसका ही उपयोग हुआ था इसलिए इसके पौष्टिक गुणों का अध्ययन अधिक हुआ और यही अधिकांश
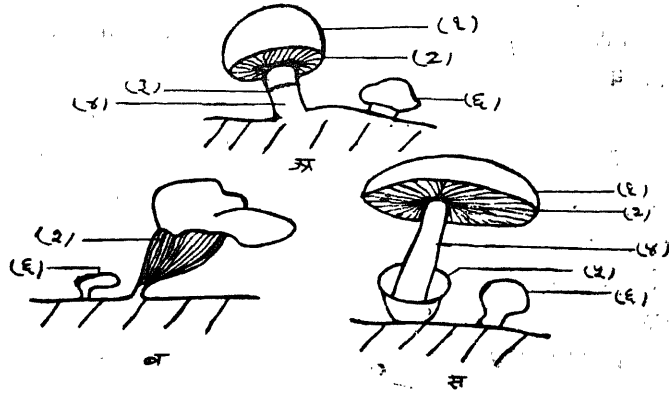
विभिन्न कुकुरमुत्तों की संरचना :
(अ) अगेरिकेस, (ब) प्ल्यूरोटस, (स) वलवेरियल्ला
1. छत्र, 2. अरपट्ट, 3. स्फोटक वलय, 4. डंठल, 5. प्याला, 6. कली।

भोजन में प्रयोग किया जा रहा है। अगेरिकस के अतिरिक्त वलवेरिमल्ला तथा प्ल्यूरोटस आदि का भी उपयोग भोजन में किया जाता है। इन सब के पोषक मान प्रायः समान ही होते हैं। प्रस्तुत लेख में विशेषकर अगेरिकस के बारे में ही उल्लेख किया गया है, क्योंकि यही सर्वाधिक प्रचलित भोज्य पदार्थ है। कुकुरमुत्ता में क्लोरोफिल नहीं होता जिसकी वजह से वे स्वयं अपना भोजन नहीं तैयार कर सकते और भोजन के लिये इन्हें सड़े गले डण्ठल, तने जैसे वानस्पतिक पदार्थों पर निर्भर रहना पड़ता है और इसीलिए ये मृतोपजीवी कहलाते हैं।

कुकुरमुत्ता की रासायनिक रचना तालिका 1 में दी गई है और अन्य खाद्य पदार्थों का तुलनात्मक पोषक-मान तालिका 2 में दिया गया है। मसरूम में ऐसा कोई भाग नहीं होता जो कि फेंका जाय।

अन्य सब्जियों की अपेक्षा कुकुरमुत्ता में खनिज लवण लगभग दुगनी मात्रा में होते हैं। फल व तरकारियों की अपेक्षा कुकुरमुत्ता में प्रोटीन बहुत अधिक मात्रा में होती है।

तालिका 1
कुकुरमुत्ता का रासायनिक संघठन

जलांश	90·0%
प्रोटीन	3·5
कार्बोहाइड्रेट	4·5
वसा	1·0
खनिज लवण तथा विटामिन	1·0

तालिका 2
कुकुरमुत्ता तथा अन्य खाद्यों के पोषक मान

खाद्य	अखाद्य भाग	प्रोटीन	कैलोरी (प्रति किलोग्राम) सूखा भार
कुकुरमुत्ता	0%	3·5%	210
सेब	25	0·3	220
केला	35	1·2	300
आलू	5	2·0	302
टमाटर	2	1·0	105
अंगूर	25	1·4	335
प्याज	10	1·4	205
संतरा	27	0·9	170
बंदगोभी	15	1·4	125
गाजर	20	1·2	125
मछली	50	19·2	380
मुर्गी (चिकन)	40	23·3	300
शूकरमांस (पोर्क)	25	11·9	900
गोमांस (बीफ)	10	17·5	670

कुकुरमुत्ता से कई विटामिन भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, इनमें से मुख्य विटामिन 'बी' और 'डी' हैं। कुकुरमुत्ता में कई प्रकार के एन्जाइम भी होते हैं विशेषकर 'ट्रिप्सिन' जो कि पाचन क्रिया में सहायता करता है। इसके अतिरिक्त इसमें लाइसीन नामक एमिनो एसिड तथा 'ट्रप्टोफेन' भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

सर्वप्रथम मसरूम की खेती फ्रांस में लुई चौदहवें के शासन काल (1638-1712) में हुई थी। उस समय वहीं इसकी पैदावार चूना-पत्थर की गुफाओं में होती थी। जैसे-जैसे व्यापार में उन्नति हुई, 19वीं शताब्दी के अंत तक, लगभग 1,500 वर्गमील के क्षेत्र में कुकुरमुत्ता की पैदावार की जाने लगी थी। प्रथम विश्व युद्ध में खाद्यान्नों आदि की कमी के कारण भोजन के रूप में इसका उपयोग करने की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। अतः विश्व के विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों में इसकी व्यापारिक पैमाने पर खेती के लिए प्रयास किये जाने लगे। अब इसकी खेती व्यापक रूप से हो रही है। भारत में कुकुरमुत्ता का बड़ी मात्रा में उत्पादन अभी कुछ ही वर्षों से आरम्भ हुआ है। परन्तु इसके उत्तम स्वाद एवं प्रोटीन तथा विटामिन की प्रचुरता के कारण यह उच्च वर्गीय उपहार गृहों में बहुत दिनों से प्रयोग किया जा रहा है।

लगभग 5000 किस्म के पौधे फफूंदी वर्ग में आते हैं, उनमें से लगभग 1,000 ऐसे हैं जो भोज्य हैं। अगेरिकस कुकुरमुत्ता फफूंद वर्ग का सबसे पहला भोज्य पौधा है। चूंकि यह शीत वातावरण में (तापक्रम 60-65° फा०) ही उगाया जा सकता है इसे समशीतोष्ण कुकुरमुत्ता कहते हैं। भारत में शीत काल के चार महीनों में ही कुकुरमुत्ता कम लागत से उगाये जा सकते हैं इसीलिए अब उष्ण कटिबंधीय जलवायु में उगने वाले कुकुरमुत्ता बलवेरियल्ला और प्ल्यूरोटस की खेती की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, इसे वर्ष के आधे से अधिक समय तक सुगमता से उगाया जा सकता है जबकि औसत ताप 70°-95° फा० रहता है।

फफूंद वर्ग का पौधा होने के कारण अन्य पेड़-पौधों की भाँति कुकुरमुत्ता के बीज नहीं होते, इनको छोटे-छोटे बीजाणुओं से उगाया जाता है। ये बीजाणु कुकुरमुत्ता के छत्रक की निचली सतह पर गिल्स के बीच बड़ी संख्या में पैदा होते हैं जिनकी आयु वहां से अलग होने पर केवल कुछ ही घंटों की होती है। इसी बीच में अनुकूल वातावरण मिलने पर बीजाणु अंकुरित होते हैं और शीघ्र ही रुई की तरह धागे के जाल में परिवर्तित हो जाते हैं जिसे कवक जाल (माइसीलियम) कहते हैं। यही कवकजाल मिट्टी के कणों के बीच अथवा सड़े हुए वानस्पतिक क्षेत्र द्रव्य के बीच पैदा होता है जिसे अण्डौघ (स्पान) कहते हैं और ये ही बीज की तरह प्रयोग में लाये जाते हैं।

स्ट्रेप्टोपेनिसिलिन का संश्लेषण

टोकियो स्थित केयो विश्वविद्यालय में इंजीनियरिंग निकाय के प्रो० सुमियो उमेजावा ने घोषणा की है कि उन्होंने स्ट्रेप्टोपेनिसिलिन का संश्लेषण किया है। इस प्रकार इस औषधि के प्रभावों को अब इच्छानुसार नियंत्रित किया जा सकता है।

उपग्रहों के होड़ में कुछ कदम और

शुकदेव प्रसाद

धरती के चारों ओर एक निश्चित कक्षा में घूमने के लिए छोड़ दिये जाने वाले सामान्य यान ही उपग्रह कहलाते हैं। रूसी भाषा के 'स्पूतनिक' शब्द का अर्थ होता है—उपग्रह या हमसफ़र।

सर्वप्रथम सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने 4 अक्टूबर, 1957 को एक राकेट से एक उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा था, जिसका नाम था—स्पूतनिक—1 और इसके बाद अमेरिका ने अपना उपग्रह अंतरिक्ष में भेजा। फिर तो एक के बाद एक बहुत सारे उपग्रह भेजे गये। यह सिलसिला शुरू हुआ कि तमाम अन्य राष्ट्रों जैसे फ्रांस, चीन और जापान ने भी कई उपग्रह भेजे। इस क्रम में इन उपग्रहों की संख्या बहुत अधिक हो गई। केवल अमेरिका और सोवियत संघ ने 1000 से अधिक उपग्रह अभी तक प्रक्षिप्त किया है।

लेकिन उपग्रहों का निर्माण एवं प्रक्षेपण किस लिए ?

अभी तक बहुत सारे उपग्रह अंतरिक्ष में प्रक्षिप्त किए गए और आशा की जाती है कि भविष्य में भी इन उपग्रहों के निर्माण एवं प्रक्षेपण का कार्य जारी रहेगा। इन प्रक्षिप्त उपग्रहों में न मालूम कितने उपग्रह चक्कर काटते-काटते अपना समय पूरा कर अन्तरिक्ष की गहराइयों में सदा के लिए विलीन हो गए और कुछ अब भी चक्कर काट रहे हैं। इनके अतिरिक्त कितने निर्माणाधीन हैं और न मालूम कितनों का निर्माण भविष्य में होगा अब प्रश्न यह उठता है कि यह सारा कार्यक्रम किसलिए है, प्रत्येक राष्ट्र उपग्रहों के होड़ में क्यों लगा हुआ है ?

उपग्रहों के उपयोग—उपग्रहों के होड़ में प्रत्येक राष्ट्र क्यों हैं, कुछ न कुछ बात तो जरूर होगी। आइए ! इन बातों पर विचार करें।

हमारे व्यवहारिक जीवन में उपग्रहों का बड़ा ही महत्व है। इनकी उपयोगिता के कारण ही इनका निर्माण कार्य बहुत तेजी से हो रहा है।

उपग्रहों का उपयोग हम विभिन्न क्षेत्रों में करते हैं और उसी के अनुसार इन्हें कई वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। काम के अनुसार इनका आकार प्रकार, कलपुर्जे भी भिन्न होते हैं। उपग्रहों के प्रकार निम्न हैं।

● संचार उपग्रह—इनका उद्देश्य संचार सम्बन्धी कार्य करना है। संचार उपग्रहों के कारण आज दुनिया की दूरियाँ कम हो गयी हैं। भूमध्य रेखा के ऊपर 35, 680 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थापित उपग्रह पृथ्वी के साथ-साथ घूमता है। इस तरह के तीन उपग्रह यदि तीन उपयुक्त स्थलों पर लगा दिये जायँ, तो सारी दुनिया का संपर्क सध सकेगा।

विश्व के अन्य भागों से प्रेषित चित्रों को हम नहीं देख सकते थे लेकिन उपग्रह के द्वारा यह समस्या अब सुलझ गयी है। अब तो उपग्रह के द्वारा टेलिविजन प्रसारण से गांवों में शिक्षा का समुचित प्रसार हो सकेगा।

● वैज्ञानिक उपग्रह : इन उपग्रहों का उद्देश्य है पृथ्वी एवं प्रकृति के रहस्यों को सुलझाना जैसे अंतरिक्ष में उपस्थित विविध विकिरण, सौर ऊर्जा, जीवन पर भारहीन अवस्था का प्रभाव एवं पृथ्वी से सम्बन्धित विविध बातें। इन उपग्रहों से पृथ्वी की सही आकृति, पृथ्वी में दबी पड़ी भू-संपदा इत्यादि का पता लगाया जाता है।

● मौसमी उपग्रह : इनसे मौसम विज्ञान सम्बन्धी समस्त जानकारी प्राप्त होती है। बादलों का अध्ययन, समुद्री तरंगों का अध्ययन एवं भू-ताप इत्यादि का पता लगाकर मौसम की सही भविष्य वाणी की जा सकती है। सम्भावित खतरों जैसे बाढ़, आँधी, तूफान इत्यादि की पूर्व सूचना पाकर होने वाली हानि से बचा जा सकता है।

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश के लिए मौसमी उपग्रहों का बड़ा ही उपयोग है। मौसम एवं कृषि-कार्यों का आपस में गहरा सम्बन्ध है। आगामी चौबीस घंटों के मौसम की जानकारी से किसान अपने कार्यक्रमों की योजना बनाकर लाभान्वित हो सकता है।

मौसमी उपग्रह मार्ग निर्देशक का भी कार्य करते हैं। वायुयान चालकों को मौसम का हाल थोड़ी-थोड़ी देर में बताया जाता रहता है, जिससे वे आंधी, तूफान, कोहरे आदि में फंसकर भटकने या दुर्घटनाग्रस्त होने से वायुयानों को बचा सकें।

● फौजी उपग्रह : इनका काम है दुश्मन के सामरिक क्षेत्र का सर्वेक्षण करके उसकी सूचना देना जैसे दुश्मन के सामरिक अड्डों, प्रतिष्ठानों एवं उनके कार्यक्रमों की योजना का पता लगाना आदि।

इतने ढ़ेर सारे उपयोग हैं उपग्रह के, कि हमारी जिंदगी का कोई क्षेत्र अछूता नहीं बचता।

दूरदर्शन और संदेश प्रसारण में प्रगति

दूरदर्शन और संदेश प्रसारण में जो अच्छी खासी प्रगति हुई है उसका सारा श्रेय उपग्रहों को ही जाता है। रेडियो संदेश समूचे विश्व में सुना जा सकता है लेकिन टेलिविजन चित्र देखना सम्भव नहीं है। साधारणतया टेलिविजन चित्र 52 मील से ज्यादा दूर नहीं भेजे जा सकते हैं, लेकिन उपग्रह से यह समस्या अब सुलझ गयी है और उन्हें समूचे विश्व में देखना अब सम्भव हो गया है।

सन् 1920 में आलिवर हेविसाइड महोदय ने पता लगाया कि पृथ्वी से करीब 60 मील ऊपर आकाश में एक आयनित स्तर है, जिसे आयन मण्डल कहते हैं। रेडियो तरंगें आयन मंडल से टकरा कर पृथ्वी पर लौट आती हैं और इसलिए सुदूर देशों में पहुँच जाती हैं। इनके विपरीत टेलिविजन तरंगें काफी लम्बी होने के कारण आयन मण्डल को पार कर जाती है। उन तरंगों को उपग्रह परावर्तित कर देता है। वापस आने वाली तरंगें सब दिशाओं में फैल जाती हैं और धरती पर स्थापित टेलिविजन सेट उन्हें ग्रहण करते हैं।

उपग्रहों के होड़ में कुछ कदम और

उपग्रहों के प्रक्षेपण की योजना जब से प्रारम्भ हुई है तब से आज तक कई उपग्रह प्रक्षिप्त हुए। अभी हाल में निर्मित कुछ खास उपग्रहो की चर्चा हम करने जा रहे हैं, जो कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से काफी महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय उपग्रह

उपग्रह निर्माण कार्यक्रम में भारत भी किसी से पीछे नहीं है। भारत का प्रथम उपग्रह बनकर तैयार है जो इस वर्ष के अन्त तक रूस के किसी प्रक्षेपण केन्द्र से अन्तरिक्ष में छोड़ा जायगा।

इस उपग्रह का निर्माण 'इंडियन साइंटिफिक सैटेलाइट प्रोजेक्ट, बंगलौर में हुआ है। इसके निर्माण में सम्पूर्ण योगदान भारतीय वैज्ञानिकों का ही है।

इस वैज्ञानिक उपग्रह का कुल वजन 300 किलोग्राम है। उपग्रह को ऊर्जा सूर्य द्वारा प्राप्त होगी। सिलिकॉन सौर सेलों और निकेल कैडनियम बैटरियों द्वारा निर्मित इसकी विद्युत प्रणाली से कुल 50 वाट विद्युत निकलेगी, जिसके इसके सारे यंत्र और उपकरण चल सकेंगे।

भारत का प्रथम उपग्रह 'वैज्ञानिक उपग्रह' है। इसका उद्देश्य एक्स-रे खगोलकी, वायु विज्ञान तथा सौर भौतिकी से सम्बन्धित वैज्ञानिक प्रयोग करना है। (इस उपग्रह का विस्तृत विवरण हम 'नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ—भारतीय संदर्भ में, लेखमाला के अन्तर्गत 'विज्ञान' के किसी आगामी अंक में करेंगे)।

ए० टी० एफ० एस०

यह एक शैक्षणिक भू-उपग्रह है। यह 30 मई, 1974 को फ्लोरीडा से अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किया

गया है। इस उपग्रह का निर्माण विशेष रूप से अमेरिकी राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन 'नासा' के लिए हुआ है। एक वर्ष तक इसका प्रयोग अमेरिका में स्कूलों की कक्षाओं एवं वहाँ के ग्रामीण समुदायों के लाभार्थ शैक्षणिक कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए किया जायगा। उसके बाद जून 1975 में इसे वहाँ से हटाकर भारत के निकट अन्तरिक्ष में स्थापित किया जायगा, जहाँ इसका प्रयोग भारत सरकार द्वारा दूरस्थ भारतीय गाँवों में एक वर्ष तक शिक्षण कार्यक्रम के संचालन के लिए किया जायगा। (विस्तृत विवरण हेतु देखे—'विज्ञान', अक्टूबर 1974, 'नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ—भारतीय संदर्भ में, लेखमाला भाग 2—'भारत के गांवों में टेलिविजन द्वारा शिक्षण कार्यक्रम, पृष्ठ 11)

वेस्टर

अमेरिका ने 'वेस्टर' नामक एक नया संचार उपग्रह पृथ्वी की कक्षा में स्थापित किया है। इसका उपयोग अमेरिका में संचार कार्यों के हेतु किया जायेगा। वैज्ञानिकों तथा संचार-विशेषज्ञों को यह आशा है कि यह नया संचार उपग्रह बाह्य अन्तरिक्ष के व्यावसायिक उपयोग में और अधिक वृद्धि करने में महत्वपूर्ण योगदान करेगा।

यह नया संचार उपग्रह शनिवार, 13 अप्रैल की शाम को केप केनेडी, फ्लोरिडा से 22,000 मील लम्बी कक्षा में स्थापित किया गया। यद्यपि यह उपग्रह टैक्निकल दृष्टि से अन्य संचार-उपग्रहों की तुलना में अधिक विकसित या श्रेष्ठ नहीं है, परन्तु इसकी सबसे प्रमुख विशिष्टता यह है कि यह किसी एक देश के अन्दर संचार-कार्यों के लिए व्यावसायिक आधार पर प्रयोग होने वाला सर्वप्रथम संचार-उपग्रह है।

वस्तुतः यह वेस्टर्न 'यूनियन' नामक एक गैर-सरकारी कारपोरेशन का व्यावसायिक प्रयास है। इस कार्पोरेशन ने उक्त संचार उपग्रह के निर्माण का समस्त व्यय वहन किया है तथा यही अपने खर्च पर इसका संचालन करेगा।

'वेस्टर्न यूनियन' अपनी तार-सेवा के लिए अमेरिका में सुविख्यात है। अब यह 'वेस्टर' संचार-उपग्रह का उपयोग तार-संदेशों, टेलिफोन-वार्ताओं, आंकड़ों और टेलिविजन कार्यक्रमों के प्रसारण हेतु करेगा।

कार्पोरेशन को इस बात की पूरी आशा है कि उपयोगकर्ताओं से फीस लेकर ही वह लाभ कमा लेगा। लेकिन, यदि आय से खर्च पूरा न हुआ तो वेस्टर्न यूनियन को घाटा स्वयं ही वहन करना पड़ेगा।

अमेरिका की किसी सरकारी एजेंसी का इस उपग्रह संचार योजना से कोई वास्ता नहीं है। 'नासा' ने केवल उक्त उपग्रह को कक्षा में स्थापित करने का कार्य किया है. और इस कार्य पर आने वाला व्यय वेस्टर्न युनियन कार्पोरेशन से वसूल कर लिया है। इसके अलावा, उपग्रह द्वारा विशिष्ट रेडियो आवृत्तियों का प्रयोग करने का लाइसेंस भी सरकार ने दिया है। साथ ही, संचार उपग्रह के सार्वजनिक उपयोगिता सम्बन्धी पहलुओं पर भी सरकार का कुछ नियन्त्रण रहेगा।

कक्षा-पथ बिल्कुल स्थिर हो जाने तथा यन्त्रों की पूर्ण परीक्षा के बाद, उपग्रह सम्भवतः अगस्त माह तक से अपना कार्य प्रारम्भ कर दे दिया। यह भूमि पर स्थित पाँच स्टेशनों (न्यूयार्क), अटलांटा (जार्जिया), शिकागो, डलास (टैक्सास) और लौस एंजेलस के बीच संचार की व्यवस्था करेगा।

छः फुट व्यास वाले इस संचार उपग्रह 'वेस्टर' का आकार ढोल जैसा है। 1,262 पौण्ड (572 किलोग्राम) वजन वाला यह संचार-उपग्रह एक साथ 7,200 टेलिफोन वार्ताएं अथवा 12 रंगीन टेलिविजन चैनलों पर कार्यक्रम प्रसारित करने में सक्षम है। यदि आवश्यकता हो तो यह एक साथ टेलिफोन-वार्ताएं, आंकड़े और टेलिविजन कार्यक्रम भी प्रसारित कर सकेगा।

जून, 1974 में 'वेस्टर-2' संचार-उपग्रह के कक्षा में स्थापित हो जाने पर इस संचार-क्षमता में और वृद्धि हो जायेगी। एक तीसरी 'वेस्टर' संचार-उपग्रह सुरक्षित रखा जायेगा ताकि उक्त दोनों में कोई दोष उत्पन्न होने पर उसे कक्षा में स्थापित किया जा सके।

प्रत्येक भू-उपग्रह में विद्युतशक्ति की व्यवस्था 20, 500 सौर सेलों द्वारा की गयी है, जो सूर्य के प्रकाश को बिजली में परिणत कर देते हैं। आशा की जाती है कि वह सात वर्ष तक सक्रिय रहेगा। उस समय तक उसे कभी-कभी नई स्थिति में लाने के लिए आवश्यक ईंधन समाप्त हो चुकेगा।

यह अन्तरिक्ष संचार प्रणाली वेस्टर्न यूनियन की परम्परागत लाइनों और माइक्रोवेव कनेक्शनों के भूतल स्थित संजाल को प्रभावकारी बनायेगी, और साथ ही, उसके लिए वैकल्पिक चैनलों की व्यवस्था करेगी। उसके अतिरिक्त, भू-उपग्रहों के कारण वेस्टर्न यूनियन प्रणाली की उपलब्ध सेवाओं की विश्वसनीयता और मात्रा में वृद्धि हो जायेगी।

व्यापारिक स्तर पर आकर्षक होने के लिए, भू-उपग्रहों को भूतल स्थित प्रणालियों की तुलना में लागत और क्रियाशीलता की उत्कृष्टता की दृष्टि से अपने-आप को श्रेष्ठतर सिद्ध करना होगा। अन्य संचार उपग्रहों के बारे में जो अनुभव प्राप्त हो चुके हैं, उनसे यह संकेत मिलता है कि वेस्टर प्रणाली उस कसौटी पर खरी उतरेगी।

कुछ अन्य उपग्रह

'वेस्टर्न यूनियन' के अतिरिक्त अन्य पाँच संचार—कम्पनियों ने भी घरेलू अमेरिकी उपग्रह संचार प्रणालियों सम्बन्धी अपनी योजनाओं की घोषणा की है। ये योजनाएँ 1975 में भू-उपग्रहों के प्रक्षेपण के साथ प्रारंभ होंगी। इनमें से अधिकांश के लिए भूतल-स्थित चौकियों की स्थापना अन्य नगरों में होगी लेकिन इनमें कुछ कम्पनियाँ 'वेस्टर' प्रणाली से प्रति स्पर्धा करेंगी।

एक प्रतियोगी 'आर सी ए' है, जो जनवरी से ही अमेरिकी ग्राहकों को अन्तरिक्ष संचार सेवाएँ सुलभ कर रही है। इसके लिए, वह कनाडा द्वारा अपने आन्तरिक उपयोग के लिए स्थापित भू-उपग्रह संचार प्रणाली, 'टेलिसैट' के अन्तर्गत प्रयुक्त दो उपग्रहों में से एक का उपयोग करती है।

'आर सी ए' ने कनाडा द्वारा अप्रैल 1973 में प्रक्षिप्त उपग्रह, 'एनिक—3' पर अस्थायी रूप से तीन चेनेल उधार लिए हैं। एनिक—1, जो वेस्टर उपग्रहों के लगभग समान है, नवम्बर 1972 में प्रक्षिप्त हुआ था। वे आकाश में विषुवत रेखा के ऊपर स्थित हैं, इस कारण समस्त उत्तरी अमेरिका के संचार के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं।

किन्तु, 'आर सी ए' की योजना स्वयं अपने 3 संचार उपग्रहों के संजाल की स्थापना करने की है। ये उपग्रह नये प्रकार के होंगे और उनका प्रक्षेपण 1975 के अन्तिम चरण से प्रारम्भ होगा। 'आर सी ए' अपनी वर्तमान भूतल स्थित चौकियों को भी विस्तृत करने वाली है। इस समय उसकी चौकियों में, न्यूयार्क और सनफ्रांसिस्को में स्थापित एक-एक स्टेशन और अलास्का में स्थापित 2 स्टेशन शामिल हैं।

यह विरोधाभास है कि अमेरिका, जो अन्तरिक्षीय संचार के क्षेत्र में अग्रणी था, स्वयं अपनी घरेलू उपग्रह संचार प्रणालियाँ स्थापित करने के लिए इतने विलम्ब से अग्रसर हुआ है। कारण यह है कि अलास्का को छोड़ कर शेष सभी भागों में उसने टेलिफोनों, तारों और माइक्रोवेव सेवाओं का विश्व में अधिकतम विस्तृत संजाल स्थापित कर रखा है, और अभी हाल तक उसे अतिरिक्त संचार क्षमता की कोई आवश्यकता नहीं थी।

अमेरिका ने हाल के वर्षों में अपनी उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करके एक विश्वव्यापी 'इण्टेलसैट प्रणाली की स्थापना की है, जिसके अन्तर्गत इण्टेलसैट के 84 सदस्य राष्ट्रों में से 53 से 88 भूतल स्थित संग्राहक एवं सम्प्रेषक केन्द्र स्थापित हैं।

कनाडा के लिए, यह इण्टेलसैट प्रणाली तत्काल उपयोगी सिद्ध हुई है क्योंकि वहाँ भूमि की बनावट ही ऐसी है कि वहाँ भूतल स्थित संचार प्रणालियाँ अव्यावहारिक सिद्ध होती हैं।

सोवियत संघ में, जहाँ की घरेलू संचार प्रणाली दूरस्थ प्रदेशों में बहुत अच्छी नहीं थी, कई वर्षों से घरेलू उपग्रह संचार प्रणाली चालू रही है।

[शेष पृष्ठ 20 पर

गंधक—पौधों की एक आवश्यकता

मुरारी मोहन वर्मा

पौधों के विकास एवं वृद्धि के लिए गंधक एक आवश्यक तत्व माना गया है। गंधक कई विटामिनों, प्रकिण्वों एवं अमीनो अम्लों के अभिन्न अंगों के रूप में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं जिसका प्रभाव पौधों एवं वनस्पतियों के उपापचय पर पड़ता रहता है। गंधक द्वारा आवश्यक अमीनो अम्लों का संश्लेषण होता है जिसमें सिस्टिन (Cystine), सिस्टीन (Cysteine) एवं मेथियोनिन (Methionine) प्रमुख हैं। क्लोरोफिल की संरचना में महत्वपूर्ण प्रकिण्व पैपियेनेज़ तथा बायोटिनों थायामिन, ग्लूटापियोन आदि विटामिनों के निर्माण में गंधक क्रियाशील रहता है। गंधक की उपस्थिति इन्जाइम ए तथा ग्लूकोसाइड तेलों में भी पायी जाती है। गंधक का महत्वपूर्ण उपयोग डाई सल्फाइड अनुबन्धों तथा सल्फाहाईड्रिल समूह के निर्माण में होता है जो क्रमशः जीव द्रव्य तथा कोशाणुओं के संरचना में सहायक होते हैं। नाईट्रोजेनेज़ एवं एडिनोसिन ट्राई फास्फेट सल्फाराईलेस प्रकिण्वों की क्रिया में भी गंधक उपस्थिति अनिवार्य हो जाती है।

गंधक पोषक तत्व की कमी विश्व के अनेक राष्ट्रों में पायी जाने लगी है और दुर्भाग्य से इस सूची में भारत के कई क्षेत्रों का भी नाम आता है। गंधक की कमी विशेषतया गंधक रहित उर्वरकों तथा निम्न गंधक युक्त ईंधनों कें प्रयोग से उत्पन्न हो रही है।

उन्नतशील फसलों के उत्पादन से भी गंधक की स्थिति में कमी रहती जा रही है। फसलों की उत्पादन क्षमता गंधक की अपूर्णता में मात्रिक एवं गुणात्मक दृष्टि से घटने लगती है। गंधक का पोषण भूमि, उर्वरकों, खादों, कीटनाशी रसायनों तथा वायुमंडलीय गंधक के माध्यम से वनस्पति जगत को प्राप्त होता रहता है।

भूमि में तत्वीय गंधक, सल्फाइडों, पालीसल्फाइडों, सल्फर डाई आक्साईड एवं थायोसल्फेटों का आक्सीकरण जीवाणुओं द्वारा सल्फेट रूप में होता रहता है। अकार्बनिक गंधक तथा कार्बनिक गंधक की मात्रा में एक स्थिर अनुपात पाया जाता है। भूमि में गंधक का सम्बन्ध कार्बन, नाईट्रोजन तथा फास्फोरस की मात्राओं से भी होता है। सिंचाई जल में विलेय सल्फेट भी पौधों के पोषण में सहायता देता है।

पौधों में गंधक का अवशोषण सल्फेट आयन के रूप में होता है जो मृदा माध्यम द्वारा उपलब्ध होता है। प्रायः गंधक की आवश्यकता की पूर्ति सल्फेट अंतर्निहित उर्वरकों के प्रयोग द्वारा करते हैं, जैसे—अमोनियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, अमोनियम फास्फेट, सल्फेट पोटेशियम सल्फेट, अमोनिएटेड सुपरफास्फेट आदि। क्षारीय भूमि सुधार के लिए जिप्सम का प्रयोग होता है जिससे गंधक की अप्रत्यक्ष रूप से वृद्धि होती है। पाली सल्फाइडों एवं थायोसल्फेटों का भी सफल प्रयोग गंधक के सम्भरण हेतु किया जाने लगा है। विशेषतौर पर अमोनियम पाली सल्फाइड तथा अमोनियम थायो सल्फेट का प्रयोग सिंचाई जल के साथ किया जा रहा है। गंधक के जलीय घोल का पर्णीय छिड़काव भी लाभकारी परिणाम दिये हैं।

पौधों में गंधक की अपूर्णता नाइट्रोजन की कमी की ही भाँति लक्षण प्रकट करते हैं जिससे निदान में प्रायः भ्रांति उत्पन्न हो जाया करती है। पौधों की वृद्धि में कमी आ जाती है, तने पतले हो जाते हैं तथा प्रौढ़ता में विलम्ब हो जाता है। ऐसे आक्रान्त पौधों के नये पत्ते

हल्के हरे रंग से धीरे-धीरे पीले पड़ने लगते हैं तथा पत्तियों की शिरायें भी हल्की पड़ने लगती हैं। कुछ पौधों में विशेषतौर से नींबू, तम्बाकू, कपास आदि में गंधक के अपूर्णता के लक्षण पहले पुरानी पत्तियों पर दिखलाई पड़ते हैं। कभी-कभी मक्के तथा ज्वार में अपूर्णता के लक्षण प्रारम्भिक अवस्था में लोहे अथवा जस्ते की कमी की भाँति दर्शाते हैं। फलियों वाले पौधों में जड़ों की ग्रंथिकाओं में कमी आ जाती है। आलू के पत्तों पर कभी-कभी चित्तियाँ भी पड़ जाती हैं।

आधुनिक शोध कार्यों से गंधक का महत्व बढ़ता ही जा रहा है। क्लोवर में गंधक के प्रयोग से क्लोरोफिल की मात्रा में वृद्धि हुयी है। अल्फा-अल्फा में कैरोटीन तथा गेहूँ की प्रोटीन मात्रा की वृद्धि हुई है। सोयाबीन में तेल की मात्रा तथा सागों एवं सब्जियों के गुणों में भी वृद्धि हुई है। तम्बाकू एवं कपास के उत्पादनों में भी लाभ हुआ है। अन्य लाभों के साथ ही गंधक के प्रयोग से पौधों में प्रतिरोध गुणों का विकास हुआ है जिससे अनेक रोगों से मुक्ति मिली है तथा पौधों की कीड़ों से सुरक्षा प्राप्त हुई है।

सल्फेट उर्वरकों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना उचित रहेगा क्योंकि सल्फेट उर्वरकों के निरंतर प्रयोग से भूमि को अम्लीय बनने का भी भय रहता है। कार्बनिक खादों में भी गंधक की मात्रा पर्याप्त रहती है। गंधक युक्त कीटनाशी रसायनों के प्रयोग से पौधों को अल्प मात्रा में गंधक का पोषण होता है। गंधक के प्रयोग से अन्य अप्रत्यक्ष लाभ होते हैं जैसे—पौधों में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ जाती है। लोहा, मैंगनीज़, जस्ता आदि सूक्ष्म तत्वों की भी उपलब्धता सम्भवतः गंधक द्वारा उत्पन्न अम्लीय स्थिति से बढ़ जाती है।

मुरारी मोहन वर्मा
प्रवक्ता, शीलाधर मृत्तिका विज्ञान
गवेषणागार, प्रयाग विश्वविद्यालय

●●

[पृष्ट 18 का शेषांश]

अमेरिका और कनाडा के संचार भू-उपग्रह 'सिनक्रोनस' हैं, जिसका अर्थ यह है कि उनकी गति पृथ्वी की गति के समान होती है, जिससे पृथ्वी के धरातल के ऊपर भू-उपग्रह की स्थिति सदैव एक सी ही बनी रहती है।

अन्तरिक्ष अनुसन्धान के फलस्वरूप जिन नई प्रविधियों का प्रादुर्भाव हुआ है, उनमें भू-उपग्रहों के माध्यम से संचार की विधि मुख्य है, जिसका व्यापक रूप से उपयोग किया गया है।

कई राष्ट्र अपने यहाँ घरेलू भू-उपग्रह संचार प्रणालियाँ स्थापित करने के विषय में विचार कर रहे हैं। अमेरिकी सरकार ने संचार उपग्रहों विषयक अपने अधिकांश अनुसन्धान को बन्द कर दिया है क्योंकि वर्तमान उपग्रह इतने विकसित और उन्नत हैं कि उनका प्रयोग व्यापारिक स्तर पर आसानी से हो सकता है और इस दिशा में स्वयं निजी उद्योग लाभ के साथ आगे की प्रगति करने में समर्थ हैं।

अमेरिका ने 1975 के लिए एक अन्य कार्यक्रम की भी योजना बना रखी है, जिसे 'मेरीसैट' (मेरिटाइम स्पेस कम्युनिकेशन्स सिस्टम) कहते हैं। इसके अन्तर्गत, अटलाण्टिक और प्रशान्त महासागरों के ऊपर उपग्रह स्थापित किये जायेंगे। अमेरिका, कनाडा और यूरोपीय राष्ट्रों के बीच एक वैज्ञानिक संयुक्त उपग्रह संचार प्रणाली ('एयरोसैट') के लिए वार्ता चल रही है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

●●

क्या आप जानते हैं ?

—शुकदेव प्रसाद

- कोहोटेक धूमकेतु इस शताब्दी में अब तक का सबसे बड़ा तथा प्रकाशमान धूमकेतु है। 28 दिसम्बर 1973 को यह सूर्य से निकटतम दूरी 1·3 करोड़ मील पर था।
- धूमकेतु की पूँछ सदा सूर्य की विपरीत दिशा में रहती है।
- धूमकेतु में स्वयं अपना प्रकाश नहीं होता है। चन्द्रमा की तरह यह भी मुख्यतया सूर्य के प्रकाश के कारण चमकता है, जो इसके छितरे हुए ठोस तथा गैसीय पदार्थ से प्रक्षिप्त होता है।
- धूमकेतुओं की संख्या 10^{14} (दस नील) के आसपास आँकी गयी है।
- बड़े ग्रहों के अपने-अपने धूमकेतु परिवार हैं। बृहस्पति के परिवार में 30 धूमकेतु, नेप्च्यून में 6 तथा शनिवार परिवार में केवल 2 धूमकेतु हैं।
- हाल ही में पाया गया है कि पुच्छलतारे के कण एक तरह की प्रतिदीप्ति भी प्रदर्शित करते हैं।
- दूरदर्शी के दृष्टि विस्तार में आने वाले पुच्छलतारों से पता चला है कि ये केवल संघनित गैस और शीत कणों (ग्रिट) के पुंज होते हैं। संघनित गैसों में मुख्यत: मेथेन, अमोनिया और CO_2 होती है जिनमें बालू के कण संस्तरित रहते हैं।
- आर० ए० लिटिल्सन के अनुसार पुच्छलतारे सूर्य की ही संतति हैं।
- एडमण्ड हेली (1656-1742) ने सबसे पहले यह बताया कि पुच्छलतारे सौर-मण्डल के ही सदस्य हैं जो कि दीर्घ वृत्तीय कक्षाओं में घूमते रहते हैं।
- अब तक ब्रह्माण्ड के जितने भाग का पता चला है उसमें लगभग 19 अरब आकाशगंगाएँ होने का अनुमान है और प्रत्येक आकाशगंगा में लगभग 1,5000,00,00,000 तारे हैं।
- अभी हाल में किए गए परीक्षणों से पता चला है कि कोहोटेक धूमकेतु ही एक ऐसा धूमकेतु है जिसमें पानी की उपस्थिति पायी गयी।
- खगोलवेत्ताओं का अनुमान है कि सूर्य की परिक्रमा करने वाले पुच्छलतारों की संख्या 100 अरब है।
- अभी तक कुल करीब 100 पुच्छलतारों का पता लगा है।
- सर्वप्रथम खगोलज्ञ टाइकोब्राहे ने 1577 में बताया कि पुच्छलतारे आकाश की करोड़ों मील की गहराई से उभर कर क्षितिज पर आते हैं और सौर-मंडल की परिक्रमा करके पुन: शून्य की अतल गहनता में डूब जाते हैं।

(क्रमश:)

1974 का भौतिकी का नोबेल पुरस्कार प्रो० मार्टिन राइल तथा प्रो० अन्थोनी हेविश को और रसायन शास्त्र का पुरस्कार प्रो० जे० फ्लोरी को प्रदान किया गया है।

नये आविष्कार

गैस-ओ-माइजर : कार के लिए एक नया उपकरण

ह्यूस्टन, टैक्सास, की एक फर्म, सी० ई० कारपोरेशन, 'गैस-ग्रो-माइजर' नामक एक उपकरण बाजार में सुलभ कर रही हैं, जो कार के मालिकों की ग्रनेक कठिनाइयाँ हल करने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

निर्माताग्रों का कहना है कि इसका प्रयोग करने पर मोटर-गाड़ी थोड़ी गैस का प्रयोग करके ग्रधिक दूरी तय कर सकती है, ग्रौर साथ ही उसमें से ईंधन के जलने से धुग्रां का निस्सरण कम हो जाता है। मोटर के कम्बशन चैम्बरों में कार्बन कम मात्रा में जमा होता है ग्रौर स्पार्क प्लग ग्रधिक समय तक चलता है।

गैस-ग्रो-माइजर इंजिन की वैकूम प्रणालियों की सहायता से मैनिफोल्ड में प्रविष्ट हो रहे हवा ग्रौर ईंधन के मिश्रण में ग्रौर ग्रधिक ताजा हवा प्रविष्ट कर देता है। ग्रतिरिक्त हवा को इस प्रकार नियन्त्रित रखा जाता है, ताकि वह ग्रावश्यकता पड़ने पर ही मैनिफोल्ड में प्रविष्ट हो सके। यह उपकरण उसी समय सक्रिय होता है, जब मोटर गाड़ी की चाल धीमी होने लगती है। लेकिन जब हवा-ईंधन के मिश्रण में सुधार हो जाता है, तो ईंधन की प्रति इकाई ग्रतिरिक्त ऊर्जा प्राप्त होने लगती है, धुएं का निस्सरण कम हो जाता है ग्रौर कार्बन का संग्रह भी घट जाता है।

भित्ति-चित्रों की रक्षा की नयी विधि

दीवार पर बनाये गये भित्ति-चित्रों या की गई रंगाई को विकृत होने से बचाने के लिए लॉस एंजेलस, कैलीफोर्निया, की रेनगार्ड प्रोडक्टस कम्पनी एक नयी सस्ती वस्तु बाजार में उपलब्ध कर रही है, जिसे 'वैण्डल गार्ड' कहते हैं। पतले ग्रावरण के रूप में दीवार के रंगों के ऊपर इसकी पुताई कर दी जाती है। यह एक प्रकार का रसायन है, जो जल नहीं सकता, ग्रौर पानी में घुल सकता है। उसे चित्रित दीवारों पर बाहर ग्रौर भीतर से पोत दिया जाता है जिससे इसकी पतली झिल्ली का ग्रावरण चित्रों के ऊपर बन जाता है ग्रौर वे सुरक्षित हो जाते हैं।

निर्माताग्रों का कहना है कि इसकी पुताई से भित्ति चित्रों की सफाई ग्रासानी से हो सकती है। इससे रंग की चमक बढ़ जाती है ग्रौर वह ग्रधिक टिकाऊ हो जाता है। इसके कारण धब्बे चित्र के ऊपर नहीं पड़ने पाते। ग्रल्यूमिनियम पर इसे पोतने से उसमें क्षरण नहीं होता। समुद्री हवा, कुहरा, धुग्रां ग्रादि से भी यह भित्ति-चित्रों की रक्षा करता है। 1 गैलन वैण्डल गार्ड द्वारा 400 वर्ग फुट क्षेत्र पर पुताई की जा सकती है।

समुद्र की तलहटी में प्रयुक्त होने के लिए हाइड्रालिक हैमर ड्रिल

समुद्र में पानी के नीचे तलहटी में निर्माण-कार्य ग्रतीव कठिन होता है। वायु या गैसचालित ड्रिल का प्रयोग करने पर, गोताखोरों को सांस लेने में दिक्कत होती है, कान से सुनने में कठिनाई होती है ड्रिल को नियन्त्रित करना एक समस्या बन जाता है। किन्तु, ग्रब कैलिफोर्निया की एक फर्म, किनरजेटिक्स, इन्क०, ने एक ऐसी हैमर ड्रिल का निर्माण किया है, जो, निर्माताग्रों के ग्रनुसार, इन समस्याग्रों को दूर कर देती है। इसका नाम 'यू एच डी-2 ग्रण्डरवाटर हाईड्रालिक हैमर ड्रिल' है।

यह ड्रिल तीन प्रकार से क्रियाशील होती है। यह कभी केवल चक्कर काटती है, कभी हैमर या हथौड़े की हल्की चोट के साथ चक्कर काटती है ग्रौर कभी हैमर की भारी चोट के साथ चक्कर काटती है। यह पानी के नीचे 120 फुट की गहराई पर प्रयुक्त हो सकती है, ग्रौर प्रति मिनट 4 इंच की दर से 0·75 इंच व्यास का सूराख खोद सकती है। हैमर का वजन

हवा में 34 पौण्ड, समुद्री पानी में 18·6 पौण्ड और समुद्री पानी में चोट के साथ 49·6 पौण्ड होता है।

सामग्री को धरने-उठाने वाला सरल और सस्ता यन्त्र

सामग्री को उठाने-धरने के यन्त्रों की आजकल बहुत माँग है, बशर्ते वह सुरक्षित और आसान हो तथा उनके रख-रखाव पर अधिक लागत न आती हो। अमेरिका में अभी हाल में ऐसे ही एक यन्त्र का विकास हुआ है जिसमें उक्त सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। इस यन्त्र को अभी हाल में आयोजित नेशनल हैंडलिंग इन्जिनियर्स कम्पटीशन में प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

इस यन्त्र का नाम 'ड्रम्पर' है। इसका उपयोग बहुत सरलता के साथ हर प्रकार के ड्रमों को एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान तक पहुँचाने, उन्हें ठीक प्रकार से यथास्थान पर लगाने के लिए किया जा रहा है। यंत्र के निर्माता के अनुसार यह यन्त्र बहुत मजबूत है, तेजी के साथ काम करता है तथा ड्रमों को किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचाता। यह यन्त्र एक बार में 1,000 पौण्ड तक वजन उठा सकता है।

यह 'ड्रम्पर' यन्त्र 10 सेकेण्ड के अन्दर किसी भी लिफ्ट ट्रक पर फिट किया जा सकता है और इतने ही समय में उतारा जा सकता है। यह यन्त्र ड्रमों को उठाने के लिए केवल गुरुत्वाकर्षण शक्ति का प्रयोग करता है।

'ड्रम्पर' का मूल्य भी बहुत कम है। यह केवल 79 डालर में खरीदा जा सकता है। इसका निर्माण कनेटिकट की 'मेटीरियल हैण्डलिंग जिस्टम्स इन्का॰' द्वारा किया गया है।

ठण्डे पेय पदार्थ सुलभ करने वाला नया यन्त्र

अमेरिका में ठण्डे पेय पदार्थ सुलभ करने वाला एक ऐसा नया स्वचालित यन्त्र विकसित किया गया है, जो ग्राहकों को चार प्रकार के शीतल पेय तथा सोड़ा सुलभ कर सकेगा। इस यन्त्र के विकास से कारबोनेटर पम्पों की उपयोगिता समाप्त हो गयी है।

शीतल पेय सुलभ करने वाले इस स्वचालित यन्त्र का नाम 'मेवरिक-के-२' है और यह ४० डिग्री फारेन-हीट तापमान में एक घण्टे में ३५० शतील पेय सुलभ कर सकता है। स्कूलों, थियेटरों और कैफटेरियों के लिए यह यन्त्र बहुत उपयुक्त हैं।

चार प्रकार के शीतल पेय सुलभ करने वाले इस यन्त्र का मूल्य लगभग 1,000 डालर है और इसका निर्माण टैक्सास की एक फर्म 'बूथ इनकार्पोरेटेड' ने किया है।

आग की चेतावनी देने वाला बैटरी चालित यन्त्र

अमेरिका में बैटरी से चालित एक ऐसे यन्त्र का निर्माण किया गया है, जो थोड़ा सा धुँआ उठने पर भी उसका पता लगा सकता है। इस यन्त्र का नाम 'इनफारमर' है और यह बैटरी से चलता है। आग की चेतावनी देने के लिए यह यन्त्र विशेष उपयोगी सिद्ध होगा।

निर्माता कम्पनी के अनुसार, यह यन्त्र बहुत विश्व-सनीय है। इस यन्त्र में ऐसी यान्त्रिक व्यवस्था की गयी है कि प्रकाश में किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न होने पर यन्त्र में फिट 'सेंसर' उसे तुरन्त पकड़ लेते हैं। निर्माता के अनुसार, यदि किसी स्थान पर 2 से 4 प्रतिशत तक भी धुँआ एकत्र हो जाये तो यह यन्त्र तुरन्त उसकी चेतावनी देने लगता है। धुएँ के अस्तित्व का पता लगते ही यन्त्र में फिट एक चेतावनी एलार्म बजना शुरू हो जाता हैं।

यह यन्त्र केवल तीन मरकरी बैटरियों से चलता है जो 2 साल तक काम देती है।

यन्त्र की कीमत केवल 50 डालर है इसका निर्माण कनैटिकट की 'एच॰ एफ॰ सिस्टम्प इनकापोरेटड' ने किया है।

हृदय की धड़कन अंकित करने वाला जेबी कार्डियोग्राम यन्त्र

अमेरिका में हृदय रोग से ग्रस्त व्यक्तियों के उपयोगार्थ, एक नये यन्त्र का विकास किया गया है।

यह है पर्स के आकार का कार्डियोग्राम यन्त्र, जो रोगी के हृदय की दशा को हर समय रिकार्ड करता रहता है। यह यन्त्र रोगी अपने जेब में बड़ी आसानी से रख सकता है।

उन हृदय रोगियों के लिए यह यन्त्र विशेष रूप से उपयोगी है जिनको किसी यात्रा के दौरान छाती में अचानक दर्द उठ खड़ा होता है। उन रोगियों के लिए भी यह विशेष उपयोगी है जो हृदय रोगों से पीड़ित तो नहीं होते परन्तु जिनकी हृदय की धड़कनों के कार्डियोग्राफ में कुछ असामान्यता पायी जाती है।

इस यन्त्र का मूल्य केवल 6 डालर है। इसका निर्माण वेस्ट हार्टफोर्ड (कनैक्टिकट) स्थित फर्म 'माइक्रो मेडिकल रिकार्ड्स' ने किया है।

टायरों के पंचर जोड़ने वाला नया पदार्थ

हर प्रकार और हर आकार के टायरों के पंचर जोड़ने के लिए एक नये पदार्थ का विकास किया गया है। इसका नाम 'अल्ट्रा-सील टायर सीलमेण्ट' है।

यह नया पदार्थ टायर में हुए पंचर को पक्की तौर पर जोड़ देता है। निर्माताओं के अनुसार, इसकी सहायता से टायरों की मजबूती अनिश्चित काल के लिए बढ़ जाती है और यह किसी प्रकार नष्ट नहीं होता। यह अत्यधिक गर्मी अथवा सर्दी में भी नष्ट नहीं होता है।

'अल्ट्रा-सील टायर सीलमेण्ट' से जोड़े टायरों का सभी प्रकार से परीक्षण किया गया है और किसी भी अवस्था में, किसी भी प्रकार से इसे अविश्वसनीय नहीं पाया गया है। 'सील' से टायर अथवा ट्यूब को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचती है और यह पूर्णतः विषाक्तता रहित और अज्वलनशील है।

इसका निर्माण ओलम्बिया फील्ड, कैलिफोर्निया, की 'आर० एण्ड आर० एक्सक्लूसिव' फर्म द्वारा किया गया है।

नहाने के फव्वारे के जल को गर्म करने वाला उपकरण

जो लोग ठण्डे पानी वाले फव्वारे के नीचे नहाना पसन्द नहीं करते, उनके लिए एक प्रकार का नया आविष्कार किया गया है, जिसके अन्तर्गत बिजली द्वारा स्वतः ही पानी गर्म हो जाता है।

इस उपकरण को पानी देने वाले नल के साथ जोड़ दिया जाता है और टोंटी खोलने भर से ही गर्म पानी आना शुरू हो जाता है। प्रवाहित जल का विद्युतधारा से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। विद्युतधारा पूर्णतया आबद्धित होती है। यह प्रवाहित जल को सेकेण्डों में ही गर्म कर देता है और टोंटी द्वारा जल-धारा को कम-बढ़ करने से ही जल की उष्णता को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। प्रयोग न करने की दशा में इसमें बिजली की बिल्कुल खपत नहीं होती है।

इस उपकरण से सम्बन्धित उपयोगी सूचनाएँ एवं निर्देश विभिन्न भाषाओं में प्राप्त है। 17 से 25 डालर मूल्य वाले इस छोटे से उपकरण का निर्माण हिपालिया, फ्लोरिडा, की फ्लंश मैन्युफैक्चरिंग कार्पोरेशन, ने किया है।

इंजेक्शन की शीशियों को काटने के लिए सुरक्षित विधि का विकास

इंजेक्शन की शीशियों को काटते समय बहुधा नर्सों की उंगलियाँ कट जाया करती हैं। अब अमेरिका में इन कांच की शीशियों (एमप्यूल) को काटने के लिए एक सुरक्षित उपकरण का विकास किया गया है।

इस उपकरण का नाम है 'स्नैप-इट एमप्यूल ओपनर'। काटने की प्रक्रिया में किसी भी समय 'एमप्यूल' को हाथ से नहीं छूना पड़ता।

यन्त्र का मूल्य केवल 5 डालर है। इसका निर्माण न्यूयार्क की फर्म 'स्नैप-इट सेफ्टी प्रोडक्ट को०' ने किया है।

● ●

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका।

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | पौष 2021 विक्र०, 1896 शकाब्द जनवरी 1975 | संख्या 1

अति भारी तत्व

डा० ओम प्रभात अग्रवाल

अति-भारी-तत्व वे तत्व हैं, जो यदि संश्लेषित कर लिये गये, तो उन्हें स्थान देने के लिये वर्तमान आवर्त सारणी का विस्तार करना पड़ेगा। इस पद का सर्वप्रथम उपयोग 1958 में किया गया। अब तक 105 तत्व प्रकृति में खोजे जा चुके हैं अथवा संश्लेषित किये जा चुके हैं। अंतिम तत्व (परमाणु क्रमांक, Z = 105) इतना अधिक अस्थायी है कि संश्लेषण के पश्चात् कुछ ही पलों में उसका रेडियो ऐक्टिव विघटन हो जाता है। कारण स्पष्ट है; यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते प्रोटॉनों की संख्या इतनी बढ़ जाती है कि उनके परस्पर विकर्षण के समक्ष न्यूक्लीय ससंजक बल क्षीण पड़ जाते हैं तथा न्यूक्लियस का विखंडन हो जाता है। अति भारी तत्वों के न्यूक्लियसों में प्रोटॉनों की संख्या और भी अधिक होगी। ऐसी दशा में आशा की जा सकती है कि उनका विखंडन और भी शीघ्रता से होगा; दूसरे शब्दों में, उनका निर्माण ही संदिग्ध रहेगा। फिर इन तत्वों के बारे में चिंतन का औचित्य क्या है?

औचित्य है। अब, न्यूक्लियस के "कक्षा-मॉडल" (shell model) के विकास के पश्चात् यह स्पष्ट हो गया है कि यदि न्यूक्लियस में प्रोटॉनों अथवा न्यूट्रॉनों की संख्या कुछ विशेष हो तो न्यूक्लियस, अत्यधिक स्थायी होगा। प्रोटॉनों के लिये ये संख्यायें, 2, 8, 20, 28, 50, 82, 114 तथा संभवतः 146 हैं, जब कि न्यूट्रॉनों के लिये संख्यायें, 2, 8, 20, 28, 50, 82, 126, 184 तथा 196 हैं। ये संख्यायें, स्थायित्व संख्यायें अथवा माया अंक कहलाती हैं तथा इनका प्रभाव काफी सीमा तक स्थिर वैद्युत प्रतिकर्षण के विखंडनकारी प्रभाव को संतुलित कर सकता है। यदि न्यूक्लियस में उपस्थित प्रोटॉनों एवं न्यूट्रॉनों, दोनों की संख्यायें, स्थायित्व संख्यायें हों, तो न्यूक्लियस में अभूतपूर्व स्थायित्व होता है। इसका एक उदाहरण है 208 Pb, जिसमें Z = 82 तथा N = 126। स्पष्ट है कि Z = 114 तथा 164 के समीप हम पुनः अपेक्षाकृत स्थायी तत्वों की कल्पना कर सकते हैं। न्यूक्लियस 298, 114, जिसमें दोनों ही स्थायित्व संख्यायें है, तो बहुत ही अधिक स्थायी होना चाहिये। वास्तव में सैद्धांतिक प्रागुक्तियों के अनुसार इसकी विखंडन अर्ध-आयु 10^{16} वर्ष तथा α – क्षय अर्ध-आयु 10^{3} वर्ष होनी चाहिए।[3] β – क्षय के प्रति इसे

स्थायी होना चाहिये। इन भारी तत्वों के स्थायित्व की सैद्धांतिक संभावनाओं के प्रकाश में आ जाने पर महान न्यूक्लीय वैज्ञानिक सीबोर्ग ने वर्तमान आवर्त सारणी का विस्तृत रूप प्रस्तावित किया है, जिसमें 168 तत्वों को स्थान दिया गया है।

ऊपर, तत्व $^{298}114$ के अभूतपूर्व स्थायित्व की चर्चा की गई है। यह स्थायित्व वास्तव में विखंडन के संदर्भ में है, क्योंकि इसके पास के कुछ अन्य तत्वों का α-क्षय-स्थायित्व इसकी अपेक्षा और भी अधिक पाया गया है। सैद्धांतिक परिकलनों से यह संकेत मिलता है कि वास्तव में तत्व 114 के आस-पास के कई तत्वों में काफी अधिक स्थायित्व है। यदि हम इन तत्वों के भिन्न-भिन्न प्रकार के रेडियो ऐक्टिव विघटनों पर अलग-अलग विचार न कर, सम्मिलित रेडियो ऐक्टिव-क्षय की अर्ध-आयु का अध्ययन करें तो देखेंगे कि अधिकतम स्थायित्व $^{294}110$ आइसोटोप में होना चाहिए। इसकी सम्मिलित अर्ध-आयु लगभग 10^8 वर्ष आंकी गई है। यह इतनी अधिक है कि यह तत्व (आइसोटोप विशेष) थोड़ी मात्रा में प्रकृति में उपस्थित हो सकता है। प्रकृति में इन तत्वों की खोज के समस्त प्रयत्न अभी तक असफल रहे हैं। $Z = 106$ से $Z = 115$ तक के सभी तत्वों के रडियो ऐक्टिव विघटन से संबंधित अर्ध-आयु (यदि N का मान 174 से 192 के बीच हो) एक मिनट अथवा इससे अधिक होनी चाहिये। दूसरे शब्दों में इन सभी तत्वों को पर्याप्त स्थायी होना चाहिये। आज विभिन्न राष्ट्रों, जिनमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा सोवियत रूस प्रमुख हैं, के वैज्ञानिक इन तत्वों के संश्लेषण का अथक प्रयत्न कर रहे हैं।

इलेक्ट्रॉनी-विन्यास तथा गुणों संबंधी प्रागुक्तियां

अति भारी तत्वों के इलेक्ट्रॉनी विन्यास संबंधी प्रागुक्तियां की गई हैं। प्रागुक्तियों का आधार वे अत्यंत जटिल तथा दीर्घ परिकलन हैं, जिन्हें अनेक वैज्ञानिक मनीषियों, जैसे वेबर, क्रोमर, लीबरमान, लारसन इत्यादि ने अत्याधुनिक एवं परिष्कृत संगणकों की सहायता से संपन्न किया है। तत्व 104 के संबंध में तो सूचनायें प्रायोगिक अध्ययनों से ही प्राप्त हो गई थीं परन्तु 105 तथा अन्यों के बारे में सैद्धांतिक परिकलनों का सहारा लिया गया है। लगभग सभी ऐक्टिनाइड तत्वों $Lr(Z = 89-103)$ में 6d उपकक्षा में एक इलेक्ट्रॉन उपस्थित होता है। Lr में 5f के संपूर्ण होने के पश्चात्, तत्व 104 में पुन:, नया इलेक्ट्रॉन 6d उपकक्षा में जाता है। इस प्रकार तत्व 104 का बाह्यतम इलेक्ट्रॉन विन्यास है—$6d^2 7s^2$। यह तत्व (Kr, कुरशोटोवियम), हैफ्नियम का सजातीय है तथा इसके रासायनिक गुण उससे पूर्णरूपेण मिलते हैं। सैद्धांतिक परिकलनों से इस बात की पुष्टि होती है कि 105 से 112 तक के तत्वों में नये इलेक्ट्रॉन 6d कक्षकों में ही स्थान पायेंगे और इस प्रकार एक नयी संक्रमण श्रेणी (6d) की रचना होगी। इस श्रेणी के तत्वों के गुण भी इसके पहले की श्रेणी के भांति होने चाहिये। श्रेणी के मध्य भाग तक तत्वों की प्रवृत्ति उच्चतम उपचयनावस्था प्राप्त करने की होनी चाहिए। परन्तु उसके पश्चात् 108 से 111 तक के तत्वों के गुण उत्कृष्ट धातुओं के समान होने की सम्भावना पाई जा सकती है। इनके बाद के दो तत्व, 113 एवं 114, जिन्हें सीबोर्ग ने एका-थैलियम तथा एका-लेड नाम दिया है, क्रमशः III B एवं IV B वर्गों के सदस्य होंगे तथा इनका बाह्यतम विन्यास होगा—$6d^{10} 7s^2 7p^1$ तथा $6d^{10} 7s^2 7p^2$। III B एवं IV B वर्गों में परमाणु-क्रमांक बढ़ने के साथ निम्न उपचयनावस्थाओं को प्राप्त करने की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। III B में अंतिम ज्ञात तत्व Tl है, जिसमें +1 अवस्था, +3 की अपेक्षा अधिक स्थायी होती है जबकि इसी वर्ग के अपेक्षाकृत हल्के तत्वों में +3 अवस्था के प्रति आग्रह होता है। इसी प्रकार IV B में परमाणु क्रमांक में वृद्धि के साथ उपचयनावस्था +4 से +2 की ओर तत्वों की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। इस प्रकार, अंतिम ज्ञात तत्व लेड में +2 अवस्था प्रधान होती है। सैद्धांतिक परिकलनों के आधार पर प्रागुक्ति की गई है कि

उपचयनावस्था में परिवर्तनशीलता का यह क्रम अति भारी सजातीय तत्वों में भी परिलक्षित होगा तथा एका-थैलियम में +1 एवं एका-लेड में +2 अवस्था प्रधान होगी। वास्तव में इन अवस्थाओं के लिये उपचयन विभवों की भी प्रागुक्ति की जा चुकी है, जो इस प्रकार है—

$113 \rightarrow 113^{+} + e^{-}$ $\quad E^{0} = -0.6V$

$114 \rightarrow 114^{2+} + 2e^{-}$ $\quad E^{0} = -0.8V$
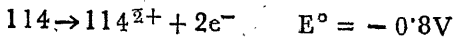
115 से 118 तक के तत्वों में नये इलेक्ट्रॉन 7p कक्षकों में जाते रहेंगे तथा उनके गुण मोटे तौर पर अपनों से हल्के सजातीय तत्वों (Bi – Rn) के समान होंगे; केवल इनमें निम्नतर उपचयनावस्था के प्रति आग्रह बढ़ जायेगा। वास्तव में प्रागुक्ति तो यह है कि तत्व 115 (एका-बिस्मथ) प्रधानतः केवल एक संयोजक ही होगा। यद्यपि +3 उपचयनावस्था की भी थोड़ी संभावना होगी। स्मरणीय है कि इतनी निम्न उपचयनावस्थां (+1) इसके किसी भी सजातीय में नहीं पाई जाती। इस दृष्टि से इस तत्व द्वारा अनूठे रासायनिक आचरण की आशा की जा सकती है। तत्व 119 एवं 120, पुनः क्षार तत्व तथा क्षारीय मृदा तत्व होंगे। जिनमें क्रमशः एक एवं दो इलेक्ट्रॉन 8D कक्षक में उपस्थित होंगे। इन सभी तत्वों के अनेक गुणों, जैसे आयनन विभवों, उपचयन विभवों, आयनिक त्रिज्या, सहसंयोजक त्रिज्या, धात्विक त्रिज्या, इलेक्ट्रान बंधुता, क्रिस्टल-संरचना, गलनांक तथा क्वथनांक आदि की प्रागुक्ति की जा चुकी है तथा उनका पूर्ण संकलन, साहित्य में उपलब्ध है।

तत्व 121, ऐक्टिनियम का सजातीय होना चाहिए। तब क्या हम आशा कर सकते हैं तत्व 122 से एक नयी आंतर संक्रमण तत्व-श्रेणी की रचना प्रारम्भ होगी? होना तो ऐसा ही चाहिये। सीबोर्ग तथा रूसी वैज्ञानिक गोल्डैन्सकी (Goldanskii) का तो निश्चित मत है कि न केवल यह श्रेणी ही विरचित होगी, बल्कि यह लैन्थेनाइड अथवा ऐक्टिनाइड श्रेणी की अपेक्षा अधिक लंबी होगी। सीबोर्ग ने तो इस श्रेणी का नामकरण भी कर दिया है—अति ऐक्टिनाइड अथवा सुपर ऐक्टिनाइड। श्रेणी में तत्वों की कुल संख्या चौदह न होकर 32 होगी (Z = 122 – 153)। तत्वों की संख्या में इस वृद्धि का कारण भी अत्यंत रोचक है। इस श्रेणी में इलेक्ट्रॉन न केवल 6f बल्कि एक सर्वथा नयी उपकक्षा 5g में भी भरे जायेंगे। 5g में अधिकतम 18 इलेक्ट्रॉन स्थान पा सकते हैं। 6f एवं 5g में ऊर्जा-अंतर इतना कम होगा कि वे लगभग साथ-साथ ही भरे जायेंगे। यही नहीं तत्व 121 में कोई आवश्यक नहीं कि नया इलेक्ट्रॉन (ऐक्टिनियम की भाँति) 7d में जाय; एक मत यह है कि यह 7d में न जा कर 8p में जायेगा। वास्तव में 121 से आगे के तत्वों में भी 8p में इलेक्ट्रॉन हो सकते हैं। 121 से 125 तक के तत्वों के संभावित इलेक्ट्रॉन विन्यास सारणी 1 में संकलित हैं :—

सारणी-1

Z = 121 – 125 तक के तत्वों के संभावित इलेक्ट्रॉन विन्यास

परमाणु क्रमांक	विन्यास
121	$7s^2\ 7p^6\ 8s^2\ 8p^1$ अथवा
	$7s^2\ 7p^6\ 7d^1\ 8s^2$
122	$7s^2\ 7p^6\ 7d^1\ 8s^2\ 8p^1$
123	$6f^1\ 7s^2\ 7p^6\ 7d^1\ 8s^1\ 8p^1$
124	$6f\ 7s^2\ 7p^6\ 7d^0\ 8s^2\ 8p^1$
125	$5g^1\ 6f^3\ 7s^2\ 7d^0\ 8s^2\ 8p^1$

ऐक्टिनाइडों में 6d का अकेला इलेक्ट्रॉन 5f में अकसर स्थानांतरित हो जाता है। 121 से 125 तक के तत्वों में भी समान प्रकार की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होगी। बल्कि 125 से आगे के अति-ऐक्टिनाइडों में तो यह स्थानांतरण अपनी लपेट में तीन उपकक्षाओं, 7d, 6f एवं 5f, को ले सकता है 125 से आगे के तत्वों में 8p इलेक्ट्रॉन की स्थिति क्या होगी—यह अभी स्पष्ट नहीं है। इन्हीं सब बातों के आधार पर यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि अति ऐक्टिनाइड तत्व

कई उपचयनावस्थायें प्रदर्शित करेंगे। परंतु आशा है + 3 अवस्था ही प्रतिनिधि अवस्था होगी।

संश्लेषण का प्रयत्न

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कुछ अति भारी तत्वों के प्रकृति में उपस्थित होने की संभावनायें व्यक्त की गई हैं—यद्यपि प्रकृति में उनकी खोज के सारे प्रयत्न असफल रहे हैं। चंद्रलोक से लाई गई चट्टानों के नमूनों में भी इनकी उपस्थिति के कोई निश्चित संकेत नहीं मिले। फिर भी इस संबंध में रूसी वैज्ञानिक फ्लेरोफ एवं सहयोगियों द्वारा किया गया कार्य उल्लेखनीय है। सोवियत रूस की दुबना प्रयोगशाला में कार्य करते हुये उन्हें लेड के कुछ नमूनों में स्वत:—विखंडन के कुछ चिह्न मिले हैं, जो एका—लेड (Z = 114) की उपस्थिति के कारण हो सकते हैं।

ऐसा लगता है कि कृत्रिम रूप से इन तत्वों के निर्माण के प्रयत्न अधिक फलदायी हो सकते हैं। सोचा जा सकता है कि ज्ञात अधिकतम भारी तत्वों पर यदि सामान्य प्रक्षेप्य आयनों द्वारा बमबारी की जाय तो अति भारी तत्व प्राप्त हो सकते हैं। पर ऐसा संभव नहीं है। कारण यह है कि अधिकतम भारी तत्व स्वयं बहुत न्यून मात्रा में ही उपलब्ध होते हैं, फिर वे केवल कुछ पलों के लिये ही स्थायी होते हैं तथा बमबारी द्वारा वे तुरंत विखंडित भी हो जाते हैं। यदि थोड़ी मात्रा में अति भारी तत्व बने भी तो भी वे तत्व 105 के पड़ोसी ही होंगे, जो कि स्वयं बहुत अस्थायी हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि स्थायी अति भारी तत्वों के निर्माण का एक ही रास्ता है—लक्ष्य न्यूक्लियसों की उर्जावान भारी आयन-प्रक्षेप्यों द्वारा बमबारी प्रक्षेप्यों के रूप में 48Ce, 76Ge, 86Kr, एवं आदि 50 Ti आयन तथा लक्ष्य के रूप में 232 Th व 238 U आदि उपयुक्त समझे जा रहे हैं। इनकी अभिक्रियाओं से कि प्रकार अति भारी तत्वों का उत्पादन हो सकता है—यह निम्नलिखित दो प्रस्तावित उदाहरणों से स्पष्ट है—

(i) $^{76}_{32}\text{Ga} + ^{232}_{90}\text{Th} \rightarrow ^{301}_{120} + ^{4}_{2}\text{He} + 3\,^{1}_{0}\text{n}$

(ii) $^{48}_{20}\text{Ca} + ^{244}_{94}\text{Pu} \rightarrow ^{288}_{114} + 4\,^{1}_{0}\text{n}$
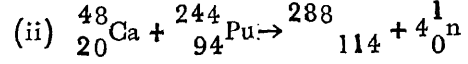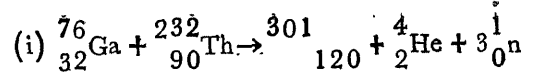
इस प्रकार प्राप्त होने वाले भारी उत्पाद, क्रमश: एकाधिक α – कण उत्सर्जन के पश्चात् अधिक स्थायी आइसोटोपों में परिवर्तित हो सकते हैं।

भारी आयन अभिक्रियाओं के संबंध में कुछ विकट कठिनाइयाँ भी हैं, जिनकी चर्चा समीचीन होगी। पहली कठिनाई है भारी प्रक्षेप्य आयनों के पर्याप्त त्वरण की। कुछ समय पहले तक प्राप्त त्वरित्रों में यह संभव नही था। परंतु दुबना (रूस), ओरसे (फ्रांस, तथा बर्कले (अमेरिका) की प्रयोगशालाओं में निर्मित नितांत आधुनिक त्वरित्र अब इस कार्य में सक्षम हैं। पश्चिमी जर्मनी में भी एक ऐसे त्वरित्र का निर्माण कार्य शीघ्रता से चल रहा है। इन त्वरित्रों को एक नया नाम सुपर हिलैक (Superhilac i.e, super heavy-ion linear accelerator), दिया गया है।

दूसरी कठिनाई यह है कि अकसर प्राप्त होने वाले उत्पाद में न्यूट्रॉनों की संख्या पर्याप्त नहीं होती। फलस्वरूप उत्पाद अत्यंत अस्थायी होते हैं। उनका अति शीघ्र रेडियो ऐक्टिव विघटन हो जाता है। स्पष्ट है कि न्यूट्रॉन बहुल प्रक्षेप्यों का तथा लक्ष्यों का प्रयोग ही सफलता दिला सकता है। इस दृष्टि से इनका चयन बहुत सावधानी की अपेक्षा रखता है। ऊपर जिन लक्ष्य तथा प्रक्षेप्य स्पीशीजों का नाम दिया गया है, वे न्यूट्रॉन-बहुल समझे गये हैं।

तीसरी कठिनाई यह है कि बमबारी के फलस्वरूप बनने वाले यौगिक—न्यूक्लियस में ऊर्जा इतनी अधिक होगी कि माया अंको द्वारा प्राप्त स्थायित्व (closed shell effect) भी डगमगा सकता है। यद्यपि वर्जित कणों अथवा न्यूट्रॉनों के निष्कासन द्वारा कुछ उत्पाद न्यूक्लियस स्थायित्व प्राप्त कर सकते हैं—पर अधिकतर का तो विखंडन ही हो जायेगा। अतएव उत्पाद भारी तत्व यदि बने भी तो उसकी मात्रा सूक्ष्म ही होगी। अभी

[शेष पृष्ठ 13 पर

परमाणु तथा परमाणु ऊर्जा

डा० शरद चन्द्र चतुर्वेदी

"कल्पना कीजिये कि एक लड़की के सम्मुख एक पात्र में बहुत से परमाणु रखे हैं और वह उन परमाणुओं से अपने लिये एक पच्चीस इंच लम्बी माला तैयार करना चाहती है। यदि वह ऐसा करे तो कार्य पूरा होने में कम से कम 200 वर्ष लगेंगे" यह है परमाणु का सूक्ष्मता के विषय में एक वैज्ञानिक की सारगर्भित कल्पना।

इन सूक्ष्म परमाणुओं के विषय में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि परमाणु किसी तत्व के उस सूक्ष्मतम कण को कहते हैं, जो स्वतंत्र अवस्था में नहीं रह सकता, परन्तु रासायनिक क्रिया में भाग लेता है। 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में परमाणु के विषय में यह धारणा गलत सिद्ध हो गई, क्योंकि वैज्ञानिकों ने अत्याधिक प्रयत्न करके परमाणु को विभाजित कर दिया और साथ ही इस क्रिया के फलस्वरूप मानव जाति को एक ऐसी अपरिमित शक्ति दी जिसने हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र उद्योग, व्यवसाय, यातायात, घरेलू जीवन तथा चिकित्सा में क्रांतिकारी परिवर्त्तन किये हैं। कदाचित् परमाणु शक्ति की खोज मानव विकास की दृष्टि से उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी अतीत के मानव द्वारा अग्नि उत्पन्न करने की घटना।

हमारे पूर्वज परमाणु के इस रूप से अनभिज्ञ नहीं थे। महर्षि कणाद ने बताया था कि प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे कणों से बना है। ग्रीक दार्शनिक एनेक्जोगोरस का भी कथन था कि प्रत्येक पदार्थ छोटे-छोटे कणों में विभाजित हो सकता है। अरस्तू ने सोना धातु के विषय में कल्पना करते हुए कहा था कि सोना इस धातु के छोटे-छोटे कणों का समूह मात्र है। ल्यूकिपोस का कहना था कि पदार्थ असंख्य अभिभाज्य कणों से बना है और यह कण अत्यंत सूक्ष्म होने के कारण दिखलाई नहीं पड़ते तथा ये सदैव शून्य में घूमते रहते हैं। एक अन्य ग्रीक दार्शनिक डेमोक्राइटस ने परमाणुओं के बारे में कहा था कि इनका अपना आकार व आयतन भी होता है तथा इनमें भार भी होता है। ये कड़े होते हैं, परन्तु इनमें रंग, स्वाद व गंध नहीं होती। एसक्लिपेडस ने भी कहीं अपने विचारों की अभिव्यक्ति में परमाणुओं के झुंड का उपयोग किया है, परन्तु सम्भवतः इनका अभिप्राय अणु से था।

इन उपर्युक्त विभिन्न मतों का लोगों ने कोई विशेष महत्व नहीं समझा क्योंकि ये अभिव्यक्तियाँ किन्हीं निश्चित प्रयोगों पर आधारित नहीं थीं।

सत्रहवीं शताब्दी में गेसेन्डी ने परमाणु की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और लगभग उसी काल में राबर्ट बायल ने बताया कि पदार्थ अभिभाज्य लघु कणों का बना है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन ने भी इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए कहा कि पदार्थ के ये लघु कण एक दूसरे को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। सन् 1808 ई० में डाल्टन ने परमाणु के सम्बन्ध में अपने अत्यंत महत्वपूर्ण विचार प्रकट किये।

डाल्टन के परमाणुवाद के सिद्धांत प्रयोगों द्वारा सिद्ध किये जा चुके थे, अतः वैज्ञानिक क्षेत्र में उनका विशेष महत्व रहा।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक जे० जे० टामसन ने एक अत्यंत रोचक प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया कि परमाणु में ऋण आवेशमय कुछ कण होते हैं। उन्होंने कांच की एक नली ली जिसमें दोनों ओर दो इलेक्ट्रोड एक कैथोड़ तथा दूसरा एनोड थे। इस नली के ऊपरी धरातल पर छोटी सी एक और नली इस प्रकार लगी थी कि

उससे एक निर्वात पम्प सम्बन्धित किया जा सके। टामसन ने निर्वात पम्प द्वारा नली के भीतर की सारी हवा निकाल ली और कोई एक गैस अत्यंत कम दाव (लगभग) 0·01 मि०मी० पर भर दी। दोनों इलेक्ट्रोडों को एक तार द्वारा प्रेरण कुंडली से सम्बन्धित किया। कुछ समय बाद टामसन ने देखा कि बहुत सी प्रकाश किरणें असीम वेग से ऋण ध्रुव से धन ध्रुव की ओर जा रही हैं। उन्होंने जब इस नली को एक चुम्बकीय क्षेत्र में स्थापित किया तो देखा कि कुछ किरणें नीचे की ओर झुक जाती हैं। विद्युत् क्षेत्र में नली को स्थापित करने पर भी यही परिणाम निकला। इसकी विद्युतदर्शी द्वारा परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि इनमें ऋणावेश है। इस निरीक्षण से यह निष्कर्ष निकाला गया कि परमाणु में कुछ ऋणावेशमय कण होते हैं। इन कणों को एलेक्ट्रान की संज्ञा दी गई।

सन् 1886 में गोल्डस्टीन ने अपना मत व्यक्त किया कि एलेक्ट्रान को आबद्ध करने के लिये धन आवेशयुक्त कण भी परमाणु में अवश्य होने चाहिये। इसके लिये उन्होंने टामसन का ही प्रयोग दोहराया। पहले तो उन्हें कैथोड से एनोड की ओर जाती हुई कैथोड किरण दिखाई पड़ीं, परन्तु कुछ ही समय बाद उन्होंने एनोड की ओर से बहुत सी किरणें कैथोड की ओर जाती हुई देखीं। जब उन्होंने नली को चुम्बकीय क्षेत्र में रखा तो कुछ किरणें ऊपर की ओर हट गईं और इन किरणों की परीक्षा करने पर यह ज्ञात हुआ कि ये धनावेशमय हैं। अतः इससे यह सिद्ध हुआ कि परमाणु में धनावेशमय कण होते हैं। इन कणों को प्रोटान तथा इन प्रकाश किरणों को एनोड किरणों की संज्ञा दी गई। प्रयोग द्वारा इन प्रोटॉनों का भार निकालने पर ज्ञात हुआ कि यह लगभग उस गैस के अणु भार के बराबर होता है, जो उस नली में भरी गई थी। इससे यह निष्कर्ष निकला कि परमाणु का भार मुख्यतः प्रोटान्स के भार के कारण होता है।

सन् 1911 में इंगलैन्ड के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक लार्ड रदरफोर्ड (Rutherford) ने एक बहुत ही रोचक व महत्वपूर्ण प्रयोग किया। उन्होंने शीशे के एक बक्स में रेडियम धातु रखी, जिसमें एक छिद्र था ताकि किरण सीधी रेखा में जायें। इस छिद्र के सामने उन्होंने एक स्वर्ण-पत्र रख दिया जिसकी मोटाई एक इंच के लाखवें भाग से भी कम थी, अर्थात् यह मोटाई लगभग 2000 परमाणुओं की सम्मिलित मोटाई के बराबर थी। इस स्वर्ण पत्र के पीछे उन्होंने एक प्रतिदीप्तिमान पट्ट रख दिया। अब उन्होंने इस छिद्र पर से आवरण हटा दिया और अल्फा किरणों को पट पर पड़ने दिया। प्रतिदीप्तिमान पट्ट के पीछे अणुवीक्षण यंत्र लगाकर अध्ययन करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि 2000 अल्फा किरणों में से एक अल्फा किरण स्वर्ण पट्ट से टकरा कर लौट गई। उन्होंने सोचा कि उस स्थान पर अवश्य ही कोई धन विद्युत् कण होगा क्योंकि समान ध्रुव होने पर ही प्रतिकर्षण सम्भव है। अतः परमाणु के केन्द्र में प्रोटान का रहना निश्चित रूप से ज्ञात हो गया। इस प्रयोग के आधार पर उन्होंने परमाणु की रचना के सम्बन्ध में कहा कि :—

"प्रत्येक परमाणु के भीतरी ओर प्रोटान होते हैं और उनके चारों ओर इलेक्ट्रॉन चक्कर लगाया करते हैं।"

यह बात उन्होंने इस निष्कर्ष पर कही कि यदि इलेक्ट्रॉन स्थिर रहते तो विपरीत विद्युत् से आवेशित होने के कारण प्रोटान उनको अपनी ओर खींचते, फलतः परमाणुओं का रहना ही असम्भव हो जाता। यदि यह मान लिया जाय कि इलेक्ट्रॉन प्रोटान के चारों ओर तेजी से घूम रहे हैं तो विपरीत विद्युत् होने के कारण जितनी आकर्षण शक्ति उत्पन्न होगी उसे साधने के लिये घूमते इलेक्टॉन से अपकेन्द्रित बल उत्पन्न होगा और परमाणु का विद्यमान रह सकना सम्भव हो जायगा।

सन् 1913 में नील्स बोर ने सोचा कि रदरफोर्ड का कहना तो ठीक है, परन्तु इलेक्ट्रॉन को घूमने के लिए शक्ति कहाँ से प्राप्त होगी ? यदि यह मान लिया जाय कि यह धीरे-धीरे अपने में से शक्ति व्यय करता है तो इसका पथ प्रोटान के समीप शीघ्र ही आ जायेगा और परमाणु नष्ट हो जायेगा, परन्तु ऐसा होता नहीं

है। उसने सोच-विचार कर यह निष्कर्ष निकाला कि धनात्मक नाभिक के चारों ओर इलेक्ट्रॉन अपनी क्वाण्टम शक्ति के अनुसार निर्दिष्ट कक्षा पर प्रदक्षिणा करते हैं। यदि इस समय इनमें से विकिरण होने लगे तो इलेक्ट्रॉन में से शक्ति निकलने लगेगी जो क्वण्टमों में होगी। इस प्रकार यदि मान लिया जाय कि एक इलेक्ट्रॉन जो तीसरे कक्षा में घूम रहा है (E_1) के बराबर शक्ति रखता है और इस समय यदि इसमें से शक्ति का क्षय होने लगे तो वह इलेक्ट्रॉन अपनी शक्ति से निम्न स्तर वाले कक्षा पर आ जायगा। जहां उसकी शक्ति (E_1) अथवा (E_2) हो जायेगी। उदाहरण के लिए यदि कोई इलेक्ट्रॉन (E_2) कक्षा में घूम रहा है और शक्ति विकिरण होने के कारण वह (E_1) पर आ जाता है तो (E_2) − (E_1) विकिरण की आवृत्ति के बराबर समानुपाती होगी जैसा कि निम्न समीकरण से स्पष्ट है :—

$E_2 - E_1 = h\upsilon$ जहां h प्लैंक का नियतांक, और υ विकिरण आवृत्ति है। सन् 1932 में चैडविक ने परमाणु की नाभिक में एक अन्य कण की खोज की जिसकी संहति लगभग प्रोटान के बराबर होती है। इस कण को न्यूट्रॉन की संज्ञा दी गई। इन्हीं न्यूट्रान की कमी या अधिकता के कारण एक ही तत्व भिन्न-भिन्न परमाणु भारों में पाया जाता है और इन्हें समस्थानिक कहते हैं।

यूरेनियम तत्व के कई समस्थानिक हैं इनमें 235 परमाणु के भार के समस्थानिक को यदि एक न्यूट्रॉन से प्रहारित किया जाय तो यूरेनियम समस्थानिक क्रिपटान व बेरियम के परमाणुओं में विभाजित हो जाता है और साथ ही कुछ और न्यूट्रॉन निकल आते हैं, ये न्यूट्रॉन फिर U-235 के परमाणुओं में टक्कर मारते हैं और इस प्रकार एक प्रक्रिया शृंखला आरंभ हो जाती है। इस क्रिया में कुछ संहति का क्षय होता है और असीम शक्ति उत्पन्न होती है। इस क्रिया को विखंडन अथवा निघटन कहते हैं। इस क्रिया से उत्पन्न शक्ति के सम्बन्ध में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टीन ने अपने विचार प्रगट किये' जो निम्न सिद्धांत द्वारा स्पष्ट है :—

$$E = mc^2$$

जबकि E = उत्पन्न शक्ति (ऊर्जा)
m = क्षय हुई संहति (ग्रामों में)
c = प्रकाश का वेग (से. मी. प्रति सेकेन्ड में अर्थात् 3,0000000000 से. मी. प्रति सेकेन्ड)

इससे हम सरलता से अनुमान लगा सकते हैं कि परमाणु के विघटन से कितनी शक्ति (ऊर्जा) उत्पन्न होगी।

इस उत्पन्न शक्ति के वैज्ञानिकों ने मानव कल्याण के लिये अनेक उपयोग निकाले हैं।

1. विद्युत् उत्पादन में : परमाणु शक्ति से विद्युत् प्राप्त करने के लिये रिऐक्टर्स (Reactors) बनाये गये हैं इन रिऐक्टरों में एक भट्टी सी होती है, जिसमें U-235 समस्थानिक या थोरियम का एक समस्थानिक प्रयोग में लाया जाता है। विघटन के फलस्वरूप ताप उत्पन्न होता है और इस ताप से कुण्डली में भरे पानी की वाष्प बनती हैं, जो टरबाइन्स को क्रियान्वित कर देती है, जिसके फलस्वरूप उससे सम्बन्धित डायनेमो भी चलने लगता है और विद्युत् उत्पन्न होती है।

2. चिकित्सा क्षेत्र में : वस्तुतः परमाणु शक्ति ने चिकित्सा क्षेत्र में क्रांति ला दी है। अब ऐसे-ऐसे रोगों का उपचार संभव हो गया है जिनको असाध्य समझा जाता था। यह उपचार रेडियो सक्रिय तत्वों से संभव हुआ है। ये रेडियो सक्रिय तत्व परमाणु भट्ठी में डालकर बनाये जाते हैं। मनुष्य की गवेषणा शक्ति को आगे बढ़ाने में रेडियो सक्रिय आइसोटोपों का आविष्कार सूक्ष्मदर्शक यंत्र के आविष्कार के बाद सबसे महान आविष्कार कहा जा सकता है।

कैंसर जैसे जटिल तथा भयंकर रोग के निदान और चिकित्सा के लिये परमाणु शक्ति ने नवीन मार्ग प्रशस्त किया है। रेडियो स्वर्ण, रेडियो आयोडीन तथा रेडियो कोबाल्ट ने कैंसर के कोषों को नष्ट करने में अपनी प्रभाव शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत किया है। ऐसे नये उपाय खोजे गये हैं जिससे कैंसर की रसौलियों को शरीर के स्वस्थ भाग को हानि पहुँचाये बिना नष्ट किया जा

सकता है। इसके लिये ऐसी व्यवस्था की गयी है कि चिकित्सा यंत्र के साथ-साथ रोगी भी घूमता है। इसमें से एक यंत्र 5 करोड़ वोल्ट शक्ति के एलेक्ट्रानों की गोलियों को कैंसर पर मारता है। एक और यंत्र बनाया गया है जिसमें रेडियो सक्रिय कोबाल्ट प्रयुक्त किया गया है।

लोगों को कभी-कभी रक्त की भयंकर बीमारी पालीसिथीमिया बिस हो जाती है। इस बीमारी में रक्त के लाल कोष तीव्र गति से बढ़ने लगते हैं। अब इस रोग की चिकित्सा रेडियो सक्रिय फास्फोरस से की जाती है। इसी तरह हृदय के एक रोग 'एंजायना पैक्टोरिस' के रोगियों को ठीक करने के लिये रेडियो सक्रिय आयोडीन का उपयोग किया जाता है।

शल्य चिकित्सा में भी अमेरिका के सर्जनों को रेडियो सक्रिय पदार्थों से काफी सहायता मिली है। कल्पना कीजिये कि मोटर दुर्घटना में एक व्यक्ति की टांग में सख्त चोट आई है। घुटने के नीचे चोट लगी है किन्तु आशंका की जाती है कि सम्भवतः घुटने के उपर जंघे तक रक्त में विष फैल गया है अतः आहत व्यक्ति के प्राण बचाने के लिये टांग काटना आवश्यक प्रतीत हुआ। अब डाक्टर 'रक्त का विष घुटनों से उपर है या नहीं' इस की जांच के लिये रेडियो सक्रिय नमक के घोल को सूई द्वारा उस व्यक्ति की भुजा में प्रवेश कराके 2·3 मिनट बाद घुटने के पास 'गीगर काउन्टर' लायेगा। जिसमें तुरन्त 'क्लिक क्लिक' की आवाज होगी जिससे डाक्टर को विश्वास हो जायेगा कि घुटने तक रक्त के प्रवाह में कोई दोष नहीं है। अतः आपरेशन घुटने के नीचे करना ठीक होगा।

3. **कृषि क्षेत्र में :** जिस तरह रेडियो सक्रिय तत्वों से चिकित्सा क्षेत्र में क्रांति उत्पन्न हो गयी है उसी प्रकार कृषि के क्षेत्र में भी इनसे अनेक लाभ पहुँचे हैं। इनका प्रयोग कृषि उत्पादन बढ़ाने तथा अच्छी किस्म का उत्पादन करने में किया जा रहा है। खाद्यान्नों के संरक्षण व संग्रह में भी ये बहुमूल्य सिद्ध हुये हैं।

4. **पौधों की बीमारियों में :** पौधों में भी मनुष्य की तरह विभिन्न प्रकार की बीमारियां होती हैं। कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिकों ने पता लगाया था कि मिट्टी में एक तत्व बोरन की कमी के कारण सेवों के अंदर भूरे दाग हो जाते हैं। तम्बाकू में चितेरी और डंठल गलने के रोग इस बोरन की कमी के कारण होते हैं। इसीलिये बोरन का प्रयोग मिट्टी में किया जाता है। लेकिन एक बात का ध्यान रखना पड़ता है कि यह तत्व अधिक मात्रा में न मिलने पाये नहीं तो लाभ के बजाय हानि होती है।

फसलों को सुधारने की दशा में एक बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग अमेरिका के कृषि विभाग के डा० ई० आर० सीयर्स ने किया है वे गेहूँ के पौधे को, उन्हें लगने वाले घुन (लीफ रस्ट) से बचाने के लिये अनेक वर्षों से प्रयोग कर रहे थे। डा० सीयर्स ने यह जानना चाहा, कि क्या कोई ऐसा पौधा है जिसमें घुन न लगता हो। उन्हें यह देखकर बहुत खुशी हुई कि भूमध्यसागर के कुछ तटवर्ती प्रदेशों में पायी जाने वाली एक विशेष घास को घुन नहीं लगता। डा० सीयर्स इसी घास के गुण गेहूँ में पैदा करना चाहते थे इसके लिये उन्होंने इस घास की और गेहूँ की एक मिली जुली सन्तति वर्णसंकर सन्तति पैदा की। उन वर्णसंकर पौधों को घुन नहीं लगता था परन्तु उनसे गेहूँ के दाने बहुत कम निकलते थे।

अब डा० सीयर्स ने इन पौधों पर परमाणु किरणों (रेडियो एक्टिव पदार्थों से निकलने वाली किरणों) का प्रयोग करने का निश्चय किया। उन्होंने वर्णसंकर पौधों पर एक्स-किरणों की बौछार की। एक्स किरणों की बौछार के बाद इन पौधों का गेहूँ के सामान्य पौधों से एक बार फिर 'संयोग' कराया गया, गेहूँ की जो नयी नस्ल उत्पन्न हुई उसकी उपज भी अच्छी थी, और उस फसल से प्राप्त दानों को घुन भी नहीं लगता था। इस प्रकार डा० सीयर्स ने प्रति वर्ष करोड़ों रुपयों का नुकसान करने वाले गेहूँ के इस रोग पर विजय प्राप्त की और परमाणु किरणों की उपयोगिता का परिचय दिया।

5. **उद्योग में :** उद्योगों में भी परमाणु शक्ति मानव की विभिन्न प्रकार से सेवा कर रही है। मिट्टी के तेल

[शेष पृष्ठ 24 पर

परमाणु ऊर्जा–सृष्टि अथवा विनाश की ओर

—शुकदेव प्रसाद

[जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल फ़ंड एवं राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान परिषद नई दिल्ली तथा शिक्षा विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा स्वराज्य भवन स्थित जवाहर बाल भवन, इलाहाबाद में आयोजित विज्ञान प्रदर्शनी 1974 (6 नवम्बर–12 नवम्बर) के अवसर पर हुई 'वैज्ञानिक अनुसंधान प्रतियोगिता' में पुरस्कृत लेख 'ऊर्जा संकट और उसके समाधान हेतु कुछ नए चरण' का एक अंश--सम्पादक]

परमाणु ऊर्जा की सृष्टि अथवा विनष्टकारी प्रकृति की ओर ध्यान देने से पहले परमाणु ऊर्जा के उत्पादन एवं उसको नियंत्रित करने के पहलुओं पर विचार करना उचित होगा।

परमाणु क्या है ?

परमाणु की परिकल्पना बहुत पुरानी है। सर्वप्रथम भारतीय ऋषि महर्षि कणाद ने 'वैशेषिक दर्शन' में परमाणु की परिकल्पना निम्न प्रकार की :—

''परमाणुः परमसूक्ष्म आवश्ववः स्वयं निरवयवों अतीन्द्रयोनित्यः'' अर्थात् 'परमाणु' पदार्थ का सूक्ष्मतम, अविभाज्य, आरम्भिक, अनश्वरे एवं शाश्वत अवयव हैं। परमाणु मिलकर अणु बनाते और अणुओं से मिलकर पदार्थ की रचना होती है। इसकी भी व्याख्या इस ग्रंथ में मिलती है। महर्षि कणाद का यह सिद्धांत जान डाल्टन के आधुनिक परमाणुवाद से मिलता है। जान डाल्टन के अनुसार परमाणु पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्मकण है जो कि अविभाज्य है। लेकिन वै० अर्नेस्ट रदरफर्ड के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि परमाणु और भी सूक्ष्मकणों से मिलकर बना है। आज यह सर्वविदित है कि परमाणु अत्यन्त छोटे कणों–प्रोटॉन, न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, पोजीट्रॉन, मेसान आदि से बना है।

परमाणु की रचना सौरमण्डल की भाँति है जैसे सूर्य के कणों के चारों ओर अन्य ग्रह कक्षाओं में घूमते हैं उसी प्रकार परमाणु के नाभिक के चारों ओर निश्चित (orbits) कक्षाओं में इलेक्टॉन चक्कर काटते हैं। परमाणु के नाभिक में प्रोटॉन और न्यूट्रॉन होते हैं। प्रोटॉन इकाई द्रव्यमान वाला एवं इकाई धन आवेश वाला कण है। न्यूट्रॉन इकाई द्रव्यमान वाले शून्य आविषित कण हैं। इलेक्ट्रॉन इकाई कण आवेश वाले कण हैं। इनका द्रव्यमान नगण्य (लगभग हाइड्रोजन परमाणु के के नाभिक के भार का 1/1836 वाँ भाग) होता है। पूर्णरूप से परमाणु उदासीन होता है। अतः केन्द्रक में स्थित धन आवेशों का मान ऋण आवेशों के बराबर होता है।

परमाणु ऊर्जा का रहस्य :—

किसी परमाणु की नाभिकीय संरचना को जब बदला जाता है - चाहे इन्हें विखंडित किया जाता हो या दो नाभिकों को जोड़ा जाता हो—तो भिन्न तत्त्वों के नाभिक जन्म लेते हैं। साथ ही इस प्रक्रिया में ऊर्जा का उत्पादन होता है। नाभिक के द्रव्यमान का आंशिक रूप में क्षय होने से ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। वैज्ञानिक अलवर्ट आइन्टीन ने अपने 'ऊर्जा-द्रव्य सम्बंध' द्वारा बताया कि द्रव्य एवं ऊर्जा का आपस में परिवर्तन हो सकता है जो निम्न सूत्र से स्पष्ट है :—

$E = mc^2$ (जहां E = ऊर्जा, m = द्रव्यमान और c प्रकाशवेग) इसी समीकरण के अनुसार यूरेनियम के एक परमाणु के विखंडन में 3×10^8 इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा निर्मुक्त होती है। अतः परमाणु द्वारा इस प्रकार उत्सर्जित ऊर्जा का परमाणु ऊर्जा कहते हैं। लेकिन इसे नाभिकीय ऊर्जा कहना उचित होगा क्योंकि यह ऊर्जा नाभिक के विखंडन से प्राप्त होती है। वैसे व्यवहारिक रूप में इसे परमाणु ऊर्जा ही कहते हैं।

परमाणु ऊर्जा उत्पादन के सिद्धान्त—

(1) **नाभिकीय विखंडन**—1938 में दो जर्मन वैज्ञानिकों आटोहान तथा स्ट्रासमान ने ज्ञात किया कि जब यूरेनियम पर तीव्रगामी न्यूट्रॉनों की बमबारी की जाती है तो यह दो खण्डों में विभाजित हो जाता है कुछ न्यूट्रॉन भी निकलते हैं और साथ ही ऊर्जा भी निर्मुक्त होती है। इस घटना का नाम उन्होंने नाभिकीय विखण्डन रखा।

इस घटना में न्यूट्रानों की बौछार से यूरेनियम परमाणु का नाभिक बेरियम तथा क्रिप्टन में परिवर्तित हो जाता है एवं ऊर्जा का उत्सर्जन होता है। यूरेनियम नाभिक का द्रव्यमान विखंडन में प्राप्त खण्डों के द्रव्यमानों से अधिक होता है। विखण्डन से पहले और अन्त में द्रव्यमानों का जो अन्तर रहता है वह ऊर्जा में रूपान्तरित हो जाता है। विखंडन प्रक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ—यदि हम यूरेनियम के विखण्डन की क्रिया में निर्मुक्त ऊर्जा की गणना करे तो ज्ञात होता है कि यूरेनियम के एक नाभिक के विखण्डन से लगभग 200×10^9 इलेक्ट्रॉन वोल्ट ऊर्जा निर्मुक्त होती है।

नाभिकीय विखंडन में शृंखला प्रतिक्रिया—

यूरेनियम—235 पर मन्दगामी न्यूट्रॉनों की बमबारी करने पर यह नाभिक दो खंडों में (Ba, Kr) विभक्त हो जाता है। इस प्रक्रिया में ऊर्जा के उत्सर्जन के साथ ही 3 न्यूट्रॉन उत्सर्जित होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों के पाने पर ये न्यूट्रान अन्य नाभिकों से टकराकर उनका विखंडन कर सकते हैं। इस प्रकार नाभिकों के उत्तरोत्तर विखंडन से एक शृंखला बन जाती है जिससे ऊर्जा के मान में वृद्धि होती जाती है। शृंखला प्रतिक्रिया दो प्रकार की होती है—

(अ) **नियंत्रित**—यह प्रतिक्रिया कृत्रिम उपायों द्वारा नियंत्रित की जा सकती है। यह क्रिया धीरे-धीरे होती है तथा इसमें उत्पन्न ऊर्जा लाभदायक कार्यों के लिए प्रयुक्त की जाती है। परमाणु भट्ठियों में यही क्रिया होती है।

(ब) **अनियंत्रित**—यह प्रतिक्रिया नियंत्रित नहीं होती। इसलिए यह क्रिया इतनी तीव्र गति से होती है कि इसका अनुमान लगाना कठिन हो जाता है और कुछ ही क्षणों में उत्पन्न अत्यधिक ऊर्जा से प्रचण्ड विस्फोट होता है। परमाणु बम इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

(2) **नाभिकीय संलग्न**—जब दो हल्के नाभिक संयुक्त होते हैं तो एक भारी नाभिक बनता है जिसका द्रव्यमान हल्के नाभिकों के सम्मिलित द्रव्यमान से थोड़ा कम होता है। द्रव्यमानों का यह अन्तर ऊर्जा में परिवर्तित हो जाता है। हल्के नाभिकों के इस प्रकार संयुक्त होने की क्रिया को 'नाभिकीय संलग्न' कहते हैं अथवा 'ताप नाभिकीय प्रतिक्रिया कहते हैं। सूर्य में यही क्रिया होती है एवं हाइड्रोजन बम इसी सिद्धान्त पर आधारित है।

परमाणु ऊर्जा : सृजन की ओर

परमाणु ऊर्जा हमारे लिए अत्यंत उपयोगी है। इसका उपयोग निम्न क्षेत्रों में करते हैं—

● **विद्युत उत्पादन**—नाभिकीय विखंडन की 'नियंत्रित शृंखला प्रतिक्रिया' द्वारा नाभिकीय रियेक्टर या परमाणु भट्ठी में ऊर्जा उत्पन्न की जाती है। नाभिकीय विखंडन से प्राप्त गतिज ऊर्जा को तापीय ऊर्जा में बदलते हैं। इसकी मदद से पानी को भाप बनाते हैं जिससे टरबाइन जेनरेटर

चलाकर विद्युत पैदा की जाती है। परमाणु ऊर्जा का सबसे बड़ा उपयोग विद्युत उत्पादन ही है।

नाभिकीय रियेक्टर में ईंधन के रुप में यूरेनियम तथा प्लूटोनियम प्रयुक्त होते हैं। प्लूटोनियम मानव निर्मित पदार्थ है। जब यूरेनियम पर न्यूट्रॉनों की बौछार की जाती है तो वह पहले नेप्चूनियम और बाद में प्लूटोनियम में बदल जाता है। यूरेनियम के मुख्य 3 समस्थानिक हैं यूरेनियम—238, यूरेनियम—235 और यूरेनियम—233। प्राकृतिक यूरेनियम में इनमें से प्रत्येक की मात्रा क्रमशः 99·3%, 0·7% एवं ·008% होती है।

परमाणु भट्ठी में पहले से ही उपस्थित कुछ न्यूट्रान U-235 का विखंडन शुरू करते हैं। जिससे अत्यन्त तीव्रगामी न्यूट्रान निकलते हैं जो कि रियेक्टर रखे हुए मदंको (Moderators) जैसे ग्रेफाइट, भारी पानी, आदि से टकराकर मन्दगति प्राप्त करते हैं और ये न्यूट्रॉन दूसरे U-235 का विखंडन आरम्भ करते हैं। इस प्रकार शृंखला प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। आवश्यकता पड़ने पर परमाणु की दीवाल में लगी कैडमियम की छड़ों को अन्दर खिसकाकर प्रतिक्रिया को एकदम रोक देते हैं। इस प्रकार प्राप्त ऊर्जा से विद्युत उत्पादन किया जाता है एवं अन्य विविध उपयोग हैं।

● **रेडियो समस्थानिकों का निर्माण**—यह अनेक तत्वों के रेडियो समस्थानिक बनाने के काम आता है; जो चिकित्सा कृषि, जीव विज्ञान और अन्य वैज्ञानिक खोजों में प्रयुक्त होता है।

● **अणु परिवहन**—इनमें विद्युत का उत्पादन किया जाता है, जिसका उपयोग रेले, मोटर, हवाई जहाज और कारखानों को चलाने में किया जाता है।

● **चिकित्सा**—कैंसर की चिकित्सा में रेडियो धर्मी समस्थानिकों का व्यापक उपयोग है। मानव शरीर के विभिन्न अंगों के विकारों का पता लगाने के लिए उनसे प्रचुर सहायता मिलती है। इनकी सहायता से एक्स-रे चित्रण द्वारा रोगों का निदान किया जाता है।

● **प्लास्टिक बहुलीकरण**—अणु शक्ति की मदद से प्लास्टिक एवं अन्य अनेक पदार्थ विकिरण के द्वारा अपनी विशेषताएँ बदल देते हैं। कभी-कभी यह परिवर्तन लाभदायक होते हैं।

● **खाद्य एवं कृषि**—कमरे में तापमान और विभिन्न खाद्यानों के संग्रह पर विकिरण का प्रभाव बहुत अनुकूल दृष्टिगोचर हुआ है। विकिरण से उद्भाषित होने पर उनके संग्रह जीवन में पर्याप्त वृद्धि देखी गयी है। कृषि में रेडियोधर्मी समस्थानिकों का अनुचिन्हकों के रूप में उपयोग करके पौधों द्वारा उर्वरक को ग्रहण करने का अध्ययन किया गया है। फसलों की उन्नत किस्मों के आविष्कार के लिए भी आणविक विकिरण द्वारा रूपान्तरण का प्रयोग किया गया है।

परमाणु ऊर्जा : संहार की ओर

परमाणु ऊर्जा हमारे लिए उपयोगी होने के साथ अत्यंत घातक भी है। बमों का निर्माण मानवता के लिए अभिशाप है। मुख्यतः बम दो प्रकार के होते हैं।

परमाणु बम (Atom Bomb)—इसे नाभिकीय बम भी कहा जा सकता है। इसमें नाभिकीय विखंडन की अनियंत्रित प्रतिक्रिया होती है। परमाणु बम के लिए U-235 ही प्रयुक्त होता है क्यों यह मन्दगति वाले न्यूट्रॉनों से विखंडित हो जाता है। विखंडनीय पदार्थ कभी टुकड़ों में रखा जाता है तथा सबको यंत्रिक युक्ति द्वारा मिला देते हैं। मिलते ही उनका संयुक्त द्रव्यमान 'क्रान्तिक द्रव्यमान' से अधिक हो जाता है। और अत्यधिक ऊर्जा के साथ भयंकर विस्फोट होता है।

हाइड्रोजन बम—यह नाभिकीय संलंन की प्रक्रिया पर आधारित है तथा दलानुपम से 1000 गुना अधिक शक्तिशाली होता है। इसमें ड्यूटेरियम तथा ट्राइटियम का उच्च ताप पर संलग्न होता है; तो इस अभिक्रिया में अत्यधिक ऊर्जा निर्मुक्त होती है। यह क्रिया बहुत अधिक ताप पर होती है जैसे सूर्य में। अतः नाभिकीय संलग्न अभिक्रिया को प्रारम्भ करने के लिए खोल के भीतर एक परमाणु बम रख दिया जाता है। जब न्यूट्रानों की सहायता से

परमाणु बम में विस्फोट होता है, तो क्षण भर के लिए बहुत उच्च ताप एवं दाब उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार संलग्न प्रक्रिया के लिए काफी ताप उत्पन्न हो जाता है। फलतः अत्यधिक ऊर्जा उत्सर्जन के साथ हीलियम नाभिक बनता है।

अणु अस्त्रों के बीच कराहती मानवता

परमाणु ऊर्जा अत्यन्त उपयोगी होने के साथ अत्यन्त संहारकारी भी हैं। इसकी कल्पना तो आप इसी से कर सकते हैं कि यदि पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों पर एक साथ 7 हाइड्रोजन बम डाल दिए जाएँ तो पृथ्वी नष्ट हो जायगी।

सबसे पहले अमेरिका ने जब जापान के हीरोशिमा तथा नागासाकी नगरों पर बम डाला तो लाखों व्यक्ति मृत्यु की गोद में सो गये एवं कितने विकलांग हो गये। आज भी वहाँ ऐसे बच्चे पैदा होते हैं। परमाणु ऊर्जा के इस घातक प्रभाव को देखकर वैज्ञानिक आइन्सटीन ने कहा था कि—"मानव परमाणु-शक्ति के योग्य नहीं है।"

यह तो हमारे ऊपर निर्भर है कि हम इस ऊर्जा का कैसा उपयोग करते हैं। लेकिन अधिकतर विनाशकारी उपयोग ही हुए हैं। परमाणु बमों की अपेक्षा हाइड्रोजन बम तो और घातक होता है।

बमों की संहारकारी प्रवृत्ति

बिस्फोट के बाद रेडियो सक्रिय किरणे निकलती हैं जो पानी या वायु की लहरों द्वारा वायुमंडल में काफी दूर तक फैल जाती हैं। इसका प्रभाव मानव एवं अन्य जीवों के लिए घातक होता है। इन किरणों के प्रभाव से उत्परिवर्तन हो जाता है जो अक्सर क्षतिजनक ही होता है तथा आने वाली संतानें विकृत चेहरों वाली एवं तमाम असमान्यताएँ युक्त होती हैं।

बिस्फोट स्थल तथा उसके आस-पास कुछ दूर तक की चीजें जलकर ध्वस्त हो जाती हैं। मार्च 95 में प्रशांत महासागर में एक ऊष्मा नाभिकीय विखंडन किया गया जिससे एक द्वीप छोटे-छोटे टुकड़े बन कर उड़ गया।

हाइड्रोजन बम वायुमंडल में आक्सीजन, नाइट्रोजन, एवं अधिक जलवाष्प युक्त नाइट्रिक अम्ल का निर्माण करता है। जिसके कारण चमड़ी एवं आँखें जलने लगती हैं। मतली आने लगती है। इस प्रक्रिया में निर्मुक्त हुए न्यूट्रानों के कारण वायुमंडलीय नाइट्रोजन शीघ्रता से कार्बन—14 में बदल जाते हैं, जो हजारों वर्षों तक नुकसान करते रहते हैं। पौधों द्वारा ये कार्बन—14 अवशोषित होकर जानवरों एवं मनुष्यों के ऊतकों में पहुँचते हैं। यह रेडियो सक्रियता बम की भयानक शक्ति से भी अधिक खतरनाक होती है जो मानव जीवन को त्रस्त कर देती है।

परमाणु बिस्फोट से रेडियो सक्रियता में वृद्धि होती है। सन् 1956 में विज्ञान की राष्ट्रीय अकादमी की कमेटी ने बताया कि सन् 2000 तक ये प्रभावित पौधे, इतनी क्रिप्टन—5 गैस निकाल देंगे कि यह मात्रा उत्तरी गोलार्ध के मध्य अंश को पूर्ण रूप से रेडियो सक्रिय कर देगी। आयोडीन—131 से भी रेडियो सक्रियता में वृद्धि हुई है। यदि विखंडनों की दर बढ़ती रही तो सन् 2000 तक स्ट्रॉशियम—90 का प्रभाव सारी धरती पर फैल जाएगा और शायद मानव सभ्यता का इस धरा से विनाश ही हो जाय।

स्ट्राशियम—90 और कार्बन—14 अत्यधिक भयंकर हैं। इनके शरीर में अधिक सान्द्रता से कैंसर और ल्यूकोमिया जैसी भयानक बीमारी हो जाती है और अन्त में मृत्यु।

इसकी विनाशकारी प्रवृत्ति को देख कर 1958 में वैज्ञानिक लीनस पालिंग ने राष्ट्रसंघ के महामन्त्री से परमाणु विस्फोटकों का रोक लगाने की अपील की जिसमें उनके अतिरिक्त 9235 वैज्ञानिकों के हस्ताक्षर थे।

स्पष्ट है कि परमाणु शक्ति मानव के लिए वरदान होने के साथ ही अभिशाप भी है। इसका उपयोग तो संरचनात्मक कार्यों के लिए तो कम ही हुआ है।

विनाशकारी कार्यों में ही अधिक उपयोग हुआ है। जापान पर गिराए जाने वाले बम के समय से ही मानवता इस अणु अस्त्र युग से चिल्ला-चिल्ला कर कह

रही है—"ऐ सभ्य दुनिया वालों ! यदि तुम्हारी दशा यही रही तो वह दिन दूर नहीं जब मैं तुम्हारा साया छोड़कर सदा-सदा के लिए यहाँ से चली जाऊँगी और इस धरा पर जो आज हरी-भरी एवं प्राकृतिक दृश्यों से भरी पड़ी है, रह जायेंगी केवल तुम्हारी लाशें।"

आज प्रत्येक राष्ट्र जिस प्रकार से अणु अस्त्र बनाने में लगा हुआ है उसकी गति को देख कर मालूम होता है कि दरसल मानवता की चुनौती एकदम ठीक ही है। यदि अणु अस्त्रों के परीक्षण और विस्फोट का यही दौर कुछ दिनों तक और जारी रहा तो मानवता की इस चुनौती को देखने के लिए शायद इस धरा पर मानव सभ्यता रह ही न जाय।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

● ●

[पृष्ठ 4 का शेषांश]

तक इस दिशा में किये गये प्रयत्न इसीलिये सफल नहीं हो सके हैं क्योंकि विश्वास किया जाता है कि निर्मित होने के तुरंत पश्चात् भारी तत्व न्यूक्लियस विखंडित हो गया। दो उदाहरण पर्याप्त होंगे। ओगेनेसियन तथा सहयोगियों ने 92 को $136_{54}Xe$ से बम्बारी किया। उत्पाद के रूप में जो कुछ प्राप्त हुआ—विश्वास किया जाता है कि वे 374_{146} भारी तत्व के विखंडनिक उत्पाद ही हैं। इसी प्रकार, सिकलैंड 10 ने ^{238}U पर $^{40}_{18}Ar$ से बमबारी की और निष्कर्ष निकाला कि परिणाम स्वरूप 278_{110} भारी तत्व के विखंडनिक उत्पाद प्राप्त हुये। स्वियाटेकी द्वारा प्रस्तावित अभिक्रिया के फलस्वरूप बनने वाले भारी तत्व उत्पाद के न विखंडित होने की प्रायिकता भी 1:10,000 है। स्पष्ट है कि निर्मित होने वाले भारी तत्व उत्पाद की मात्रा सूक्ष्म ही होगी।

वर्णन की गई कठिनाइयों का ध्यान न करते हुये, इस समय, रूस, फ्रांस तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में न्यूक्लीय वैज्ञानिक अति भारी तत्वों के निर्माण के प्रयत्न में जुटे हुये हैं। भिन्न भिन्न प्रकार के प्रक्षेप्य—लक्ष्य संयोजनों पर कार्य हो रहा है। आशा है अगले वर्ष से जर्मनी (डार्नस्टार) में भी कार्य प्रारंभ हो जायेगा। यह सत्य है कि अभी तक सफलता नहीं मिली है तथा प्रकृति में भी उनकी खोज के प्रयत्न निष्फल रहे हैं, परंतु वैज्ञानिक हतोत्साहित नहीं हैं। उन्हें पूरी आशा है कि वे शीघ्र ही इन तत्वों के निर्माण में सफल होंगे और आवर्त सारणी के विस्तार के सीबोर्ग के स्वप्न को सत्य सिद्ध करेंगे।

डा० ओमप्रभात अग्रवाल
रसायन विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र (हरयाणा)

● ●

हमारे देश के पक्षी—1

विमलेन्दु वर्मा

बच्चों, हमारे देश में पाये जाने वाले कुछ पक्षियों के नाम इस प्रकार हैं : मुर्गा, मुर्गी, कठफोडवा, धनेश, चील, गिद्ध, सारस, घोमरा, करीच बगुला, हंस, पीलक, कोयल, कौआ, तोता मोर, गौरैया, मैना, कबूतर, फाख्ता, बत्तख, उल्लू भीमराज, बया, बाज, किलकिला तथा काला तीतर आदि हैं। इनमें से तो कुछ ऐसे साधारण पक्षी हैं जो बस्तियों में प्रायः दिखाई पड़ते हैं और कुछ ऐसे हैं जिन्हें किसी विशेष, समय, ऋतु तथा स्थान पर ही देखा जा सकता है। आज हमें तुम्हें कुछ पक्षियों के बारे में बतायेंगे।

धनेश—यह बहुत बड़ा किन्तु भव्य पक्षी है। इसकी चोंच पीले रंग की और टेढ़ी होती है। चोंच पर ढाल की तरह कुछ मांस सा चढ़ा होता है उसका रंग भी पीला होता है। इसकी पीठ काली व गर्दन सफेद होती है। बाहर के पंख सफेद और उनके सिरे काले होते हैं बाकी सब पंख काले होते हैं। धनेश का आहार है फल, चूहे, छिपकलियां और छोटे-छोटे पक्षी।

घोमरा—इसकी कई किस्में होती हैं। यह पक्षी समुद्र तट पर पाया जाता है और उसे ही घोमरा कहते हैं। गर्मी में इसके सिर का रंग भूरा होता है और सर्दी में सलेटो सफेद। पीठ का रंग सलेटी तथा शरीर के निचले भाग का रंग सफेद होता है। यह पक्षी सितम्बर में भारत में पहुँचता है और अप्रैल के अन्त तक वापस चल जाता है। घोमरा का भोजन है समुद्र में बहती हुई गंदी चीजें और जो भी मिल जाय। यह समुद्र में तैरते-तैरते आराम कर लेता है।

किलकिला—यह छोटा सा रंग विरंगा पक्षी है। यह नीले हरे रंग का होता है और उसके शरीर के नीचे के भाग का रंग गहरा लाल होता है। उसकी लम्बी नुकीली चोंच मछली में ढेंका व कीड़े मकोड़ों को पकड़ने में सहायक होती है। घोंसला बनाने के लिए यह नदी के किनारे एक लम्बी सुरंग बनाता है। अन्त में सुरंग चौड़ी होकर कमरे की आकार की हो जाती है। मादा इसमें जाकर 5-7 अंडे देती है मार्च से जून तक अंडे देती है।

भीमराज—इसे भंग राज भी कहते हैं और यह बिल्कुल काला होता है। इसके माथे पर एक काला लच्छा होता है। इसकी पूंछ बहुत लम्बी होती है और दो भागों में कटी रहती है। पूँछ में केवल दो तार की तरह पतले पंख होते हैं जो सिरे पर फैल कर चौड़े हो जाते हैं। यह पहाड़ों के पास के जंगलों में रहते हैं। यह बड़े-बड़े झुण्डों में रहते हैं और शोर बहुत मचाते हैं। यह रात में उड़ने वाले कीड़े-मकोड़े खाता है। इसे फलों का रस भी अच्छा लगता है। मादा भीमराज मार्च से जून तक तीन या चार अंडे देती है।

कालातीतर—यह छोटा और मोटा पक्षी होता है जिसके पूँछ नहीं के बराबर होती है। इसका रंग काला होता है और उस पर सफेद रंग की धारियाँ व चित्तियाँ होती हैं। नर तीतर के गर्दन के आस-पास लाल भूरे रंग की पट्टी होता है और गालों पर सफेद रंग के धब्बे होते हैं। यह जमीन से अधिक ऊपर नहीं उड़ सकते। यह दीमक, अनाज, और पौधों की कोमल पत्तियाँ खाता है तीतर का घोंसला जमीन में गढ्ढे की तरह होता है जिसकी में तह घास होती है। तीतर की और कई किस्में होती है। (क्रमशः)

खटमल एक परिचय

ललिता बंसल

आवास तथा रहन-सहन—तीन जोड़ी टांगों वाला यह नन्हा सा जन्तु कितना महत्वपूर्ण है यह सोचने का प्रयास किसी ने नहीं किया होगा। भूरे अथवा गहरे लाल रंग का होने के कारण यह अपने आपको दीवारों के छोटे-छोटे गड्ढों में, फर्नीचर की दरारों में तथा बिस्तरों की सिलवटों में अपने आपको छिपा लेता है। फिर भी मनुष्य की नजरों से बच नहीं पाता, तथा मृत्यु का ग्रास बन जाता है। भोजन की तलाश में ये इधर-उधर घूमते दिखाई दे जाते हैं। वैसे सदा अपने परिवार के साथ रहते हैं। साधारणतया ये छोटे बड़े सभी एक साथ समूहों में उपरोक्त वर्णित स्थानों पर रहते हैं।

शारीरिक रचना एवं जैविक क्रियाएँ—ये अपृष्ठ वंशी जन्तु हैं इसलिए इनमें रीढ की हड्डी नहीं होती है। अन्य प्रकार की अस्थियाँ भी अनुपस्थित होती हैं। इनका शरीर मुलायम होता है तथा कई छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित रहता है। आगे के खंड पर जो सिर कहलाता है दो संयुक्त नेत्र होते हैं। इनके चारों ओर एक झिल्ली चढ़ी रहती है जो नेत्रों की बाहरी वातावरण से सुरक्षा करती है। ये चारों दिशाओं में देख सकते हैं। दूसरे, तीसरे व चतुर्थ खण्ड के दोनों ओर तीन जोड़ी संधियुक्त पैर होते हैं। सबसे पीछे के खण्ड में मलद्वार होता है।

अपने भोजन के लिए ये आगे के खण्ड में उपस्थित मुखांगों का उपयोग करते हैं। ये मुखांग चूसने के लिए उपयुक्त होते हैं। इनका भोजन केवल रक्त ही है।

श्वसन क्रिया, श्वसन नलिकाओं द्वारा होती हैं। ये श्वसन नलिकायें छोटे-छोटे छिद्रों द्वारा बाहर की ओर खुलती हैं। ऑक्सीजन इन्हीं छिद्रों द्वारा अन्दर श्वसन नलिकाओं में आ जाती है। तथा कार्बन डाई ऑक्साइड पुनः इसी रास्ते से बाहर निकल जाती है।

पाचन क्रिया के अंग अविकसित होते हैं। क्योंकि ये परजीवी हैं।

एक स्थान से दूसरे स्थान तक ये अपनी छोटी-छोटी टाँगों द्वारा चल लेते हैं।

साधारणतया ये रात्रि चर होते हैं इसलिए भोजन के लिये रात को बाहर निकलते हैं।

प्रजनन एवं उत्सर्जन—इनकी प्रजनन क्षमता काफी अधिक होती है। अपने आवास पर ही ये समूह में अंडे दे देते हैं। नर खटमल का शरीर मादा की अपेक्षा लम्बा व पतला होता है। मादा का शरीर चौड़ा व अंडाकार होता है। अंडे सफेद रंग के तथा लम्बी आकृति वाले होते हैं। इनके सिरे नुकीले होते हैं। इन अंडों से कुछ दिनों के बाद लार्वा निकलता है। जो कुछ दिनों के बाद पूर्ण विकसित खटमल बन जाता है।

अपचित भोजन काले मल के रूप में बाहर निकलता है जो काले चिन्ह छोड़ देता है।

महत्व—इनके द्वारा टाइफस, बुखार, लेप्रोसी, प्लेग आदि रोग फैलते हैं। भारतीय उष्ण कटिबंधीय खटमल (Cimexe-rotundus) काला अजार के कीटाणुओं का वाहक है। इसलिये वैसे तो ये एक प्रकार से शत्रु ही हैं। काटने पर ये मनुष्य की नींद में बाधा डालते हैं। साथ ही उपरोक्त रोग भी फैलाते हैं। इनको नष्ट करने के लिए (टिक-ट्वेन्टी) नामक औषधि को मिट्टी के तेल में मिलाकर छिड़कना चाहिये।

●●

रिडक्टीओ एँड ॲब्सर्डम
(Reductio ad absurdum)

रमाकान्त श्रामेटा

'सिद्ध करने' का कार्य मनुष्य अपने दैनिक जीवन में कहीं न कहीं करता ही रहता है। भाषण में अपनी बात सिद्ध करना, वाद-विवाद में अपना पक्ष सिद्ध करना, किसी को समझाते समय अपनी विचारधारा सिद्ध करना, किसी वस्तु पर अपना अधिकार सिद्ध करना आदि इस बात के उदाहरण हैं। किन्तु इन सभी कार्यों में आवश्यक नहीं कि मनुष्य पूर्णरूप से तर्क पर ही आश्रित रहे। 'सिद्ध करने' की जो विधियाँ पूर्णरूप से तर्क पर आधारित हैं केवल वे ही, सही अर्थों में 'सिद्ध करने' की श्रेणी में ली जा सकती है।

मोटे तौर पर सिद्ध करना दो प्रकार का होता है एक वह जिसमें हमारा संपूर्ण ध्यान 'क्या सिद्ध करना है' पर ही रहे। दूसरा वह जिसमें 'क्या सिद्ध करना है' के साथ-साथ 'किससे सिद्ध करना है' पर भी हमारा ध्यान रहे। शिक्षण संस्थानों के कक्षा में बहुधा जो सिद्ध किया जाता है वह उपरोक्त दूसरी प्रकार का है। इस दूसरी विधि को भी तर्कशास्त्रियों ने अनेक भागों में विभक्त कर रखा है। जिनमें प्रमुख विधियाँ ग्यारह प्रकार की हैं। 'रिडक्टीओ एँड ॲब्सर्डम (Reductio ad absurdum) भी एक इसी प्रकार की विधि है यह वह विधि है जो सबसे पुरानी विधियों में से एक है। लगभग 2300 वर्षों से मनुष्य इसका उपयोग करता आ रहा है।

तर्क सिद्धान्त के अनुसार (1) कोई कथन सत्य एवं असत्य दोनों नहीं हो सकता, (2) सत्य कथन से असत्य कथन का प्रतिपादन नहीं हो सकता। चूँकि सत्य से चलकर हम असत्य पर नहीं पहुँच सकते। अतः यदि हम तर्क शास्त्र के सिद्धान्तों का पूरा ध्यान रखते हुए चलें और किसी असत्य परिणाम पर पहुँचें तो हम यह निर्णय लेंगे कि जहाँ से हम चले थे वह एक असत्य बात थी। क्योंकि असत्य परिणाम, सर्वदा केवल असत्य से ही प्राप्त हो सकता है। बस, इसी सिद्धान्त का प्रयोग, हम 'रिडक्टीओ एँड ॲब्सर्डम' नामक 'सिद्ध करने' की विधि में, करते हैं।

अधिक स्पष्ट रूप से यह विधि इस प्रकार से समझाई जा सकती है। माना कि हमें कोई कथन या प्रमेय सिद्ध करना है। उस कथन या प्रमेय को इस समय 'S' नाम से पुकारेंगे। अब हमें यह सिद्ध करना है कि 'S' एक सत्य कथन है। इस बात को सिद्ध करने के लिए हम सबसे पहले यह मानकर चलेंगे 'माना कि 'S' एक सत्य कथन नहीं है' यानी 'माना कि 'S' एक असत्य कथन है' तदनंतर तर्कशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर हम आगे बढ़ेंगे। इस प्रकार चलते हुए यदि हमें कोई असत्य परिणाम प्राप्त हो जाय, तो हम इसी स्थान पर रुक जायेंगे और कहेंगे कि 'रिडक्टीओ एँड ॲब्सर्डम, के अनुसार हमारी प्रारंभिक मान्यता असत्य है। चूँकि हमारी प्रारंभिक मान्यता 'S एक असत्य कथन है' भी। अतः इसके असत्य होने का अर्थ हुआ कि 'S एक असत्य कथन है' ऐसी बात नहीं है। अर्थात् 'S एक सत्य कथन है' यह सिद्ध हो गया। बस, यही तो हमें सिद्ध करना था। इस उपरोक्त विधि से जब भी कोई बात सिद्ध की जायगी। जब कहा जायगा कि उसने 'रिडक्टीओ एँड ॲब्सर्डम' विधि अपनाई है।

नीचे एक उदाहरण दिया हुआ है जिसमें इस विधि का प्रयोग किया गया है।

सिद्ध कीजिये कि 27 एक विषम संख्या है।

[शेषांश पृष्ठ 18 पर

अनेक मानसिक रोगों का प्रभावशाली उपचार सम्भव

संकलित

चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा एवं प्रसिद्ध पुरस्कार—नोबेल पुरस्कार—प्राप्त करने के उपरान्त, वैज्ञानिक क्या करता है ?

उक्त प्रश्न का उत्तर देते हुए नोबेल पुरस्कार विजेता डा० जूलियस एक्सेलरोड ने कहा कि "वह अपने वैज्ञानिक शोधकार्य में पूरी लगन और एकाग्रता के साथ जुटा रहता है।"

डा० एक्सेलरोड के अनुसन्धान का मुख्य विषय मानव मस्तिष्क है। वह यह मालूम करना चाहते हैं कि मनुष्य का मस्तिष्क किस प्रकार काम करता है। जटिल और दुरूह अनुसन्धान कार्य की विषमता को कम करने के लिए वह बीच-बीच में अपने सहयोगियों से हँसी-मजाक करते रहते हैं।

डा० एक्सेलरोड का कहना है कि जब मैं अनुसंधान करता हूँ तो मैं ऐसी सरल विधि अपनाना चाहता हूँ जिस पर मैं नियन्त्रण रख सकूँ और स्थिति के अनुसार उसका प्रयोग कर सकूँ। मस्तिष्क की रचना बहुत ही जटिल है। इसमें लाखों करोड़ों नदियां होती हैं। इसलिए मैं किसी एक भाग को ले लेता हूँ—उदाहरण के लिए मस्तिष्क के अन्दर स्थित पिनियल ग्रन्थि-और यह मालूम करने की कोशिश करता हूँ कि इस ग्रन्थि के एक तन्तु कोष पर विभिन्न औषधियों की क्या प्रतिक्रिया होती है ? इस प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाओं को मापने के लिए हमने अत्यन्त संवेदनशील उपकरण तैयार किये हैं। किसी भी तन्तु की क्रिया का पता लगाने का यह भी एक तरीका है।'

उनके अनुसंधान का प्रमुख लक्ष्य मस्तिष्क के तन्तुओं पर विभिन्न रासायनिक पदार्थों की प्रतिक्रिया का अध्ययन करना है, अतएव उनके अनुसन्धान के फलस्वरूप उन भौतिक कारणों का पता लगाना सम्भव हो सकता है जिनके कारण लोगों को नशीले पदार्थों के सेवन तथा शराब पीने की लत पड़ जाती है। दूसरे शब्दों में, कारणों का पता लगने पर इस लत को छुड़ाना सम्भव हो सकता है तथा मनुष्य के आचरण और चित्तवृत्ति को परिवर्तित करने के तरीकों का विकास हो सकता है। उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित करने और ग्रन्थियों के विकारों को दूर करने में भी इससे सहायता मिलेगी।

वह विगत 15 वर्षों से मस्तिष्क सम्बन्धी रसायन-विज्ञान में शोध कर रहे हैं। वह 'यू एस नेशनल इन्स्टिट्यूट फौर मेण्टल हेल्थ' की क्लिनिकल सांइस लेबोरेटरी की औषधि-विज्ञान शाखा के प्रधान हैं। इसके पूर्व, उन्होंने 'नेशनल हार्ट इन्स्टिट्यूट' के लिए भी इसी प्रकार का अनुसंधान किया था। 'नेशनल हार्ट इन्स्टिट्यूट' भी 'यू एस नेशनल इन्स्टिट्यूट्स औव् हेल्थ' की ही एक शाखा है।

स्वीडन के सह-पुरस्कृत वैज्ञानिक, डा० उल्फ वान यूलर, ने यह प्रदर्शित किया कि 'नौर एड्रिनेलिन' एक रासायनिक संकेत है, जो कुछ स्नायुओं से निकलता है। उन्होंने दिखलाया कि यह सम्प्रेषक रसायन स्नायु के छोरों से उस समय जब वह स्थिर होती है, अत्यन्त अल्प मात्रा में, तथा उस समय जब वह 'फायर' करती है, अत्यन्त अधिक मात्रा में निस्सृत होता है।

यह निस्सरण किसी एक समय पर एक व्यूहाणु के रूप में, अथवा नियमित धारा के रूपमें नहीं, बल्कि सम्प्रेषक तत्व के व्यूहाणुओं के पुँज के रूप में होता है। जब तक कि स्नायु 'फायर' नहीं करती, तब तक एक समय कुछ ही पुंज निस्सृत होते हैं। जब स्नायु 'फायर'

करती है, तब अनेक पुंज निस्सृत होते हैं। डा० एक्सेलरोड ने दोनों स्थितियों के अन्तर की तुलना करते हुए कहा है कि यह प्रक्रिया वैसी ही है, जैसे किसी को एक समय एक या दो अंगूरों से मारा जाय अथवा एक साथ ही बहुत से अंगूरों से मारा जाय।

इन वैज्ञानिकों ने यह प्रदर्शित किया है कि यदि कोई व्यक्ति गहरी मानसिक विक्षिप्ति से पीड़ित हो, तो उसका कारण नौर एड्रिनेलिन की कमी हो सकती है। अतः विक्षिप्त-निरोधक औषधियां तैयार की गयी है, जो नौर एड्रिनेलिन को कम करने वाली प्रणाली को नियन्त्रित करती है और इस प्रकार विक्षिप्त या विषाद का निराकरण करने के लिए यह रसायन देर तक सक्रिय रह सकता है।

'नौर एड्रिनेलिन' की रासायनिक संरचना एड्रिनेलिन जैसी ही है। (एड्रिनेलिन को 'आपात्कालीन हारमोन' की संज्ञा दी गयी है, जिसे भयभीत होने, क्रोध करने या अतीव शारीरिक श्रम करने की स्थिति में मनुष्य का शरीर प्रचुर मात्रा में उत्प्रेरक तत्व के रूप में उत्पन्न करता है)।

नयी जानकारी से प्रेरित होकर बहुत से अन्य अनुसन्धानकर्ताओं ने ऐसे घोलों का परीक्षण किया है, जिनका प्रयोग मनुष्य की स्नायविक प्रणाली पर प्रभाव डालने के लिए किया जा सकता है। ये अनुसन्धानकर्ता के अन्तराबन्ध रोगियों का उपचार करने, स्नायु प्रणाली अथवा मनोस्थिति सम्बन्धी अन्य विकारों दूर करने, असामान्य रूप से उच्च रक्तचाप को कम करने तथा व्यवहार या मनोभावना को बदलने के लिए श्रेष्ठतर औषधियों की खोज कर रहे हैं।

इन अंतिम सम्भावनाओं के कारण कुछ प्रेक्षकों ने यह चिन्ता व्यक्त की है कि इतनी ऐतिहासिक महत्व की चिकित्सा-प्रतिभा का दुरुपयोग हो सकता है। इसके विपरीत, आशावादी प्रेक्षकों ने एक युग के आगमन की कल्पना की है, जब इन प्रगतियों से मादक द्रव्यों के प्रयोग और नशाखोरी पर विजय प्राप्त करने और कठोर अपराधी प्रवृत्तियों जैसे खतरनाक समाज-विरोधी व्यवहारों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलने लगेगी। ●●

[पृष्ठ 16 का शेषांश]

[विषम संख्या उसे कहते हैं जो समसंख्या नहीं हैं और समसंख्या उसे कहते हैं जो 2 से पूरी-पूरी विभाजित हो जाती है, यथा, 14, 20, 328 आदि समसंख्याएँ हैं।]

यद्यपि '27 **एक विषम संख्या है'** इस बात को यों भी सिद्ध किया जा सकता है—चूंकि 27 में 2 का भाग पूरा-पूरा नहीं जाता कारण कि भाग दें तो शेष '1' बचता है अतः यह एक समसंख्या नहीं है अर्थात् यह एक विषम संख्या है—किन्तु हम इसे 'रिडक्टीओ एँड अँब्सर्डम' की विधि से सिद्ध करेंगे।

हमें सिद्ध करना है '27 एक विषम संख्या है'

तो हम प्रारंभ में यह मानकर चलेंगे कि '27 एक विषम संख्या नहीं है' और निम्नांकित तर्क प्रस्तुत करेंगे।

प्रारंभिक मान्यता के अनुसार—

चूंकि 27 एक विषम संख्या नहीं है अतः 27 एक सम संख्या है।

चूंकि 27 एक सम संख्या है अतः 27 में 2 का भाग पूरा-पूरा जाता है।

स्पष्ट रूप से अंतिम वाक्यांश '27 में 2 का भाग पूरा-पूरा जाता है' एक असत्य कथन है। अतः 'रिडक्टीओ एँड अँब्सर्डम' के अनुसार हम यह निर्णय लेंगे कि प्रारंभिक कथन '27 **एक विषम संख्या है'** असत्य होगा। और इसके असत्य होने का अर्थ हुआ '27 एक विषम संख्या है' एक सत्य कथन है। इस प्रकार यह सिद्ध हो गया कि 27 एक विषम संख्या है।

रमाकान्त आमेटा
अध्यक्ष, गणित विभाग
एस० एम० बी० राजकीय महाविद्यालय
नाथ द्वारा (राजस्थान)
313301

●●

क्या आप जानते हैं

- बहुत से जानवर शीतकाल में एक विशेष ढंग से निद्रा ग्रस्त हो जाते हैं। यह शीतकालीन निद्रा मृत्यु तुल्य होती है। स्तनपायी प्राणी स्वस्थ अवस्था में 1 मिनट में 30 बार सांस लेता है और उत्तेजित होने पर 100 बार परन्तु शीतकालीन निद्रा के समय 5 मिनट में 1 बार सांस लेता है और उसकी नाड़ी 1 मिनट में 8 बार चलने के बजाय केवल 5 बार चलती है।

- विशेषज्ञों का मत है कि पिछले 2000 वर्षों में लगभग 106 स्तनपायी जीव विलुप्त हो गये हैं।

- पेन्गुइन में नर व मादा एक दूसरे से इतने मिलते जुलते हैं कि स्वयं चिड़ियों को एक दूसरे को पहचानना कठिन होता है। प्रणय के समय नर अपनी प्रेयसी के सामने कंकड़ भेंट स्वरूप पेश करता है। यदि वह मादा नहीं होती तो उस कंकड़ की ओर ध्यान नहीं देती।

- अब तक 1700 सच्चे मीटियोराइट सिद्ध हुये हैं।

- स्टिंग रे मछली 10-20 फीट चौड़ी होती है। यह पूंछ से शिकार को मारती है और इसकी मार बड़ी खतरनाक होती है। इसके दांत बहुत कमजोर होते हैं। इसका रंग लाल भूरा होता है और इसकी आयु 10-15 वर्ष होती है।

- ईगल रे मछली की नाक गाय की नाक जैसी होती है। यह पानी के भीतर उसी तरह क्रीड़ा करती है जैसे कि गरुड़ पक्षी आकाश में करता है इसीलिये इसे गरुड़ मछली भी कहते हैं।

- इलेक्ट्रिक रे मछली बहुत आलसी होती है। ज्यादा तैरना इसे पसन्द नहीं। इसलिये यह अधिक समय रेत या कीचड़ में सर गड़ाये पड़ी रहती है। यह मछली विद्युत पैदा कर सकती है जो 8 से 220 वोल्ट तक हो सकती है।

●●

भारतीय विज्ञान कांग्रेस के ७२वें अधिवेशन का उद्घाटन करते समय प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी ने वैज्ञानिकों से अपील की कि देश की प्रगति के लिये ऊर्जा के एकान्तर स्रोत की खोज करें। अन्तर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा समिति के महा-निदेशक डॉ० सिगवर्ड एकलुण्ड तथा परमाणु वैज्ञानिक डॉ० एडवर्ड टेलर के अनुसार परमाणु ऊर्जा ही अब एकमात्र ऐसा स्रोत है जिससे प्रगति सम्भव है। भारत द्वारा परमाणु परीक्षण किये जाने के पश्चात अब यह आशा करनी चाहिये कि देश की ऊर्जा की समस्या सुधर जायेगी।

नये आविष्कार

अस्पतालों के लिए अ-विद्युत् संवाहक एक्स-रे फ्लूरोस्कोप शैया

अस्पतालों के उन वार्डों में, जहाँ रोगियों को गहन परिचर्या की आवश्यकता होती है, प्रायः रोगी इतने बीमार या कमजोर होते हैं कि उन्हें एक्स-रे और फ्लूरोस्कोपी (दीप्तिवीक्षक-यंत्र) द्वारा परीक्षण के लिए शैया से हटाना कठिन होता है। किन्तु, अब अमेरिका में 9 डिंसन, न्यूजर्सी, की एक चिकित्सोपकरण बनाने वाली फर्म, कर्विट मेडिकल प्रोडक्ट्स, इन्क०, ने बाजार में विक्रय के लिए एक ऐसी एक्स-रे फ्लूरोस्कोप शैया प्रस्तुत की है, जिसका प्रयोग करने पर रोगी को परीक्षण के लिए अपने बिस्तरे से उठने की आवश्यकता नहीं होती।

'कर्विट रेडियोलूसेण्ट बेड' नामक यह शैया के उस भाग में, जहाँ रोगी सोता है, किसी तरह की किसी धातु का प्रयोग नहीं किया गया है। इसमें लेटे हुए रोगी के सम्पूर्ण शरीर का एक्स-रे किया जा सकता है, क्योंकि इसमें कोई ऐसी पट्टी, गियर, सिलिण्डर या स्प्रिंग नहीं होती, जिससे एक्स-रे और दीप्तिवीक्षण क्रियाओं में किसी तरह की बाधा पड़ सके। शैया पूर्ण रूप से द्रवचालित (हाइड्रोलिक) होती है। प्रणोदक के रूप में फर्म इसमें खनिज तेल का प्रयोग करती है, जो हर जगह आसानी से उपलब्ध हो जाता है। शैया के सिरों पर लगे सिलिण्डरों पर चेक बाल्व लगे होते हैं, जो रोगी या शैया को अकस्मात् गिरने से रोकते हैं। शैया के पायों पर इसके संचालन सम्बन्धी निर्देश छपे हैं। रोगियों या अस्पताल के कर्मचारियों को लीक करने वाली बिजली के संकटों से बचाने के उद्देश्य से शैया को अ-विद्युत् संवाहक बनाया गया है। इस पर नाइलोन-नाइलोन की पर्तें चढ़ी होती है, जो स्वयं अ-क्षरणशील होती है। पट्टियों, ब्रेक, फोम मैट्रेस, कवर आदि से सुसज्जित शैया का मूल्य लगभग 1,800 डालर है। फर्म द्वारा ये शैयाएँ अमेरिका के अस्पतालों को बेची जा रही हैं। कनाडा, हालैण्ड और सऊदी अरब को अब इनका निर्यात भी होने लगा है।

गैसोलिन माइलेज मीटर

अमेरिका में ही नहीं, बल्कि दुनिया भर में ऐसे नये उत्पाद अधिकाधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं जो उपभोक्ताओं की ऊर्जा की बचत करने में सहायता प्रदान करते है। इस प्रकार का एक उत्पाद एक गैसोलिन माइलेज मीटर है, जो इस बात का सही-सही और तत्काल माप कर देता है कि कोई भी पहिये वाला वाहन, चाहे वह किसी भी गति से दौड़ रहा हो, प्रति गैलन कितने मील या प्रति लिटर कितने किलोमीटर चला। यह मीटर गैसोलिन के उपयोग में जरूरत से ज्यादा हो रही वृद्धि का संकेत देकर इस बात का पता भी लगा देता है कि इंजिन के काम करने के ढंग में कौन सा विकार उत्पन्न हो गया है। यह मीटर गाड़ी में इंधन की खपत का माप करने के अतिरिक्त, यह भी प्रदर्शित करता है कि किस तरह गाड़ी चलाने से गैस की व्यर्थ बर्बादी होती है। इस तरह यह गाड़ी के चालक को वायु-प्रदूषण कम करने में सहायता प्रदान करता है।

यह यन्त्र वास्तव में एक प्रकार का संगणक है, जिसमें इंधन का बहाव मापने वाला एक फोटो इलेक्ट्रानिक फ्लो मीटर, दूरी की माप करने वाला इलेक्ट्रानिक डिस्टंस मीटर तथा एक गेज शामिल है। इसका निर्माण गोलेटा, कैलिफोर्निया, की फर्म स्पेसकाम, इन्क०, ने किया है, जो इंधन की खपत की माप करने वाले मीटर तथा अश्वशक्ति मीटर का भी निर्माण करती है।

कड़ी चट्टानें छेदने के लिए रोटरी ड्रिल

पेन्सिल्वेनिया की एक कम्पनी कड़ी चट्टानों में में सूराख करने के लिए रोटरी ड्रिल (वर्मा) का निर्यात

कर रही है। यह ड्रिल कुएं खोदने और खदानों में सूराख करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। इसका उपयोग निर्माण कार्यों में भी हो सकता है।

'माडेल टी-985-एच' पूरी तरह सचल, पूर्ण और आसानी से नियंत्रित ड्रिल है। इसका निर्माण कड़ी चट्टानों में बड़े और गहरे सूराख करने के उद्देश्य से हुआ है।

इसमें एक पम्प लगा है, जो धूल को दबाने के लिए सीधे वायुधारा में पानी और अन्य पदार्थ पहुँचा देता है। कण्ट्रोल कंसोल, जहाँ पर ड्रिलिंग का काम हो रहा होता है, वहीं पर ही स्थित होता है। अतएव अकेला आदमी ही ड्रिल को चलाने और नियन्त्रित करने के लिए पर्याप्त होता है। इस ड्रिल का निर्माण वेस्ट चेस्टर, पेन्सिलवैनिया, की फर्म, स्क्रैम इन्कारपोरेटेड, ने किया है।

कमरे की वायु को स्वच्छ करने वाला यन्त्र

वायु प्रदूषण की समस्या का सामना करने के लिए अमेरिका में एक नये फिल्टर का आविष्कार किया गया है। 'प्योर-एयर' नामक यह फिल्टर 0,5 माइक्रोन अथवा उससे बड़े किसी भी पदार्थ को 99 प्रतिशत तक दूर करने में सक्षम है। यह विषाणु, धुँआ और धुँध को भी सोख लेता है। बड़े पदार्थों को तो यह शत-प्रतिशत दूर कर देता है और वायु में मिश्रित सभी एनर्जी उत्पन्न करने वाले पदार्थों, जैसे धूल, रन्ध्र-धातुकण एवं कोषाणुओं को, सोख लेता है।

यह उपकरण 1,200 वर्गफुट क्षेत्रफल वाले आवास को लगभग एक घण्टे में एक बार स्वच्छ कर सकता है। आकर्षक डिजाइन के इस वहनशील उपकरण का कुल वजन 35 पौण्ड है।

इस उपकरण में 15 सेण्टीमीटर मोटाई वाले फिल्टर का प्रयोग किया गया है। अब तक विकसित सभी फिल्टरों की तुलना में यह एक सर्वाधिक श्रेष्ठ फिल्टर है। छिद्रमय कांच-रेशे से निर्मित इस फिल्टर का विकास मूलतः अमेरिकन एटेमिक इनर्जी कमिशन ने वायु में मिश्रित रेडियो सक्रियता के दोष को दूर करने के लिए किया था। इस फिल्टर को पुनः साफ करने की आवश्यकता नहीं है। निरंतर प्रयोग किये जाने की अवस्था में इसे वर्ष में केवल एक बार बदलना होता है।

'प्योर एयर' फिल्टर बिना आवाज किये काम करता है। इससे न तो किसी प्रकार की गूँज अथवा खड़खड़ होती है और न ही ओजोन गैस का निस्सरण होता है। इसका निर्माण न्यूयार्क की 'युनिवर्सल पेटेण्ट डेवेलपमेण्ट' नामक फर्म ने किया है।

शल्यक्रिया में सहायता शल्य-कवर

विश्व के बाजारों में आजकल नर्म सिलिकोन रबड़ से निर्मित ऐसे कवर प्राप्त हैं, जिन्हें शल्यक्रिया में काम आने वाले उपकरणों पर लगाये जाने से इन उपकरणों को हाथ में संभालना आसान होता है तथा इनके कारण रोगी को शल्यक्रिया में होने वाले घाव में भी कमी होती है।

'सर्ज-ई-पाज' नामक इन कवरों में पकड़ने के लिए गहरे दांते बने होते हैं। इन कवरों को अब सामान्यतः उन सभी प्रकार के उपकरणों में प्रयोग किया जा रहा है जो उदर एवं अन्य आन्तरिक अंगों की शल्यक्रिया में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु, इनका प्रयोग सभी प्रकार के शल्य-उपकरणों में हो सकता है।

विशेष परिस्थितियों में 'सर्ज-ई-पाज' कवरों का प्रयोग एक से अधिक बार भी किया जा सकता है।

यन्त्रों एवं उपकरणों के लिए एक नया स्निग्धकारी पदार्थ

अमेरिका में, एक ऐसे नये स्निग्धकारी पदार्थ का विकास किया गया है, जो अब तक के सभी चिकनाहट प्रदान करने वाले पदार्थों की तुलना में अधिक श्रेष्ठ है। वास्तव में, जैसा कि इसके निर्माताओं का विचार है, यह 'सुपर ल्यूब' आसानी से एक सिरे से दूसरे तक पहुँच जाता है, सफाई करता है, जंग से रक्षा करता है, इधर-उधर छिटकता नहीं है, नलियों के मुँह को करता है और विद्युतीय संस्पर्शी सिरों की सफाई करता है।

साथ ही, 'सुपर ल्यूब' एक अज्वलनशील पदार्थ है और यह न तो रिसता है और न ही यह जम्म होता

है। यह एक विषाक्तहीन तथा कपड़ों पर दाग न छोड़ने वाला पदार्थ है।

इस नये स्निग्धक का प्रयोग शक्तिशाली यान्त्रिक उपकरणों, जैसे न्यूमेटिक ग्राइण्डरों, स्टैपलरों, कृषि के उपकरणों एवं यन्त्रों में सरलता से होता है। यह बेरिंग, मोटर-वाहनों, वायुयानों, मोटर साइकिलों, जलपोतों और कार्यालय सम्बन्धी उपकरणों में उत्तमता से प्रयोग हो सकता है। मछली पकड़ने की चर्खियों, सिलाई-मशीनों, बन्दूक आदि हथियारों, लकड़ी चीरने के आरों, इत्यादि अन्य सभी प्रकार के ऐसे उपकरणों एवं यन्त्रों में इसका प्रयोग हो सकता है जिनकी सफाई तथा धूल आदि से रक्षा करना तथा तेल देने की आवश्यकता पड़ती है।

विस्फोट जनित ऊर्जा

पोटलैण्ड (ओरेगोन) के एक वैज्ञानिक ने ऊर्जा प्राप्ति की एक नवीन विधि विकसित की है, जिसे उसने 'एक्सप्लोटरन' की संज्ञा प्रदान की है। इस विधि में भूमिगत विस्फोट की कौंध से उपयोगी ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

वैज्ञानिक जैक डि मेण्ट का कहना है कि एक्सप्लोटरन विधि में 'स्वच्छ' आणविक प्रकाश का प्रयोग किया जाता है। इसकी कार्य विधि के अन्तर्गत किसी समतल सुरंग के एक सिरे पर विस्फोट किया जाता है। सुरंग में कुछ दूरी पर एक कोण पर एल्यूमिनियम की पन्नी से बना एक दर्पण लगा रहता है जो विस्फोट से उत्पन्न प्रकाश को सुरंग के रास्ते बाहर प्रक्षिप्त करता है। इस प्रकाश-ऊर्जा को विभिन्न कार्यों में प्रयोग किया जा सकता है।

श्री मेण्ट पिछले 10 वर्षों से उक्त प्रयोग का परीक्षण बेकार पड़ी खानों और प्रयोगशाला में कर रहे हैं।

बांधों, अणु-विद्युत् संयंत्रों के लिए भूकम्प टोहक-मापक-सचेतक यन्त्र

इस समय संसार भर में अनेक अणु-विद्युत् संयंत्रों, बांधो, ऊंचे भवनों तथा अन्य महत्वपूर्ण निर्माण-स्थलों पर भूकम्पन का पता लगाने और उसे अंकित करने वाली प्रणालियां प्रयुक्त हो रही है।

इसी प्रकार की एक प्रणाली या यन्त्र 'एस एमए-3, (स्ट्रांग मोशन एक्सलरेशन सिस्टम) है। इसमें दूरस्थ स्थानों पर होने वाले भूकम्पनों की टोह लेने वाली अनेक त्रि-धुरीय गति-टोहक इकाइयां लगी हुई है, जो एक तार द्वारा एक केन्द्रस्थित रिकार्डिंग एवं प्लेबैक उपकरण से सम्बद्ध है। भूकम्पनों की गतियों के समय आदि सम्बन्धी सूचनाएं टेप रिकार्डरों पर अंकित हो जाती है। जब तक कहीं भूकम्पन के संकेत नहीं मिलते, तब तक 'एस एम ए-3' निष्क्रिय बना रहता है।

इस यन्त्र का निर्माण अमेरिका में वर्कले हाइट्स, न्यूजर्सी, की फर्म किनेमेट्रिक्स, इन्क०, ने किया है। यह फर्म आजकल इस यन्त्र का निर्यात जर्मनी, फ्रांस और स्विट्जर लैण्ड को कर रही है।

वायु-प्रदूषण सम्बन्धी आंकड़े संग्रह करने वाला उपकरण

ऐसी सरकारों और उद्योगों के लिए जो वायु की किस्म या उसके प्रदूषण के विषय में चिन्तित है, बाजार में एक नये प्रकार का उपकरण उपलब्ध है, जो हवा की किस्म सम्बन्धी सूचनाएं अंकित करने वाले स्टेशनों से आंकड़े प्राप्त करके उन्हें संक्षिप्त रूप में व्यवस्थित करता है और उपयुक्त समय पर उनका विश्लेषण करके रिपोर्ट तैयार करने के लिए सभी सूचनाएं प्रस्तुत कर देता है।

इस उपकरण का नाम 'माडेल-700 ए-क्यू' है। यह हवा की किस्म सम्बन्धी सूचनाएं अंकित करने वाले स्टेशनों से संग्रहीत और सम्प्रेषित करने के लिए टेलीफोन लाइनों या रेडियो टेलिमेट्री का प्रयोग करता है। इसके निर्माताओं का कहना है कि इस उपकरण का निर्माण कड़ी और नर्म धातु के परीक्षित मोड्यूलो द्वारा हुआ है। यह विश्वसनीय उपकरण है, जिसके रखरखाव और मरम्मत में कोई कठिनाई नहीं होती है।

इसका निर्माण बोल्डर, कोलोराडो, की फर्म, बाल ब्रदर्स रिसर्च कारपोरेशन, ने किया है।

वहनीय आक्सीजन उपकरण

न्यूजर्सी की एक फर्म एक ऐसे वहनीय आक्सीजन उपकरण का निर्यात कर रही है, जो पिछले कई वर्षों से अमेरिका के बाजारों में अपनी विशेषताओं के कारण लोकप्रिय रहा है। हृदय और फेफड़े के रोगियों, प्रमुख नागरिकों, विमान और नौका मालिकों तथा म्युनिस्पल और संघीय एजेंसियों द्वारा इसका उपयोग होता आ रहा है।

इसका नाम 'सिलवर क्रास इमजेंशी आक्सीजन किट' है। पेटी सहित इसका बजन केवल 7 पौण्ड है। प्रत्येक प्रतकिट में 35 मिनट से अधिक की मात्रा में आक्सीजन होती है। इसमें एक वाल्व लगा है, जो हवा के निस्सरण को रोकने में सहायक होता है। इसमें ऐसे पुर्जे लगे हैं, जिनके फलस्वरूप उचित मात्रा में आक्सीजन का अबाध बहाव होता रहता है। यदि आक्सीजन का दबाव उचित सीमा से अधिक हो जाय, तो एक सेफ्टी वाल्व खुल जाता है। इसमें आक्सीजन की टंकी और मुखौटे के बीच आक्सीजन के अविच्छिन्न प्रवाह को कायम रखने के लिए नली लगी हुई है। इसमें श्वास की हवा को बाहर निकालने या भीतर खींचने के लिए भी अतिरिक्त उपादानों की व्यवस्था की गयी है। इसका निर्माण स्प्रिंगफील्ड, न्यूजर्सी, की फर्म प्रोग्रेसिव डायनामिकस, इन्क०, कर रही है।

जहाज पर केकड़े को शक्ति से जमा देने वाला उपकरण

फ्लोरिडा के इंजिनियरों ने एक ऐसा उपकरण तैयार किया है, जो समुद्र से पकड़े गये केकड़ों को जहाज पर शीत से जमा देता है। इस उपकरण का नाम 'सीफ्रीज' है। यह मछुओं द्वारा समुद्र से पकड़े गये केकड़ों में से प्रत्येक को शीत से जमा देने के साथ ही, उनके पूरे समूह को भी शून्य अंश फारेनहाइट से 10 से 20 अंश तक नीचे के तापक्रम तक शीतित रखता है।

'सीफ्रीज' के निर्माताओं का कहना है कि यह उपकरण पूर्णतः स्वचालित और अक्षरणशील है। बाजार में लाने से पूर्व, कारखाने पर ही इसका पूरी तरह परीक्षा कर लिया जाता है। जहाज पर इसे चालू करने के लिए, उसके कर्मचारियों को केवल इसका डीजल इंजिन चला देना, और एक हाइड्रालिक वाल्व को खोल देना पड़ता है। ऐसा करने पर तापक्रम को कम करने वाला पुर्जा चालू हो जाता है।

सीफ्रीज में लगे इलेक्ट्रानिक पुर्जे जटिल किस्म के नहीं है। मूल फ्रेम इस्पात का बना होता है। अमेरिकी सरकार द्वारा खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध में निर्दिष्ट प्रतिमानों के अनुरूप बनने के लिए उस सभी भाग का निर्माण स्टेनलेस स्टील से किया गया है, जो केकड़ों को छूता है। इस उपकरण पर समुद्र के खारे पानी से किसी प्रकार की क्षरण उत्पन्न नहीं होता।

केकड़ों को समुद्र से पकड़ने के तत्काल बाद शीत से हिमीकृत कर दिया जाता है। शीत से हिमीकृत करने वाले घोल के थैले पर प्रत्येक केकड़े को रख कर जो कीटाणु निरुद्ध कर दिया जाता है। यह उपकरण प्रति घण्टे 500 पौण्ड केकड़ों को शीत से जमा सकता है। इसका निर्माण टम्पा, फ्लोरिडा, की फर्म, सीफ्रीज रेफ्रीजरेशन कम्पनी, इन्क०, ने किया है। इस समय फर्म द्वारा इस उपकरण का निर्यात मैक्सिको, अफ्रीका, स्पेन और भारत को हो रहा है।

पुस्तक समीक्षा

नाम पुस्तक—अकार्बनिक रसायन में प्रकाशीय विधियों के अनुप्रयोग
लेखक— डा० पी० सी० जैन
प्रकाशक—उत्तर प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ
पृष्ठ संख्या 233—मूल्य रु० 8·00

प्रकाशीय विधियों का अकार्बनिक रसायन में अत्यधिक उपयोग होता हैं। हिन्दी के माध्यम से इस विषय पर सामग्री जुटा कर प्रस्तुत करने का लेखक का श्रेय सराहनीय है। यथा स्थान प्रायोगिक के विधियों को समझा कर तथा उपयुक्त आंकड़ों को प्रयुक्त करके सुनिश्चित ढंग से लिखा गया यह मोनोग्राफ निःसन्देह अकार्बनिक रसायन के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। संकर यौगिकों के प्रकाशीय सोवइम को काफी सरल ढंग से समझाने का प्रयत्न किया गया है। भाषा को और भी सरल बनाया जा सकता था। कहीं-कहीं पर भाषा सुग्राह्य नहीं रह गई है। कुछ अंग्रेजी शब्दों यथा मोनोक्रोमेटर, स्पेशीज़ को यथावत प्रयुक्त किया गया है यद्यपि उनके हिन्दी शब्द ज्ञात है। पद संकेताक्षरों को भली भाँति समझा देना चाहिए था। तकनीकी शब्द कहीं मोटे टाइप में कहीं पतले में हैं सब समान होते तो अच्छा रहता। छपाई उत्तम है त्रुटियाँ बहुत कम हैं।

विजय कृष्ण

●●

[पृष्ठ 8 का शेषांश]

उद्योग में रेडियो आइसोटोप अनेक प्रकार से सहायता करते हैं। हजारों मील लम्बी तेल पाइप लाइनों में विभिन्न प्रकार का तेल ले जाना पड़ता है। मजदूरों को यह पता लगाना बहुत मुश्किल है कि अमुक समय पर किस प्रकार का तेल जा रहा है और अमुक समय पर किस प्रकार का। इसके लिये तेल में थोड़ा सा रेडियो सक्रिय तेल मिला देते हैं। जब यह रेडियो सक्रिय परमाणु पाइप लाइन के दूसरे सिरे पर पहुँचते हैं तो वहाँ रखा गीगर काउन्टर चालू हो जायगा और यह पता चल जायगा कि अब नए प्रकार का तेल आ रहा है। वहाँ पर काम करने वाला कर्मचारी उस तेल को अलग दूसरी टंकी में भेजना शुरू कर देगा।

6. **कला के क्षेत्र में :** परमाणु शक्ति से मानव की प्रतिभाशील प्रवृत्ति कला, का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा। जापान में कला विशेषज्ञों ने रेडियो कोवाल्ट द्वारा छोटे-छोटे एक्सरे यंत्रों को सहायता से मंदिरों में रखी हुई कांसे की प्राचीन मूर्तियों का परीक्षण किया। उन्होंने इन मूर्तियों के अंदर के भाग के चित्र लिये। इससे उन्हें यह मालुम हो गया कि वह सारी की सारी मूर्ति एक साथ ही ढली हुई है। या उसके कुछ हिस्से बाद में जोड़े गये हैं। इस विधि से उनकी काल गणना भी संभव हो गई।

परमाणु शक्ति के आविष्कार को अधिक समय नहीं हुआ है लेकिन इतने अल्प समय में भी इससे मानव जाति धन्य हो गई है। इसके जो उपयोग अभी तक हमारे सामने आये हैं वे स्वयं कम अद्भुत नहीं हैं। भविष्य में ऐसे ही अनेक और इससे भी अधिक चमत्कारी उपयोगों की सम्भावना है। परमाणु शक्ति मानव मन के परी लोक को साक्षात् धरा पर उतार लायेगी!

डा० शरद चन्द्र चतुर्वेदी
रसायन शास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

●●

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | माघ-फाल्गुन 2021 विक्र०, 1896 शकाब्द फरवरी-मार्च 1975 | संख्या 2-3

कोशिका में गुणसूत्र की संरचना और कार्य

डॉ० देवेन्द्र नाथ विश्नोई

प्राणी तथा पौधे का शरीर अनेक कोशिकाओं का बना होता है, जो अति सूक्ष्म होते हैं और सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखलाई देते हैं। जीव एक ही कोशिका से जीवन आरम्भ करता है और शनैः-शनैः भ्रूण के रूप में विकसित होने लगता है। अनिषेचित अंडे का विकास कुछ तो पहिले ही हो जाता है, परन्तु प्रगट विकास निषेचन के बाद ही होता है। अनेक कोशिकाएं एक ही युग्मनज कोशिका की प्रतिकृति होती हैं, उसी के विभाजन द्वारा ही बनती हैं और प्रत्येक गुण में उसी के अनुरूप होती हैं। वास्तव में भ्रूण की इस आरम्भिक अवस्था में सभी कोशिका समरूप व समगुणधर्मी होती हैं। बाद में इनमें विभिन्नता प्रकट होनी आरम्भ होती है। अलग-अलग ऊतक बनते हैं। अंतर केवल कोशिका के रूप अथवा आकृति में ही नहीं उसकी शरीर-क्रिया में भी प्रदर्शित होता है। यह सब अनेक कोशिकाओं के आपस में श्रम विभाजन के फलस्वरूप होता है। जो कार्य जिस कोशिका अथवा कोशिका निर्मित ऊतक को मिला है, उसी के समापन हेतु उसको अपने अंदर क्रियाशीलता व समन्वय स्थापित करना होता है। जैसे कुछ कोशिका मिलकर जनन-ग्रंथि बनाती हैं, अन्य तंत्रिका-ऊतक, मांसपेशियाँ, श्वसनांग, ग्रंथियाँ, रक्त, लिम्फ़ नलिकाएं व भोजन नली व उससे संबंधित ग्रंथियाँ (यकृत, प्लीहा) आदि का निर्माण करती हैं। यह अंतर स्थूल रूप में प्रकट होने पर विशेष महत्व का दिखलाई देने लगता है। वास्तव में इस सबके पीछे कोशिका की अतिसूक्ष्मदर्शी संरचना, शरीर-क्रिया व जीव रसायन है। यह बहुत रोचक विषय है कि एक ही मूल कोशिका से उत्पन्न व निर्मित आनुवंशिक समगुणधर्मी कोशिकाएं किस प्रकार संरचना, आकृति, भौतिक-रसायनिक गुण एवम् तद्रूप व्यवहार में भिन्न हो जाती हैं। प्रकृति का यह अद्भुत रहस्य छिपा है केन्द्रक स्थित गुणसूत्रों में। एक ही प्रकार की कोशिकाओं से बने ऊतकों में इस कारण अंतर आ जाता है कि उनमें विशिष्ट लक्षणों वाले जीन अलग-अलग समय पर व अंश में कार्यशील अथवा निष्क्रिय होते हैं। गुणसूत्र के संरचनात्मक संघटन से प्रकट होता है कि उसमें अति सूक्ष्म अंश तक सुव्यवस्था है और आनुवंशिक सूचना का भण्डार उसमें सुरक्षित है। सामान्यतः जनन अथवा कायिक गुणसूत्र ऐसे हैं, जिनमें प्रयोगात्मक अध्ययन से कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती। इतना अवश्य है कि गुणसूत्र की कुल लम्बाई पर व्यवस्थित जीन अलग-अलग समय पर क्रियाशील होकर अपने

प्रभाव में अंतर उत्पन्न कर लेते हैं और तदुपरांत उस अंतर को बनाए रखते हैं। कुछ कोशिकाओं में इनकी क्रिया निरोधित रहती है। बस यही सामयिक क्रिया भेद समस्त भिन्नता का कारण है। जैव विकास में विविधता, नई उपजातियाँ बनने का और नूतन आनुवंशिक उत्परिवर्तन प्रकट होने का एकमात्र कारण भी यही है।

यदि गुणसूत्रों में सामयिक क्रिया भेद द्वारा उत्पन्न अंतर इस तथ्य का द्योतक है कि भ्रूण के विभिन्न ऊतकों में इस क्रिया भेद के कारण भिन्नता आई है, तब यह आनुवंशिक भेद जीन की क्रियाशीलता में भी प्रकट होना चाहिए। यही नहीं, गुणसूत्रों में भी इस भेद की अभिव्यक्ति होनी चाहिए, जिससे कि वह अलग-अलग ऊतक-कोशिका के केन्द्रकों में पहिचाना जा सके। यद्यपि ऐसा है परन्तु अनेक प्रकरणों (विशेषकर जनन कोशिकाओं) में ऐसा अंतर नहीं देखा जा सकता, क्योंकि विभाजनांतराल अवस्था में व्यक्तिगत गुणसूत्र का प्रेक्षण कठिन है। उनके विभिन्न अंगों में अवकलन देखना तो और भी मुश्किल है। उदाहरण के लिए प्रतिलिपि क्रिया को ही लीजिए। इसमें गुणसूत्र पुनरावृत्ति प्रक्रम द्वारा केन्द्रक-द्रव्य से अपनी प्रतिलिपि संश्लेपित करता है। यह उन विशेषरूप से बड़े गुणसूत्रों में सरलता से देखा जा सकता है—जैसे पॉलिटीन गुणसूत्र, जो डीप्टेरा लार्वा की लालाग्रंथि, मैलपीगी नलिकाओं या प्यूपा की पग-गद्दी में होते हैं, अथवा लैम्पब्रश गुणसूत्र, जो कशेरुकी प्राणी के अंडक के केन्द्रक में पाए जाते हैं।

जीवाणुओं में प्रतिलिपि क्रिया की खोज करने पर ज्ञात हुआ है कि गुणसूत्र में समन्वयी जीनी सूचना विशिष्ट पथ पर स्थित होती है जिसे ओपेरॉन कहते हैं। अनेक ओपेरॉन गुणसूत्र पर क्रमानुसार व्यवस्थित होते हैं। एक ओपेरॉन में बहुत से संरचनात्मक जीन होते हैं। इनकी क्रिया पर एक प्रचालक जीन नियंत्रण रखता है। स्वयं प्रचालक की क्रिया पर विशिष्ट निरोधक पदार्थ द्वारा नियंत्रण रहता है, जिसको अन्य स्थान पर स्थिति निरोधक जीन उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार निरोधक जीन प्रचालक द्वारा संरचनात्मक जीनों की अभिव्यक्ति पर प्रतिबंध लगा देता है। निरोधक की क्रिया भी एक विशेष, बाह्य उपापचयी पदार्थ द्वारा रुक जाती है, जिसे प्रेरक कहते हैं। प्रेरक प्रचालक पर प्रभाव डालता है, जिससे संरचनात्मक जीन सक्रिय हो जाते हैं। इस प्रकार देखते हैं कि प्रेरक निरोधक और प्रचालक दोनों पर प्रभाव डालता है। गुणसूत्र के संरचनात्मक जीन पर प्रभाव प्रचालक द्वारा ही होता है चाहे निरोधक सक्रिय हो या प्रेरक।

संरचनात्मक जीन   प्रचालक   निरोधक   प्रेरक

(ओपेरॉन)

सिद्धांत एवम् प्रयोगों से पता चला है कि आनुवंशिक अभिव्यक्ति गुणसूत्र के विशिष्ट खण्डों के DNA (डिसॉक्सीरिबो न्यूक्लीइक एसिड) द्वारा पूरक, अधिक अणुभार वाले RNA (रिबोन्यूक्लीइक एसिड) के संश्लेषण पर निर्भर करती है। यही DNA खंड ओपेरॉन बनाते हैं। संश्लेषित RNA संदेशवाहक RNA कहलाता है और क्षार संघटन में प्रतिमान DNA के बिल्कुल अनुरूप होता है। DNA की प्रतिलिपि होने के कारण इसमें वह सब आनुवंशिक सूचना निहित होती है जिसकी कुंजी DNA स्वयं अपने में संजोए रखता है। यह संदेशवाहक RNA कोशिका में अन्य स्थान पर, जहाँ प्रोटीन संश्लेषण होता है, चला जाता है। वहाँ यह एमिनो एसिड के प्रक्रम को अपने ही अनुरूप ढाल लेता है। यही वह संकेत है जिसे DNA ने इस RNA के द्वारा प्रोटीन संश्लेषण के स्थान पर भेज कर अपना विशिष्ट गुणधर्मी प्रोटीन बनाया, और उसी के फल-स्वरूप भ्रूण में वैसा ही विशेष आनुवंशिक गुण उत्पन्न हुआ। इस प्रकार कोशिकाओं में आनुवंशिक भिन्नता प्रकट होती है और अलग-अलग ऊतक बन जाते हैं। पॉलिटीन तथा लैम्पब्रश गुणसूत्रों के खंडों में विभेदित जीनी क्रिया सरलता से देखी जा सकती है। कोशिकाओं की अति अथवा अधिक क्रियाशीलता के अनुरूप इन गुणसूत्रों में भी अधिक क्रिया प्रदर्शित होती है। वृहत् गुणसूत्र अतिक्रियाशील लाला ग्रंथियों में व मैलपीगियन नलिकाओं में, और दूसरी प्रकार के (लैम्पब्रश) गुणसूत्र

उन अंडकों में पाये जाते हैं, जिनमें भ्रूण की पूर्वावस्था में अधिक प्रोटीन संश्लेषण तथा निषेचन से पूर्व कोशिका-द्रव्यी विभेदन होता रहता है। दोनों प्रकार के गुणसूत्र संघनित न होकर बहुत फैले हुए होते हैं, और उनमें युग्मन भी समान रूप में पाया जाता है। लैम्प-ब्रश गुणसूत्रों में युग्म काइएज़्मेटा द्वारा जुड़े रहते हैं। पॉलिटीन गुणसूत्र में सूक्ष्म सूत्र इतने पास सन्निहित होते हैं, कि सब मिलकर एक गुणसूत्र दिखलाई देता है। ड्रोसोफ़िला (फल मक्खी) की लाला ग्रंथियों के पॉलिटीन गुणसूत्र में लगभग 1024 सूक्ष्मसूत्र होते हैं।

के कारण क्रोमोमीयर व पट्टियाँ बन जाती हैं। इन पट्टियों के बीच के भागों को, जहाँ पर क्रोमोनेमा प्रसामान्य रहता है, अंतर-पट्टियाँ कहा जाता है। अंतर-पट्टी की अपेक्षा पट्टी का स्थान ही आनुवंशिक क्रिया का केन्द्र होता है। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी से देखने पर पता चलता है कि एक पट्टी में अनेक उपपट्टियाँ विद्यमान हैं। सम्भवतः पट्टी पुनः संयोजन की मौलिक संरचनात्मक इकाई है, क्योंकि पट्टी को किरणन द्वारा छोटे-छोटे खंडों में तोड़ा जा सकता है और इसके आनुवंशिक घटक पृथक किए जा सकते हैं। यह स्पष्ट हो गया है कि पट्टी

चित्र १ चित्र २ चित्र ३
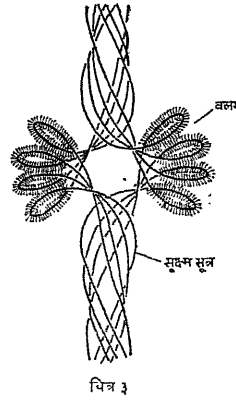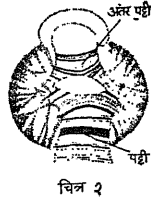
सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने पर पॉलिटीन गुणसूत्र में एक ओर से दूसरे ओर तक पट्टियाँ तथा अंतर-पट्टियाँ दिखलाई देती हैं जैसा कि चित्र 1 में दिखाया गया है। पट्टी को गुणसूत्र का पुनरावृत्त क्रोमोमीयर माना जाता है (चित्र 2)। एक सूक्ष्मसूत्र में यह केवल एक बिन्दु के रूप में होता है, परन्तु जब अनेक सूक्ष्मसूत्र आपस में गाढ़ रूप से सँट गए तब इस बिन्दु की पुनरावृत्ति पट्टी का दृश्य उपस्थित करती है। पट्टी तथा अंतर-पट्टी दोनों में DNA विद्यमान होता है। अंतर केवल इतना है कि पट्टी में इसकी सान्द्रता अधिक होती है। यह माना जाता है कि गुणसूत्र के भीतर स्थित अतिसूक्ष्म सूत्र (क्रोमोनेमा) के स्थान-स्थान पर संपीड़ित एवम् वलित हो जाने

क्रियात्मकरूप में आनुवंशिक सूचना इकाइयों की एक समग्र जटिल आकृति है।

प्राणी की कोशिका में पट्टियों का एक विशेष प्ररूप होता है, जो शरीर की सभी कोशिकाओं में समान और व्यक्त प्ररूप में विशिष्ट गुणों की उत्पत्ति से सम्बद्ध होता है। उत्परिवर्तन से पट्टियों का ब्यौरा भले ही बदल जाए, परन्तु उनके प्रतिरूप में परिवर्तन नहीं आता। कुछ पट्टियाँ फूली हुई होती हैं और क्रमशः अधिकाधिक तनूकृत होने पर गुणसूत्रों में गुच्छे बनाती हैं। इस प्रकार के गुच्छे को बालबियानी वलय कहते हैं (चित्र 1, 3)। ऐसी पट्टियाँ जो फूल जाती हैं ऊतकों में बहुत अधिक लक्षण प्रकट करने वाली होती हैं। विभिन्न ऊतकों में

गुच्छ-प्रतिमान में अंतर होता है। भ्रूण-विकास में भी अलग-अलग अवस्थाओं में गुच्छ प्रतिमान बदल जाता है। इससे प्रकट हो जाता है कि गुच्छ (पफ़) वह स्थान हैं जहाँ पर स्थित जीन प्रकट रूप में क्रियाशील हैं। जब जीन का कार्य शिथिल हो जाता है, तब गुच्छ सिकुड़ जाते हैं, और गुणसूत्र के अन्य भाग की भाँति हो जाते हैं। किसी अन्य स्थान पर स्थित जीन के सक्रिय हो जाने पर दूसरा पफ़ बन जाता है। इस प्रकार समय समय पर विभिन्न स्थानों के जीन सक्रिय अवस्था में गुण सूत्र के अलग-अलग भागों में गुच्छ की रचना करते हैं। इस क्रिया में विशिष्ट प्रेरक अनुक्रिया उत्पन्न करने में सहायक होते हैं। भ्रूण की उपापचयी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रवर्धित जीनी क्रियाशीलता और उससे सम्बद्ध गुच्छ रचना इसी तथ्य की द्योतक हैं। यदि लाला-ग्रंथि का केन्द्रक अंड कोशिका द्रव्य में प्रतिरोपित कर दिया जाए तो उसमें स्थित गुणसूत्रों में अद्वितीय गुच्छ प्रकट हो जाते हैं। सम्भवत: अंड कोशिका द्रव्य के कारक कुछ पफ़ को दबा देते हैं, और अन्य पफ़ को उभार देते हैं। इस प्रयोग से सिद्ध हो जाता है कि यह परिवर्तन गुणसूत्र में ऑप्रेटर (प्रचालक) द्वारा नियंत्रित ओपेरॉन का ही प्रत्यक्षीकरण है।

यह मान लेने पर कि गुच्छ रचना बढ़ी हुई जीनी क्रिया की द्योतक है, यह भी जान लेना होगा कि कोशिका में विशेष पफ़-प्रतिमान से सम्बद्ध पदार्थ का संश्लेषण भी होगा। कुछ डीप्टेरा की लाला-ग्रंथियों में इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है। इनमें दो भाग स्पष्ट रूप से पहचाने जा सकते हैं, जो प्रोटीन तथा कार्बोहाइड्रेट के संश्लेषण में कार्यरत होते हैं। काइरोनॉमस डिम्भकों के गुणसूत्रों में दोनों स्थानों पर पट्ट प्रतिमान में भिन्नता है। एक गुच्छ एक स्पीशीज़ में दानेदार नहीं होता और दो के बजाए एक ही पफ़ दिखलाई देता है। दोनों स्पीशीज़ के संकर डिम्भकों के आधे गुणसूत्रों में इस स्थान पर पफ़ होते हैं और शेष आधों में नहीं होते। जिस स्थान पर अतिसूक्ष्म सूत्र अकुंडलित होकर बाहर की ओर लूप के रूप में फैल जाता है वहाँ पफ़ की आकृति बन जाती है। संश्लिष्ट पदार्थ सूक्ष्म कणों के रूप में लूप से लगा रहता है, और धीरे धीरे केन्द्रक द्रव्य में फैलता जाता है। अन्य सभी गुणसूत्रों में इसी प्रकार की सक्रियता दिखाई देती है। उनमें इसका मौलिक प्रतिरूप भी स्पष्टतया ऐसा ही होता है।

डॉ० देवेन्द्र नाथ विश्नोई
प्राणी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

● ●

जैव उर्वरक

डा० शिवगोपाल मिश्र

जब मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी होने लगती है तो उनकी पूर्ति कृत्रिम साधनों के द्वारा की जाती है। ये साधन हैं—अकार्बनिक तथा कार्बनिक उर्वरक और जैव उर्वरक। अकार्बनिक उर्वरकों का प्रथम सिद्धान्त 1840 ई० में लीबिग नामक जर्मन वैज्ञानिक द्वारा प्रचारित हुआ। इसका मूलमन्त्र था उन अकार्बनिक तत्वों की वाह्य साधनों से पूर्ति जिनकी मिट्टियों में न्यूनता हो अथवा जिन्हें फसलें प्रमुख रूप से उद्ग्रहीत करती हों। ऐसे प्रमुख तीन तत्व पाये गये—ये थे नाइट्रोजन (N), फास्फोरस (P) तथा पोटैसियम (K) ये त्रितत्व NPK कृत्रिम उर्वरकों के मूलाधार बन गये और आज इन्हीं के उर्वरकों का बड़े पैमाने पर उत्पादन एवं उपयोग हो रहा है।

किसानों का एक वर्ग रूढिवादी रहा है। वह कार्बनिक खादों के प्रयोग को ही प्रधानता देता रहा। उसका अभिमत रहा है कि आखिर पौदों के ही अवशेषों से तो कार्बनिक खाद बनती है अतः इसके उपयोग से सारे तत्वों की पूर्ति हो जाती है।

किन्तु आज जो स्थिति है उसमें न तो अकार्बनिक उर्वरकों से न हो कार्बनिक खादों से उर्वरीकरण का पूरा पूरा कार्य चल पा रहा है। कृषि वैज्ञानिकों का ध्यान लगातार ऐसे उर्वरकों की ओर जाता रहा है जो इस कमी को पूरा कर सकें। विगत 70 वर्षों की खोजों के परिणामस्वरूप वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि जैव उर्वरक काफी हद तक इस कमी को पूरा कर सकते हैं।

हमारे देश का सामान्य कृषक गोबर की खाद प्रयुक्त करने का अभ्यस्त रहा है फलस्वरूप जब यहाँ कृत्रिम उर्वरकों का प्रचलन हुआ तो वह अत्यन्त दुविधा में था कि इनका प्रयोग करें अथवा नहीं। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब अच्छी सींच और उर्वरक के प्रयोग से कुछ किसानों ने सामान्य उपज से कई गुनी उपज प्राप्त की। फिर तो आये वर्ष 'कृषि पंडितों' की श्रेणी बढ़ती गई। आज हमारे देश का किसान यूरिया, अमोनियम सल्फेट, सुफला, सुपर फास्फेट, पोटाश, डाइअमोनियम फास्फेट जैसे उर्वरकों से परिचित ही नहीं, उनके उपयोग का पूरा-पूरा सिद्धान्त समझता है। यही नहीं, विश्व में तेल संकट उत्पन्न हो जाने से उर्वरकों के दामों में जो वृद्धि हुई है उससे वह पीड़ित एवं प्रभावित है। चाहते हुये भी उसे अपनी रुचि के उर्वरक नहीं मिल पा रहे हैं।

औद्योगीकरण की लहर में बैलों तथा पशुओं में कमी होने के कारण पशु-खाद का नितान्त अभाव है। ईंधन की तलाश में किसान पागल हो चुका है। लकड़ी न मिलने पर उपलों को जलाता है और फसलों के सभी अवशेषों को भी अग्नि में स्वाहा करता रहता है। उसके समक्ष गम्भीर संकट है। वह कृत्रिम खादों का अभ्यस्त बन चुका है। वह निरुपाय हो गया है। उसे इन उर्वरकों के बनाने का कोई ज्ञान नहीं है। उसके लिये ये उर्वरक ब्रह्म-ज्ञान की बातें हैं।

यह ठीक है कि भारत में 'हरित क्रान्ति' हमारे किसानों के परिश्रम का फल है लेकिन इसके मूल में दो ही प्रमुख कारण रहे हैं—सिंचाई तथा उर्वरक। दोनों का सीधा सम्बन्ध शक्ति या ऊर्जा से है। देश में बिजली के संकट ने 'हरित क्रान्ति' को ध्वस्त कर दिया है।

लेकिन वैज्ञानिक इतने पर भी उदास नहीं हैं। उन्होंने "जैव उर्वरकों" के प्रयोग पर बल देना प्रारम्भ कर दिया है।

ये जैव उर्वरक ऐसे उर्वरक हैं जिनकी कुछ ग्राम या पौंड मात्रा प्रति एकड़ भूमि में डालने से उपज में आश्चर्यजनक वृद्धि की सम्भावना है। चूँकि ऐसे उर्वरक जीवाणुओं से युक्त हैं इसलिये इन्हें 'जैव उर्वरक' कहा जाता है। ये उर्वरक जीते-जागते अथवा सजीव हैं। लेकिन इनके जीवों को आँखों से नहीं देखा जा सकता। ये अत्यन्त सूक्ष्मजीवों से युक्त होते हैं।

जैव उर्वरकों का प्रयोग आज से लगभग 70 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। उस समय नाइट्रोजन एकमात्र ऐसा तत्व था जिस पर सबकी आँखें लगी थीं। बेरिंक ने ऐजोटोबैक्टर नामक सूक्ष्मजीवाणु को मिट्टियों से पृथक करके उसके द्वारा वायुमण्डल की नाइट्रोजन गैस के यौगिकीकरण की अद्भुत क्षमता की घोषणा की तो वैज्ञानिकों को एक नया साधन मिला जिसके द्वारा वे मिट्टी की नाइट्रोजन को बढ़ा सकते थे। हुआ भी ऐसा ही। 1902 ई० में गर्लाच तथा बोगेल ने इसका उपयोग उपज बढ़ाने के लिये किया। रूस में इस सूक्ष्म जीवाणु के साथ व्यापक प्रयोग होते रहे जिसके परिणाम-स्वरूप 1937 ई० में 'एज़ोटोबैक्ट्रिन' नामक प्रथम जैव उर्वरक तैयार हो सका। तब से वहाँ लाखों एकड़ में इस उर्वरक का प्रयोग हो रहा है और खाद्यान्नों तथा तरकारियों की उपज में काफी वृद्धि प्राप्त की जा रही है। रूसी वैज्ञानिकों का दावा है कि इस जैव उर्वरक के उपयोग से अमोनियम सल्फेट के प्रयोगों के समान परिणाम प्राप्त होते हैं। तात्पर्य यह कि रूस ने नाइट्रोजन उर्वरकों का एक विकल्प खोज लिया है। अब अन्य देश भी उसका लाभ उठा रहे हैं। किन्तु जैसा कि प्रत्येक खोज के साथ होता है, उसके कुछ विरोधी भी होते हैं। अमरीका, जर्मनी, स्विटजरलैंड, डेनमार्क, फिनलैंड तथा फ्रांस में जब 'एज़ोटोबैक्ट्रिन' का व्यवहार किया गया तो नकारात्मक फल प्राप्त हुये। फलस्वरूप आज इस उर्वरक के प्रति संशयात्मक दृष्टिकोण है। हमारे देश में पश्चिमी बंगाल, उत्तर प्रदेश, दिल्ली तथा बंगलौर की मिट्टियों में इस उर्वरक के साथ जितने प्रयोग किये गये हैं उनसे इस धारणा की पुष्टि हुई है कि यह उर्वरक अवश्य ही लाभप्रद है। लेकिन अभी इस पर अधिक प्रयोगों के सम्पन्न किये जाने की आवश्यकता बनी हुई है।

नाइट्रोजन की पूर्ति के उद्देश्य से एक अन्य जैव उर्वरक पर विशेष बल दिया जा रहा है—वह है नाइट्रेजिन। यह राइज़ोबियम नामक सूक्ष्मजीवाणु से युक्त उर्वरक है। इसका दूसरा प्रचलित नाम 'राइजोबिया कल्चर' है। सम्भवतः यह वह उर्वरक है जिसे प्रत्येक देश के किसान अनजाने सभ्यता के विकास के प्रारम्भ से ही प्रयुक्त करते रहे हैं। जहाँ भी दलहनी फसलें उगाई जाती हैं, मिट्टियों में 'राइजोबिया' नामक सूक्ष्मजीवाणु इन फसलों की जड़ों में प्राप्त ग्रंथियों में पलते हैं। ये जीवाणु भी नाइट्रोजन यौगिकीकरण की अभूतपूर्व क्षमता रखते हैं। ये एजोटोबैक्टर की तुलना में कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। फलस्वरूप मिट्टियों में नाइट्रोजन की वृद्धि होती रहती है। किन्तु 'नाइट्रेजिन' के प्रयोग से विशिष्ट फसलों के लिये विशिष्ट शक्तिशाली राइजोबियम प्राप्त होते हैं। इस उर्वरक की एक पौंड मात्रा एक एकड़ के लिये पर्याप्त समझी जाती है। अमरीका इस उर्वरक का प्रबल समर्थक है। रूस में इसका सूत्रपात 1935 ई० में हुआ। हमारे देश में इसका प्रयोग विगत 15 वर्षों से होना प्रारम्भ हुआ और अब इसकी प्रभूत मात्रायें किसानों द्वारा प्रयुक्त की जाती हैं। इस उर्वरक के सम्बन्ध में विश्व भर में कोई द्विधा नहीं है फलस्वरूप दलहनों की खेती को प्रोत्साहित करने के साथ ही 'राइजोबियम' कल्चर के उपयोग की संस्तुति की जाती है। सोयबीन की खेती को विगत वर्षों में जो प्रोत्साहन मिला है उसके मूल में यह जैव उर्वरक है। अपने देश में इस उर्वरक को वृहद पैमाने पर तैयार करने का कार्य प्रगति पर है और किसानों को अत्यन्त कम दामों पर राइजोबियम कल्चर दिये जाते हैं।

लेकिन हमारी मिट्टियों में अकेले नाइट्रोजन की ही कमी नहीं है। उनमें फास्फोरस भी न्यून है। फलस्वरूप फास्फोरस प्रदायक जैव उर्वरकों की ओर हमारे

[शेष पृष्ठ 13 पर

परखनली में कृत्रिम जीव के निर्माता : डॉ० खुराना

शुकदेव प्रसाद

सन् 1968 में अक्टूबर माह में एक समाचार ने संसार की दृष्टि भारत की ओर केन्द्रित कर दी। 1930 के बाद पुनः एक बार विज्ञान जगत में एक भारतीय नाम ने तहलका मचा दिया। यह समाचार था एक भारतीय वैज्ञानिक को, जो अब अमेरिकी नागरिक हैं, नोबल पुरस्कार प्रदान किए जाने की घोषणा। यह वैज्ञानिक हैं संयुक्त राज्य अमेरिका के विसकान्सिन विश्वविद्यालय के एंजाइम अनुसंधान संस्थान के तत्कालीन सह-निदेशक डॉ हरगोविन्द खुराना।

आज से 52 वर्ष पहले 2 जनवरी 1922 को पंजाब के एक छोटे से गाँव रायपुर में हरगोविन्द खुराना का जन्म हुआ था। इनके पिता स्वर्गीय गरणपत राय पटवारी थे। ये पाँच भाई-बहन थे। हरगोविन्द अपने माँ-बाप की पाँचवीं सन्तान थे। सबसे छोटा होने के कारण लोग खूब प्यार करते थे और इन्हें गोविन्द कहकर पुकारते थे।

जब गोविन्द कुछ बड़ा हुआ तो पिता जी ने इनका नाम गाँव की छोटी सी पाठशाला में लिखा दिया। बालक हरगोविन्द पढ़ने में बचपन से ही तेज था एवं उसे पढ़ने का बहुत शौक भी था। खेल-कूद में भी रुचि लेता था। पढ़ने में तेज होने के कारण उसे तीसरी कक्षा से ही छात्रवृत्ति मिलनी शुरू हो गई। गोविन्द का मन पढ़ने में बहुत लगता था। अक्सर वह सारे दिन पढ़ता ही रहता। माँ रोटी बनाती, तो वह होड़ लगाता। कहता, "देखता हूँ, माँ! तुम्हारी रोटी तवे से पहले उतरती है या मेरा सवाल हल होता है।" जब मिडिल की परीक्षा हुई तो वह सारे जिले में प्रथम आया।

जब गोविन्द 12 वर्ष का था तो पिता जी का देहान्त हो गया। अतः बच्चों के लालन-पालन का भार माँ कृष्णा देवी पर आ पड़ा। माँ बड़े धार्मिक विचारों की थी। माँ के प्यार ने बच्चों को पिता का अभाव न महसूस होने दिया। बड़ी बहन का विवाह हो गया एवं दो बड़े भाई नौकरी करने शहर चले गए। अब घर में रह गए—बड़ा भाई नंदलाल, गोविन्द और माँ।

मिडिल पास करने के बाद मुलतान के डी० ए० वी० स्कूल में प्रवेश लिया। हाई स्कूल पास करके गोविन्द लाहौर के डी० ए० वी० कालेज में प्रविष्ट हुआ। वह सारी कक्षाएँ प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करता रहा। सन् 1943 में पंजाब विश्वविद्यालय से बी० एस-सी० एवं सन् 1945 में एम० एस-सी० प्रथम प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया।

सन् 1946 में उसे शोध-कार्य हेतु सरकारी छात्रवृत्ति से इंग्लैंड भेज दिया गया। इंग्लैंड के लिवरपूल विश्वविद्यालय में हरगोविन्द खुराना ने डाक्टर राबर्टसन की देखरेख में शोध-कार्य किया। सन् 1948 में लिवरपूल विश्वविद्यालय से 'जैव-रसायन' में पी० एच० डी० (डाक्टरेट) की उपाधि मिली। (जैव-रसायन' विज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत हम रसायन शास्त्र की मदद से जीव-जगत का अध्ययन करते हैं। इसके बाद भारत सरकार ने डाक्टर खुराना को पुनः अध्ययन हेतु ज्यूरिख (स्विटजरलैंड) भेज दिया। ज्यूरिख नगर के संघीय प्रौद्योगिक संस्थान में उन्होंने प्रोफेसर विलाग के साथ शोध कार्य किया।

सन् 1949 से 1952 तक इन्होंने कैम्ब्रिज विश्व-विद्यालय में नोबुल पुरस्कार विजेता डा० अलेक्जेंडर टॉड के निर्देशन में अध्ययन किया। सन् 1952 में

कनाडा चले गए। वहाँ ब्रिटिश कोलम्बिया विश्वविद्यालय में ब्रिटिश कोलम्बिया अनुसंधान परिषद के कार्बनिक रसायन विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। यहाँ पर्याप्त सुविधाएं मिलने के कारण इनकी प्रतिभा चमक उठी। उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त होने का सिलसिला यहीं से प्रारम्भ होता है। सन् 1958 में 'कार्बनिक रसायन' में महत्वपूर्ण कार्य करने के कारण कनाडा के कैमिकल इंस्टीट्यूट ने 'मर्क' पुरस्कार प्रदान किया तथा सन् 1960 में प्रोफेशनल इंस्टीट्यूट आफ दि पब्लिक सर्विस आफ कनाडा ने स्वर्णपदक। इसी वर्ष इनके महत्वपूर्ण अनुसन्धानों से प्रभावित होकर विसकान्सिन विश्वविद्यालय ने इनसे एंजाइम अनुसंधान संस्थान के सह-निदेशक का पद ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया। चूँकि इस पद पर इनके ऊपर अध्यापन अथवा विभाग की देखभाल की जिम्मेदारियां नहीं थोपी गयीं अतः इन्होंने सहर्ष यह पद स्वीकार कर लिया। तबसे उन्होंने 1970 तक इसी पद पर कार्य किया। सन् 1970 में वहाँ से इस्तीफा दे दिया। अब मैसाचुसेट्स इंस्टीच्यूट आफ टेक्नोलाजी, केम्ब्रिज में हैं। यहाँ रहकर केवल शोध-कार्य में रत हैं।

अधिक समय वे अपने अनुसंधान कार्य में ही देते हैं। विसकान्सिन विश्वविद्यालय में रहकर जीवन की रहस्यमयी भाषा का उद्घाटन करने में जी जान से लग गए और इन्हीं अनुसन्धानों के कारण उन्हें सन् 1968 में दो अन्य वैज्ञानिकों के साथ औषधि और शरीर क्रिया विज्ञान में नोबेल पुरस्कार प्रदान किया किया।

डा० खुराना के शब्दों में, "सन् 1968 तो मेरे जीवन का स्वर्ण वर्ष रहा। इस वर्ष अक्टूबर में मुझे औषध और शरीर क्रिया विज्ञान में डा० मार्शल वारेन नीरेनवर्ग तथा डा० राबर्ट डब्ल्यू० होले के साथ 70,000 डालर का नोबुल पुरस्कार मिला। मैंने शरीर के एक ऐसे अत्यंत जटिल पदार्थ के बारे में खोज की थी, जिसकी सहायता से किसी भी जीवित पदार्थ से वैसे ही अनेक जीवित पदार्थ तैयार होते हैं। मेरी खोज से पैतृक बीमारियों की रोक-थाम करने में भी सफलता मिलेगी।"

डा० खुराना ने जिस विषय में शोध कार्य किया है वह बड़ा ही महत्वपूर्ण विषय है। इससे जीवन की गुत्थियों को सुलझाने में मदद मिलेगी और प्रयोगशाला में शायद जीव का निर्माण भी सम्भव हो सके।

आज से सौ साल पहले आस्ट्रिया के जान ग्रिगार मेण्डल नामक वैज्ञानिक ने पहली बार बताया कि माँ-बाप के गुण सन्तान में स्वतः पहुँचते रहते हैं। इन गुणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाने वाली छोटी इकाइयों को 'जीन' कहते हैं। जीन ही हमारे गुणवाहक हैं। इन छोटी इकाइयों में जीवन का रहस्य छिपा है।

प्रत्येक जीवधारी के शरीर की रचना छोटी-छोटी इकाइयों से होती है। इन्हें हम वैज्ञानिक भाषा में कोशिका (सेल) कहते हैं। कोशिका जीवधारी की संरचनात्मक एवं कार्यात्मक इकाई है। एक वयस्क मनुष्य के शरीर में करीब 1,000,000,000 कोशिकाएँ होती हैं। प्रत्येक कोशिका के गाढ़े भाग 'केन्द्रक' में कुछ धागे जैसी रचनाएँ होती हैं। इन धागों को 'क्रोमोसोम' कहते हैं। प्रत्येक जीवधारी की कोशिका में क्रोमोसोम की संख्या निश्चित होती है— जैसे मनुष्य में 46, चूहे में 40, मकई में 20। ये क्रोमोसोम और भी छोटी इकाइयों से बने होते हैं, जिन्हें जीन कहते हैं। एक क्रोमोसोम से कई हजार जीन हो सकते हैं। प्रत्येक क्रोमोसोम पर जीन उसी प्रकार लगे रहते हैं जैसे कि किसी मोती की माला में पिरोगे हुए छोटे-छोटे दाने। एक क्रोमोसोम रूपी माला में इन मोतियों की संख्या अनुमानतः 1250 तक हो सकती है और यही मोती वास्तव में जीवों में पाए जाने वाले पैतृक लक्षणों के लिए उत्तरदायी हैं। प्रत्येक जीव एक विशिष्ट गुण को व्यक्त करता है—जैसे उस व्यक्ति की लम्बाई, केशों का रंग, बौद्धिक प्रतिभा आदि।

मनुष्य की उत्पत्ति एक कोशिका के रूप में होती है जो कि पिता के शुक्राणु और माता के डिम्ब के मिलने से बनती है। शुक्राणु और डिम्ब में क्रोमोसोम की संख्या 46 न होकर आधी ही रह जाती है

अर्थात प्रत्येक में क्रोमोसोम की संख्या केवल 23 ही होती है। गर्भाधान के समय इनके मिलन से उत्पन्न कोशिका में फिर 46 क्रोमोसोम हो जाते हैं। विभाजन द्वारा एक प्रारम्भिक कोशिका से पूर्ण विकसित शिशु का निर्माण होता है। इस प्रकार क्रोमोसोम द्वारा संतान में माँ-बाप दोनों के गुण मिलते रहते हैं और इसी नाते 'जीन' गुणवाहक कहलाता है।

अब जरा सोचिए किसी मनुष्य के शरीर में कुछ विकृत जीन है अथवा वह रोग से ग्रस्त है तो वह रोग 'जीन' द्वारा उसके बच्चे में भी विरासत के रूप में चला जायगा। इससे कैसे छुटकारा पाया जाय, यह जीव विज्ञान की एक समस्या है।

इस समस्या का हल ढूंढ़ने में तमाम वैज्ञानिक लगे हैं। इसी विषय पर डा० हरगोविन्द खुराना ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। डा० खुराना प्रयोगशाला में कृत्रिम जीन के निर्माण के प्रयत्न में लगे हैं और उन्हें कुछ हद तक सफलता भी मिली है। डॉ० खुराना के इन आविष्कारों के फलस्वरूप भविष्य में विकृत जीनों को बदला जा सकेगा और अन्य प्रकार के आनुवंशिक परिवर्तन करना सम्भव हो सकेगा। कैंसर, मधुमेह और कई जन्मजात रोगों का इलाज भी इससे सम्भव हो सकेगा और मनुष्य का रंग-रूप भी बदला जा सकेगा। डॉ० खुराना का योगदान मानव कल्याण के लिए बहुत बड़ी उपलब्धि है और अब वह दिन दूर नहीं जब कि जन्म से पहले ही कमजोर और रोगी जीन निकाल कर बच्चों को हमेशा के लिए स्वस्थ और दीर्घायु बनाया जा सकेगा।

डा० खुराना जिस वर्ष यहाँ से कनाडा गए उसी वर्ष उन्होंने एक स्विस संसद सदस्य की पुत्री एस्थर से विवाह कर लिया। एस्थर विज्ञान में पी० एच० डी० है। डा० खुराना के 3 बच्चे हैं। दो पुत्रियाँ जूलया और इमीलिया और एक पुत्र देवराय खुराना।

डॉ० खुराना अब अमेरिका के नागरिक हैं। सन् 1965 से ही वह अमेरिकी नागरिक बन गए। वे यहाँ नहीं हैं लेकिन फिर भी अपनी जन्मभूमि के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा है। उन्होंने एक बार खुद कहा था, "मेरी बहुत इच्छा होती है कि मैं अच्छे अवकाश पर भारत आकर कुछ दिनों तक अपने मित्रों और सम्बन्धियों के पास रहूँ। यूँ अब मैं अमेरिका का नागरिक हूँ। भारत से मेरे पैतृक सम्बंध हैं, जिन्हें भुलाया नहीं जा सकता।"

सौभाग्यवश अपनी मातृभूमि का दर्शन करने की डॉ० खुराना की तमन्ना इस वर्ष पूरी हो गई। डॉ० खुराना पूरे 25 वर्ष बाद अपने देश लौटे। डॉ० खुराना भारत में आयोजित भौतिकविदों के 17वें अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने आए थे। सम्मेलन में विश्व के करीब 2000 वैज्ञानिक शामिल हुए, जिनमें उसका नोबेल पुरस्कार विजेता भी है। सम्मेलन में पहला भाषण डॉ० खुराना का था। डॉ० खुराना ने दिल्ली विश्वविद्यालय में राष्ट्र के कई अन्य नगरों में भाषण दिए। कई संस्थाओं ने आपको सम्मान दिया। पंजाब विश्वविद्यालय ने आपको डाक्टर ऑफ साइन्स की उपाधि से विभूषित किया तथा आलइंडिया मेडिकल इंस्टिट्यूट ने अपना फेलो बनाया।

डॉ० खुराना को यहाँ की प्रतिभाओं से बड़ी श्रद्धा है। वह चाहते हैं कि होनहार नौजवान वैज्ञानिकों को भारत में ही काम करने की वे सारी सुविधाएँ मिलें, जो बाहर के देशों में मिलती हैं। हमारा राष्ट्र अपनी वैज्ञानिक प्रतिभाओं का उपयोग अपने ही यहाँ करने में सक्षम हो, यह उनकी प्रगाढ़ इच्छा है।

डॉ० खुराना इस समय 15 अनुसंधान कर्त्ताओं की एक टोली के प्रमुख हैं। अन्य देशों के साथ-साथ भारत के भी अनेक युवा वैज्ञानिकों को उनके साथ काम करने का सौभाग्य मिला है। आशा है कि निकट भविष्य में डा० खुराना का सपना पूरा हो जो कि मानव के अत्यंत कल्याणकारी कदम होगा।

यह भारत का दुर्भाग्य है कि इस विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न भारतीय वैज्ञानिक को अमेरिकी दूतावास 'अमेरिकी वैज्ञानिक' लिखता है।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

जब पृथ्वी काँपती है

डॉ० शिव प्रकाश

भूकम्प मनुष्य के लिए उस समय से ही, जब वह कन्दराओं में रह रहा था, एक रहस्य बने रहे।

प्राचीनकाल में लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी सृष्टि का केन्द्र है और सूर्य, चन्द्रमा तथा सितारे उसके चारों ओर चक्कर काटते हैं। उनका ख्याल था कि एक विशाल ब्रह्माण्डीय जन्तु की पीठ पर बैठी हुई पृथ्वी को अन्तरिक्ष में लटका दिया गया है। अस्तु, जब कभी वह जन्तु हिलता है, पृथ्वी में कम्पन उत्पन्न हो जाता है। भारत में यह धारणा थी कि गाय की सींग पर पृथ्वी टिकी है— जब वह एक सींग से दूसरे सींग पर पृथ्वी को संभालती है तो भूकम्प आ जाते हैं।

इस जन्तु की कल्पना भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रूपों में की गयी है। भारत में उसे शेषनाग माना गया है। इसके विपरीत, मंगोलिया में उसकी कल्पना बराह के रूप में, जापान में मकड़े के रूप में, दक्षिण अमेरिका में ह्वेल के रूप में, तथा उत्तर अमेरिका में कच्छप के रूप में की गयी है। 'जन्तु-सिद्धान्त' अब प्रायः खण्डित हो चुका है।

वैज्ञानिक यह जानने में तो सफल हो गये हैं कि भूकम्प 'क्यों' आता है, परन्तु यह तथ्य अभी एक रहस्य ही बना है कि भूकम्प 'कब' आता है।

भूकम्प क्यों आते हैं—जब किसी ज्ञात अथवा अज्ञात, वाह्य अथवा आन्तरिक कारणों से पृथ्वी के भूपटल में तीव्र गति से कम्पन पैदा हो जाती है तो उसे भूकम्प कहते हैं। भूकम्प का सर्वप्रथम जहाँ पर आविर्भाव होता है उसे 'भूकम्प मूल' कहते हैं और जहाँ पर लहरों का सर्वप्रथम अनुभव होता है उसे 'भूकम्प केन्द्र' कहते हैं। भूकम्प के मुख्य कारण निम्नांकित हैं।

(1) **ज्वालामुखी क्रिया**—ज्वालामुखी क्रिया तथा भूकम्प एक दूसरे के अभिन्न अंग माने जाते हैं। ज्वालामुखी के उद्गार के साथ भूकम्प अवश्य आते हैं। ज्वालामुखी क्रिया में जब तीव्र एवं वेगवती गैस एवं बाष्प धरातल के निचले भाग में बाहर प्रकट होने के लिए धक्के लगाती है तो भूपटल में अनायास ही ज़ोरों से कम्पन पैदा हो जाती है तथा भयंकर भूकम्प अनुभव किया जाता है।

(2) **भूसंतुलन में अव्यवस्था**—भूपटल के विभिन्न भाग प्रायः संतुलित आवस्था में होते हैं। जब कभी भी इस संतुलन में क्षणिक अथवा दीर्घकालिक अव्यवस्था उपस्थित होती है तो भूकम्प का अनुभव किया जाता है। जब यह अव्यवस्था अचानक हो जाती है तो भूकम्प प्रारम्भ हो जाता है।

(3) **जलीय भार**—अधिकांश भूगर्भवेत्ताओं का मत है कि धरातलीय भाग पर जब जल एकत्रित हो जाता है तो उससे उत्पन्न अत्यधिक भार तथा दाब के कारण जल-भण्डार की तली के नीचे स्थित चट्टानों में हेर-फेर होने लगता है। जब यह परिवर्तन शीघ्रता से होता है तो भूकम्प का अनुभव किया जाता है। जल-भण्डार का अर्थ भूपटल पर मानव निर्मित जलाशयों तथा बांधों से है।

(4) **भूपटल में संकुचन**—पृथ्वी के संकुचन सिद्धान्त के आधार पर पृथ्वी के ताप में विकिरण के फलस्वरूप निरन्तर ह्रास हो रहा है। इसके भूपटल शीतल हो जाता है। इस प्रकार पृथ्वी के ठंडे होने से उसकी पपड़ी में संकुचन होता है जो पर्वत निर्माण करता है। जब यह संकुचन अति शीघ्र होता है तो

भूपटल में कम्पन पैदा हो जाता है और भूकम्प का अनुभव किया जाता है।

(5) गैस का फैलाव—भूपटल के नीचे जब जल पहुँच जाता है तो अत्यधिक ताप से कारण जल की भाप बन जाती है। इनकी तीव्रता अधिक होने पर भाप ऊपर जाने का रास्ता ढूँढ़ती है। फलस्वरूप भूपटल में नीचे से धक्के लगने लगते हैं और कम्पन होने लगता है और साधारण भूकम्प का अनुभव होता है।

हाल तक, भू-वैज्ञानिक भूकम्प की भविष्यवाणी को एक असाध्य लक्ष्य मानते रहे हैं। कुछ तो अभी भी यही सोचते हैं कि यह काम भौतिक वैज्ञानिकों, खगोल वैज्ञानिकों और भविष्यवक्ताओं का है। किन्तु, हाल में, अधिकांश ने यह विश्वास व्यक्त किया है कि ऐसे उपकरणों का निर्माण किया जा सकता है, जो भूकम्पों के समय, स्थान और आकार की भविष्यवाणी कर सकते हों।

इस नयी धारणा के प्रादुर्भाव का अधिकांश श्रेय श्री यश अग्रवाल को है, जो न्यूयार्क सिटी के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे एक भारतीय भूकम्प-वैज्ञानिक हैं। उन्होंने अभी एक वर्ष पूर्व, इतिहास में पहला बार, भूकम्प की सही भविष्यवाणी की। उन्होंने इस भविष्यवाणी में भूकम्प के समय, स्थान और आकार का सही निर्धारण किया था। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि उनकी ऐतिहासिक सफलता के फलस्वरूप न केवल निकट भविष्य में भूकम्प की भविष्यवाणी एक नियमित दिनचर्या बन जायेगी, बल्कि भूकम्पों को नियन्त्रित करना भी अन्ततः सम्भव हो जायेगा।

अग्रवाल ने यह ऐतिहासिक सफलता 3 अगस्त की शाम को उस समय प्राप्त की जब न्यूयार्क सिटी के उत्तर में स्थित ब्ल्यू माउण्टेन लेक्स क्षेत्र में 2·6 आकार का भूकम्प अंकित हुआ था। उसके केवल 2 दिन पूर्व, उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि इस क्षेत्र में 3 अगस्त और 5 अगस्त के बीच के बीच 2·5 से 3 आकार का भूकम्प आयेगा।

श्री अग्रवाल न्यूयार्क के निकट स्थित कोलम्बिया विश्वविद्यालय की लेमाण्ट-डोहर्टी भूतत्व वेधशाला में स्नातकोत्तर वर्ग के छात्र हैं। वह 1971 से ही भूकम्प की भविष्यवाणी के विषय में अनुसन्धान कर रहे हैं। इससे पूर्व, सोवियत रूस और जापान में कुछ-एक भूकम्पों की भविष्यवाणी की गयी थी, लेकिन श्री अग्रवाल को, इतिहास में पहली बार, आने वाले भूकम्प के समय और स्थान के अतिरिक्त उसके आकार की भी सही भविष्यवाणी करने का श्रेय प्राप्त है। उन्होंने इसके लिए सोवियत वैज्ञानिकों द्वारा 1961 में विकसित विधि का प्रयोग किया।

आश्चर्य की बात यह है कि रूसियों ने अपनी खोज का प्रयोग भूकम्प की भविष्यवाणी करने के लिए नहीं किया। विश्व भर के वैज्ञानिकों ने भी इस खोज के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया। कितनों ही ने तो इसे सोवियत संघ की एक भूतात्विक चालबाजी समझ कर इसकी उपेक्षा कर दी थी।

1971 में, जब श्री यश अग्रवाल को सोवियत सिद्धान्त के विषय में जानकारी प्राप्त हुई, तब उन्होंने ब्ल्यू माउण्टेन लेक्स क्षेत्र में आने वाले कई छोटे-छोटे भूकम्पों के विवरणों की जांच करके यह निश्चय करने का फैसला किया कि यह सिद्धान्त इन भूकम्पों पर भी लागू होता है या नहीं। उन्होंने देखा कि यह सिद्धान्त उन पर लागू होता है। अतएव उन्होंने अपने प्रयोग की तैयारी प्रारम्भ कर दी।

जब उनकी खोज के परिणाम प्रकाशित हो गये, उसके बाद, कैलिफोर्निया इन्स्टिट्यूट आव् टेक्नोलोजी के वैज्ञानिकों ने उनकी विधि का प्रयोग करके रिवरसाइड, कैलिफोर्निया, के निकट 5·5 आकार के एक भूकम्प की भविष्यवाणी पाँच महीने पूर्व की। यद्यपि उसमें भूकम्प के स्थान और समय का निर्माण सही हुआ था, किन्तु उसका आकार अपेक्षाकृत छोटा रहा। उनकी भविष्यवाणी थी कि उसका आकार 5.5 होगा, जबकि सचमुच वह 4·1 ही रहा।

भविष्यवाणी की विधि बहुत ही सरल है। इसके लिए केवल ग्राफ पेपर की एक शीट, एक पेंसिल और भूकम्प-मापक उपकरणों की आवश्यकता होती है। लेकिन, श्री अग्रवाल के अनुसार, इस विधि का प्रयोग

इस बात पर निर्भर करता है कि आपको भूकम्प की घटना के कारणों और उसके घटित होने के ढंग की कितनी जानकारी है। और यह जानकारी अभी भी अपूर्ण है।

इस विधि का नाम 'वेग-अनुपात' या 'वेग-विसंगति' है। इसकी व्याख्या करते हुए, श्री अग्रवाल ने कहा कि भूकम्प के कारण मूलत: दो विशिष्ट प्रकार की कम्पन लहरें उत्पन्न होती हैं। उन्हें 'पी' (प्रेशर) और 'एस' (शियर) लहरें कहते हैं। दोनों लहरों के वेग का अनुपात भूकम्प के पहले—कभी-कभी कई सप्ताह या महीने पहले—घट जाता है, और फिर जब भूकम्प सचमुच आता है, उसके ठीक पहले यह अनुपात सामान्य स्तर पर लौट आता है।

श्री अग्रवाल और उनकी टोली ने 'वेग-विसंगति' की व्याख्या करने के लिए एक माडेल का भी निर्माण किया है। वह पृथ्वी के भीतर किसी विकारग्रस्त क्षेत्र में दबावों के अधिक बढ़ जाने पर अचानक चट्टानों के विस्तृत होने या फटने पर आधारित है। यह घटना भूकम्प के आने से कई दिन या वर्षों पहले हो सकती है। यह अवधि आने वाले भूकम्प के आकार पर निर्भर करती है।

पृथ्वी के धरातल का कई किलोमीटर ऊपरी भाग पानी से संसिक्त होता है और दरारों के कारण चट्टान में अनेक छोटे-छोटे गह्वर उत्पन्न हो जाते हैं। इससे 'पी' लहरों की गति, जो द्रवपूरित दरारों से होकर अधिक तेज गति से गुजरती हैं, बहुत धीमी हो जाती है। 'एस' लहरें प्राय: अप्रभावित बनी रहती हैं। अतएव अनुपात में तीव्र, कभी-कभी 15 प्रतिशत तक, गिरावट होती है। जब भूतल का पानी फिर धीरे-धीरे दरारों में भर जाता है, तो अनुपात सामान्य स्तर पर पहुँच जाता है। जब इस प्रक्रिया के दौरान और अधिक पानी अन्दर जाता है तब चट्टानों में पानी का दबाव बढ़ जाता है, जिससे चट्टानें फिसलने लगती हैं और फलस्वरूप भूकम्प उत्पन्न हो जाता है।

अमेरिका में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में हाल में हुई अनेक प्रगतियों ने उन दिनों को निकट ला दिया है, जब कम से कम कई दिन पूर्व भूचाल की सही सही भविष्यवाणी की जा सकेगी।

यद्यपि भूचाल की भविष्यवाणी अभी भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है, फिर भी, वैज्ञानिकों ने मौसम की भविष्यवाणी के क्षेत्र में विस्तृत अनुभव प्राप्त कर लिया है। यह विज्ञान भी अब ऐसे चरण में पहुँच चुका है, जिसमें काफी दिन पहले विश्वसनीय भविष्यवाणी की जा सकेगी।

अब मौसम सम्बन्धी उपग्रहों की एक नई पीढ़ी का प्रादुर्भाव हो चुका है, जो 24 घंटे अनवरत सूचनाएँ एकत्र करने में समर्थ है। साथ ही ऐसे शक्तिशाली संगणक बन चुके हैं, जो बड़ी शीघ्रता के साथ इन सूचनाओं को संग्रहीत करके उनका विश्लेषण कर सकते हैं।

इस प्रकार के नये उपग्रहों में से प्रथम, जिसका नाम 'एस एम एस' है, केप कैनेडी, फ्लोरिडा, से 17 मई, 1974 को अन्तरिक्ष में स्थापित हुआ।

यद्यपि यह ठीक उसी कक्षा में स्थापित नहीं हो सका, जिसमें इसे स्थापित करने की योजना थी, फिर भी यह अतलान्तक महासागर में ऊपर ब्राजील के पास चक्कर लगाने में समर्थ होगा, जहाँ से यह समूचे पश्चिमी गोलार्द्ध का अनवरत पर्यवक्षण कर सकेगा। इससे पूर्व के मौसम भूउपग्रह पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं, और कुछ कालान्तर से पृथ्वी के धरातल के एक विशेष-क्षेत्र का ही पर्यवेक्षण करते रहते हैं।

अमेरिका, द्वारा एक अन्य 'एस एम एस' उपग्रह 1974 में प्रक्षिप्त हुआ। इसे प्रशान्त महासागर के ऊपर स्थापित किया गया। इसी प्रकार के उपग्रह इस दशाब्द के दौरान सोवियत संघ, जापान और यूरोपीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन द्वारा भी स्थापित किये जायेंगे। इस प्रकार, मौसम उपग्रहों का एक संजाल स्थापित हो जायेगा, जो विश्व भर का पर्यवेक्षण करते रहेंगे। उनकी सहायता से वैज्ञानिक समुद्री तूफानों, चक्रवातों, झंझावातों और मौसम सम्बन्धी अन्य प्रगतियों के विषय में श्रेष्ठतर भविष्यवाणी करने की स्थिति में हो जायेंगे।

अमेरिकन नेशनल रेडक्रास के संकटकालीन सेवा विभाग के सहायक निदेशक, राय एस० पापकिन, ने कहा है कि भूचाल सम्बन्धी भविष्यवाणी के फलस्वरूप तत्सम्बन्धी बचाव की तैयारी के लिए पर्याप्त समय मिल जायेगा। स्कूल बन्द किये जा सकेंगे, खतरनाक भवनों को खाली किया जा सकेगा, अस्पतालों और सेवासदनों से रोगियों आदि को हटाया जा सकेगा। गैस और बिजली को बुझाया जा सकेगा और पानी तथा बिजली की संकटकालीन व्यवस्था की जा सकेगी।

कुछ वैज्ञानिक इससे भी अच्छे परिणामों की खोज में संलग्न हैं। वे भयानक और क्षतिकारी भूचालों को रोकने के उपाय ढूंढ़ रहे हैं। अमेरिकी भूतत्व सर्वेक्षण विभाग के दो वैज्ञानिक, जान हेली और सी० बैरी रैले, एक तेल की खान में भूचाल को आवश्यकतानुसार उत्पन्न करने या रोकने की व्यवस्था में संलग्न रहे हैं। वे खान में पानी छोड़ कर या उसमें से पानी को बाहर निकाल कर ऐसा करते रहे हैं। उनके इस प्रयास से यह सिद्ध हो जाता है कि बड़े पैमाने के भूचालों को नियन्त्रित करने का उपाय ढूंढ़ा जा सकता है।

अधिकतम आशावादी अनुसंधानकर्ता भी यह मानते हैं कि इस प्रकार की नियन्त्रण व्यवस्था को ढूंढ़ निकालने में काफी समय लगेगा। किन्तु भूचाल की विश्वसनीय भविष्यवाणी के सम्भव हो जाने पर सुरक्षा की अन्तरिम व्यवस्था की जा सकेगी।

डा० शिव प्रकाश
रसायन विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

● ●

[पृष्ठ 6 का शेषांश]

वैज्ञानिकों का ध्यान गया है। फास्फोरस प्रदायक उर्वरकों में मृदा फास्फोरस को विलयित करने वाले जीवाणुओं से लाभ उठाया जाता है। ये हैं बैसिलस मेगाथीरियम। इनसे युक्त जैव उर्वरक को 'फास्फोबैक्ट्रिन' कहा जाता है। रूस में इसका पहले पहल प्रचलन 1947 ई० में हुआ। अमरीका में भी तत्सम्बन्धी प्रयोग हुये हैं। हमारे देश में 1968 से जो प्रयोग प्रारम्भ हुये वे अभी भी प्रायोगिक अवस्था में हैं। रूस में ऐसा विश्वास है कि एजोटोबैक्ट्रिन तथा फास्फोबैक्ट्रिन को एक साथ डालने से अच्छे फल प्राप्त होते हैं। वहाँ मिश्रित जैव उर्वरकों के प्रयोग की सम्भावनाओं पर कार्य किया जा रहा है।

जैव उर्वरकों की एक और कोटि है 'सिलिकोजेन'। इसके प्रयोग से मिट्टियों में पोटैसियम की उपलब्धि बढ़ती है। अभी इस दिशा में केवल रूस में प्रयोग हुये हैं।

जैव उर्वरकों की सूची इतनी ही नहीं है। मिट्टियों में ऐसे अनेक सूक्ष्मजीवाणु तथा जीव हैं जिनमें नाइट्रोजन यौगिकीकरण की अभूतपूर्व क्षमता पाई जाती है। इनमें से स्यूडोमोनास, ऐक्रोमोबैक्टर. आदि सूक्ष्मजीवाणु, कुछ यीस्ट तथा कुछ कवक महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त शैवालों में से नील हरित शैवाल धान की खेती में उर्वरता की रहनुमाई करते हैं।

इन जैव उर्वरकों की क्रियाविधि वैज्ञानिकों की खोजों का विषय रही है जिसके फलस्वरूप नवीन तथ्य प्रकट हुये हैं। विभिन्न फसलों के साथ बाहर से प्रविष्ट सूक्ष्मजीवों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा जैव उर्वरकों को तैयार करने की विधियों पर विशद अध्ययन हुआ है। अगले अंक में सम्बन्धित सामग्री दी जावेगी।

(क्रमश : 3)

● ●

हमारे देश की पक्षी—2

विमलेन्दु वर्मा

बच्चों ! पिछले अंक में तुम्हें बनेश, घोमरा, किलकिला, भीमराज तथा कालातीतर के बारे में बताया गया था। इस अंक में करोच बगुला, क्वाक, अंजन, दैया, बया, फ़ाख्ता तथा मैना की चर्चा की जायगी।

करीच बगुला—यह पक्षी दलदल में रहता है। इसके शरीर का रंग तो सफेद होता है परन्तु चोंच काली होती है। टांगों का रंग भी काला होता है और टांगें लम्बी भी होती हैं। अण्डा देने के ऋतु में नर बगुलों के सिर पर एक कलगी निकल आती है और साथ ही साथ पीठ और छाती पर मुलायम-मुलायम पंख निकल आते हैं। यह पक्षी अपना घोंसला तिनकों से बनाता है और उसमें घास की तह बिछाता है। करीच बगुला अपना घोंसला अंजन तथा अन्य जल के पक्षियों के घोंसलों के साथ पेड़ों पर बनाता है। दक्षिणी भारत में तो अण्डा देने का समय नवम्बर से फरवरी है जबकि उत्तरी भारत में यह समय जुलाई से अगस्त तक होता है। अण्डे हल्के नीले रंग के होते हैं। कीडे, मेढ़क तथा छोटी मछलियाँ आदि इसका मुख्य भोजन हैं।

क्वाक—क्वाक के शरीर के ऊपरी भाग का रंग स्लेटी और नीचे का सफेद होता है। पीठ और सिर का रंग काला होता है और सिर पर एक लम्बी सी काली और सफेद कलगी होती है। क्वाक दिन भर पेड़ों पर आराम करते हैं और गोधूलि के समय ही बाहर निकलते हैं और एक-एक करके उड़ जाते हैं। शाम को वे खाने की खोज में निकलते हैं। मछली, मेढक तथा केकड़े इनका मुख्य भोजन हैं इसीलिये शाम को यह पक्षी तालाबों तथा छिछली नदी पर पहुँच जाते हैं। क्वाकों के घोंसले पेड़ों पर बहुत ऊँचाई में तथा सदैव समूह में बनाये जाते हैं। अप्रैल से सितम्बर के बीच का समय अण्डा देने का समय होता है। इसके अण्डे हल्के हरे रंग के होते हैं। मादा क्वाक एक समय में चार-पाँच अण्डे देती है।

अंजन—अंजन को कबुद भी कहते हैं। इसका शरीर गीद्ध के समान होता है और टांगें लम्बी या पतली होती हैं। इसकी पीठ और पंख हल्का स्लेटी तथा सिर व गर्दन सफेद होती है। इसकी गर्दन लम्बी होती है और 'S' के आकार की होती है। गर्दन के सामने की ओर काली चित्तीदार लकीर होती है और सिर पर दो लम्बे काले पंख होते हैं। गर्दन पर बाल होते हैं जो बिखरे रहते हैं।

अंजन पानी में रहने वाला पक्षी है। यह तैर नहीं सकता। यह तालाब या छिछली नदियों में स्थिर खड़ा रहता है और मछली या मेढक की प्रतीक्षा करता है। जब मछली या मेढक निकट दिखाई पड़ता है तो उसे यह पकड़ लेता है। यह पक्षी पानी में अकेला रहना पसन्द करता है। घोंसला पेड़ों की चोटी पर बनाता है। कई पक्षी एक साथ घोंसला बनाते हैं। मादा अंजन गहरे हरे रंग के 4-6 अण्डे देती है। अण्डे देने का समय नवम्बर से मार्च तक होता है। उड़ते समय अंजन अपनी गर्दन पीछे की ओर खींच कर सिर कन्धों के बीच छिपा लेता है और उसकी लम्बी टांगें पीछे से सिमटी रहती हैं।

दैया—लम्बी पूँछ वाला यह एक छोटा पक्षी है। इसकी पूँछ कभी कभी तो 15-17 इंच लम्बी होती है। दैया का रंग नीला होता है और कहीं-कहीं सफेद रंग की झलक मिलती है। इसका सिर काला होता है।

परों में कुछ का रंग काला होता है। पीठ नीले जामुनी रंग की होती है तथा नीचे से शरीर सफेद स्लेटी होता है। कुछ पक्षियों के चोंच का रंग लाल होता है और कुछ का पीला होता है। दैया अपना घोंसला पत्तों तथा तिनकों से बनाता है जिसका आकार प्याले जैसा होता है। कीड़े-मकोड़े तथा फल इसका मुख्य आहार है। कभी-कभी दूसरे पक्षियों के अंडे बच्चे भी खा जाता है। मादा पक्षी पत्थर के रंग के 5-6 अंडे देती है। अंडे देने का समय अप्रैल से जून तक होता है।

बया—पीठ पर भूरी चित्तियों वाला यह छोटा सा पक्षी प्रकृति का अद्‌भुत शिल्पी है। यह अपना घोंसला इतना सुन्दर और इस शिल्पकारी से बनाता है कि उसे देख कर इस पक्षी की जितनी प्रशंसा की जाय कम है। बोतल के आकार के कई घोंसले पास-पास पेड़ों से लटके दिखाई पड़ते हैं। घास के टुकड़ों तथा धान के पत्तों का प्रयोग करके नर बया घोंसला बनाता है। घोंसले का रास्ता एक लम्बी सँकरी गली के रूप में होता है जो कि ऊपर जाकर चौड़ा हो जाता है। अन्दर एक ओर अंडे देने के लिये एक थैली होती है। बया अपना घोंसला तालाब के किनारे और धान के खेतों के पास बनाता है।

बया दाने और बीज खाते हैं। ये फसल को काफी हानि पहुँचाते हैं। अंडे देने के ऋतु में बया का रंग बदल जाता है। उस समय नर पक्षी की छाती का रंग पीला होता है और उसके सिर और ठुड्डी के दोनों ओर काले भूरे निशान आ जाते हैं। अंडे देने का समय मई से सितम्बर तक होता है। अंडे सफेद होते हैं। एक समय में मादा बया 2-4 अंडे देती है।

फ़ाख्ता—फ़ाख्ता देखने में तो कबूतर की तरह होता है पर उसका आकार छोटा होता है। फ़ाख्ता तीन प्रकार का होता है—(1) ढ़ोर फ़ाख्ता, (2) चित्ता फ़ाख्ता, (3) छोटा फ़ाख्ता। ढोर फ़ाख्ता की गर्दन की पिछली ओर एक धारी होती है। चित्ता फ़ाख्ता हल्के गुलाबी-भूरे तथा स्लेटी रंग का होता है और उस पर सफेद धब्बे होते हैं। उसकी गर्दन के पीछे शतरंज की तरह काले सफेद निशान होते हैं। छोटा फ़ाख्ता आकार में छोटा और शर्मीला होता है। उसकी पीठ के ऊपरी भाग का रंग भूरा-स्लेटी तथा नीचे का भाग गुलाबी भूरा होता है। उसकी गर्दन के दोनों ओर भूरे और काले चौखाने होते हैं। फ़ाख्ता इतना शान्तिप्रिय और शर्मीला होता है कि इसे शान्ति का चिह्न माना जाता है।

मैना—मैना देसी और पहाड़ी दो प्रकार की होती है। पहाड़ी मैना देसी मैना को अपेक्षा बड़ी और गहरे रंग की होती है। चोंच का रंग चमककार पीला होता है और आँखों पर गोलाकार पीला निशान होता है। दोनों ही अपने-अपने घोसलें पेड़ के खोखले तने में बनाती हैं। इसका घोंसला तिनकों, जड़ों, काग़ज, रेशों तथा रुई का बना होता है। देसी मैना को बचपन में ही पकड़ कर पालतू बना लिया जाता है। मैना ऐसी बोली बोल सकती है जैसे हमारे शब्दों को दोहरा रही हो। पहाड़ी मैना देशी मैना की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह से मनुष्य की बोली की नकल कर सकती है। अंडों को नर व मादा दोनों ही मिल कर सेते हैं।

• •

मछली का तेल

डा० राम चन्द्र कपूर

यद्यपि लोग शताब्दियों पूर्व भी काड मछली के तेल के औषधीय गुणों से परिचित थे परंतु इस बात का सबसे पहले पता कि इसमें विटामिन ए तथा डी मौजूद हैं वैज्ञानिकों को 1910 में ही चला। काड मछली के जिगर के अलावा अन्य मछलियों जैसे रे, शार्क आदि के जिगर में भी तेल अधिक मात्रा में पाया जाता है। मछलियों के जिगर में मुख्यत: निम्न पदार्थ पाये जाते हैं : वसा (55-75%), प्रोटीन (5-9%) तथा जल (20-36%),

मछली का तेल दो प्रकार का होता है, एक तो वह जो कि मछली के पूरे शरीर से प्राप्त किया जाता है तथा दूसरा वह जो कि केवल जिगर से प्राप्त होता है। अच्छी किस्म का पूरी मछली से प्राप्त किया हुआ तेल निर्गंधीकरण तथा हाइड्रोजनीकरण के पश्चात् खाने के लिये इस्तेमाल किया जाता है, तथा निम्न किस्म का तेल कपड़े धोने का साबुन बनाने में। इसके अतिरिक्त मछली का तेल मोमबत्ती, स्नेहक तथा छपाई व जलाभेद्य स्याही के बनाने में भी काम आता है।

यद्यपि मछली का जिगर तेल प्राप्त करने का एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्रोत है परंतु कुछ मछलियों जैसे हैलिबट तथा अन्य मछलियों में तेल उनके आन्तरांग में भी पाया जाता है। मछलियों के जिगर से प्राप्त तेल तीन प्रकार के होते हैं : (i) जिनमें तेल के अंश की अधिकता तथा विटामिनों की अंत:शक्ति (पोटैंशी) कम रहती है, (ii) जिनमें तेल के अंश की कमी तथा विटामिनों की अंत:शक्ति अधिक रहती है जैसे कि हैलिबट व टूना मछलियों के जिगर से प्राप्त तेल में, (iii) जिनमें तेल के अंश व विटामिनों की अंत: शक्ति दोनों की अधिकता रहती है जैसे कि जाइगीना मछली के जिगर के तेल में। जिगर से प्राप्त किये हुए तेल में विटामिन का अंश मछली की आयु व उसके सेक्स, उसके भोजन की गुणावस्था, प्राप्ति स्थान आदि पर निर्धारित है।

तेल प्राप्त करने के लिए मछलियों के जिगर को इकट्ठा किया जाता है तथा उसको साधारण नमक में परिरक्षित किया जाता है जिससे कि इसमें अणुजीवी विघटन न हो। तेल प्राप्त करने की क्रिया मुख्यत: जिगर में तेल के अंश तथा विटामिन ए की अंत:शक्ति पर आधारित है। सबसे आसान तथा आर्थिक दृष्टि से ठीक तरीके में जिगर को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट कर पानी की उचित मात्रा में उबाला जाता है। तेल आकर पानी की सतह पर जमा हो जाता है तथा वह छान लिया जाता है।

मछली के तेल का उद्योग भारत में सर्वप्रथम द्वितीय महायुद्ध के दौरान मद्रास व ट्रावनकोर में स्थापित किया गया था। हमारे देश में मछली का तेल मुख्यत: शार्क व रे मछलियों के जिगर से प्राप्त किया जाता है। तेल में विटामिन ए की औसत मात्रा 10,000 से 12,000 आई० यू० प्रतिग्राम तक हो सकती है, परंतु आम जनता के लिए बाजार में बिकने वाले तेल में विटामिन ए की मात्रा 1500 आई० यू० तथा विटामिन डी की मात्रा 100 आई० यू० प्रतिग्राम निर्धारित की गयी है। केरल, महाराष्ट्र तथा तामिलनाडु राज्य सरकारों के मत्स्य विभाग औषधीय तथा व्यापारिक इस्तेमाल के लिये मछली के तेल का उत्पादन करते हैं।

डा० राम चन्द्र कपूर,
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर-1

क्या आप जानते हैं ?

—शुकदेव प्रसाद

- लियूएन हॉक (1632-1723) नामक उच्च वैज्ञानिक ने सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार किया जिससे छोटी से छोटी वस्तुएं देखी जा सकीं।
- लन्दन में रॉबर्ट हुक (1635-1703) नामक वैज्ञानिक ने जब कार्क की बहुत पतली सी काट को अपने सूक्ष्मदर्शी से देखा तो उसे कुछ कोष्ठ जैसी रचनाएँ दिखाई पड़ीं। उसने इन रचनाओं को केल 'कोशिका' नाम दिया।
- नॉल तथा रुस्का ने 1632 में एक नए सूक्ष्मदर्शी 'इलेक्टान सूक्ष्मदर्शी' का आविष्कार किया जिसकी सहायता से किसी वस्तु को लाखों गुना आवर्धित किया जा सकता है। इससे कोशिका सम्बन्धी ज्ञान में बहुत अधिक वृद्धि हुई है।
- जर्मन वैज्ञानिक थियोडर श्वान ने बताया कि कोशिका जीव है और समस्त जन्तु व पौधे निश्चित नियमों के अनुसार व्यवस्थित इन्हीं जीवों के समूह मात्र है।
- कोशिका जीवन की कार्यात्मक इकाई है।
- प्रोफेसर हक्सले के शब्दों में जीव द्रव्य जीवन का भौतिक आधार है।
- जिन वस्तुओं से जीव द्रव्य का निर्माण होता है, सब निर्जीव हैं लेकिन जीव द्रव्य सजीव होता है।
- मृत जीव द्रव्य में लगभग 34 तत्व परमाणु तथा अणुओं के रूप में मिलते हैं।
- अनुमान है कि एक वयस्क मनुष्य के शरीर में लगभग 60 खरब कोशिकाएँ होती है। इनमें से हर सेकेन्ड लगभग 5 करोड़ कोशिकाओं का नाश होता है और इन मृत कोशिकाओं का स्थान लेने के लिए इतनी ही कोशिकाओं का जन्म होता है।
- 'जीन' संसार का सबसे विचित्र रसायन है जिसमें अपनी प्रतिकृति उत्पन्न करने की नहीं वरन् जीवधारियों के शरीर में होने वाली अनगिनत क्रियाओं को आरम्भ और नियंत्रित करने की भी क्षमता होती है।
- यदि मानव शरीर की समस्त कोशिकाओं में उपस्थित सभी जीवों को एक जगह समेट कर रख दिया जाय तो वह एक साधारण आलपिन की नोक के एक प्रतिशत क्षेत्र का भी आधा स्थान ही करेंगे।
- अनुमानतः शरीर में जीनों की संख्या 4×10^7 होती है।
- एक क्रोमोसोम में अनुमानतः 1250 जीव होते हैं।
- मनुष्य की एक कोशिका में जीनों की संख्या 20,000 तक होती है। इसके सृजन के लिए 700 करोड़ न्यूक्लिओटाइडों को गूथना पड़ेगा।
- ऊर्जा जीव द्रव्य का अभिन्न अंग है।
- वाटसन और क्रिक ने DNA की संरचना ज्ञात की और उसका माडल प्रस्तुत किया।
- आनुवंशिकता का सर्वप्रथम वैज्ञानिक अध्ययन ग्रेगर मेण्डल ने किया, इस कारण उसे आनुवंशिकता का पिता कहते हैं।
- फ्रांसीसी वैज्ञानिक लामार्क पहला जीव वैज्ञानिक था, जिसने विकास के सम्बन्ध में सन् 1809 में विश्व के समक्ष अपना मत प्रस्तुत किया।

● ●

1975—एक व्यस्त अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरिक्ष अभियान वर्ष

अमेरिकी राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रशासन (नैसा) के प्रशासक, डा० जेम्स सी० फ्लेचर, ने कहा है : "विश्व के अपेक्षाकृत अधिक राष्ट्र आज अन्तरिक्ष विज्ञान और अन्तरिक्ष अनुसन्धान के भूतलीय उपयोगों के लाभों को पहले किसी भी समय की अपेक्षा अधिक मान्यता देने लगे हैं।

'नैसा' ने 1975 के लिए अन्तरिक्षीय प्रक्षेपण के जो कार्यक्रम निश्चित किये है, उनमें 25 में 15 अन्तरिक्ष यान अन्य देशों के या निजी अमेरिकी कम्पनियों के हैं, अथवा संयुक्त अन्तर्राष्ट्रीय अभियानों से सम्बद्ध हैं। 1974 में कुल 15 प्रक्षेपणों में से इस प्रकार के प्रक्षेपण 12 थे।

'नैसा' ने 1975 के लिए अन्तरिक्षीय प्रक्षेपण का एक व्यस्त कार्यक्रम निर्धारित किया है। इसके अन्तर्गत कुल 25 अन्तरिक्षयान प्रक्षिप्त होंगे। यह संख्या 1974 की तत्सम्बन्धी संख्या से 10 अधिक है। इनमें एकमात्र समानव उड़ान वह है जो अमेरिका और सोवियत संघ द्वारा अपोलो-सोयुज संगमन के सिलसिले में सम्पन्न होगी। शेष 24 अन्तरिक्षयानों में, 2 मंगल ग्रह को, 2 सूर्य के अध्ययन के लिए, 9 संचार और नौकानयन के लिए, 3 पृथ्वी के वायुमण्डल और पर्यावरण के अध्ययन के लिए, 4 पृथ्वी के मौसम, जलवायु और वायु प्रदूषण के अध्ययन के लिए, 1 पृथ्वी के साधनों के अध्ययन के लिए, 1 महासागरीय अनुसन्धान के लिए और 2 खगोलशास्त्रीय अध्ययन के लिए प्रक्षिप्त होंगे।

इनमें से 12 अन्तरिक्षयान दूसरे राष्ट्रों अथवा अन्य अमेरिकी सरकारी या निजी एजेन्सियों के हैं, जो प्रक्षेपण का व्यय 'नैसा' को प्रदान करेगें। इनमें, कनाडा (टेलिसैट), पश्चिमी जर्मनी और फ्रांस (सिम्फनी 2) के संचार उपग्रह; 'इण्टेलसैट' (जो 80 राष्ट्रों की एक अन्तर्राष्ट्रीय संचार परिषद है) के 2 उपग्रह; और अमेरिकी संगठनों के 8 उपग्रह शामिल हैं।

नैसा को ब्रह्माण्ड किरणों के अध्ययन के लिए प्रक्षिप्त होने वाले ब्रह्माण्डीय पर्यवेक्षण उपग्रह का प्रक्षेपण व्यय भी अदा किया जायेगा। यह उपग्रह यूरोपीय अन्तरिक्ष अनुसन्धान संगठन का है। अमेरिका के दो 'कास्मैट' उपग्रह अन्तर्राष्ट्रीय उपयोग के लिए होंगे। वे हैं : 'मेरीसैट-ए' तथा 'मेरीसैट-बी'। ये नौकायन उपग्रह हैं, जो समुद्र में तैरने वाले जहाजों से संचार सम्पर्क के लिए प्रयुक्त होते हैं। उनमें अनेक सम्पर्क सूत्रों का प्रयोग अमेरिकी नौसेना करेगी, लेकिन शेष विश्व के अन्य ग्राहकों को उपलब्ध होंगे।

इस वर्ष की दो सबसे बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय परियोजनाएं सहकारी हैं। इनमें हेलियोज-बी और अपोलो सोयुज परीक्षण परियोजनाएँ शामिल हैं। ये परियोजनाएँ 'नैसा' और अन्य देशों द्वारा सहकारिता के आधार पर संचालित होंगी और इनमें भाग लेने वाला प्रत्येक पक्ष व्यय का कुछ अंश वहन करेगा। हेलियोज-बी पश्चिमी जर्मनी द्वारा निर्मित अन्तरिक्षयान है, जो सूर्य के निकट से पर्यवेक्षण करेगा। यह सूर्य से 2·6 करोड़ मील की दूरी के भीतर से उड़ान करेगा। यह दिसम्बर 1974 में प्रक्षिप्त हेलियोज-ए से भी कम दूरी से सूर्य के निकट से गुजरेगा। अब तक इन उपग्रहों के अलावा सूर्य से इतने निकट तक कोई अन्य उपग्रह नहीं गया है।

इसका निर्माण पश्चिमी जर्मनी ने किया है और वही इसका प्रबन्ध भी कर रहा है, हालांकि इसके आंकड़ों का विश्लेषण जर्मनी, इटली, आस्ट्रेलिया और अमेरिका के वैज्ञानिक करेंगे।

अपोलो-सोयुज परीक्षण परियोजना दो देशों की पहली संयुक्त अन्तरिक्ष उड़ान होगी जिसमें दोनों देशों

की संयुक्त भावी अन्तरिक्ष उड़ानों के लिए पृथ्वी की कक्षा में दोनों देशों के अन्तरिक्षयानों के संगमन सम्बन्धी परीक्षण किये जायेंगे।

दस-दिनों की इस उड़ान का प्रारम्भ दो मानवों युक्त रूसी सोयुज अन्तरिक्ष यान के प्रक्षेपण से होगा। यह प्रक्षेपण 15 जुलाई को कजाकस्तान के बाइकोण्डर प्रक्षेपण स्थल से सम्पन्न होगा। उसके $7\frac{1}{2}$ घण्टे बाद, अमेरिकी अपोलो यान फ्लोरिडा के कैनेडी अन्तरिक्ष केन्द्र से प्रक्षिप्त होगा। इस पर तीन अन्तरिक्ष यात्री होंगे। यह अन्तरिक्ष यान दो दिन बाद पृथ्वी की कक्षा में सोयुज से संगमित होगा। वे दो दिनों तक संयुक्त रहेंगे, जिसके दौरान दोनों अन्तरिक्षयानों के अन्तरिक्ष-यात्री एक-दूसरे की कैबिनों में जायेंगे।

फिर अलग होकर सोयुज पृथ्वी पर लौट आयेगा। यदि सभी बातें सकुशल सम्पन्न हुईं तो अपोलो 6 सप्ताह तक कक्षा में बना रहेगा और उसके अन्तरिक्ष-यात्री वहाँ वैज्ञानिक प्रयोग करते रहेंगे।

1975 के लिए 'नैसा' द्वारा निर्धारित उड़ानों में से कई का उद्देश्य व्यापक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय है, हालांकि उनका व्यय 'नैसा' ही पूरा करेगा। इनके द्वारा पृथ्वी का अध्ययन किया जायेगा।

पृथ्वी के साधनों के पर्यवेक्षण के लिए दूसरा 'अर्ट्स-बी' है, जो 19 जनवरी के आसपास प्रक्षिप्त होगा। अर्ट्स-1 जुलाई 1972 में प्रक्षिप्त हुआ था और वह अभी भी सक्रिय है। यह अब तक पृथ्वी के धरातल के विभिन्न भागों के 1 लाख से अधिक चित्र पृथ्वी पर भेज चुका है। इसके परिणामों का विश्लेषण करने में 40 से अधिक देशों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के वैज्ञानिक संलग्न हैं। लेकिन इसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्व इससे भी अधिक है। ब्राजील और कनाडा ने नैसा के साथ एक समझौते के अनुसार अपने यहां भूतलीय केन्द्र स्थापित किये हैं, जो उनके अपने देशों सम्बन्धी आंकड़े सीधे उस उपग्रह से ही प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार का एक केन्द्र इटली भी स्थापित कर रहा है।

31 जनवरी को नैसा द्वारा ऋतुओं के अध्ययन सम्बन्धी दूसरा 'एस एम एस' उपग्रह प्रक्षिप्त किया जायेगा। 'एस एम एस-2' को प्रशान्त महासागर के ऊपर स्थापित किया जायेगा, वहां से वह रात-दिन लगातार बादलों के नीचे उस क्षेत्र में हो रही मौसम सम्बन्धी प्रगतियों का पर्यवेक्षण करेगा। 'एस एम एस-1' अटलाण्टिक महासागर के ऊपर स्थापित है। इसके साधनों से प्राप्त चित्र विश्व भर के अनेक देशों में स्थापित मौसम अनुसन्धान केन्द्रों को जिनकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही है, सुलभ किये जा रहे हैं।

पृथ्वी के वायुमण्डल का पर्यवेक्षण दो अन्तरिक्षयानों द्वारा किया जायेगा। ये हैं—निम्बस-6 और 'जियोस-सी'। निम्बस द्वारा उष्ण कटिबन्ध से समशीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों में ऊर्जा की गतिमानता का अध्ययन किया जायेगा। यह पर्यावरण पर प्रदूषण के प्रभावों का भी अध्ययन करेगा। 'जियोस-सी द्वारा महासागरों की सतह का पर्यवेक्षण किया जायेगा।

1975 में, भारत सरकार नये एप्लिकेशन्स टेक्नोलाजी सैटेलाइट (एटीएस-6) का प्रयोग अपने 5000 गाँवों और नगरों तक विविध विषयों से सम्बद्ध टेलिविजन कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए करेगा। 1974 में प्रक्षिप्त 'एटीएस' उपग्रह का प्रयोग अमेरिका ने अपने यहाँ के दूरस्थ और अलग-अलग पड़े स्थानों तक शैक्षणिक और चिकित्सा सम्बन्धी कार्यक्रम प्रसारित करने के लिए किया।

1975 के कार्यक्रम के अन्तर्गत, 3 ग्रहीय और खगोल वैज्ञानिक उड़ानें भी शामिल हैं। 'एस ए एस-सी' उपग्रह द्वारा ब्रह्माण्ड स्थित वस्तुओं से एक्स-रे के निस्सरण का अध्ययन किया जायेगा। इसे नैसा के एक राकेट द्वारा कीनिया (अफ्रीका) के समुद्र तट के पास स्थित एक इतालवी प्रक्षेपण मंच से किया जायेगा। एक अन्य उड्डयनशील सौर वेधशाला, 'ओ एस ओ-8' अमेरिका से प्रक्षिप्त होगी।

अब तक के सबसे जटिल और उत्कृष्ट मानवरहित अन्तरिक्ष-यान-2 मंगलग्रह सम्बन्धी वाइकिंग अन्तरिक्ष-यान—अगस्त में प्रक्षिप्त होंगे। नैसा द्वारा इनकी सहायता से पहली बार मंगलग्रह पर उपकरण सुगमता के साथ उतारे जायेंगे। इन उपकरणों द्वारा मंगल की

[शेष पृष्ठ 23 पर

नये आविष्कार

मोड़ी जा सकने वाली फोल्डिंग हाईचेयर

केण्टुकी की एक कम्पनी ने शिशुओं को खाना खिलाने के लिए मुड़ सकने वाली एक ऊंची कुर्सी बाजार में प्रस्तुत की है। इस कुर्सी का नाम 'टेलर टोट-र' है। इस नयी कुर्सी का वजन हल्का है, और इसे आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया जा सकता है। इसे चलाना बहुत आसान है।

इसमें पोले इस्पात का एक मोड़ा जा सकने योग्य फ्रेम लगा होता है। कमरे की फर्श पर इसे फिसलाने के लिए विनायल की गेंदें तथा एक कांसे की क्रोम मढ़ी ट्रे लगी है। सीट और पीछे के भाग पर नाइलोन से पुष्ट किया विनायल लगा है।

कचड़े की धुलाई के लिये नये प्रकार का कन्वेयर

पर्यावरणीय प्रदूषण को दूर करने के लिए चलाये गये अभियान के फलस्वरूप अपसर्जित पदार्थों को ठिकाने लगाने अथवा पुनः उपयोग के योग्य बनाने के लिए नये-नये उत्पाद विकसित किये गये हैं। इन्हीं में से एक उत्पाद है 'इनवरोनमेण्टल कन्वेयर', जो एक प्रकार का नालीनुमा रोलर बेड है। इसका विकास टूटे कांच, लकड़ी के टुकड़े और छिलके, अल्यूमिनियम के टुकड़े, खाली डिब्बे और अन्य अपसर्जित सामग्रियों को ढोने के लिए किया गया है।

इस कन्वेयर में एक गुंथी हुई पोलिएस्टर की पट्टी लगी होती है, जिसकी चौड़ाई 12 इंच से 30 इंच तक होती है। इस पट्टी की दोनों ओर 8 इंच ऊंचे गेज होते हैं, जो 45 अंश पर मुड़े होते हैं। इस प्रकार वह पट्टी एक नाली जैसी बन जाती है, जिसमें अपसर्जित पदार्थ, टिन आदि रखे जाते हैं। यह बिजली से संचालित होती है। इस कन्वेयर का निर्माण अमेरिका में अरकन्सास की हाइड्रोल कन्वेयर कम्पनी, इन्क, ने किया है।

एस्ट्रोग्लाइड : एक नवीन परिवहन-प्रणाली

विश्व भर में सड़कों पर चलने वालों की भीड़ एक भारी समस्या बनी हुई है। अब, अमेरिका की एक कम्पनी ने एक ब्रिटिश फर्म के सहयोग में इस समस्या का सर्वश्रेष्ठ समाधान ढूँढ़ निकालने का दावा किया है। उन्होंने 'एस्ट्रोग्लाइड' नामक एक पटरी पर चलने वाली परिवहन प्रणाली विकसित की है।

निर्माताओं का उद्देश्य नवीनतम वैज्ञानिक प्रगतियों का लाभ उठा कर तकनीकी दृष्टि से उत्कृष्टतम कोटि की एक संगणकयुक्त तथा प्रदूषणविहीन प्रणाली विकसित करना रहा है। अमेरिकी कम्पनी का विश्वास है कि एस्ट्रोग्लाइड में यह विशेषता पायी जाती है। इसके लिए इसमें दो विशेषताओं का समावेश किया गया है। वे हैं : एक हवाई गद्दी और दूसरी लाइनियर प्रोपल्सन प्रणाली।

लाइनियर प्रोपल्सन प्रणाली विकसित करने का श्रेय अमेरिकी फर्म की एक यूरोपीय सहायक कम्पनी, हर्बर्ट मोरिस को है, जो इंगलैण्ड में स्थित हैं। इन विशेषताओं के कारण इस परिवहन प्रणाली की गति जहाँ तेज होती है, वहीं उसमें धक्के नहीं लगते और न ही आवाज होती है। इस प्रणाली द्वारा माल, यात्री, डाक आदि सभी की ढुलायी हो सकती है। इसका निर्माण इलिनोय के पी आर टी सिस्टम्स कारपोरेशन ने फिलाडेल्फिया की फ्रैंकलिन इन्स्टिट्यूट रिसर्च लैबोरेटरीज और उपर्युक्त इंग्लिश फर्म के सहयोग से किया है। कारपोरेशन का कहना है कि इसकी प्रति मील लागत 25 लाख डालर से 35 लाख डालर तक है, जो बहुत ही कम है। इस समय यह प्रणाली फ्रांस, बेल्जियम, इजरायल और इंग्लैण्ड को निर्यात की जा रही है।

बड़े पैमाने पर वहनीय कक्षाओं का निर्माण

फ्लोरिडा की एक फर्म, हूले इण्डस्ट्रीज, इन्क०, बड़े पैमाने पर वहनीय कक्षाएं या अध्ययन कक्ष निर्मित

कर रही है, जिनमें आवश्यकतानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार की सजावटों, छतों और भीतरी बनावटों की व्यवस्था की जा सकती है।

निर्माताओं का कहना है कि वहनीय कक्षाओं को आसानी से किसी एक स्थान पर स्थापित किया जा सकता है, या उस स्थान से हटा कर अन्यत्र ले जाया जा सकता है। चूंकि इनका निर्माण बड़े पैमाने पर होता है, इसलिए उनकी लागत भी बहुत ही कम पड़ती है।

कक्षाओं का निर्माण विभिन्न आकारों में हो सकता है। लेकिन आम तौर पर वे 32 फुट लम्बी और 24 फुट चौड़ी होती है। बाहरी दीवारें पूर्व-निर्मित अल्यूमिनियम या प्लाईवुड की हो सकती है। उन्हें विभिन्न रंगों में रंगा जा सकता है। भीतरी दीवारें विनयाल से ढके पैनेलों की होती हैं। छतें रंगे हुए इस्पात की चादरों की या एस्बेस्टस की हो सकती है। साथ ही फर्श, खिड़की, दरवाजे आदि भी विभिन्न आकारों, किस्मों में उपलब्ध हैं।

होटलों के लिए नयी सुरक्षा-प्रणाली

आजकल होटलों में एक ऐसी नवीन सुरक्षा-प्रणाली अपनायी जा रही है, जिसके अन्तर्गत दरवाजों में चाबियों के स्थान पर विद्युत संकेतांकित कार्डों का प्रयोग होता है और इस प्रकार प्रबन्धकों के लिए नियन्त्रण रखना आसान हो जाता है। इस प्रणाली से सम्बद्ध उपकरण यूरोप, कनाडा और अमेरिका के बाजारों में उपलब्ध है।

'कार्डगार्ड' नामक इस प्रणालो में चाबियों की आवश्यकता नहीं होती है। साथ ही, परम्परागत तालों और अन्य अनेक समस्याओं, जैसे चाबियों का खो जाना, चुराया जाना अथवा दुहरी नकली चाबियाँ बना लेना आदि, से छुटकारा मिल जाता है। इसका प्रयोग करने से प्रबन्ध-व्यवस्था में समय की भी बचत होती है।

इस उपकरण से लाबी डेस्क के लिए एक मास्टर कनसोल तथा हर कमरे के लिए विद्युदाणविक टर्मिनल अथवा स्टेशन की पोर्टस होते हैं।

यह प्रणाली अतीव प्रभावकारी होने के साथ-साथ अत्यधिक सस्ती भी है। इस प्रणाली के अन्तर्गत होटल में ठहरने वाले अतिथि और उसके साथियों के लिए प्लास्टिक का एक कार्ड पंच किया जाता है। जैसे ही अतिथि होटल छोड़ जाता है, वैसे ही उस कमरे का कार्ड स्वतः ही बदल जाता है और वह कार्ड बेकार हो जाता है। जब कोई व्यक्ति होटल में ठहरने आता है, तब सम्बद्ध कर्मचारी दो या चार सादा कार्ड एक विशेष संकेत-अंकन यन्त्र में डालता है और यह यन्त्र उन कार्डों पर कुछ छिद्र अंकित कर देता है। इस विधि में छिद्रों की पुनरावृत्ति की सम्भावना नगण्य है। इन छिद्रित कार्डों में एक कार्ड तो कमरे की चाबी का काम देता है तथा दूसरा कार्ड मास्टर कनसोल के नम्बरों वाले खाने में रख दिया जाता है। जब अतिथि अपने कमरे में प्रवेश करना चाहता है, तब वह अपना कार्ड दरवाजे की बगल वाली खिड़की में रख देता है। विद्युदाणिक विधि द्वारा इस कार्ड का मास्टर कनसोल में रखे कार्ड से मिलान होता है। दोनों कार्डों के संकेत समान होने पर दरवाजा स्वतः खुल जाता है और असमानता होने पर दरवाजा नहीं खुलता है। यदि कोई व्यक्ति कमरे की कार्ड-खिड़की से छेड़छाड़ करता है, तब सुरक्षा कनसोल द्वारा एक अलार्म बज उठता है।

हर नये अतिथि के लिए नया कार्ड तैयार होता है। इसी प्रकार होटल कर्मचारियों को विशेष प्रकार के 'सब मास्टर' कार्ड दिये जाते हैं और उन्हें कमरे की कार्ड-खिड़की में रखने पर मास्टर कनसोल में एक संकेत प्रकाशित होता है। मास्टर कनसोल में अलग-अलग संकेत उस समय भी प्रकाशित रहते हैं, जब कमरे में कोई अतिथि ठहरा हो अथवा कमरा खाली हो और वह उठाये जाने के लिए ठीक-ठीक हो। इन संकेतों को देख कर प्रबन्धक एक दृष्टि में ही कमरे के बारे में आवश्यक सूचना प्राप्त कर लेता है।

इस प्रणालो का विकास न्यूयार्क की 'अमेरिकन डिस्ट्रिक्ट टेलिफोन कम्पनी' के होटल सिस्टम डिविजन द्वारा किया गया है।

चोरों को पकड़वाने वाला यन्त्र

अमेरिका में एक ऐसे हल्के-फुल्के यन्त्र का विकास

हुआ है जिसका उपयोग सुरक्षा कार्यों तथा चोरों आदि पर नजर रखने के लिए टिया जा सकता है।

बैटरी से चालित इत यन्त्र का नाम 'इण्टूटेक' है और इसमें 'इन्फारेड' विधि का प्रयोग किया गया है। इसका उपयोग सड़क पर गुजरने वाले वाहनों, नदी में चलने वाली नौकाओं की गणना करने से लेकर अनधिकार प्रवेश करने वालों तथा चोरों पर नजर रखने के लिए किया जा रहा है। इसमें विद्युत-चुम्बकीय विकिरण की एक अदृश्य रश्मि का प्रयोग किया गया है। यह अदृश्य रश्मि यन्त्र में फिट 'स्कैनर' से प्रवाहित होकर एक प्रतिबिम्बक से टकराती है और पुन: 'स्कैनर' की ओर लौट आती है। यदि इस रश्मि के प्रवाह में 80 मिली सेकण्ड का भी व्यवधान पड़ जाये तो यन्त्र में फिट कई यान्त्रिक विधियां सक्रिय हो सकती है—जैसे एलार्म बजना, ट्रांसमिटर का चालू हो जाना, कैमरे का सक्रिय हो उठना, तेज़ प्रकाश जल उटना आदि।

'इण्टूटेक' के निर्माता के अनुसार अस्थायी बाड़ों में इसका उपयोग बड़ी आसानी से हो सकता है क्योंकि यह बहुत हल्का-फुल्का है और आसानी से फिट किया जा सकता है। यन्त्र में फिट कैमरों द्वारा अनधिकार प्रवेश की हर बारदात को रेकार्ड किया जा सकता है। इसके अलावा इसमें फिट पाकेट साइज के रेडियो सेटों का उपयोग खुले स्थान पर काम करने वाले लोग सरलता से कर सकते हैं। इसका आकार-प्रकार ऐसा है कि इसे किसी भी स्थान पर आसानी से छुपाया जा सकता है या धरती में गाड़ा जा सकता है।

तीन वर्षों के परीक्षण में यह यन्त्र बहुत उपयोगी और कारगर सिद्ध हुआ है।

इसके दो नमूने बिक्री के लिए सुलभ हैं। पहला नमूना 120 फुट तथा दूसरा 200 फुट की दूरी तक निगरानी कर सकता है। 20,00 फुट की दूरी तक निगरानी करने में सथम नमूना भी शीघ्र तैयार हो जायेगा।

इस यन्त्र की कीमत 400 डालर से लेकर 1400 डालर तक है तथा इसका निर्माण न्यूमैक्सिको राज्य की एक फर्म 'साइंटिफिक डाइमैनसन्स इनकार्पोरेटेड, ने किया है।

रक्त में शराब की मात्रा का पता लगाने वाला यन्त्र

अमेरिका के बाजारों में आजकल एक ऐसा यन्त्र बिक रहा है जिसके द्वारा मानव रक्त में विद्यमान शराब की मात्रा मापी जा सकती है। इस विद्युदाणविक यन्त्र का नाम 'इन्टोक्सलाइजर' है और यह पूर्णत: स्वचालित है। इसमें किसी प्रकार के रासायनिक पदार्थ या खतरनाक गैस सिलण्डरों का उपयोग नहीं किया गया है। यह केवल 90 सेकण्ड की अवधि में रक्त में मौजूद शराब की मात्रा को माप कर उसे विशेष प्रकार के कार्डों पर अंकित कर देता है। पहले इस परीक्षा में 20 मिनट का समय लगता था।

इन्टोक्सलाइजर का मूल्य 3750 डालर है और इसका निर्माण केलिफोर्निया राज्य की एक फर्म 'ओमिकार्न पिस्टम्स कारपोरेशन ने' किया है।

दृष्टि-दोषों की जाँच करने का नया यन्त्र

अमेरिका में एक ऐसे नये यन्त्र का विकास हुआ है जिसमें फोटो-इलेक्ट्रिक विधि का प्रयोग कर दृष्टि-दोषों की सफलतापूर्वक जाँच की जाती है। यह यन्त्र आजकल जापान, इटली, फ्रांस और सोवियत रूस की व्यापार-प्रदर्शनियों में प्रदर्शित किया जा रहा है। 'आई-ट्रेक' नामक इस फोटो-इलेक्ट्रिक विधि की सबसे बड़ी खूबी यह है कि साधारण प्रशिक्षण प्राप्त कम्पाउन्डर भी बड़ी सुगमता से इसका प्रयोग कर सकता है।

'आई-ट्रेक' दृष्टि की जांच करने के अलावा नेत्र सम्बन्धी अन्य दोषों की भी सही ढंग पर जांच कर सकता है। फोटो-इलेक्ट्रिक विधि द्वारा नेत्र परीक्षा का विधिवत रिकार्ड तैयार हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर नेत्र विशेषज्ञ और नेत्र शल्य-चिकित्सक इस रिकार्ड का अध्ययन कर सकता है।

'आई-ट्रेक' नामक इस यन्त्र का मूल्य 2 हजार डालर से लेकर चार हजार डालर तक है। इसका निर्माण मेसाचूसेट्स की एक फर्म बायोमेट्रिक्स ने किया है।

● ●

सम्पादकीय

10 जनवरी 1975 को नागपुर में पहली बार विश्व हिन्दी सम्मेलन का आयोजन हुआ जिसका उद्घाटन प्रधान मन्त्री इन्दिरा गांधी ने किया और जिसमें अनेक विदेशी प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सोवियत संघ, अमरीका, जर्मनी, स्वेडेन, जापान, इटली मॉरिशस, सुरीनाम, फीजी आदि देशों के विद्वानों ने हिन्दी में भाषण किया और उनके देश में हिन्दी के लिए क्या कुछ किया जा रहा है इस पर प्रकाश डाला। हिन्दी भारत की राजभाषा है परन्तु स्वतंत्रता के 27 वर्षों के बाद भी हिन्दी में पठन-पाठन तथा सरकारी कामकाज करने की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई है यह अत्यन्त खेद की बात है। भारत को भांति-भली जानने-समझने के लिए ही विदेशों में हिन्दी सीखने की लालसा जाग्रत हो रही है। परन्तु हम स्वयं क्या कर रहे हैं यदि इस विषय पर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इस दिशा में हमें जो कुछ करना चाहिए था वह नहीं किया। बार-बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि विज्ञान व टेक्नॉलॉजी का अध्ययन-अध्यापन हिन्दी में सम्भव नहीं और यह अँग्रेज़ी द्वारा ही सम्भव है। वास्तविकता कुछ और ही है। विज्ञान एवं इंजीनियरिंग विषयक हिन्दी पत्रिकाओं तथा पुस्तकों की भारी कमी है। उत्तर भारत के प्रान्तों की ग्रन्थ अकादमियाँ पुस्तकें लिखवाने का कुछ प्रयास कर रही हैं पर इसमें अभी अधिक सफलता नहीं मिल पाई है। 1971 में भारत में विज्ञान विषयक कुल 127 पत्रिकाएँ प्रकाशित की गईं जिनमें के 94 अंग्रेज़ी में 7 हिन्दी में तथा शेष अन्य भाषाओं में। इसी प्रकार इंजीनियरिंग विषयक केवल 4 पत्रिकाएँ ही हिन्दी में प्रकाशित होती हैं जबकि अंग्रेज़ी में छपने वाली 721 हैं। जापान, रूस तथा चीन का उदाहरण हमारे सामने हैं जहाँ पर राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान तथा टेक्नोलॉजी की पुस्तकें अपनी भाषा में लिखी गईं और अध्यापन अपने देश की ही भाषा में किया गया। इन देशों में कितनी प्रगति हुई है यह किसी से छिपा नहीं है। 1362 में पहली बार जब ब्रिटिश संसद ने पहली बार फ्रेंच के स्थान पर अंग्रेज़ी में कार्यवाही आरम्भ की गई तो अनेक ब्रिटिश नागरिकों ने इसका विरोध किया था। इस सम्मेलन के मंच से संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा हिन्दी को मान्यता देने का जो प्रस्ताव किया गया है आशा है इसमें सफलता मिल जाने पर हिन्दी के सम्मान में केवल वृद्धि ही न होगी हमारे राष्ट्र में इसका महत्व बढ़ जायगा।

● ●

[पृष्ठ 19 का शेषांश]

सतह पर जीवित पदार्थों के अस्तित्व का पता लगाया जायेगा। नैसा द्वारा पहले वाइकिंग अन्तरिक्षयान को 4 जुलाई को मंगल पर उतारने का प्रयत्न किया जायेगा। उस दिन अमेरिकी स्वतन्त्रता की 200वीं वर्षगांठ होगी।

नये वर्ष के विषय में अपना विचार व्यक्त करते हुए, नैसा के प्रशासक, डा० फ्लेचर, ने कहा : "लोग या सरकारें जितना समझती हैं, उससे कहीं बड़े पैमाने पर अन्तरिक्षीय अनुसन्धान के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता को प्रश्रय मिला है। वस्तुतः हम अपने सहयोगियों के साथ मिल कर वर्तमान योजनाओं के पूरा हो जाने तक इस प्रकार के संयुक्त कार्यक्रमों पर लगभग 100 करोड़ डालर की राशि खर्च कर चुकेंगे। और इनमें अपोलो-सोयुज संगमन कार्यक्रम या स्पेसलेब के कार्यक्रम शामिल नहीं हैं।

● ●

सूचना

विज्ञान-परिषद् द्वारा सूचित किया जाता है कि गतवर्ष की भाँति इस वर्ष भी हिन्दी में प्रकाशित विज्ञान की सर्वोत्तम पुस्तक के लेखक को परिषद् द्वारा 'स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक' प्रदान किया जावेगा। 1973 तथा 1974 में प्रकाशित पुस्तकों पर विचार किया जावेगा। इस विज्ञापन द्वारा लेखकों को आमंत्रित किया जाता है कि वे अपनी पुस्तक की तीन प्रतियाँ निम्न पते पर 30 मार्च, 1975 तक रजिस्ट्री डाक द्वारा भेजें।

पुस्तकें भेजने का पता :—

प्रो० कृष्णजी
प्रधान मंत्री, विज्ञान-परिषद्
महर्षि दयानन्द मार्ग इलाहाबाद—2

पुरस्कार समिति को अधिकार होगा कि ऐसी पुस्तकों पर भी विचार करे जिन्हें लेखकों ने न भेजा हो।

पुरस्कार समिति का निर्णय अन्तिम तथा मान्य होगा।

पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा निर्णायकों की रचना पर पदक प्रदान नहीं होगा।

स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्ण-पदक की नियमावली परिषद् की मासिक पत्रिका 'विज्ञान' के नवीनतम अंक में देखी जा सकती है।

शिव गोपाल मिश्र
संयुक्त मंत्री

स्वामी हरिशरणानन्द स्वर्णपदक की नियमावली :--

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के अध्यक्ष, लब्ध प्रतिष्ठ वैद्य श्री हरिशरणानन्द जी का विज्ञान परिषद् पर पुराना अनुग्रह था और उन्हें विज्ञान, वैज्ञानिक साहित्य तथा वैज्ञानिक पद्धति में अतीव निष्ठा थी। उन्होंने विज्ञान-परिषद् को, वैज्ञानिक साहित्य के सृजन करने वालों को गौरवान्वित करने हेतु, एक निधि दी थी। विज्ञान परिषद् ने कुछ वर्षों तक इस निधि से, हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य के उच्चतम साहित्यिकों को "हरिशरणानन्द विज्ञान पुरस्कार" प्रदान किए। श्री हरिशरणानन्द जी के निधन के उपरान्त इस निधि में और वृद्धि न हो सकी, इस कारण विज्ञान-परिषद् की अंतरंग सभा ने यह निश्चय किया कि जो निधि शेष है उसके व्याज से एक स्वर्ण-पदक प्रदान किया जाय। इस प्रकार परिषद् श्री हरिशरणानन्द जी के विचारों का आदर कर सकेगा और उनकी निधि का सदुपयोग भी होगा। प्रस्तुत नियमावली इस कार्य को सुचारु रूप सम्पन्न करने हेतु बनाई गई है।

नियमावली

1—पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के पूर्व अध्यक्ष स्व० श्री हरिशरणानन्द जी की निधि के व्याज से संचालित एवं विज्ञान-परिषद् द्वारा प्रदत्त इस पदक का नाम "हरिशरणानन्द स्वर्णपदक" होगा।

2—यह स्वर्णपदक विज्ञान परिषद् द्वारा प्रत्येक वर्ष विज्ञान की सर्वोत्तम प्रकाशित पुस्तक के लेखक को प्रदान किया जायगा। जिस वर्ष पदक दिया जायगा, पुस्तक उसके पूर्व तीन कैलेन्डर वर्ष के भीतर प्रकाशित हुई होनी चाहिए।

3—प्रत्येक वर्ष 'विज्ञान' तथा दो अन्य दैनिक समाचारपत्रों में इस पुरस्कार की घोषणा की जायगी और लेखकों को आमंत्रित किया जायगा कि वे पुस्तक की तीन प्रति विज्ञान परिषद् की पुरस्कार समिति को निश्चित विज्ञापित तिथि के भीतर भेजें।

4—स्वर्णपदक प्रदान करने का संचालन परिषद् की पुरस्कार समिति करेगी।

इस समिति के सदस्य निम्नलिखित होंगे :—

क—परिषद् के सभापति

ख—एक पदेन उपसभापति (अध्यक्ष द्वारा मनोनीत)

ग—कोषाध्यक्ष

घ—प्रधान मंत्री

ङ—अनुसन्धान पत्रिका के प्रधान संपादक

5—पुरस्कार समिति को अधिकार होगा कि ऐसी पुस्तकों पर भी विचार करें जिन्हें लेखकों ने न भेजा होगा।

6—यह समिति अपना निर्णय तीन विशेषज्ञों की सम्मति प्राप्त करने के बाद लेगी। विशेषज्ञों के नाम गोपनीय हो।

7—पुरस्कार समिति का निर्णय अंतिम तथा मान्य होगा।

8—पुरस्कार समिति के सदस्यों तथा सम्मति देने वाले विशेषज्ञों की रचना पर पदक नहीं प्रदान होगा।

9—सामान्यत: यह स्वर्णपदक परिषद् के वार्षिक अधिवेशन के समय वितरित होगा।

10—प्रतियोगिता में आयी हुई पुस्तकों में से किसी एक पुस्तक पर दो बार से अधिक विचार नहीं होगा। (यह नियम उन पुस्तकों पर लागू नहीं होगा जिन्हें समिति अपनी ओर से रखेगी।)

(कृष्णजी)

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम—"सूक्ष्म मात्रिक तत्व"
लेखक डा० शिव गोपाल मिश्र
प्रकाशक उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
पृष्ठ संख्या 255 मूल्य रु० 9-75

'सूक्ष्म मात्रिक तत्व' नामक प्रस्तुत पुस्तक को मैंने बड़ी सावधानीपूर्वक पढ़ा। वर्तमान समय में, जबकि भारतीय कृषि में सूक्ष्ममात्रिक तत्वों को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, इस प्रकार की एक पुस्तक की नितान्त आवश्यकता थी। विषय वस्तु को हिन्दी के माध्यम से प्रस्तुत करने का लेखक का प्रयास नि:सन्देह सराहनीय है। उपरोक्त विषय पर हिन्दी में लिखी गई यह प्रथम पुस्तक है। पुस्तक की भाषा शुद्ध एवं सरल है। पुस्तक की विषय सामग्री इतने सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत की गई है कि विषय का बोध एक साधारण आदमी को भी बड़ी आसानी से हो जायगा। पुस्तक में सभी सूक्ष्ममात्रिक तत्वों की प्रकृति, उनका वितरण, उपलब्धि तथा उर्वरकों के रूप में उनके प्रयोग के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण प्राप्त होने के साथ ही उनकी निश्चयन विधियों एवं उनके अध्ययन में भारतीय योगदान के ऊपर भी प्रचुर साहित्य दिया गया है जिससे पुस्तक की उपयोगिता बढ़ जाती है। तथ्यों की पुष्टि के लिये स्थान-स्थान पर अद्यतन आँकड़े दिये गये हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त में निर्देश दे देने से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। पुस्तक के अन्त में तकनीकी शब्दों की पारिभाषिक शब्दावली दे देने से पाठकों को विषय को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

पुस्तक की छपाई सुन्दर है किन्तु कुछ छापे की भूलें रह गई हैं जिनके लिये पुस्तक के साथ शुद्धिपत्र दे देना पर्याप्त होगा। पुस्तक में एक दो संदर्भ देने से छूट गये हैं जिनको अगले संस्करण में लेखक को दे देना चाहिये। एकाध संदर्भ अधूरे रह गये हैं, यदि पूरे होते तो और भी उत्तम होता।

यह पुस्तक शोध-छात्रों एवं सभी स्तर के विद्यार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी।

अ० न० पाठक
अध्यक्ष, कृषि रसायन
उ० प्र० कृषि विज्ञान संस्थान, कानपुर

पुस्तक का नाम — फास्फेट
लेखक — डा० शिव गोपाल मिश्र
प्रकाशक —उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
पृष्ठ संख्या—263, मूल्य रु० 15·00

'फास्फेट' विषय पर हिन्दी में लिखी गई यह प्रथम पुस्तक है। पुस्तक में उपलब्ध विषय सामग्री लेखक के विस्तृत अनुभव की द्योतक है। पुस्तक अत्यन्त योजनापूर्ण एवं उत्कृष्ट ढंग से लिखी गई है। प्रस्तुत प्रकाशन में फास्फेट के विभिन्न पहलुओं जैसे— फास्फोरस के मुख्य यौगिक, उनकी संरचना, भारतीय मिट्टियों में फास्फोरस का वितरण एवं पौध एवं पशु पोषण में फास्फोरस का महत्व के सम्बन्ध में अद्यतन जानकारी का समावेश है। विभिन्न फास्फेटी उर्वरक, विशेषकर टी वी ए द्वारा विकसित विभिन्न सुपर-फास्फेट एवं पॉली-फास्फेटों के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण अत्यन्त सरल भाषा में दिया गया है। मिट्टी में फास्फेट स्थिरीकरण एवं मिट्टी में पाये जाने वाले फास्फेट के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में नवीनतम सिद्धान्तों को पुस्तक में बड़े ही अच्छे ढंग से समझाया गया है। पुस्तक में देश के विभिन्न भागों में फास्फोरस उत्पादन के सम्बन्ध में अद्यतन आँकड़े दिये गये हैं जिससे यह प्रकाशन बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा। तथ्यों की पुष्टि के लिये स्थान-स्थान पर अद्यतन आंकड़े दिये हैं जो पुस्तक को और भी उपयोगी बनाते हैं।

प्रत्येक अध्याय के अन्त में सन्दर्भों की विस्तृत सूची दे दी गई है। पुस्तक में विभिन्न फास्फोरस स्रोतों के विश्लेषण-आँकड़ों के समावेश से यह प्रकाशन और भी महत्वपूर्ण है। पुस्तक के अन्त में पारिभाषिक शब्दावली होने से विषय को समझने में आसानी होगी। पुस्तक की छपाई सुन्दर है। भाषा सरल एवं शुद्ध है। विषय वस्तु का लेखन बहुत ही रुचिकर एवं उत्कृष्ट ढंग से किया गया है। पुस्तक नि:सन्देह ही छात्रों, अध्यापकों, प्रसार कार्यकर्ताओं, एवं शोधकर्ताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

एस० पी० रायचौधरी
सीनियर एग्रोनामिस्ट
श्रीराम खाद प्रोग्राम, दिल्ली

युवा वैज्ञानिकों को साइंस एकेडेमी मैडल पुरस्कार

इण्डियन नेशनल साइंस एकेडेमी ने वर्ष 1974 में देश के युवा वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित करने तथा उनकी वैज्ञानिक व तकनीकी उपलब्धियों को राष्ट्रीय मान्यता प्रदान करने के ध्येय से पुरस्कृत करने की योजना बनाई। इस योजना के अन्तर्गत चुने गये वैज्ञानिकों को साइंस एकेडेमी मेडल से पुरस्कृत किया जायगा। सबसे पहला पुरस्कार देहली में 3 जनवरी, 1975 को इण्डियन साइंस कांग्रेस के उद्‌घाटन अधिवेशन के अवसर पर 22 युवा वैज्ञानिकों को प्रदान किया गया। इन सभी वैज्ञानिकों को, जिनकी अवस्था 30 वर्ष से कम है, उनके विलक्षण शोधों के लिये साइंस एकेडेमी का कांस्य मेडल तथा अपना शोध कार्य आगे बढ़ाने के लिये 5,000 रुपये की धन राशि प्रदान की गई। यह धन राशि कोठारी साइंटिफिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट कलकत्ता ने दी थी। प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने इन वैज्ञानिकों को पुरस्कार देकर उनका सम्मान बढ़ाया। इन वैज्ञानिकों के नाम इस प्रकार हैं :

1. डा० ब्रिज गोपाल
राजस्थान यूनिवर्सिटी
जयपुर।

2. डा० ए० के० कपूर
मेडिकल कालेज
लखनऊ।

3. डा० एम० एन० चन्द्रसेखरय्या
नेशनल फिजिकल लैबोरेट्री
नई दिल्ली।

4. डा० पी० के० कॉ
फिजिकल रिसर्च लैबोरेट्री
अहमदाबाद।

5. डा० सी० एम० गुप्ता
सेन्ट्रल ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट
लखनऊ।

6. डा० ए० के० पद्मनाभन
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
वाराणसी।

7. डा० बी० एन० जौहरी
सागर यूनिवर्सिटी
सागर।

8. डा० वी० के० पाटोदी
टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फन्डामेण्टल
रिसर्च, बम्बई।

9. डा० एम० के० रायजादा
सेण्ट्रल ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट
लखनऊ।

10. डा० एस० के० रे
जियोलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया
जयपुर।

11. डा० डी० एस० राजोरिया
नेशनल फिजिकल लैबोरेट्री
नई दिल्ली।

12. डा० वी० सी० साहनी
भाभा एटामिक रिसर्च सेण्टर
बम्बई।

13. डा० बी० वी० राव
इन्डियन स्टेटिस्टिकल इन्स्टीट्यूट
रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग स्कूल
कलकत्ता।

14. डा० एम० एस० संकरन
हिन्दू कालेज, देहली यूनिवर्सिटी
देहली।

15. डा० पी० पी० रस्तोगी
लखनऊ यूनिवर्सिटी
लखनऊ।

16. डा० एस० सेनगुप्ता
इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ एक्सपेरिमेण्टल
मेडिसिन, कलकत्ता।

17. डा० कु० एम-एस० शैल
इन्डियन इन्स्टीट्यूट आफ साइन्स
बंगलौर।

18. डा० सी० सूर्यनारायन
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी
वाराणसी।

19. डा० लाल जी सिंह
कलकत्ता यूनिवर्सिटी
कलकत्ता।

20. डा० के० एन० स्वामी
नागपुर यूनिवर्सिटी
नागपुर।

21. डा० वेद राम सिंह
नेशनल फिजिकल लैबोरेट्री
नई दिल्ली।

22. डा० एस० के० टण्डन
देहली यूनिवर्सिटी
देहली।

उपर्युक्त पुरस्कार प्रति वर्ष दिये जायेंगे। इन्डियन नेशनल साइंस एकेडेमी के फेलो, वैज्ञानिक समितियां, विश्वविद्यालयों के संकाय तथा विभाग एवं शोध प्रतिष्ठान वैज्ञानिकों को मनोनीत कर सकते हैं। इनमें से सर्वोत्तम प्रत्याशी का चयन एक चयन समिति द्वारा किया जायगा। पुरस्कार पाने वाले वैज्ञानिकों को एकेडेमी की ओर से उनके शोध कार्य के लिये आर्थिक सहायता भी प्रदान की जायगी। पुरस्कारों की अधिकतम संख्या 30 होगी। पुरस्कृत वैज्ञानिकों को अपने विषय पर व्याख्यान देना होगा जिसके लिये समय तथा स्थान का निर्णय एकेडेमी करेगी। एकेडेमी उन व्याख्यानों को प्रकाशित भी करने का प्रबन्ध करेगी।

'विज्ञान' के सम्बन्ध में

(फ़ार्म 4)

1.	प्रकाशन का स्थान	इलाहाबाद
2.	प्रकाशन की अवधि	मासिक
3.	मुद्रक का नाम	सरयू प्रसाद पाण्डेय, नागरी प्रेस
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	नागरी प्रेस, इलाहाबाद
4.	प्रकाशक का नाम	प्रो० कृष्ण जी
	क्या भारतीय हैं ?	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद,
	पता	हाँ
		थार्नहिल रोड, इलाहाबाद-२
5.	सम्पादक का नाम	डा० शिव प्रकाश
	क्या भारतीय हैं ?	हाँ
	पता	रसायन विभाग, प्रयाग वि० वि० इलाहाबाद-२
6.	उन व्यक्तियों के नाम और पते जो समाचार पत्र के स्वामी हैं	प्रधान मन्त्री, विज्ञान परिषद् इलाहाबाद

मैं प्रो० कृष्ण जी घोषित करता हूँ कि जहाँ तक मेरी जानकारी और विश्वास है उपर्युक्त विवरण सही है।

हस्ताक्षर कृष्ण जी
प्रकाशक

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3/5/

भाग 112 | माघ-फाल्गुन 2021 विक्र०, 1896 शकाब्द | अप्रैल 1975 | संख्या 4

भूकम्प

विजय कान्त श्रीवास्तव

भूकम्प पृथ्वी के आन्तरिक आन्दोलनों का परिणाम है। कुछ भूकम्प इतने हल्के होते हैं कि बिना यंत्रों के इनका आभास ही नहीं होता परन्तु कुछ भूकम्प इतने तीव्र होते हैं कि प्रलयंकारी दृश्य उपस्थित कर देते हैं। भूकम्प पृथ्वी के जन्म से ही होते आये हैं और जब तक पृथ्वी अन्तर गतिमान रहेगी भूकम्प आयेंगे।

कारण :—भूकम्प के प्रत्यक्ष कारणों को दो भागों में विभक्त किया जाता है।

(1) विवर्तनिक (Tectonic) तथा

(2) अविवर्तनिक (Non-tectonic)।

विवर्तनिक कारण :—इन कारणों में विशाल मात्रा में भ्रंशन, पुराने भ्रंश तलों का पुन: गतिमान होना, नये भ्रंशों की उत्पत्ति इत्यादि क्रियायें सम्मिलित हैं।

यह सर्वविदित है कि कोई वस्तु बिना टूटे एक सीमा तक ही मोड़ी जा सकती है। वस्तु को मोड़ना प्रतिबल की मात्रा को बढ़ाना होता है। मोड़ने से वस्तु में विकृति उत्पन्न होती है। प्रतिबल तथा विकृति में सीधा संबंध है। विकृति की चरम सीमा पर वस्तु टूट जाती है। जब किसी पदार्थ में प्रतिबल सीमा पार कर जाता है तो बिना और प्रतिबल के विकृति उत्पन्न हो जाता है। यह सीमा प्रत्येक पदार्थ में अलग-अलग होता है। इस प्रकार की विकृति को प्लास्टिक प्रवाह कहा जाता है। इस प्रकार की प्राकृतिक क्रिया पृथ्वी गर्भ में अबाध रूप से चलती रहती है। इस क्रिया से शिलाओं में वलन (Fold) तथा भ्रंशन उत्पन्न होता है। इस क्रिया में गति उर्ध्वाधिर, क्षैतिज या तिर्यक किसी भी दिशा में हो सकता है। इस प्रकार की क्रिया को प्रत्यास्थ प्रतिक्षेप सिद्धान्त कहा जाता है। इस प्रकार की क्रिया से उत्पन्न भूकम्प का स्रोत 800 कि० मी० की गहराई तक हो सकता है। भूकम्प का प्रभाव उनको स्रोत की गहराई, भ्रंश तल पर तथा शिला संचलन के परिमाण पर निर्भर होता है। इस प्रकार के भूकम्प प्रबल तथा भयानक होते हैं। इस प्रकार के भूकम्पों का उद्गम क्षेत्र द्वीपीय आर्क तथा भू अभिनतियां होता है। भूकम्पों पर मैग्मा के शीतलन, समस्थितिक पुन: समंजन, महाद्वीपीय विस्थापन, तथा संवहन धाराओं का भी प्रभाव पड़ता है।

अविवर्तनिक कारण :—अविवर्तनिक कारणों से उत्पन्न भूकम्प उथले, स्थानीय तथा हल्के होते हैं। इन कारणों में निम्न प्रमुख माने जाते हैं :—

1—पर्वतीय क्षेत्रों में हिम पिण्ड का गिरना।

2—भूस्खलन तथा शिला स्खलन।

3—खानों, गुहाओं तथा कंदराओं में शिला का गिरना।

4—सागर की लहरों का किनारों से टकराना, जलप्रात आदि।

5—ज्वालामुखी क्रिया।

भूकम्प के प्रभाव :— मनुष्य भूकम्प का शिकार होता है तथा दर्शक भी। वैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य से अधिक पक्षियों तथा जनवरों को भूकम्प का आभास होता है। भूकम्प से प्रायः स्थलाकृति में परिवर्तन हो जाता है। 1897, 1950 का आसाम का भूकम्प तथा 1934 में बिहार में आये भूकम्प से स्थलाकृति में परिवर्तन पाया जाता है। 1899 में अलास्का में आये भूकम्प के कारण खाड़ी का एक तट लगभग 15 मीटर ऊँचा उठ गया। धरातल में चौड़ी दरारें उत्पन्न हो जाती हैं। विशाल मात्रा में कीचड़, रेत, पानी तथा आग निकलती है तथा विध्वंसन परिणाम उपस्थित करती है। अन्तर्भौम जल का संचार कहीं बन्द हो जाता है हो कहीं उत्पन्न हो जाता है। झीलों में पानी समाप्त हो जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में भूस्खलन तथा शिला स्खलन भी पाया जाता है। नदियों का जल वहीं समाप्त हो जाता है। वहीं नदियों का रास्ता ही बदल जाता है। धन, जन की व्यापक मात्रा में हानि होती है। मनुष्य निर्मित संरचनाएँ समाप्त हो जाती है। परन्तु भूकम्प तरंगों से पृथ्वी अन्तर का ज्ञान भी होता है।

भूकम्प तरंगे तथा माप :— भूकम्प तरंगे मुख्यतया 3 प्रकार की होती है।

1—मूल तरंगे (P-wave)—ये तरंगे अनुदैर्घ्य होती हैं।

2—द्वितीयक तरंगे (S-wave)—ये तरंगे अनुप्रस्थ होती हैं।

3—एल तरंगे (L-wave)—ये तरंगे सतही होती है।

प्रायः मूल तरंगों का वेग द्वितीयक तरंगों से 1·7 अधिक पाया जाता है। उद्गम केन्द्र से मूल तथा द्वितीयक तरंगे सभी दिशाओं में चलती हैं। सबसे पहले उद्गम केन्द्र के तत्काल ऊपर अभिकेन्द्र में पहुँचती है उसके बाद क्षैतिज रुप में फैल जाती हैं। अभिकेन्द्र पर इनका वेग सर्वाधिक होता है। मूल तरंगों के ऊर्जा से अभिकेन्द्र पर सतही तरंगों का निर्माण होता है। ये सतही तरंगे उथली होती हैं तथा थोड़ी गहराई पर पूरे परिधि का चक्कर लगाती हैं। इन तरंगों का आयाम अधिक होता है। इन तरंगों में भी कुछ तरंगे संचरण की दिशा में चलती हैं जिनको रेले तरंग कहा जाता है तथा कुछ तरंगे संचरण दिशा के अनुप्रस्थ चलती हैं इन्हें लव (Love wave) तरंग कहा जाता है। इन सतही तरंगों से ही धन-जन की हानि होती है।

भूकम्प अभिलेखी— इस यंत्र से भूकम्प तरंगों की गति का अभिलेखन, अभिकेन्द्र से दूरस्थ स्थानों तक पहुँचने का समय ज्ञात किया जाता है। तरंगों के रुप जो भूकम्प अभिलेखी से प्राप्त होते हैं उन्हें भूकम्प अभिलेख कहा जाता है। भूकम्प अभिलेखी कई प्रकार के होते हैं। इनमें दो मुख्य भाग होते है—

(1) भूकम्प मापी—यह शिला संस्तर में लगाये गये मजबूत खम्भों से लटका हुआ विशाल संहति (Moss) होता है जो धरातल के साथ-साथ कम्पन करता है।

(2) अभिलेखन संयत्र—यह कागज में लिपटा हुआ घूर्णन करता हुआ एक ड्रम होता है। इसके गति का अभिलेखन कागज पर होता जाता है। अभिलेखन यांत्रिक, प्रकाशकीय या विद्युत चुम्बकीय विधि द्वारा किया जाता है।

भूकम्प की तीव्रता— भूकम्प तरंगों के ऊर्जा, आघात तथा प्रभाव के आधार पर इटली के भूवैज्ञानिक रास तथा फारेल ने 10 घात वाला एक तीव्रतामापक बनाया था। बाद में मरकाली ने इसमें संशोधन किया। इस मापदण्ड का संशोधन करके इसे 12 तीव्रता
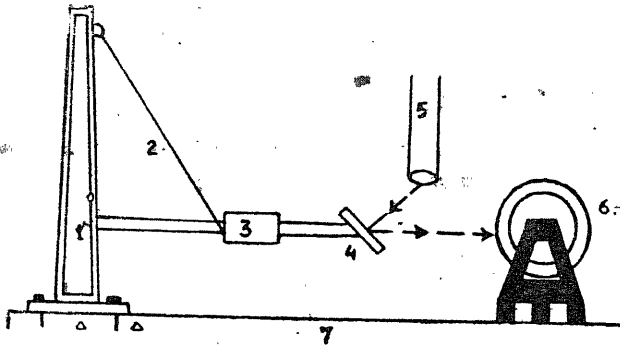
चित्र 1—कम्पन संयत्र
1—खम्भा, 2—तार 3—भारी वजन 4—दर्पण 5—प्रकाश
6—सिलिण्डर 7—शिला संस्तर
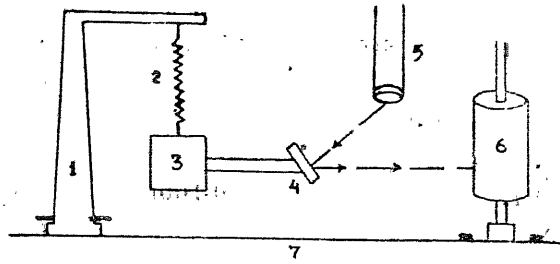
चित्र 2—भूकम्प लेखी
1—खम्भा 2—स्प्रिंग 3—वजन 4—दर्पण 5—प्रकाश
6—सिलिण्डर 7—शिला संस्तर
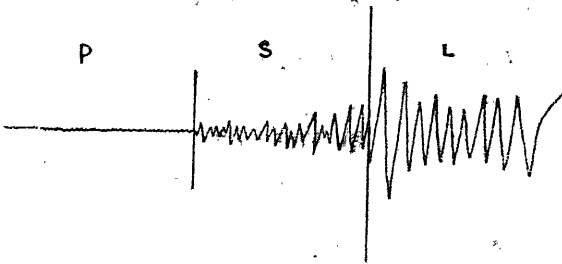
चित्र 3—भूकम्प अभिलेख
P. S तथा L तरंग

आघात वाला बनाया गया। भूकम्प की तीव्रता का माप सम्प्रति इसी संशोधित भूकम्प तीव्रता मापक्रम से किया जाता है। यह मापक्रम सारिणी 1 में दिया गया है।

सारिणी संख्या 1

संशोधित मरकाली भूकम्प तीव्रता मापक्रम

तीव्रता का आघात	कम्पन का नाम	भूमि का त्वरण	संगत परिभाषा	प्रभाव
I	यांत्रिक	<10	<3	केवल यंत्रों द्वारा आभास होता है।
II III	क्षीण	10·25 25-50	3·5 4·2	केवल संवेदनशील मनुष्यों द्वारा ज्ञान होता है।
IV V	साधारण मध्यम	50-100 100-250	4·3 4·8	गतिशील मनुष्यों द्वारा ज्ञात होता है। घंटियां बजने लगती हैं। कुछ नुकसान होता है।
VI	प्रवल	250 500	4·9— 5·4	भय की उत्पत्ति होती है। लोग भागने लगते हैं। कमजोर भवन गिर जाते हैं।
VII	प्रचंड	500-1000	5·5 6·1	दीवारों में दरार पड़ने लगती है। भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता है।
ViII IX	विनाशकारी भयंकर	1000-25000 2500— 5000	6·2 6·9	भय का वातावरण फैल जाता है। चिमनी तथा मकान गिर जाते हैं। जमीन में दरार पड़ जाती है। पाइप टूट जाते हैं। भूस्खलन होता है।
X	महाभयंकर	5000— 5000	7·0 7·3	दरार बढ़ जाती है। भूस्खलन होता है। पुल टूट जाता है। इमारतें नष्ट हो जाती हैं। रेल की पटरी उखड़ जाती है।
XI	प्रलयंकर	7500— 8000	7·4 8·1	दरार, भूस्खलन, आग पानी आदि की क्रिया होती है। पृथ्वी थरथर कांपने लगती है। व्यापक हानि होती है।
XIII	सर्वहारा	79800	78·1	पूर्ण विनाश सम्भव हो जाता है।

भूकम्प की भविष्यवाणी—भूकम्प की भविष्यवाणी करना अत्यन्त कठिन कार्य है। परन्तु निम्न संकेत मिलने से भूकम्प आने की सम्भावना उत्पन्न होता है।

1—चुम्बकीय आंधियां प्राय: भूकम्प आने के 24 घंटे पहले आने लगती हैं।

2—ज्वालामुखी उद्गार में तीव्रता आ जाती है।

प्रायः भूकम्प शीत ऋतु में, पूर्णिमा या अमावस्या को आते हैं। भारी वर्षा काल तथा हिमपात के समय में भी भूकम्प आने की सम्भावना बढ़ जाती है।

भूकम्प से बचाव—भूकम्प के साथ-साथ आग, बाढ़, भूस्खलन, सुनामी इत्यादि क्रियाएँ भी होती हैं। भूकम्प से अधिक हानि इन क्रियाओं से होती हैं। भूकम्पग्रस्त क्षेत्रों में निम्न सावधानी से हानि की मात्रा कम की जा सकती है।

1—भवन की नींव समतल रखी जाय।

2—तीव्र ढाल तथा दलदल में भवन नहीं बनाना चाहिए।

3—लकड़ी के भवन बनाना चाहिए।

4—बहुमंजिले भवन नहीं बनाना चाहिए।

5—चिमनी तथा छत हल्के बनाने चाहिए।

पृथ्वी पर भूकम्प क्षेत्रों का वितरण—पृथ्वी के कुछ स्थानों पर भूकम्प प्राय: आया करते हैं। इन क्षेत्रों को भूकम्प क्षेत्र कहा जाता है। भूकम्प तथा ज्वालामुखी का घनिष्ठ सम्बन्ध है। परन्तु सभी भूकम्प क्षेत्रों में ज्वालामुखी नहीं पाया जाता। भूकम्प क्षेत्र प्रायः लम्बे तथा सँकरे होते हैं। पृथ्वी पर दो क्षेत्रों में भूकम्प प्राया आते हैं।

1—प्रशान्त महासागर कटिबंध—यह कटिबंध लगभग 40,000 कि० मी० लम्बी तथा लगभग 350 कि० मी० चौड़ी है। इस क्षेत्र में विश्व के लगभग 80% भूकम्प आते हैं। यह क्षेत्र प्रशान्त महासागर के आसपास विस्तृत है।

2—विषुवतीय कटिबंध—इस क्षेत्र में दक्षिणी यूरोप, दक्षिणी रूस, ईरान, पाकिस्तान, भारत, बर्मा आदि क्षेत्र सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में भूकम्प की मात्रा कम पायी जाती है।

भारत में भूकम्प क्षेत्र—भूकम्प की गहनता के आधार पर भारत में तीन भूकम्प क्षेत्र हैं।

1—हिमालय क्षेत्र—इस क्षेत्र में भूकम्प प्राय: आता है। यह क्षेत्र कश्मीर से आसाम तक फैला हुआ है।

2—मैदानी क्षेत्र—गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र नदियों के मैदानी क्षेत्र में भी भूकम्प प्रायः आते हैं परन्तु इस क्षेत्र में हिमालय क्षेत्र से कम मात्रा में भूकम्प आते हैं।

3—दक्षिणी प्रायद्वीप—इस क्षेत्र में कभी-कभी भूकम्प आते हैं। यह क्षेत्र स्थायी भूखण्डों में से गिना जाता है। कोयना का भूकम्प इस क्षेत्र का उदाहरण है।

पिछले 200 वर्षों में भारत में 200 से भी अधिक भूकम्प आये। इसमें से लगभग 35% भूकम्प हिमालय क्षेत्र में आये। सबसे ज्यादे भूकम्प आसाम में आते हैं उसके बाद उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा बिहार का नम्बर आता है।

निम्न सारिणी में विश्व के कुछ प्रधान भूकम्पों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है। इन सभी भूकम्पों का परिमाण 8 से अधिक है। सभी भूकम्प विवर्तनिक कारणों से उत्पन्न हुए थे।

सारिणी संख्या 2

विश्व के कुछ प्रसिद्ध भूकम्प

सं० स्थान	वर्ष	प्रभाव
1—सिमनी इटली	1450 इ० पू०	सिमनी नगर नष्ट हो गया।
2—रोड्स साइप्रस	224 इ० पू०	अपोलो की मूर्ति का विनाश हो गया।

3—नेपल्स इटली	1456 इ०	लगभग 60,000 व्यक्ति मर गये।
4—शान्सी चीन	1556	लगभग दस लाख व्यक्ति मर गये।
5—कलकत्ता भारत	1937	लगभग तीन लाख व्यक्ति मर गये।
6—लिस्वन पुर्तगाल	1755	लिस्बन नगर पूर्ण रूपेण नष्ट हो गया।
7—कच्छ भारत	1819	कच्छ के रन में पानी भर गया।
8—बर्मा	1883	मांडले नगर नष्ट हो गया।
9—क्राकाटाओ (इन्डोनेशिया)	1883	एक टापू ही समुद्र में समा गया।
10—आसाम भारत	1897	शिलांग नगर नष्ट हो गया।
11—कान्सी चीन	1927	विशाल मात्रा में बाढ़ आयी तथा भूस्खलन हुआ।
12—उत्तर विहार भारत	1934	भयंकर दरारें बन गयीं। लगभग 1200 व्यक्ति मर गये।
13—क्वेटा पाकिस्तान	1935	लगभग 60,000 व्यक्ति मर गये।
14 आसाम भारत	1950	लगभग 30,00 व्यक्ति मर गये।
15—कोयना महाराष्ट्र भारत	1967	कोयना नगर नष्ट हो गया। प्रभावित क्षेत्र 700 कि० मी०।

वर्तमान भूकम्प—भारत में वर्तमान भूकम्प हिमाचल प्रदेश के किनोर जिले में जनवरी, 1975 को दोपहर 132 बजे आया। भूकम्प तरंगें लगभग 20 सेकेण्ड तक कार्यरत थीं। दूसरे दिन भी भूकम्प के झटके आये। इस भूकम्प का परिमाण 7·2 से अधिक पाया गया। इस भूकम्प का अभिकेन्द्र दिल्ली से 500 कि. मी. दूर पाया गया। इस भूकम्प से हुए विनाश का पूर्ण पता अभी तक नहीं लग पाया है। ऐसा अनुमान है कि यह भूकम्प किनोर जिले में दूसरी बार आया है। 4 अप्रैल 1905 में भी इसी स्थान पर भूकम्प आया था जिससे लगभग 100 गाँव नष्ट हो गये थे तथा लगभग 5000 जाने चली गयी थीं। इस भूकम्प के समय भी भीषण हिमपात तथा घोर वर्षा हो रही थी। इस भूकम्प के समय भी भीषण हिमपात हो रहा था तथा हिमपात काफी दिनों तक होता रहा। यह भूकम्प लगभग 1 महीने तक आता रहा। पूरे हिमालय क्षेत्र में कहीं न कहीं भूकम्प के झटके लगे। किनोर, रिचती, लाहुल, आदि क्षेत्रों में कई दिनों तक भूकम्प के झटके आते रहे। 30 जनवरी 1975 को अलकनंदा घाटी में बद्रीनाथ तथा केदार नाथ क्षेत्र में भी भूकम्प के झटके आये। 31 जनवरी 1975 को काठमाण्डू (नेपाल) में 6·20 बजे सायं भूकम्प के झटके महसूस किये गये। इसी समय चीन में भी हिमालय क्षेत्र में भूकम्प आया। लगभग एक महीना पहले (दिसम्बर 1974) में पाकिस्तान में भी हिमालय क्षेत्र में भूकम्प आया था। ऐसा प्रतीत होता था कि ये सारे भूकम्प का कारण एक ही है तथा स्थान विशेष पर विभिन्न समयावधि पर झटके महसूस किये जा रहे हैं।

समाचार पत्रों के अनुसार 19 जनवरी, 1975 को किन्नोर जिले के भूकम्प वाले स्थान पर गहरा अँधेरा छा
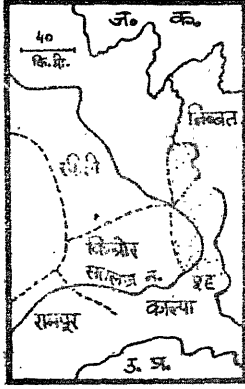
चित्र 4—भूकम्प ग्रस्त क्षेत्र का मानचित्र

गया तथा भीषण शोर होने लगा। लगभग 20 सेकेण्ड तक भूकम्प के झटके आते रहे। यह भूकम्प का प्रभाव क्षेत्र बढ़ता ही गया। लाहुल स्फीती, किन्नौर आदि क्षेत्रों में भूकम्प महसूस किया गया। काल्पा, पिन, पूह आदि घाटियों में विनाश दृश्य पाये गये। पिन घाटी में लगभग 6 गाँव नष्ट हो गये। इन स्थानों पर भीषण हिमपात होने लगा। भीषण वर्षा होने लगी। हिम दरार बनते गये तथा हिम पर्वत गिरे। भूस्खलन की घटनाएँ कई स्थानों पर पायी गयीं। हिन्दुस्तान तिब्बत सड़क इस क्षेत्र में नष्ट हो गयी। हिम पर्वत गिरने से राही तथा जंगी स्थानों के रास्ते बन्द हो गये। उन्नी, तापी तथा करदुई स्थानों में विशाल भूस्खलन हुआ। इसके अतिरिक्त चौरा, सुगरा, निगलसारी स्थानों पर हिम पर्वत तथा शिलापात भी हुआ। ऐसा अनुमान है कि इस भूकम्प से पृथ्वी के नीचे विशाल गह्वर बन गया है जिससे और भूकम्प आने की सम्भावना बना हुआ है। भूकम्प क्षेत्र में 4 कि. मी. लम्बा दरार पड़ गया है। छोटे शैल श्रृंग गिरते चले जा रहे है। इस भूकम्प झटकों से उत्पन्न उर्जा कई सौ मेगाटन वाले अणु विस्फोट के बराबर माना जा रहा है। यद्यपि इन भूकम्पों से हुए हानि का पूर्ण अनुमान नहीं लगाया जा सकता है परन्तु ऐसा अनुमान है कि लगभग 100 से अधिक जानें गयीं। यह क्षेत्र लगभग 3300 मीटर की ऊँचाई पर है अतः जन की हानि होने का अनुमान कम है परन्तु धन की व्यापक बर्बादी हुई है। कुछ नदियों में बाढ़ आ गया है। कुछ नदियों में शिला गिरने से उनका रास्ता बन्द हो गया है, हो सकता है कि इनका प्रभाव उस क्षेत्र से बढ़ने वाली सतलज नदी के धारा पर भी पड़े। इन सभी का व्यापक सर्वेक्षण सम्प्रति चल रहा है।

वैज्ञानिकों के अनुसार प्रायः 40 वर्षों में एक बार भूकम्प के अनेक झटके आते हैं। इस बार यह भूकम्प पूरे हिमालय क्षेत्र में आया। ऐसा अनुमान है कि सभी भूकम्पों का कारण एक ही है। इस क्षेत्र में हिमालय क्षेत्र का एक महत्वपूर्ण भ्रंश तल पाया जाता है। यह भ्रंश तल सम्पूर्ण हिमालय क्षेत्र में पाया जाता है। भ्रंश कभी-कभी पुनः गति शील हो जाते हैं या नवीन भ्रंश जब तक स्थायी नहीं होते उनमें गति होती रहती है। यह भ्रंश तल हिमालय क्षेत्र में मेन सेन्ट्रल थ्रस्ट (Main Central Thrust) कहा जाता है। ऐसा अनुमान है कि सभी भूकम्प इस भ्रंश तल में गति के कारण हुआ है। पाकिस्तान से लेकर आसाम तक इस तल पर गति सम्भव है। हिमालय प्रदेश, उत्तर प्रदेश, नेपाल क्षेत्र में इस भ्रंश तल पर भूकम्प के झटके महसूस किये गये हैं।

इस भूकम्प के कारण, इसके द्वारा विनाश आदि के सम्बन्ध में अभी सर्वेक्षण किया जा रहा है। सर्वेक्षण के बाद इस सम्बन्ध में सही तथा व्यापक जानकारी प्राप्त की जा सकेगी।

● ●

अतलान्तक महासागर को उड़कर पार करने वाले प्रथम वैमानिक चार्ल्स ए० लिण्डवर्ग

शुकदेव प्रसाद

"मेरा विश्वास है कि हमारी सभ्यता का अस्तित्व हमारी इस क्षमता पर निर्भर करता है कि हम पुरातन प्रकृति के विवेक को समझने तथा 20वीं सदी के वैज्ञानिक ज्ञान के साथ उसका समुचित समन्वय करने में कहाँ तक सक्षम होते हैं।"

ये शब्द हैं अमेरिकी वैमानिक चार्ल्स ए० लिण्डवर्ग के जिन्होंने आज से 47 वर्ष पूर्व, 25 वर्ष की आयु में एक इंजन वाले अपने छोटे से विमान 'द स्प्रिट ऑफ सेंटलुई' पर सवार होकर 33 घण्टे $29\frac{1}{2}$ मिनट में 3610 मील की दूरी तय कर सर्व प्रथम अतलातंक महासागर को पार कर सारी दुनिया को विस्मित कर दिया था।

श्री लिण्डवर्ग की सफल उड़ान से वायु-संचार के क्षेत्र में एक नए युग का प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे समय की रफ्तार के साथ दुनिया भी बदली और आज तो आप देख ही रहे हैं कि न मालूम कितने विमान अतलान्तक महासागर के विस्तृत आकाश में आते-जाते नजर आते हैं। अन्तरिक्ष यात्रियों ने पृथ्वी की परिक्रमाएँ की हैं और मानव चन्द्रमा पर भी उतर आया है। लेकिन फिर भी जिसने इस ढंग की शुरुआत की उसके आभारी तो हम हैं ही और निश्चय ही उसने एक नए युग का मार्ग प्रशस्त किया था। तो आइए इस महान वैमानिक की अन्तरंग जीवन परिचय हेतु बिचार करो।

चार्ल्स आगस्त लिण्डवर्ग का जन्म 1 फरवरी, 1902 को मिशिगन राज्य के डेट्रास्र नगर में हुआ था। लेकिन उनका लालन-पालन मिनिसोटा राज्य स्थित लिटल फाल्स नामक स्थान के एक छोटे से फार्म और तदुपरान्त वाशिंगटन में हुआ। लिण्डवर्ग की माँ एक स्कूल में शिक्षिका थीं एवं पिता किसान थे। उसके पिता अमेरिकी प्रवासियों के साहस, संकल्प, और कठोर परिश्रम की कहानियों उसे सुनाया करते थे जिसे बालक लिन्डवर्ग बड़े चाव से सुनता था। बचपन में उसे पशुओं एवं मशीनों, कल पुर्जों आदि से बड़ा प्रेम था और इनके प्रति उसका प्रेम जीवन पर्यन्त बना ही रहा।

लिण्डवर्ग का मन पढ़ाई में नहीं लगता था। वह केवल यंत्रिकी सूझ-बूझ और कल पुर्जों की बात करना किया था। यांत्रिकी में उसके अत्यंत लगाव के कारण 11 वर्ष की आयु में ही परिवार की मोटर की देखरेख का भार उसे सौंप दिया गया।

लिण्डवर्ग ने 1912 में पहली बार एक हवाई जहाज को उड़ते देखा था और तभी से उसने आकाश में उड़ने की कल्पना करना प्रारम्भ कर दिया था और उसी समय से उसमें हवाई जहाज उड़ाने की महत्वाकांक्षा जग भी गयी थी।

परिवार के सदस्य उसे उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। फलतः 1920 में विस्कांसिन विश्वविद्यालय में लिण्डवर्ग भर्ती हुए। चूँकि वह हमेशा उड़ान सम्बन्धी दुनिया में डूबे रहते थे अतः उन्हें किताबी पढ़ाई से अरुचि हो गयी और 1922 में उन्होंने विश्वविद्यालय छोड़कर वायुयान उड़ाने की शिक्षा देने वाले स्कूल में भर्ती हो गए।

एक वर्ष बाद उन्होंने अपना पहला हवाई जहाज खरीद लिया। विमान खरीदने के दूसरे ही दिन उन्होंने पहली बार अकेले विमान उड़ाया। 3 अप्रैल, 1926 में उन्होंने 'यू० एस० एयर मेल सर्विस' के वैमानिक के रूप में पहली उड़ान भरी। अनेक कठिनाइयों और निराशाओं को झेलने के बाद फरवरी, 1927 में को अतलांतक महासागर को विमान द्वारा पार करने के प्रयास हेतु सेंटलुई के व्यवसायियों की आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सफल हो गए। फलतः 20 मई, 1927 को उन्होंने अपनी ऐतिहासिक यात्रा का शुभारम्भ किया और सर्व प्रथम अतलांतक महासागर को पार करके एक नया कीर्तिमान स्थापित किया। निश्चय ही यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इस यात्रा से उन्हें बड़ी ख्याति मिली। अनेक देशों की सरकारों के मुखियाओं ने उनका शानदार स्वागत किया। तत्कालीन राष्ट्रपति कूलिज को उनकी सफलता पर बहुत गर्व हुआ था तथा उन्होंने युवा अमेरिकी वैमानिक को यूरोप से स्वदेश लाने के लिए नौसेना का एक विशेष जहाज भेजा था। इस यात्रा की सफल समाप्ति पर लिण्डवर्ग को लोग 'लकी लिण्डी' और 'लोन ईगल' नामों से पुकारने लगे।

उन्होंने एक पुस्तक 'द स्प्रिट आफ सेंट लुई' भी लिखी जो बहुचर्चित कृति मानी जाती है तथा 1954 में उसे पुलिट्जर पुरस्कार भी मिला।

लेकिन अचानक इन सारी खुशियों का माहौल गम में बदल गया। शायद ईश्वर को यही मंजूर था। 1932 में सारे विश्व को यह दुखद समाचार सुनकर बहुत धक्का लगा कि किसी ने उनके शिशु का अपहरण करके बाद में उसे मार डाला। इसी घटना से लिण्डवर्ग के जीवन के दुखद अध्याय का आरम्भ हुआ और वे सार्वजनिक जीवन से कुछ कटे-कटे से रहने लगे।

1935 में लिण्डवर्ग दम्पति इंग्लैंड चले गए और वहाँ से फ्रांस पहुँचे। फ्रांस में लिण्डवर्ग ने नोबल वैज्ञानिक डा० एलेकिसस कैरेल के साथ एक जैव-रसायनशास्त्री के रूप में अपना जीवन आरम्भ किया।

जब अमेरिका ने द्वितीय विश्व युद्ध में प्रवेश किया, लिण्डवर्ग की विशिष्ट जानकारी का उपयोग किया गया। पहले उन्होंने गैर सरकारी विमान निर्माता कम्पनियों के परामर्शदाता की हैसियत से और तदुपरान्त एक असैनिक टैक्निशियन की हैसियत से कार्य किया।

युद्ध की समाप्ति के बाद लिण्डवर्ग ने एकाकी जीवन बीमा प्रारम्भ किया। अपने जीवन के इस एकान्तवास वाले समय में भी उन्होंने जीवों की उन नस्लों की रक्षा करने में योग दिया जिनके अस्तित्व का खतरा था।

लिण्डवर्ग 'यू० एस० एडवाइजरी कमेटी एवं एनवायरानमेण्टल क्वालिटी' तथा 'इण्टरनेशनल यूनियन फार द कंजरवेशन आव नेचर' नामक समितियों के सदस्य एवं 'वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फण्ड' के निर्देशक थे।

अभी हाल में माई नामक हवाई द्वीप में 72 वर्ष की अवस्था में उनका निधन हो गया। और इस प्रकार लिण्डवर्ग नामक एक साहसी, कर्मठ एवं कुशल वैमानिक जीवन का अंत हो गया। उनके जीवन के आदर्श और लीक, जिस पर वे चलते थे, सचमुच अनुकरणीय हैं। दिवगंत आत्मा को हमारी श्रद्धांजलियाँ।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

जैव उर्वरक—२

डा० शिव गोपाल मिश्र

अनुमान है कि सोवियत संघ में 1 करोड़ हेक्टर में जैव उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वहाँ कृत्रिम उर्वरकों का प्रयोग नहीं होता होगा। जैव उर्वरकों के साथ ही कृत्रिम उर्वरकों के सदुपयोग की सलाह दी जाती है।

यह देखा गया है कि तीनों प्रकार के जैव उर्वरकों में से ऐजोटोबैक्ट्रिन के प्रयोग से 50-70% फसलों को लाभ पहुँचता है। इस प्रकार फसलों की उपज में 10% की वृद्धि सम्भव है। फास्फोबैक्ट्रिन से भी इसी स्तर तक लाभ पहुँचता है किन्तु नाइट्रैजिन के प्रयोग से उन दोनों जैव उर्वरकों की अपेक्षा अधिक लाभ पहुँचता है। यूक्रेन की मिट्टियों में नाइट्रैजिन के प्रयोग से 60% तक की वृद्धि देखी गई।

निष्कर्ष के रूप में यह पाया गया है कि जैव उर्वरकों के द्वारा धान्य फसलों की अपेक्षा तरकारियों को अधिक लाभ पहुँचाता है।

क्रिया विधि—जैव उर्वरक कई प्रकार से पौधों को प्रभावित करके उपज में वृद्धि प्रदर्शित करते हैं।

(1) **पौधों की वृद्धि का नियमन**—यह देखा गया है कि ऐजोटोबैक्ट्रिन के प्रयोग से बीजों का अंकुरण अच्छी तरह से होता है और पौधे ठीक से बढ़ती हैं; पौधों में ठीक से बालें आती हैं और जड़ों की वृद्धि प्रोत्साहित होती है।

(2) **जैव रासायनिक प्रभाव**—ऐजोटोबैक्ट्रिन के द्वारा चुकन्दर में अधिक शर्करा उत्पन्न होती है; आलुओं में अधिक स्टार्च और मक्के में अधिक प्रोटीन उत्पन्न होता है। ऐसा होने का कारण पौधों के भीतर विभिन्न एंजाइमों का उत्प्रेरण है।

फलस्वरूप वैज्ञानिकों ने जैव उर्वरकों की क्रिया-विधि ज्ञात करने का प्रयत्न किया है। चूँकि तीन प्रकार के उर्वरक प्रयुक्त होते हैं अत: उनकी क्रिया-विधियाँ भिन्न-भिन्न होंगी।

ऐजोटोबैक्ट्रिन की क्रियाविधि—कम से कम चार प्रकार से ऐजोटोबैक्ट्रिन अपना प्रभाव दिखा सकता है :—

(1) **नाइट्रोजन यौगिकीकरण द्वारा**—ऐजोटोबैक्ट्रिन द्वारा मिट्टी में स्थिर की गई नाइट्रोजन में वृद्धि होती है जिससे पौधे लाभान्वित होते हैं। यदि कम्पोस्ट भी डाली जाय तो इस वृद्धि में कमी नहीं होती। ऐजोटोबैक्ट्रिन की उपस्थिति में खनिज तथा कार्बनिक उर्वरकों का अच्छी तरह उपभोग होता है।

(2) **वृद्धि कारकों की पूर्ति**—ऐजोटोबैक्ट्रिन द्वारा इंडोल ऐसीटिक अम्ल तथा कई विटामिन संश्लिष्ट होते हैं जो पौधों की वृद्धि को प्रोत्साहित करते हैं।

(3) **टाक्सिनों का विनाश**—मिट्टियों में अनेक विषालुता उत्पन्न करने वाले कारक विद्यमान रह सकते हैं, विशेषतया अब मिट्टी को आटोक्लेवित किया जाता है तो टाक्सिनों का दुष्प्रभाव प्रकट होने लगता है। यह दुष्प्रभाव जैव उर्वरकों की उपस्थित में निरस्त हो जाता है।

(4) **अन्य हानिकारक जीवाणुओं का प्रतिरोध**—मिट्टियों में पौधों को हानि पहुँचाने वाले अनेक जीवाणु (पैथोजन) रहते हैं। ऐसा विश्वास है कि ऐजोटोबैक्ट्रिन से इनका निराकरण हो जाता है।

फास्फोबैक्ट्रिन की क्रियाविधि

मिट्टी में फास्फेट अविलेय रूप में रहता है। फास्फेट स्रोत के रूप में सुपरफास्फेट अथवा शैल फास्फेट

भी मिट्टी में डाला जाता है। इन्हें मिट्टी में विलेय अवस्था में रखने में फास्फेबैक्ट्रिन सहायक होता है। इसमें विद्यमान बैसिलस मेगाथीरियम, न केवल फास्फेट मुक्त करते हैं वरन् अमोनिया भी उत्पन्न करते हैं। ये बैसिलस सल्फेट में से H_2S मुक्त कर सकते हैं जो फेरिक फास्फेट से क्रिया करके फास्फेट मुक्त कर सकता है। यह फास्फेट फसलों द्वारा गृहीत होता है और उपज में वृद्धि होती है। इस प्रकार फास्फोबैक्ट्रिन के उपयोग से जई, गेहूँ, ज्वार-बाजरा, मक्का तथा सोयबीन की फसलों को लाभ पहुँचा है। हमारे देश में कानपुर में इस दिशा में थोड़ा कार्य हुआ है।

नाइट्रजिन की क्रियाविधि—नाइट्रैजिन का बहु प्रचलित नाम राइजोबियम संवर्ध है। इस जैव उर्वरक में विशिष्ट सूक्ष्मजीव 'राइजोबियम' रहते हैं जो केवल दलहनी फसलों के लिये लाभदायक हैं। इस जैव उर्वरक में विद्यमान सूक्ष्मजीव दालों की जड़ों में ग्रंथियाँ बनाकर अधिक नाइट्रोजन-यौगिकीकरण, प्रदर्शित करते हैं। यह नाइट्रोजन ग्रंथियों से उत्सर्जित होकर धान्य फसलों को लाभ पहुँचा सकता है अन्यथा मिट्टी में संचित होकर उसकी उर्वरता को बढ़ाने में सक्षम है। कोई ऐसी मिट्टी जिसमें पहले दलहनी फसल न उगी हो और उसमें उसे उगाना हो तो नाइट्रैजिन का प्रयोग न केवल आवश्यक वरन् लाभदायक भी है। अमरीका में नाइट्रैजिन का अत्यधिक प्रयोग होता है। हमारे देश में दिल्ली, कानपुर, जबलपुर तथा पन्तनगर में इस दिशा में प्रयोग हुये हैं और सोयाबीन की खेती स्थापित करने के यत्न हो रहे हैं।

अन्य उर्वरकों की क्रिया विधि

जापान में नील हरित शैवाल उर्वरक का प्रयोग होता है। धान के खेतों में नील हरित शैवाल अधिक वृद्धि करता है। इससे कार्बन तथा नाइट्रोजन दो तत्व प्राप्त होते हैं। चूँकि शैवाल नाइट्रोजन यौगिकीकरण करते हैं और इस प्रक्रिया में फास्फेट तथा मालिब्ड कम लाभदायक सिद्ध होते हैं अतः शैवाल उर्वरकों के साथ इन दोनों तत्वों की आवश्यक मात्रा का ध्यान रखा जाता है। शैवाल उर्वरकों के प्रयोग से 22·5 पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ स्थिर की जा सकती है। भारत में केन्द्रीय चावल अनुसन्धान, कटक में शैवाल उर्वरक के प्रयोग से धान की उपज में 30% वृद्धि देखी गई। डा० धर का अभिमत है कि क्लोरेला (शैवाल) के द्वारा नाइट्रोजन क्षति में वृद्धि होती है। अतः शैवाल लाभदायक नहीं हैं।

उपर्युक्त क्रियाविधियों के साथ-साथ दो या अधिक जैव उर्वरकों के मिश्रण के प्रयोग से सामान्यतः अधिक लाभ प्राप्त होता है। ऐसा होने का कारण विभिन्न सूक्ष्मजीवों के मध्य साहचर्य (association) है। शैवाल तथा ऐजोटोबैक्टर, ऐजोटोबैक्टर तथा बैसिलस मेगाथीरियम, आदि के साहचर्य उल्लेखनीय हैं। मिश्रित जैव उर्वरक तैयार करने में इस गुण का लाभ उठाया जा सकता है।

जैव उर्वरकों का उत्पादन--जैव उर्वरक द्रव तथा ठोस—इन दो रूपों में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम ऐजोटोबैक्टर को पीट (कार्बनिक पदार्थ) में निवेशित करके खेतों में डाला गया। बाद में आधा लीटर की बोतलों में ऐगार संवर्धभर कर बीजोपचार के लिए ऐजोटोबैक्टर उपलब्ध कराये गये। अब शुष्क संवर्ध बनने लगे हैं जिन्हें बीजोपचार के लिए प्रयुक्त किया जाता है। प्रायः 2-4 किग्रा० जैव उर्वरक पदार्थ 100 किग्रा० बीजों को उपचारित करने के लिए पर्याप्त होता है। यदि कार्बन पदार्थ के साथ इस उर्वरक को डाला जाय तो अच्छे परिणाम प्राप्त होते हैं। बीजों को कवकनाशी रसायनों से उपचारित करके फिर ऐजोटोबैक्ट्रिन का प्रयोग करने से सम्बन्धित परीक्षण हुए हैं।

नाइट्रैजिन तैयार करने के लिए राइजोबियम को निर्जर्मित मिट्टी में निवेशित करके 40° पर सुखाते हैं और फिर 2° से० पर संरक्षित कर देते हैं। यह देखा गया है कि ऐसा करने पर 5 वर्षों तक जीवाणु सक्रिय रह सकते हैं। सामान्यतः फैक्टरी में नाइट्रैजिन तैयार करते समय जीवाणु भोजी (बैक्टीरियोफेज) बाधक होते हैं अतः भोजी-प्रतिरोधी प्रजातियों की खोज की जा रही है।

जैव उर्वरकों में से फास्फोबैक्टरिन ऐसा है जिसका संरक्षण सुगम है।

हमारे देश में दिल्ली स्थित भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, कानपुर कृषि विज्ञान संस्थान तथा जबलपुर में राइजोबोयिम कल्चर तैयार करने की विधियाँ विकसित की गई हैं। कल्चर के वाहक (कैरियर) के रूप में पीट, गोशाला की खाद या मिट्टी प्रयुक्त की जाती है। कानपुर में तैयार किया गया कल्चर 55-100 पैसे प्रति पैकेट मिलता है जिसको 60 ग्राम गुड़ के घोल में मिलाकर 10 किलोग्राम दलइनी बीज पर छिड़का जा सकता है।

शैवाल का कल्चर कई प्रकार से तैयार किया जाता है। जापानी विधि 'बजरी कल्चर' कहलाती है जिसमें ज्वालामुखी उदगार से प्राप्त बजरी पर नील हरित शैवाल उगाये जाते हैं फिर इस कल्चर को धान के खेतों में मिला दिया जाता है। ऐसा अनुमान है कि बजरी में शैवाल 2 वर्ष तक संरक्षित रह सकता है। वेंकट रामन (1969) ने 'शुष्क बालू' विधि विकसित की है। कृत्रिम स्पंज विधि या शैवाल चूर्ण विधि भी प्रयुक्त की जाती है।

कुछ सावधानियाँ—जैव उर्वरकों को प्रयोग करते समय कुछ आवश्यक बातों का ध्यान रखना होगा।

1. जैव उर्वरकों में निहित जीवाणुओं को अत्यन्त सक्षम होना चाहिए।

2. यदि मिट्टियों में कार्बनिक पदार्थ की न्यूनता हो तो पहले कार्बनिक खाद डालनी चाहिए।

3. मिट्टी में पर्याप्त आर्द्रता रहनी चाहिए।

4. यदि मिट्टी अम्लीय है तो चूना डालकर उसे ठीक कर लेना चाहिए।

5. ध्यान रहे कि जैव उर्वरकों के प्रयोग से कृत्रिम उर्वरकों कार्बनिक उर्वरकों की आवश्यकता समाप्त नहीं की जा सकती। ये उनके पूरक रूप में हैं।

उर्वरकों का यह नूतन साधन अत्यन्त आकर्षक एवं चमत्कारिक है। इनके प्रयोग से फसलों की उपज बढ़ेगी और भूमि की उर्वरता में सुधार होगा, इस दृष्टि से इन पर अधिकाधिक प्रयोग की आवश्यकता है। परोक्ष रूप से कृषक इनसे लाभ उठाते रहे हैं किन्तु अब वह समय आ गया है जब वे इससे प्रत्यक्ष लाभ उठाने में कोई कसर न उठा रखें। हमारे सूक्ष्मजीव विज्ञानी इनके प्रयोगों की सम्भावनाओं पर निरन्तर कार्य कर रहे हैं।

● ●

लेखकों के लिये

लेख भेजते समय कृपया ध्यान दें कि :—

- लेख कालेज स्तर के छात्रों के लिये हो।
- लेख कागज के एक ओर हो और स्पष्ट लिखा हो। यदि टाइप हो सके तो अच्छा है। समुचित स्थान छुटा होना चाहिये ताकि सम्पादन में कठिनाई न हो।
- लेख अन्यत्र प्रकाशन हेतु प्रस्तुत नहीं होना चाहिये।
- यदि अस्वीकृत लेख वापस मंगाना हो तो डाक टिकट लगा पता लिखा हुआ लिफाफा भेजें।
- लेख के साथ काली स्याही से बने चित्र भी भेजें।

स्वीकृत लेखों में से चुने गये लेखों के लिये पत्र पुष्प की व्यवस्था की गई है।

कृत्रिम मोती

—कृष्ण स्वरूप द्विवेदी

मोतियों का महत्व प्राचीन काल से रहा है। आज भी मोती पहनना धनाढ्यता का प्रतीक एवं गौरव का विषय माना जाता है। इनकी गणना बहुमूल्य जवाहरातों में की जाती है। मोती कोई कीमती पत्थर नहीं है वरन् समुद्री सीप द्वारा उत्पन्न एक प्रकार का स्राव है जो किसी वस्तु के चारों ओर लिपट जाता है। जब कभी कोई समुद्री पौधे की छोटी टहनी, बालू का कण या कोई कृमि सीप के शरीर के अन्दर चला जाता है तथा इसके मेंटिल के सम्पर्क में आ जाता है तो मोती का निर्माण होता है। मेंटिल से एक प्रकार का स्राव निकलता है जिसे नेक्रे कहते हैं। यही स्राव बाहर से आयी हुई वस्तु के चारों ओर लिपटने लगता है। कालान्तर में यह एक गोल चमकदार मोती के रूप में परिवर्तित हो जाता है। लेकिन इस प्रकार किसी वाह्य वस्तु का सीप के अन्दर प्रवेश बहुत ही कम होता है अतः प्रकृति में मोती बनने की सम्भावना भी बहुत कम होती है। इस सम्बन्ध में सबसे पहिले जापानी वैज्ञानिकों ने शोध प्रारम्भ की और कृत्रिम मोतियों का उत्पादन किया। वास्तव में सम्बर्धित मोती को कृत्रिम मोती कहना गलत है क्योंकि सम्बर्धित मोती ठीक उसी रासायनिक स्राव का बना होता है जिसका कि प्राकृतिक मोती अंतर केवल इतना होता है कि प्राकृतिक मोती में नेक्रे की पर्त, समुद्री पौधे की छोटी टहनी, बालू कण या किसी छोटे कीड़े के ऊपर जमती है तथा सम्बर्धित मोती में सीप के शरीर के अंदर मोलस्का वर्ग के प्राणियों के कवच के छोटे टुकड़े प्रविष्ट कराए जाते हैं जिन पर नेक्रे की पर्त जमती है।

जापान के टोक्यो शहर में (1890) में एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया था जिसमें यह प्रदर्शित किया गया था कि प्रकृति में मोती कैसे बनते हैं? क्या प्रकृति में मोती बनने की गति तीव्र की जा सकती है? यह प्रश्न एक नवयुवक के मस्तिष्क में चक्कर काटने लगा था। उसने निश्चय किया कि वह इस विषय पर कार्य करेगा। इसके लिए उसने अपना एक फार्म खोला और सीप पाली। दो वर्ष तक लगातार कठिन परिश्रम के बावजूद इस नवयुवक को कोई सफलता नहीं मिली लेकिन एक दिन वह अपनी पत्नी के साथ सीप खोल रहा था कि एकाएक उसे एक सीप के अंदर मोती मिला (1893), उनके खुशी का ठिकाना न रहा। इस व्यक्ति का नाम कोकिची मिकीमोती था। मिकीमोती पहला व्यक्ति था जिसने समुद्र से बाहर अपने फार्म में मोती उत्पन्न कराने की कोशिश की थी और जिसे सफलता मिली थी। दुर्भाग्य से मिकीमोतो द्वारा उत्पन्न कराए मोती छोटे थे और प्राकृतिक मोतियों की तरह गोले न थे। इन्हें अर्द्धमोतियों की संज्ञा दी गई। पूर्णरूप से गोल मोती उत्पन्न कराने के प्रयास चलते रहे और सबसे पहिले गोल मोती उत्पन्न कराने का श्रेय मिला जापान के ताशुट्टी मिजे को।

यद्यपि मिकोमोती और मिजे के कार्यों का विशेष महत्व है लेकिन वैज्ञानिक ढंग से मोती उत्पादन का श्रेय तोकिची निशीकावा नामक वैज्ञानिक को है। जापान में मोती उत्पन्न करने की आधुनिक वैज्ञानिक विधि के आविष्कारक निशीकावा ही हैं।

मोतियों के उत्पादन में सीपियों का चुनाव बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। वैसे तो विशेष परिस्थितियों में दो वल्वों वाले मोलस्का वर्ग के बहुत से जन्तु मोती उत्पादन कर सकते हैं लेकिन अच्छे किस्म के मोती कुछ विशेष सीपियों द्वारा ही उत्पन्न होते हैं। कुछ मोती उत्पन्न करने वाली सीपियों के नाम हैं—

Pinctada martensii, Pinctada margaritifera, Pinctada maxima एवं Pteria penguis. Pinctada martensii द्वारा उत्पन्न मोती सबसे उत्तम किस्म का होता है। P. margaritifera तथा P. maxima द्वारा उत्पन्न मोती आकार में बड़े लेकिन घटिया किस्म के होते हैं। Pteria penguirn द्वारा उत्पन्न मोती सबसे अच्छे होते हैं। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि पूरी तरह से विकसित होने पर इनका मूल्य इसी आकार के हीरे से अधिक होता है।

सीप के शरीर में न्युक्लियस प्रविष्ट करने के लिए तीन-चार वर्ष पुरानी सीप चुनी जाती है। इस क्रिया में एक सीप के Mantle का टुकड़ा उचित न्युक्लियस के साथ दूसरी सीप में प्रविष्ट कर दिया जाता है। इस क्रिया में चार प्रमुख कार्य होते हैं :—

(अ) सीपियों को आपरेशन के योग्य बनना

(ब) मेंटिल के छोटे-छोटे टुकड़े तैयार करना जिन्हें ग्रेफ्ट ऊतक कहते हैं

(स) उचित न्युक्लियस बनाना

(द) और अन्त में न्युक्लियस को सीप के शरीर में आपरेशन द्वारा प्रविष्ट कर देना

आपरेशन के लिए चुनी गई सीप पूर्णरूप से स्वस्थ्य होनी चाहिए नहीं तो वह आपरेशन के दौरान दम तोड़ देगी या फिर न्युक्लियस को शरीर से बाहर गिरा देगी। सीपियों में आपरेशन का धक्का सहन करने की क्षमता उस समय सबसे अधिक होती है जब नर शुक्राणु तथा मादा अण्ड रहित हों। ऐसा करने के लिए सीपियों को समुद्र के गर्म अथवा ठण्डे जल में डुबाया जाता है। इस धक्के को सीप सहन नहीं कर पाती अतः नर अपने शरीर से शुक्राणु तथा मादा अपने शरीर से अण्ड का त्याग कर देती हैं। अब सीपियों को अपने कवच खोलने के लिए प्रेरित किया जाता है। ऐसा करने के लिए उन्हें कुछ देर के लिए घुटन के वातावरण में रखा जाता है जिससे सीप अपना कवच खोलने लगती है। इसी समय खुले कवच के बीच में बाँस की छोटी-छोटी कमाचियां रख दी जाती हैं जिससे कवच पुनः बन्द न हो जाय। सीप का कवच अधिक देर तक खुला नहीं रहना चाहिए क्योंकि ऐसा होने पर सीप थक जाती है और आपरेशन सहन कर सकने की क्षमता खो बैठती है।

ग्रेफ्ट ऊतक किसी स्वस्थ सीप के Mantle से तैयार किया जाता है। सीप के किनारे से एक पट्टी काट ली जाती है जिससे उसके अन्दर का ऊतक निकल आता है। यह ऊतक मैंटिल वाले भाग का होना चाहिए। इस ऊतक के छोटे-छोटे टुकड़े कर लिए जाते हैं। इन्हें ही उचित न्युक्लियस के साथ सीप के साथ प्रविष्ट करा दिया जाता है। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि मैंटिल के ऊपरी सतह पर Nacre उत्पन्न करने वाली ग्रंथियाँ पायी जाती हैं अतः ऊतक की ऊपरी सतह न्युक्लियस के सम्पर्क में रखी जानी चाहिए।

यद्यपि न्युक्लियस किसी भी पदार्थ का हो सकता है परन्तु यदि ऐसी वस्तु का न्युक्लियस बनाया जाय जिसमें कैलसियम उपस्थित हों तो मोती ज्यादा अच्छा बनता है। अतः न्युक्लियस मोलस्का वर्ग के जन्तुओं के कवच जो कि कैलसियम, कार्बोनेट का बना होता है, का बनाया जाता है।

अब सीप का आपरेशन किया जाता है। इसके बाद की इपीथीलियस कोषाओं में एक चीरा लगा दिया जाता है। इस चीरे में ग्रेफ्ट ऊतक रख दिया जाता है तथा ग्रेफ्ट ऊतक की ऊपरी सतह के ठीक ऊपर न्युक्लियस रख दिया जाता है। अब बाँस की कमाची निकाल ली जाती है और उसे पानी में डाल दिया जाता है। एक ही सीप में दो से अधिक न्युक्लियस नहीं कराए जाते। यदि किसी सीप में दूसरी ओर से तथा याद में न करके गोनाड (जननांग) में किया जाता है। अब सीप को समुद्र में तीन से छः वर्ष के लिए डाल दिया जाता है। इसके बाद सीप को समुद्र से निकाल कर उससे मोती निकाले जाते हैं।

—कृष्ण स्वरूप द्विवेदी

● ●

डॉ० आशिमा चटर्जी

1975 के इण्डियन साइंस कांग्रेस के अधिवेशन में जिस वैज्ञानिक ने अध्यक्षता की उसका नाम है डॉ० आशिमा चटर्जी। यह पहली महिला वैज्ञानिक हैं जिन्हें यह गौरव प्राप्त हो सका है। इससे पूर्व डॉ० चटर्जी इस संस्था की जनरल सेक्रेटरी तीन वर्षों तक रहीं।

डॉ० आशिमा चटर्जी का जन्म कलकत्ता के हुगली जिले में सितम्बर 1917 में हुआ था। बेथून स्कूल तथा स्काटिश चर्चेज कालेज से शिक्षा समाप्त करके इन्होंने यूनिवर्सिटी कालेज आफ साइन्सेज में अध्ययन आरम्भ किया था और आगे चलकर उसी विभाग की अध्यक्ष बनीं। रसायन शास्त्र में डॉ० चटर्जी का प्रेम व लगाव बचपन से ही था और इस रुचि में पिता डॉ० आई० एन० मुकर्जी का अपने खेतों के लिये स्वयं रासायनिक खाद बनाने तथा होली के अवसरों पर स्वयं रंग तैयार करने के प्रयोगों का सर्वाधिक योग दान है। इनकी पुत्री वा दामाद भी रसायन शास्त्र के ही क्षेत्र में शोध कार्य करते हैं। यह उदाहरण ठीक उसी प्रकार का है जैसा मदाम क्यूरी, उनकी पुत्री इरीन तथा दामाद फ्रेडिक का, जो सभी रसायन शास्त्र से सम्बन्धित रहे। इनके पति श्री बरोदानन्द चटर्जी बंगाल इंजीनियरिंग कालेज के वाइस प्रिंसिपल रहे तथा मिट्टी और कृषि के क्षेत्र में उपयोगी प्रयोगों द्वारा महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये। पति की मृत्यु 1957 में ही हो गई थी। उसी वर्ष पिता की भी मृत्यु हो गई।

1947 डॉ० आशिमा चटर्जी अमरीका गई और लौट कर लेडी ब्रेबन कालेज में प्रोफेसर नियुक्त हुई। उच्च अध्ययन के लिये डॉ० चटर्जी पुनः अमरीका गई और वे इंगलैण्ड, स्विटजरलैण्ड भी गई। इसके अतिरिक्त नेचुरल प्रोडक्टस पर, जिस क्षेत्र में वह शोध-कार्य करती रही है—कई कान्फ्रेंसों में भाग लिया और इस सिलसिले में रूस, फ्रांस, मलेशिया, हांग कांग, जापान, आस्ट्रेलिया आदि देशों में अपने शोध सम्बन्धी व्याख्यान दिये। इन्होंने कई पौधों से ऐसे पदार्थ निकाल कर अलग किये जिनका शारीरिक प्रक्रियाओं पर गहन प्रभाव पड़ता है। 'राल्फाई' तथा 'पक्डीरिया फाइटिडा' नामक पौधों पर इनके विशेष प्रयोग हुये हैं।

डॉ० शान्तिस्वरूप भटनागर पुरस्कार प्राप्त इस वैज्ञानिक ने कई पुस्तकों की रचना भी की है। यह इण्डियन नेशनल साइन्स एकेडेमी की फेलो भी निर्वाचित हो चुकी हैं। यूनेस्को के तत्वावधान में आयोजित 'फोटोकेमिस्ट्री' के सिम्पोजियम की अध्यक्षता भी डॉ० आशिमा चटर्जी कर चुकी है। डॉ० चटर्जी की थीसिस का विषय था 'पौधों के उत्पादन का रसायन शास्त्र' आजकल डॉ० चटर्जी सुमन्वित रसायनों तथा कुछ दवाओं पर प्रयोग कर रही हैं जिससे उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त होने की पूर्ण सम्भावना पाई जाती है। डॉ० चटर्जी वैज्ञानिक तो हैं ही जिसमें ज्यादा से ज्यादा समय देती हैं पर इसके अतिरिक्त उन्हें शास्त्रीय संगीत तथा चित्रकारी से भी काफी लगाव है।

● ●

विद्यालय स्तर पर गणित अध्ययन की समस्यायें और उनका निराकरण

ओम प्रकाश दुबे

सभी विज्ञानों की आधार शिला गणित है, आधुनिक अन्तरिक्ष युग में अथक मानवीय प्रयासों तथा अनुसंधानों द्वारा जीवन के हर क्षेत्र में विज्ञान की सीमायें अधिकाधिक विस्तृत हो रही हैं। मानव के चिन्तन, मनन और समस्याओं को हल करने की विधियों पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का स्पष्ट प्रभाव पड़ रहा है। अतएव गणित, विशेषकर आधुनिक गणित के अध्ययन की महत्ता, परम्परागत पाठ्यक्रम में नवीन विषयों का समावेश और छात्रों के समक्ष गणित के गूढ़ तथ्यों तथा मूल प्रत्ययों को नवीन विधि से प्रस्तुत करने की आवश्यकता अपने राष्ट्र में ही नहीं अपितु समस्त समस्त विश्व में अनुभव की जा रही है।

स्कूल स्तर का गणित ही स्नातक, स्नातकोत्तर गणित संबंधी शोधों तथा देश के वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास का मूल आधार है। वस्तुतः स्कूल स्तर के गणित का प्रभाव अत्यन्त व्यापक है तथा इसका वर्तमान स्तर ही देश के भावी बौद्धिक वातावरण के स्तर का निश्चय करेगा। स्कूल स्तर में विद्यार्थी गणित अध्ययन संबंधी जिस पद्धति को विकसित कर लेता है वही उसके भावी जीवन को दिशा प्रदान करती है। अतः स्कूल स्तर के गणित की समस्याओं का निराकरण हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। स्कूल और इण्टरमीडियेट स्तर के गणित अध्यापन में अनेक समस्यायें हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैं—

(1) **योग्य अध्यापकों का अभाव**—हमारे प्रदेश में हाई स्कूल स्तर पर सामान्य या विशेष गणित के रुप में गणित एक अनिवार्य विषय है, किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि स्वतंत्रता के 27 वर्ष बाद भी आज ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक ऐसे विद्यालय हैं जहाँ हाई स्कूल स्तर के लिये गणित के योग्य अध्यापक नहीं हैं। बहुत से विद्यालयों में गणित से हाई स्कूल या इण्टरमीडियेट पास अध्यापक ही हाई स्कूल कक्षाओं में गणित पढ़ाते हैं। संभव है कि ये अध्यापक अपने पुराने अनुभव के आधार पर छात्रों को परीक्षा में उत्तीर्ण कराने में सफल होते हों, किन्तु मेरा ऐसा विश्वास है कि गणित का योग्य अध्यापक ही गणित की नवीन खोजों से परिचित होकर सरल तथा विकसित उपकरणों के माध्यम से गणित के प्रति छात्रों को नवीन दृष्टिकोण प्रदान कर सकता हैं। इसके साथ ही वह परिश्रमी छात्रों में गणित संबंधी शोधों के प्रति रुचि उत्पन्न करने की दृष्टि से उन्हें सक्षम बना सकता है। अतः विभागीय अधिकारियों से निवेदन है कि प्रत्येक विद्यालय में योग्य अध्यापक ही गणित का अध्यापन करें। इस संबंध में मेरा यह भी सुझाव है कि पेनल निरीक्षण के समय निरीक्षक-गण यदि इस प्रकार की अनियमता किसी विद्यालय में देखें, तो इसके लिये संबंधित अधिकारियों को आग्रह कर दें।

(2) **समय सारिणी**—यदि विद्यालय विभिन्न प्रकार के प्रचलित आन्दोलनों के कारण बन्द न रहें, तो पूरे वर्ष में 135 दिन अध्यापन कार्य के लिये खुले होते हैं। हाई स्कूल के गणित के पाठ्यक्रम को किसी प्रकार से समाप्त करने के लिये कम से कम 225 पीरियड की आवश्यकता होगी। किन्तु अनेक विद्यालयों में गणित अध्यापक के अभाव तथा अन्य कारणों से

केवल एक पीरियेड प्रतिदिन गणित पढ़ाने को मिलता है, जिसके कारण संबंधित अध्यापक केवल चुने हुए अध्यायों को पढ़ाने के लिये बाध्य हो जाता है। अतः प्रत्येक विद्यालय में गणित अध्यापन के लिये हाई स्कूल स्तर पर सप्ताह में कम से कम 10 पीरियड पढ़ाने की व्यवस्था होनी चाहिये।

इण्टरमीडियेट का पाठ्यक्रम इतना वृहत है कि उसको पढ़ाने के लिये कम से कम पूरे वर्ष में 300 पीरियेड चाहिये। यह सौभाग्य की बात है कि प्रदेश के लगभग 80% विद्यालयों में सप्ताह में 12 पीरियड गणित पढ़ाने को दिया जाता है। किन्तु 20% विद्यालयों में सप्ताह में केवल 9 पीरियड पढ़ाने को दिया जाता है, जिसके कारण संबंधित अध्यापक पाठ्यक्रम को सम्यक ढंग से पढ़ाने में असमर्थ होता है। अतः विभागीय अधिकारियों से निवेदन है कि सभी विद्यालयों में इण्टर मीडिएट स्तर पर सप्ताह में 12 पीरियड गणित का अध्यापन हो। इस कार्य में भी पेनल निरीक्षकगण बहुत सहयोग दे सकते हैं।

गणित के अध्यापन में आंकिक एवं ज्यामितीय समस्याओं का हल करने के साथ-साथ छात्रों की तार्किक शक्ति (Power of reasoning) को विकसित करना, समस्याओं के समाधान खोजने की क्षमता उत्पन्न करना इनके व्यक्तकरण (Expression) एवं प्रदर्शन (Performance) में सत्यता (Exactness) के गुण को जागृत करना अति आवश्यक है। वर्तमान परिस्थिति में हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट दोनों स्तर के गणित अध्यापकों को सामान्यतया 36 पीरियेड साप्ताहिक, बल्कि कुछ विद्यालयों में 42 पीरियड साप्ताहिक पढ़ाना पड़ता है। इस परिस्थिति में उपर्युक्त उद्देश्य एवं सही ढंग से अध्यापन करने में अध्यापक असमर्थ होता है। अतः हाई स्कूल के गणित अध्यापकों को 30 पीरियड साप्ताहिक और इण्टरमीडिएट स्तर के गणित अध्यापकों को केवल इण्टरमीडिएट कक्षाओं के 24 पीरियड साप्ताहिक पढ़ाने को दिये जाँय। इस संबंध में अन्य विषय अध्यापक विरोध प्रकट कर सकते हैं, किन्तु गणित में अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की बढ़ती हुई संख्या एवं उसकी कठिनाइयों को ध्यान में रखकर उन्हें पूर्ण सहयोग देना चाहिये।

हाई स्कूल का परीक्षाफल प्रतिवर्ष गिरता जा रहा है जिसका मुख्य कारण गणित में अधिक छात्रों का अनुत्तीर्ण होना है। यदि प्रयास से गणित में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों की संख्या बढ़ जाय तो बोर्ड का परीक्षाफल ऊँचा होगा और लाखों विद्यार्थियों का एक वर्ष भी बच जाएगा। इसके लिए गणित अध्यापकों एवं प्राध्यापकों को कक्षा 6 से 10 तक की कक्षाओं में गणित के पठन-पाठन एवं विकास के लिये कार्य करने को कहा जाय तथा उसके लिये आवश्यक सुविधा प्रदान की जाय।

(3) अध्यापन का स्तर—अध्यापक को कक्षा में पढ़ाते समय कक्षा के सबसे कमजोर और प्रतिभावान छात्रों के स्तर को ध्यान में रखना चाहिये। हाई स्कूल के स्तर पर अध्यापक प्रशिक्षित होते हैं, इसलिये इस कार्य में इन्हें असुविधा नहीं होनी चहिये। अप्रशिक्षित एवं बहुत से शिक्षक बन्धुओं का ध्यान कम अनुभवी होते हुये भी निम्नलिखित बातों की ओर आकर्षित कराना चाहूँगा—

(क) अध्यापन में सही इकाइयों का प्रयोग करना चाहिये। आज भी हम लोग 25 पैसे को चवन्नी और पचास पैसे को अठन्नी कहते हैं। इस प्रकार की गलत इकाइयों के प्रयोग से छात्र भी प्रभावित होता है।

(ख) अध्यापन में उपयुक्त चार्टों एवं माडलों का प्रयोग करना चाहिये। यदि मेन्सुरेसन में त्रिबीमीय (Three dimensional) वस्तुओं को पढ़ाने के पहले छात्रों द्वारा उनका कागजी माडल तैयार करवा लिया जाय, तो संभवतः वे सम्यक रूप से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

(ग) बिज्ञान में प्रयोग होने वाले गणित के तथ्यों पर जोर देना चाहिये। उदाहरणार्थ-लम्ब एवं अभिलम्ब में अन्तर स्पष्ट होना चाहिये, जिससे भौतिकी के परावर्तन के नियम में प्रयोग होने वाले अभिलम्ब को छात्र समझ सकें। परावर्तन के नियम के चित्र में

[शेष पृष्ठ 20 पर

'विज्ञान' के 60 वर्ष

डा० शिव गोपाल मिश्र

'विज्ञान' का पहला अंक 1 अप्रैल सन् 1915 में प्रकाशित हुआ। इस प्रकार 'विज्ञान' पूरे साठ वर्ष की लम्बी यात्रा तै कर चुका है। यह पहला वैज्ञानिक मासिक पत्र था जिसका प्रकाशन हिन्दी के माध्यम से विज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने के लिए किया गया था। इसके पहले सम्पादक हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम थे। तब से आज तक विभिन्न व्यक्ति 'विज्ञान' सम्पादक का कार्य अवैतनिक रूप से करते चले आ रहे हैं। इनमें से कई वैज्ञानिक लेखक के रूप में, कुछ शिक्षा विज्ञानी के रूप में और कुछ कुलपति के रूप में हो चुके हैं या हैं।

'विज्ञान' ने देश में हिन्दी को विज्ञान की भाषा बनाने करने का स्तुत्य कार्य किया है। इसमें निर्भीकता पूर्वक हिन्दी की सामर्थ्य का समर्थन होता रहा है, पारिभाषिक शब्दावलियाँ छपती रही हैं और लोकोपयोगी वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन होता रहा है।

प्रारम्भ से 'विज्ञान' के तीन प्रकार के पाठक रहे हैं—वे जो आजीवन सदस्य थे, वे जो सदस्य थे और सामान्य ग्राहक। पराधीनता के काल में भी हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक विषयों के पठन-पाठन का स्वप्न देखने वाले व्यक्तियों की संख्या कम न थी। स्वतन्त्रता के बाद इस संख्या में वृद्धि होनी चाहिए थी किन्तु हिन्दी को व्यवहार की भाषा न बनाकर सरकार ने में उसे 'राष्ट्र भाषा' के लिए उपयुक्त है या नहीं, इस पचड़े डालकर वैज्ञानिक साहित्य सृजन में गतिरोध उत्पन्न किया। फलस्वरूप 'विज्ञान' के पाठकों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि नहीं हो पाई। फिर 'विज्ञान' के प्रकाशनार्थ प्राप्त होने वाली सरकारी सहायता भी 1946 से अनवरत 2000) वार्षिक ही बनी रही। आज के महँगाई के युग में यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि इस अल्प राशि से कैसे कार्य चलता होगा। यदि विज्ञान जीवित है तो उसका श्रेय उन हिन्दी प्रेमियों को है जो इसे पढ़ते हैं और उन लेखकों को है जो निःशुल्क अपने लेख छपाते हैं। यही कारण है कि 'विज्ञान' ने भले ही अधिक पाठकों को सुलभ न हो पाया हो किन्तु उसके द्वारा अच्छे-अच्छे लेखक तैयार हुए हैं। आज जितने भी चोटी के हिन्दी वैज्ञानिक लेखक हैं उनका सम्बन्ध विज्ञान से रहा है। यही नहीं, स्वयं विज्ञान के कई सम्पादक उच्चकोटि के हिन्दी लेखक हो चुके हैं।

प्रारम्भ में 'विज्ञान' का प्रयास विविध वैज्ञानिक विषयों पर लोकोपयोगी सामग्री प्रस्तुत करना था। कारण कि पारिभाषिक शब्दों का निर्माण हो रहा था और कोई सर्व स्वीकृत रूप न था। 'विज्ञान' के सम्पादकों तथा लेखकों ने 1950 के पूर्व पारिभाषिक शब्दों के निर्माण में जो श्लाघनीय प्रयास किये हैं वे अतुलनीय हैं। यदि यह कहा जाय कि सरकार ने जो वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली तैयार की उसके मूल में 'विज्ञान' में ही प्रयुक्त शब्दावली रही है तो अत्युक्ति न होगी।

डा० गोरख प्रसाद ने 1937 ई० के बाद 'विज्ञान' के माध्यम से व्यावहारिक विज्ञान के प्रणयन पर बल दिया। डा० रामचरण मेहरोत्रा ने अपने काल में विशिष्ट वैज्ञानिक विषयों पर ध्यान दिया। यह परम्परा तब से चलती रही और मेरे सम्पादन काल में कई विशेषांक भी निकले। 1970 ई० के बाद 'विज्ञान' के ग्राहकों में कमी आने, तथा आर्थिक कठिनाइयों के कारण यह निश्चित किया गया कि 'विज्ञान' को इन्टरमीडिएट

कक्षाओं तक के विद्यार्थियों के लिए उपयुक्त पत्रिका बनाया जाय। फलस्वरूप 'विज्ञान' के स्तर में परिवर्तन हुआ है। धनाभाव से उसके कलेवर में भी कुछ संकोच हुआ है। लेकिन इतने पर भी इस पत्रिका की उपयोगिता पूर्ववत बनी हुई है।

मैं विज्ञान सम्पादकों की समग्र सूची देकर तथा विज्ञान में प्रकाशित कुछ लेखकों के प्रथम लेखों का उल्लेख करके यह लेख समाप्त करूँगा।

'विज्ञान' के सम्पादकों की सूची

1915-16 श्रीधर पाठक तथा लाला सीताराम
1916-17 ,,
1917-25 प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव
1925-26 ,,
1926-30 प्रो० व्रजराज
1927-33 डा० सत्य प्रकाश तथा प्रो० व्रजराज
1933-37 रामदास गौड़
1937 डा० गोरख प्रसाद
1937-41 डा० सत्य प्रकाश
1941-44 डा० गोरख प्रसाद
1944-46 डा० संत प्रसाद टंडन
1947-49 डा० रामचरण मेहरोत्रा
1950-56 डा० हीरालाल निगम
1956-57 डा० देवेन्द्र शर्मा
1957-59 सम्पादक मंडल
1959-1971 डा० शिव गोपाल मिश्र
1971-73 डा० हरि मोहन
1973 से आगे डा० शिव प्रकाश

उपर्युक्त सूची में डा० सत्य प्रकाश तथा डा० गोरख प्रसाद जी दो बार विज्ञान के सम्पादक रहे। सबसे अधिक काल तक 'विज्ञान' सम्पादन का भार मेरे ऊपर रहा। मेरे काल में स्वामी हर शरणानन्द 'विज्ञान' के स्तर उठाने के लिए 1000) वार्षिक देते थे और वैज्ञानिक विषयों की हिन्दी पुस्तकों को पुरस्कृत करने के लिए कई सहस्र रुपये की राशि भी दी।

विज्ञान सेवियों में श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (सूर्य सिद्धान्त के भाष्यकार), श्री फूल देव सहाय वर्मा, स्वामी हरि शरणानन्द, प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, डा० गोरख प्रसाद, डा० सत्य प्रकाश, श्री ओंकार नाथ शर्मा, श्री शंकर राव जोशी, श्री रामदास गौड़, डा० व्रजमोहन, रामेश वेदी, नन्द लाल जैन प्रमुख रहे हैं। अनेक विज्ञान के सम्पादक, सम्पादक बनने के पूर्व विज्ञान में अनवरत लेखन कार्य करते रहे। उदाहरणार्थ डा० रामचरण मेहरोत्रा का पहला लेख नवम्बर 1944 में छपा (अल्यूमीनियम शीर्षक से), डा० कृष्णबहादुर का पहला लेख दिसम्बर 1945 (जानवरों में विद्युत का प्रभाव) अंक में छपा था। डा० रामदास तिवारी का प्रथम लेख दिसम्बर 1944 (वनस्पति तेल) अंक में प्रकाशित हुआ। डा० आत्माराम का पहला लेख 1939 में छपा था। डा० रमेशचन्द्र कपूर का पहला लेख 1948 (हीलियम) अगस्त-सितम्बर में छपा। डा० अमर सिंह तथा डा० ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा के लेख 1956 में पहली बार छपे। इलाहाबाद के अनेक वैज्ञानिक लेखकों ने 'विज्ञान' के माध्यम से हिन्दी में अपने विचारों को मुखर किया।

विज्ञान में रसायन सम्बन्धी लेख सर्वाधिक छपे हैं किन्तु कृषि सम्बन्धी अनेक लेख 1942-1949 तक छपते रहे। इसके पश्चात् 'भारतीय कृषि के विकास पर मेरे द्वारा लिखित लेखमाला कई वर्षों तक (1957 के बाद) छपती रही जिसको बाद में पुस्तकाकार कर दिया गया। इसी प्रकार 'दैनिक जीवन में रसायन' पर कई वर्षों तक एक लेख माला प्रकाशित होती रही।

भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ सर्व प्रथम 1955 में छपनी प्रारम्भ हुई। डा० सत्य प्रकाश ने आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय, तथा डा० प्रशान्त चन्द्र महालनबीस पर अपनी कलम चलाई। उसके बाद हमारे वैज्ञानिक स्तम्भ के अन्तर्गत 1959 के बाद दो दर्जन के लगभग जीवनियाँ प्रकाशित हुई।

विज्ञान में बाल साहित्य लिखने का शुभारम्भ 1955-56 में श्री नंद लाल जैन ने किया। यह पक्ष बाद में निर्बल रहा आया किन्तु इधर 'बाल विशेषांक'

निकाल कर इस दिशा में अभूतपूर्व कदम उठाया गया है। इधर कई तरुण लेखक प्रकाश में आये हैं। श्री शुकदेव प्रसाद विज्ञान में लगातार लिख रहे हैं। विज्ञान के उत्थान हेतु उनका योगदान सराहनीय है।

यह सच है कि विज्ञान के पास लेखकों का कमी नहीं, यदि कमी है तो धन की जिसके कारण वह विज्ञान प्रगति, विज्ञान लोक जैसी पत्रिकाओं की चमक-दमक से पीछे रह जाती है।

अब जब कि हिन्दी राष्ट्र भाषा बन चुकी है और अनेक राज्यों में हिन्दी ग्रंथ अकादमियाँ वैज्ञानिक साहित्य का लेखन करा रही हैं, 'विज्ञान' को अवश्य ही नवीन क्षेत्र की खोज करके अपनी उपयोगिता सिद्ध करनी है। हिन्दी की यह सबसे प्राचीन वैज्ञानिक पत्रिका साठ वर्ष की आयु प्राप्त करके कहीं मृत प्राय न हो जाय इसके लिए विज्ञान परिषद के सहयोगियों को आगे बढ़ कर उसके पुनरुज्जीवन के लिए यथाशक्य प्रयास करने होंगे। इसके आवरण पृष्ठ, पृष्ठ संख्या, सामग्री चयन आदि में संतुलित नीति का पालन करना होगा।

● ●

[पृष्ठ 17 का शेषांश]

अभिलम्ब लम्ब की भाँति ही देखता है जिसके कारण छात्र दुविधा में पड़ सकते हैं।

(घ) गणित अध्यापन में सही भाषा का प्रयोग होना चाहिये। बहुधा हम कहते हैं कि द्विघात समीकरण $ax^2+6x+c=o$ के मूल परिमेय होंगे जबकि b^2-4ac एक पूर्ण वर्ग हो, किन्तु यह कथन निम्नलिखित उदाहरण पर विचार करने से गलत सिद्ध हो जाता है। समीकरण $x^2+\sqrt{5}\ x+1=0$ में $b^2-4ac=1$ पूर्ण वर्ग है, किन्तु इसके मूल परिमेय नहीं है। अतः सही कथन के लिये यह कहना चाहिये कि समीकरण $ax^2+bx+c=0$ के मूल परिमेय होंगे जबकि a, b, c परिमेय हों और b^2-4ac एक परिमेय संख्या का पूर्ण वर्ग हो।

(4) **उपकरणों की व्याख्या**—पाठ्यक्रम पुस्तिका में हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट स्तर के अनेक उपकरणों का विवरण दिया गया है। अतः इन उपकरणों, माडलों एवं चार्टों की व्यवस्था प्रत्येक विद्यालय में होना चाहिये।

कक्षा में गणित के आधुनिक, सूक्ष्म तथा गूढ़ तथ्यों का सरल ढंग से प्रस्तुतीकरण का कार्य अध्यापकों का है। अतः हम सभी गणित अध्यापकों का कर्तव्य है कि उपयुक्त शिक्षण विधियों द्वारा गणित के प्रति छात्रों के मन में समाये हुये भय, गलत धारणाओं और निर्मूल शंकाओं का निवारण करके गणित को अधिकाधिक लोकप्रिय बनायें, क्योंकि गणित का विकास, प्रचार और प्रश्रय ही अपने राष्ट्र भारत की नवोदित वैज्ञानिक प्रतिभा की उन्नति का मूल आधार है।

ओम प्रकाश दुबे
प्रवक्ता (गणित)
आदर्श कालेज, सरायआकिल
इलाहाबाद

● ●

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत वैज्ञानिक कृतियाँ

1974-75 में उत्तर प्रदेश सरकार ने हिन्दी में प्रकाशित जिन वैज्ञानिक कृतियों को पुरस्कृत किया है वे निम्न प्रकार हैं :—

डॉ० के० एल० ब्रहल पुरस्कार

1. एलिमेंटरी इलेक्ट्रिक टेक्नालाजी	श्री रमेश चन्द्र विजय	नई दिल्ली	1500·00
2. सचित्र एक्सरे डाइग्नोसिस	डॉ० प्रिय कुमार चौबे	वाराणसी	2000·00
3. अकार्बनिक रसायन में प्रकाशीय विधियों का अनुप्रयोग	डॉ० प्रकाश चन्द्र जैन	मेरठ	1500·00
4. पादप रसायन भाग 1	डॉ० शिव गोपाल मिश्र,	इलाहाबाद विश्वविद्यालय	1500·00

डॉ० बीरबल साहनी पुरस्कार

5. सचित्र वनस्पति कोश	डॉ० गणेश शंकर पालीवाल	दिल्ली विश्वविद्यालय	2000·00
6. ब्रायोफाइटा	डॉ० जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव	सी० एम० पी० डिग्री कालेज इलाहाबाद	2000·00
7. पादप कायिकी के सिद्धान्त	डॉ० अमर सिंह	इलाहाबाद विश्वविद्यालय	2000·00
8. प्रसूति विज्ञान	कु० डॉ० मृण्मयी मुकर्जी,	मेडिकल कालेज, इलाहाबाद	2000·00

विविध

9. गरमी की कहानी (बाल साहित्य)	श्री व्यथित हृदय		1000·00
10. समुद्र पर सात दिन (बाल साहित्य)	वीरेन्द्र गुप्त		1000·00
11. नक्षत्र लोक	श्री गुणाकार मुले		2000·00
12. जंगल और जानवर	श्री भगवती सिंह		1000·00
13. आयुर्वेद दर्शन	श्री राजकुमार जैन		1000·00
14. फार्माकोलाजी के मौलिक तथ्य (अनुवाद)	डॉ० आर० एस० सिंह	वाराणसी	2000·00

उपर्युक्त पुस्तकों में से कई पुस्तकें हिन्दी ग्रंथ अकादमी, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशित हैं। लेखकों से से डॉ० शिवगोपाल मिश्र, डॉ० अमर सिंह तथा डॉ० प्रकाश चन्द्र जैन 'विज्ञान' के सुपरिचित लेखक हैं। समस्त पुरस्कार विजेताओं को 'विज्ञान' की बधाइयाँ। भविष्य में अधिकाधिक वैज्ञानिक हिन्दी में लेखन द्वारा पुरस्कार के भागी बनें, यही कामना है।

विज्ञान वार्ता

रेडियेटरों की सफाई के लिए विशेष हाट क्लीनिंग वाट

ओमाहा, नेब्रास्का, की एक फर्म, इनलैण्ड मैनुफैक्चरिंग कम्पनी, ने एक बड़े आकार का हाट क्लीनिंग वाट तैयार किया है जिसका प्रयोग कारों, ट्रकों, ट्रैक्टरों तथा अन्य औद्योगिक वाहनों की सफाई के लिए प्रयुक्त रेडियेटरों तथा अन्य हीट एक्सचेंजरों से मुर्चा, छिलका और कचड़ा हटाने के लिए किया जाता है।

इसका नाम 'माडेल 4 हाट क्लीनिंग वाट' है। इसका निर्माण 72 इंच लम्बे और 66 इंच चोड़े आकार तक के बड़े-बड़े रेडियेटरों की सफाई के लिए किया गया है। इससे एक साथ इस प्रकार के 15 रेडियेटरों की सफाई की जा सकती है।

इस नये माडेल की कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं। इसमें इस्पात की एक दुहरी केबुल एलिवेटर प्रणाली है, जो किसी एक केबुल के टूट जाने पर होने वाली आकस्मिक दुर्घटना और चोट के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करती है। इसमें एक विद्युतचालित ड्राइवर एवं ब्रेक प्रणाली है, जो दोनों ढक्कनों को एक साथ ही अपने आप ऊपर उठाती या नीचे लाती है। इसका स्वत: चालित एजीटेटर बड़ी शीघ्रता से सफाई करता है और इसका 'मेमरी मास्टर टाइप कण्ट्रोल' समय और ईंधन की बचत करता है। इसके तापक्रम को नियंत्रित करने वाले पुर्जा सफाई वाले करने द्रव को एक समान तापक्रम पर बराबर बनाये रखता है।

इस वाट का निर्माण इस्पात से किया गया है और इसे चलाने के लिए गैस या बिजली के ताप की आवश्यकता होती है।

खनन-क्षेत्रों के लिये एक विशेष खनिक-वाहन

न्यू मैक्सिको की एक कम्पनी ने 12 से लेकर 14 तक की संख्या में कर्मचारियों को ढोने के लिए एक वाहन (कैरियर) तैयार किया है, जो खनन क्षेत्रों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। 'सायन ब्रूट माडेल-612' नामक इस कैरियर में 57 अश्व शक्ति का एक फोर्ड 212 डीजल इंजिन, एक फोर्ड टोर्क कनवर्टर ट्रांसमिशन और एक रियर ऐक्सल लगा है। इसका फ्रेम स्टील का है। ऐक्सल पर मजबूत स्प्रिंग और शाक चढ़ाये गये हैं। ड्राइवर की थकावट दूर करने के लिए इसमें एक पावर स्टियरिंग उपकरण भी लगाया गया है। यह उपकरण कार्ल्सबैड, न्यूमैक्सिको, की सायन इक्विपमेंट कम्पनी द्वारा बाजार में उपलब्ध किया जा रहा है।

अमेरिका में निर्मित इस हेवीड्यूटी वाहन के दो नमूने उपलब्ध हैं। एक 12 खनिकों को ढोने के लिए और दूसरा 14 खनिकों को ढोने के लिए है।

उंगलियों की छाप लेने के लिए नया उपकरण

अमेरिका में कैलिफोर्निया की एक कम्पनी ने उंगलियों की छाप लेने के लिए एक ऐसा उपकरण तैयार किया है, जिसमें स्याही का प्रयोग नहीं करना पड़ता। इससे छाप लेने पर उंगलियों पर कोई काला धब्बा नहीं पड़ता। इस समय यह कम्पनी इस उपकरण का निर्यात जापान और दक्षिण अमेरिका को कर रही है।

इस उपकरण का नाम 'बैरीप्रिंट' है। यह सभी प्रकार के प्रलेखों पर उंगलियों का स्पष्ट और पढ़ा जा सकने लायक निशान छाप देता है। इसकी क्रिया बहुत ही सरल है और तीन चरणों में सम्पन्न होती है। इसमें कुल मिला कर केवल 4 सेकण्ड लगते हैं। इसकी सहायता से ऐसे मामलों में भी उंगलियों की छाप ली जा सकती है, जिनमें इस प्रकार की छाप का लिया जाना अब तक असम्भव था।

इसका प्रयोग फुटकर बिक्री करने वाले स्टोरों में चेक भुनाने तथा क्रेडिट कार्डों पर उंगलियों की छाप के अंकन के लिए किया जा रहा है। उद्योगों में भी इसका प्रयोग इन्वेण्ट्री और कर्मचारियों की जांच के लिए किया

जा रहा है। इसके अलावा, इसे चिकित्सा के क्षेत्र में मादक औषधियों के दुरुपयोग की रोकथाम करने तथा सेना और प्रतिरक्षा विभागों में सुरक्षा सम्बन्धी कार्यवाहियों की जाँच-पड़ताल करने के लिए किया जा रहा है। कानून को लागू कराने से सम्बद्ध कितने ही अन्य क्रिया-कलापों में भी यह उपकरण बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो रहा है। इसका निर्माण कैलिफोर्निया का वेरीप्रिण्ट सिस्टम्स कारपोरेशन कर रहा है।

नये प्रकार का स्वतःचालित प्रेशर कुकर

अमेरिका की एक फर्म ने, एक नये प्रकार का स्वतःचालित प्रेशर कुकर तैयार किया है, जिससे खाना पकाने में कम समय लगता है। इसकी सफाई भी बहुत जल्दी की जा सकती है।

इसके अलावा, इसका प्रयोग करने पर खाना पकाने वाले कर्मचारी की क्षमता बढ़ जाती है, ईंधन और खाने की लागत घट जाती है और कम स्थान में अपेक्षाकृत अधिक भोजन पकाया जा सकता है। इसका नाम 'स्टीम-इट' है। यह प्रति वर्ग इंच 15 पौण्ड के प्रेशर पर संचालित होता है। इसमें एक ही नियन्त्रक पुर्जा होता है, जो अपने-आप भोजन की पाक-प्रक्रिया को चालू करता, उसके समय को निर्धारित करता, चेतावनी की सीटी बजाता और पाक-प्रक्रिया के पूर्ण हो जाने पर एग्झास्ट वाल्व को खोल देता है। इससे खाना समान रूप में पकता है और जरूरत से ज्यादा पक कर फैलने नहीं पाता।

ये कुकर गैस, बिजली या भाप से संचालित इकाइयों के रूप में उपलब्ध हैं। इसकी जो इकाइयां गैस या बिजली से संचालित होती है, उनके लिए पानी या ड्रेन के कनेक्शनों की आवश्यकता नहीं होती। वे दो आकारों में उपलब्ध है। एक में दो खाने और दूसरे में तीन खाने होते हैं। उनमें 12 इंच चौड़े 20 इंच लम्बे और और 2·5 इंच गहरे तीन पैन अथवा 12 इंच चौड़े, 20 इंच लम्बे और 4 इंच गहरे दो पैन होते हैं। कुकर का द्वार भीतर से स्वतः बंद होता है और दबाव या प्रेशर के अन्तर्गत खुल नहीं सकता। कुकिंग सिलिण्डर बिना जोड़ वाले अल्यूमिनियम से निर्मित होता है और उसके बाहर स्टेनलेस स्टील की कैबिनेट होती है। इसके साथ कुछ इनामेल की तश्तरियाँ भी मिलती हैं, जिनमें भोजन परोसा जा सकता है।

ये कुकर 26 इंच ऊँचे, 18·75 इंच चौड़े और पृष्ठ भाग से अग्रभाग तक 31 इंच हैं। 'स्टीम-इट' 40 पौण्ड आलू को 15 मिनट और 6 लाब्स्टर मछली को 6 मिनट में पका देगा। यह मुर्ग, मछलियाँ, समुद्री खाद्य-पदार्थ, चावल और ताजी या बर्फ में जमायी गयी सब्जियाँ पकाने के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

इनका निर्माण एवरेट, मैसाचूसेट्स, की मार्केट फोर्ज कम्पनी कर रही है। वह इनका निर्यात पश्चिमी यूरोप के उपाहारगृहों, स्कूलों और संस्थाओं को कर रही है।

साउण्ड फिल्में दिखाने के लिए स्वतःचालित उपकरण

अमेरिका की एक श्रव्य-दृश्य उपकरण कम्पनी ने बोलती फिल्में प्रदर्शित करने के लिए स्वतःचालित उपकरण बाजार में प्रस्तुत किया है, जिसका नाम 'कैसेट ए-वी मैटिक 23 ए एल' है। यह यन्त्र हल्का (17 पौण्ड) है और इसका निर्माण छोटे जनसमूहों और कक्षाओं के समक्ष फिल्में दिखाने तथा औद्योगिक उपयोगों के लिए किया गया है।

इसका स्क्रीन इस प्रकार के किसी भी अन्य उपकरण के स्क्रीन से बड़ा है। इसका आकार 8 इंच × 10.5 इंच है। यह तेज रोशनी में चित्रों को साफ-साफ प्रदर्शित करता है।

इसमें चित्र को परिवर्तित करने के लिए एक स्वतःचालित बटन है। इससे फिल्म बड़ी जल्दी और आसानी से भरी जा सकती है, क्योंकि इसके ढांचे के भीतर ही फिल्म को अपने-अपने लपेटने या उघारने के लिए एक स्वतः चालित प्रणाली लगी है। फिल्मस्ट्रिप और कैसेट ऊपर से ढक्कन में बन्द होते हैं। यह मशीन घण्टों तक बगैर किसी बाधा के चालू रहती है: चित्रों और ध्वनि का सामंजस्य रिकार्डों में भरे गये अश्रव्य संकेतों द्वारा स्थापित होता है। इस उपकरण में, कण्ट्रोलों और इयरफोन के पास सामने के पैनेल पर 3 इंच × 5 इंच आकार का स्पीकर लगा है। इसके उपयोग पर एक साल की गारण्टी की भी व्यवस्था की गयी है।

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक का नाम—शैवाल

लेखक—डा० महमूद खां

मूल्य 17·00

पृष्ठ—271

प्रकाशक—उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथग्रकादमी, लखनऊ

डा० महमूद खाँ द्वारा लिखित शैवाल-परिचय का हिंदी विज्ञान जगत में स्वागत है। साथ ही उत्तर प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी का इस दिशा में सफल प्रयास कहा जा सकता है। 271 पृष्ठों की यह पुस्तक 18 अध्यायों में विभक्त हैं। साथ ही इसमें 40 चित्र, एक संदर्भ ग्रंथ सूची लेखक-अभिसूचक, विषय-अभिसूचक—एवं शब्दावली भी सम्मिलित हैं। इन सबके कारण पुस्तक विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी इसमें सन्देह नहीं। प्रथम 5 अध्यायों में शैवालों के महत्व, इतिहास, वर्गीकरण, वाह्य, आकारिकी, जनन तथा जीवन इतिहास के वर्णन दिये गये हैं। अंतिम 2 अध्याय में जाति इतिहास, क्रम-विकास तथा शैवालाश्मों पर चर्चा की गयी है। शेष अध्यायों में शैवालों के विभिन्न प्रभाग वर्णित हैं।

यद्यपि इस बात का संकेत कहीं नहीं है कि यह पुस्तक विश्वविद्यालयों के किस स्तर के छात्रों के लिए लिखी गयी है, फिर भी विषय वस्तु से यह ग्रैडुएट छात्रों के लिए ही लगती है। बी० एस-सी० स्तर के छात्रों के लिए यह अधिक सुविधाजनक होती यदि चित्र विषय-वर्णन के निकट ही रखे गये होते। ऐसा होने पर विद्यार्थी पुस्तक से और अधिक लाभान्वित हो सकते। वैसे तो लेखक ने भरसक प्रयत्न किया है कि वह विद्यार्थियों को नवीनतम सामग्री उपलब्ध करा सके और उसका यह प्रयास सराहनीय है परन्तु कुछ चित्र (उदाहरणार्थ चित्र 30 में क ख—'crystal likd Lodies' क्या हैं समझ में नहीं आता) अस्पष्ट हैं। ग्रैडुएट स्तर के विद्यार्थियों के लिए सरल एवं ग्राह्य सामग्री हो प्रस्तुत करनी चाहिये। इसी प्रकार साइनो फाइटा के अध्याय में ओसि लैटोरिया और नोस्टॉक के वर्णन व चित्र अपर्याप्त हैं। चित्र 40 में युग्लिनोफाइटा का उद्भव जैन्थोफाइटा से दिखलाया गया है जो पूर्णतया मान्य नहीं हो सकता। अन्य कतिपय कमियों के बावजूद भी पुस्तक लाभप्रद सिद्ध होगी।

पुस्तक का नाम—शैवाल

लेखक—डा० राजाराम मिश्र, डा० भरत राय, श्री जी० सी० सक्सेना, श्री दूधनाथ यादव, श्री अश्विनी कुमार राय

मूल्य रु० 10·50

पृष्ठ—260

प्रकाशक—हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, लखनऊ

हिंदी माध्यम से विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए पुस्तकों का अभाव है। प्रस्तुत पुस्तक ग्रैडुएट स्तर के विद्यार्थियों को शैवालों का ज्ञान उपलब्ध कराने में सफल होगी। पुस्तक सरल व ग्राह्य भाषा में लिखी गयी है। इस संदर्भ में लेखकों का प्रयास सराहनीय है। वैसे तो लेखकों ने पुस्तक की विषय-वस्तु में नयी सामग्री का समावेश किया है परन्तु कहीं-कहीं इसका अभाव प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ता है। पृष्ठ 49 पर दिया गया कथन 'चल बीजाणु बनने में (meioti division) होता है ठीक नहीं है। इसके आगे पृष्ठ 50 पर 'सम्मिलित होने के समय अपने कशाभिकाओं को अन्दर कर लेते हैं' वाक्य अटपटा सा लगता है, विशेष रूप से' 'सम्मिलित' शब्द का प्रयोग ठीक नहीं लगता। कुछ चित्र (proportinate) नहीं हैं। कुछ अन्य चित्रों का या तो स्पष्टीकरण ठीक नहीं है या वे गलत बने हैं (जैसे, 53, 63ख, 83 क)। पृष्ठ 151 पर लिखा यह कथन 'फियोफाइटा में पर्णहरित 'ब' पाये जाते हैं' ठीक नहीं है। पृष्ठ 207 पर चित्र 95 ख ग में (Pit connection) असामान्य हैं तथा उनका स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है। पृष्ठ 224 पर नाइट्रोजन फिक्सेशन संबंधी कथन भ्रांतिपूर्ण है, साथ ही चित्र 102, ग भी ठीक नहीं है।

इन थोड़ी कमियों के होते हुए भी पुस्तक विद्यार्थियों के लिए लाभदायक सिद्ध होगी इसमें संदेह नहीं।

● ●

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | चैत्र 2022 विक्र०, 1896 शकाब्द
मई 1975 | संख्या 4

लेखमाला—3

नवीन वैज्ञानिक उपलब्धियाँ : भारतीय उपग्रह 'आर्य भट्ट' प्रथम—निर्माण एवं प्रक्षेपण

शुकदेव प्रसाद

[इस लेखमाला के पहले दो हिस्सों में आपने भारत द्वारा प्रथम परमाणु परीक्षण एवं भारत के गाँवों में टेलिविजन द्वारा शिक्षण कार्यक्रम के बारे में पढ़ा। अब यहाँ प्रस्तुत है इस लेखमाला की तीसरी और अंतिम कड़ी—भारतीय उपग्रह 'आर्यभट्ट प्रथम' : निर्माण एवं प्रक्षेपण—सं०]

प्रथम भारतीय उपग्रह 'आर्यभट्ट 19 अप्रैल 1975 को भारतीय समयानुसार अपरान्ह एक बजे रूस की राजधानी मास्को से थोड़ी दूर वियर्स झील के पास सोवियत प्रक्षेपण स्थल से अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किया गया।

इस प्रथम भारतीय उपग्रह का नाम महान भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री आर्यभट्ट के नाम पर रखा गया है। इस महान गणितज्ञ का जन्म पाटलीपुत्र (पटना) के पास कुसुमपुरा नामक स्थान पर पाँचवीं शताब्दी में हुआ था। उन्होंने गणित में बहुत योगदान दिया है जिसमें से पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूमने वाले सिद्धान्त का प्रतिपादन, शून्य का आविष्कार एवं गणित में उसकी महत्ता पर प्रकाश, आधुनिक बीजगणित की स्थापना आदि प्रमुख हैं।

रूसी राकेट द्वारा भारतीय उपग्रह के छोड़े जाने के बाद से भारत का अन्तरिक्ष युग में प्रवेश हो गया है। गत वर्ष भारत ने परमाणु परीक्षण कर विश्व के अन्य पाँच राष्ट्रों के परमाणु एकाधिकार को समाप्त कर नया कीर्तिमान स्थापित किया था और इस वर्ष उपग्रह प्रक्षेपण कर निश्चित रूप से भारत ने तकनीकी विकास की एक और मंजिल पार कर ली है। यह भारत की तकनीकी आत्म निर्भरता का गौरवशाली उदाहरण है।

आर्यभट्ट के प्रक्षेपण से भारत अन्तरिक्ष अनुसंधान के क्षेत्र में विश्व का 11वाँ तथा विकासशील राष्ट्रों में चीन के बाद दूसरा राष्ट्र बन गया है। अन्तरिक्ष में उपग्रह प्रक्षेपण करने वाले अन्य 10 राष्ट्र है—अमेरिका, रूस पश्चिम, जर्मनी, चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान तथा इटली।

यों तो आज से 14 वर्ष पूर्व 1961 में भारत ने

अंतरिक्ष अनुसंधान की शुरूआत की। डॉ० विक्रम अम्बालाल साराभाई के सुझाव पर भारत सरकार ने त्रिवेन्द्रम में एक उपग्रह पद्धति प्रखंड का निर्माण किया लेकिन फिर भी कुछ बाधाओं के कारण हमारी यह योजना बैलगाड़ी वाले ही रफ्तार से चलती रही। इसके कारणों में सबसे बड़ा कारण था—हमारे पास प्रक्षेपण के लिए शक्तिशाली राकेटों का न होना।

चित्र 1—आर्य्य भट्ट

यह हमारा सौभाग्य है कि आज हम प्रथम उपग्रह का प्रक्षेपण कर विश्व के कई विकसित राष्ट्रों की पंक्ति में खड़े हो गये हैं। इस प्रसंग की चर्चा उपग्रह योजना के निदेशक प्रो०राव के शब्दों में ही करना उपयुक्त होगा।

"उपग्रहों की उपयोगिता को देखते हुए यह निश्चय किया गया था कि जितनी जल्दी हो सके, हमें उपग्रह निर्माण की दिशा में सक्षम हो जाना चाहिए और इसीलिए जब सोवियत रूस ने भारतीय उपग्रह को आकाश में पहुँचाने में रुचि दिखायी, तो हमने उसका स्वागत किया। हमारे वैज्ञानिकों और रूस की विज्ञान अकादमी के प्रतिनिधियों के बीच मास्को में वार्ताएँ हुईं और मई 1972 में समझौते पर हस्ताक्षर हो गए जिसके अनुसार पूरी तरह से भारत में बना वैज्ञानिक उपग्रह का रूसी कॉस्मोड्राम द्वारा छोड़ा जाना निश्चित हो गया और इस तरह भारतीय वैज्ञानिक उपग्रह योजना का जन्म हो गया।"

आर्यभट्ट का निर्माण बंगलौर के निकट पीनिया नामक स्थान पर, 'भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन' के वैज्ञानिकों द्वारा हुआ है। इसके निर्माण में कुल 26 महीने का समय लगा है तथा लगभग 5 करोड़ रुपये की लागत।

प्रक्षेपण राकेट तथा उपग्रह के निर्माण में अन्य आवश्यक सुविधाएँ सोवियत संघ द्वारा 'सोवियत संघ विज्ञान अकादमी' और 'भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संगठन' के बीच 1972 में हुए समझौते के अंतर्गत प्रदान की गयी थी। यद्यपि आर्यभट्ट के निर्माण का पूरा दायित्व भारतीय उपग्रह परियोजना, बंगलौर का था फिर भी सोवियत संघ (सौर सेल्स और गैस सिलिंडर के लिए) तथा अन्य प्रमुख भारतीय संस्थाओं यथा - हिंदुस्तान एयरोनाटिक्स (उपग्रह का ढाँचा बनाने के लिए) कंट्रोल रेट आफ इनस्पेक्शन इलेक्ट्रानिक्स (विभिन्न प्रकार के निरीक्षणों के लिए), नेशनल एयरोनाटिक्स लेबोरेट्री, भारत एयरोनाटिक्स, सेन्ट्रल मशीन टूल्स ईंस्टीच्यूट, इंडियन टेलीफोन इंडस्ट्रीज (विभिन्न प्रकार के इलेक्ट्रानिक यांत्रिक उपकरण हेतु) का योग सराहनीय है जिनके महत्वपूर्ण योगदानों के कारण यह योजना सफल हुई है।
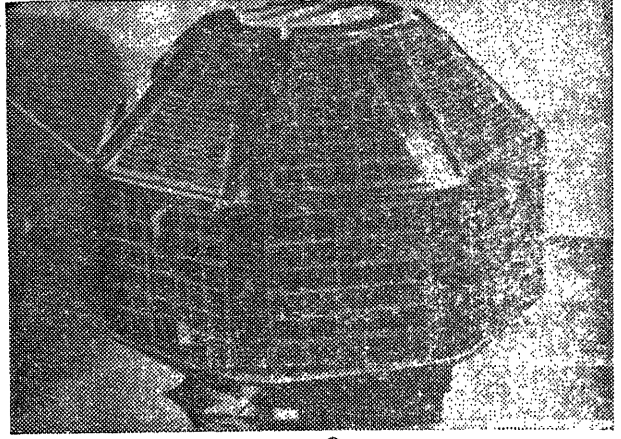
प्रक्षेपण के कुछ ही मिनट बाद उपग्रह कक्षा में पहुँच गया तथा पृथ्वी से 300 किलोमीटर की ऊँचाई पर उसकी कक्षा में चक्कर काटना प्रारम्भ कर दिया। उपग्रह 96·41 मिनट में पृथ्वी की एक बार परिक्रमा कर रहा है। यह उपग्रह 6 महीने तक पृथ्वी की कक्षा में घूमता रहेगा तथा 3 महत्वपूर्ण वैज्ञानिक प्रयोग करेगा। अभी तक प्राप्त सूचनाओं के अनुसार आर्यभट्ट सामान्य रूप से कार्य कर रहा है।

लगभग 360 किलोग्राम वजन वाले एवं 26 चपटे

हिस्सोंवाले आर्यभट्ट के जीवन पोषक तत्वों के संचालन हेतु 45 वाट विद्युत की आवश्यकता है जो कि सौर बैटरियों द्वारा उत्पन्न की जा रही है। सौर बैटरियाँ उपग्रह के बाहरी सतह पर लगी हैं जो कि सौर ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तित करेंगी। आशा की जाती है कि आर्यभट्ट अगले 6 मास तक के जीवन काल में पूर्व निर्धारित तीनों वैज्ञानिक प्रयोगों को कर लेगा। 18,500 सौर सेलों द्वारा उत्पन्न औसतन 46 वाट विद्युत उत्पन्न होगी जो कि आर्यभट्ट के संचालन हेतु पर्याप्त है।

आर्यभट्ट में टाइटेनियम से बने 6 गैस सिलिंडर रखे गए हैं। इनसे घनीभूत नाइट्रोजन विभिन्न दिशाओं में निकलती है जिससे उपग्रह अपनी धुरी पर घूमता रहता है। 6 मास के उपरान्त यह गैस समाप्त हो जायेगी जिसके फलस्वरूप उपग्रह की जीवन लीला समाप्त हो जायेगी।

आर्यभट्ट पूर्णरूप से वैज्ञानिक उपग्रह है जिसके द्वारा एक्स-किरण खगोलकी, वायु विज्ञान तथा सौर भौतिकी सम्बन्धी तीन वैज्ञानिक प्रयोग किए जाने की व्यवस्था है।

● एक्स किरण खगोलकी प्रयोग

इस प्रयोग का आयोजन भारतीय उपग्रह केन्द्र के निदेशक प्रो० यू० आर० राव तथा डा० कस्तूरी रंगन एवं उनके सहयोगियों द्वारा किया गया है। इस प्रयोग द्वारा आकाश गंगा तथा दूसरे तारा मंडलों के तारों में एक्स-रे विकिरण की खोज एवं उनकी माप की जायेगी।

● सौर भौतिकी प्रयोग

इस प्रयोग का आयोजन टाटा आधारभूत अनुसंधान संस्थान, बम्बई के प्रो० आर० आर० डेनियल डा० पी० जे० लवकरे ने किया है। इस प्रयोग का उद्देश्य तीव्र सौर गति विधियों के समय ऊर्जावान न्यूट्रान तथा गामा किरणों की खोज करना है।

● वायु विज्ञान प्रयोग

इस प्रयोग का आयोजन भौतिक अनुसंधानशाला; अहमदाबाद के प्रो० सत्य प्रकाश, डा० सुब्बाराव एवं उनके सहयोगियों ने किया है। इसमें एक इलेक्ट्रान ट्रैप है जिसके आयन मंडल के अतितापीय इलेक्ट्रानों के ऊर्जा वर्णक्रम का अध्ययन किया जायेगा और दूसरा है—पराबैंगनी डिटेक्टर जो रात के समय आसमान में बिखरे हुए लायमन अल्फा विकिरण की जानकारी प्राप्त करेगा। यह भी संभव है कि वैज्ञानिक इन प्रयोगों द्वारा तथाकथित 'काल कोठरियों' (ब्लैक होल्स) का अध्ययन कर सकें।

आर्यभट्ट ने अन्तरिक्ष में स्थापित हो जाने के बाद ही जानकारी प्रेषित करना प्रारंभ कर दिया है। आर्यभट्ट से आने वाले संकेत रूस के प्रक्षेपण स्थल के अतिरिक्त बंगलौर की अन्तरिक्ष अनुसंधानशाला तथा आंध्र प्रदेश के श्री हरिकोट नामक स्थल पर प्राप्त किए जा रहे हैं। उपग्रह से प्राप्त संकेत बाद में विश्लेषण हेतु
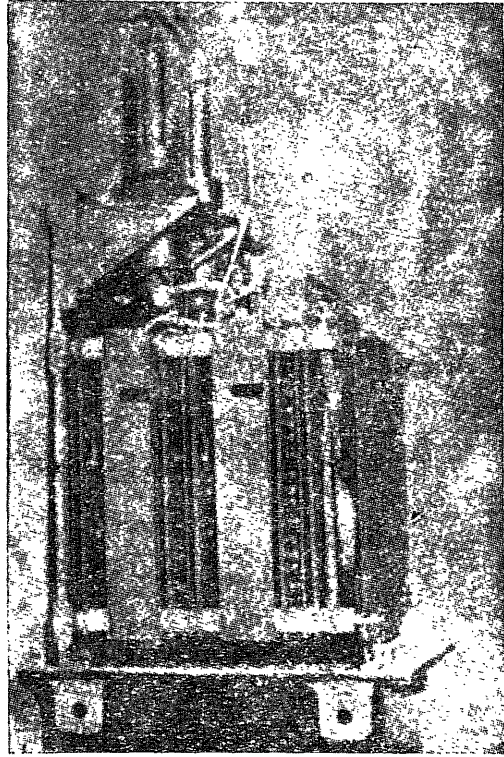
चित्र 2—सौर किरणों का अध्ययन करने के लिये यंत्र

[शेष पृष्ठ 21 पर

विज्ञान—चिर यौवन की खोज में

श्याम मनोहर व्यास

किसी वृद्ध पुरुष को देखकर हम अनायास ही कह देते हैं हाय बुढ़ापा भी क्या बला है, आदमी कितना पराश्रित हो जाता है। वृद्धावस्था जीवन की ऐसी अवस्था है जिससे सभी भय खाते हैं। कोई भी व्यक्ति वृद्धावस्था को अपनाना पसन्द नहीं करता। यह एक विचारणीय प्रश्न है कि बुढ़ापा आता क्यों है ?

वृद्धावस्था का कारण

वृद्धावस्था वास्तव में एक रोग है शरीर की एक अवस्था नहीं। जीवाणु कोषों की जीवन-प्रक्रिया के अध्ययन से वृद्धावस्था के कारणों का अनुमान लगाया जा सकता है। बुढ़ापा जीन्स की गड़बड़ी के कारण आता है।

मानव-शरीर कोशिकाओं से मिलकर बना है। अब यह बात सर्वमान्य हो गई है कि बुढ़ापा कोशिकाओं की मृत्यु के कारण होता है। कोशिका मृत्यु से वे अंग कुछ अधिक प्रभावित होते हैं, जिनमें कोशिका विभाजन की क्षमता नहीं होती। परिणामस्वरूप नष्ट कोशिकाओं के स्थान पर नयी कोशिकाओं का निर्माण नहीं हो पाता। साथ ही नष्ट कोशिकाएँ स्वस्थ कोशिकाओं को भी विषमय बना सकती है। मांसपेशी एवं तंत्रिका तंतु की कोशिकाओं में विभाजन क्षमता नहीं होती।

इसीलिए मांस-पेशियों एवं तंत्रिका तंतु से निर्मित हृदय, तंत्रिका-संस्थान आदि अवयव बुढ़ापे से अधिक प्रभावित होते हैं। कई व्यक्ति अल्पायु में ही असाध्य रोगों के शिकार होकर वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं और अन्त में उन्हें मृत्यु आ घेरती हैं। हृदय के रोगों से मरने वालों की संख्या भी इसीलिये यकृत् के रोगों से मरने वालों की तुलना में अधिक है।

यकृत् कोशिकायें विभाजन की क्षमता रखती हैं। यहाँ तक कि यदि यकृत् का कुछ भाग शल्य-क्रिया द्वारा काट भी दिया जाय, तो कोशिका-विभाजन द्वारा काटे भाग की क्षति पूर्ति हो जाती है। हृदय की कोशिका नष्ट होने पर यह नहीं हो पाता। फलस्वरूप हृदय रोगों का आक्रमण होता है।

आदिकाल से मानव 'वृद्धावस्था पर विजय' के स्वप्न देखने लगा था। आदमी 'अमृत' एवं 'अमरफल' की खोज में रहा। 'सोमरस' एवं 'संजीवनी बूटी' की कल्पना की गयी। च्यवन ऋषि द्वारा निर्मित 'च्यवन-प्राश' का खूब प्रचार-प्रसार हुआ। आयुर्वेद के ज्ञाताओं ने कई पाक, अवलेह एवं धातुओं की भस्म का निर्माण किया। अक्सर यह औषधियाँ राजाओं महाराजाओं के के लिये बनाई जाती थीं।

18वीं शताब्दी के आखिर में हारमोनों की खोज हुई। तब चिर-यौवन प्राप्ति की इच्छा अधिक बलवती हो उठी।

चूहों पर प्रयोग

सन् 1930 में कार्नेल विश्व-विद्यालय के सी० एम० मैक्के ने चूहों की आयु बढ़ाने के सम्बन्ध में कुछ प्रयोग किये। उन्होंने दस महीने की आयु के कुछ चूहे लिये और उनमें से कुछ को नियंत्रित अल्प भोजन पर, एवं कुछ को सामान्य भोजन पर रखा। लगभग 2 वर्ष बाद उन्होंने सभी चूहों को सामान्य भोजन देना प्रारम्भ

किया और प्रयोग का परिणाम जानने के लिये वे चूहों की मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे। उन्होंने देखा कि अल्प-भोजन पर रखे गये चूहे, सामान्य भोजन खाने वाले चूहों की अपेक्षा दुगुने समय तक जीवित रहे। इसी प्रकार का प्रयोग शिकागो के फ्रेडरिक होइजल एवं प्रोफेसर ए० जे० चार्ल्सन ने भी चूहों पर किया। कुछ चूहों को ये हर तीसरे दिन उपवास कराते रहे। अन्त में देखा गया कि इन चूहों का जीवन काल सामान्य चूहों की अपेक्षा 20 प्रतिशत बढ़ गया था।

ब्रिटिश शरीर-विज्ञानवेत्ता सर विन्सेन्ट विग-ल्सवर्थ कीड़ों के शरीर में एक विशेष हारमोन और उसका स्राव करने वाली ग्रन्थि का पता लगाने में सफल हुये, उन्होंने इसका नाम 'एक्डिसोम' दिया। यह कीड़ो के कायांतरण पर नियन्त्रण रखता है। वैज्ञानिक ने कीड़ों के परिपक्व लार्वा लिये, जिनमें कायांतरण शुरू होने ही वाला था, और एक्डिसोम उत्पन्न करने वाली ग्रन्थियाँ उनमें निरोपित कर दी। एक आश्चर्यजनक परिणाम देखने में आया। उन लार्वाओं का कायांतरण नियत समय पर नहीं हुआ, बल्कि उनका डील-डौल बढ़ता ही चला गया। अन्त में जब उनमें कायांतरण हुआ तब वे अति विशाल पतंगे बन गये।

देखा गया है कि मनुष्यों में भी वृद्धि और यौवन-गम पर कतिपय हारमोनों का नियन्त्रण चलता है। यदि यौवनगम के पूर्व वे हारमोन शरीर में प्रविष्ट करा दिये जायँ, तो उस व्यक्ति में केवल शारीरिक वृद्धि होती रहेगी पर मानसिक दृष्टि से वह अपरिपक्व ही रहेगा। व्यवहारिक रूप से यह उपयुक्त नहीं है। इसलिये इसे कार्यान्वित नहीं किया जा सकता।

अणु डी० एन० ए० का महत्व

समस्त जीवों की चेतना का संचालक है एक दुहरे सूत्र वाला महा अणु डी० एन० ए० (डाइ आक्सी राइबोन्यूक्लिक एसिड)। डा० हर गोविन्द खुराना ने इस महत्वपूर्ण अणु पर काफी अनुसंधान-कार्य किया है। इसी पर उन्हें नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि डी० एन० ए० अणु द्वारा कोशिका में प्रोटीन-निर्माण के कार्य में बाधा पड़ना ही यौवन जाने का मूल कारण है।

देखा गया है कि पुरानी कोशिकाओं में पाये जाने वाले डी० एन० ए० अणु से एक प्रकार की हिस्टोन नामक प्रोटीन जुड़ जाती है। सम्भव है यह प्रोटीन डी० एन० ए० के कुछ भाग को ढक लेती हो, जिससे उस भाग के कार्य में बाधा पड़ती हो और परिणाम-स्वरूप कोशिका में आवश्यक प्रोटीनों का निर्माण रुक जाता हो। साथ ही यह भी सम्भव है कि डी० एन० ए० से प्रोटीन-निर्माण की सूचना आर० एन० ए० तक पहुँचने के मार्ग में भी बाधा उत्पन्न होती हो।

इसके कारण सही प्रोटीन के बजाय गलत प्रोटीन भी बनने लगते हैं। बूढ़ी कोशिकाओं में जवान कोशिकाओं की तुलना में कम आर० एन० ए० पाया गया है। प्रोफेसर एण्टोगिनी का विचार है कि यदि डी०एन०ए० को इस प्रकार नियन्त्रित किया जा सके कि उससे मन चाहे एन्जाइम तैयार कराये जा सकें, तब विज्ञान सचमुच ही चिर-यौवन को प्राप्त कर लेगा।

वैज्ञानिकों ने प्रयोगों द्वारा यह भी पता लगाया है कि 30 से 90 वर्ष की आयु के बीच शरीर की मांस-पेशियों का भार तीस प्रतिशत घट जाता है और इसके अनुपात में कार्यक्षमता भी कम पड़ने लग जाती है।

दो अन्य विधियाँ

आयु बढ़ने की दो और विधियाँ हैं—(1) शीत-निष्क्रियता (हाइबर्नेशन) (2) अति-हिमिकरण (डीप-फ्रीजिंग) शीत निष्क्रियता निद्रा से भिन्न होती है। इसमें शरीर का तापमान बहुत घट जाता है। हृदय-स्पंदन, श्वास-प्रश्वास एवं अन्य शारीरिक क्रियाएँ धीमी हो जाती हैं। डॉ० चैफी के मतानुसार शीत-निष्क्रियता जीन द्वारा नियंत्रित होती है।

चूँकि जीन एन्जाइम उत्पन्न करते हैं, इसलिये यदि हम शीत-निष्क्रियता उत्पन्न करने वाले एन्जाइमों और प्रोटीनों को पहचान लें, तो इनका एन्जेक्शन देकर मनुष्य में भी शीत-निष्क्रियता उत्पन्न की जा सकेगी। यह भी सही है कि एन्जाइम ही प्रोटीन-संरचना का नियन्त्रण करते हैं।

समाचार पत्रों में सरकार के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों मेंगोबर गैस प्लान्ट को स्थापित करने के लिये क्रेश कार्यक्रम चलाने के बारे में छपा था। हमें गोबर गैस प्लान्ट तथा इसके द्वारा प्राप्त उपउत्पादों की जानकारी जानकारी अवश्य होना चाहिए। जिससे गोबर गैस प्लान्ट द्वारा तैयार गोबर गैस का उपयोग करने में ग्रामीण भाई पीछे न रहें।

अनुसंधानों से यह ज्ञात हुआ है कि घूरे की विधि से खाद बनाने पर नाइट्रोजन का काफी अंश नष्ट हो जाता है, और केवल 0·3 प्रतिशत से कम नाइट्रोजन प्राप्त होता है। गोबर की इतनी ही मात्रा को गोबर गैस प्लान्ट द्वारा उपचारित करने पर लगभग 60 घन मीटर गैस रोज प्राप्त होने के साथ 75 किलो खाद भी मिलती है जिसमें लगभग 0·3 प्रतिशत नाइट्रोजन होती है अत: गोबर गैस प्लान्ट द्वारा समान गोबर की मात्रा से ईंधन (गैस के रूप में) साथ ही साथ घूरे की खाद की अपेक्षा लगभग तीन गुनी अधिक खाद प्राप्त होती है। शहरों में भोजन बनाने के लिये आधुनिक ईंधन के रूप में गैसों (इण्डेन गैस, इन्फलयुग गैस इत्यादि) का प्रचलन बढ़ रहा है। गोबर गैस का ईंधन की तरह प्रयोग पेट्रोलियम गैसों की अपेक्षा सस्ता और सुविधाजनक पड़ेगा। देश में ऊर्जा की दयनीय स्थिति देखते हुये यह मानना होगा कि गोबर का इस प्रकार प्रयोग करने को प्रोत्साहन देना विशेष रूप से हितकारी है। इस गैस से घरों में रोशनी करना और पंखों का चलना भी सम्भव है। गोबर गैस का उपयोग शहरी क्षेत्रों देश के लिये भी व्यापक रूप से हितकारी होकर देश की समृद्धि में सहायक होगा।

गोबर गैस के उचित उपयोग से पेट्रोल, बिजली, डीजल आयल इत्यादि की कमी तथा इनके मूल्य में वृद्धि की विषम समस्या का समाधान सुलभ तरीकों से किया जा सकता है। आज जरूरत है हमें स्वावलम्बी होने की, देश में उपलब्ध ऊर्जा के स्रोतों का उचित उपयोग करने की तथा नये तकनीकी एवं विज्ञान की खोजों का रूढ़िवादी परम्पराओं को तोड़कर अपनाने की। हम विदेशों से अनाज मँगाते हैं यह हमारे लिये अशोभनीय है। गोबर से गैस निकालने के बाद जो अवशेष मिलता है उसका खाद के रूप में प्रयोग कर हमारी खाद्य-समस्या का हल निकल सकता है। अपनी आवश्यकताओं अथवा उनसे उत्पन्न समस्याओं का हल निकालने की दिशा में गोबर गैस का सफल प्रयोग पहला कदम मान कर चलने में ही हमारा कल्याण है।

क्यों न हम एक ऐसी जानकारी से लाभ उठाने की शपथ लें जिससे खाद के रूप में गोबर का प्रयोग करने के साथ-साथ इसके प्राप्त ईंधन ऊर्जा आदि सभी कुछ प्राप्त हो तथा ऊर्जा समस्या को दूर करने में सहायता मिले।

गोबर गैस के विभिन्न उपयोग—

गोबर के उपउत्पादों के उपयोग के बारे में एक झलक प्रस्तुत करते हैं जिससे जन साधारण का ध्यान गोबर द्वारा तैयार उत्पादों की ओर आकृष्ट हो। इससे गोबर को जला कर राख के रूप में नष्ट करने की प्रथा की समाप्ति होगी। गोबर गैस के उत्पादन के लिये इसे वायु की अनुपस्थित में सड़ाते हैं। 60 प्रतिशत मीथेन, 10 प्रतिशत हाइड्रोजन, तथा 3° प्रतिशत कार्बन डाई आक्साइड से युक्त यह गैस ज्वलनशील होती है, साथ ही इसे एकत्रित करके रखना भी सम्भव है। वैज्ञानिक परीक्षणों के द्वारा ज्ञात हुआ है कि यह पेट्रोलियम गैस की भांति ही सुचारू और सरल ढंग से इस्तेमाल की जा सकती है तथा अवशेष को तुरन्त ज्यों का त्यों खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। यह खाद गोबर तथा कम्पोस्ट की खाद से भी अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है।

गोबर गैस का विभिन्न प्रकार से उपयोग किया जा सकता है। गोबर गैस का घरेलू ईंधन के रूप में उपयोग करके नारी जीवन में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन सम्भव है, क्योंकि जब गोबर गैस का उपयोग का प्रसार गाँवों में हो जायेगा तो ग्रामीण नारियों का उपले बनाने चूल्हे में ईंधन झोंकने, सुलगाने और धुयें से आँखों की खराबी से बचाने के साथ ही घंटों बर्तन साफ करने से छुटकारा मिल ही जायेगा। वे अवकाश का समय

अन्य घरेलू कार्यों में लगा सकेगी, इसके साथ ही शहर में कोयले, पेट्रोलियम से बनी मँहगी और बराबर न मिलने वाली गैसो के स्थान पर भी गोबर गैस का बहुतायत मात्रा में उपयोग होने लगेगा।

बिजली के अभाव में रोशनी के लिये प्रायः मिट्टी का तेल प्रयुक्त होता है परन्तु कभी-कभी मिट्टी का तेल उपलब्ध न होने पर सरसों, रेड़ी, कुसुम इत्यादि का तेल जलाया जाता है प्रति परिवार पीछे इस पर लगभग पचास पैसे से भी अधिक खर्च होता है इसकी तुलना में गोबर गैस के द्वारा रोशनी में लगभग दस पैसे के करीब खर्च होता है गोबर के हड्डो को जलाया जा सकता है। इसका उपयोग बिजली पैदा करने में भी हो सकता है जिससे हीटर, कूलर, कपड़े में प्रेस करने का लोहा, रेडियो, रंगीन जगमगाती रोशनी इत्यादि कम लागत और समय में ही सम्भव है।

गुदड़ी में लाल छिपे होने वाली कहावत भी गोबर गैस के लिये चरितार्थ सिद्ध होती है गोबर गैस के दायरे में अनेक ऐसी सम्भावनायें नजर आती हैं जिससे सम्पूर्ण जीवन के स्वरूप को बदलने और आर्थिक विकास में सहायता मिल सकती है गोबर गैस से जुताई करने वाले ट्रेक्टर सिंचाई करने के पम्प, गहाई के लिये थ्रेसर, ओसाई के लिये बिना ओर, गन्ने के रस निकालने के लिये बैलों के स्थान पर शक्ति चालित कोल्हू शीत भण्डारों को चलाकर शीघ्र बिगड़ने वाले पदार्थों जैसे सब्जियाँ, फलों, तथा अन्य वस्तुओं को नष्ट हो जाने से बचाया जा सकना सम्भव है। ऐसी आशा की जाती है कि भविष्य में आटा पीसने की चक्की, तेल निकालने वाले कोल्हू, छोटे-छोटे शक्ति चलित कल कारखाने (जिसमें घड़ी, सिलाई मशीन, रेडियो, साइकिल के पुर्जे बनाये जाते हैं) को चलाना सम्भव हो सकेगा।

गोबर गैस प्लान्ट को लागत उसकी क्षमता पर निर्भर करती है। एक साधारण परिवार के लिये 1·85 मीटर व्यास और 3·60 मीटर गहरा कुआँ वाला प्लान्ट बहुत ही उपयुक्त रहता है इससे 3 घन मीटर गैस रोज प्राप्त हो सकती है। इस आकार के एक प्लान्ट की लागत लगभग 3000 रुपये है।

गोबर गैस प्लान्ट की संरचना—

गोबर गैस प्लान्ट को स्थापित करने के लिये ऐसा स्थान चुनना चाहिये जो छायादार न हो क्योंकि धूप के कारण ही फफूँद की क्रिया सक्रिय रूप से होती है इसके लिये लगभग 3·50, 3·50 मीटर क्षेत्रफल की जगह पर्याप्त होती है। भूमि की सतह पर कुआँ बनाने के लिये 2 मीटर व्यास का बेस बनायी जाती है। लगभग 1·20 मीटर गहराई तक खुदाई करके व्यास को 2 मीटर से घटा कर 1·35 मीटर कर देनी चारिये इस प्रकार से 30 सेंमी० चौड़ी पट्टी बन जाती है। इसी पट्टी पर गैस एकत्रित करने वाली ढोल की संरचना वाली बेलन रखी जाती है (चित्र)।

गोबर को कुयें में पहुँचाने के लिये एक तिरछी नली लगाने के लिये उससे अनुरूप 23 सें० मी० चौड़ी तथा 3 मीटर लम्बी नली खोदी जाती है और उसमें इस नल को ऐसा बैठाया जाता है कि निचला भाग कुयें की तली से 60 सें० मी० ऊँचा तथा ऊपरी हिस्सा धरातल से 60 सें० मी० ऊँचा हो। कुयें के फर्श को भूमि की सतह से 30 सें० मी० ऊँचा कर देते हैं तथा कुयें में से सड़े हुए गोबर को निकालने के लिये 23 सें० मी० चौड़ी नाली बनायी जाती है। यह नली गोबर इकट्ठा करने वाले एक गढ़े तक जाती है कुयें के भीतर ताजे गोबर को पहुँचाने के लिये एक नल होता है जो कि जमीन से 60 सें० मी० ऊँचा उठा रहता है जिसके मुँह पर एक ढक्कन लगा होता है। उसके चारों तरफ 60 सें० मी० लम्बा 60 सें० मी० चौड़ा 60 सें० मी० ऊँचा एक पक्का हौज बनाया जाता है यह हौज ताजे गोबर को इकट्ठा करने के काम आता है तथा नल का ढक्कन खोलते ही घुला हुआ ताजा गोबर नीचे कुयें में चला जाता है।

गैस को एकत्रित करने के लिये एक ढोल बेलन के आकार का होता है। इसका व्यास 1·50 मीटर तथा ऊँचाई 1·20 मीटर होती हैं इसका मुँह खुला और तली बन्द होती है ढोल के बाहर समान दूरी पर हैंडल

[शेष पृष्ठ 12 पर

वाईरस और रोग

सुरेश चन्द्र आमेटा एवं महेश चन्द्र आमेटा

वाईरस रोग बहुत पुराने समय से जाना जाता है। यहाँ तक कि हिप्पोक्रेटस (ईसा से कई वर्ष पूर्व) ने गले में पाये जाने वाले रोग मम्पस का वर्णन किया है। इसके बाद लुई पाश्चौर (1884) में पागल कुत्ते द्वारा काटने पर हो जाने वाले रोग (रेबीज या हाइड्रोफोबिया) पर काम करने के बाद इसका मूल कारण बहुत ही छोटे सूक्ष्म जीवी को बताया। इसके बाद 1901 में यह ज्ञात हो गया कि पीले बुखार का कारण भी यही जीव है। राउस ने पक्षी के सारकोमा में भी एक ऐसे ही सूक्ष्म जीवी की उपस्थिति सिद्ध करने का प्रयास किया। अन्त में 20वीं शताब्दी के मध्य में इस सूक्ष्म जीवी के दर्शन मात्र इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी की सहायता से संभव हो सके और इन्हें वाईरस का नाम दिया गया।

वाईरस अब तक ज्ञात जीवों में सबसे छोटे आकार के होते हैं, यहाँ तक कि सबसे छोटा जीवाणु भी सबसे बड़े वाईरस से बड़ा होता है। वाईरस पूर्ण रूपेण परोपजीवी है और साधारण जीवाणु के विपरीत इनमें किसी प्रकार की चयापचय क्रियाओं का पूरा-पूरा अभाव होता है। अतः इन पर साधारण प्रति-जैविक कोई विशेष प्रभाव नहीं डाल पाते हैं। वाईरस क्योंकि बहुत ही सूक्ष्मजीवी है अतः इनकी संरचना भी उतनी ही सरल है—साधारण वाईरस में एक बाहरी प्रोटीन का कोट और कोशा के मध्य में नाभिक की जगह न्यूक्लिय अम्ल होते हैं। किसी एक विशेष समूह के वाईरस एक समय में R.N.A. और D.N.A. दोनों में से एक ही न्यूक्लीक अम्ल रख पाते। इसी कारण इन्हें दो बड़े विभागों में बाँटा गया है। (अ) R.N.A. वाईरस (ब) D.N.A. वाईरस।

वैसे तो वाईरस के पूरे समूह को मोटे तौर पर चार भागों में बाँटा गया है।

(i) वाईरस जो मनुष्य में रोग फैलाते हैं (मनुष्य + दूसरे जानवर)।

(ii) कीड़े और रेगने वाले आर्थोपाड के वाईरस।

(iii) जीवाणुओं के वाईरस।

(iv) पेड़ पौधों के वाईरस।

इनमें से प्रथम दो समूह में R.A.N. और D.N.A. वाईरस दोनों आते हैं लेकिन तीसरे समूह के वाईरस प्रमुखतया: D.N.A. और चौथे वाले R.N.A. प्रकार के होते हैं। मनुष्यों के वाईरस द्वारा उत्पन्न रोगों में निम्न प्रमुख है (1) **रेबीज या हाइड्रोबोफिया।** यह रोग पागल कुत्ते के काटने द्वारा फैलता है और इस रोग के कीटाणु पागल कुत्ते की लार में उपस्थित रहते हैं।

(2) **पोलियोमाईलाईटीस**—यह रोग साधारणतया बच्चों को होता है। इस प्रकार का रोग साधारणतया गन्दे स्थान पर पैदा चीजों को खाने से होता है। इस रोग को बच्चों का लकवा भी कहते हैं।

(3) **चेचक**—यह रोग भी वाईरस के कारण होता है इसमें शरीर पर छोटे-छोटे दाने से उभर आते हैं। इसके वाईरस रोगी द्वारा छुआ-छूत (हवा) के माध्यम से फैलते हैं।

(4) **मम्पस**—इस रोग में पैरोटिड नामक लार बनाने वाली ग्रन्थि सूज जाती है और कभी-कभी यह रोग गम्भीर रूप धारण कर लेता है।

(5) **हिपेटाईटीस**—इस रोग में वाईरस यकृत पर आक्रमण करते हैं जिसके फलस्वरूप रोगी को पीलिया हो जाता है। यह वाईरस दो प्रकार के होते हैं।

(अ) इन्फेक्टीव हिपेटाईटीस—यह वाईरस भी गन्दी जगहों पर उगाये जाने वाली खादों तथा गन्दे पानी में उपस्थित होता है और ये खाने के साथ शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

(ब) सीरम हिपेटाईटीस—यह जीवाणु अपूर्ण जीवाणुरहित इन्जेक्शन से फैलता है। इनके अलावा भी कई महत्वपूर्ण वाईरस रोग आजकल देखने में आते हैं। जैसे इन्फलुएन्जा, एडीनोनाईरस, वाईरस निमोनिया, मिजल्स, ईकोवाईरस इत्यादि।

वाईरस का आकार लगभग 10 μ (मुंह और पाँव के रोग का वाईरस) से 350 μ (पोक्स समूह के वाईरस) तक होता है। साधारणतया वाईरस सर्पिलाकार, कुण्डली और षट्कोणीय आकृति के होते हैं। वाईरस भी शुक्राणुओं की बनावट से मिलता-जुलता जीव है, जो कि एक सिर, छोटी पूँछ रखते हैं। वाईरस के सिर को बाहरी दीवार प्रोटीन की बनी होती है जिसे कैपसिड कहते हैं। यह दीवार कई छोटी-छोटी इकाइयों में मिलने से बनती है। इन छोटी, इकाइयों को कैप्सोमीयर कहते हैं। इस कोशा के मध्य में न्युक्लीक अम्ल D.N.A. अथवा Ɑ.N.A. उपस्थित रहता है। सिर के एक कोने से पुंछ निकलती है जिसकी बनावट भी सिर की तरह होती है। पूंछ के अन्तिम सिरे पर एक पट्टिका होती है जो कि इन जीवों को विभिन्न शरीर कोशाओं से चिपकने में सहायता देती है। वाईरस 60% ग्लिसरोल, 50-60°c तक की उष्मा और प्रबल उपचायक पदार्थों ($+ 1_2 0_2$, KMnoy एवं आयेडेट) के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होते हैं। वाईरस के इस गुण का उपयोग वाईरस रोग के पूर्व निराकरण में किया जाता था। वाईरस किसी विशिष्ट ऊतक के प्रति भी अधिक रुचि रखते हैं, तथा वही जाकर इकट्ठे, होते हैं जैसे रेवीज तंत्रिका तन्त्र में। वाईरस अपने प्रजनन के समय आवश्यक सभी चीजों का उपयोग भी मेजवान के पोषण पदार्थों से ही करते हैं। अतः इस रूप में यह पूर्ण परजीवी होते हैं।

वाईरस और कैन्सर—अत्यधिक खोजों के पश्चात् भी अभी तक कैन्सर के सही कारण का निदान संभव नहीं हो पाया है। कुछ लोगों की राय में इसका कारण कुछ है और दूसरे लोग इसका कारण कुछ अलग ही बताते हैं। आधुनिक विद्वानों के मतानुसार कैन्सर का कारण वाईरस सिद्ध किया जाने लगा है, परन्तु अभी इसकी पुष्टि मनुष्य में पूरी तरह होना बाकी है, फिर भी अभी तक ज्ञात कैन्सर के विभिन्न कारकों में वाइरस भी एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने कैन्सर ऊतकों का कोशा रहित निष्कर्ष (सार) को विभिन्न जन्तुओं में अन्तक्षिप्त कर उनमें कैन्सर के उत्पन्न होने की संभावना को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिखाया है। ऐसे वाईरस जो कैन्सर पैदा कर सकते हों, ओन्कोजेनिक वाईरस कहलाते हैं। इस प्रकार के प्रयोगों में निम्नलिखित उल्लेखनीय है —

(i) सर्वं प्रथम पायटन राऊस (1911) में मुर्गे के सारकोमा (एक कैन्सर) का कोशिका रहित निष्कर्ष (सार) दूसरे मुर्गे (स्वस्थ) में अंतक्षिप्त करके उसमें वैसे ही प्रकार का कैन्सर पैदा करने मे सफलता प्राप्त की। सोप नामक वैज्ञानिक ने इसी प्रकार का प्रयोग सन् 1932 में दुहराया।

(ii) सन् 1936 में बिटनर नामक वैज्ञानिक ने बताया कि य द अधिक कैन्सर वाले मादा जन्तु कम कैन्सर की सम्भावना वाले बच्चों को दूध पिलाती है तो ऐसे बच्चों में कैन्सर होने की सम्भावनाओं में वृद्धि हो जाती है।

(iii) स्टीवार्ट इडी ने ल्युकीमिया की कोशिका रहित निष्कर्ष को विभिन्न (लगभग 10-12) तरह के कैन्सरों का कारण बताया ! यह

(iv) वाग्ट और डलबेसो ने इस कैन्सर कोशाओं को प्रयोगशाला में पैदा करने और उनकी बढ़ोत्तरी प्रभाव करके भी विधि खोज निकाली। इसकी साथ ही बिटनर ने अधिक कैन्सर सम्भावना वाली जाति की माताओं को दूध (कोशा का रहित निष्कर्ष) का इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी द्वारा अध्ययन किया और यह पाया कि इस प्रकार की मादाओं के दूध में, गोलाकार, गहरे रंग (100 μ) आकार वाले असाधारण जीव

पाये। इनकी उपस्थिति (संख्या) कैन्सर की संभावनाओं के साथ सीधा सम्बन्ध रखती थी।

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कैन्सर और वाईरस में एक गहरा सम्बन्ध अवश्य है। इस प्रकार कैन्सर के होने की सम्भावना केवल वाईरस की मात्रा उपस्थिति पर ही नहीं (अपितु दूसरे कारकों पर भी) निर्भर करती है। अतः इस प्रकार कैन्सर के जन्म के लिए तीन बातों का होना अत्यावश्यक है—

(i) पैतृक सम्भावना।

(ii) हार्मोन।

(iii) वाईरस।

यदि ये तीनों कारक एक साथ इकट्ठे हो जायं तो उस जीव में कैन्सर होने की सम्भावना बहुत कुछ बढ़ जाती है।

ये सभी खोजें अभी तक प्रयोगशालाओं तक ही सीमित हैं और मनुष्य पर इनका प्रयोग करना अभी बाकी है परन्तु वाईरस के बढ़ते हुए क्षेत्र को देख कर यह सम्भव जान पड़ने लगा है कि आज नहीं तो कल मानव इस तथ्य को अवश्य ही स्वीकार कर लेगा और तब मानव जाति को इस दुर्दय रोग से छुड़ा लाना बहुत कुछ आसान सा हो पायेगा।

● ●

[पृष्ठ 9 का शेषांश]

लगा दिये जाते हैं। 1·27 सें० मी० व्यास की छड़ इसके मुँह में लगी होती है तली में किनारे से 22 सें० मी० दूरी पर 1·20 सें० मी० व्यास का छेद किया जाता है इस छेद में 1·27 से० मी० की और 7·62 सें० मी० की लम्बी टोटी लगा दी जाती है। इस टोटी में एक गोल पहिये की तरह हत्था लगा होता है।

ढोल का बोझ संभालने के लिये कुयें के चारों ओर लोहे के तीन पाइप लगाये जाते हैं जिसकी लम्बाई 2·40 मीटर होती है और इनके निचले भाग में लोहे की एक चौकोर प्लेट होती है। नल की ऊपरी सतह पर एक पुली लगी रहती है। इनको कुयें के बाहरी घेरे में बराबर दूरी पर धरातल से 1-1 मीटर की गहराई तक गाड़ दिया जाता है। बाकी 1·50 मीटर भाग जमीन के बाहर निकला रहता है ढोल का सन्तुलन रखने के लिये बोझयुक्त बाल्टियों का लोहे के तारों की रस्सी से बँधे हुये गड़ारी पर निकालते हुये नीचे लटका देते हैं जिसका एक सिरा ढोल में लगे हैन्डलों में फंसा दिया जाता है। और दूसरा सिरा लोहे की बाल्टियों से बाँध दिया जाता है और इस रस्सियों को गड़ारी के ऊपर से निकाल दिया जाता है और इन बाल्टियों में इतना बोझ रखा जाता है कि सन्तुलन ठीक बना रहे। कुयें के पास ही लगभग 30 घन सें० मी० आयत का एक हौज बनाते हैं। इसके भीतर से होकर ढोल में एकत्रित गैस को उपयोग करने वाले स्थान तक नली द्वारा ले जाया जाता है। यह नली 1·27 सें० मी० होती है 3⁰ घन सें० मी० आयत के हौज से नली को कोणाकार मोड़ दिया जाता है ऐसा करने से गैस में मिली हुई भाप गैस से भारी होने की वजह से संघनित होकर जल के रूप में नीचे बैठ जाती है। इस नली का दूसरा सिरा गैस के चूल्हे या अन्य उपकरणों से जोड़ दिया जाता है।

विद्याधर
शोध छात्र, वनस्पति विभाग,
प्रयाग विश्वविद्यालय

● ●

रक्त

कमलिनी श्रीवास्तव

हमारे पूरे शरीर में पतली-पतली नलिकाओं का जाल बिछा होता है और इन नलिकाओं में बहने वाले द्रव को रक्त कहते हैं। रक्त का कार्य हमारे शरीर में बहुत महत्वपूर्ण है—(1) यह पचे हुए खाद्य पदार्थ को शरीर में एक जगह से दूसरी जगह ले जाता है। (2) यह आक्सीजन को प्रत्येक अंगों में तथा कार्बन डाई-आक्साइड तथा अन्य हानिकारक तत्वों को शरीर से बाहर निकालने में सहायता करता है। (3) यह शरीर में स्थिर ताप बनाये रखने में सहायता करता है और (4) रक्त का थक्का बन जाने के कारण, यह अधिक रक्त बाहर बहने से रोक देता है।

रक्त वास्तव में दो चीजों से मिलकर बना होता है—

(1) कणिकाएँ लगभग 45%

(2) प्लाज्मा लगभग 55%

प्लाज्मा में विभिन्न तत्वों की मात्रा निम्नलिखित होती है (जबकि रक्त 100 ml हो)

(1) पानी—91%

(2) कुल प्रोटीन—6·5—7%

(3) कार्बनिक तत्व—यूरिया, 20—40 मिग्रा, ग्लूकोज, 80—120 मिग्रा, अमीनो एसिड, लिपिड, एन्टीबाडीज आदि

(4) अकार्बनिक तत्व—Na—3·40 मिग्रा, K—20 मिग्रा, Ca—10 मिग्रा, क्लोराइड—370 मिग्रा

(5) गैस—O_2, N_2, Co_2 आदि

रक्त कणिकाओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है।

(1) लाल रक्त कणिकाएँ

(2) सफेद रक्त कणिकाएँ

(3) प्लेटलेट्स

लाल रक्त कणिकाएं विभिन्न प्रकार के जानवरों में भिन्न-भिन्न होती हैं। मनुष्यों में यह गोल, बाइकान-केव एवं न्यूक्लियसरहित होती है। कणिकाओं का आकार हिरन में सबसे छोटा एवं हाथी में सबसे बड़ा होता है। मैमेलिया वर्ग में केवल ऊँट ही ऐसा जानवर है जिसकी कणिकाओं में न्यूक्लियस पाया जाता है। लाल रक्त कणिकाओं की संख्या पुरुषों में 5000,000, स्त्रियों में 4500,000 होती है। सफेद रक्त कणिकाएँ दो प्रकार की होती हैं—

गैन्यूलोसाइट—(1) पौलीमार्फ (2) इयोसिनोफिल (3) बेसोफिल्स।

एगैन्यूलोसाइट—(1) लिम्फोसाइट (2) मोनोसाइट

सफेद रक्त कणिकाओं का प्रमुख कार्य बाहर से आये हानिकारक बैक्टीरिया का भक्षण करना है। कुछ कणिकाओं में एन्जाइम होता है जो प्रोटीन के पाचन में सहायता करती है।

प्लेटलेट्स का आकार अनियमित होता है। इनका प्रमुख कार्य बहते हुए रक्त में विघटित हो उसको रोकना होता है।

रक्त का लाल रंग वास्तव में एक जटिल पिग्मेन्ट के कारण होता है जो कि प्रोटीन और आयरन से मिलकर बना होता है इसे हीमोग्लोबिन कहते हैं। हीमोग्लोबिन हमारे रक्त का अत्यन्त आवश्यक भाग है। यह रक्त परिवार में आक्सीजन को शरीर में एक जगह से दूसरे जगह तक ले जाता है। हीमोग्लोबिन की मात्रा रक्त परिवहन के साथ-साथ बढ़ती या घटती है। आक्सीजन मिश्रित हीमोग्लोबिन का रंग गहरा लाल होता है लेकिन जब यह आक्सीजन रहित होता है तो

इसका रंग कुछ नीलापन लिए हुए होता है। प्रत्येक मनुष्य में लगभग 14·8% हीमोग्लोबिन होता है। प्रत्येक ग्राम हीमोग्लोबिन N. T. P. पर 1·34 m. l. ग्राक्सीजन से संयोग कर लेने की क्षमता रखता है। मेडुधारी में यह रक्त कणों में रहता है जबकि उमेडुधारी में यह प्लाज्मा में घुला रहता है। मनुष्यों में जो हीमोग्लोबिन पाया जाता है। उसे हीमोग्लोबिन A कहते हैं जबकि नये जन्मे बच्चों में हीमोग्लोबिन F पाया जाता है जो कि 2-3 महीने के बाद हीमोग्लोबिन A में धीरे-धीरे बदलने लगता है। भोजन में ग्रायरन की कमी से रक्त में हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा हीमोग्लोबिन की मात्रा कम होती है। हीमोग्लोबिन ग्राक्सीजन से संयुक्त होकर ग्राक्सी-हीमोग्लोबिन बनाता है जो ग्राक्सीजन की जरूरत वाली जगह में तुरन्त टूट कर फिर से ग्राक्सीजन ग्रौर हीमोग्लोबिन बना लेता है। हीमोग्लोबिन का एक ग्रणु ग्राक्सीजन के चार ग्रणुग्रों से संयोग कर सकता है। कार्बन मोनोग्राक्साइड ग्राक्सीजन की अपेक्षा 250 गुना अधिक संयुक्त होने की क्षमता रखने के कारण एक शक्तिशाली जहर का काम करता है। संयोग करने के बाद यह स्वाभाविक श्वसन क्रिया को रोक देता है इसे Anoxaemia कहते हैं जिससे मनुष्य की तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

शरीर से बाहर ग्राने पर रक्त तुरन्त जम जाता है लेकिन शरीर के भीतर होते हुए यह कभी नहीं जमता। कारण ? रक्त मे रक्त को जमने से रोकने के लिए कुछ तत्व पाये जाते हैं जिनको एन्टीकोएगुलेन्ट कहते हैं। हिपैरिन एवं एन्टीथाम्बियम इसका उदाहरण है। रक्त का जमना फाइब्रिन नामक प्रोटीन के बन जाने से होता है, जमने के बाद जो द्रव बाहर निकलता है उसे सीरम कहते हैं। रक्त के जमने में निम्नलिखित क्रिया होती है—

रक्त जब बाहर बहने लगता है तो थाम्बोप्लास्टिन (टिशू में उपस्थित) कैल्शियम की उपस्थिति में प्रोथाम्बियम पर क्रिया करती है जिससे प्रोथाम्बियम, थाम्बियम में परिवर्तित हो जाता है जो कि घुलनशील फाइब्रिनोजन को अघुलनशील फाइब्रिन में बदल देता है जिसमें रक्त कण फँस कर बाहर निकलने से रुक जाते है ग्रौर थक्का बन जाता है।

थाम्बोप्लास्टिन + Ca + प्रोथाम्बियम → थाम्बियम
(टिशू) (प्लाज्मा) (यकृ) ↓
फाइब्रिन ← फाइब्रिनोजन
(अघुलनशील) (घुलनशील)
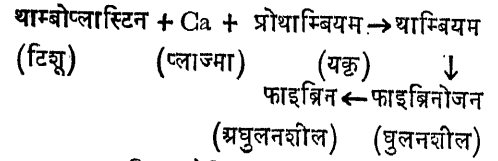
कुछ रासायनिक यौगिक भी एन्टीकोएगुलेन्ट का काम करते हैं जैसे—

(1) सोडियम साइट्रेट
(2) सोडियम ग्राक्सलेट

रसेल वाइपर एक अत्यन्त जहरीला साँप होता है। इसके काटने से तुरन्त मृत्यु हो जाती है। इसका कारण यह है कि इसके जहर में रक्त को जमाने वाला शक्तिशाली पदार्थ होता है जिस पर सोडियम साइट्रेट व सोडियम ग्राक्सलेट का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। धमनियों व शिराग्रों में तुरन्त रक्त जम जाने के कारण तुरन्त मृत्यु हो जाती है।

● ●

[श्री हरि कोटा, बंगलौर तथा मास्को की प्रयोगशालाओं में आर्यभट्ट द्वारा प्रेषित 6 करोड़ आँकड़े (1 मई तक) अंकित किये जा चुके हैं]

तड़ित-गर्जन

डॉ० भारतेन्दु

तड़ित को मनुष्य ने चिर काल से देखा,
प्राचीन सभ्यताओं का एकत्रित बहु लेखा।
दैवी रूप तड़ित गर्जन का बताया,
'विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे' वेद गान गाया ॥१॥
मिश्री बोले, 'सेठ' अस्त्र तड़ित-गर्जन,
यूनानी को 'जैसे' देव रुष्टता दिगदर्शन।
रोमी को 'योव' क्रोध दिखा इनमें,
'इन्द्र' वज्र रूप है भारतीय पुराणों में ॥२॥
प्रकृति वैसे पौरुष का ही है एक रूप,
सत एक पर उसके हैं अनेक स्वरूप।
एक ब्रह्म सब जड़ चेतन में समाया,
फलत: तड़ित-गर्जन में आभास आया ॥३॥
वैज्ञानिक सिद्धान्त दैवी अस्तित्व पर बनते नहीं,
प्रेक्षण से ही केवल आंकड़े निकलते सही।
सब ऊर्जाओं का स्रोत माना ब्रह्म ऊर्जा ही,
पर गंगा स्नान को गंगोत्री आवश्यक नहीं ॥४॥
छ: सौ वर्ष ईसा पूर्व सुनो यूनान में,
दर्शनशास्त्री ऐनक्जी मैण्डर के वचनों में।
वायु के चालन में मेघ धक्का खाता है,
अग्नि निकलती है नाद हो जाता है ॥५॥
बाबा अरस्तू ने भी स्वयं विचार किया,
इनकी उत्पत्ति पर अपना मंतव्य दिया।
वायुमण्डल शीत उष्ण दो सांसों से आवृत्त,
मेघों में सूखी गर्म—सांस वाष्प है स्थित ॥६॥
संघनन में वाष्प जब यह बाहर निकलती,
होती ध्वनि इसे दुनियाँ गर्जन है कहती।
तदोपरान्त बहुधा सांस वाष्प खूब जलती,
'तड़ित है अग्नि' अरस्तूतू वाणी कहती ॥७॥
ऐसे ही अनेकों स्पष्टीकरण अन्य भी हुए,
अन्त में वह सब गलत ही साबित हुए।
मेघों में पतंग भेज पहले प्रयोग किए,
'तड़ित है विद्युत' डालीवर्ट फ्रैंकलिन ने प्रमाण दिए ॥८॥

आधुनिक विचारों से विद्युत चिनगारी तड़ित,
मेघों में ऋण घन आवेश की कोशिका हैं विस्तृत।
इन कोशिकाओं मध्य विद्युत विभव बढ़ता जब,
आयनीकरण वायु का वहाँ उस क्षण होता तब ॥९॥
कपासी मेघों में ही यह दशा है होती,
विद्युत विभव बढ़े इतना कि यह प्रक्रिया होती।
आयनीकरण पथ ज्योतिष्मान होता जब,
तड़ित रूप का हमें दर्शन होता तब ॥१०॥
विद्युत आवेश मेघों में कैसे सृजित होता है,
विसर्जित, सृजित, विसर्जित क्यों बार-बार होता है।
घण्टों ही तड़ित बहु दिशाओं में निकलती है,
वैज्ञानिकों के लिए पहेली क्लिष्ट बनती है ॥११॥
ज्योतिमय पथ पल में ही गर्म बड़ा हो जाता,
तात्कालिक ऊष्मा हेतु वायु प्रसार न हो पाता।
फलस्वरूप आघात तरंगें निकलती हैं,
क्षीण हो वायुमण्डल में ध्वनि तरंगे बनती है ॥१२॥
इन ध्वनि तरंगों को ही गर्जन हैं कहते,
अन्य अवश्रव्य आवृत्तियों का समूह इनमें पाते।
अवश्रव्य आवृत्तियों में होती है ऊर्जा अति,
कैसे, क्यों, प्रश्नों की है न अभी उत्तर पूर्ति ॥१३॥
विद्युत क्षेत्र भंग जब कुछ वैज्ञानिकों का है यह मन,
बलकृत दबाव से अवश्रव्य ध्वनि होती है उत्पन्न।
इस सिद्धान्त से ध्वनि होनी चाहिए विरलित,
प्रयोगात्मक प्रेक्षण पर पाते हैं संपडित ॥१४॥
'भारतेन्दु' अभी असुलझी पहेली ही है यह जानो,
वैज्ञानिकों को चुनौती ऐसा ही लो मानो।
अतिशय तड़ित ऊर्जा यदि हो सके प्रयोग शील,
घर-घर में बिजली के दीप हो सकें प्रदीप्त ॥१५॥
तड़ित-गर्जन क्या है ऐक दिन पूरा जान जावेंगे,
सहस्र अरब जूल तड़ित ऊर्जा क्या उपयोग कर पावेंगे ?
नई तकनीक का अब आवश्यक आविष्कार,
'भारतेन्दु' रूप निरख तड़ित-गर्जन नमस्कार ॥१६॥

● ●

प्रसिद्ध कीटाणुनाशक

डी डी टी की कहानी—तैथिक क्रमानुसार

डा० राम चन्द्र कपूर

1874 प्रो० जाइडलर द्वारा डी डी टी की सर्वप्रथम तैयारी।

1939 स्वीटजरलैंड में आलू की खेती 'कोलोरेडो बीटल' नामक कीड़े से नष्ट हो रही थी अतः स्वीटजरलैंड के वैज्ञानिकों ने कई रसायनों का परीक्षण किया और पाया कि डाईक्लोरो-डाइफेनिल ट्राइक्लोरोइथेन (डी डी टी) इन कीटों को नष्ट करने में सबसे उपयोगी है।

1942 स्वीटजरलैंड की जाइजी कम्पनी ने डी डी टी के नमूनों को परीक्षण हेतु अमरीका भेजा, और अमेरिकन वैज्ञानिकों ने डी डी टी के साथ कार्य करना प्रारंभ किया।

1943 अमरीका ने अपने सैनिकों के इस्तेमाल के लिये टाइफस ज्वर तथा मलेरिया को रोकने के लिये डी डी टी का बृहत् मात्रा में उत्पादन आरम्भ किया।

1945 संयुक्त राष्ट्र अमरीका के युद्ध उत्पादन बोर्ड ने बताया की डी डी टी का साधारण जनता द्वारा इस्तेमाल किया जा सकता है, और इसके साथ ही सारे संसार में मलेरिया उन्मूलन के लिये डी डी टी का प्रयोग आरम्भ किया गया। डी डी टी के कीटनाशक के रूप में इस्तेमाल करने के मुख्य कारण थे—कि यह सस्ती है, इसका प्रभाव काफी दिनों तक बना रहता है, आसानी के साथ इसका इस्तेमाल किया जा सकता है तथा यह मनुष्यों व घरेलू जानवरों के लिये विषैली नहीं है। डी डी टी का मुख्यतः मलेरिया उन्मूलन के लिये प्रयोग इस बात से सिद्ध हुआ कि श्री लंका में 1934-35 में 15 लाख लोग मलेरिया से ग्रसित हुए तथा 80,000 लोग मृत्यु के मुँह में चले गये, परंतु जब डी डी टी का बृहत् रूप में 1963 में प्रयोग किया गया तो यह देखा गया कि पूरे देश में केवल 17 लोग ही मलेरिया के शिकार हुए। डी डी टी का जब इस्तेमाल बन्द कर दिया गया तो यह देखा गया कि 1968 तथा 1969 के आरम्भ में 600,000 लोग मलेरिया से ग्रसित हुए।

1945 खेती के लिये इस्तेमाल—चूँकि यह सस्ती है, आसानी के साथ इसका इस्तेमाल किया जा सकता है, तथा यह विभिन्न प्रकार के कीटों का नाश कर सकती है अतः इसका (डी डी टी) खेती में बृहत् मात्रा में इस्तेमाल आरम्भ किया गया, और यह देखा गया कि खेतों की पैदावार तथा कीटनाशकों के प्रयोग में एक सीधा संबंध है (देखिये तालिका।)

तालिका : कीटनाशकों का इस्तेमाल तथा खेतों की पैदावार संसार के कुछ देशों में

देश अथवा क्षेत्र	कीटनाशकों का प्रयोग (ग्राम प्रति हेक्टर) (2·47 एकड़)	पैदावार (किलोग्राम प्रति हेक्टर)
जापान	10,790	5480
यूरोप	1,870	3430
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	1,490	2600
लैटिन अमरीका	220	1970
भारत	149	820
अफ्रीका	127	1210

1945 डी डी टी का विषैला प्रभाव कुछ जानवरों जैसे मेढक, सर्प, मछली आदि पर पाया गया।

1946 दो वैज्ञानिकों—क्लेरेंस काटम तथा एल्मर हिग्गिन्स ने बताया कि डी डी टी कुछ उपयोगी कीटों, मछलियों तथा जंगली जानवरों के लिये सम्भवतः हानिकारक है।

1948 डी डी टी का कीटनाशक के रूप में प्रभाव खोजने हेतु डॉ० पॉल म्युलर को नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया।

1949 डी डी टी का जब डच एल्म बीमारी द्वारा ग्रसित पेड़ों पर छिड़काव किया गया तो यह देखा गया कि छिड़काव से बहुत सी चिड़ियाँ मर गयीं तथा राष्ट्रीय आडुबन सोसाइटी द्वारा यह चेतावनी दी गयी कि डी डी टी तथा अन्य कीटनाशक चिड़ियों तथा अन्य उपयोगी जानवरों के लिये हानिकारक है।

1949-62 कुछ अन्य रिपोर्टें भी प्रकाशित हुयीं जिनमें यह कहा गया कि डी डी टी हानिकारक है, परन्तु इन रिपोर्टों पर 1962 तक कोई ध्यान नहीं दिया गया।

1962 जीव वैज्ञानिक रैचेल कारसन ने 'सायलेन्ट स्प्रिग' का प्रकाशन किया। इस प्रकाशन ने वैज्ञानिकों, आम जनता, सरकारी ऐजेंसियों, सभासदों आदि का ध्यान कीटनाशकों के हानिकारक प्रभाव की ओर आकर्षित किया।

1972 विलियम डी० रकेलशास द्वारा जून 1972 से संयुक्त राष्ट्र अमरीका में डी डी टी के इस्तेमाल पर रोक लगा दी गयी।

डॉ० राम चन्द्र कपूर,
रसायन विभाग
क्राइस्ट चर्च कालेज, कानपुर—1

धूमकेतु में पानी

किसी धूमकेतु में पानी की उपस्थिति की पुष्टि पहली बार हुई है।

'धूमकेतु सौर-मण्डल के आखिरी छोर से बने मटमैले बर्फ की गेंद होते हैं, इस सिद्धान्त की खोज तेल-अबीव विश्वविद्यालय के खगोलशास्त्री पीटर वेंहगर तथा सूसन वाइकाफ ने गत जनवरी में कोहोतेक धूमकेतु का निरीक्षण करते समय किया।

कोहोतेक, जो सबसे पहले मार्च 1973 में दिखाई पड़ा था, आशा की जाती थी कि यह रात्रि के समय चन्द्र को छोड़कर सबसे अधिक चमकीली वस्तु होगी पर यह आशा पूरी नहीं हो सकी। अदृश्य होने के पूर्व इसे नेगेब में मिट्सपेरेमोन पर स्थित तेलअबीब विश्वविद्यालय की वाइज वेधशाला के 40 इंची परावर्तक दूरदर्शी द्वारा बहुत ही स्पष्ट रूप से देखा जा सका। इसके प्रकाश को अवयवी रंगों में स्पेक्ट्रोग्राफ द्वारा विभक्त करके और उसकी चमक में सौगुना वृद्धि करके एक चित्र लिया गया। पूर्व के सभी खगोलशास्त्रीय चित्रों से यह स्पेक्ट्रोग्राम पूर्णतया भिन्न था। वास्तव में इस स्पेक्ट्रोग्राम में आयनित जल के वाष्प की उपस्थिति प्रकट हुई।

प्रोफेसर वेंहगर ने बताया कि पानी की उपस्थिति से यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि वहाँ जीवन भी होगा। लम्बी कक्षा के कारण धूमकेतु सौर-मण्डल की यात्रा के दौरान अधिकांश समय सूर्य से इतना दूर रहता है कि अपेक्षित मात्रा में ऊर्जा उस तक नहीं पहुँच पाती।

('पब्लिकेशन सिण्डीकेट' के सौजन्य से)

गणित शिक्षक संगोष्ठी

ओमप्रकाश दुबे, संयोजक

गणित शिक्षक संगोष्ठी का आयोजन मण्डलीय स्तर पर श्री तिलक इण्टर कालेज कनैली, इलाहाबाद के प्रांगण में किया गया जिसका उद्घाटन उत्तर प्रदेश के संयुक्त शिक्षा निदेशक माननीय श्री रामहित ने किया। अपने उद्घाटन भाषण में संयुक्त शिक्षा निदेशक महोदय ने शिक्षकों को कर्त्तव्यनिष्ठ होने की प्रेरणा देते हुए कहा कि प्रारम्भिक स्तर पर गणित का पाठ्यक्रम कम होता है। यदि इस स्तर पर ही ध्यान दें तो बालकों में गणित विषय के प्रति स्वाभाविक रुचि उत्पन्न की जा सकती है। आगे उन्होंने कहा कि इस गणित संगोष्ठी की गणित शिक्षा के उन्नयन के लिए कितनी उपयोगिता होगी इसे भी आप सभी गणित अध्यापकों को देखना है। इसलिए परिश्रम के साथ विचार-विमर्श करके कुछ विशिष्ट विचार आप लोगों को देना है जो प्रान्तीय शिक्षा जगत के लिए एक देन हो। इस प्रकार आप लोगों की इस गोष्ठी के लिए एक चुनौती है कि उसकी एक बहुत बड़ी उपयोगिता हो। इस चुनौती का सामना करने के लिए सभी प्रतिभागी पूर्णरूपेण सक्षम हों, की शुभ कामना के साथ मुख्य अतिथि श्री रामहित ने गोष्ठी का विधिवत उद्घाटन घोषित किया।

उद्घाटन सत्र के मुख्य वक्ता प्रदेश के भूतपूर्व संयुक्त शिक्षा निदेशक तथा राज्य विज्ञान संस्थान के निदेशक एवं अनुभवी शिक्षाविद् डा० सीतावर सरन ने पाठ्यक्रम, शिक्षण और परीक्षा के चिन्तन पर बल देते हुए कहा कि परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना गणित शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य नहीं होना चाहिए। प्रश्नपत्रों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि परीक्षा में लघु प्रश्न ही अधिक पूछे जाने चाहिए, क्योंकि इस प्रकार के प्रश्नों द्वारा बालक की पूरी योग्यता का मूल्यांकन संभव है।

उपशिक्षा-निदेशक श्री अर्गल ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि मण्डल की विभिन्न गोष्ठियों की परम्परा में यह गोष्ठी बहुत ही महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका आयोजन नगर के जन कोलाहल से दूर ग्रामीण अंचल में किया गया है। इससे ग्रामीण अंचल के जन मानस को शिक्षा के प्रति जन जागरण की प्रेरणा मिलेगी और सुदूर ग्रामीण अंचलों में स्थित विद्यालयों को गणित जगत का नया प्रकाश मिलेगा।

संगोष्ठी के संरक्षक एवं इलाहाबाद के जनपदीय विद्यालय निरीक्षक श्री कलम सिंह रावत ने संगोष्ठी की उपयोगिता बताते हुए कहा कि शिक्षा में होने वाले अनुसंधानों तथा परिवर्तनों से अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को परिचित कराने के लिए एवं उनके विचार प्राप्त करने के लिए इस संगोष्ठी का आयोजन किया गया है।

संगोष्ठी के व्यवस्थापक एवं श्री तिलक इण्टर कालेज कनैली के प्रधानाचार्य श्री श्रीकान्त पाण्डेय ने उपस्थित सभी शिक्षाधिकारियों, शिक्षाविदों एवं अध्यापकों का स्नेहसिक्त स्वागत किया। संगोष्ठी के संयोजन एवं आदर्श इण्टर कालेज सराय आकिल के गणित प्रवक्ता श्री ओम प्रकाश दुबे ने किया।

अपरोन्ह में प्रथम संयुक्त बैठक में पाठ्यक्रम, अध्यापन और परीक्षाफल पर आधारित अलग-अलग तीन पृष्ठ भूमि-पत्र पढ़े गये—

1. गणित का पाठ्यक्रम—प्रस्तुतकर्त्ता—श्री मंगला प्रसाद पाठक, प्रवक्ता (गणित), राजकीय इण्टर कालेज, इलाहाबाद।

2. गणित अध्यापन की समस्याएँ और उनका निवारण—प्रस्तुतकर्त्ता—श्री ओम प्रकाश दुबे, प्रवक्ता (गणित) आदर्श इण्टर कालेज, सराय आकिल, इलाहाबाद।

3. माध्यमिक गणित की परीक्षाफल के उन्नयन हेतु कुछ सुझाव—प्रस्तुतकर्त्ता—श्री उदय नारायण मिश्र, प्रवक्ता (गणित), रा० सेन्ट्रल पाइडागाजिकल इन्स्टिट्यूटर, इलाहाबाद।

इन सभी पृष्ठ भूमि पत्रों की प्रतिलिपि सभी प्रतिभागियों को एक फाइल के साथ पहले ही वितरित कर दिया गया था। प्रो० आदित्य नारायण तिवारी, प्राचार्य, राजकीय सेन्ट्रल पाइडागाजिकल इन्स्टिट्यूट इलाहाबाद ने इस संयुक्त बैठक में प्रतिभागियों को सुझाव दिया कि वे इस बात पर भी विचार करें कि गणित को हाई स्कूल स्तर अनिवार्य विषय क्यों किया जाय ? डा० सीतावर सरन ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि हम अपने सीमित साधनों में गणित को कैसे लोकप्रिय बनायें इस पर हमें विचार करना चाहिए। संगोष्ठी के संयोजक श्री ओम प्रकाश दुबे ने निम्नलिखित समितियों की घोषणा किया—

1. हाईस्कूल पाठ्यक्रम समिति—रिसोर्स पर्सनल—डा० सीतावर सरन। सदस्यों की संख्या 21,

2. हाईस्कूल अध्यापन समिति—रिसोर्स पर्सनल—प्रो० आदित्य नारायण तिवारी। सदस्यों की संख्या 19

3. हाईस्कूल परीक्षा समिति—रिसोर्स पर्सनल—श्री उदय नारायण मिश्र, सदस्यों की संख्या 20

4. इन्टरमीडिएट पाठ्यक्रम समिति—रिसोर्स पर्सनल—1. श्री सत्य प्रकाश खरे, प्रवक्ता (गणित), बी० एस० मेहता विज्ञान महाविद्यालय, भरवारी, इलाहाबाद, 2. श्री वेणी माधव गुप्त, प्रवक्ता (गणित), रा० सेन्ट्रल पाइडागाजिकल इन्स्टिट्यूटर, इलाहाबाद। सदस्यों की संख्या—6

5. इण्टरमीडिएट अध्यापन सीमित—रिसोर्स पर्सनल—श्री कृष्णकुमार, राज्य विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद। सदस्यों की संख्या—5

6. इण्टरमीडिएट परीक्षाफल समिति—रिसोर्स पर्सनल—श्री अनन्त राम अग्रवाल, राज्य विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद। सदस्यों की संख्या—5

7. सुझाव समिति—1. श्री चन्द्र दत्त पसबोला, सह जनपदीय विद्यालय निरीक्षक, इलाहाबाद

2. डा० राजकुमार, प्रवक्ता, बी० एस० मेहता विज्ञान महाविद्यालय, भरवारी, इलाहाबाद

3. श्री विश्व नाथ प्रसाद पाण्डेय, प्रधानाचार्य, इण्टर कालेज सभागंज, पूरबनारा, इलाहाबाद

प्राप्त संस्तुतियों पर प्रतिभागियों एवं अधिकारियों द्वारा मुक्त रूपेण टिप्पणी की गई जिसके अनुसार संस्तुतियों में परिवर्तन किया गया। विभिन्न समितियों द्वारा प्रस्तुत की गई संस्तुतियों की संक्षिप्त आख्या निम्नलिखित है—

हाई स्कूल के लिए संस्तुतियाँ—

1. त्रिकोणमिति, निदेशांक ज्यामिति एवं समुच्चय सिद्धान्त में टेकनिकल शब्दों का हिन्दी रूपान्तर कठिनाई उत्पन्न करता है। अतः गणित में अन्तर्राष्ट्रीय टेकनिकल शब्दों और संख्याओं को ही प्रयोग किया जाय, क्योंकि उच्च शिक्षा में अन्तर्राष्ट्रीय टेकनिकल शब्दों का ही प्रयोग होता है।

2. सामान्य गणित प्रथम प्रश्न पत्र के अंकगणित भाग से समानुपात, लाभ-हानि, तथा कार्य एवं समय के प्रकरणों को हटाकर उनके स्थान पर नवीन तथा जीवनोपयोगी प्रकरणों जैसे—सेविंग बैंक, इन्सोरेंस एवं आय-कर इत्यादि का समावेश किया जाग।

3. 42 पीरियेड के टाइम टेबुल में 9 पीरियेड के टाइम टेबुल में 12 पीरियेड प्रति सप्ताह गणित अध्यापन के लिए दिये जाने के लिए विभाग की ओर से स्पष्ट आदेश होना चाहिए। इस दृष्टि से यदि विद्यालग में अध्यापकों की कमी हो, तो उसकी पूर्ति की जाय।

4. जिन विद्यालयों में न्यूनतम योग्यता से कम योग्यता वाले अध्यापक गणित पढ़ा रहे हों वहाँ विभाग द्वारा निर्धारित योग्यता वाले अध्यापकों से गणित पढ़वाने की व्यवस्था करायी जाय।

5. अध्यापन स्तर ऊँचा करने के लिए एवं छात्रों के समक्ष विषय वस्तु को सरल एवं स्पष्ट ढंग से प्रस्तुत करने हेतु गणितीय उपकरणों, माडलों एवं चार्टों की पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। कुछ विशिष्ट उपकरणों की विभाग द्वारा अनुदान के रूप में दिये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

6. सेवा विस्तार केन्द्रों एवं संस्थानों द्वारा

आयोजित गणित गोष्ठियों में अध्यापकों की उपस्थिति अनिवार्य की जानी चाहिए। प्राय: प्रधानाचार्य इन केन्द्रों एवं संस्थानों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को अध्यापकों को नहीं देते। इसलिए संबंधित अध्यापकों को भी विभाग की ओर से सूचना प्रेषित किया जाना चाहिए।

7. प्राइवेट ट्यूशन एवं कोचिंग की परम्परा को समाप्त करने के लिए विभागीय नियम बनाये जांय और उनका समुचित कार्यान्वयन किया जाय।

8. स्योर गेस पेपर्स, प्रश्नोत्तरी एवं पाठ्यपुस्तकों की कुंजी आदि के प्रकाशन तथा विक्रय पर राज्य सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाया जाय।

9. हाई स्कूल स्तर पर उच्च गणित के लिये प्रवेश चयन हेतु एक चयन प्रामाणिक परीक्षण तैयार कराया जाय उसके आधार पर छात्रों का उच्च गणित के अध्ययन को लिये चयन किया जाय।

10. माध्यमिक परिषद् की हाई स्कूल परीक्षा में उन्हीं व्यक्तियों से कार्य लिया जाय जो इस स्तर पर शिक्षण कार्य कर रहे हों।

11. विद्यालय में छात्रों की प्रोन्नति हेतु निम्न-लिखित योजना बनाई जाय—

(क) वर्ष में कुल पाँच मासिक परीक्षायें—
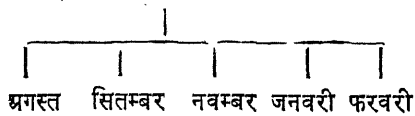
(ख) अर्द्धवार्षिक परीक्षा दिसम्बर में,

(ग) वार्षिक परीक्षा अप्रैल, मई में,

(12) केन्द्रीय मूल्यांकन योजना के अन्तर्गत किसी परीक्षक को एक दिन में चालीस से अधिक उत्तर—पुस्तिकाओं को जाँचने की अनुमति न दी जाय।

(13) विद्यालयों में गणित क्लब तथा जिला स्तर पर शिक्षकों के परिषद् के संगठन हेतु विभाग की ओर से प्रोत्साहन दिया जाय।

(14) कक्षा 8 की परीक्षा किला स्तर की ली जाय और कक्षा 9 के लिये प्रान्तीय स्तर पर कक्षोन्नति के नियम बनाये जाय। इसके लिये शिक्षा संहिता में आवश्यक संशोधन अपेक्षित है।

इण्टरमीडिएट के लिये संस्तुतियाँ

1. अधिकांश विद्यालयों में इण्टर कक्षाओं में गणित अध्ययन हेतु सप्ताह में कुल 9 पीरियेड या कुछ विद्यालयों में 10 पीरियेड दिये जाते हैं। कुछ विद्यालयों में 12 पीरियेड साप्ताहिक भी दिये जाते हैं; अतएव प्रत्येक विद्यालय में इण्टर कक्षाओं को गणित पढ़ाने के लिए कम से कम 12 पीरियेड अवश्य दिये जाने चाहिए। इससे कम समय में पाठ्यक्रम पूरा करना असम्भव है। यदि यह सम्भव न हो, तो उपलब्ध पीरियेड के अनुसार पाठ्यक्रम संशोधित किया जाय। प्रान्तीय स्तर पर टाइमटेबुल संबंधी एक कार्य गोष्ठी आयोजित की जाय जो प्रान्तीय स्तर पर टाइमटेबुल तैयार करे।

2. कुछ विद्यालयों में गणित प्रवक्ता को 6 पीरियेड प्रतिदिन या 7 पीरियेड प्रतिदिन पढ़ाना पड़ता है जिससे अध्यापक समुचित ढंग से अध्यापन नहीं कर पाता। अत: गणित प्रवक्ताओं को केवल इण्टर कक्षाओं को 4 पीरियेड प्रतिदिन पढ़ाने की व्यवस्था की जाय।

3. हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट स्तर पर अन्तर्राष्ट्रीय टेकनिकल शब्दों और संख्याओं का प्रयोग अनिवार्य किया जाय।

4. हाई स्कूल गणित (उच्च) में 45% अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को ही इण्टर कक्षाओं में गणित विषय पढ़ने के योग्य माना जाय। यदि कोई विद्यार्थी इस योग्यता को प्राप्त नहीं कर पाता तो उसी वर्ष की पूरक परीक्षा में केवल गणित विषय में बैठने की अनुमति दी जाय, जिससे वह गणित में प्रतिशत सुधार सके।

5. यांत्रिकी गणित तथा अन्य गणित का स्पष्ट बोध होने के लिए यह आवश्यक है कि इससे संबोधित प्रयोगों को छात्र स्वयं करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए गणित प्रयोगात्मक परीक्षा भी हो और परीक्षा के साथ ही बौद्धिक स्तर की जाँच के लिए मौखिक परीक्षा (viva-voce) का प्राविधान किया जाय। इससे निम्नलिखित लाभ अपेक्षित है—

(क) गणित में अभिरुचि तथा बौद्धिक स्तर का मूल्यांकन अधिक वैज्ञानिक ढंग से हो सकेगा।

(ख) प्रयोगात्मक कार्य से विषय की समस्याओं को रटने की अपेक्षा समझने में सहायता मिलेगी।

(ग) रेकार्ड का मूल्यांकन करने से विद्यार्थियों को लिखित कार्य की ओर प्रेरित किया जा सकेगा।

6. कक्षा 11 की परीक्षा की प्रोन्नति का नियम प्रान्तीय स्तर पर बनाया जाय।

7. गणित की अच्छी पुस्तकों की एक सूची तैयार कराकर प्रत्येक विद्यालय के पुस्तकालयों में उन पुस्तकों को मँगवाने की व्यवस्था की जाय। राज्य सरकार पुस्तकालय अनुदान रुपये में न देकर पुस्तकों के रूप में दे। इससे विद्यालयों में प्रत्येक विषय की अच्छी पुस्तकें पहुँच सकेंगी।

8. प्रत्येक विद्यालय में गणित क्लब चलाने हेतु विभाग की ओर से प्रोत्साहन दिया जाय।

9. गैस पेपर्स, मेडइजी आदि के प्रकाशन तथा विक्रय पर राज्य सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाया जाय।

10. माध्यमिक परिषद् की इण्टरमीडिएट परीक्षा में उन्हीं व्यक्तियों से कार्य लिया जाय जो इस स्तर पर शिक्षण-कार्य कर रहे हों।

मुख्य अतिथि डा० त्रिविक्रमपति ने अपने डेढ़ घण्टे के प्रभावशाली और सारगर्भित व्याख्यान में अंग्रेजी में बोलते हुए नवीन गणित की उपयोगिता को बताया, किन्तु साथ में परम्परागत गणित के महत्व पर भी बल दिया। डा० पति ने कहा कि अन्तर्राष्ट्रीय गणितज्ञों के जीवन के कथाओं के माध्यम से गणित के अध्यापन को रुचिकर बनाना चाहिए। उन्होंने अध्यापन माध्यम के संबंध में कहा कि प्रत्येक विषय का अध्यापन मातृ-भाषा में होना चाहिए, किन्तु गणित एवं विज्ञान में अन्तर्राष्ट्रीय संकेतों और शब्दों का प्रयोग होना चाहिए।

ओम प्रकाश दुबे
प्रवक्ता (गणित)
आदर्श इण्टर कालेज, सराय आकिल
इलाहाबाद

[पृष्ठ 3 का शेषांश]

टेप किए जा रहे हैं। भारतीय अन्तरिक्ष अनुसंधान संस्थान के अध्यक्ष प्रो० सतीशधवन तथा परियोजना के संचालक प्रो० राव के अनुसार यह वैज्ञानिक उपलब्धि भावी भारत के लिए बड़े आर्थिक महत्व की होगी।

यद्यपि आर्यभट्ट प्रथम के निर्माण में 5 करोड़ रुपये व्यय हुए हैं लेकिन आशा की जाती है कि आर्यभट्ट द्वितीय का निर्माण कुछ सस्ता पड़ेगा। प्राप्त सूचनाओं के अनुसार भारत सरकार 50 लाख रुपये का व्यय वहन करने को तैयार है। भारतीय वैज्ञानिकों के अनुसार 1978 में भारत पूर्णरूप से स्वदेशी उपग्रह छोड़ सकेगा।

शुकदेव प्रसाद
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

पुस्तक समीक्षा

बीरबल साहनी पुरस्कार से विभूषित 'ब्रायोफ़ाइटा' एक परिचय

लेखक — डॉ० जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव
प्रकाशक — उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी लखनऊ।
पृष्ठ — 427
मूल्य — बारह रुपये पचास पैसे

अनुभवी एवं विद्वान प्राध्यापक डॉ० जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव की यह तीसरी पुस्तक है, किन्तु हिन्दी में प्रकाशित लेखक की यह प्रथम पुस्तक है। हिन्दी भाषा में 'ब्रायोफ़ाइटा' की रचना करके लेखक ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी की सेवा के साथ ही कुछ लोगों की इस धारणा को भी निराधार सिद्ध कर दिया है कि हिन्दी भाषा में विज्ञान की अच्छी पुस्तकें नहीं लिखी जा सकतीं। लेखक का प्रयास अन्य विज्ञान के लेखकों के लिए अनुकरणीय है।

इस पुस्तक की रचना में लेखक ने देशी और विदेशी वनस्पति विज्ञान (ब्रायोफ़ाइटा) के नवीनतम साहित्य का गहन अध्ययन करके एक ऐसी पुस्तक का निर्माण किया है, जिससे आने वाले वर्षों में अध्यापक और विद्यार्थी दोनों लाभान्वित होते रहेंगे।

पुस्तक 19 अध्यायों में विभाजित है। इसके अतिरिक्त पुस्तक के अन्त में (ग्रन्थ-सूची) और अनुक्रमणिका पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने में सहायक हैं। अन्त के दो अध्याय—उत्पत्ति तथा सम्बन्ध (अध्याय 18) और सारांश (अध्याय 19) विशेष रूप से सराहनीय है। अध्याय 18 के अन्तर्गत "बीजाणुजन ऊतकों का उत्तरोत्तर बन्ध्यीकरण" (Progressive sterilization of sporogenous tissues) को लेखक ने अपने ढंग से सफलतापूर्वक समझाया है। इसे चित्र 129 और 130 बहुत सरल रूप से ग्राह्य बनाते हैं। इसी अध्याय में "मेहरा की घनीकरण परिकल्पना" (Mehra's condensation hypothesss) को भी चित्रों की सहायता से समझाया गया है।

आर्डर मार्केन्शिएलीज का विभाजन अच्छा है। इसे सीधे कुलों में न विभाजित करके पहले तीन उप-आर्डरों में विभाजित किया गया है। जेनेरा—कुंजी पुस्तक की उपयोगिता बढ़ती है। अध्याय 7 के चित्र 38 में जंगरमैनिएलीज के विभिन्न सदस्यों की पत्तियों पर जल-कोषों की स्थिति और आकार को दर्शाया गया है। यह चित्र जंगरमैनिएलीज के जल-संचय-क्षमता (Water-retaining capacity of Jungermanniales) पर प्रकाश डालता है।

टाकाकिया (Takakia) को एक अलग आर्डर टाकाकिएलीज में रखा जाना उचित होता है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में सम्बन्ध दिया गया है। इससे ब्रायोफ़ाइटा के विभिन्न सदस्यों का आपस में क्या सम्बन्ध है और वे आदिम हैं अथवा विकसित हैं, इसे समझने में भी सुविधा होती है। कुल मिलाकर डॉ० जे० पी० श्रीवास्तव की इस पुस्तक पर गहन गवेषणा, मौलिक अनुसन्धान और उच्च स्तरीय वैज्ञानिक दृष्टिकोण की स्पष्ट छाप है।

पूरी पुस्तक का मुद्रण बहुत आकर्षक है। चित्र साफ-सुथरे हैं और अधिकतर चित्र रेखांकित होने से सुगम हैं।

पी० सी० श्रीवास्तव

विज्ञान वार्ता

वस्त्रों की रंगाई के लिए नये प्रकार की मशीन

अमेरिका की एक इंजिनियरिंग कम्पनी ने एक पूर्णतया नये प्रकार की बीम डाइंग मशीन विकसित की है, जिसकी सहायता से वस्त्रों की अन्तिम रूप में रंगाई करने वाले लोग बुनाई या कढ़ाई वाले वस्त्रों को शीघ्रता के साथ, कई बार और उत्कृष्ट रूप में रंग सकते हैं।

यह नयी मशीन पूरी तरह यंत्रचालित है। यह रंगाई करने वाले व्यक्ति के कार्यालय में लगे कंसोल द्वारा नियन्त्रित होती है। इसके सभी कण्ट्रोल वाल्व अपने आप यांत्रिक विधि द्वारा नियन्त्रित होते हैं। वे मशीन चालक के पैनेल पर स्थित केन्द्र से स्विचों द्वारा चालू हो सकते हैं। इसके ढांचे में सेफटी इण्टर्लाकों के कारण इसे चलाने में कोई खतरा उत्पन्न नहीं होने पाता।

इसका निर्माण करने वाली फर्म का दावा है कि यह प्रणाली कई दृष्टियों से उपयोगी है। इसका प्रयोग करने से रंगाई की प्रक्रिया पर नियमित नियन्त्रण लागू रहता है। इसके पम्प के सक्शन वाले भाग में रंग और रसायन भरे जाते हैं। इस मशीन को 20 सेकण्ड में ही खाली किया जा सकता है।

कम्पनी का कहना है कि संगणक नियन्त्रण प्रणाली और आटोमैटिक बैच प्रोग्रैमर से संयुक्त कर देने पर यह रंगाई की किसी भी विधि को किसी भी मात्रा तक नियन्त्रित कर सकती है।

संवाही रोगन प्रयुक्त करने के लिए स्वचालित डिपिंग मशीन

कैलिफोर्निया की एक फर्म विद्युदाणविक चिप कंपैसिटेटर और चिप रैजिस्टर को रोगन में निमज्जित करने के लिए एक स्वतः चालित मशीन का निर्यात कर रही है। यह निर्यात जापान को हो रहा है। इस मशीन का नाम 'माडेल सी डी 201 ए' है और यह प्रति घण्टे 2 हजार से 4 हज़ार से तक की संख्या में विद्युदाणविक छिलकों या चिपों को रोगन में निमज्जित करती है।

अमेरिकी फर्म के अनुसार, इसका प्रयोग करने से अन्य विधियों की अपेक्षा जहाँ श्रम सम्बन्धी लागत कम हो जाती है, वहीं सिलवर या रोगन की पुताई अधिक समान रूप में होती है। यह अनेक आकारों के चिपो पर सिलवर की पुताई करने में समर्थ है। इसकी डिजाइन बहुत सरल और विश्वसनीय है। इसका रखरखाव भी आसान है।

यह मशीन किसी भी अकेले चिप के दोनों छोरो पर सिलवर या रोगन लगा देती हैं। यह बिना रोगन वाली चिपों को अपने-आप एक 65-स्टेशन वाले चक्र पर चढ़ा देती है। इस चक्र की परिधि में दो डिप स्टेशन और दो फनेल ओवेन होते हैं। जब चक्र घूमता है, तब चिप एक सिरे पर रोगन में निमज्जित होती, सूखती, उलटती, दूसरे सिरे पर निमज्जित होती, सूखती, और अंत में चक्र पर से उतर जाती है। इसके द्वारा चिपों पर दुहरा रोगन भी चढ़ाया जा सकता है।

यह उपकरण व्यूटाइल, एसेटेट और टोलुएन जैसे किसी भी व्यापारिक घोल के लिए उपयुक्त होता है।

यह मशीन 5 फुट लम्बी और 3 फुट चौड़ी इस्पात की मेज पर स्थापित होती है। इसके सभी कण्ट्रोल और स्विच उपयुक्त स्थान पर लगे हैं। इसका निर्यात लोस एंजेलस, कैलिफोर्निया, की फर्म, डेवल इण्डस्ट्रीज, इन्क०, कर रही है।

फार्मों पर प्रयुक्त करने के लिए एक विशेष प्रकार की कुदाली

अमेरिका से आजकल निकट पूर्व के देशों और पुर्तगाल को एक नये फार्म उपकरण का निर्यात हो रहा है, जिसका नाम 'ग्रिजली बैकहो' है। इसका उपयोग निर्माण कार्यों में भी हो सकता है। इसके खुदाई करने वाले हत्थो और उपकरणों को किसी भी ट्रैक्टर में जोड़ा जा सकता है।

'बैकहो' का प्रयोग खेती, फलोत्पादन, खाई की खुदाई, तथा सिंचाई के कामों में हो सकता है। इसकी धुरी सीट के आगे होती है, जिससे ड्राइवर खुदाई के धक्के से आगे या पीछे नहीं सरक सकता। इससे उसे थकावट नहीं होती। इसमें हाइड्रालिक सिलिण्डिर भी लगे है। यह 10 फुट की दूरी पर 5 फुट से अधिक गहरी खुदाई कर सकता है। यह 5300 पौण्ड की शक्ति से खुदाई करता है।

इसका निर्माण जैक्सनविल, इलिनौय, की कम्पनी ग्रिजली कार्पोरेशन ने किया है।

आम का झुलसा रोग की रोकथाम

बहुत से आम उगाने वालों को आम के पेड़ों में बुरी तरह झुलसा रोग लगने से कम पैदावार मिलती है। ऐसा पेड़ों में पोषक तत्वों की कमी से होता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नयी दिल्ली के बागवानी तथा फल टेकनालॉजी डिवीजन में किये गये परीक्षणों के अनुसार पत्तियों के तन्तुओं में क्लोराइड लोहा जमा होने से यह रोग लगता है।

पहले पत्ती का केवल सिरा ही रोग ग्रसित होता है। जैसे-जैसे पत्ती की उम्र बढ़ती है, झुलसा रोग बढ़ता जाता है। मार्च में जो पत्तियां आती हैं वे इस रोग के कारण दूसरे वर्ष अप्रैल तक गिर पड़ती हैं। सच तो यह है कि जनवरी के बाद पेड़ रोगी दिखाई देने लगता है।

रोगी बागों में क्लोराइड वाले उर्वरक डालना तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। ऐसे बागों में पोटाश की मात्रा ज्यादा देनी चाहिये।

झुलसा रोग ग्रसित आमों के पेड़ों में पोटाशियम सल्फेट डालने के बजाय म्यूरियेट आफ पोटाश डालना अच्छा रहता है।

भेड़ों में शीतला रोग की रोकथाम के उपाय

पशुधन वैज्ञानिकों के अनुसार विदेशों से लायी गयी ऊन वाली नयी भेड़ों के चेचक के टीके लगवा दें और उन्हें तीन सप्ताह तक अन्य भेड़ों से दूर रखें। चेचक के भयंकर रोग से बचने का यही एक सर्वोत्तम तरीका है।

फिलहाल इस रोग के फैलने की काफी सम्भावना बढ़ गयी है। अधिक गोश्त या अधिक ऊन लेने के लिए देसी नस्ल की भेड़ों की नस्ल को सुधारने के वास्ते विदेशों से आयात की गयी भेड़ों को यह रोग बहुत जल्दी लगता है।

रोग भेड़ों के सीधे एक दूसरे के सम्पर्क में आने तथा मक्खियों द्वारा रोग के कीटाणु लाने से फैलता है। आमतौर से जल्दी रोग पकड़ने वाली नस्ल की भेड़ों को यह रोग बड़ी आसानी से लगता है और इससे रोग के फैलने में भी मदद मिलती है। यदि चरवाहे कुछ सावधानी बरते तो रोग फैलने पर भी घबराने की कोई बात नहीं है।

रोग फैलने पर सफाई का पूरा ध्यान रखें तथा रोगी भेड़ों से तुरन्त अलग कर दें।

चेचक से मरी भेड़ के शव को ठीक तरह दफ़ना देना चाहिए और उसके मरने के स्थान को कीटनाशक दवा मिले पानी से धो देना चाहिये।

नयी आई भेड़ों के पूर्ण स्वस्थ होने का भरोसा होने पर तथा उनके टीके लगाने बाद ही अन्य भेड़ों के साथ रखना चाहिये।

भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान उत्तर प्रदेश में एक सुरक्षित तथा प्रभावी टीका बनाया जा रहा है। इस टीके का प्रभाव भेड़ों पर एक साल तक तथा मेमनों पर अल्प काल तक रहता है।

● ●

हिन्दी आपकी भाषा है विज्ञान आपकी पत्रिका है

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | ज्येष्ठ-आषाढ़ 2022 विक्र०, 1896 शकाब्द | जून-जुलाई 1975 | संख्या 5-6

संख्याओं के लिए रामानुजन का योगदान

ओम प्रकाश दुबे

"प्रत्येक धनात्मक पूर्णाङ्क रामानुजन के व्यक्तिगत मित्रों में से एक थे" यह वाक्य विश्व प्रसिद्ध गणितज्ञ प्रो० जी० एच० हार्डी ने भारतीय महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन के लिये कहा था। प्रो०हार्डी बीमार गणितज्ञ रामानुजन को देखने अस्पताल में जिस टैक्सी से गये थे उसका कैब नं० 1729 ($=7\times13\times19$) था। प्रो० हार्डी ने खिन्न मन से रामानुजन से कहा कि जिस टैक्सी से आया हूँ, उसका कैब नं० अशुभ था। भारतीय गणितज्ञ ने तुरन्त उत्तर दिया कि ऐसा नहीं है। यह बहुत ही रुचिकर संख्या है। वास्तव में यह सबसे छोटी संख्या है जिसे दो घनों के योग के रूप में दो विभिन्न विधियों से प्रदर्शित किया जा सकता है, यथा—$1729=12^3+1^3=10^3+9^3$। प्रो०हार्डी आश्चर्यचकित होकर चतुर्थ घात के लिये इस प्रकार की संख्या को पूछा। एक क्षण के पश्चात् बिस्तर पर पड़े हुए अद्भुत गणितज्ञ ने कहा कि संभवत: इस प्रकार की संख्या बहुत बड़ी होगी। उस गणितज्ञ ने ठीक ही कहा था, क्योंकि इस प्रकार की संख्या में 9 अंक हैं और वह संख्या 635318657 ($=158^4+59^4=134^4+133^4$) है।

श्रीनिवास रामानुजन ने संख्याओं के गुणों से संबंधित बहुत से आविष्कार किये, जिन पर आधारित कुछ उदाहरण निम्नांकित हैं:—

1--यदि किसी संख्या N को $a^p, b^q, c^r\cdots$ से प्रदर्शित किया जाय, जहाँ a, b, c............ अभाज्य संख्यायें हैं, तो N के गुणनखण्डों की संख्या

$$(p+1)(q+1)(r+1)(s+1)\ldots\ldots$$

होगी। उदाहरणार्थ $80=2^4\times5^1$

इसलिये, 80 के गुणनखण्डों की संख्या

$$(4+1)(1+1)=5\times2=10$$

होगी। 80 के 10 गुणनखण्ड 1, 2, 4, 5, 8, 10, 16, 20, 40, 80 हैं।

इसी प्रकार, $50400=2\;\times3^2\times5^2\times7^1$

इसलिए, 50400 के गुणनखण्डों की संख्या

$$(5+1)(2+1)(2+1)(1+1)$$
$$=6\times3\times3\times2=108$$

होगी। अत: 50400 के गुणनखण्ड

1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 12, 14, 15, 16, 18, 20, 21, 24, 25, 28, 30, 32, 35, 36, 40, 42, 45, 48, 50, 56, 60, 63, 70, 72, 75, 80, 84, 90, 96, 100,......... होंगे।

2—हम जानते हैं कि

$$n(n+2) = n\sqrt{(n+2)^2}$$
$$= n\sqrt{1 + n^2 + 4n + 3}$$
$$= n\sqrt{1 + (n+1)(n+3)}$$

अब मान लिया कि

$$n(n+2) = f(n)$$

इसलिये,
$$f(n) = n\sqrt{1 + f(n+1)}$$
$$= n\sqrt{1 + (n+1)\sqrt{1 + f(n+2)}}$$
$$= n\sqrt{1 + (n+1)\sqrt{1 + (n+2)\sqrt{1 + f(n+3)}}}$$
$$= \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

अतः
$$n(n+2) = n\sqrt{1 + (n+1)\sqrt{1 + (n+2)\sqrt{1 + (n+3)\sqrt{1 + \cdots\cdots}}}}$$

अब यदि $n = 1$, तो

$$\sqrt{1 + 2\sqrt{1 + 3\sqrt{1 + \cdots\cdots}}} = 3$$

और $n = 2$ लेने पर,

$$2\sqrt{1 + 3\sqrt{1 + 4\sqrt{1 + \cdots\cdots}}} = 8$$

इसी प्रकार n के भिन्न-भिन्न मान लेकर उपर्युक्त प्रकार के जटिल व्यंजकों के मान ज्ञात किया जा सकता है।

3—यह स्पष्ट है कि

$$n(n+3) = n\sqrt{(n+3)^2}$$
$$= n\sqrt{n^2 + 6n + 9}$$
$$= n\sqrt{n^2 + 5n + n + 5 + 4}$$
$$= n\sqrt{n + 5 + (n+1)(n+4)}$$

अब मान लिया कि

$$n(n+3) = f(n)$$

इसलिए,
$$f(n) = n\sqrt{n + 5 + f(n+1)}$$
$$= n\sqrt{n + 5 + (n+1)\sqrt{n + 6 + f(n+2)}}$$
$$= n\sqrt{n + 5 + (n+1)\sqrt{n + 6 + (n+2)\sqrt{n + 7 + f(n+3)}}}$$
$$= \ldots\ldots\ldots\ldots\ldots\ldots$$

इस प्रकार,

$$n(n+3) = n\sqrt{n + 5 + (n+1)\sqrt{n + 6 + (n+2)\sqrt{n + 7 + f(n+3)\cdots\cdots}}}$$

यदि $n = 1$, तो

$$\sqrt{6 + 2\sqrt{7 + 3\sqrt{8 + 4\sqrt{9 + \cdots\cdots}}}} = 4$$

और n = 2 लेने पर

$$2\sqrt{7+3\sqrt{8+4\sqrt{9+\cdots\cdots}}}=10$$

4—यदि किसी धनात्मक पूर्णाङ्क को छोटे से छोटे धनात्मक पूर्णाङ्क में हरेक संभव ढंग से विभाजित किया जाय, तो इस क्रिया को विभाजन सिद्धान्त कहते हैं। उदाहरणार्थ—5 का विभाजन

5, 4 + 1, 3 + 2, 3 + 1 + 1, 2 + 2 + 1, 2 + 1 + 1 + 1, 1 + 1 + 1 + 1 + 1

होगा। अतः 5 की विभाजन संख्या 7 है। इसी प्रकार 6 का विभाजन

6, 5 + 1, 4 + 2, 3 + 3, 3 + 2 + 1, 2 + 2 + 2, 2 + 1 + 1 + 1 + 1, 3 + 1 + 1 + 1, 4 + 1 + 1, 2 + 2 + 1 + 1, 1 + 1 + 1 + 1 + 1 + 1

होगा। अतः 6 की विभाजन संख्या 11 है। 1 की विभाजन संख्या 1 और 0 की भी विभाजन संख्या 1 होता है। यदि 1 के विभाजन को p (1) और 5 के विभाजन को P (5) से प्रदर्शित किया जाय, तो

$p(0) = 1,\quad p(1) = 1,\quad p(2) = 2,$
$p(3) = 3,\quad p(4) = 5,\quad p(5) = 7,$
$P(6) = 11,\quad p(7) = 15,\quad p(8) = 22$
$\cdots\cdots\quad \cdots\cdots\quad \cdots\cdots$

इसी प्रकार दूसरी संख्यायों का भी विभाजन करके विभाजन संख्या ज्ञात की जा सकती है। किसी संख्या की विभाजन संख्या निम्नलिखित विधि से ज्ञात की जा सकती है।

किसी एक रेखा में n इकाई लिखा। अन्तिम दो इकाइयों को 2 से विस्थापित कर दिया, इसके बाद दो इकाइयों को 2 से फिर विस्थापित किया और जब तक संभव हो विस्थापित करने की क्रिया किया। फिर (n − 3) इकाइयों को और 3 को लिखा तथा 2 द्वारा दो इकाइयों को विस्थापित किया। इस विधि से 7 का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से होगा—

1111111, 111112, 11122, 1222, 11113, 1123, 223, 133, 1114, 124, 34, 115, 25, 16, 7

अतः कुल विभाजन संख्या 15 है।

श्रीनिवास रामानुजन ने p(n) के मानों के पर्यवेक्षण से निम्नलिखित अनुमान लगाया और बाद में सिद्ध भी किया।

(i) p (5 n + 4), 5 का पूर्ण गुणक है।
(ii) p (7 n + 5), 7 का पूर्ण गुणक है।
(iii) p (11 n + 6), 11 का पूर्ण गुणक है।
जहाँ n = 0, 1, 2, 3, 4,………… इत्यादि।

अब (i) पर विचार करने से स्पष्ट है कि p (4), p (9), p (4), p (19), p (24) इत्यादि 5 के पूर्ण गुणक हैं। फिर (ii) को लेने पर P (5), p (12), p (19), p (26) इत्यादि 7 के पूर्ण गुणक हैं। इसी प्रकार (iii) पर विचार करने पर p (6), p (17), p (28), p (39) इत्यादि 11 के पूर्ण गुणक हैं।

5—श्रीनिवास रामानुजन ने 27 फरवरी, 1913 को प्रो० हार्डी को लिखे गये अपने पत्र में लिखा था कि एक सिद्धांत के अनुसार श्रेणी 1 + 2 + 3 + 4 + 5 … ……के अनन्त पदों तक का योग $-\frac{1}{12}$ होता है। वास्तव में यह देखने में कितना असंभव लगता है, किन्तु सत्य है। एक फलन

$$\phi(s) = \frac{1}{1^s} + \frac{1}{2^s} + \frac{1}{3^s} + \frac{1}{4^s} + \frac{1}{5^s} + \cdots \infty$$

इस फलन में $\phi = -1$ रखने पर,

$$\phi(-1) = \frac{1}{1^{-1}} + \frac{1}{2^{-1}} + \frac{1}{3^{-1}} + \frac{1}{4^{-1}} \cdots \infty$$

एक सिद्धान्त के अन्तर्गत $\phi(-1) = -\frac{1}{12}$ होता है।

अतः $1 + 2 + 3 + 4 + 5 + 6 + \cdots\cdots\cdots\cdots \infty = -\frac{1}{12}$

ओम प्रकाश दुबे
प्रवक्ता (गणित)
आदर्श कालेज, सरायआकिल
इलाहाबाद
उत्तर प्रदेश

● ●

ऊर्जा संकट और उसके विकल्प

कु० सावित्री श्रीवास्तव

ऊर्जा के लिए प्रयुक्त होने वाले साधनों के सीमित होने के विषय में वैज्ञानिकों को केवल आज ही नहीं अपितु बहुत समय पूर्व ज्ञान था। आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व ही यह भविष्यवाणी की जा चुकी थी कि विश्व में उपलब्ध ऊर्जा के भण्डार सीमित हैं और आने वाली दो शताब्दियों के लिए ही इन भण्डारों से ऊर्जा की पूर्ति सम्भव है। ऊर्जा के इन साधनों में प्रमुख हैं; कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस। इन सब में तेल द्वारा ऊर्जा की सर्वाधिक पूर्ति की जाती है। खनिज तेल केवल ऊर्जा का ही एक उत्तम साधन नहीं है अपितु मानव सभ्यता के विकास में इसका योगदान हर पग पर परिलक्षित होता है। कृत्रिम वस्त्र निर्माण से लेकर, रबर, पेण्ट्स, प्लास्टिक वस्तुयें, रसायनिक खादें, कीटाणुनाशक दवायें आदि वस्तुओं के निर्माण में खनिज तेल या इसके किसी न किसी अंश का सक्रिय योगदान है। ऊर्जा के विभिन्न स्रोत, कोयला व प्राकृतिक गैस के भण्डारों से कहीं अधिक भण्डार खनिज तेल के विश्व में पिछली शताब्दि तक मौजूद थे। खनिज तेल की विविधता ने ही इसके अतिशय उपयोग की ओर मानव को आकर्षित किया।

आज के ऊर्जा संकट के दो कारण हैं। (1 ऊर्जा स्रोतों का अगली शताब्दी तक समाप्ति की ओर अग्रसर होना। (2) तेल के भण्डारों पर कुछ राष्ट्रों का प्रभुत्व होना।

पिछले पचास वर्षों से जिस संकट को वैज्ञानिक अनुभव करते आ रहे थे उसे अचानक बल प्रदान किया, तेल उत्पादक देशों की राजनीति ने, तेल को केवल अपने स्वार्थ के लिए उपयोग में लाने का परिणाम यह हुआ कि जहाँ पश्चिमी देशों में जीवन का चक्का जाम हो गया वहाँ विकासशील या दूसरी दुनिया के देशों में इसे महान आर्थिक संकट का सूचक समझते हुए भविष्य में असहायता की स्थिति को स्वीकार करने के लिए झुकते देखा देखा गया। तेल उत्पादक देशों की यह राजनीति कब समाप्त हो और किस तरह समाप्त हो यह विषय के प्रसंगानुकूल नहीं जान पड़ता। वैज्ञानिक दृष्टि कोण को ध्यान में रखते हुए विश्व के इस ऊर्जा संकट और खास तौर से भारत के ऊर्जा संकट को तिलांजलि देने के प्रयासों की ओर हमें ध्यान देना चाहिए।

कोयले, तेल व प्राकृतिक गैस के अतिरिक्त अब तक वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित विकल्पों को सुझाया है।

(1) वायु व सूर्य से ऊर्जा
(2) भू-ताप ऊर्जा
(3) जल ऊर्जा या पन बिजली
(4) परमाणु ऊर्जा या नाभिकीय ऊर्जा
(5) समुद्र के जल से ऊर्जा
(6) मैगनेटो हाइड्रो डायनमिक्स
(7) गोबर व अन्य पदार्थों से ऊर्जा
(8) ताप ऊर्जा

उपरोक्त विकल्पों की सम्भावनाओं पर हम निम्न भाग में विचार करेंगे।

नाभिकीय ऊर्जा—जब महान वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने द्रव्य-ऊर्जा संरक्षण का सिद्धान्त प्रस्तुत किया उस समय ऊर्जा के एक अनन्त आयाम की सम्भावनायें नजर आईं। द्रव्यमान ऊर्जा संरक्षण के सिद्धान्त के अनुसार ($E = M c^2$) 1 ग्राम कोयले के ऊर्जा में परिवर्तित होने पर 9×10^{20} अर्ग ऊर्जा उत्पन्न होगी। अब समस्या पदार्थ को ऊर्जा में परिवर्तित करने की है। इसके लिए कुछ निश्चित पदार्थों के नाभिक को कुछ तीव्र गामी कणों की सहायता से

विखण्डित किया जाता है। विखण्डन के फलस्वरूप दूसरे नाभिक का निर्माण होता है। पहले नाभिक और इस नाभिक की संहति में जो अन्तर होता है वह ऊर्जा के रूप में प्रकट होता है। यूरेनियम (235), प्लूटोनियम, थोरियम वे नाभिक हैं जो एक निश्चित ऊर्जा वाले न्यूट्रान से विखण्डित होकर विशाल ऊर्जा उत्पन्न करते हैं।

संहति अंतर = 0·2155 a. m. u.

$= 0{\cdot}2155 \times 1{\cdot}6598 \times ^{20-42}$ ग्राम

$\therefore E = (0{\cdot}2155 \times 1{\cdot}6598 \times 10^{-24}) \times (3 \times 10^{10})^2$

$= 3{\cdot}219 \times 10^{-4}$ अर्ग

माना एक नमूने में 235 ग्राम यूरेनियम लिया गया। इस 235 ग्राम यूरेनियम में 6×10^{23} यूरेनियम के परमाणु होंगे। अतः केवल 235 ग्राम यूरेनियम से मिलने वाली ऊर्जा

$3{\cdot}21 \times 10^{-4} \times 6 \times 10^{23}$

$= 19{\cdot}26 \times 10^{19}$ अर्ग होगी।

यूरेनियम के एक नाभिक के विखण्डन के पश्चात जो 15 अतिरिक्त न्यूट्रान निकलते हैं वे अन्य नाभिकों से टकरा कर पुनः ऊर्जा उत्पन्न करते हैं। इस शृंखला अभिक्रिया में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि यूरेनियम की मात्रा इतनी कम न हो कि न्यूट्रान बिना टक्कर के बाहर निकल जायें। यूरेनियम की उचित मात्रा को 'क्रांतिक संहति' कहते हैं। अनियंत्रित शृंखला अभिक्रिया परमाणु बम में प्रयुक्त होती है परन्तु नियंत्रित शृंखला अभिक्रिया परमाणु रियेक्टर का मुख्य अंग है। एक परमाणु रियेक्टर के निम्न भाग होते हैं।

(1) सक्रिय भाग – यहाँ U (235), Pu आदि को इंधन के रूप में प्रयोग करते हैं।

(2) मंदक—इसका कार्य तीव्र न्यूट्रान की गति मन्द करना है। भारी पानी, ग्रेफाइट व BeO_2 को मंदक के रूप में प्रयोग करते हैं।

(3) शोषक—Cd की छड़ों को न्यूट्रानों को जब्त करने के लिए प्रयोग करते हैं।

(4) शीतलक—विखण्डन की क्रिया में जो ऊष्मा उत्पन्न होती है, शीतलक का कार्य शीघ्रता से उसे शोषित करना है। वायु, पानी तथा हीलियम रियेक्टर में एक नली में इस प्रकार प्रवाहित होते हैं कि रियेक्टर के सभी भागों में ताप समान रहें। परमाणु रियेक्टर से विद्युत उत्पादन के लिए इसी ऊष्मा का उपयोग पानी को गर्म कर भाप बनाने में करते हैं। इस भाप से टरबाइन चलाये जाते हैं जिनसे विद्युत उत्पन्न होती है।

सौर ऊर्जा—सूर्य में होने वाली ताप न्यूक्लीय अभिक्रियायें सूर्य की विशाल ऊर्जा का कारण है। सूर्य में होने वाली कुछ ऐसी क्रियायें नीचे दिखाई गई हैं।

$_1H^2 + {_1H^3} \rightarrow {_2He^4} + {_0n^1}$

17 Mev per fission

$_1H^2 + {_2He^3} \rightarrow {_2He^4} + {_1H^1}$

18·3 Mev per fission

सूर्य से पृथ्वी तक आने वाली ऊर्जा का अनुमान इसी बात से लगाया जा तकता है कि 'पूरे U. S. A. पर सूर्य की जो ऊर्जा एक दिन में पड़ती है उसका परिमाण U. S. A. के समस्त ऊर्जा उत्पादक साधनों की एक माह की आपूर्ति के बराबर है।' सूर्य ऊर्जा सबसे सुलभ होने के साथ-साथ सबसे अधिक शुद्ध भी है क्योंकि सूर्य के प्रकाश को उपयोग में लाने की प्रक्रिया

में कोई ऐसी नई वस्तु उत्पन्न नहीं होती जो वातावरण को दूषित करती हो यह सही है कि सौर ऊर्जा के व्यावहारिक उपयोग के सिलसिले में अनेक समस्यायें हैं; मगर यह सभी समस्यायें टेक्नालाजी की हैं, जिन्हें केवल अनुसन्धान व उपयोग से ही हल किया जा सकता है। सौर ऊर्जा को उपयोगी बनाने के सिलसिले में कई यूरोपीय देशों में कार्य हो रहा है परन्तु किंचित सफलता अमेरिका को मिली है। इस समय इस देश में कई छोटे कार्यों के लिए सौर ऊर्जा का उपयोग होता है। अंतरिक्ष में जाने वाले यानों में सोलर बैटरी का सफलतापूर्वक उपयोग हो रहा है। सूर्य की गर्मी को औद्योगिक व अन्य कार्यों के लिए व्यापक स्तर पर उपयोग करने की अथाह सम्भावनायें हैं। ऐसे सुदूर भविष्य की कल्पना की जा सकती है जिसमें पूरे के पूरे नगर सौर ऊर्जा द्वारा वातानुकूलित हो जायें। मगर बहुत दूर की न सोचते हुए भी भवनों को वातानुकूलित करने, पानी गरम करने, खारे पानी के शोधन और सामान्य घरों में खाना पकाने जैसे कार्यों के लिए सूर्य की ऊर्जा का उपयोग निकट भविष्य की सम्भावनायें हैं।

अमेरिकी वैज्ञानिक सूर्य ऊर्जा के सम्बन्ध में एक अन्य प्रयोग कर रहे हैं। उनका प्रयत्न सौर ऊर्जा (प्रकाश ऊर्जा) को सीधे विद्युत ऊर्जा में बदलना है। यद्यपि अभी तक आंशिक सफलता ही मिली है। उदाहरणार्थ यदि सिलिकन क्रिस्टल की एक पतली पर्त को रसायनिक अभिक्रियायें कराने के पश्चात यदि सूर्य प्रकाश में रखा जाय तो इसका 20% विद्युत में बदल जाता है।

सूर्य ऊर्जा का असीमित भण्डार है आवश्यकता है इस ऊर्जा के उपयोग की।

वायु से ऊर्जा—संसार में कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ वायु अत्यन्त तीव्र गति से प्रवाहित होती है। इस तीव्रता का उपयोग एक विशाल पंखे को चलाने में किया जा सकता है जिसकी सहायता से विद्युत उत्पन्न की जा सकती है। पूर्वी जर्मनी के एक ऐसे ही स्थान पर इस तरह से विद्युत ऊर्जा प्राप्त की जाती है। तटवर्ती क्षेत्रों व रेगिस्तानी क्षेत्रों के लिए वायु प्रकृति द्वारा प्रदत्त एक सुलभ स्रोत है। वायु से विद्युत उत्पादक यंत्र की रूप रेखा नीचे चित्र 1 में दी गई है।

विद्युत उत्पादन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि जब एक कुण्डली में बल रेखाओं में परिवर्तन होता है तो कुण्डली में विद्युत प्रवाहित होने लगती है।

जल ऊर्जा—जल से विद्युत प्राप्त करने का सिद्धांत ठीक वैसा ही है जैसा कि वायु से। पानी को काफी ऊँचे स्थान पर एकत्रित किया जाता है। इससे पानी की स्थितिज ऊर्जा बढ़ जाती है। इस पानी को तेजी से एक टरबाइन के पंखों पर गिराया जाता है इससे पंखे घूमने लगते हैं। इस गति से चुम्बकों को घुमाया
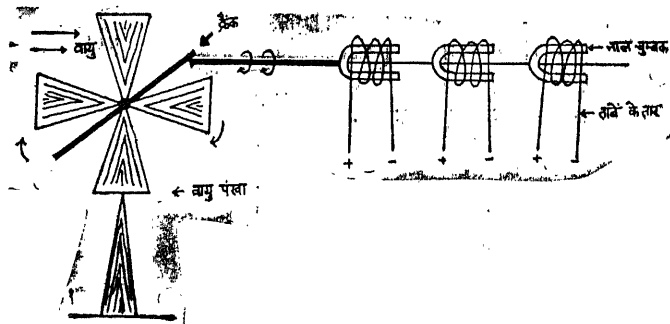
चित्र 1
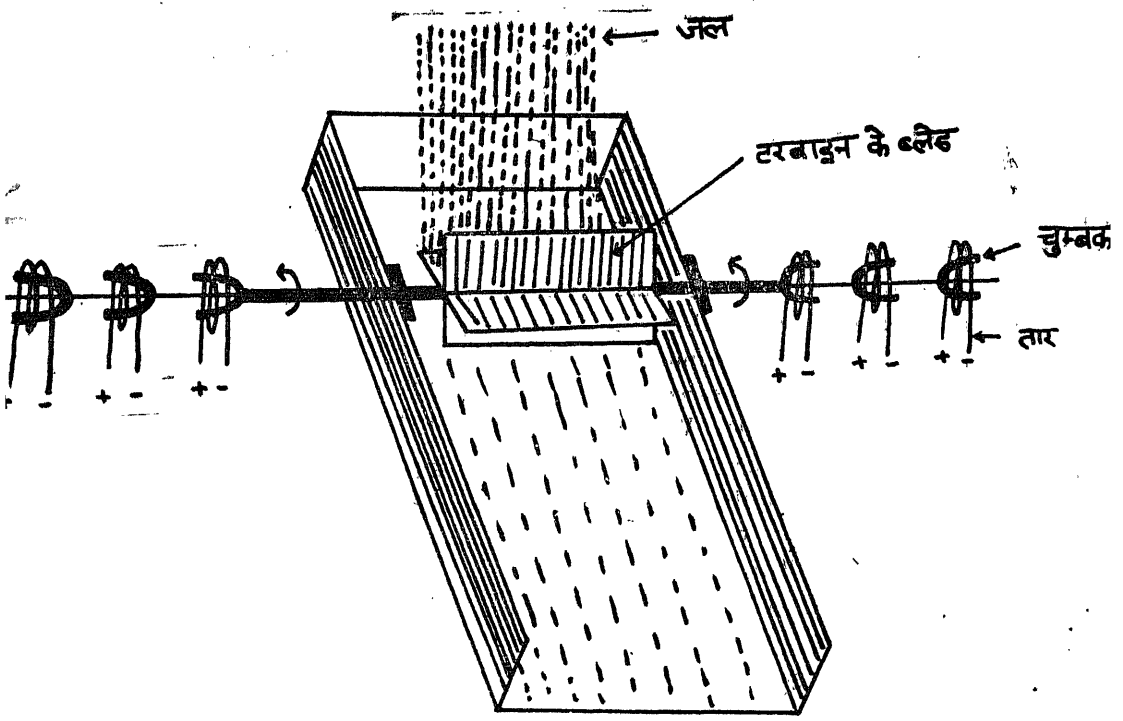
चित्र 2

जाता है जिससे विद्युत उत्पन्न की जाती है। एक प्रयोगात्मक विवरण चित्रांकित (चित्र 2) है।

दुर्भाग्यवश हर स्थल के जल का उपयोग विद्युत उत्पादन के लिए नहीं किया जा सकता है। केवल वे स्थान जहाँ जल ऊँचे स्थानों पर आसानी से एकत्रित हो सकता है, जल विद्युत पलाण्ट बनाने के लिए उपयोगी होते हैं। पहाड़ी स्थानों से होकर बहने वाली नदियों का जल इस कार्य के लिए विशेष उपयोगी है।

भूताप—एक वैज्ञानिक के शब्दों में ऊर्जा का एक बहुत विशाल स्रोत मनुष्य के कदमों के नीचे है। विश्व के विभिन्न भागों में गरम पानी के चश्मे पाये जाते हैं। कहीं-कहीं भूगर्भ से पानी फव्वारे की शक्ल में कई मीटर ऊपर उछलता है। वास्तव में पृथ्वी के अन्दर जहाँ कहीं भी पानी तप्त चट्टान के सम्पर्क में आता है वह वाष्प में परिवर्तित होता है। यह गरम पानी व वाष्प कहीं भी भूमि को कमजोर पाकर बाहर निकलने की कोशिश करता है मगर यह अवसर पानी को बहुत कम स्थानों पर मिलता है। इसलिए यह धारणा बन गई थी कि भूताप की यह प्रक्रिया विश्व के बहुत कम क्षेत्रों में होती है। मगर हाल में ही यह सिद्ध हो चुका है कि तथ्य इससे उल्टा है। 80% देशों में भूताप के उपयोग की सम्भावनायें हैं। अमेरिकी विशेषज्ञों का अनुमान है कि उस देश में भूताप से 13·2 करोड़ किलोवाट बिजली पैदा हो सकती है। एक अन्तर्राष्ट्रीय विचार गोष्ठी में विशेषज्ञों ने यह दावा किया कि भूताप से एक किलोवाट घंटा बिजली पैदा करने पर कोयले या पेट्रोल से उतनी ही मात्रा में बिजली पैदा करने की अपेक्षा 33% कम लागत आयेगी। परमाणु प्रक्रिया से प्राप्त ऊर्जा पर इससे कई गुना खर्चा आता है।

समुद्र जल से ऊर्जा—हाइड्रोजन के आइसोटोप ड्यूटीरियम सबसे अधिक मात्रा में समुद्र जल में मिलता है। विखण्डन के समानान्तर एक क्रिया है फ्यूजन, इसमें दो हल्के नाभिकों को मिला कर एक तीसरे नाभिक में परिवर्तित करते हैं। इस क्रिया में विखण्डन की क्रिया की अपेक्षा कई गुना ऊर्जा मुक्त होती है। सूर्य में ऐसी ही फ्यूज़न क्रियायें निरन्तर हो रही हैं। पृथ्वी पर वैज्ञानिकों ने इसी प्रकार की क्रिया को 'हाइड्रोजन बम' के विस्फोट में प्रयुक्त किया है। हाइड्रोजन बम में होने वाली फिशन

क्रियायें अनियंत्रित हैं। कुछ समय पूर्व तक यह माना जाता था कि नियंत्रित फ्यूजन क्रियायें असम्भव हैं। परन्तु इसी असम्भव को सम्भव बनाने में प्रयत्नशील है अमेरिका के वैज्ञानिक। भारत आये हुए अमेरिकी ऊर्जा वैज्ञानिकों की टीम के वरिष्ठतम सदस्य डा० जेरोम वेन्गार्ट ने वॉयस आफ अमेरिका (Voice of America) को एक इण्टरव्यू देते हुए कहा :

"At many national laboratories and univeriseties, scientists are hopefull that the attempt to duplieate the thermo nuclear processes that powers sun will be successful perhaps by the end of this decade. Within 10 yrs after that, the first large prototype fusion realtor will be built, early in the next century we can begin commercial deployment, and perpaps half way into that century, these reactors could provide a termendous source of energy for world."

फ्यूजन ऊर्जा की विशालता व समुद्र जल के उपयोग के बारे में आपने पुनः कहा :—

"...imagine sea water pumped through a two inch diameter pipe at about 40 pounds pressure per sq. inch. That's not tremendous pressure, it is less than that of a fire hydrant, for example. Now, if you could convert the deuterium in that sea water into electricity through the fusin process, than that two inch tube alone would provide the enfire energy needs of the United States."

संसार में थल की अपेक्षा जल की प्रधानता है। यदि अमेरिकन वैज्ञानिक अपने प्रयास में सफल होते हैं तो ऊर्जा के एक शक्तिशाली विकल्प से हम लाभान्वित हो सकेंगे।

चुम्बक द्रवगतिकी (Magneto Hydro Dhynamics)—ताप अथवा पनबिजली घरों में बिजली उत्पन्न करने के लिए उस सिद्धान्त का उपयोग किया जाता है जिसकी खोज 19वीं सदी में माइकेल फैराडे ने की थी, इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई विद्युत चालक चुम्बकीय क्षेत्र में गति करता है तब उसमें एक विद्युत वाहक बल उत्पन्न होता है।

चुम्बकीय क्षेत्र में विद्युत चालक को घुमाने से इलेक्ट्रोन तार कुण्डली के एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर अग्रसर होते हैं। तार में इलेक्ट्रोनों की गति से उसके सिरों पर विभवान्तर उत्पन्न हो जाता है। जनेरेटर इस विभवान्तर का उपयोग करके तार अथवा आर्मेचर की गतिज ऊर्जा को विद्युत में बदल देता है। ताप बिजली घर में तार की कुण्डली को घुमाने (चुम्बक स्थिर रख कर) या चुम्बक को घुमाने (तार कुण्डली स्थिर रख कर) का कार्य पानी की भाप से लिया जाता है और पनबिजली घर में गिरते पानी से।

अब यदि उपयुक्त व्यवस्था में घूमने वाले अंग, तार की कुंण्डली को निकाल दें तब क्या हम बिजली उत्पन्न कर सकते हैं ? इसका उत्तर है हाँ, यदि हम तार की कुण्डली के स्थान पर अन्य कोई विद्युत चालक पदार्थ ले लें। ऐसा एक आदर्श पदार्थ हो सकता है आयनीकृत
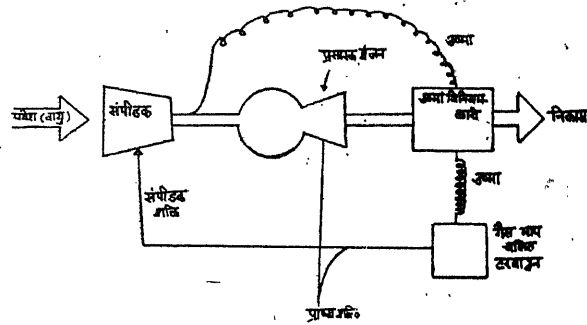
चित्र 3

गैस। अत्यन्त गतिवान आयनीकृत गैसें विद्युत का चालक होती हैं। ये प्लाज्मा अवस्था में होती हैं। प्लाज्मा का उपयोग करके विद्युत बनाने की विधि है M H D विधि। रूस में इस तरह का एक सयंत्र जिसे U—25 कहते हैं। 1971 में ही स्थापित हो गया था। इससे 2500 किलोवाट विद्युत उत्पन्न होती है। जापान, अमेरिका, पोलैंड व जर्मनी में भी इस विधि का उपयोग हो रहा है। इस प्रकार के जनरेटर की रूपरेखा संक्षेप में चित्र 3 में दिखाई गई है।

ताप ऊर्जा – ताप ऊर्जा में कोयले को जलाकर भाप उत्पन्न की जाती है। इस भाप की सहायता से टरबाइनों को चलाकर विद्युत प्राप्त की जाती है, उन देशो में जहाँ कोयला प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है इस विधि से विद्युत उत्पादन अत्यन्त व्यवहारिक सिद्ध हो सकता है। ताप ऊर्जा से विद्युत उत्पादन निम्न चरणों में होती है।

ईंधन की गुप्त उर्जा →ताप ऊर्जा→यांत्रिक ऊर्जा→विद्युत ऊर्जा

अमेरिका व U.S.S.R. में कुछ स्थानों पर पावर स्टेशन इस प्रकार बनाये गये हैं कि उनमें ताप ऊर्जा को बिना यांत्रिक ऊर्जा में बदले, विद्युत ऊर्जा में बदला जा सकता है। वास्तव में ताप ऊर्जा को विद्युत में बदलने का सिद्धान्त नया नहीं है। आज से कई वर्ष पूर्व 1826 में सीबेक नामक वैज्ञानिक ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया था कि ताप शक्ति का उपयोग करके विद्युत उत्पन्न हो सकती है।

ईंधन सेल—ईंधन सेल में रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप विद्युत उत्पन्न की जाती है। ईंधन सेल संचायक या असंचायक सेल से सर्वथा भिन्न होते हैं। इन सेलों में ईंधन तथा आक्सीजन का उपयोग अति आवश्यक है। अन्य सेलों की भाँति ईंधन सेल में भी इलेक्ट्रोड व इलेक्ट्रोलाइट होते हैं। ऐनोड पर ईंधन का आक्सीकरण होता है तथा कैथोड पर आक्सीजन का अपचयन। सर्वप्रथम ईंधन सेल सर विलियम ग्रोव ने सन् 1839 में बनाया था। 1950 के पश्चात इन विषयों के ज्ञान में बढ़ोत्तरी होने के साथ ईंधन सेल का महत्व बढ़ता गया। अंतरिक्ष युग के पदार्पण के बाद यह अंतरिक्ष यानों में विद्युत ऊर्जा उत्पादन हेतु प्रयुक्त किया जाने लगा। आदर्श ईंधन सेल की क्षमता 60 से 100% तक होती है।

गोबर व कचरे से ऊर्जा—गोबर व मलमूत्र में मुख्य रूप से 60-70% तक मीथेन तथा 40-50% तक कार्बन डाई आक्साइड (CO) गैस होती है। CO को मीथेन से आसानी से अलग किया जा सकता है। गैस मिश्रण को पानी से गुजारते हैं इस पानी में थोड़ा सा NaOH मिला रहता है। फलस्वरूप CO गैस पानी द्वारा सोख ली जाती है। बची हुई मीथेन को सिलिण्डरों में संपीडित करके ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

शहरों की जनसंख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है। जनसंख्या की वृद्धि से अनेक समस्यायें पैदा हो गई हैं। इनमें से एक है कचरे की समस्या। कलकत्ता और बम्बई जैसे शहरों में प्रतिदिन सैकड़ों टन कचरा निकलता है। आमतौर से शहरी कचरे में कार्बनिक पदार्थों की मात्रा काफी होती है इसलिए उसे ईंधन गैसों में बदलना आर्थिक और तकनीकी रूप से सुविधाजनक है। निम्न तीन विधियाँ अब तक उपलब्ध हैं।

ऊष्मा विघटन—कचरे को वायु की अनुपस्थिति में 550°—600° तक गर्म किया जाता है। इस कचरे की प्रकृति के अनुसार टार, चार, हल्के तेल, कार्बनिक एसिड, अल्कोहल तथा ईंधन गैसें प्राप्त होती हैं। ये सब आर्थिक रूप से अत्यन्त लाभदायक हैं।

हाइड्रोगैसीकरण—कचरे को उच्च ताप व दाब पर हाइड्रोजन गैस से उपचारित करते हैं। इससे मीथेन जो अत्यन्त ज्वलनशील होती है प्राप्त होती है।

वायुरहित संसाधन—गीले कचरे का उपयोग करने के लिए यह विधि अत्यन्त उपयोगी है। मूलरूप से यह गोबर से ईंधन गैस बनाने के समान है। अन्तर केवल इतना है कि इसमें गोबर के स्थान पर बारीक कटे हुए

[शेष पृष्ठ 22 पर

अक्रिय गैसों की सक्रियता

मधुबन गोपाल

अक्रिय गैसें आवर्त तालिका के शून्य समूह में ऋण विद्युती हैलोजनों व धन विद्युती क्षारीय तत्वों के बीच रखी गयी हैं। वायुमंडल में उपस्थित छः अक्रिय गैसों में, हीलियम की इलक्ट्रॉनी संरचना में बाहरी कक्षा में दो इलेक्ट्रॉन होते हैं। अन्य पाँच अक्रियाशील गैसों में बाह्यतम कक्षा आठ इलेक्ट्रॉनों से पूरी तरह भरी होती है। इसी इलेक्ट्रॉनी संरचना के कारण ये गैसें रासायनिक दृष्टि से क्रिया नहीं करतीं। इन सभी गैसों की इलेक्ट्रॉन बंधुता लगभग शून्य है तथा सभी अक्रिय गैसों का प्रथम आयनिक विभव अन्य तत्वों की तुलना में बहुत अधिक है। अतएव अक्रिय गैसें साधारण दशा में न तो इलेक्ट्रॉनों को लेती हैं और न देती ही हैं तथा बन्ध नहीं बनाती।

तत्व	चिह्न	इलेक्ट्रॉनी संरचना	प्रथम आयनिक विभव (इ० वो०)	क्वथनांक °C
हीलियम	He	$1S^2$	24.6	−268.9
नियोन	Ne	$[He]\ 2S^2\ sp^6$	21.6	−246.0
आर्गन	A	$[Ne]\ 3S^2\ 2p^6$	15.7	−185.9
क्रिप्टोन	Kr	$[A]\ 3d^{10}4S^2\ 4p^6$	14.0	−153.2
जीनौन	Xe	$[Kr]\ 4d^{10}5S^2\ 5p^6$	12.1	−108.1
रेडौन	Rn	$[Xe]\ 4f^{14}5d^{10}6S^2\ 6p^6$	10.8	− 62.0

ये गैसें एक परमाणुक होती हैं। निक्रिय गैसों के C_p और C_v का अनुपात 1.6 के बराबर होना इनका एक परमाणुक होना सिद्ध करता है। अक्रिय गैसों के परमाणुओं के मध्य केवल बहुत क्षीण वानडर वाल बल होता है, फलस्वरूप इनका क्वथनांक और गलनांक बहुत कम है।

इन अवांछनीय परिस्थितियों के होते हुए भी कुछ अवसरों पर यौगिकों के निर्माण की घोषणा की गयी है। साधारण रासायनिक क्रियाओं की तुलना में अक्रिय गैसों के यौगिक और उनको बनाने की अवस्था असाधारण है। अक्रिय गैसों के यौगिक निम्न विधियों द्वारा बनाये गये हैं।

1—परमाणुओं को उत्तेजित करके

अक्रिय गैसों को विद्युत विसर्जन या इलेक्ट्रॉन बमबारी द्वारा बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा दी जाती है। जिससे अयुग्मित इलेक्ट्रॉनों के बनने से उनमें क्रियाशीलता आ जाती है।

हीलियम [1S: ⇅] (साधारण) —— 460 कि.कै./ग्राम परमाणु ——→ [1S: ↑] [2S: ↑] (उत्तेजित)

विसर्जन नली में He_2^+, HeH^+ तथा HeH^{2+} की क्षणिक उपस्थिति पायी गयी है।

2—अन्तरांकाशी भेदन द्वारा

विसर्जन नली में धातु के विद्युत उत्तेजित गैस के परमाणुओं को एक विशिष्ट अनुपात में अवशोषित कर लेते हैं तथा अन्तराकाशी (इन्टरस्टीशिल) यौगिक Pt_3He, Fe He और FeA^1 में परिवर्तित हो जाते हैं। टंगस्टन तथा मरकरी के हीलाइडों ($WHe_2{}^2$, $HgHe_{10}$) का निर्माण भी हो चुका है।

3—संकीर्ण यौगिकों के निर्माण द्वारा

अक्रिय गैसों के परमाणु उचित ग्राही को इलेक्ट्रॉन युग्म दान भी कर सकते हैं। जब आर्गन और बोरन ट्राइफ्लोराइड का उष्मीय विश्लेषण किया गया तो जमाव विन्दु वक्र में कुछ शीर्ष मिले जो कि 1A : 1,2,3,6,8 तथा $16BF_3$ की उपस्थिति दर्शाते हैं।[3]

4—द्विध्रुव और प्रेरित द्विध्रुव के बीच आकर्षण द्वारा

अक्रिय गैस के परमाणुओं को अति शक्तिशाली द्विध्रुव से क्रिया कराकर ध्रुवित किया गया जिससे कि वे स्वयं एक क्षीण द्विध्रुव में परिवर्तित हो गये। पानी और फीनौल में शक्तिशाली द्विध्रुव संरचना होती है। Kr (फीनॉल)$_2$ Xe (फीनॉल)$_2$, Rn (फीनॉल)$_2$ में इस प्रकार का द्विध्रुव प्रेरित द्विध्रुव आकर्षण होता है।

5—पंजर यौगिक बनाकर

अक्रिय गैसों के परमाणुओं के दूसरे यौगिकों की क्रिस्टल लैटिस के रिक्त स्थानों में फँस जाने के कारण 'पंजर (क्लैथरेट) यौगिक' की रचना होती है। यदि क्विनोल (1,4 डाइहाइड्राक्सी बेन्जीन) को किसी भारी अक्रिय गैस की उपस्थिति में 10 से 40 वायुमंडलीय दाब लगाकर क्रिस्टलीकृत किया जाता है तो गैस के परमाणु β क्विनोल[4] की क्रिस्टल संरचना के बीच में उपस्थित रिक्त अवकाशों में कैद हो जाते हैं। इन अवकाशों (Cavity) का व्यास लगभग 4A° होता है। जब पंजर को घोला जाता है तो बीटा क्विनोल की संरचना, जो कि हाइड्रोजन बंधता के कारण होती है, टूट जाती है और अक्रिय गैस स्वतंत्र हो जाता है। A,Kr और Xe पंजर यौगिक बनाते हैं; जबकि He और Ne के पंजर यौगिक नहीं बताये जा सके क्योंकि बहुत छोटा आकार होने के कारण हीलियम और नियॉन के परमाणु इन बड़े आकार के कोटरों से सफलतापूर्वक मुक्त हो जाते हैं। इन यौगिकों की संरचना में क्विनोल और कैदी परमाणु के बीच 3 : 1 का अनुपात होता है। ये क्रियाओं मात्रात्मक नहीं हैं। क्योंकि सभी अवकाश नहीं भर पाते।

अक्रिय गैसों के हाइड्रेटों की रचना भी इसी प्रकार होती है। इसका सूत्र $6H_2O$: 1 गैस-परमाणु होता है, जो कि A, Kr और Xe के साथ पानी को जमाने से बनते हैं।

6—रासायनिक संयोग द्वारा

नील बार्टलेट[5] ने सर्वप्रथम सिद्ध किया कि अक्रिय गैसें पूर्णतया अक्रियाशील नहीं हैं। जून 1962 में उन्होंने देखा कि जीनॉन तथा प्लैटिनम हेक्सा फ्लोराइड गैसीय अवस्था में क्रिया करके पीला पाउडर 'जीनॉन हेक्सा फ्लोरो फ्लैटिनेट' $X^+PtF_6^-$ बनाते हैं। इस प्रयोग के बाद अनेक स्थायी ठोस यौगिकों XeF_2, XeF_4 और XeF_6 की घोषणा की गयी। बाईपिरैमिडल आकार वाले XeF_2 का निर्माण प्रकाश रासायनिक विधि द्वारा मरकरी वाष्प लैम्प की सहायता से जीनॉन और सर्वाधिक विद्युत ऋणीय तत्व फ्लोरीन की क्रिया से हुआ। जब जीनॉन और फ्लोरीन को 400°C पर साथ-साथ गरम किया गया अथवा उनमें विद्युत विसर्जन किया गया तो XeF_4 की रचना हुयी। 1 XeF_6 बनाने के लिये दोनों गैसों को अधिक दबाव पर गरम करना पड़ता है। XeF_4 पर कम ताप पर गामा विकिरण डालने से XeF मूलक निर्मित हुआ जिसकी उपस्थित क्रिस्टल लैटिस में मूलक बंधित करके सिद्ध की गयी। यह मूलक अनुचुम्बकीय है तथा क्रिस्टल का रंग नीला है। यदि यह क्रिस्टल XeF_4 तथा XeF_2 के वाष्प की उपस्थित में बनाया जाय तो एक प्रतिचुम्बकीय ठोस XeF_3 बन जाता है।

$$Xe + F_2 \longrightarrow XeF_2 \xrightarrow{F_2} XeF_4 \xrightarrow{F_2} XeF_6$$

XeF_8 के निर्माण की सत्यता संदिग्ध है।

ज़ीनॉन के आक्साइड और परज़ीनेट

ज़ीनॉन हेक्साफ्लोराइड XeF_6 पानी के साथ प्रबलता से क्रिया करता है, परन्तु वायुमंडलीय आद्रता के साथ धीमें जल अपघटन से अति विस्फोटक पिरैमिडल संरचना वाला ज़ीनॉन ट्राई आक्साइड XeO_3 प्राप्त होता है।

XeF_6 के क्षारीय जल-अपघटन से परज़ीनेट XeO_6^{-4} मिलता है। इस क्रिया में $Xe(+6)$, $Xe(+8)$ तथा ज़ीनॉन की निम्न आक्सीकरण अवस्थाओं में, विखंडित हो जाता है।

$$2XeF_6 + 4Na^+ + 16OH^- \rightarrow Na_4XeF_6 + Xe + O_2 + 12F + 8H_2O$$
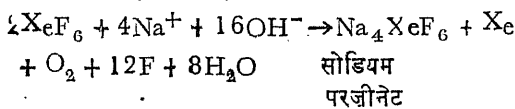
सोडियम परज़ीनेट

इसीसे मिलती-जुलती क्रिया XeO_3 से भी होती है।

$$2XeO_3 + 4NaOH + 6H_2O \rightarrow Xe + O_2 + Na_4XeO_6 \; 8H_2O$$
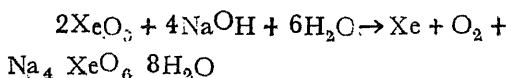
परज़ीनेट का प्रयोग सोडियम के भारात्मक विश्लेषण में किया जा सकता है। ज़ीनॉन टेट्रा आक्साइड XeO_4, बेरियम परज़ीनेट तथा सान्द्र गंधक के अम्ल की $-5°C$ पर क्रिया करा कर, प्राप्त होता है।

$$Ba_2XeO_6 + 2H_2SO_4 \rightarrow XeO_4 + 2BaSO_4 + 2H_2O$$
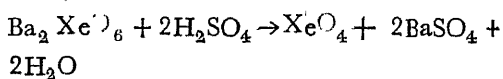
ज़ीनॉन आक्सीफ्लोराइड

ज़ीनॉन हेक्साफ्लोराइड के अपूर्ण जल-अपघटन पर ज़ीनॉन आक्सीटेट्रा फ्लोराइड $XeOF_4$ प्राप्त होता है।

$$XeF_6 + H_2O \rightarrow XeOF_4 + 2HF$$
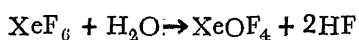
ज़ीनॉन टेट्रा फ्लोराइड के जल अपघटित पदार्थों के मास स्पेक्ट्रोग्राफिक अध्ययन से $XeOF_3$ तथा $XeOF_4$ आक्सीफ्लोराइड के बनने का पता किया गया है।

क्रिप्टन के यौगिक

KrF_2 और KrF_4 ज़ीनॉन के फ्लोराइडों से कम स्थायी हैं। क्रिप्टन के फ्लोराइड भी ज़ीनॉन की भाँति जल-अपघटित होते हैं। और Kr, O_2 तथा HF प्राप्त होता है। क्रिप्टन टेट्रा फ्लोराइड का जल अपघटन $-30°C$ पर करने से एक अम्ल $KrO_3(H_2O)$ मिलता है। KrF_4 का बेरियम डाइक्साइड से जल-अपघटन करने पर बेरियम क्रिप्टेट $BaKrO_4$ प्राप्त होता है।

रेडॉन के यौगिक

रेडान और फ्लोरीन को गर्म करने से भी फ्लोराइड मिलता है। रेडॉन फ्लोराइड का आकार एवं रचना स्थापित नहीं है क्योंकि रेडॉन के सबसे स्थायी समस्थानिक की अर्ध आयु 3.5 दिन है। इसका आणविक सूत्र RnF_4 प्रस्तावित किया गया है।

निर्देश

1. H. Damianovich and C. Christer, Rev, brasil. Chim, 6, 72 (1938).
2. E. H. Boomer, Nature, 115, 16 (1925).
3. H. S. Booth and K. S. Willson, J. Am. Chem. Soc., 75, 2273, 2280 (1935).
4. H. M. Powell and M. Gunter, Nature, 240 (1949). and J. Chem. Soc., 298, 300, 468 (1950).
5. N. Bartlett, Endeavour, 88, 3 (1964).

मधुबन गोपाल
शोध छात्र
रसायन विभाग
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

महान गणितज्ञ एवं खगोलशास्त्री

आर्यभट

संकलित

26 महीनों में बन कर तैयार होने वाला 370 कि. ग्राम वज़न का 5 करोड़ी उपग्रह जब रूसी कॉस्मोड्रोम से 19 अप्रैल को प्रक्षेपित किया गया तो भारतीय विज्ञान व टेक्नोलॉजी के इतिहास में एक नये अध्याय के जुड़ जाने के कारण प्रत्येक भारतीय को उस पर गर्व होना स्वाभाविक ही था। देश ही में नहीं अपितु विदेशों में भी भारतीय वैज्ञानिकों व इंजीनियरों की भूरि भूरि प्रशंसा की गई। प्रसन्नता की बात यह है कि इस महान अन्वेषण कार्य में लगे वैज्ञानिक युवा थे। भारत का भविष्य उज्जवल है इसका यह एक उत्तम दृष्टान्त है। इस ग्रह का नाम 'आर्यभट—1' रखा गया था। निसन्देह सबके सामने यह प्रश्न उठा और जिज्ञासा हुई कि आखिर इस प्रथम उपग्रह का यह नाम क्यों दिया गया। आपको ज्ञात हुआ कि यह नाम भारत के ही प्राचीन गणितज्ञ तथा खगोलशास्त्री आर्यभट के नाम पर पड़ा। आइये हम उस महान वैज्ञानिक के बारे में आप को बतायें जिसकी प्रखर बुद्धि के फलस्वरूप भारत का इस क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

प्रतिभावान एवं ज्ञानी खगोलशास्त्री आर्यभट का जन्म शक सम्वत 398 (476 ई०) में कुसुमपुर में हुआ था। जिन लोगों को भारत की ज्योतिष, गणित एवं अन्य शास्त्रों में उपलब्धियों का ज्ञान है उन्हें यह पता है कि आर्यभट ही पहले भारतीय गणितज्ञ एवं ज्योतिषविद् थे जिन्होंने यह प्रतिपादित किया था कि वस्तुतः पृथ्वी ही सूर्य के चारों ओर परिक्रमा करती है। आपको ध्यान होगा पहले के दर्शनशास्त्रियों का मत यह था कि सूरज स्वयं पृथ्वी का चक्कर लगाता रहता है। केवल यही न बता कर आर्यभट ने पृथ्वी, चन्द्रमा आदि विभिन्न खगोलीय पिण्डों के भ्रमण कक्षा आदि के सम्बन्ध में भौतिक स्थिर राशियों का परिपादन किया था।

गुप्त युग के इस प्रकाण्ड विद्वान आर्यभट ने केवल 23 वर्ष की अल्प आयु में अपना पहला ग्रन्थ 'आर्यभटीय' लिख डाला था। दूसरा ग्रन्थ 'तन्त्र' प्रौढ़ावस्था में लिखा गया। आर्यभटीय दो खण्ड में है पहला है दशगणिका सूत्र तथा दूसरा आर्याष्टशत है। प्रथम खण्ड में आर्यभट ने यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी गोल है और अपनी धुरी पर घूमती है। यह भी सिद्ध किया गया है कि ग्रहण लगने में राहु-केतु का कोई स्थान नहीं है बल्कि यह तो पृथ्वी तथा चन्द्रमा की छाया का परिणाम है। श्लोकों के रूप में आर्यभट ने ग्रहों की गति, नक्षत्रों की एक दूसरे से दूरी, सूर्य से उनकी दूरी, पृथ्वी का वातावरण, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष के वातावरण में भिन्नता एवं तारे टूटने का कारण आदि वर्णित है।

आर्यभट ने त्रिकोणमिति का आधार स्थिर करने का भी मौलिक कार्य किया। इसी प्रकार वृत की परिधि एवं व्यास के अनुपात का स्थिर मूल्य चार दशमलव तक आर्यभट ने ही पहली बार बताया। इससे किसी वृत्त की त्रिज्या के आधार पर उसकी परिधि त्रिज्या को दुगुना करके $\frac{22}{7}$ से गुणा करके जाना जा सकता है। गणित एवं अंकों में शून्य के व्यापक महत्व को आर्यभट ने विशद रूप में स्पष्ट किया।

आर्यभट ने व्यंजनों के लिए संख्या स्थिर कर उनके स्वरों के साथ संयोजन अर्थात, 12 खड़ियों के आधार पर बड़ी बड़ी संख्याओं को व्यक्त करने की पद्धति स्थिर की। उदाहरणार्थ, क = 1, ख = 2, ग = 3,

बं = 23, म = 25 के क्रम से तथा संयुक्त व्यंजनों को य = 30, र = 40, ष = 80, स = 90 तथा ह = 100 मानकर इन व्यंजनों के साथ विभिन्न स्वरों के संयोजन से वृहद् संख्यायें व्यक्त करना प्रारम्भ किया। उदाहरणार्थं क = 1, का = 10, कि = 100 आदि से लेकर दस खरब आदि के अतिरिक्त ख = 2, खि = 500, खु = 2000 आदि स्थिर कर स्वर व्यंजन एवं बारह खड़ियों के माध्यम से बड़ी से बड़ी संख्यायें सूत्र रूप में व्यक्त करने की पद्धति निकाली। इसी प्रकार संख्याओं का वर्ग एवं घनफल आसानी से जानने के सूत्र भी स्थिर किये। पहली बार इन्होंने ही बीज-गणित में समीकरण की पद्धति निकाली।

आर्यभट ने सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वी की उम्र क्रमशः 43,20,000, 5,77, 336 तथा 19058, 22,37,500 वर्ष आंकी है। सूर्य के बारे में उन्होंने बताया कि यह जल-जलकर टूटता है और फिर निर्मित होता रहता है इसलिए इसकी सही उम्र नहीं बताई जा सकती। 1 वर्ष 12 में महीने, 1 मास में 30 दिन, 1 दिन में 60 नाड़ी एक नाड़ी में 60 विनाड़ी भी उन्होंने बताया। 1 विनाड़ी में आज के 24 सेकण्ड और 1 नाड़ी में 24 मिनट होते हैं। उन्होंने बताया कि 1 विनाड़ी में मनुष्य 6 बार सांस लेता है। आर्यभट्ट के अनुसार 30 मनुष्य वर्ष पितृ वर्ष के बराबर होता है। 12 पितृ वर्ष 1 दिव्य वर्ष के और 1200 दिव्य वर्ष 1 युग के बराबर होता है।

आश्चर्य की बात है कि न्युटन से बहुत पहले आर्यभट ने हवा का दबाव व वेग का विस्तार से वर्णन किया था। हवा के दबाव से पत्तों के टूटने को समझा कर ही उन्होंने गुरुत्वाकर्षण वाली बात बताई कि पत्ता नीचे ही क्यों गिरता है। कोई भी चीज़ तभी नीचे गिरती है जब उसकी वेग शक्ति समाप्त हो जाती है। आर्यभट ने उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुव के बारे में भी चर्चा की है। सुमेरू पर्वत (उत्तरी ध्रुव) का आकार एक योजन है और वह जमी हुई बर्फ के कारण हीरे की तरह चमकता है, जबकि बड़वा मुख (दक्षिणी ध्रुव) सुमेरू के एकदम विपरीत स्थित है। उन्होंने यह भी कहा कि हवा के दबाव से नक्षत्र मण्डल और ग्रह पश्चिम की ओर निकलते और छिपते हैं।

उनका नाम आर्यभट है या आर्यभट्ट यह उन्हीं द्वारा लिखे श्लोक से स्पष्ट हो जाता है।

ब्रह्मकुशशिबुधभृ गुरविकुज गुरुकोण भगणान् नमस्कृत्य।
आर्यभटस्तिवह निगदति कुसुमपुरेभ्यर्चितं ज्ञानम्।

अर्थात, इनका सही नाम आर्यभट था। ऐसे महान खगोलशास्त्री व गणितज्ञ के नाम पर भारत के पहले उपग्रह का नाम देकर उस विद्वान की तथा भारत की प्रतिष्ठा बढ़ी है। आर्यभट की परम्परा को सम्पूर्ण गरिमा से आगे बढ़ाने में हम गर्व का अनुभव करते हैं।

संकलनकर्ता
डा० शिव प्रकाश

●●

कैंसर के उपचार में नाइट्रोजनी मस्टर्ड

डा० रामचन्द्र कपूर

नाइट्रोजनीय मस्टर्ड एक प्रकार के नाइट्रोजनमय कार्बनिक यौगिक हैं और कैंसर के उपचार में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इनमें मछली की सी गंध होती है तथा अश्रु उत्पन्न करने की क्षमता होती है। इनका नामांकन 'मस्टर्ड गैस' से ही किया गया है जिसके साथ इनकी संरचनात्मक साम्यता है। मस्टर्ड गैस—बीटा डाइक्लोरो डाइएथिल सल्फाइड—स्वयं एक बहुत ही विषैली गैस है और जर्मनी के द्वारा प्रथम महायुद्ध में शत्रुओं का नाश करने के लिये इस्तेमाल की गयी थी।

दो महत्वपूर्ण बीटा-क्लोरो एथिल अमीन जिनका कि समसूत्रणरोधी (एँटीमाइटोटिक) क्रियायों के लिये इस्तेमाल किया गया है—मेथिल बिस (बिटा क्लोरो एथिल) ऐमीन तथा ट्रिस (बीटा क्लोरो एथिल) ऐमीन हैं। मेथिल बिस (बीटा क्लोरो एथिल) ऐमीन, मेक्लोरोएथ ऐमीन हाइड्रोक्लोराइड के नाम से, ट्रिस (बीटा क्लोरो एथिल) ऐमीन की तुलना में दुर्दम्य लिम्फोमास, दीर्घकालिक रक्तश्वेताणु-मयता, ब्रोंकोजेनिक कारसीनोमा तथा कुछ मितस्थायी कारसीनोमा के उपचार में अधिक इस्तेमाल की गयी है। यह कुछ पशुओं के कैंसर जैसे कुत्तों में लिम्फोसारकोमा तथा मास्ट कोशिका सारकोमा, तथा मुर्गियों में ल्युकोसिस के उपचार में भी इस्तेमाल की गयी है।

मेक्लोरोएथ ऐमीन आक्साइड हाइड्रोक्लोराइड एक आक्सीकृत नाइट्रोजनीय मस्टर्ड-कारसीनोमा, सारकोमा तथा दुर्दम्य लिम्फोमास के उपचार में प्रयोग में लायी गयी है।

ट्राईएथिलीन मेलऐमीन या ट्रेट्राऐमीन, एक दूसरा नाइट्रोजन मस्टर्ड यौगिक है तथा दुर्दम्य लिम्फोमा, जीर्ण रक्तश्वेताणु-मयता तथा बहुलोहिताणु-रक्तता में उपयोगी है।

ट्राईएथिलीन फॉसफोरामाइड, एक अन्य नाइट्रोजनमय मस्टर्ड यौगिक है तथा दुर्दम्य लिम्फोमा, जीर्ण रक्तश्वेताणु-मयता, कारसीनोमा तथा दुर्दम्य मेलानोमा के इलाज में उपयोगी सिद्ध हुआ है। ट्राईएथिलीन थायोफॉसफोरामाइड, एक गंधक युक्त नाइट्रोजन मस्टर्ड यौगिक है तथा विभिन्न प्रकार के कारसीनोमा, दुर्दम्य लिम्फोमास, जीर्ण रक्तश्वेताणु-मयता तथा मेलानोमा के उपचार में इस्तेमाल की जाती है।

डा० राम चन्द्र कपूर
रसायन विभाग
क्राइस्ट चर्च कालेज
कानपुर—

एथिलीन : एक पादप हार्मोन

श्याम सुन्दर पुरोहित

एथिलीन एक गैसीय पादप हार्मोन है। वैज्ञानिकों को इसका ज्ञान आज से एक शताब्दी पूर्व ही वृद्धि-निरोधक गैस के रूप से हो चुका था। एथिलीन ओलीफिन श्रेणी की एक गैस है जिसकी विभिन्न सान्द्रताएँ पौधों के संरचना विकास को प्रभावित करती हैं। ऑसबर्न (1973) के अनुसार एथिलीन फलों के पक्वन (Ripening) को प्रेरित करती है अतः इसे पादप हार्मोन की श्रेणी में रखा जाना चाहिए तथा पक्वन हार्मोन के रूप में वर्णित करना चाहिए।

प्रकृति में यह गैस पौधों में निर्मित होती है। यह गैस स्वयं की वृद्धि को प्रभावित करने के बजाय समीपवर्ती अन्य पौधों व जन्तुओं की वृद्धि को प्रभावित करती है अतः इसी आधार पर इस गैस को कीट-फेरामोन (insect pheromone), जो कि एक वाष्पशील नियन्त्रणकारी उत्पाद है, से समानता दर्शाती है। इसीलिए एथिलीन को पादप-फेरामोन भी कहा जाता है। विगत कुछ ही वर्षों में एक एथिलीन युक्त रसायन को प्रयोगशाला में संश्लेषित किया गया है जिसे व्यावहारिक रूप से एथिफोन (Ethephone) कहते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से यह रसायन एथिलीन से सस्ता पड़ता है।

एथिलीन संभवतः सभी पादप अंगों, जैसे—पक्वन करते हुए फलों, कलिका, तरुण पत्तियों, आदि। कच्चे फलों में इसका संश्लेषण नहीं होता है लेकिन तरुण पत्तियों में यह अत्याधिक मात्रा में संश्लेषित होती है। पर्यावरण की सामान्य परिस्थितियों में पक्वन करते हुए फल 20 – 60 नेनो लीटर/ग्रा०/घन्टा तथा तरुण पत्तियाँ व कलिकाएँ 1 – 3 नेनो लीटर/ग्रा०/घन्टा की दर से एथिलीन का निर्माण करते हैं। पर्यावरण में अत्याधिक मात्रा में एथिलीन का निर्माण औद्योगीकृत-क्षेत्रों में होता है। पौधे एक वर्ष में केवल 20,000 मेट्रिक टन एथिलीन का निर्माण करते हैं। यह मात्रा कृत्रिम रूप से निर्मित होने वाली एथिलीन की तुलना में नगण्य है। गाँवों और औद्योगीकृत शहरों में एथिलीन की मात्रा का अनुपात 1:20 रहता है।

रासायनिक आधार पर एथिलीन को असंतृप्त हाइड्रोकार्बन में वर्गीकृत किया जाता है। इसकी संरचना का निर्माण दो कार्बन और चार हाइड्रोजन परमाणुओं के योग से होता है। यह ओलीफिन श्रेणी की प्रथम गैस है। इसकी संरचना तलीय होती है जिसका H C H कोण 120° का होता है। इसकी संरचना में उपस्थित द्वि-बन्ध ($=CH_2$) ही इसकी हार्मोनी क्रिया के लिए उत्तरदायी होते हैं।

एथिलीन के जैव-सक्रिय प्रभाव—

(1) एथिलीन पौधों की अनुप्रस्थ वृद्धि को प्रेरित करती है। पादप कोशिकाओं को एथिलीन से उपचारित करने पर उनकी लम्बवत भित्ति भी अनुपचारित कोशिकाओं की लम्बवत भित्ति से $2\frac{1}{2}$ गुणा अधिक मोटी हो जाती है। एथिलीन से उपचारित स्तंभ कोशिकाएँ अनुप्रस्थ तल की ओर वृद्धि करके 'फूलना' आरम्भ कर देती हैं।

(2) एथिलीन फल, फूल, और पत्तियों में विलगन को प्रेरित करती है। एथिलीन यह क्रिया संभवतः कोशिकाओं में ऑक्सिन (एक पादप हार्मोन) के सन्तुलन को नियन्त्रित कर दर्शाती है।

(3) एथिलीन प्रकन्द, घनकन्द, कलमों, बीजों आदि के अंकुरण को प्रेरित करती है। एथिलीन

यह प्रभाव बीजों या प्रकान्दों आदि में जल अपघटनीय एन्जाइम्स को संगृहीत भोज्य पदार्थों तक स्थानान्तरित कर के दर्शाता है।

(4) एथिलीन फलों का पक्वन हार्मोन है तथा पौधों के सभी अंगों (केवल कच्चे फलों के अतिरिक्त) में निर्मित होती है। अतः यही कारण है कि कच्चे फलों को वाह्यर्जात एथिलीन से उपचारित करके उन्हे पकाया जाता है। खेतों में उग रहे फलों को पकाने के लिए गैसीय-एथिलीन का प्रयोग करना व्यावसायिक दृष्टि से हानिकर होता है। अतः उन्हें एथिलीन युक्त रसायन-एथिफोन-द्वारा पकाया जाता है।

(5) कच्चे फलों को पौधों से तोड़ कर एथिलीन-युक्त पक्वन कक्षों में पकाया जाता है।

(6) एथिलीन पौधों के विभिन्न अंगों की वृद्धि व संरचना बिकास को भी नियन्त्रित करती है। एथिलीन यह प्रभाब कोशिका भित्ति में प्रोटीन व पर-ऑक्सीडेज़ एन्जाइम का संश्लेषण कर दर्शाती है।

(7) एथिलीन संभवतः आनुवंशिक-कोड के ट्रांसक्रिपशन एवं ट्रांसलेशन स्तर पर भी प्रभावी होती है जिसके फलस्वरुप प्रोटीन स्तर में वृद्धि होती है।

(8) एथिलीन पौधों में पुष्पन को भी प्रेरित करती है। पौधों की कुछ जातियों को एथिलीन से उपचारित करने पर वे शीघ्र ही पुष्पन आरम्भ कर देती हैं।

उपर्युक्त उपयोगी प्रभावों के अतिरिक्त एथिलीन पर्यावरण में वायु का प्रदूषण भी करता है।

वायुमंडल में एथिलीन की मात्रा को बढ़ाने वाला प्रमुख कारक ओटोमोबाइल उद्योग है। अमेरिकी वैज्ञानिकों से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार सन् 1966 में विभिन्न उद्योगों व मोटर गाड़ियों ने 120 लाख मैट्रिक टन तथा ज्वलन भट्टियों एवं साधारण लकड़ी के धूयें ने 10 लाख मेट्रिक टन एथिलीन का निर्माण किया। अतः यह संभव है व किसी सीमा तक सत्य भी है कि प्रकृति में स्वतः पकने वाले फल पर्यावरण में उपस्थित एथिलीन से ही पकते हैं।

श्याम सुन्दर पुरोहित
अध्यक्ष, वनस्पति विज्ञान विभाग,
राज० महाविद्यालय,
नाथ द्वारा (राज०)

● ●

मानव का अगला पड़ाव– मंगल ग्रह

यशवन्त कोठारी

सदियों से मानव रात्रि के गहन अन्धकार में आकाश में टिमटिमाते हुए सितारों में लाल रंग के ग्रह मंगल के प्रति जिज्ञासु रहा है। भारत के वेदों एवम् पुराणों में इस ग्रह का उल्लेख आता है। व्यासोक्त नवग्रह स्तोत्र में कहा है।

"धरणी गर्भ संभूतं विद्युत पुञ्ज समप्रभम्।
कुमारं शक्तिहस्तञ्च लोहितांग नमाम्यहम्।"

प्राचीन संस्कृत साहित्य में इसे भूमि से उत्पन्न, ऋणात्मक, भौम: आदि विभूषणों से विभूषित किया है।

युनानी लोग इसे युद्ध का देवता "मार्स" मानते थे। उनका अनुमान था कि यह देवता पृथ्वीवासियों पर क्रोधित है।

वैज्ञानिकों का यह अनुमान कि मंगल व पृथ्वी जुड़वा पैदा हुए थे प्राचीन भारतीथ साहित्य में भी उल्लेखित है। (ब्रह्म वैवर्त पुराणें; वामन पुराणें) बीसवीं सदी में जब कि मानव चन्द्रमा पर उतर चुका है और अब वह सौरमण्डल व ब्रह्माण्ड के अन्य नक्षत्रों पर उतरने की तैयारी कर रहा है मंगल ग्रह का महत्व और भी बढ़ जाता है। कालान्तर में चन्द्रमा के बाद सौरमण्डल व ब्रह्माण्ड के अन्य ग्रहों नक्षत्रों पर जाने के लिये मंगल ग्रह एक मजबूत सीढ़ी साबित होगा।

किये गये प्रयत्न—पिछली सदी में इटली के प्रसिद्ध ज्योतिषशास्त्री स्कियापरेली ने मंगल ग्रह का विशेष अध्ययन करके पता लगाया कि इस पर विशाल समुद्र है।

अमेरिका में साम-अण्टोनियों के पास एक बहुत बड़ी वैज्ञानिक प्रयोगशाला बनायी गयी है, जिसमें मंगल ग्रह के सम्भावित जीवन, तापमान, वायुमण्डल, मिट्टी, बादल, आँधियों आदि का विस्तृत अध्ययन कर वहाँ पर मानव के पहुँचने, जीवित रहने आदि विभिन्न पहलुओं पर प्रयोग किये जा रहे हैं।

इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कदम उठाया— अमेरिका के मेरिनर-4 ने। मंगल के महत्वपूर्ण चित्र भेजने का कार्य इस यान को दिया गया।

575 पौंड वजनी $22\frac{1}{2}$ फीट चौड़ा व $9\frac{1}{2}$ फीट ऊँचा यह विशाल यान पृथ्वी से अपनी यात्रा को रवाना हुआ। उसने कुल 21 फोटो भेजे जो कि काफी महत्वपूर्ण साबित हुए। 64-65 में किये इस अन्वेषण के बाद तो कई मेरिनर यान छोड़े गये। अन्तिम मेरिनर-9 यान 71-72 में छोड़ा गया, यह प्रयास अमेरिका का सबसे सफलतम प्रयास है क्योंकि इससे काफी रहस्यों पर से पर्दा उठा है।

मेरिनर-9 के साथ-साथ सोवियत रूस ने मार्स-2 व 3 उपग्रह भी छोड़े थे जिन्होंने काफी महत्वपूर्ण सूचनाएँ भेजी है।

पूर्व जानकारियाँ—मंगल ग्रह आकार में चाँद का दुगुना है। मंगल ग्रह सूर्य के चारों ओर एक चक्कर लगभग 650 (पृथ्वी के) दिनों में लगा पाता है। यह सूर्य के चारों ओर कुछ इस तरह से घूमता है

सूर्य से दूरी	—	141,700,000 मील
व्यास	—	4,268 मील
संहति	—	·108 (पृथ्वी = 1)
घनत्व		3·8 (पानी = 1)
वायुमण्डल—नाइट्रोजन	—	98%
आरगन	—	1·2%
कार्बन डाईआक्साइड	—	2%
,, की गहरायी	—	60 मील
तापमान—	+	62 — — 63°F
		—63°F — 153° F.

कि हर 15-16 वर्ष बाद यह पृथ्वी के निकट आ जाता है। 1971 में यह पृथ्वी के काफी नजदीक आ गया और इसी कारण मेरिनर-9 को छोड़ा गया।

तापमान—किसी ग्रह का तापमान ज्ञात करने का एक मात्र तरीका है वहाँ से आने वाले विकिरणों का मान ज्ञात करके तापमान ज्ञात करना। मंगल ग्रह के विकीरणों का 1924 व 1926 में सेथ वी० निकलसन व एडिसन पेटिट द्वारा अध्ययन किया गया। इनके अनुसार सूर्यास्त के समय तापमान—13°C होता है। जिराडं पी० क्यूपर के अनुसार मध्य रात्रि का तापमान 100°C है।

1954 में किये गये कुछ प्रयोगों से पता चलता है कि मध्य रेखा पर तापमान 25°C है तथा सूर्यास्त का तापमान-50°C है।

वायुमण्डल—1924 में राईट व स्लिफर बन्धुओं द्वारा विभिन्न रंगों की किरणों से किये गये परीक्षणों से पता चला कि मंगल ग्रह का तल विभिन्न ऋतुओं के अनुसार बदलता रहता है और वहां पर वनस्पतियों का होना आश्चर्यजनक नहीं है।

मंगल ग्रह पर पाये जाने वाले काले धब्बों के विषय में चर्चा करते हुए फ्रेंक सेलिसबरी ने कहा है कि मंगल पर जीवन के आसार कम ही है।

1954-56 में क्यूपर ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की ये धब्बे शायद लावा के कारण है।

मंगल ग्रह का सूर्य की तरफ झुकाव बढ़ने से हर 50,000 वर्ष बाद वहाँ पर काफी परिवर्तन होते ही भयंकर आंधियाँ तथा तूफान, वहाँ पर चलते हैं।

मेरिनर-9 के द्वारा भेजे गये चित्रों के अध्ययन से पता चला है कि मंगल ग्रह कुछ समय पूर्व तक न केवल 'जीवित' था वरन् अभी भी वहाँ की सतह पर काफी परिवर्तन हो रहे होगें।

केलिफोर्निया तकनीकी संस्थान के डा० ब्राउस मुर्रे ने कहा कि 'मंगल की सतह तथा अन्दर अभी भी काफी भू-गर्भ शास्त्रीय परिवर्तन हो रहे हैं।

इस ग्रह के दोनों ध्रुवों पर टोपियाँ बनी हुई हैं। और उन पर बर्फ जमी हुई है। अभी तक के परीक्षणों से यह सम्भव नहीं हो पाया हैं कि यह बर्फ ठोस कारबन डाई आक्साइड हैं या पानी!

अभी तक वहाँ के वायुमण्डल में न तो पानी और न ही आक्सीजन के मिलने की कोई सूचना है।

वायुमण्डल में ओजोन के अभाव के कारण वहाँ की सतह का अति बैंगनी किरणों और इन्फारेड विकीरणों से भी बचाव सम्भव नहीं है।

नहरें—पिछली दो शताब्दियों से ही खगोलशास्त्रियों का यह विश्वास रहा है कि मंगल ग्रह के तल पर कई नहरें हैं। अर्वाचीन अनुसंधानों से यह पता चला है कि ये नहरें तभी दिखाई देती हैं जब मंगल ग्रह का वायुमण्डल साफ हो। यह भी पता चला है कि ये नहरें सूखी हैं।

जीवन—पृथ्वी के अलावा अन्य ग्रहों पर जीवन सम्भव है या नहीं और अगर है तो किस प्रकार का, इस बात के बारे में हम सदैव जिज्ञासु रहे हैं। पृथ्वी तथा मंगल ग्रह की तुलना करने पर सारे सौर मंडल में यही एक ऐसा ग्रह लगता है जिसमें कि जीवन की सम्भावना है। इसी प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिये अमेरिका के स्ट्रगहोल्ड नगर में एक प्रयोगशाला स्थापित की गयी है। इसमें उन सभी परिस्थितियों को उत्पन्न किया जा रहा है जिनकी मंगल ग्रह पर पाये जाने की सम्भावना है। यह साबित हो चुका है कि कुछ विशेष प्रकार के पौधे एवम् जीव-जन्तु इन परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं।

वनस्पति—तापमान के उतार-चढ़ाव, आक्सीजन की कमी तथा पानी की कमी होते हुए भी वैज्ञानिक के अनुसार मंगल पर वनस्पति होनी चाहिए। जी० ए० टिखोफ के द्वारा पूर्व रूस के आर्कटिक गोले पर किये गये अन्वेषणों से इस बात की पुष्टि होती है। क्योंकि इस जगह की परिस्थितियाँ मंगल ग्रह की परिस्थितियों से मिलती-जुलती हैं। टिखोफ ने यह भी पता लगाया कि अत्याधिक सर्दी में रहने वाले पौधे ज्यादा प्रकाश का प्रत्यावर्तन नहीं कर पाते क्योंकि यह ऊर्जा वे अपनी सर्दी दूर करने में प्रयोग कर लेते हैं।

स्कर्वी घास —45°C तक भी जीवित रहती है। और इसी कारण मंगल ग्रह पर भी वनस्पति कम ताप पर रह सकती है। ऐसे कुछ पौधे जिनकी पाये जाने की

सम्भावना है, वे हैं, नीले वार्मवुड, नीले ओक्सीट्रोप आदि।

प्राणी जीवन—वनस्पतियों की तुलना में जीव-जन्तुओं का मंगल ग्रह पर मिलने की सम्भावना कम है, और केवल वे ही जीवाणु जिन्हें आक्सीजन की बहुत कम मात्रा की आवश्यकता है वहाँ पर रह सकते हैं।

अमेरिका में किये गये अनुसंधानों से पता चलता है कि कुछ जीवाणु मंगल ग्रह के वातावरण में रह सकते हैं। रूसी वैज्ञानिक सिनबारस्की के अनुसार आक्सीजन के अभाव में एक विशेष प्रकार के जीवाणु रह सकते हैं।

उपग्रह—पृथ्वी के एक चन्द्रमा की तुलना में मंगल ग्रह के पास दो चन्द्रमा हैं। 11 अगस्त 1877 को आसेफ हाल ने मंगल ग्रह के इन दो उपग्रहों की खोज की और उसने इनका नाम फोबॉस व दीमॉस रखा। फोबॉस पश्चिम में उदय होकर पूर्व में अस्त होता है।

मेरिनर 9 के द्वारा भेजे गये चित्रों से इन उपग्रहों के बारे में काफी जानकारी मिली है। फोबॉस एक अण्डाकार उपग्रह है।

अन्दर वाले फोबॉस का व्यास 16 कि०मी० व दीमॉस का व्यास 85 की०मी० है।

ब्रेड फोर्ड स्मिथ के अनुसार दीमॉस की सतह कोई छाया सी है जो कि किसी पहाड़ी या ऊँची जगह के कारण है जहाँ पर विभिन्न रासायनिक पदार्थ होने की सम्भावना है।

क्या मानव वहाँ पर रह सकता है? जी हाँ, मामूली सी तैयारी के बाद शायद मानव वहाँ पर रह सकेगा। वायुमण्डलीय दबाव में विशेष अन्तर नहीं होने के कारण एक हल्का दबाव सूट पहनने से काम चल जायगा। लेकिन मानव वहाँ पर वह सभी नहीं कर सकेगा जो कि आक्सीजन की सहायता से यहाँ पर कर लेता है जैसे — सिगरेट पीना।

मानव को मंगल रेगिस्तान जैसा लगेगा, भूरी भूमि और ऊपर नीला आकाश, शायद कहीं-कहीं पहाड़ दिखाई दे। वहाँ पर हर वक्त भयंकर तूफान चलते हुए दिखाई देंगे।

विभिन्न कारणों से चन्द्रमा के बाद मंगल ग्रह हमारे लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है और यह हमारा पहला विश्रामस्थल होगा। जिसकी मदद से हम सौरमण्डल के अन्य ग्रहों पर जा सकें। 1975 में विकिंग नामक कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ विशेष उपकरणादि मंगल ग्रह पर उतारने की योजना 'नासा' ने बनाई है जिससे मंगल ग्रह के रहस्यों पर से पर्दा उठे।

नासा ने एक अन्य योजना के अन्तर्गत मानव को 1981-83 तक मंगल पर उतारने की घोषणा की है और अनुमानित तारीख भी बता दी है।

9 अगस्त सन् 1982 शायद वह दिन होगा जब मानव किसी अन्य ग्रह पर अपने कदम रखेगा।

यशवंत कोठारी
25/133, मधुबन
उदयपुर (राज०)

● ●

सर्पगन्धा का रासायनिक परिचय

सर्पगंधा रायोसाइनेसी कुल का सदस्य है। इसका वानस्पतिक नाम **रॉवुल्फ़िया** (Rauwalfia Linn) है। इसकी लगभग 50 जातियाँ दोनों गोलार्द्धों के ऊष्ण और अर्ध-ऊष्ण प्रदेशों में व्यापक रूप से तथा भारत में केवल 7 जातियां पायी जाती हैं। **रॉवुल्फ़िया** की सबसे महत्वपूर्ण जाति **रॉवुल्फ़िया सर्पेन्टाइना** अर्थात सर्पगन्धा है। सर्पगन्धा को चन्द्रिका, नाकुली (संस्कृत में), धवल बरुवा, धनमरवा (हिन्दी में) अडकई, हरकाई (मराठी में), सेत बड़वा (हरिद्वार में) के नाम से भी जाना जाता है।

आज के युग में सर्पगन्धा विभिन्न भेषजीय कार्यों में प्रयोग होने लगा है। यह हृदय, श्वसन और चेताओं पर सामान्य अवसादक का कार्य करता है। यह श्वसन को पैरालाइज़, चेताओं को अवसन्न तथा हृदय को उद्दीप्त करता है। इसे उन्माद, रक्त दबाव और वहम की दवा के रूप में भी प्रयोग में लिया जाता है। इसका प्रयोग सिर दर्द दूर करने शरीर में गर्मी बनाये रखने, रात में आराम से सोने आदि में भी किया जाता है।

सिद्दीकी और सिद्दीकी (1930) के अनुसार सर्पगन्धा की सूखी जड़ में पाँच प्रकार के स्फटिकमय क्षाराभ पाये जाते हैं। इसे उन्होंने दो प्रमुख समूहों में वर्गीकृत कर क्रमश: अजमलीन समूह तथा सर्पेण्टाइन समूह के नाम से वर्णित किया। इनका आगे वर्गीकरण निम्न प्रकार से है :—
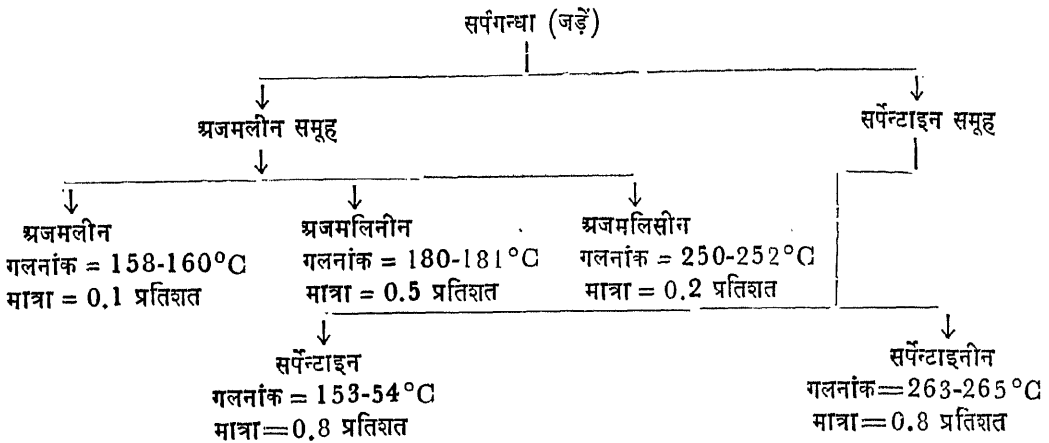
उपर्युक्त वर्णित पाँच क्षाराभों के अलावा अजमलीन तथा सर्पेन्टाइन में कुछ और क्षाराभ उपस्थित रहते हैं ये निम्नलिखित हैं—

रॉवुल्फ़िनीन (Rauwolfinine), रिसर्पीन (resespine), रॉपीन (raupine), आइसोरॉहिम्बीन (Isorauhimbine), सर्पाजीन (Sarpagine), रिसर्पिनीन (reserpinine), योहिम्बीन (Yohimbine), थीबेन (thebaine), पैपेवेरीन (Papaverine) और साइरोसिगोपाइन। शर्मा व उसके साथियों (1954) ने रॉपीन और सर्पागाइन को एक दूसरे के समान बताया।

उपर्युक्त वर्णित क्षाराभों में रिसर्पाइन (सर्पासिल Serpasil) का भेषजीय क्षेत्र में अत्याधिक उपयोग होता है। पौधे में उपस्थित विभिन्न रसायनों की मात्रा उसके आयु व भाग के प्रकार पर निर्भर करती है। प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया है कि सर्पगन्धा की जड़ के काष्ठमय भाग की अपेक्षा उसके छाल में 7-18 गुणा अधिक क्षाराभ उपस्थित रहते हैं।

उपर्युक्त रसायनों के अतिरिक्त सर्पगन्धा की जड़ों में तैलोद्यास, सान्द्रथ, ऊननुविद्ध सुषव, ऑलिक अम्ल, फ्यूमेरिक अम्ल, ग्लूकोस, सुक्रोस, ऑक्सीमिथाइल लैन्थ्रे क्विनोन, रेसीन भाग, आदि भी पाये जाते हैं। जड़ की राख में पोटोशियम कार्बोनेट, फ़ास्फ़ेट तथा सिलीकेट्स आदि भी पाये जाते हैं। कभी-कभी राख में लोहा व मैंगनीज भी पाये जाते हैं।

श्याम सुन्दर पुरोहित

● ●

[पृष्ठ 9 का शेषांश]

कचरे को बन्द कुंडों में मीथेन उत्पन्न करने वाले बैक्टीरिया की उपस्थिति में सड़ाया जाता है।

उपसंहार—तेल उत्पादक देशों की परिवर्तित राजनीति से लगता था कि ऊर्जा संकट मानव सभ्यता को पंगु बना देगा। यद्यपि संकट अभी टला नहीं है तथापि उससे बहुत बड़े खतरे की सम्भावना नहीं है। ऊर्जा के तमाम वैकल्पिक स्रोत हमारे पास हैं। आवश्यकता है उनके वैज्ञानिक उपयोग की निश्चय ही इस सब में काफी समय लगेगा; परन्तु एक बार प्रकाश में आने पर ये स्रोत काफी लम्बे समय तक ऊर्जा की समस्या से मुक्ति दिला सकते हैं। हम सभी को आशा करनी चाहिए कि वह विज्ञान जिसने आज मानव सभ्यता को चरम उत्कर्ष प्रदान किया है, इस महान संकट से मुक्ति भी प्रदान करेगा।

सावित्री देवी श्रीवास्तव
एम० एस-सी० (फाइनल)
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

● ●

विज्ञान वार्ता

वस्त्रों की रंगाई के लिए नये प्रकार की मशीन

अमेरिका की एक इंजिनियरिंग कम्पनी ने एक पूर्णतया नये प्रकार की बीम ड्राइंग मशीन विकसित की है, जिसकी सहायता से वस्त्रों की अन्तिम रूप में रंगाई करने वाले लोग बुनाई या कढ़ाई वाले वस्त्रों को शीघ्रता के साथ, कई चार और उत्कृष्ट रूप में रंग सकते हैं।

यह नयी मशीन पूरी तरह यंत्रचालित है। यह रंगाई करने वाले व्यक्ति के कार्यालय में लगे कंसोल द्वारा नियंत्रित होती है। इसके सभी कण्ट्रोल वाल्ब अपने आप यांत्रिक विधि द्वारा नियन्त्रित होते हैं। वे मशीन चालक के पैनेल पर स्थित केन्द्र से स्विचों द्वारा चालू हो सकते हैं। इसके ढांचे में सेफ्टी इण्टलांकों के कारण इसे चलाने में कोई खतरा उत्पन्न नहीं होने पाता।

इसका निर्माण करने वाली फर्म का दावा है कि यह प्रणाली कई दृष्टियों से उपयोगी है। इसका प्रयोग करने से रंगाई की प्रक्रिया पर नियमित नियन्त्रण लागू रहता है। इसके पम्प के सक्शन वाले भाग में रंग और रसायन भरे जाते हैं। इस मशीन को 20 सेकण्ड में ही खाली किया जा सकता है।

कम्पनी का कहना है कि संगणक नियन्त्रण प्रणाली और आटोमैटिक बैच प्रोग्रेमर से संयुक्त कर देने पर यह रंगाई की किसी भी विधि को किसी भी मात्रा तक नियन्त्रित कर सकती है।

संवाही रोगन प्रयुक्त करने के लिए स्वचालित डिपिंग मशीन

कैलिफोर्निया की एक फर्म विद्युदाणविक चिप कंपैसिटेटर और चिप रैजिस्टर को रोगन में निमज्जित करने के लिए एक स्वत: चालित मशीन का निर्यात कर रही है। यह निर्यात जापान को हो रहा है। इस मशीन का नाम 'माडेल सी डी 201 ए' है और यह प्रति घण्टे 2 हजार 4 हजार से तक की संख्या में विद्युदाणविक छिलकों या चिपों को रोगन में निमज्जित करती है।

अमेरिकी फर्म के अनुसार, इसका प्रयोग करने में अन्य विधियों की अपेक्षा जहां श्रम सम्बन्धी लागत कम हो जाती है, वहीं सिलवर या रोगन की पुताई अधिक समान रूप में होती है। यह अनेक आकारों के चिपो पर सिलवर की पुताई करने में समर्थ है। इसकी डिजाइन बहुत सरल और विश्वसनीय है। इसका रखरखाव भी आसान है।

यह मशीन किसी भी अकेले चिप के दोनों छोरी पर सिलवर या रोगन लगा देती है। यह बिना रोगन वाली चिपों को अपने-आप एक 65-स्टेशन वाले चक्र पर चढ़ा देती है। इस चक्र की परिधि में दो डिप स्टेशन और दो फनेल ओवेन होते हैं। जब चक्र घूमता है, तब चिप एक सिरे पर रोगन में निमज्जित होती, सूखती, उलटती, दूसरे सिरे पर निमज्जित होती, सूखती, और अंत में चक्र पर से उतर जाती है। इसके द्वारा चिपों पर दुहरा रोगन भी चढ़ाया जा सकता है।

यह उपकरण ब्यूटाइल, एसेटेट और टोलुएन जैसे किसी भी व्यापारिक घोल के लिए उपयुक्त होता है।

यह मशीन 5 फुट लम्बी और 3 फुट चौड़ी इस्पात की मेज पर स्थापित होती है। इसके सभी कण्ट्रोल और स्विच उपयुक्त स्थान पर लगे हैं। इसका निर्यात लोस एंजेलस, कैलिफोर्निया, की फर्म, डेवल इण्डस्ट्रीज, इन्क०, कर रही है।

फार्मों पर प्रयुक्त करने के लिए एक विशेष प्रकार की कुदाली

अमेरिका से आजकल निकट पूर्व के देशों और पुर्तगाल को एक नये फार्म उपकरण का निर्यात हो रहा है, जिसका नाम 'ग्रिजल बैकहो' है। इसका उपयोग निर्माण कार्यों में भी हो सकता है। इसके खुदाई करने

वाले हत्थों और उपकरणों को किसी भी ट्रैक्टर में जोड़ा जा सकता है।

'बैकहो' का प्रयोग खेती, फलोत्पादन, खाई की खुदाई, तथा सिंचाई के कामों में हो सकता है। इसकी धुरी सीट के आगे होती है, जिससे ड्राइवर खुदाई के धक्के से आगे या पीछे नहीं सरक सकता। इससे उसे थकावट नहीं होती। इसमें हाइड्रालिक सिलिण्डर भी लगे हैं। यह 10 फुट की दूरी पर 5 फुट से अधिक गहरी खुदाई कर सकता है। यह 5300 पौण्ड की शक्ति से खुदाई करता है।

इसका निर्माण जैक्सनविल, इलिनौय, की कम्पनी ग्रिजली कार्पोरेशन ने किया है।

आम का झुलसा रोग की रोकथाम

बहुत से आम उगाने वालों को आम के पेड़ों में बुरी तरह झुलसा रोग लगने से कम पैदावार मिलती है। ऐसा पेड़ों में पोषक तत्वों की कमी से होता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नयी दिल्ली के बागवानी तथा फल टेकनालॉजी डिवीजन में किये गये परीक्षणों के अनुसार पत्तियों के तन्तुओं में क्लोराइड लोहा जमा होने से यह रोग लगता है।

पहले पत्ती का केवल सिरा ही रोग ग्रसित होता है। जैसे-जैसे पत्ती की उम्र बढ़ती है, झुलसा रोग बढ़ता जाता है। मार्च में जो पत्तियाँ आती हैं वे इस रोग के कारण दूसरे वर्ष अप्रैल तक गिर पड़ती हैं। सच तो यह है कि जनवरी के बाद पेड़ रोगी दिखाई देने लगता है।

रोगी बागों में क्लोराइड वाले उर्वरक डालना तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। ऐसे बागों में पोटाश की मात्रा ज्यादा देनी चाहिये।

झुलसा रोग ग्रसित आमों के पेड़ों में पोटाशियम सल्फेट डालने के बजाय म्यूरियेट आफ पोटाश डालना अच्छा रहता है।

भेड़ों में शीतला रोग की रोकथाम के उपाय

पशुधन वैज्ञानिकों के अनुसार विदेशों से लायी गयी ऊन वाली नयी भेड़ों के चेचक के टीके लगवा दें और उन्हें तीन सप्ताह तक अन्य भेड़ों से दूर रखें। चेचक के भयंकर रोग से बचने का यही एक सर्वोत्तम तरीका है।

फिलहाल इस रोग के फैलने की काफी सम्भावना बढ़ गयी है। अधिक गोश्त या अधिक ऊन लेने के लिए देशी नस्ल की भेड़ों की नस्ल को सुधारने के वास्ते विदेशों से आयात की गयी भेड़ों को यह रोग बहुत जल्दी लगता है।

रोग भेड़ों के सीधे एक दूसरे के सम्पर्क में आने तथा मक्खियों द्वारा रोग के कीटाणु लाने से फैलता है। आमतौर से जल्दी रोग पकड़ने वाली नस्ल की भेड़ों को यह रोग बड़ी आसानी से लगता है और इससे रोग के फैलने में भी मदद मिलती है। यदि चरवाहे कुछ सावधानी बरतें तो रोग फैलने पर भी घबराने की कोई बात नहीं है।

रोग फैलने पर सफाई का पूरा ध्यान रखें तथा रोगी भेड़ों से तुरन्त अलग कर दें।

चेचक से मरी भेड़ के शव को ठीक तरह दफ़ना देना चाहिए और उसके मरने के स्थान को कीटनाशक दवा मिले पानी से धो देना चाहिये।

नयी आई भेड़ों के पूर्ण स्वस्थ होने का भरोसा होने पर तथा उनके टीके लगाने बाद ही अन्य भेड़ों के साथ रखना चाहिये।

भारतीय पशु चिकित्सा अनुसंधान संस्थान उत्तर प्रदेश में एक सुरक्षित तथा प्रभावी टीका बनाया जा रहा है। इस टीके का प्रभाव भेड़ों पर एक साल तक तथा मेमनों थर अल्प काल तक रहता है।

● ●

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | श्रावण 2022 विक्र०, 1896 शकाब्द अगस्त 1975 | संख्या 7

ज्वार

गोपाल सिंह चौरडिया एवं श्याम लाल काकानी

ज्वार, नाम से हम सब भली प्रकार से परिचित हैं। बहुधा हम सभी यह समझते हैं कि ज्वार चंद्रमा के गुरुत्व बल के कारण आते हैं।

जब कोई दो पिंड जैसे पृथ्वी और चंद्रमा एक दूसरे के गुरुत्वाकर्षण के कारण गतिमान हों, तो निश्चित रूप से यह गति दोनों पिंडों के द्रव्यमानों के उभय केन्द्र के चारों ओर ही होगी। उभय केन्द्र दोनों पिंडों से उनके द्रव्यमानों के अनुपात में ही उनसे दूर होता है। पृथ्वी का द्रव्यमान चंद्रमा के द्रव्यमान से लगभग 80 गुना है इसलिये इनका उभय केन्द्र पृथ्वी के बहुत पास एवं चन्द्रमा से अधिक दूरी पर होगा। इन दूरियों का अनुपात 1:80 का होगा।
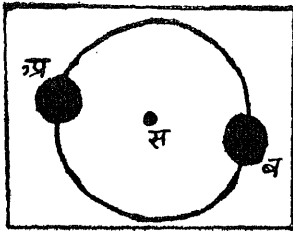
चित्र—1

अब आप द्वितारा के बारे में कल्पना कीजिये।

चित्र—1 के अनुसार 'अ' एवं 'ब' दो समान द्रव्यमान वाले तारों से बना एक द्वितारा है। ये तारे अपने उभय केन्द्र 'स' के चारों ओर परिभ्रमण कर रहे हैं। इन तारों के बीच गुरुत्व बल के कारण परस्पर आकर्षण एवं गति के कारण उत्पन्न अपकेन्द्रीय बल के कारण विकर्षण दोनों बल संतुलित हैं। अब हम कल्पना करें कि यह द्वितारा किसी बड़े तारे के चारों ओर परिभ्रमण कर रहा है। गुरुत्व बल दो पिंडों के बीच की दूरी के व्युत्क्रमानुपाती होता है, इसलिए परिभ्रमण के समय इस बड़े तारे के पास यदि 'अ' तारा है तो उस पर गुरुत्व बल 'ब' तारे के सापेक्ष अधिक होगा। तारा 'अ' 'ब' की तुलना में कम गति से परिभ्रमण करेगा इस कारण 'अ' तारे पर अपकेन्द्रीय बल गुरुत्व बल की तुलना में कुछ कम होगा। इसके विपरीत 'ब' तारे पर गुरुत्व बल अपकेन्द्रीय बल की तुलना में कुछ कम होगा। वह बल, जो इन दोनों गुरुत्व एवं अपकेन्द्रीय बल के सन्तुलन में मामूली सा अन्तर उत्पन्न हो जाने के कारण उत्पन्न होता है, ज्वार उत्पन्न करने वाला बल कहलाता है।

परन्तु यह पाया गया कि ज्वार उत्पन्न करने वाला बल F पिंडों के बीच दूरी R के वर्ग के व्युत्क्रमानुपाती न होकर दूरी के घन के व्युत्क्रमानुपाती होता है।

$$F \propto \frac{1}{R^3}$$

सूर्य एवं चन्द्रमा के कारण ज्वार

जैसा कि अब तक के अनुसंधानों से ज्ञात हो चुका है कि पृथ्वी के उस भाग पर, जो परिभ्रमण काल में चन्द्रमा के सामने होता है, चन्द्रमा के कारण गुरुत्व बल लगता है। यदि हम मान लें कि सारी पृथ्वी ही जल से आच्छादित है तो चन्द्रमा के गुरुत्व बल के कारण पृथ्वी के उस भाग पर, जो चंद्रमा के सामने व पीछे है, पानी का तल ऊपर उठेगा। शेष पृथ्वी पर पानी का तल नीचा गिरेगा। परिकलन के द्वारा जो परिणाम आता है उसके अनुसार चन्द्रमा के आकर्षण बल के कारण अधिकतम 40 सेंमी० ऊँचाई के ज्वार उत्पन्न हो सकते हैं।

चन्द्रमा के अलावा सूर्य भी पृथ्वी को अपनी ओर आकर्षित करता है। सूर्य का द्रव्यमान चन्द्रमा के द्रव्यमान से लगभग 3 करोड़ गुणा अधिक है। लेकिन पृथ्वी की सूर्य से दूरी चन्द्रमा की तुलना में 400 गुणा अधिक है। हम पहले यह पढ़ चुके हैं कि ज्वार उत्पन्न करने वाले बल दूरी के घन के व्युत्क्रमानुपाती होते हैं इसलिए सूर्य के आकर्षण बल से पृथ्वी पर जो ज्वार उत्पन्न होते हैं उनकी अधिकतम ऊँचाई 20 सेंमी० संभव है।
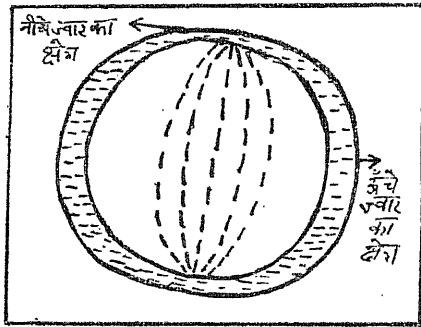
चित्र—2
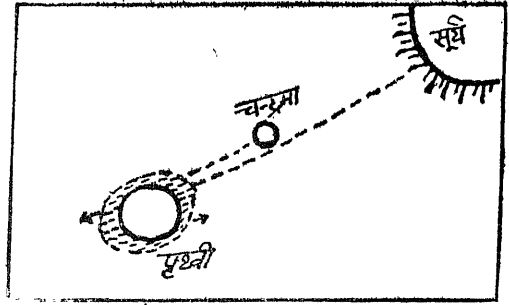
चित्र—3

यदि सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी के एक ही ओर हों तो ज्वारों की ऊँचाई अधिकतम होगी। ये ज्वार सूर्य और चन्द्रमा दोनों के सम्मिलित प्रभाव के कारण होंगे (चित्र—3) लेकिन यदि सूर्य और चंद्रमा विपरीत दिशाओं में हों तो जो भाग पृथ्वी का सूर्य से पास होगा वहाँ पर ऊँचा ज्वार सूर्य के कारण तथा जो भाग पृथ्वी का चंद्रमा के पास होगा उस पर ज्वार चंद्रमा के कारण ऊँचा होगा। इस प्रकार दिन में दो बार ज्वार आयेंगे तथा उनकी ऊँचाई लगभग 60 सेंमी० होगी। इनको कमानी ज्वार कहते हैं।
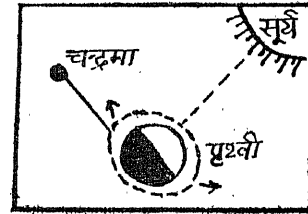
चित्र—4

जब चन्द्रमा प्रथम या तृतीय चतुर्थांश में होगा तब ज्वार चन्द्रमा के प्रभाव के कारण ऊँचा होगा, और सूर्य के प्रभाव के कारण नीचा होगा। इस ज्वार की ऊँचाई कम होगी (चित्र—4) इस प्रकार के ज्वार को छोटे ज्वार (Neap tides) कहते हैं।

ऊँचे ज्वार क्यों ?

सिद्धान्ततः परिकलन से ज्वारों की ऊँचाई अधिकतम 60 सेंमी० हो सकती है। जबकि वास्तव में हम कई-कई फीट ऊँचे ज्वार देखते हैं। ऐसा क्यों ?

पृथ्वी पर ऐसे कई किनारे (Coast lines) हैं जो ज्वारों की दृष्टि से बड़े जटिल हैं। इन किनारों पर पृथ्वी के थल भाग और समुद्र के बीच बड़ी ही जिज्ञासा भरी अन्तःक्रिया होती है।

ज्वारों की ऊँचाई उन किनारों पर और अधिक बढ़ जाती है जहाँ इन किनारों की बनावट पानी के संकरे रास्ते के रूप में होती है।
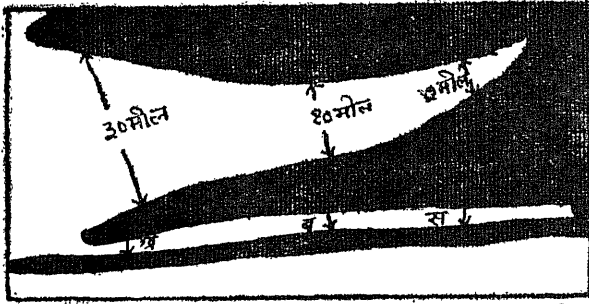
चित्र—5

इसका एक उदाहरण, जैसा चित्र—5 में दिखाया गया है, फंडी की खाड़ी है।

यह खाड़ी न्यू ब्रुन्सविक और नोवा स्कोशिया के बीच है। इस खाड़ी के अंतिम छोर पर ज्वारों की ऊँचाई 1200 सेंमी० तक हो जाती है। चित्र—5 में 'अ' बिन्दु पर खाड़ी की चौड़ाई 48 कि०मी० है यदि यहाँ पर ज्वार की ऊँचाई 150 सेंमी० होती है तो इसकी ऊँचाई 'ब' बिन्दु पर 450 सेंमी० तथा 'स' बिन्दु पर यह ऊँचाई 1200 सेंमी० तक हो जाती है। मैसाच्युसेट राज्य के कई भाग जो खाड़ी से बाहर हैं, वहाँ आने वाले ज्वारों की उँचाई बहुत कम होती है।

इसी प्रकार के ऊँचे ज्वार इंगलिश चैनेल और ब्रिस्टल नहर के पूर्वी किनारों पर आते हैं जो प्रसिद्ध सेवर्न नदी के जल स्तर को बहुत ऊँचा उठा देते हैं। इस प्रकार उपयुक्त आकार के किनारे होने पर आवर्धित ज्वार देखे जा सकते हैं।

ज्वार घर्षण का पृथ्वी के परिभ्रमण पर प्रभाव

ज्वारों का एक प्रभाव जिसका प्रकृति में अनुभव होता है वह है ज्वारी घर्षण। पृथ्वी अपने परिभ्रमण काल में इन भारी ज्वारों (Tidal Bulges) से घर्षण का बल अनुभव करती है। यह घर्षण बल पृथ्वी की गति को प्रभावित करता है। पृथ्वी इन भारी ज्वारों को अपने साथ खींचती है तथा ये पृथ्वी की परिभ्रमण करने की गति को मंद करते हैं। इस घर्षण बल का प्रभाव वहाँ कम होता है जहाँ महासमुद्र बहुत गहरे होते हैं। क्योंकि गहरा पानी स्वयं एक अच्छे स्नेहक का कार्य करता है। ज्वारी घर्षण पृथ्वी की गति को उसी स्थान पर अधिक प्रभावित करता है जहाँ समुद्र छिछला होता है, जैसे आयरिश समुद्र में।

इन ज्वारी घर्षणों के दो मुख्य प्रभाव—

(i) भारी ज्वार जब पृथ्वी के परिभ्रमण के साथ आगे की ओर खींचते हैं तो ये चन्द्रमा को अपनी कक्षा में त्वरित करते हैं। इसलिए चंद्रमा के अपकेन्द्रीय बल में वृद्धि से यह पृथ्वी से दूर हटता है।

(ii) ज्वारी घर्षण पृथ्वी के परिभ्रमण काल में वृद्धि करते हैं। त्वरित गणनाओं से यह परिणाम प्राप्त होता है कि पिछले करोड़ों बर्षों से घर्षण बल पृथ्वी के परिभ्रमण काल में वृद्धि करता रहा है। इस प्रकार परिभ्रमण काल 8 घंटों से बढ़कर वर्तमान में 24 घंटे हो गया है।

वायुमण्डलीय ज्वार

हमारी पृथ्वी कई मील ऊँचाई तक वायुमण्डल से घिरी है। इसलिए इसे भी हम वायु का महासमुद्र कह दें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। ज्वारी बल न केवल जलीय महासमुद्रों में ही ज्वार उत्पन्न करते हैं परन्तु ये हमारे वायुमंडल में भी ज्वार उत्पन्न करते हैं। (चित्र 6)
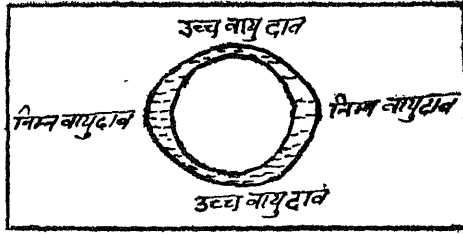
चित्र—6

वायुमण्डल के ऊपरी तल का अध्ययन करना एक कठिन समस्या है। लेकिन कृत्रिम उपग्रहों, राकेटों इत्यादि की सहायता से इसका अध्ययन करना अब सरल हो गया है। जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा टीरोस-1 मौसम उपग्रह द्वारा वायुमण्डल के ऊपरी तल का अध्ययन करना।

पूर्व में वायुमण्डल के ऊपरी तल का अध्ययन वायु दाबमापियों की सहायता से किया गया। तीस वर्ष पूर्व पहली बार जब इसका अध्ययन किया गया तो यह पाया गया कि सूर्य से उत्पन्न ज्वारों के समय वायुदाब-मापी के प्रेक्षणों में अत्यधिक उतार-चढ़ाव दिखायी देते हैं। इस प्रकार के व्यवहार का स्पष्टीकरण किस प्रकार किया जाए ? इस व्यवहार के लिये अभी तक जो स्पष्टीकरण मिला है वह इस प्रकार है—वायुमण्डल में अनुनाद होने से ये उतार-चढ़ाव आते हैं।

ज्वारी अनुनाद

अनुनाद का भौतिक विज्ञान में अत्यधिक महत्व है। अनुनाद के द्वारा एक छोटे से बल का भी बहुत आवर्धन संभव है। यदि किसी दोलन करती हुई वस्तु पर उसी दिशा में बार-बार बल लगाया जाये जिस दिशा में वह गति कर रही है तो कुछ समयान्तराल में उसका आयाम बहुत बढ़ाया जा सकता है। और ऐसा कहा जा सकता है कि दोलित वस्तु उत्तेजित करने वाले बल के साथ अनुनादित है। उच्च वायुमण्डलीय ज्वारों के लिये यही स्पष्टीकरण सही है कि ज्वारी बलों के साथ अनुनादित होने से ही वायुमण्डल के प्राकृतिक दोलन के आयाम में वृद्धि होती है।

पहले में इस प्रकार की मान्यता थी कि वायुमण्डल की ऊपरी सतह अपेक्षाकृत ठंडी है। लेकिन वायुमण्डलीय ज्वार तभी संभव है जबकि ऊपरी सतह अपेक्षाकृत अधिक गर्म हो। प्रयोगों से अब इस तथ्य की पुष्टि हो चुकी है कि वायुमण्डल का ऊपरी तल अपेक्षाकृत अधिक गर्म है। इसीलिए वायुमण्डल के ऊपरी तल में अनुनाद होता है।

ज्वारी घर्षण के कारण ही पृथ्वी का परिभ्रमण काल 8 घंटों से बढ़कर अब 24 घंटे हो गया है। क्या हमारा दिन 24 घंटों से भी अधिक का होगा ?

परन्तु अब आगे लाखों वर्षों तक ऐसा संभव नहीं लगता है। क्योंकि महासमुद्रीय ज्वारी घर्षण बलों के विरुद्ध ऐसे बलों का लाखों वर्षों से आविर्भाव हो गया है जो इन घर्षण बलों के प्रभाव को उपेक्षणीय बना देते हैं। और अब दिन की लम्बाई इतनी है जिसमें वायुमण्डलीय अनुनाद संभव है तथा वायुमण्डल का प्रतिदिन गर्म होना एवं ठंडा होना इस प्रकार के बल का निर्माण करता है जो समुद्रों के ज्वारी घर्षण बलों के विरुद्ध दिशा में काम करता है। यह बल ही अब पृथ्वी के दिन की समयावधि में वृद्धि होने से रोकता है।

गोपाल सिंह चोरडिया
वरिष्ठ अध्यापक भौतिकी
राजकीय बहुउद्देशीय उच्च
मा० वि० शाहपुरा भीलवाडा
श्याम लाल काकानी
प्राध्यापक भौतिकी
राजकीय महाविद्यालय शाहपुरा (भीलवाडा)

●●

भारतीय प्राणि-विज्ञान सर्वेक्षण विभाग

जय प्रकाश नारायण शुक्ल

जब आप किसी से मिलते हैं तो पहले उसका परिचय प्राप्त करते हैं, किन्तु यदि आप मिलने वाले की भाषा नहीं जानते हैं तो दुभाषिये की आवश्यकता पड़ती है, ठीक उसी प्रकार प्राणिविज्ञान सर्वेक्षण विभाग, प्राणिविज्ञान शास्त्रियों और जानवरों के बीच दुभाषिये का काम करता है तथा जानवरों के नाम, धाम और कार्य कलापों का अध्ययन करके अन्य लोगों को बतलाता है।

भारतीय प्राणिविज्ञान-सर्वेक्षण विभाग, भारत सरकार के सात वैज्ञानिक सर्वेक्षण विभागों में से एक है। इसकी स्थापना 1 जुलाई, सन् 1916 को एशियाटिक सोसाइटी और भारतीय संग्रहालय के प्रकृतिविज्ञान में काम करने वाले सदस्यों के सुप्रयास से हुई। भारतीय संग्रहालय के प्राणि और नृतत्वविज्ञान के विभागों को मिलाकर डा० आनन्डेल की देख-रेख में संस्था का श्री गणेश हुआ। सन् 1945 में पुनः नृतत्व विभाग को अलग करके "नृतत्व सर्वेक्षण विभाग (Anthropological Survey of India) की स्थापना हुई।

प्राणिविज्ञान सर्वेक्षण विभाग को निम्नलिखित कार्यों का भार सौंपा गया।

(1) राष्ट्रीय प्राणी संग्रह का संरक्षण।

(2) सरकारी संस्थाओं एवं अन्य संस्थाओं और व्यक्तियों के लिये प्राणियों की पहचान करना।

(3) भारतीय जन्तुओं के सिस्टेमेटिक, भौगोलिक वितरण और रहन-सहन इत्यादि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना।

(4) इस संस्था के निदेशक भारत सरकार के जीव-विज्ञान सम्बन्धी समस्याओं के सलाहकार हैं।

(5) जीव-विज्ञान से सम्बन्धित शोध पत्रिकाओं और पुस्तकों का प्रकाशन करना।

(6) भारतीय संग्रहालय की छः जन्तु विथिकाओं की देख-रेख करना।

(7) वन्य जन्तु परिषद् की समस्याओं का समाधान करना।

इस विभाग में प्रारम्भ से आज तक सात कुशल निदेशक हुये हैं।

(i) डा० एन० आॅनन्डेल (1916-24) (ii) ले० क० आर० वी० एस० सीवेल (1925-33) (iii) डा० बी० प्रसाद (1933-34) (iv) डा० बी० एन० चोपड़ा (1944-47) (v) डा० एस० एल० होरा (1947-55) (vi) डा० एम० एल० रूनवाल (1956-65) (vii) डा० ए० पी० कपूर (1966-73)

इस समय यह पद रिक्त है और डा० एस० खेरा उप निदेशक ही निदेशक का कार्य-भार सँभाल रहे हैं।

प्रारम्भ से ही इस विभाग का प्रधान कार्यालय कलकत्ता में रहा। द्वितीय विश्व युद्ध में सुरक्षा के ध्यान से सन् 1942 से 1948 तक यह प्रधान कार्यालय वाराणसी में रक्खा गया था।

अब तक इस विभाग की नौ क्षेत्रीय शाखायें अलग-अलग प्रान्तों में खोली जा चुकी हैं। ये शाखायें देहरादून (उ० प्र०), जोधपुर (राजस्थान), सोलन (हि० प्र०), पूना (महाराष्ट्र), जबलपुर (म० प्र०), मद्रास (तमिलनाडु) में दो शाखायें, पटना (बिहार), और शिलांग (आसाम) में स्थित है। इन क्षेत्रीय शाखाओं के अतिरिक्त और प्रान्तों में शाखाओं के खोलने की योजनायें बनायी गयी हैं।

संगठन—संस्था के प्रधान कार्यालय में एक निदेशक और तीन उप निदेशक और तीन प्रशासनिक अधिकारी प्रशासनिक भार को सँभालते हैं। इसके अतिरिक्त संस्था कई बड़े-बड़े भागों में बँटी हुई है, जिसका कार्य भार एक-एक पर्यवेक्षक प्राणिवैज्ञानिक को सँभालना पड़ता है। ये विभाग पुनः कई अनुभागों में बँटे हुए हैं, जिनका कार्य-भार एक या दो प्राणि वैज्ञानिक अर्थात् विशेषज्ञ, एक या दो सहायक प्राणि वैज्ञानिक या उप विशेषज्ञ और कई एक शोध सहायकों के ऊपर निर्भर करता है। विभागों का यह संगठन प्राणि वर्ग के संगठन के अनुसार किया गया है जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं। अध्ययन की सुविधा एवं सुचारु रूप से शोध-कार्य करने के लिए मुख्य कार्यालय में अब तक तेरह विभाग खोले गये हैं।

(1) **निम्न अकशेरुकी विभाग**—इस विभाग में चार अनुभाग आते हैं।

(i) प्रोटोजुलोजी अनुभाग—इस अनुभाग में एक कोशीय जन्तुओं जैसे अमीबा, पैरामीशियम इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

(ii) फीता-कृमि अनुभाग (Platyhelminth Section)—इसमें छोटे-छोटे परा-श्रयी, स्वतंत्र फ़ीता कृमि आते हैं जो कई विधियों से हानिकारक होते हैं।

(iii) सूत्र कृमि अनुभाग (Nemathellminth Section)—इस अनुभाग में नन्हें-नन्हें पराश्रयी एवं स्वतंत्र विचरण करने वाले सूत्र कृमियों का अध्ययन करते हैं जो पौधों और प्राणियों में तरह-तरह की बीमारियाँ फैलाते हैं।

(iv) सामान्य अकशेरुकी अनुभाग—इस अनुभाग में साधारण से साधारण छोटे-छोटे अकशेरुकी जन्तुओं जैसे केंचुआ, जोंक, तारा मछली इत्यादि पर अध्ययन किये जाते हैं।

(2) **उच्च अकशेरुकी विभाग**—इस विभाग के अन्तर्गत दो अनुभाग हैं।

(i) चूर्ण प्रवारी या सीप तथा घोंघे वाला (Mollusca) अनुभाग—इस अनुभाग में सीप तथा घोंघे के ऊपर शोध कार्य किये जाते हैं और उनसे सम्बन्धित रहस्यों का पता लगाया जाता है।

(ii) क्रस्टैसिया (Crustacea) अनुभाग—इसमें केकड़े तथा झींगा मछली इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

(3) **कीट-पतंग विभाग**—इस विभाग में कीड़े-मकोड़ों से सम्बन्धित शोध कार्य किये जाते हैं। यह सबसे बड़ा विभाग है। इसके अन्तर्गत कुल बारह अनुभाग आते हैं।

(i) आर्थ्रोप्टेरा अनुभाग—इस अनुभाग में टिड्डियों और झींगुर के बारे में अध्ययन करते हैं। (ii) हेमीप्टेरा अनुभाग—इसमें खटमल के विभिन्न जातियों का अध्ययन करते हैं। (iii) डिप्टेरा अनुभाग—में मच्छर और मक्खी, (iv) लैपिडाप्टेरा अनुभाग—में पतंग और तितलियों (v) हाइमेनोप्टेरा अनुभाग—में चींटियों और मधुमक्खियों, (vi) आइसोप्टेरा अनुभाग—में दीमक, (vii) कोलियोप्टेरा अनुभाग—मेंघुन, जुगनू, गुबरैल, (viii) विविध कीड़ा-मकोड़ा अनुभाग—में अन्य कीड़े-मकोड़े (ix) केन्द्रीय कीटवर्गीय प्रयोगशाला—में कुछ विशेष प्रकार के जूँ, (x) एप्टेरीगोरा अनुभाग—में स्प्रिगटेल्स इत्यादि, (xi) एकेरोलाजी अनुभाग—में माइट्स, किलनी, (xii) एरेक्निडा अनुभाग—में बिच्छू तथा मकड़ी इत्यादि का अध्ययन करते हैं।

(4) **मत्स्य विभाग**—इस विभाग में केवल दो अनुभाग हैं। (i) समुद्री मत्स्य अनुभाग—में समुद्र में पायी जाने वाली प्रत्येक प्रकार की मछलियों के बारे में अध्ययन करते हैं। (ii) स्वच्छ जलीय मत्स्य अनुभाग—इसमें समुद्र के अतिरिक्त अन्य जलाशयों में रहने वाली मछलियों के ऊपर कार्य किया जाता है।

(5) **उच्च कशेरुकी विभाग**—इस विभाग में दो अनुभाग हैं।

(i) पक्षी अनुभाग—इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के पक्षियों के ऊपर शोध कार्य किया जाता है। (ii) स्तनपायी एवं अस्थि विज्ञान अनुभाग (Mammals and Oesteology section)—इस अनुभाग में सभी

प्रकार के स्तनधारी जानवरों एवं उनके हड्डियों के बारे में अध्ययन किया जाता है।

(6) सरीसृप विद्या विभाग (Herpetology Division)—इस विभाग में केवल दो अनुभाग हैं। (i) सरीसृप अनुभाग (Reptilcs secrion)—इसमें सर्पों तथा छिपकलियों इत्यादि के बारे में अध्ययन करते हैं। (ii) प्रोटोकार्डेटा तथा मेढक अनुभाग (Protochordata and Amphilia section)—इस अनुभाग में एम्फिग्रावसस तथा मेढक और टोड इत्यादि के बारे में अध्ययन करते हैं।

(7) इकोलॉजी एवं वन्य जन्तु संरक्षरण विभाग—इस विभाग के अन्तर्गत चार अनुभाग आते हैं। (i) पशु जनसंख्या अनुभाग (Animal population studies section)—इस अनुभाग में प्रत्येक जन्तुओं की बढ़ती हुई तथा घटती हुई संख्या का विवरण तैयार किया जाता है। (i) पशु व्यवहार अनुभाग—इस अनुभाग में कार्य करने वाले प्राणी वैज्ञानिक प्रत्येक पशुओं के व्यवहार का अध्ययन करते हैं। (iii) वन्य प्राणी अनुभाग—इस अनुभाग में प्रत्येक जंगली प्राणियों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। (iv) भूमि प्राणि विज्ञान विभाग—इसमें मिट्टी के नीचे विद्यमान जन्तुओं का अध्ययन किया जाता है।

(8) पुराप्राणि विज्ञान विभाग (Palaeozoology Division)—इस विभाग को भी तीन अनुभागों में बाँटा गया है। (i) अकशेरुकी पुरा प्राणि विज्ञान अनुभाग (Vevtebrate palaeozoology section) इस अनुभाग में अकशेरुकी प्राणियों के प्राप्त किये गये अवशेषों या अवशेषों के चिन्हों का अध्ययन करके प्राणियो के मौलिक और वर्तमान गुणों की तुलना करते हैं (ii) कशेरुकी पुरा प्राणि विज्ञान अनुभाग (Vertebrate palaeozoology section)—इसमें कशेरुकी प्राणियों के अवशेषों या अवशेषों के चिन्हों का अध्ययन किया जाता है। (iii) प्रागैतिहासिक प्राणि विज्ञान अनुभाग (Prehistoric zoology section)—इस अनुभाग में प्रागैतिहासिक अस्थियों या अवशेषों पर अध्ययन किया जाता है।

(9) क्षेत्र सर्वेक्षण विभाग—इसमें केवल एक ही अनुभाग विभाग के नाम पर है। यह अनुभाग प्रत्येक यात्रा दलों के क्षेत्रीय सर्वेक्षणों के कार्यक्रम के निर्धारण में सहयोग देता है तथा प्रत्येक किये गये सर्वेक्षणों का विवरण रखता है।

(10) प्रकाशन विभाग—इस विभाग में चार अनुभाग हैं। (i) प्रकाशन अनुभाग—यह अनुभाग, विभाग में प्रकाशित होने वाली प्रत्येक शोध पत्र एवं पत्रिकाओं का प्रबन्ध करता है और प्रत्येक का विवरण रखता है। (ii) आर्ट अनुभाग—इस अनुभाग में कई आर्टिस्ट नियुक्त हैं जो शोध-पत्रों से सम्बन्धित चित्रों को मौलिक रूप देते हैं या सुधार करते हैं। (iii) प्रलेख-पोषण अनुभाग—यह अनुभाग होने वाली नयी शोधों को अंकित करता है तथा पूरा विवरण तैयार करता है, ताकि अन्य अनुसंधानों में उसका उपयोग किया जा सके।

(iv) ग्रन्थालय—विभाग की तरफ से प्राणि-विज्ञान सम्बन्धी एक बड़ा ग्रन्थालय है, जो एशिया का प्राणिविज्ञान का सर्वोत्तम ग्रन्थालय कहा जाता है। यह भारतीय संग्रहालय के भवन में स्थित है। इसमें विभिन्न भाषाओं में प्राणिशास्त्र सम्बन्धित लगभग 41205 पुस्तकें संग्रहित हैं। इनकी संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। इसमें साप्ताहिक, मासिक एवं वार्षिक क्रम में लगभग 134 विदेशी शोध-पत्रिकायें और 63 भारतीय शोध पत्रिकायें आती हैं। हिन्दी में भी दो शोध-पत्रिकायें संकलित की जा रही हैं। विभागीय शोध कर्त्ताओं के अतिरिक्त बाहरी शोध कर्त्ताओं के लिये भी यह ग्रन्थालय एक वरदान सा है। यहाँ सभी स्वदेशी या विदेशी प्राणिविज्ञान में शोध करने वाले छात्रों या प्राणि वैज्ञानिकों के लिये यथोचित सुविधायें दी जाती हैं। इतना ही नहीं अनुसंधान में लगे प्राणि-वैज्ञानिकों को सीमित संख्या में पुस्तकें और पत्र-पत्रिकायें उधार दी जाती हैं।

(11) पहचान एवं परामर्श सेवा विभाग—इस विभाग के अन्तर्गत केवल एक अनुभाग है। (i) पहचान एवं परामर्श अनुभाग—बाहरी प्राणिशास्त्र सम्बन्धित

शोधकर्त्ताओं द्वारा पहचान के लिये भेजे गये जन्तुओं या कीड़े मकोड़ों का एवं विभागीय पहचाने गये सभी प्राणियों का विस्तृत विवरण यह अनुभाग तैयार करता है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्राणी या कीड़े-मकोड़े के सम्बन्ध में जो पूछ-ताछ की जाती है उसे विशेषज्ञों के पास भेजने और उत्तर एकत्र करने में यह अनुभाग माध्यम का कार्य करता है।

(12) स्नातकोत्तर प्रशिक्षण अनुभाग—इस विभाग के अन्दर एक अनुभाग है, जिसमें चुने हुए छात्रों को विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा वर्गीकृत-प्राणि-विज्ञान में अनुसंधान की सुविधायें और छात्र-वृत्तियाँ प्रदान की जाती है, इस प्रकार उन शोधकर्त्ताओं को उचित प्रशिक्षण देने की व्यवस्था है।

(13) संग्रहालय एवं चर्मशोधन विभाग—इसमें संग्रहालय और चर्मशोधन अनुभाग स्थापित किया गया है। इसमें नियुक्त व्यक्ति भारतीग संग्रहालय में चलायी जाने वाली चार प्राणिविज्ञान-विथिकाओं की देख-रेख, स्थापन एवं संरक्षण करते हैं। इसी से सम्बन्धित चर्मशोधन अनुभाग है, जहाँ पशुओं की खाल साफ की जाती है और छः महीने का चर्म-संस्कार के प्रशिक्षण का भी कार्य-क्रम रक्खा गया है। सफल प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण-पत्र दिये जाते हैं।

कलकत्ता और समीप के शिक्षण संस्थाओं को सभी किस्म के जानवरों के छोटे-छोटे संग्रह उधार दिये जाते हैं जिसका सम्बन्ध इस अनुभाग से है। इन अनुभागों के अतिरिक्त पब्लिसिटी अनुभाग है जो विभाग को प्रख्यात करने हेतु कार्यरत-रह रहता है। इसी तरह दूसरा अनुभाग "की जूलॉजी अनुभाग" है जो विभाग में रक्खे गये महत्त्वपूर्ण प्राणियों के संकलनों का उचित देख-भाल करता है।

प्रधान कार्यालय के अतिरिक्त प्राणिशास्त्र-सर्वेक्षण विभाग के क्षेत्रीय शाखाओं में भी उप-निदेशक, पर्यवेक्षक प्राणिवैज्ञानिक नियुक्त किये गये हैं, जिसके सहायतार्थ एक या दो विशेषज्ञ, उप-विशेषज्ञ और कई शोध सहायक रहते हैं। उत्तरी क्षेत्रीय केन्द्र देहरादून में उत्तरी भारत के, पूर्वी क्षेत्रीय केन्द्र शिलांग में पूर्वी भारत के, पश्चिमी क्षेत्रीय केन्द्र पूना में पश्चिमी भारत के, मध्यक्षेत्रीय केन्द्र जबलपुर में मध्य भारत के, रेगिस्तान क्षेत्रीय केन्द्र जोधपुर में रेगिस्तानी क्षेत्र के, दक्षिणी क्षेत्रीय केन्द्र और समुद्री प्राणिविज्ञान-विभाग मद्रास में दक्षिणी भारत और समुद्र में रहने वाले, गंगा मैदानी क्षेत्र पटना में गंगा के मैदानी भाग के, और हाई आल्टीट्यूड जूलोजी फील्ड स्टेशन सोलन में ऊँची-ऊँची पर्वत के चोटियों पर रहने वाले कीड़े मकोड़े एवं जन्तुओं का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार इन नव क्षेत्रीय केन्द्रों में अलग-अलग भारत के खण्डों में रहने वाले प्रत्येक प्राणियों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।

कार्य—इसके कार्यों को कई शीर्षकों में बाँटा गया है।

(i) राष्ट्रीय प्राणी संग्रह—संस्था का मुख्य कार्य 'राष्ट्रीय प्राणी संग्रह' की समुचित देखरेख और उसकी अभिवृद्धि है। अब तक संस्था के अन्तर्गत लगभग 11 लाख पहचान किये हुए 62500 जाति व उपजाति के जन्तु सुरक्षित हैं जिसमें सूक्ष्मदर्शीय एक कोशीय जन्तुओं से लेकर हाथी और ह्वेल जैसे विशालकाय प्राणी भी शामिल हैं। इस विशाल प्राणी संग्रह के अन्दर लगभग 14000 जन्तु हैं जो निश्चित स्थान से अपनी जाति में सर्वप्रथम उल्लिखित किये गये हैं। इस संग्रह में जिन वर्गों के जन्तु सुरक्षित हैं, उनमें से एककोशीय स्पंज, हाइड्रा, केंचुआ, तारा मछली, कृमि, केकड़ा, झींगा मछली, बिच्छू किलनी, कीड़े-मकीड़े, सीप, घोंघा, मछलियाँ, मेढक, सरसृप, पक्षी एवं स्तनपायी मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रतिवर्ष इस संग्रह की संख्या में वृद्धि हो रही है। ये जन्तु विभिन्न प्रकार के जन्तुओं की खोज और पहचान के लिए आवश्यक हैं। अनुपस्थिति इनकी में जन्तुओं की पहचान दुरूह है।

संस्था के प्रकाशन—संस्था प्राणिशास्त्र सम्बन्धी साहित्य का सृजन और उसके प्रकाशन का भी प्रबन्ध करती है। इसके कुछ प्रकाशन अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। संस्था के मुख्य प्रकाशन निम्नलिखित हैं।

(i) रिकार्डस ऑफ दी जूलौजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया। इसका प्रकाशन सन् 1907 से लेकर 1962 तक "रिकार्ड्स ऑफ इण्डियन म्यूजियम" के नाम से होता था। परन्तु सन् 1973 से नाम बदल कर रिकार्ड्स ऑफ जूलौजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया के नाम से होने लगा।

(ii) मेमोग्रार्स ऑफ दी इण्डियन म्यूजियम -- भारतीय जन्तुओं पर विशेष प्रकाशन जो सुविधानुसार कभी-कभी होता है।

(iii) प्राणिविज्ञान—सर्वेक्षण विभाग की वार्षिक रिपोर्ट।

(iv) फॉना ऑफ इण्डिया—कई भागों में भारतीय जन्तुओं का विस्तृत विवेचन हो चुका है।

(v) बिब्लियोग्राफी ऑफ इण्डियन जूलौजी। सन् 1958 के बाद भारतीय प्राणिविज्ञान सम्बन्धी प्रकाशनों की विस्तृत सूची का सम्पादन हो रहा है।

(vi) "बाइ मन्थली न्यूज लेटर" के भी प्रकाशित होने की योजना बनायी गयी है, जिसमें विभागीय शोधों एवं अनुसन्धानों का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित होगा। यह शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रहा है।

अन्यान्य संस्थाओं से सम्पर्क—यह सर्वेक्षण संस्था देश एवं विदेश के विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थाओं के साथ बराबर सम्पर्क रखती है। संस्था बिना कोई शुल्क लिए सब के लिए जन्तुओं की पहचान करती है और प्राणिविज्ञान भी विभिन्न सम्बन्धी अन्य समस्याओं पर हर प्रकार की सलाह एवं सहायता प्रदान करती है। संस्था की तरफ से कई शोध-छात्र वृत्तियाँ भी दी जाती हैं। इस विभाग में ही चर्मशोधन अनुभाग है जहाँ पर छः माह का चर्मशोधन का प्रशिक्षण दिया जाता है। चर्मशोधन वह कला है जिसके द्वारा मृतक जानवरों को भी सुरक्षित करके स्थापित कर दिया जाता है कि सजीव जैसा जान पड़ते हैं।

संस्था के शोध कार्य—शोध कार्यों को दो भागों में विभक्त कर सकते हैं।

(i) क्षेत्र सर्वेक्षण (ii) शोध कार्य

सर्वेक्षण—संस्था के कार्यकर्त्ता देश के विभिन्न भागों में जाकर वहाँ के जन्तुओं का संग्रह एवं अध्ययन करते हैं, जिनकी प्रयोगशालाओं में पहचान की जाती है और अन्त में "राष्ट्रीय प्राणि संग्रह" में सुरक्षित रूप से रक्खा जाता है। इन कार्यों में उन्हें अधिक कठिनाइयों का सामना भी करना पड़ता है। हिमालय के उच्च शिखरों से लेकर हिन्द महासागर के अतल गहराइयों तक पैठना काम साहसिक कार्य नहीं है। इतना ही नहीं संस्था में कार्य करने वाले प्राणि वैज्ञानिक देश के विभिन्न क्षेत्रों में जाकर जन्तुओं के प्रकृति, वास, व्यवहार और बढ़ती हुई संख्या का अध्ययन करते हैं, साथ ही साथ उनके वन्य-जीवन के रहस्यों का भी विवरण तैयार करते हैं।

सम्पूर्ण भारतीय जन्तुओं का विस्तृत सर्वेक्षण एवं उनका अध्ययन एक महान कार्य है। देश की भौगोलिक विचित्रता और विभिन्नता इस कार्य को और अधिक दुरूह बना देती है। अब तक लगभग 800 सर्वेक्षण हो चुके हैं। प्राणी सर्वेक्षणों के अतिरिक्त समय-समय पर औषधि, कृषि एवं पशु-चिकित्सा सम्बन्धी सर्वेक्षण भी किये जाते हैं। इस प्रकार इन सर्वेक्षणों का विशेष महत्व है। संस्था द्वारा सम्पादित सर्वेक्षणों में से कुछ विशेष उल्लेखनीय हैं।

प्रथम विश्व युद्ध के समय देश में सिस्टोसोमेसिस नामक रोग के ऊपर बहुत कार्य किया गया। इस बीमारी के कृत्रियों के ऊपर विस्तृत अध्ययन रत्नागिरि जिले के जन्तुओं को लेकर हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध में डॉ० हनवाल ने आसाम, बर्मा, सीमा के मोर्चे पर 'स्क्रब टाइफस" रोग के ऊपर कार्य किया। भारतीय वन्य-जन्तुओं के सर्वेक्षण के लिए आसाम, मणिपुर, गुजरात आदि का सर्वेक्षण नष्ट हो रही जातियों के अध्ययन के लिए किया गया। देश के अन्तर्गत नव-निर्मित बाँध आदि का प्रभाव स्थानीय जीवों पर पड़ता है, यह भी संस्था के कार्यकर्त्ता अध्ययन कर रहे हैं, जिसमें नागार्जुन सागर क्षेत्र का सर्वेक्षण उल्लेखनीय है। हाल के कुछ वर्षों में काश्मीर, राजस्थान, अन्दमान-निकोबार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, गोवा, नेफा, मणिपुर

आदि का सर्वेक्षण हुआ। साथ ही साथ देश के प्रत्येक भागों तथा नेपाल और भूटान आदि देशों में भी यह सर्वेक्षण कार्य जारी है।

शोधकार्य—संस्था स्थापना काल से ही अपने शोध-कार्यों के लिये प्रसिद्ध हैं। संस्था के निदेशकों एवं पदाधिकारियों में डॉ० ऑनन्डेल, ले० क० सीवेल और डॉ० केम्प को एफ० आर० एस० (F. R. S.) की उपाधि प्रदान की गई थी जिससे संस्था के महत्त्वपूर्ण कार्यों का पता चलता है। अधिकांश निदेशकों को एफ० एन० आई० (F. N. I.) की प्रतिष्ठापूर्ण उपाधि से विभूषित किया गया। डॉ० होरा के महत्त्वपूर्ण कार्यों ने संस्था की प्रतिष्ठा को उच्चतम शिखर पर पहुँचाया। वे सन् 1951 में राष्ट्रीय वैज्ञानिक शिक्षण संस्थान और सन् 1952 में इण्डियन साइंस कांग्रेस के अध्यक्ष थे। संस्था के पदाधिकारी-गण कई महत्त्वपूर्ण अभियानों में भाग लेते रहे हैं एवं सेना के में भाग लेते रहे हैं एवं सेना के सहयोग में भी कार्य किये हैं। शोधकर्त्ताओं ने लगभग (2000) दो हजार शोध-पत्र प्रकाशित कराये हैं। डॉ० केम्प ने केकड़ा तथा झींगा मछली कक्षा के प्राणियों पर महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं, जिसमें टिफ्लोपेरीपेटस की खोज उल्लेखनीय है। डॉ० सीवेल का भारतीय कोपेपोड्स और कृमि समुदाय के सरकेरिया कृमि के ऊपर सराहनीय शोध-कार्य है। घोंघा और सीप कक्षा के प्राणियों के ऊपर डॉ० ऑनन्डेल, डॉ० प्रसाद और डॉ० राय के कार्य प्रशंसनीय है। डॉ० प्रसाद ने सिन्धु घाटी के अवशेषों का पता लगाकर गम्भीर अध्ययन किया है। डॉ० होरा मछलियों के अतिरिक्त अन्य कोई क्षेत्रों में किया है। जन्तुओं के प्रसार से सम्बन्धित एक नया सिद्धान्त उन्होंने प्रतिपादित किया जिसे "सतपुड़ा हाइपो थिसिस" कहते हैं। भारतीय मछलियों के ऊपर डॉ० के० एस० मिश्र का कार्य भी सराहनीय है। डॉ० कृष्ण कान्त तिवारी ने केकड़ा और झींगा मछली के कक्षा में एक नये कुल की खोज करके प्राणिविज्ञान क्षेत्र में प्रतिष्ठा अर्जित किया है।

कीट पतिंगों के क्षेत्र में डॉ० ग्रैवेली, डॉ० प्रुथी, डॉ० चोपड़ा के बाद डॉ० रूनवाल और डॉ० कपूर के कार्य महत्त्वपूर्ण हैं। डॉ० रूनवाल की टिड्डियों और दीमक पर किया गया शोध-कार्य विशेष महत्व रखता है। डॉ० कपूर कावसेनेलिड के गिने-चुने विशेषज्ञों में से एक हैं। डॉ० मनी भी कीट-पतिंगों के ऊपर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इसके प्रसिद्ध विशेषज्ञों में से एक हैं। डॉ० चौहान ने कृमियों के ऊपर महत्त्वपूर्ण खोजें की है। डॉ० एस० खेरा का सूत्रकृमि पर किया गया शोध आर्थिक दृष्टिकोणों से भी महत्त्व रखता है। उनका सूत्रकृमि पर लगे हुये शोध-छात्रों के लिये पथ-प्रदर्शन प्रशंसनीय है और आशा की जाती है कि शीघ्र ही भविष्य में उनका कार्य और पथ-प्रदर्शन लाभ-प्रद सिद्ध होगा, क्योंकि पराश्रयी फसल और जन्तुओं को हानि पहुँचाने वाले तथा स्वतंत्र कृमियों पर उनका सतत् कार्य जारी है। डॉ० बी० के० टीकादर भी मकड़ियों के ऊपर शोध-कार्य करके अच्छी ख्याति प्राप्त की है।

डॉ० रूनवाल की देख-रेख में पशु-पक्षी विभाग भी बहुत प्रगति की। उन्होंने बहुत से शोध-पत्र प्रकाशित किये, जिसमें मणिपुर के पशु-पक्षियों पर किया गया कार्य महत्त्वपूर्ण है। अभी डॉ० विश्वास की देख-रेख में यह विभाग प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। डॉ० विश्वास नेपाल और भूटान के पक्षियों के ऊपर कई शोध-पत्र प्रकाशित किये हैं। हिम-मानव की खोज में हिमालय की चोटियों पर जाने वाले प्रथम प्राणिशास्त्री होने का भी गौरव उन्हें प्राप्त हैं। मछलियों के ऊपर एक डॉ० मेनन का कार्य चल रहा है और उन्होंने 'गारा मछलियों' के ऊपर एक ग्रन्थ भी लिखा है। डॉ० खजूरिया ने "गोल्डेन लंगूर" आसाम के जंगलों से खोज निकाला है। श्री के० एस० प्रधान बारह अनुभागों का प्रशासनिक भार सँभालते हुये भी कीट पतिंगों के शोध में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। भारतीय संग्रहालय में जन्तुओं की वीथिकाओं में रखे गये प्रदर्शनीय प्राणियों के ऊपर उनका लिखा गया ग्रन्थ प्रशंसा करने योग्य है। प्रागैतिहासिक जन्तुओं पर श्री भोलानाथ द्वारा किया कार्य भी सराहनीय है। मोहनजोदड़ो हरप्पा के बाद

नागार्जुन-कोण्डा में, विश्व में प्रथम पाये गये अश्व-मेध यज्ञ के अवशेषों पर उनका महत्वपूर्ण कार्य है।

इस प्रकार 59 वर्षों की अवधि में संस्था के अन्तर्गत देश के विभिन्न भागों के जन्तुओं का विस्तृत अध्ययन किया गया। अब तक अनेकों जातियों, उप-जातियों और कुलों का पता लगाया गया है।

भविष्य में संस्था में और भी कई विभाग खोले जायेंगे और कई खुले हुये विभागों का विस्तार एवं पुनर्गठन होगा। आशा की जाती है कि संस्था के वैज्ञानिक एवं अन्य कर्मीगण नयी भावना और विश्वास लेकर कार्य करेंगे जिससे उन्हें अपनी समस्याओं और शोध-कार्यों में सफलता मिलेगी। यह निश्चय है कि सतत् सफलता से राष्ट्र और मानव का कल्याण होगा साथ ही साथ देश को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति भी प्राप्त होगी।

जय प्रकाश नारायण शुक्ल
भारतीय प्राणिविज्ञान सर्वेक्षण विभाग, कलकत्ता

• •

[पृष्ठ 16 का शेषांश]

अतः P-N-P जंक्शन में धारा का प्रवाह होलों द्वारा होता है।

N-P-N जंक्शन ट्रांजिस्टर

चित्र (6) में N-P-N प्रकार का ट्रांजिस्टर दिखाया गया है। यदि इसकी तुलना हम P-N-P परिपथ से करें तो हम देखते हैं कि P और N प्रकार के जरमेनियम की स्थिति आपस में बदल दी गयी है और बैट्री के ध्रुव उलट दिये गये हैं। बायीं ओर के N क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन बैट्री के ऋण ध्रुव से प्रतिकर्षित होकर जंक्शन की ओर चलने लगते हैं अतः यह जंक्शन एमिटर जंक्शन होगा। दाहिनी ओर के N क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन धन ध्रुव की ओर आकर्षित होते हैं अतः यह संग्राही जंक्शन होगा। बायीं ओर के N क्षेत्र में इलेक्ट्रान बैट्री के ऋण ध्रुव से प्रतिकर्षित होते हैं और एमिटर जंक्शन पार करके P क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। P क्षेत्र अत्यन्त पतले स्तर का बना होता है तथा इसमें अशुद्धि की मात्रा भी बहुत कम रखी जाती है फलतः इस क्षेत्र में होलों की संख्या काफी कम होती है। अतः P क्षेत्र में बहुत ही कम इलेक्ट्रॉन होलों से संयोग के कारण नष्ट होते हैं; शेष संग्राही जंक्शन पार करके संग्राही इलेक्ट्रोड पर जाकर नष्ट हो जाते हैं। जैसे ही इलेक्ट्रान कलेक्टर क्षेत्र पार करके धन ध्रुव पर पहुँचता है वैसे ही एक इलेक्ट्रॉन ऋण ध्रुव से निकल कर एमिटर क्षेत्र में प्रवेश करता है। इसी प्रकार इलेक्ट्रॉनों का संवाहन होता रहता है।

कृष्ण स्वरूप द्विवेदी

• •

ट्रांजिस्टर

कृष्ण स्वरुप द्विवेदी

ट्रांजिस्टर की खोज सन् 1948 में बेल टेलीफोन प्रयोगशाला (अमेरिका) के वैज्ञानिकों, जान बारडीन एवं डब्लू० एच० ब्राटेन ने की थी। इन दोनों वैज्ञानिकों को सर विलियम शाकले के साथ इस महान शोध तथा ट्रांजिस्टर पर कार्य करने के लिए सन् 1956 में नोबेल पुरष्कार से विभूषित किया गया था। ट्रांजिस्टर आकार में इलेक्ट्रॉन ट्यूबों (डायोड, ट्रायोड आदि) से काफी छोटे होते हैं साथ ही इलेक्ट्रान ट्यूबों की अपेक्षा ज्यादा अच्छा कार्य कर सकते हैं। पहले रेडियो में इलेक्ट्रॉन ट्यूबों का प्रयोग होता था परन्तु ट्रांजिस्टर की खोज के साथ ही उनका स्थान छोटे ट्रांजिस्टरों ने ले लिया परिणाम स्वरूप रेडियो की अपेक्षा आकार में छोटे रेडियो ट्रांजिस्टरों का निर्माण हुआ। ट्रांजिस्टरों की एक विशेषता और है, इनका कार्यकाल बहुत लम्बा होता है साथ ही इनके प्रयोग में किसी विशेष सावधानी की आवश्यकता नहीं है और नहीं टूटने का भय। इलेक्ट्रॉन ट्यूबों में तंतु होते हैं जिसको गर्म करने पर इलेक्ट्रॉन निकलते हैं। ये इलेक्ट्रॉन निर्वात् से होकर प्लेट तक पहुँचते हैं। ट्रांजिस्टर अर्द्ध चालक धातु का एक टुकड़ा होता है। इसमें तंतु जैसी कोई वस्तु नहीं होती अतः तंतु को गर्म करने वाले सर्किट की आवश्यकता ही नहीं होती साथ ही इनको निर्वात् में बंद करने को कोई आवश्यकता नहीं है। हम जानते हैं कि धातुओं में स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन होते हैं और इन्हीं के कारण धातुओं में विद्युत् संवहन होता है; ऐसे धातुओं को सुचालक कहते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसी पदार्थ है जिनमें स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन नहीं पाए जाते हैं अतः इनमें विद्युत् संवहन नहीं होता है, इनको कुचालक कहते हैं। इन दोनों के मध्य विद्युत् चालकता वाले पदार्थों को अर्द्ध-चालक कहते हैं। ट्रांजिस्टरों में मुख्यतया दो अर्द्ध-चालक धातुओं, जरमेनियम या सिलिकन का प्रयोग होता है। ट्रांजिस्टर की कार्य विधि समझने के लिए जरमेनियम क्रिस्टल की संरचना पर ध्यान देना होगा।

जरमेनियम क्रिस्टल की संरचना

जरमेनियम परमाणु में 32 इलेक्ट्रान होते हैं जिनका इलेक्ट्रॉनी विन्यास निम्न हैं।

$1S^2, 2S^2, p^6, 3S^2\ p^6\ d^{10}, 4S^2\ p^2$
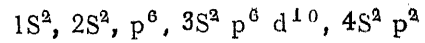
स्पष्ट है कि जरमेनियम की बाहरी कक्षा में चार इलेक्ट्रॉन होते हैं। यह इलेक्ट्रान ही विद्युत् संवहन के लिए उत्तरदायी होते हैं। ठोस अवस्था में जरमेनियम भी हीरे की तरह त्रिविमीय) संरचना वाला क्रिस्टल है अतः स्पष्ट है कि हीरे की तरह जरमेनियम भी अपने पड़ोसी चार परमाणुओं से चार लो बैलेंट बंधों द्वारा जुड़ा होता है। इसलिए शुद्ध जरमेनियम में स्वतंत्र इलेक्ट्रॉनों का अभाव होता है अतः सैद्धान्तिक रूप से शुद्ध जरमेनियम विद्युत का कुचालक है परन्तु प्रायोगिक दृष्टि से ऐसा नहीं है क्योंकि ताप के कारण शुद्ध जरमेनियम में कुछ सहसंयोजी बंधों के टूटने से कुछ इलेक्ट्रान उपस्थित रहते हैं और बहुत ही थोड़ी विद्युत् का बहाव करते हैं।
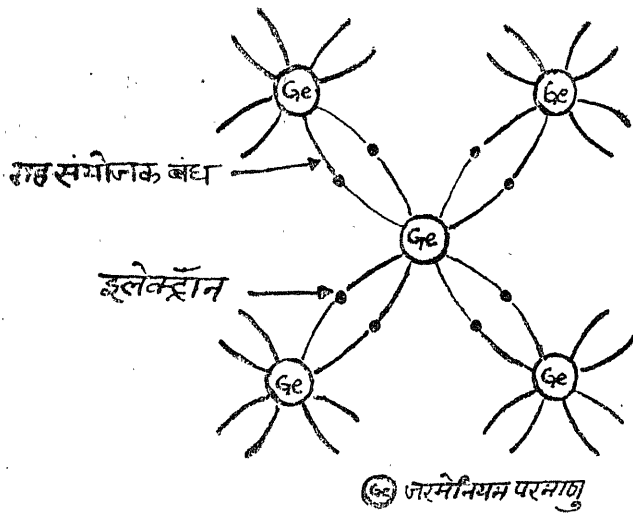
चित्र—1 (अ)
जरमेनियम क्रिस्टल, द्विविमीय संरचना
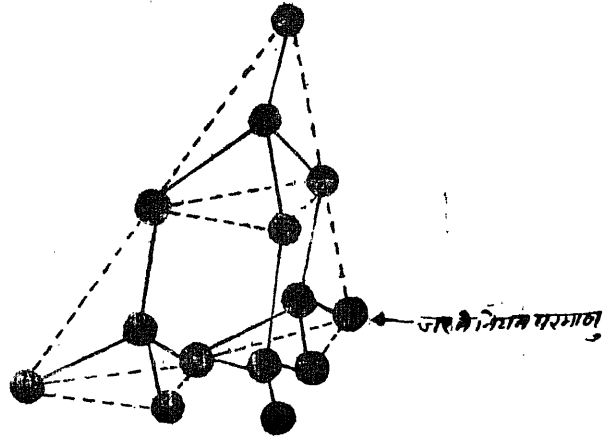
चित्र—1 (ब)
जरमेनियम क्रिस्टल का त्रिविमीय दृश्य

N प्रकार की जरमेनियम

जब जरमेनियम में, आर्सेनिक या एंटीमनी जैसे तत्व मिला दिए जाते हैं जिनकी बाहरी कक्षा में पाँच इलेक्ट्रॉन हों तो, आर्सेनिक या एंटीमनी (जिसे अशुद्धि-कहते हैं) के परमाणु अपने पास के चार जरमेनियम परमाणुओं से तो चार सहसंयोजी बंध बना लेते हैं परन्तु पाँचवाँ इलेक्ट्रॉन स्वच्छंद विचरण के लिए मुक्त होता है। यही स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन विद्युत संवाहन का कार्य करते

हैं। जरमेनियम में इस प्रकार के तत्वों, जिन्हें अशुद्धि कहते हैं, के मिलाने को 'डोपिंग' कहते हैं। इस प्रकार के जरमेनियम पर यदि विद्युत् क्षेत्र लगाया जाय तो स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन बैट्री के धन ध्रुव की ओर चलने लगेंगे।

इस प्रकार के जरमेनियम को N प्रकार का जरमेनियम कहते हैं क्योंकि इसमें विद्युत् संवाहन का कार्य इलेक्ट्रॉन करते हैं।

P प्रकार की जरमेनियम :

यदि जरमेनियम में अशुद्धि के रूप में इस प्रकार के तत्व, जिनकी बाहरी कक्षा में तीन इलेक्ट्रॉन हों, उदाहरणार्थ थैलियम या इंडियम, मिला दिए जाँय तो इस प्रकार के जरमेनियम को P प्रकार का जरमेनियम कहते हैं। इंडियम का परमाणु अपने पास के तीन जरमेनियम परमाणुओं के साथ तीन सहसंयोजी बंध बना लेता है। चौथे बंध को जरमेनियम का इलेक्ट्रॉन तो मिल जाता है परन्तु चूँकि इंडियम की बाहरी कक्षा में केवल तीन इलेक्ट्रॉन होते हैं अतः चौथे बंध में इंडियम का कोई इलेक्ट्रॉन नहीं रहता है फलतः चौथे बंध में एक इलेक्ट्रॉन की कमी रहती है, इसे छिद्र या होल कहते हैं। यद्यपि होल का मतलब होता है, एक इलेक्ट्रॉन की कमी परन्तु विद्युत् क्षेत्र लगाने पर यह एक धनात्मक आवेश की तरह व्यवहार करता है। जब P प्रकार के जरमेनियम में विद्युत् क्षेत्र लगाया जाता है तो चूँकि इसमें स्वतंत्र इलेक्ट्रॉन नहीं होते हैं अतः धनात्मक ध्रुव के पास इंडियम परमाणु अपने इलेक्ट्रान की कमी (होल) को पास के एक जरमेनियम बंध को तोड़कर पूरा कर लेते हैं। इस प्रकार एक होल में इलेक्ट्रॉन की कमी पूरी होते ही पास के दूसरे परमाणु में इलेक्ट्रान की कमी पैदा हो जाती है
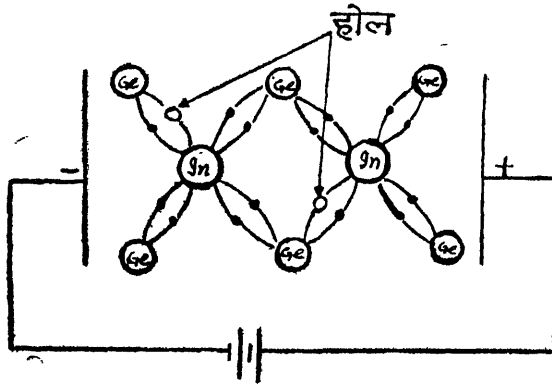
चित्र—2

P प्रकार के जरमेनियम में होल संवाहन

या दूसरे शब्दों में नए होल का जन्म होता है। जैसे इलेक्ट्रॉन बैट्री के धनात्मक ध्रुव की ओर चलते हैं, होल ऋणात्मक ध्रुव की ओर चलते हैं स्पष्ट है कि होल धनात्मक आवेश की तरह व्यवहार करते हैं। जैसे ही होल ऋणात्मक ध्रुव के पास पहुँचता है इसको इलेक्ट्रॉन प्राप्त हो जाता है और होल नष्ट हो जाता है; ठीक इसी समय धनात्मक ध्रुव किसी बंध से एक इलेक्ट्रॉन अपनी ओर खींच लेता है और एक नए होल का जन्म हो जाता है। यह होल उत्पन्न होने के तुरन्त बाद ऋणात्मक ध्रुव की ओर चलने लगता है। इस प्रकार क्रिस्टल के अंदर धारा का संचालन होलों द्वारा होता है। इस प्रकार के जरमेनियम को P प्रकार के जरमेनियम इसलिए कहते हैं क्योंकि इसमें विद्युत् संवाहन होलों द्वारा होता है जो कि धनात्मक आवेश वाहक के समान व्यवहार करता है।

P N जंक्शन डायोड :

P या N प्रकार के जरमेनियम में हम बैट्री को चाहे जिधर जोड़ें (चित्र 2) धारा में कोई अंतर नहीं पड़ता, हां ध्रुव बदलने से धारा की दिशा अवश्य परिवर्तित हो जायगी।

+ होल
− इलेक्ट्रॉन
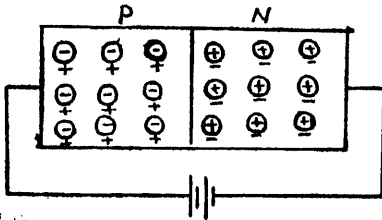
चित्र—3

P N जंक्शन पर धारा का प्रवाह

यदि P प्रकार और N प्रकार के जरमेनियम के दो टुकड़ों को आपस में मिला दिया जाय तो P N जंक्शन बन जाता है। अब यदि P N जंक्शन डायोड में P प्रकार की जरमेनियम को बैट्री के धन ध्रुव से और N प्रकार की जरमेनियम को ऋण ध्रुव से जोड़ दिया जाय तो P जरमेनियम में होल धन ध्रुव से प्रतिकर्षित होकर P-N जंक्शन की ओर तथा N जरमेनियम में इलेक्ट्रान ऋण ध्रुव से प्रतिकर्षित होकर P-N जंक्शन की ओर चलने लगेंगे। P-N जंक्शन पर एक प्रकार का 'विभव बाधा होती है अतः साधारण अवस्था में होल या इलेक्ट्रॉन इसे पार नहीं कर सकते परन्तु बैट्री के विद्युत् क्षेत्र के प्रभाव के कारण होल जंक्शन को पार करके दाहिनी ओर तथा इलेक्ट्रॉन जंक्शन को पार करके बायीं ओर चलने लगते हैं। अतः जंक्शन पर धारा बहने लगती है। जंक्शन पार करते समय होल तथा इलेक्ट्रॉन आपस में मिलकर नष्ट हो जाते हैं। जैसे ही जंक्शन पर एक होल तथा एक इलेक्ट्रॉन मिलते हैं, बैट्री के धनात्मक ध्रुव पर एक सहसंयोजी बंध टूट जाता है तथा इलेक्ट्रॉन धन ध्रुव की ओर आकर्षित हो जाता है। इस प्रकार एक बंध टूटते ही एक नए होल का जन्म हो जाता है। यह होल फिर बैट्री के विद्युत् क्षेत्र के कारण जंक्शन की ओर चलने लगता है। इसी प्रकार N जरमेनियम में ऋण ध्रुव के पास इलेक्ट्रॉन, बैट्री के ध्रुव से आकर N क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। यह इलेक्ट्रान जंक्शन पर नष्ट किए हुए इलेक्ट्रॉनों का स्थान लेते रहते हैं। इस प्रकार यदि हम बैट्री को इस प्रकार जोड़ें कि धारा जंक्शन के आर-पार बहने लगे तो इसे अग्र अभिनत कहते हैं।

अब यदि चित्र 3 में दिखाये गये, बैट्री के ध्रुव बदल दिये जाँय अर्थात् धन के स्थान पर ऋण और ऋण के स्थान पर धन ध्रुव लगा दिया जाय तो स्थिति बिलकुल ही बदल जायगी। अब P क्षेत्र के होल ऋण ध्रुव की ओर तथा N क्षेत्र के इलेक्ट्रॉन धन ध्रुव की ओर आकर्षित होने लगेंगे परिणाम स्वरूप जंक्शन के आर-पार कोई धारा नहीं बहेगी। परन्तु ताप के कारण क्रिस्टल में सहसंयोजी बंध हरदम टूटते रहते हैं। इस प्रकार ताप के कारण बंध टूटने से P क्षेत्र में उत्पन्न इलेक्ट्रॉन जंक्शन पार करके ऋण ध्रुव की ओर चलेंगे। इसी प्रकार N क्षेत्र में उत्पन्न होल जंक्शन पार करके ऋण ध्रुव की ओर आकृष्ट होंगे। इस प्रकार जंक्शन के आर-पार बहुत ही थोड़ी धारा बहने लगती है। इस धारा को व्युत्क्रम धारा कहते हैं। बैट्री को इस प्रकार

से जोड़ने से जिससे P N जंक्शन के आर-पार धारा न बहे Reversc Bias कहते हैं ।

इस प्रकार हमने देखा कि चित्र (3) में जंक्शन से होकर धारा बहती है परन्तु ध्रुव बदलते ही जंक्शन से होकर धारा नहीं बहती । डायोडों के इस गुण का उपयोग करके प्रत्यावर्ती धारा को सरल धारा में परिवर्तित करने में किया जाता है । अतः जरमेनियम या सिलिकन डायोडों का उपयोग शोधक और संसूचक की तरह किया जाता है ।

जंक्शन ट्रायोड ट्रांजिस्टर—जिस प्रकार जंक्शन डायोड ट्रांजिस्टर डायोड वाल्व की तरह कार्य करता है । ठीक उसी प्रकार जंक्शन ट्रायोड ट्रांजिस्टर ट्रायोड वाल्व की तरह कार्य करता है । जंक्शन ट्रांजिस्टर आवर्धक और दोलक की तरह कार्य कर सकता है ।

P-N-P जंक्शन ट्रांजिस्टर

यदि चित्र (4) में दिखाये गये ढंग से P-N-P ट्रांजिस्टर में बैट्री जोड़ दी जाय तो N क्षेत्र P क्षेत्रों की अपेक्षा धनात्मक होगा या यों कह सकते हैं कि P क्षेत्र N क्षेत्र की तुलना में ऋणात्मक होगा । अतः N क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन दोनों P-N जंक्शनों से दूर धन ध्रुव की ओर चलने लगेंगे और P क्षेत्र में होल जंक्शन से दूर यानी ऋण ध्रुव की ओर आकृष्ट होंगे इस अवस्था में धारा का बहाव बन्द हो जायगा अर्थात् ट्रांजिस्टर से होकर कोई धारा नहीं बहेगी ।
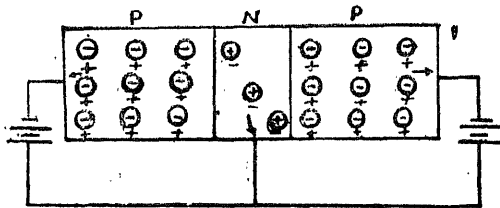
चित्र 4

P-N-P जंक्शन जिसमें धारा का प्रवाह नहीं होता

अब यदि P-N-P जंक्शन में बैट्री चित्र (5) में दिखाये गये ढंग से जोड़ दी जाय तो बायें ओर का P क्षेत्र आगे की दिशा में धनात्मक वियास वाला होगा ।
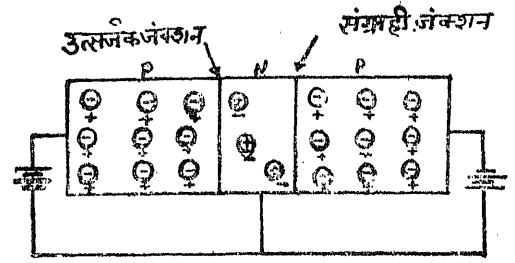
चित्र—5

P-N-P जंक्शन जिसमें होकर धारा बहती है । इस परिपथ का उपयोग ट्रांजिस्टर तथा अन्य परिपथों में किया जाता है ।

बायीं ओर के P क्षेत्र में होल बैट्री के धन ध्रुव से प्रतिकर्षित होकर P-N जंक्शन की ओर चलने लगेंगे । इस जंक्शन को एमिटर जंक्शन कहते हैं । ट्रांजिस्टर में अग्र अभिनत जंक्शन को हमेशा एमिटर जंक्शन कहते हैं । बैट्री के क्षेत्र के प्रभाव के कारण होल P-N जंक्शन पर विभव बाधा कोपार करके N क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । यह क्षेत्र अत्यन्त पतली स्तर का बना होता है साथ ही इसमें अशुद्धि की मात्रा भी बहुत कम रखी जाती है । अतः इस स्तर को पार करते समय बहुत ही कम होल नष्ट होते हैं क्योंकि इस क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन कम होते हैं । नष्ट (इलेक्ट्रॉन से मिलकर) होने से बचे इलेक्ट्रॉन जंक्शन को पार करके P क्षेत्र में प्रवेश करते हैं । N क्षेत्र को आधार भी कहते हैं । ट्रांजिस्टर पश्च अभिनत वाले जंक्शन को कलेक्टर जंक्शन कहते हैं ।

जैसे ही होल संग्राही ध्रुव के पास पहुँचता है, एक इलेक्ट्रॉन इससे मिलकर इसे नष्ट कर देता है । जैसे ही कोई होल N क्षेत्र या P क्षेत्र में इलेक्ट्रॉन से संयोग करके नष्ट होता है वैसे ही धन ध्रुव के पास एक सहसंयोजी बँध टूट जाता है और एक नये होल का जन्म होता है । यह होल उत्पन्न होते ही एमिटर जंक्शन की ओर चलने लगता है और अंततः संग्राही जंक्शन पार करके कलेक्टर ध्रुव पर जाकर नष्ट हो जाता है । इसी क्रिया की बार-बार पुनरावृत्ति होती रहती है

[शेष पृष्ठ 11 पर]

अमेरिकी-रूसी सम्मिलित पड़ाव

शुकदेव प्रसाद

21 जुलाई, 1969 को प्रातः 8 बजकर 25 मिनट पर जब अमेरिकी वैज्ञानिक नील आर्मस्ट्रांग ने इन शब्दों 'मानव का छोटा कदम और मानवता की विशाल छलाँग' के साथ चन्द्रतल पर अपने कदम रखे तो विज्ञान की इस रोमांचकारी उपलब्धि पर संसार भर में खुशी की एक लहर दौड़ पड़ी तथा संसार 'अद्भुत,' 'आश्चर्यजनक,' 'महान' शब्दों की ध्वनि-प्रतिध्वनियों से गूँज उठा। निश्चय ही यह घटना एक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक घटना थी और समूचे विश्व ने इसका हार्दिक स्वागत किया था।

इसके बाद तो कई बार मानव धरती से चाँद तक हो आया। वहाँ की धरती से कुछ चट्टानें भी साथ ले आया तथा अन्य ग्रहों की ओर परीक्षण हेतु अपने यान भी भेजे और अब भी तमाम अन्तरिक्ष सम्बन्धी अनु-संधान कार्य जारी है लेकिन 15 जुलाई को एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटना घटने जा रही है जिसके बारे में सुनकर आपको सहसा विश्वास भी न होगा। कल्पना कीजिए उस क्षण की जब अन्तरिक्ष में दो भिन्न यान आपस में जुड़ेंगे और दोनों यानों के यात्री क्रमशः दूसरे यानों में जायेंगे, वहाँ रहकर दोनों यानों के यात्री साथ-साथ उठेंगे, बैठेंगे, भोजन करेंगे और वैज्ञानिक परीक्षण भी। इस घटना के कल्पना मात्र से आपका हृदय विस्मय और आश्चर्य से पुलकित हो उठेगा। इस साहस भरे, रोमांचकारी कदम को उठाने जा रहे हैं अमेरिका और रूस के कुछ वैज्ञानिक तथा इस घटना का नाम है—अपोलो-सोयूज टेस्ट प्रोजेक्ट यानी अपोलो सोयूज परीक्षण परियोजना।

निश्चय ही यह घटना महत्वपूर्ण उपलब्धि होगी—विज्ञान की एक तथा दो राष्ट्रों के बीच आपसी सहयोग, सद्भावना और मैत्री का गौरवशाली उदाहरण।

करिश्मा लेखक की कल्पना का

आपको यह जानकर और भी आश्चर्य होगा कि इस वैज्ञानिक प्रयोग को साकार रूप देने का श्रेय एक लेखक के दिमाग की उड़ान को है।

विज्ञान गल्प तथा रोमांचक कहानियों के लेखक मार्टिन केडिन ने 1969 में अंतरिक्ष सम्बन्धी एक उपन्यास लिखा था—'मैरुण्ड', जिसमें किसी प्रकार अंतरिक्ष में फँसे हुए अमेरिकी अन्तरिक्ष यात्रियों को एक रूसी यान द्वारा बचाए जाने का जिक्र था।

इसी उपन्यास पर बनी 'मैरुन्ड' फिल्म 1970 में वाशिंगटन में दिखायी जा रही थी। अमेरिकी विज्ञान अकादमी के अध्यक्ष फिलिप हैंडलर इस फिल्म को देखकर इतना प्रभावित हुए कि जब वे मास्को गए तब वहाँ के वैज्ञानिकों से कुछ ऐसा ही 'अमेरिकी-रूसी परीक्षण' कर गुजारने की बातचीत की। उन्होंने फिल्म की पूरी कहानी का वर्णन रूसियों को सुनाया। उल्लेखनीय है कि रूसी वैज्ञानिक यह जानकर बड़े प्रभावित हुए कि एक अमेरिकी फिल्म में रूसी वैज्ञानिक को 'हीरो के रूप में प्रदर्शित किया गया है जो कि अन्तरिक्ष में फँसे अमेरिकी वैज्ञानिकों को अपने यान से निकाल कर, आक्सीजन पहुँचा कर उनकी जान बचाया है। इस फिल्म की बात उनके दिमाग में घर कर गयी। फिर दोनों राष्ट्रों के राजदूतों एवं नेताओं के बीच वार्ताएँ हुईं तथा सम्मिलित रूप से विभिन्न क्षेत्रों में वैज्ञानिक प्रयोग करने हेतु दोनों राष्ट्रों के बीच 24 मई, 1972 को एक समझौता हुआ जिसके प्रथम चरण के रूप में 'अमेरिकी-रूसी परीक्षण परियोजना' हमारे सामने आ रही है। निश्चय ही इसका श्रेय 'मैरुन्ड' के लेखक श्री मार्टिन केडिन को है जिनकी कल्पना

मात्र से विज्ञान जगत में एक युग के सूत्रपात का शुभारंभ हुआ है।

कार्यक्रम की योजना

पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार 15 जुलाई, 1975 को 15 बजकर 36 मिनट (मास्को समयानुसार) पर 'वोस्तोक' मिसाइल बायकोनूर अन्तरिक्ष केन्द्र से उदित होगा जो कि सोयूज नामक रूसी अन्तरिक्ष यान को अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त करेगा। इस सोयूज यान में दो रूसी वैज्ञानिक (Aleksey Leonov तथा Valeriy Dubasov) होंगे। इस उड़ान के ठीक साढ़े सात घंटे बाद एक दूसरा मिसाइल 'सैटन IB' केपकनेडी (फ्लोरिडा) से अपोलो अन्तरिक्ष यान को प्रक्षिप्त करेगा जिनमें तीन अमेरिकी वैज्ञानिक (Thomas P. Stafford, Vance D. Brand तथा Donald K. slayton) होंगे।

सोयूज की उड़ान के 48 घंटे बाद दोनों यानों में अंतरिक्ष में मिलने की संभावना है। उस समय सोयुज 35 चक्कर पूरे कर 38वें चक्कर में होगा तथा अपोलो अपने 29वें चक्कर में होगा। यह वही समय होगा जब कि समस्त विश्व के लोगों दिलों को थामे टेलिविजन पर उस रोमांचकारी दृश्य को देखने के लिए बेसब्री से इंतजार करते रहेंगे जब कि अपोलो और सोयूज यान आपस में मिलेंगे।

दोनों यानों को आपस में जोड़ने के लिए 3 मीटर लम्बा व 1·5 मीटर व्यास वाला 'डॉकिंग मॉडयूल' प्रयुक्त होगा। प्रारम्भ में यह अपोलो यान से जुड़ा रहेगा। पृथ्वी की रक्षा में 28 चक्कर लगाने के बाद 'डॉकिंग मॉडयूल' सहित अपोलो समागम के लिए सोयूज की ओर बढ़ेगा और फिर दोनों यान आपस में जुड़ जायेंगे। मिलने के बाद दोनों यान करीब 48 घंटे तक साथ-साथ उड़ेंगे। इस बीच दोनों यानों के बीच यात्रियों का एक दूसरे के यानों में चार बार आना-जाना होगा। लेकिन हर हालत में प्रत्येक यान में उस देश का एक यात्री हमेशा रहेगा।

अपोलो यान के केबिन में वातावरण में पृथ्वी पर के सामान्य दाब के लगभग एक तिहाई दाब पर शुद्ध आक्सीजन है। और सोयूज यान के वातावरण में सामान्य दाब पर आक्सीजन व नाइट्रोजन का मिश्रण है। स्पष्ट है कि दोनों देशों के अंतरिक्ष यात्री भिन्न-भिन्न वातावरण में साँस लेने में कार्यरत होंगे। अतः ऐसी स्थिति में दोनों यानों के यात्रियों को एक यान से दूसरे यान में जाने पर साँस लेने में कठिनाई हो सकती है। अतः इससे छुटकारा पाने के लिए डाकिंग मॉडयूल में एयरलाक (वायुपेटिका) की व्यवस्था की गयी हैं एक यान से दूसरे यान में जाने से पहले यात्री दो घंटे तक वायुपेटिका में रहेंगे। वायुपेटिका के अंदर का वातावरण धीरे-धीरे परिवर्तित किया जायगा ताकि नए वातावरण में पहुँचने पर अंतरिक्ष यात्रियों को कठिनाई न महसूस हो।

संयुक्त उड़ान के दौरान अमेरिकी यात्री सोयूज में पहुँच कर रूसी बोलेंगे तथा रूसी यात्री अपोलो यान में पहुँचकर अँग्रेजी में वार्ता करेंगे। इन यात्रियों को पहले से ही अँग्रेजी, तथा रूसी भाषा का ज्ञान कराया गया है। रूसी वैज्ञानिकों को 'नासा' (राष्ट्रीय उड्डयन एवं अन्तरिक्ष प्रसाशन) में प्रशिक्षण दिया गया है तथा अमेरिकी वैज्ञानिक अभी अप्रैल में प्रशिक्षण हेतु रूस गये थे। दो दिनों की सहयात्रा में दोनों राष्ट्रों के वैज्ञानिक एक दूसरे के यानों की प्रणालियों का अध्ययन करेंगे। साथ-साथ भोजन करेंगे तथा पृथक एवं संयुक्त रूप से कई वैज्ञानिक प्रयोग भी।

वैज्ञानिक प्रयोग

संसार के विभिन्न राष्ट्रों द्वारा सुझाये गये 145 प्रयोगों में से केवल कुछ ही प्रयोग इस परियोजना द्वारा किये जायेंगे। कुछ प्रयोग तो दोनों राष्ट्रों के वैज्ञानिक पृथक रूप से करेंगे। लेकिन पाँच प्रयोग संयुक्त रूप से किये जायेंगे जिनका विवरण इस प्रकार है।

पराबैंगनी अवशोषण प्रयोग

प्रथम प्रयोग, जिसे वैज्ञानिकों ने 'पराबैगनी अवशोषण' नाम दिया है—का उद्देश्य है अंतरिक्ष में

आक्सीजन व नाइट्रोजन की सांद्रता मापन। इस प्रयोग में अपोलो से निकली पराबैगनी किरणें सोयूज पर लगे परावर्तकों से टकरायेंगी और वापस होकर अपोलो पर आयेंगी, जिनकी सहायता से अपोलो यान के वैज्ञानिक यंत्र अंतरिक्ष में उपस्थित आक्सीजन और नाइट्रोजन की सांद्रता को मापेंगे।

यूनिवर्स फरनेस प्रयोग

इस प्रयोग में अन्तरिक्ष में भारहीनता की स्थिति में विभिन्न धातुओं को भट्ठी में पिघलाकर उनके ठोस होने (मिश्रण बनने) व मणिभ बनने की क्रियाओं का अध्ययन किया जायेगा। इस प्रयोग द्वारा यह ज्ञात होगा कि धातुओं के मिश्रण बनाने में भारहीनता का क्या प्रभाव पड़ता है। ऐसा समझा जाता है कि अंतरिक्ष में धरती की अपेक्षा दस गुने बड़े और अधिक मिश्रण बनाना सम्भव है।

कृत्रिम सूर्य ग्रहण प्रयोग

दोनों यानों के मिलने के 48 घंटे बाद जब दोनों यान अलग होंगे तब यह प्रयोग किया जायगा। सोयूज से अलग होने के बाद अपोलो यान सूर्य और सोयूज के बीच आकर रूसी अंतरिक्ष यात्रियों के लिए कृत्रिम सूर्य ग्रहण की स्थिति पैदा करेगा। जिसका छाया चित्र रूसी अंतरिक्ष यात्री लेंगे। केवल पूर्ण सूर्य ग्रहण के समय ही सूर्य के कोरोना को देखा जा सकता है। लेकिन इस कृत्रिम सूर्य ग्रहण की स्थिति द्वारा सूर्य के कोरोना का चित्र लिया जा सकेगा। यह प्रयोग सूर्य अध्ययन में अति सहायक होगा।

माइक्रोब इक्सचेंज प्रयोग

जीव विज्ञान के इस प्रयोग में अन्तरिक्ष यात्रियों के बीच सूक्ष्म जीवाणुओं की प्राकृतिक अदला-बदली का निरीक्षण किया जायगा।

रिंग-फंजाई प्रयोग

रिंग-फंजाई एक कवक (फफूंद) है। अन्तरिक्ष की निर्मित परिस्थितियों का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसका अध्ययन इस प्रयोग में किया जायगा।

अपोलो-सोयूज परियोजनाः अमित सम्भावनाएँ

अपोलो सोयूज परियोजना निश्चय ही अन्तरिक्ष अनुसंधान की दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम है। इस प्रयोग से वैज्ञानिकों को ढेर सारी आशाएँ हैं!

इस योजना की सफलता इस बात की परिचायक होगी कि अन्तरिक्ष में फंसे यान तथा यात्रियों को दूसरे यान द्वारा छुटकारा दिलाया जा सकता है।

यह प्रयोग इस बात का भी द्योतक है कि जो राष्ट्र वैज्ञानिक परीक्षणों के लिए उत्सुक हैं, लेकिन आर्थिक दृष्टि से कमजोर के नाते परीक्षण करने में असमर्थ हैं, आपस में मिलकर सब कुछ कर सकते हैं। इस प्रकार के सहयोग से यह लाभ होगा कि कई राष्ट्रों के साथ कार्य करने से खर्चा भी कम पड़ेगा।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि संसार के विभिन्न राष्ट्र आपसी द्वेष की भावना को समाप्त करके एक साथ आगे बढ़ेंगे जिससे 'वसुधैव कुटुम्बकम' वाली उक्ति चरितार्थ होगी और समूची मानव जाति का कल्याण होगा।

[सोयूज—अपोलो उड़ान के सफल प्रयोग के पूर्व इस अंक का मैटर प्रेस में जा चुका था। यह संयुक्त उड़ान अब सफलतापूर्वक समाप्त हो गई है और इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी अगले अंक में दी जायगी। पाठक अगले अंक की प्रतीक्षा करें—सम्पादक]

शुकदेव प्रसाद

● ●

सीमेंट

देवेन्द्र चन्द्र

"सीमेन्ट" नामक वस्तु से लगभग हर व्यक्ति परिचित है। भवन-निर्माण में बहुधा यही प्रयुक्त होती है। वैसे सुर्खी-चूना, बालू चूना तथा मिट्टी के गारे का प्रयोग भी किया जाता है। अब धान की भूसी की राख भी इस काम में प्रयुक्त की जा रही है। परन्तु इन सब में सीमेन्ट सर्वोपरि है।

भवन निर्माण में प्रयुक्त सीमेन्ट 'पोर्टलेंड सीमेन्ट' होती है। इसका निर्माण एक विशेष प्रकार की मिट्टी से किया जाता है। इस मिट्टी में चूना तो होता ही है, साथ ही सिलिका, एल्यूमिना, और आयरन ऑक्साइड भी होते हैं। 'सीमेन्ट' निर्माण में प्रथम पद होता है—चूनायुक्त मिट्टी को एक विशेष प्रकार की भट्टी में सावधानीपूर्वक आक्सीकारकों की उपस्थिति में इतने ताप तक गर्म करना कि मिट्टी गल जाय। इसके बाद दूसरे पद में गलित को ठंडा किया जाता है। ठंडा होकर गलित छोटी-छोटी कठोर गोलियों के रूप में हो जाता है। इन गोलियों को क्लिकर कहते हैं। क्लिकर में चार प्रतिशत जिप्सम [$Ca\ SO_4 . 2H_2O$] होता है। क्लिकर को बारीक पीसकर 'पोर्टलेंड सीमेन्ट' बना लिया जाता है। सीमेन्ट का सलेटी रंग जिप्सम के कारण होता है।

सीमेन्ट कई प्रकार की होती है—

(1) **सामान्य पोर्टलेंड सीमेन्ट**—सीमेन्ट का सर्वसाधारण प्रकार है। पानी के साथ क्रिया कर इस सीमेन्ट को सैट होने में लगभग छह घंटे लगते हैं।

(2) **सफेद पोर्टलेंड सीमेन्ट**—हल्के पीले रंग की सीमेन्ट होती है। पीला रंग आयरन ऑक्साइड के कारण होता है। मकानों के सामने का हिस्सा इस सीमेन्ट से बनाया जाता है।

(3) **जल सह पोर्टलेंड सीमेंट** जल से प्रभावित नहीं होती। इसमें अल्प मात्रा में कैल्शियम स्टीरियेट [$(C_{17}H_{35}COO)_2Ca$] अथवा खनिज तेल मिले होते हैं। मकानों की नींव आदि में इसका प्रयोग होता है।

(4) **अल्प ताप पोर्टलेंड सीमेन्ट** में एल्यूमिनेट्स की अधिकता होती है। इससे यह सैट होते समय कम ताप देती है।

(5) **सल्फेट सह पोर्टलेंड सीमेन्ट** जल में घुले सल्फेटों से प्रभावित नहीं होती।

जोसेफ एस्पडीन नामक अंग्रेज ईंट निर्माता ने सर्वप्रथम 1824 में सीमेन्ट का पेटेन्ट कराया था। यद्यपि सीमेन्ट की खोज 1824 से पूर्व हो चुकी थी। एस्पडीन ने सीमेन्ट का निर्माण चूने के पत्थर [$Ca\ CO_3$] तथा मिट्टी से किया था। उसने कैल्शियम कार्बोनेट को गर्म कर मिट्टी में मिलाकर पानी के साथ पेस्ट बनाया था। इस पेस्ट को वह चूने की भट्टी जैसी भट्टी में गर्म करता था। जब पेस्ट सूख कर जम जाता था, तब वह इसे पीस कर सीमेन्ट बनाता था।

आज भी सामान्य पोर्टलेंड सीमेन्ट (सुविधा के लिये आगे इसे केवल सीमेन्ट कहेंगे) का निर्माण एस्पडीन की विधि से किया जाता है। अंतर इतना ही है कि आधुनिक भट्ठियाँ अधिक उन्नति प्राप्त हैं तथा पूरा सीमेन्ट संयंत्र पूर्णतया स्वचालित होता है।

आधुनिक विधि में सीमेन्ट दो विधियों से बनाई जाती है। एक विधि आर्द्र विधि है और दूसरी शुष्क विधि है। आर्द्र विधि तथा शुष्क विधि में अंतर इतना ही है कि आर्द्र विधि में भट्टी में प्रयुक्त कच्चा माल गीला सूखा होता है जबकि शुष्क विधि में सूखा होता है। सीमेन्ट के गुण दोष 'एक्स-किरणों से' अथवा 'बन्द परिपथ टी० वी० उपकरण' से जाने जाते हैं।

सीमेंट भट्टी में क्या-क्या रासायनिक प्रक्रियाएँ होती हैं, ये अब ज्ञात हो चुकी हैं। भट्टी में गलित पदार्थ

में Ca^{2+}, Fe^{2+}, Al^{3+} तथा SiO_4^{4-}, AlO_2^- आयनों की उपस्थिति निश्चित है। इसके अतिरिक्त Na^+, K^+, Mg^{2+} तथा $[Al_2 \ Fe_2 \ O_{10}]^8$ आयन भी होते हैं। ये सभी परस्पर मिलकर सीमेंट के क्रिस्टल बनाते हैं।

क्लिकर में उपस्थित रासायनिक पदार्थ निम्न है :

ट्राई कैल्शियम सिलिकेट $Ca_3 \ SiO_5$

ट्राई कैल्शियम एल्यूमिनेट $Ca_3 \ (AlO_3)_2$

टैट्रा कैल्शियम एल्यूमिनोफैराइट $Ca_4 \ Al_2 \ Fe_2O_{10}$

β डाई कैल्शियम सिलिकेट $\beta \ Ca_2 \ SiO_4$

सन् 1897 में 'पोलेराईजिग सूक्ष्मदर्शी' इन यौगिकों की उपस्थिति परखी गई। इन यौगिकों की प्रतिशत मात्रा दो बातों पर निर्भर करती है। प्रथम-प्रयुक्त कच्चे माल के प्रकार पर तथा द्वितीय—भट्टी के ताप पर।

पानी से क्रिया

सीमेंट की पानी से क्रिया बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी क्रिया में बने पदार्थ ही सीमेंट को जमने का गुण प्रदान करते हैं। सीमेंट की पानी से क्रिया चार पदों में होती है।

(1) पहले पाँच मिनटों में क्रिया की गति तीव्र होती है।

(2) बाद में क्रिया की गति कम हो जाती है। इस समय सीमेंट सेट सा हो जाता है। इसे आभासी जमावट या Fale Setting कहा जाता है। यह आभासी जमावट लगभग पौन-एक घंटा ही रहती है।

(3) लगभग तीन घंटों तक क्रिया की गति फिर तेज हो जाती है। इस पद में सीमेंट की प्रत्यास्थता समाप्त हो जाती है।

(4) लगभग छह घंटों बाद वास्तविक जमावट होती है। इसमें बहुत धीमी गति से क्रियाएँ होती हैं।

जब सीमेंट की पानी से क्रिया होती है तो कैल्शियम हाइड्रोक्साइड $[Ca \ (OH)_2]$ तथा जटिल हाइड्रेट्स बनते हैं। सीमेंट में उपस्थित चारों यौगिक पानी से क्रिया करते हैं। ट्राई कैल्शियम सिलिकेट, ट्राई कैल्शियम एल्यूमिनेट तथा टैट्रा कैल्शियम एल्यूमिनो फेराइट तेजी से पानी से संयोग करते हैं जबकि β डाई कैल्शियम सिलिकेट धीमी गति से संयोग करता है।

इन सब क्रियोपक्रियाओं के अंतिम उत्पाद ही सैटिंग में सहायक होते हैं। अंतिम उत्पाद कैल्शियम सिलिकेट हाइड्रेट के गुणों वाले होते हैं। कैल्शियम सिलिकेट हाइड्रेट का सूत्र $CaO_{0\cdot8-1\cdot5} \ SiO_2 \ H_2Ox$ है जो खनिज टोबर्मोराइट के समान ही है।

पानी से मिलने के लगभग पाँच मिनट बाद क्रिया की गति मंद हो जाती है तथा सीमेंट आभासी रूप से सैट हो जाता है। यह सैटिंग अस्थाई होती है तथा इसका कारण माध्यमिक यौगिक—सल्फो एल्यूमिनेट्स का बनना है। सल्फोएल्यूमिनेट यौगिक शेष सीमेंट अणुओं तथा जल अणुओं के मध्य दीवार सी खड़ी कर देते हैं। इस समय एल्यूमिनेट तथा फैराइट यौगिक हाइड्रेट बना लेते हैं। ये हाइड्रेट ही सीमेंट की वास्तविक सैटिंग का कारण होते हैं। इनमें ट्राई कैल्शियम एल्यूमिनेट हाइड्रेट तथा टैट्रा कैल्शियम एल्यूमिनोफेरेट हाइड्रेट मुख्य हैं।

उपर्युक्त वर्णित हाइड्रेट ही गारे [सीमेंट + बालू + पानी] तथा कंक्रीट [सीमेंट + बजरी + बालू + पानी] के जमने का कारण हैं। ट्राई-कैल्शियम सिलिकेट पानी तथा β डाई-कैल्शियम सिलिकेट की क्रिया में उत्प्रेरक है।

ऊपर हमने बताया है कि ट्राई कैल्शियम सिलिकेट β डाई कैल्शियम सिलिकेट से ज्यादा क्रियाशील होता है। इसका कारण है कि उसके क्रिस्टल कंटक युक्त होते हैं।

यह हम बता चुके हैं कि सीमेंट के जमने का कारण ट्राई कैल्शियम एल्यूमिनेट हाइड्रेट तथा टैट्रा कैल्शियम एल्यूमिनोफैरेट हाइड्रेट ही हैं। अब भी यह स्पष्ट नहीं हुआ है कि ये दो यौगिक किस प्रकार सीमेंट को सेट करते हैं।

देवेन्द्र चन्द्र
माता मंदिर रोड
काशीपुर 244713 (उ० प्र०)

रबड़

पुरुषोत्तम दास स्वामी

प्राकृतिक रबड़ विशिष्ट भौतिक गुणों वाला तथा बड़े आणविक आकार का हाइड्रोकार्बन के पुरुभाजन से बना पदार्थ है। यह कई प्रकार के पेड़ों झाड़ियों तथा लतिकाओं से प्राप्त होता है। व्यापारिक दृष्टि-कोण से रबड़ केवल उन्हीं पौधों से निकाला जाता है जो भूमध्यरेखा के दोनों ओर 10° अक्षांश के प्रदेशों में लगे हुए हैं। रबड़ श्रीलंका, भारत, बर्मा, दक्षिण अमेरिका, मध्य अमेरिका, अफ्रीका, मलयेशिया, थाईलैंड तथा इंडोनेशिया के जावा, सुमित्रा आदि प्रदेशों में तैयार किया जाता है। विश्व के रबड़ के उत्पादन का 98% से अधिक भाग रबड़ के पेड़ हेविया ब्रेजिलि-येंसिस से प्राप्त किया जाता है। श्रीलंका, जावा, सुमात्रा व मलयेशिया से विश्व उत्पादन का 97% भाग आता है। रबड़ का रासायनिक सूत्र $(C_8 H_8)n$ है।

प्राकृतिक रबड़ एक प्रत्यास्थ पदार्थ है। यह कुछ पौधों से प्राप्त आक्षीर अर्थात् लैटेक्स से तैयार किया जाता है। रबड़ अधिकत: श्रीलंका तथा मलयेशिया में बनाया जाता है। मलयेशिया में प्रति एकड़ 100-120 पेड़ उगाये जाते हैं और इनसे प्रतिवर्ष 425 पौंड सूखा रबड़ मिलता है। जब पौधे छ: साल के हो जाते हैं तो वे आक्षीर देना शुरू कर देते हैं। ऐसा पेड़ के 40 साल के हो जाने तक होता रहता है। रबड़ के पेड़ की छाल के ठीक नीचे दूध के सामान आक्षीर भरा होता है। छाल को अलग करके स्थानीय निवासी बहते हुए आक्षीर को प्यालों में इकट्ठा कर लेते हैं। पेड़ों से प्रति दूसरे दिन आक्षीर इकट्ठा किया जाता है। एक पेड़ से एक बार एक उमंडस के बराबर आक्षीर प्राप्त होता है। एक पेड़ से साल भर में 3-6 पौंड रबड़ मिल जाता है।

आक्षीर दूधिया रंग का कलोरीय द्रव होता है। इसमें 30-45% तक रबड़ एक से दो माइक्रोन व्यास के कणों के रूप में रहता है। इसका शेष भाग मुख्यतः पानी होता है पर थोड़ी मात्रा में प्रोटीन तथा उद्यास-मय पदार्थ पाये जाते हैं। आक्षीर से रबड़ प्राप्त करने की दो विधियाँ हैं। एक विधि के अनुसार आक्षीर को हलका बना कर, जिससे उसमें 15% रबड़ रहे, ताप द्वारा या उसमें ऐसिटिक या फार्मिक अम्ल मिला कर रबड़ का स्कंधन कर लिया जाता है, और इस प्रकार प्राप्त रबड़ का परिशोधन करके उससे चीजें तैयार की जाती हैं। दूसरी विधि में आक्षीर में ही उपयुक्त पदार्थ मिलाकर घोल से अभीष्ट आकृति की वस्तुओं के रूप में रबड़ का अवक्षेपण किया जाता है। रबड़ के दस्ताने आदि इस प्रकार सीधे तैयार कर लिये जाते हैं।

अभी यह बतलाया गया है कि असंस्कृत रबड़ आक्षीर के प्रारम्भिक अम्लों द्वारा स्कंधन से मिलता है। इस स्कंधित पदार्थ को बेलनों के बीच में भेजकर उसे पानी से खूब धोया जाता है। रबड़ की धुली चद्दरों को ज्योंही वे बेलनों के नीचे से होकर बाहर आती हैं, सुखाया जाता है। यदि विभिन्न गति से घूमने वाले खुरदरे बेलनों का प्रयोग किया गया हो और चद्दरों को हवा में टांग करके सुखाया गया हो, तो जो रबड़ तैयार होता है उसे पीला-सा क्रेप रबड़ कहते हैं। यदि समान वेग से घूमने वाले चिकने बेलनों का प्रयोग किया गया हो और रबड़ की चद्दरों को धूम्र कक्ष में सुखाया गया हो तो उन्हें धूमित चद्दरों की संज्ञा दी जाती है। यह पीले क्रेप रबड़ की अपेक्षा अधिक दृढ़ या चिमड़ा होता है। असंस्कृत रबड़ चिमड़ा, मजबूत, प्रत्यास्थ पदार्थ है। इसमें C_8H_8 की 92 या अधिक कड़ियाँ लगी होती हैं।

इस रबड़ में वे गुण नहीं होते, जो हमारी चिर-परिचित रबड़ की बनी वस्तुओं में पाये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में तापमान इतना अधिक बढ़ जाता है कि

शुद्ध रबड़ नरम बनकर चिपचिपा हो जाता है और जाड़े में यह कठोर तथा भंगुर बन जाता है। इन दोनों अवस्थाओं में ही यह निकम्मा है। रबड़ में और चीजें मिलाकर तथा ताप या अन्य उपचार द्वारा उसके गुणों में वृद्धि कर दी जाती है। रबड़ निर्मित वस्तुओं के बनाने में निम्न प्रक्रियाएँ की जाती हैं—

अभिघट्यभावन (Plasticyzing)—रबड़ को विभिन्न गति से एक दूसरे की ओर घूमते हुए बेलनों के नीचे दबा कर तोड़ा जाता है। ऐसा कुछ देर तक करने से रबड़ में लोच उत्पन्न हो जाता है। अधिक अभिघट्यभानव से रबड़ का अपघर्षण के प्रति अवरोध कम हो जाता है।

आंशिक शोधन—लोचदार रबड़ में कई प्रकार के पदार्थ डालकर मिलाये जाते हैं। ये पदार्थ हैं—(1) गंधक—इसका प्रयोग वल्कनीकरण या गंधग्रहण प्रक्रिया में किया जाता है, जिसका उल्लेख आगे चलकर इसी लेख में किया जायगा। (2) प्रावेजक—ये वे रासायनिक पदार्थ हैं जो वल्कनीकरण की अवधि को घटाते हैं। ये उत्प्रेरक की तरह काम करते हैं। चूना मैगनेसिया, सीसे का पीला आॅक्साइड, सफेद सीसा तथा आंगारिक प्रावेजक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। जटिल आंगारिक यौगिक इस काम के लिए अधिक उपयुक्त हैं। इनकी मात्रा 0·5-1 % तक रहती हैं। जस्ते का आॅक्साइड जो प्रावेजक को सक्रिय बनाने का काम करता है, भी मिलाया जाता है। इससे वल्कनीकरण की गति और द्रुततर हो जाती है। (3) प्रति उपचयी-कारक—ये वे पदार्थ हैं, जिनका उपयोग थोड़ी मात्रा में करने पर वायु तथा प्रकाश के कारण होने वाली अवनति के वेग को घटा देते हैं। ये एक तरह से ऋणात्मक उत्प्रेरक हैं। ये भी जटिल प्रारिम्भक यौगिक होते हैं। इनका उपयोग रबड़ के एक सौभाग में इनका एक भाग मिलाकर किया जाता है। (4) पुनर्दृढ़ीकारक पदार्थ—ये पदार्थ रबड़ को मजबूत तथा चिमड़ा बनाते हैं। रबड़ यौगिक में ये 35 % तक मात्रा में रहते हैं। ये यौगिक जस्ते का आॅक्साइड, मैगनेसियम कार्बनेट, अंगार कालिमा, बैरियम सल्फेट, कैल्सियम, कार्बनेट तथा कुछ मिट्टियाँ हैं। (5) निष्क्रियपूरक—निर्माण क्रिया को सुगम बनाने के लिये मिश्रण के भौतिक गुणों को बदलने या पदार्थ की कीमत घटाने के लिये इनका प्रयोग किया जाता है। (6) रंग-जस्ते का सल्फाइड (सफेद), लिथोपोन (सफेद), टाइटैनियम डाई-आॅक्साइड (सफेद), लोहे का आॅक्साइड (लाल), सीसे का क्रोमेट (पीला), ऐंटिमनी सल्फाइड (सिंदूरी), क्रोमियम ट्राई-आॅक्साइड (हरा) व अल्ट्रामेरीन (नीला) रबड़ को रंगीन बनाने में प्रयुक्त होते हैं। (7) अभिघटक—इन पदार्थों में वनास्पतिक तैल, खनिज तैल, मोम, स्टियरिक अम्ल तथा रोजिन परिगणित होते हैं। (8) प्रकीर्ण पदार्थ-वल्कनीकरण से पहले रबड़मय पदार्थ को कड़ा करने के लिये स्तंभक पदार्थ, सिलिका या झामक पदार्थ अपघर्षक के रूप में तथा अन्य पदार्थ रबड़ में मिलाये जाते हैं। इस प्रकार रबड़ का आंशिक शोधन होता है।

केलेंडरीकरण—यदि रबड़ की चद्दरें तैयार करना हो तो उसे केलेंडर यंत्रों में भेजा जाता है। रबड़मय पदार्थ को बेलनों के नीचे डालकर दबाया जाता है और उसकी समान मुटाई वाली चद्दरें बनाई जाती हैं। यह मुटाई 0.003 से 0.1 इंच तक होती है। यदि मोटी चद्दर तैयार करनी हो तो उसे कई पतली चद्दर को एक साथ बेलनों के नीचे दबाकर बनाई जाती है। इससे इसमें वायुस्थल तथा अन्य दोष नहीं रह पाते।

वल्कनीकरण—इस विधि की खोज का श्रेय चार्ल्स गुड ईयर को है। उन्होंने सन् 1839 में इस विधि का पता लगाया। इस प्रक्रिया में रबड़ में गंधक मिला कर उसे गर्म किया जाता है। गंधक का रबड़ के अणु में दुहरे बंधन वाली जगह रासायनिक तौर पर गठ बंधन हो जाता है। इससे उसके भौतिक गुणों में महान् अंतर आ जाता है। गंध ग्रहण के बाद रबड़ में ये गुण पैदा हो जाते हैं—

(1) तापमान के परिवर्तनों का उस पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

(2) इसकी प्रत्यास्थता तथा आयन बल बढ़ जाता है।

(3) मौसम की खराबी से इसका कुछ नहीं बिगड़ता। अन्य शब्दों में यह अधिक टिकाऊ बन जाता है।

(4) रासायनिक प्रतिकारकों की क्रिया के विरुद्ध इसमें प्रतिरोध की मात्रा बढ़ जाती है।

वल्कनीकरण की क्रिया कई तरह से की जाती है—पदार्थ को दाबयुक्त भाप से गर्म किया जाता है, उसे हवा में या कार्बन डाईआक्साइड गैस में तपाया जाता है, रबड़ की बनी वस्तु में भाप सीधे प्रवाहित की जाती है, ऐसा आग बुझाने के लिये प्रयुक्त नल को बनाने में किया जाता है, दाबयुक्त गर्म पानी से भरे बर्तन में पदार्थ को डाल दिया जाता है या फिर साँचे में ही वल्कनीकरण की क्रिया की जाती है। इसके लिये अपेक्षित तापमान $110°$ से $140°$ सेंटीग्रेड होता है। इसमें कुछ मिनटों से लेकर तीन घंटे तक लग जाते हैं। गंधक की मात्रा एक सौ भाग रबड़ के पीछे 1-5 भाग रहती है। कठोर रबड़ के वल्कीकरण के लिये यह मात्रा 40-45% तक होती है। वल्कीकरण क्रिया ठंडे में भी की जा सकती है। इसके लिये रबड़-मय पदार्थ को सल्फर क्लोराइड में डुबोया जाता है या फिर उसे इसके वाष्प में रखा जाता है। यह क्रिया रबड़ की बहुत पतली चद्दरों पर ही की जा सकती है।

वल्कनीकृत रबड़ में प्रतिस्कंदन, निम्न स्थायी परि-दृढ़ता, अपघर्षण प्रतिरोध निम्न वैद्युत, तथा तापीय चालकता, हलके अम्लों, क्षारीय पदार्थों तथा जलने की क्रिया के प्रति अवरोध आदि गुण होते हैं। रबड़ पर हवा में मौजूद आक्सीजन तथा धूप का आक्रमण होता है। इससे बचने के लिए जैसा अन्यत्र कहा जा चुका है, प्रति उपचायक पदार्थ इसमें मिलाये जाते हैं। समाहृत अम्ल इसका सर्वनाश कर देते हैं। रबड़ बैंजनी, ईथर, पेट्रोल, कार्बन टेट्राक्लोराइड, तारपीन तथा कार्बन बाई-सल्फाइड में घुल जाता है। बैंजीन में रबड़ के घोल का उपयोग सरेस की भाँति किया जाता है।

रबड़ के कारखाने में फेंके गये रद्दी रबड़ तथा रबड़ की बनी सड़ी गली वस्तुओं से रबड़ को प्राप्त करना कठिन नहीं है। यद्यपि इसका फिर से उपयोग किया जा सकता है पर यह न समझ लेना चाहिये कि वह अब वल्कनीकृत नहीं रहा। रबड़ की पुनः प्राप्ति के लिये अलकली विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में धातु तथा कपड़े से जहाँ तक संभव हो रबड़ को अलग करके लोहे के एक बंद बर्तन में जिसमें कास्टिक सोडा का घोल भरा होता है, डालकर गर्म किया जाता है। इससे बाकी कपड़ा अलग हो जाता हो और स्वतंत्र गंधक अलकली सल्फाइड के रूप में हट जाता है। अब रबड़ को सावधानीपूर्वक धोकर सुखा लिया जाता है और ताजे रबड़मय यौगिक के साथ मिलाकर इसका प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार फिर से प्राप्त किये गये रबड़ में नये रबड़ के समान गुण नहीं होते। इसका आयतन बल, प्रत्यास्थता तथा टिकाऊपन कम होता है। फिर भी कभी-कभी यह काफी अच्छे किस्म का रबड़ बन जाता है।

आक्षीर का सीधा उपयोग—हाल ही में आक्षीर से ही रबड़ की चीजों को सीधे तैयार कर लेने की विधि का प्रचलन हो चला है। इसमें कई लाभ हैं। रबड़ तैयार करने के लिये अपेक्षित कीमती यंत्रों की आव-श्यकता नहीं पड़ती तथा रबड़ को तोड़ना जरूरी नहीं होता इन कारणों से इसका आयतन बल काफी अधिक रहता है और वल्कनीकरण तेजी से होता है। आक्षीर का आंशिक शोधन उसी प्रकार किया जाता है जिस प्रकार अवक्षिप्त रबड़ का होता है। केवल इतना अंतर है कि आक्षीर में अकार्बनिक पदार्थ मिलाकर उसका पुनर्दृढ़ी-करण नहीं किया जा सकता। आक्षीर में मिलाने से पहले सारे सूखे पदार्थों को पानी में प्रनिलंबित कर लिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाय तो वे आक्षीर को स्कंधित कर देते हैं। आक्षीर को तैयार माल बनाने के लिये कई तरह से काम में लिया जाता है। कुछ चीजें आक्षीर यौगिक में आकृतियों को डाल कर तैयार की जाती हैं, विसंवाहक तार आक्षीर में से तार को निकाल कर तैयार किया जाता है, रस्सिओं तथा कपड़ों पर रबड़ आक्षीर में उन्हें डालकर चढ़ाया जाता

है; स्कंधन बर्तन में आक्षीर के उत्प्लोनन द्वारा रबड़ के धागे बनाये जाते हैं और स्पंज रबड़ आक्षीर में यांत्रिक विधि से हवा फूंक कर और फिर उसमें स्कंधक मिला कर तैयार किया जाता है। इन सब में चीजों को तैयार करने के बाद रबड़ का वल्कनीकरण किया जाता है।

संश्लेषित रबड़—प्राकृतिक रबड़ के विश्लेषण से यह निश्चित हो गया है कि वह एक पुरुभाजित हाइड्रोकार्बन है, पर उसका व्यापारिक संश्लेषण एक टेढ़ी लकीर है। आजकल बड़े परिमाण में जो संश्लेषित रबड़ बनाया जाता है वह प्राकृतिक रबड़ सरीखा तो है पर बिलकुल वही नहीं है। सब प्रकार के संश्लेषित तथा प्राकृतिक रबड़ की सरलतम रासायनिक इकाई ब्युटेडीन है। इसका रासायनिक सूत्र $CH_2 = CH - CH - CH = CH_2$ है। इस प्रकार पाठक देखेंगे कि ब्युटेडीन में दो असंपृक्त कड़ियाँ हैं जिनसे इसका पुरुभाजन सहजही हो सकता है। यह यौगिक पेट्रोलियम के विखंडन से तथा ईथिल अल्कोहल से व्यापारिक परिमाण में तैयार किया जाता है। प्राकृतिक रबड़ मीथिल ब्युटेडीन या आइसोप्रीन का पुरुभाज पदार्थ है।

$$\begin{array}{c} CH_3 \\ | \\ CH_2 = C - CH = CH_2 \end{array}$$
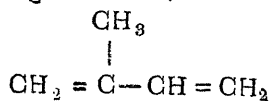
जब ब्युटेडीन या उसके प्रसूत पदार्थों का पुरुभाजन होता है तो इकाइयाँ मिलकर लम्बी श्रृंखलाओं का निर्माण करती हैं। एक कड़ी या श्रृंखला में १००० से ऊपर इकाई रहती हैं। सरल ब्युटेडीन मात्र से अच्छे किस्म का रबड़ नहीं बन सकता क्योंकि श्रृंखला में काफी चिकनी होती हैं और दृढ़ता से वे आपस में गुंथी नहीं होतीं। इसलिये रसायनवेत्ता या तो ब्युटेडीन को कुछ बदल कर या ब्युटेडीन तथा किसी दूसरे प्रांगारिक यौगिक के साथ पुरुभाजन द्वारा श्रृंखला में पार्श्व वर्गों को प्रविष्ट कर देता है।

नियोप्रीन सफलतम संश्लेषित रबड़ है और कई बातों में यह प्राकृतिक रबड़ से भी बढ़-चढ़ कर होता है। इसकी आधार इकाई क्लोरीन युक्त ब्युटेडीन है, जिसका रासायनिक सूत्र

$$\begin{array}{l} CH_2 = C - CH = CH_2 \\ \quad\quad\;\; | \\ \quad\quad\; Cl \end{array}$$
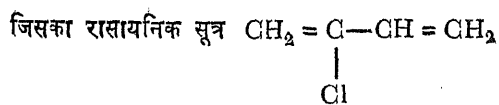
है। नियोप्रीन को तैयार करने के लिए ऐसिटीलीन को कच्चे माल के रूप में काम में लिया जाता है। इसके कारण यह संश्लेषित रबड़ अन्य संश्लेषित रबड़ वाले पदार्थों से महँगा पड़ता है। नियोप्रीन में यांत्रिक गुण अच्छे पाये जाते हैं, इसमें तैल अवरोध काफी अधिक होता है तथा हवा में उपचयन प्रतिरोध अत्यधिक पाया जाता है।

'ब्यूना एस' एक अन्य कृत्रिम रबड़ है। यह दो विभिन्न इकाइयों को मिलाकर सह-पुरुभाजन द्वारा नया यौगिक बनाकर तथा फिर उसके पुरुभाजन से तैयार किया जाता है। इसकी एक इकाई तो ब्युटेडीन है पर दूसरी स्टाइरीन। ब्यूनाएस का उपयोग यात्री गाड़ियों के लिये टायर बनाने में किया जाता है।

'ब्यूना एन' ब्युटेडीन तथा एक्राइलोनाइट्राइल का सहपुरुभाज पदार्थ है। इसकी यांत्रिक विशिष्टताएँ प्राकृतिक रबड़ जैसी ही हैं। इस पर तैल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बहुत कम तापमान पर इसकी दृढ़ता तथा प्रत्यास्थता बनी रहती हैं। हवाई जहाजों में आंत्रास नियन्त्रकों के प्रयोग के लिये अपेक्षित नल के रूप में यह पदार्थ प्रयुक्त होता है।

ब्युटिल रबड़ का, जो एक और कृत्रिम रबड़ है, गठन उपर्युक्त संश्लेषित रबड़ों से भिन्न होता है। इसकी इकाई ब्युटेडीन न होकर आइसो-ब्युटिलीन

$$\begin{array}{l} CH_3 \\ | \\ C = CH_3 \\ | \\ CH_3 \end{array}$$
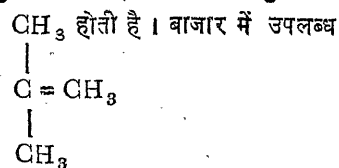
होती है। बाजार में उपलब्ध ब्युटिल रबड़ में लगभग 510 ब्युटेडीन सह पुरुभाजक के रूप में होता है, ब्युटिल रबड़ में हाइड्रोजन जैसी गैसों का प्रसरण उतनी तेजी से नहीं होता जैसाकि प्राकृतिक रबड़ में होता है। यह वायु में सहज ही उपचयित होकर खराब यहीं हो जाता। ब्युटिल रबड़

उपयोग मोटर गाड़ियों के ट्यूब तथा जीवन रक्षक पेटियाँ तैयार करने में किया जाता है।

थायोकोल—यह एक पूर्णतः विभिन्न गठन वाला कृत्रिम रबड़ है इसे ईथिलीन ($CH_2 = CH_2$) को अलकली युक्त पोलीसल्फाइड के साथ मिलाकर बनाया जाता है। पुरुभाजित अणु का एक भाग गंधक होता है। इसमें प्रत्यास्थता अधिक मात्रा में नहीं होती पर ताप तथा विलेयकों के विरुद्ध प्रतिरोध काफी अधिक होता है। इस कारण से इसका उपयोग गास्केट तथा पेट्रोलियम पदार्थ के प्रवाह के लिये प्रयुक्त रबड़ के नलों के रूप में किया जाता है। थाईलोक में दुर्गंध आती है, ईथिलीन के स्थान पर दूसरे असंपृक्त यौगिकों के प्रयोग से सुधरे हुए प्रांगारिक यौगिक पालीसल्फाइड बनाये गये हैं। इनमें से कइयों में यह अवगुण नहीं होता।

प्राकृतिक तथा बहुत से संश्लेषित रबड़ संपृक्त यौगिक होते हैं, जो हवा में पतली परत में खुले रखे जाने पर उपचायित होकर निकम्मे हो जाते हैं। जब रबड़ को क्लोरीन के साथ उपयुक्त परिस्थितियों में प्रतिक्रिया होती है तो संपृक्त यौगिक बन जाते हैं। ये निर्मल, गंधहीन, विषहीन तथा अदरनशील होते हैं। इनको घोला या दूसरे वार्निश पदार्थों के साथ मिलाया जा सकता है, जिससे इनमें नमी तथा अलकली पदार्थों के प्रति काफी अधिक अवरोध उत्पन्न हो जाता है। कांक्रीट को रँगने में इनका उपयोग किया जाता है। साधारण पेंट नमी तथा अलकली पदार्थों की संयुक्त प्रतिक्रिया से खराब हो जाते हैं। इस प्रकार के रबड़ से कैनवास को पोतने पर उस पर आसिताओं (mildew) का आक्रमण नहीं होता और कपड़े को आग प्रतिरोधक तथा वाटर-प्रूफ बना देता है। इस्पात को क्षारण से बचाने के लिये इसका उपयोग वांछनीय है। संपरिवर्तित रबड़ को, जो विभिन्न रासायनिक विधियों से बनाया जाता है, 260° से 300° फेरेनहीट तापमान तथा 1200-1400 पौंड प्रति वर्ग इंच दाब पर सुगमता से संचों में ढाला जा सकता है। इस प्रकार तैयार किया गया माल गर्म किये जाने पर 165° से 200° फे० तापमान पर नर्म पड़ जाता है। इस पर तेज अम्लों तथा अलकली यौगिकों का असर नगण्य-सा होता है।

पुरुषोत्तम दास स्वामी
बसुमती राणीसर रोड,
बीकानेर

● ●

चिकित्सा विज्ञान में एक नया दृष्टान्त सामने आया जब एक महिला ने ऐसे शिशु को जन्म दिया जिसका भ्रूण आँतों में पला था। इस प्रकार का उदाहरण इसके पहले ज्ञात नहीं था।

तरुण वैज्ञानिक का निधन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के रसायन विभाग के तरुण शोधविज्ञानी डॉ० ओम चन्द्र सक्सेना का निधन 22 मार्च 1975 को हो गया। वे 20 मार्च को रात में बीमार हुये, 21 मार्च को अस्पताल में ले जाये गये जहाँ 22 मार्च को 7 बजे प्रातः उनकी मृत्यु हो गई। छोटी सी बीमारी ने इस तरुण वैज्ञानिक को असमय ही हमारे बीच से उठा लिया। वे अभी 40 वर्ष के भी नहीं हो पाये थे।

स्व० डॉ० ओउम चन्द्र सक्सेना

डॉ० सक्सेना का जन्म 18 मई 1936 को हुआ था। ये अपने पिता श्री कुमार चन्द्र सक्सेना, एडवोकेट की चौथी सन्तान थे किन्तु इनसे पूर्व की तीन सन्तानें नहीं रहीं अतः इनके पिता ने इनका लालन-पालन बड़े ही लाड़-प्यार से किया। इन्होंने इलाहाबाद में ही शिक्षा पाई और 1961 ई० में अकार्बनिक रसायन लेकर विश्वविद्यालय में से एम० एस-सी० उपाधि प्राप्त की। उसके बाद ये 2 वर्षों तक कालेजों में अध्यापन करते रहे। किन्तु 1963 ई० में डी० फिल शोधछात्र के रूप में इन्होंने शोधकार्य प्रारम्भ किया। 1965 ई० में इन्हें "रासायनिक गतिकी" पर डी० फिल की उपाधि से विभूषित किया गया। उसके बाद से वे लगातार शोध-कार्य करते रहे। ये रसायन विभाग के लिये गौरव के विषय थे।

डॉ० सक्सेना ने 12 वर्षों के शोध-काल में 260 से भी अधिक शोधपत्र प्रकाशित किये हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय जर्नलों में प्रकाशित हैं। इनके शोधों का अत्यधिक सम्मान हुआ जिससे ये अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल "अनालिटिकल केमिस्ट्री" के निर्णायकों में से थे। इन्होंने अपनी शोध-प्रवृत्ति से अनेकानेक छात्रों को प्रभावित किया जिनमें से कुछ अब बड़े-बड़े पदों पर सुशोभित हैं।

अपनी अध्यनशीलता, शोधकार्य में लगन तथा अपनी उदार प्रकृति के कारण डॉ० सक्सेना प्रेरणा के स्रोत रहते हैं। ये केमिकल सोसाइटी (लन्दन) के फेलो थे। यही नहीं, ये विज्ञान परिषद तथा विज्ञान परिषद अनुसन्धान पत्रिका के भी आजीवन सभ्य थे। इनकी मृत्यु से परिषद ने एक कर्मठ सहयोगी खो दिया है। परिषद तथा विज्ञान परिवार उनकी इस असामयिक मृत्यु पर शोक प्रकट करता है।

डॉ० सक्सेना को क्रिकेट, बैडमिंटन, बिलियर्ड आदि खेलने का शौक था। वे पेंटिंग में भी रुचि रखते थे। वे बायोकेमिक भी थे और स्वयं मधुमेह से पीड़ित होने के कारण मधुमेह के रोगियों को सलाह देते रहते थे। वे विवाहित थे। उनके दुखी परिवार में अब माता तथा पिता के अतिरिक्त उनकी पत्नी, दो लड़के तथा दो लड़कियाँ हैं।

मूलतः डॉ० सक्सेना का जीवन शोध के लिये समर्पित था।

● ●

पुस्तक समीक्षा

यान्त्रिकी तथा द्रव्य के सामान्य गुण धर्म—

लेखक : डॉ० वीरेन्द्र कुमार खरे—

प्रकाशक : मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल

पृष्ठ संख्या 150

मूल्य : 6 रु० ।

स्नातक स्तर के भौतिकी के छात्रों के लिये 'यांत्रिकी तथा द्रव्य के सामान्य गुण धर्म' विषय को हिन्दी में पढ़ने के लिये डॉ० वीरेन्द्र कुमार खरे द्वारा लिखी गई यह पुस्तक हिन्दी माध्यम से पढ़ने वालों की दिनों दिन बढ़ती माँग को पूरा करने में सहायक होगी । यह पुस्तक सात अध्यायों—(1) मात्रक तथा विमायें, (2) सदिश राशियों, (3) घूर्णन गति तथा जड़त्व आघूर्ण, (4) गुरुत्वाकर्षण तथा गुरुत्व, (5) प्रत्यास्थता, (6) श्यानता तथा (7) पृष्ठ तनाव में बंटी है । प्रत्येक अध्याय के बाद अभ्यास के प्रश्न देने से छात्रों के लिये पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है । अच्छी छपाई के साथ कम पृष्ठों में अधिक से अधिक विषय-वस्तु का समावेश किया गया है । इस पूरी पुस्तक में सेन्टीमीटर, ग्राम, सेकेन्ड मात्रक का उपयोग किया गया है । समीकरणों के लिये व चित्रों को अंकित करने के लिये अंग्रेजी के अक्षरों का उपयोग किया गया है जो साधारणतया उचित ठहराया जाता है । कुछ स्थानों पर प्रूफ की त्रुटियाँ हैं परन्तु इससे इस पुस्तक की उपादेयता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता ।

विद्युत एवं चुम्बकत्व भाग 1

लेखक : डॉ० ज्ञानेन्द्र नाथ दास

प्रकाशक : मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

पृष्ठ संख्या 320

मूल्य : 10 रु० ।

भौतिकी के स्नातकोत्तर छात्रों के लिये लिखी गई डॉ० ज्ञानेन्द्र नाथ दास की 'विद्युत एवं चुम्बकत्व भाग 1—(विद्युत स्थैतिकी एवं चुम्बक स्थैतिकी)' हिन्दी माध्यम से अध्ययन करने वालों के लिये एक अति उपयोगी पुस्तक है । इसमें कुछ ऐसे अध्यायों का समावेश किया गया है जो अब तक हिन्दी की अन्य पुस्तकों में इतने विस्तारपूर्वक उपलब्ध नहीं हैं । उदाहरण स्वरूप अध्याय 1 में विद्युत द्विध्रुव की स्थितिज उर्जा, अध्याय 4 में लाप्लास समीकरण के उपयोग, विद्युतीय ध्रुवण के सिद्धान्त पर लिखा गया अध्याय 6 जिसमें क्लासियस-मोसोटी, लौह विद्युत, डिबाई समीकरण व उसकी विफलता तथा श्रांतिकाल जैसे विषयों का समावेश नितांत मौलिक व महत्वपूर्ण है । अन्तिम अध्याय 7—'चुम्बकत्व के सिद्धान्त'—इस पुस्तक की महत्वपूर्ण कड़ी है—लेंजेविन का सिद्धान्त, लौह चुम्बकीय अनुनाद, g के प्रायोगिक मान का विचरण, चुम्बकीय-विषम-दैशिकता व चुम्बकीय पदार्थों में श्रांति प्रभाव जैसे विषयों का समावेश आज के वैज्ञानिकों द्वारा हिन्दी माध्यम से विज्ञान पढ़ने की रुचि को देखते हुए लेखक की दूरदर्शिता को भी प्रदर्शित करते हैं । विस्तृत विषय सूची तथा अन्त में अनुक्रमणिका तथा पारिभाषिक शब्दावली देने से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है ।

इस पुस्तक का महत्व इस बात से और अधिक हो गया है कि इसमें सूत्र आदि के लिये अंग्रेजी के अक्षरों का उपयोग किया गया है और सर्वसम्मत सूत्र ज्यों के त्यों निरूपित किये गये हैं ।

● ●

विज्ञान वार्ता

जल को शुद्ध और उपचारित करने के लिए गैस क्लोरीनेटर

इस समय जल को उपचारित और शुद्ध करने के लिए अमेरिका में निर्मित अनेक प्रकार के क्लोरीनीकारक उपकरण (क्लोरीनेटर) बाजार में उपलब्ध हैं। इनमें एक ऐसा क्लोरीनेटर भी शामिल है, जो एक सीसे के गास्केट (रज्जु) और शिकंजेनुमा कनेक्शन द्वारा सीधे क्लोरीन के सिलिण्डर वाल्व पर स्थापित कर दिया जाता है। ऐसा करने से लचीले संयोजकों, धातु के पाइपों की फिटिंग, फन्दे या चाप उपकरणों का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसमें क्लोरीन गैस घटकर वैकूम के स्तर पर आ जाती है, जिससे दबाव के कारण क्लोरीन गैस के बाहर निकलने का खतरा नहीं रहता।

इसका नाम 'एडवांस सिलिण्डर माउण्टेड क्लोरीनेटर, अथवा 'डाइरेक्ट सिलिण्डर माउण्टेड गैस क्लोरीनेटर, है। इसकी अन्य विशेषताओं में, रिमोट इजेक्टर, रिमोट मीटर केपेबिलटी, क्लोरीन सप्लाई इण्डिकेटरा सेफ्टी वाल्व तथा वैकूम सीलिंग वाल्व उल्लेखनीय हैं।

इजेक्टर को सीधे प्रयुक्त होने के स्थान पर स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार, इसमें प्रपीड़ित सोल्यूशन लाइनों की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्लोरीन सप्लाई इण्डिकेटर क्लोरीन की उपलब्ध की सही सूचना देता है। अगर कण्टेनर में वैकूम नहीं होगा, तो भीतरी वाल्व कस जायेगा, जिससे क्लोरीन गैस सिलिण्डर में ही बन्द हो जाती है।

इस क्लोरीनेटर को घर के भीतरी या बाहरी, किसी भी भाग में स्थापित किया जा सकता है। इसके लिए किसी विशेष कक्ष या रख रखाव व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती।

ऐडवांस शृंखला के क्लोरीनेटरों का निर्माण सिलिंडर माउण्टों के मामले में 100 पौण्ड क्लोरीन प्रति 24 घण्टे और टन माउण्टों के मामले में 500 पौण्ड क्लोरीन प्रति 24 घण्टों की दर से क्लोरीनीकरण की आवश्यकता पूरी करने के उद्देश्य से किया गया है। इनका प्रयोग कारखानों, नगरपालिकाओं या अन्य संस्थानों द्वारा जल या गन्दे पानी को उपचारित करने के लिए किया जा सकता है। इनका निर्माण कोलमास, कैलिफोर्निया, की कैपिटल कण्ट्रोल्स कम्पनी कर रही है।

मोटर सायकिलों की चेन के लिए लुब्रिकेशन

कैलिफोर्निया की एक कम्पनी, पीजेफ कारपोरेशन, ने मोटर सायकिलों और स्नोमोबाइल की चेनों पर प्रयुक्त करने के लिए एक अच्छी किस्म का लुब्रिकेशन तैयार किया है, जो सस्ता और बहुत उपयोगी है। सम्प्रति यह कम्पनी इसका निर्यात जापान, ताहिती, ओकीनावा और कनाडा को कर रही है।

इसका नाम पी-1 चेन गार्ड है। यह एक स्प्रे डिब्बे में बन्द होता है। उसका उत्पादन तीव्र गति से चलने वाली गाड़ियों की खुली चेनों को संघर्षहीन चिकनाई तथा संरक्षण प्रदान करने के लिए किया गया है। इसका उत्पादन करने वालों का कहना है कि यह लुब्रिकेशन चलती हुई मोटर सायकिलों की चेनों से उड़कर बाहर नहीं जाता और नमी से खराब नहीं होता।

यह रंगहीन है और चेन पर प्रयुक्त करते समय इससे गाज उत्पन्न नहीं होती। यह चेन की प्रत्येक कड़ी में भीतर तक समा जाता है।

गेहूँ की सूखारोधी दो नयी किस्में

केन्द्रीय बीज कमेटी ने इस वर्ष मध्य प्रदेश और इससे लगे हुए इलाकों तथा महाराष्ट्र के लिए गेहूँ की दो नयी किस्में निकाली हैं। भारी पैदावार देने के साथ-साथ ये किस्में सूखारोधी भी हैं।

मध्य प्रदेश और इससे लगे हुए गुजरात और राजस्थान (कोटा) के क्षेत्रों के लिए निकाली गयी किस्म का नाम मेघदूत है। यह किस्म काला रतुआ और सूखारोधी है। तथा इसके दाने नहीं बिखरते। यह किस्म बारानी इलाकों तथा काली मिट्टी के हल्के सिंचित इलाकों के लिये खूब उपयुक्त है। मेघदूत किस्म आमतौर से लम्बी बढ़ती है, इसमें कल्ले खूब आते हैं तथा इसके दोनों में लगभग 15 प्रतिशत प्रोटीन होती है और दोनों का रंग गहरा शरबती होता है।

मेघदूत जैसे गुणों से सम्पन्न महाराष्ट्र के लिए निकाली गई गेहूँ की एन० आई-5439 किस्म की खेती के लिये कम नम तथा अच्छे जल निकाल वाली भूमि काफी उपयुक्त रहती है। ज्यादा नम जमीन में फसल बोने से फसल को काला रतुआ रोग लग जाता है। इस किस्म की फसल में प्रति हैक्टर 75 किलो तक नाइट्रोजन डालने पर भी इसकी फसल ढहती नहीं है।

पहियेदार कुर्सी का प्रयोग करने वाले पंगुओं के लिए एलिवेटर

अमेरिकी नगरों में अब पहियेदार कुर्सियों का प्रयोग करने वाले पंगु लोगों के लिए सुरंग-मार्गों, सड़क के मोड़ों तथा अन्य गमनीय स्थानों पर चढ़ाई पार करने के हेतु विशेष एलिवेटरों की व्यवस्था कर दी गयी है। लेकिन ऐसी कुर्सियों (ह्वीलचेयर) का प्रयोग करने वालों को सबसे बड़ी बाधा का सामना प्राय: अपने दरवाजों पर—अपने घरों में जाने वाली सीढ़ियों के कारण—करना पड़ता है।

अब लुइजियाना की एक फर्म ने इस समस्या को हल करने के लिए एक उपकरण, 'ह्वील-ओ-वेटर', का निर्माण किया है। इसे विकसित करने का श्रेय ब्राउसार्ड, लुइजियाना, के जान टोस को है, जो स्वयं भी पहियेदार कुर्सी का प्रयोग करते हैं। उन्होंने हृदय विकार से पीड़ित रोगियों, बूढ़े लोगों और पहियेदार कुर्सी का प्रयोग करने वाले की कठिनाइयाँ दूर करने के लिए इस एलिवेटर का विकास किया। यह एक साधारण किस्म का एलिवेटर है, जो एक-तिहाई अश्व-शक्ति क्षमता वाली मोटर द्वारा संचालित होता है। इस पर सवार व्यक्ति एक स्विच को दबा कर इसे ऊपर या नीचे की ओर ले जा सकता है।

जब यह एलिवेटर नीचे होता है, तब प्लेटफार्म जमीन से 2 इंच ऊँचा होता है। निर्माताओं का कहना है कि इस ऊँचाई को एक पत्थर की पटिया रख कर सतह के बराबर किया जा सकता।

'ह्वीलो-ओ-वेटर' की सारी वायरिंग पूरी तरह वाटरप्रूफ है और सभी प्रकार के मौसमों के लिए उपयुक्त है।

इसका निर्माण ब्राउसार्ड, लुइजियाना, की कम्पनी, टोस ब्रदर्स मैन्युफैक्चरिंग लिमिटेड, ने किया है।

कम्यूटर : एक विद्युत्चालित पहियेदार कुर्सी

दो वर्ष हुए, जब अलाबामा के गवर्नर जार्ज वैलेस का एक चित्र एक अमेरिकी पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, जिसमें वह एक विद्युत्चालित गाड़ी में बैठ कर टेनिस खेलते दिखलाये गये थे। वैलेस को एक गोली की चोट के कारण कमर से नीचे लकवा मार गया था।

अब फ्लोरिडा की एक निर्माता फर्म ने 'कम्यूटर' नामक विद्युत्चालित ह्वीलचेयर या पहियेदार कुर्सी का निर्माण किया है, जिसका निर्यात वह एक औद्योगिक वाहन या गोल्फ कार्ट तथा ह्वीलचेयर के रूप में प्रयुक्त करने के लिए कर रही है।

खड़े मोड़ों और ढलानों पर अधिकतम सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्यों से कम्यूर में एक सस्पेंशन सिस्टम लगाया गया है। इसके स्टियरिंग लीवर पर गति-नियन्त्रक स्विच लगी है, जिसे उंगली से दबा कर चालू किया जा सकता है। यह विद्युत्चालित कार्ट बहुत छोटी है। इसमें 217 एम्प-आवर बैटरी है। यह फाइबर-ग्लास की बनी है और इसका निर्माण कैलिफोर्निया की कम्पास इंडस्ट्रीज नामक कम्पनी ने किया है।

● ●

आपका पत्र मिला

[हर महीने हमें पाठकों के पत्र मिलते रहते हैं जिसमें पाठकों की विज्ञान के बारे में राय या सुझाव आदि रहते हैं। ऐसे कुछ पत्र यहाँ प्रस्तुत हैं।]

—सम्पादक

प्रिय महोदय,

मैं गत दो वर्ष से 'विज्ञान' का पाठक हूँ। विज्ञान बड़े चाव से पढ़ता हूँ। इधर 'विज्ञान' का 'बाल विशेषांक' निकाल कर आपने बड़ा सराहनीय कार्य किया है। विशेषांक बहुत पसन्द आया। यह अंक देख कर आशा बँधी थी कि अब अत्यन्त रुचिकर सामग्री आप प्रस्तुत करेंगे तथा विज्ञान की साज सज्जा में भी सुधार होगा अभी हाल के अंक इन दोनों का समुचित समाधान करते हैं। 'विज्ञान' परिवार को मेरी शुभकामनाएँ!

—राम चरन मिश्र, पटना (बिहार)

● महोदय,

यह जानकर खुशी हुई कि आप 'विज्ञान' के प्रेमी पाठक हैं। हम वायदा करते हैं कि आपकी इच्छानुसार रुचिकर सामग्री प्रस्तुत करेंगे। शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद!

—सम्पादक

× × ×

प्रिय महोदय,

'विज्ञान' मई 75 अंक में डॉ० शिव गोपाल का लेख 'विज्ञान में 60 वर्ष' पढ़ने को मिला। यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि बड़े बड़े विद्वानों के लेख 'विज्ञान' के पहले के अंकों में प्रकाशित होते थे। क्या पाठकों को क्रमश: कुछ लेख पढ़ने को मिलेंगे? यदि ऐसी व्यवस्था कर सकें तो बड़ी कृपा होगी। शुभकामनाओं सहित आपका

सत्यदेव त्रिपाठी, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

● महोदय, आपकी बातों पर हम जरूर ध्यान देंगे। इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम 'विज्ञान' के कुछ पुराने अंकों की झलकियाँ प्रस्तुत करेंगे। शुभकामनाओं के लिए धन्यवाद!

—सम्पादक

× × ×

आदरणीय सम्पादक जी!

मैं इण्टर का विद्यार्थी हूँ। विज्ञान सम्बन्धी पत्रिका पढ़ता हूँ। लेकिन सभी पत्रिकाओं में 'विज्ञान' मुझे सबसे अच्छी लगी। इतने कम मूल्य में ऐसी सामग्री कोई अन्य पत्र नहीं प्रस्तुत कर सकता। 'विज्ञान' में प्रकाशित सामग्री का चयन भी बहुत सुन्दर है। इधर आपने कई सामयिक लेख प्रस्तुत किए हैं। आर्यभट्ट उपग्रह सम्बन्धी लेख विशेष रूप से पसन्द आया। क्या आप 'अपोलो-सोयूज योजना' पर हमें लेख पढ़वाने की कृपा करेंगे?

रघुवीर अग्रवाल, हीरालाल रामनिवास कालेज खलीलाबाद, बस्ती।

● प्रिय रघुवीर जी! जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि 'विज्ञान' आपको सर्वश्रेष्ठ पत्रिका लगती है। इसी अंक में अपोलो-सोयूज योजना पर लेख प्रकाशित है।

—सम्पादक

[पाठक अपनी प्रतिक्रिया तथा सुझाव सम्पादक विज्ञान के पास भेज सकते हैं। हम आपकी इच्छापूर्ति का भरसक प्रयत्न करेंगे]

● ●

सम्पादकीय

अभी पिछले वर्ष की ही तो बात है, जब भारत ने भूमिगत परमाणु परीक्षण करके संसार के सभी देशों को चौंका व दहला दिया था। इस परीक्षण से देश छठा 'न्युक्लीय शक्ति' बन गया था। जन-जन ने वैज्ञानिकों की जो सराहना की थी वह अवर्णनीय थी। 19 अप्रैल को सफल अपग्रह 'आर्यभट्ट' प्रक्षेपण के साथ भारत का अन्तरिक्ष युग में प्रवेश हो गया है। यह चमत्कारिक वैज्ञानिक उपलब्धि, अन्तरिक्ष विज्ञान में भारत की शानदार प्रगति का सूचक है। विज्ञान-परिवार की ओर से हम भारतीय अंतरिक्ष आयोग के अध्यक्ष डा० सतीश दीवान तथा उपग्रह परियोजना के निदेशक डा० यू० आर० राव सहित तमाम वैज्ञानिकों, इंजीनियरों, तथा तकनीशियनों को इस महान सफलता पर हार्दिक बधाई देते हैं।

अन्तरिक्ष में उपग्रह का प्रक्षेपण करने वाला भारत ग्यारहवाँ राष्ट्र है। अभी तक जिन राष्ट्रों ने यह गौरव प्राप्त किया है वे हैं, रूस, अमरीका, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, चीन, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान तथा इटली। यद्यपि रूस के राकेट के द्वारा हमारा उपग्रह प्रक्षेपित हुआ है फिर भी भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा भारत में बना 360 किलोग्राम के उपग्रह का निर्माण स्वयं में एक महान उपलब्धि है।

महान गणितज्ञ तथा खगोलशास्त्री आर्यभट्ट के नाम पर इस उपग्रह का नामकरण करके भारतीय सरकार तथा वैज्ञानिकों में उस प्राचीन वैज्ञानिक का बहुत बड़ा सम्मान किया है। अन्य देशों के साथ-साथ, अपने देश के लोग भी इस उपग्रह के साथ उस खगोल-शास्त्री के बारे में भी जानकारी प्राप्त कर लेंगे और यह उस वैज्ञानिक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना ही होगा।

आर्यभट्ट से लगातार महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हो रही हैं। यह उपग्रह अभी भी अन्तरिक्ष में चक्कर लगा रहा है। यद्यपि प्राप्त सूचना के अनुसार प्रक्षेपण के पाँचवें दिन ही पावर समाप्त हो गई थी फिर भी यंत्रों के विधिवत कार्य करने तथा आंकड़े प्रेषित करने का जो क्रम चल रहा है उससे द्वितीय आर्यभट्ट के छोड़ने की दिशा में लाभप्रद सूचनाएँ प्राप्त हो जायेंगी। हम आशा करते हैं कि आर्यभट्ट द्वितीय भारत भूमि से ही प्रक्षेपित किया जायगा। बंगलौर के हरिकोटा की प्रयोगशाला में इस दिशा में कदम उठाये जा रहे हैं। भारतीय वैज्ञानिकों पर हमें भरोसा है कि वह भारत का नाम ऊँचा उठायेंगे।

● ●

आवश्यक सूचना

अन्तरिक्ष उड़ानों के बारे में हम काफी दिनों से पढ़ते सुनते आ रहे हैं। 'विज्ञान' की परियोजना के अनुसार हम 'अन्तरिक्ष विज्ञान' पर एक विशेषांक निकालने जा रहे हैं। लेखकों से निवेदन है कि वह उक्त विषय से सम्बन्धित रुचिकर एवं ग्राह्य लेख लिखकर हमारे पास भेजें। काली स्याही से बने चित्र भी साथ में अवश्य भेजें। हम यथा-सम्भव लेखों को प्रकाशित करेंगे। चुने हुये लेखों पर पारिश्रमिक भी दिया जायगा। लेख सितम्बर के अन्त तक अवश्य भेज दीजिये।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञान ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 | श्रावण 2022 विक्र०, 1896 शकाब्द सितम्बर 1975 | संख्या 8

वेंकेल इंजन

गोपाल सरन श्रीवास्तव

मोटरकार की नर्म और गुदगुदी गद्दियों पर बैठते ही एक प्रश्न मन में उठता है कि कार कैसे चलती है। कार का इंजन कैसे कार्य करता है? कुछ कारों की सवारी इतनी सुखद होती है कि पता ही न चले कि आप यात्रा कर रहे हैं जबकि कुछ कारों में आधे-पौन घन्टे की सवारी ही नानी की याद दिला देती है। कुछ कारें औसतन 50-60 किलोमीटर प्रति घन्टा की रफ्तार से चलती है जबकि कुछ अन्य औसतन 100-120 किलोमीटर की रफ्तार से चलती है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि स्पोर्ट्स कारें 200-250 किलोमीटर प्रति घन्टा की रफ्तार से चलती हैं। भारतीय कारों की अश्व-शक्ति 10-से 15 तक होती है। 75 किलोग्राम-मीटर कार्य, प्रति सेकेंड की दर से कार्य करने को एक अश्व-शक्ति कहते हैं। भारत में बने ट्रैक्टरों की अश्व-शक्ति औसतन 30-40 के बीच होती है।

आइये अब विदेशी कारों की ओर भी देखें। यहाँ 7-8 अश्व-शक्ति से लेकर 200 अश्व-शक्ति तक की कारें उपलब्ध हैं। यह सब अलग-अलग प्रकार की कार-अभिकल्पना पर निर्भर करता है। आपको यह जानने की अवश्य ही उत्सुकता होगी कि जब एक 12-13 अश्व-शक्ति की कार आराम से कार्य कर सकती है तो 200 अश्व-शक्ति की कार की क्या आवश्यकता है। यदि आप विज्ञान के छात्र हैं तो आपको यह भी ज्ञात होगा कि अधिक अश्व-शक्ति से प्रति किलोमीटर इन्जन की खपत भी बढ़ जाती है। लेकिन फिर भी लोग अधिक अश्व-शक्ति के इन्जन को अच्छा मानते हैं। तत्पश्चात् अब हम अश्व-शक्ति के सूत्र में विचार करेंगे कि अधिक अश्व-शक्ति से क्या लाभ है। अश्व-शक्ति का सूत्र निम्न प्रकार से है।

$$\text{अश्व-शक्ति} = \frac{2\pi TN}{4500} \cdots\cdots (1)$$

N = चक्कर प्रति मिनट

T = बल युग्म (Torque) Kg—m.

$$\text{अत: } T = \frac{4500}{2\pi N} \times \text{अश्व-शक्ति} \cdots\cdots (2)$$

समीकरण (2) से हम देखते हैं कि अश्वशक्ति के बढ़ने से T या बल युग्म (Torque) बढ़ता

वैंकेल इंजन
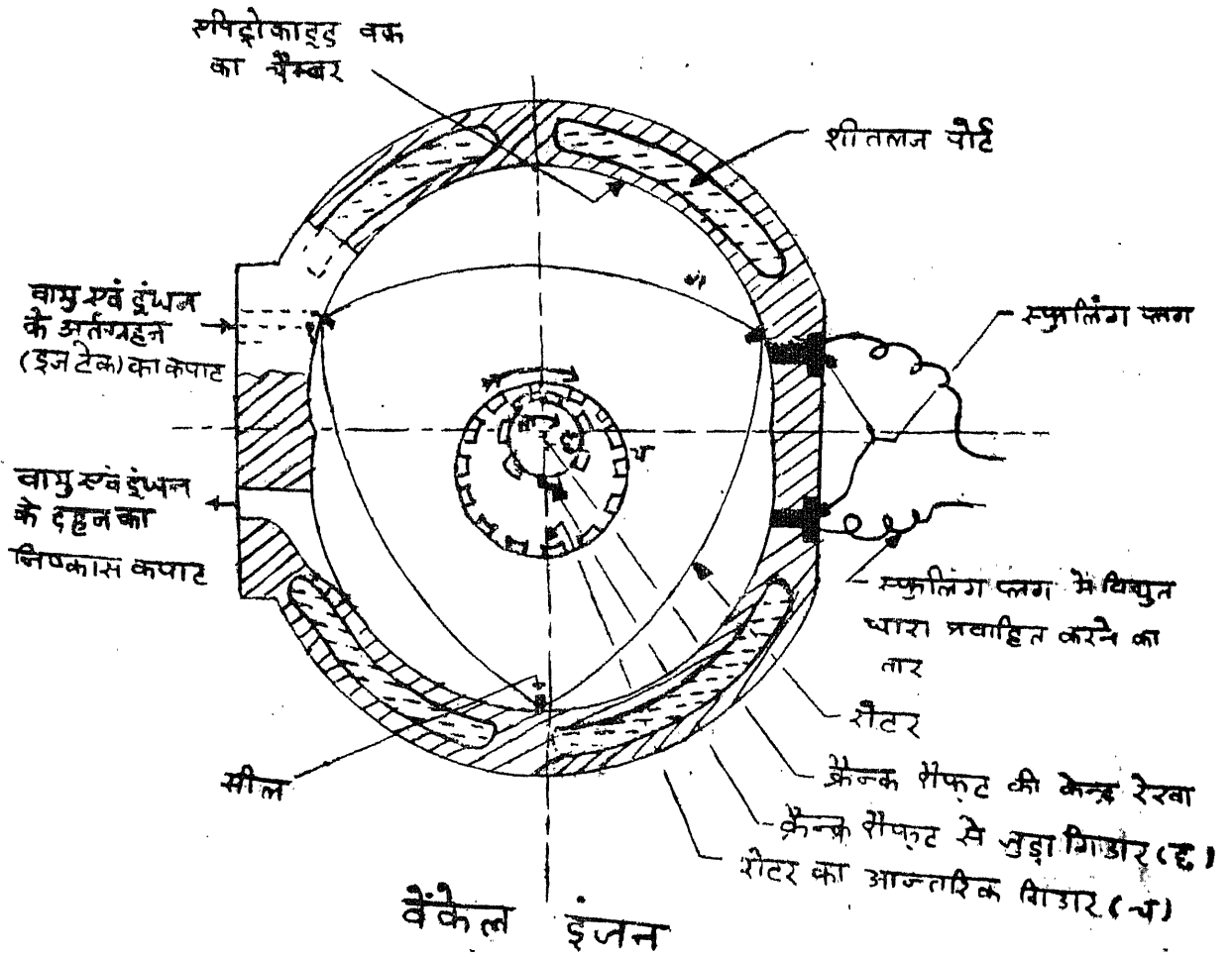
है। तथा बल-युग्म के बढ़ने से निम्नलिखित सूत्र के द्वारा त्वरण भी बढ़ता है।

T = बल × दूरी
  = त्वरण × द्रव्यमान × दूरी

अत: अश्व-शक्ति बढ़ने से कम समय में अधिक गति प्राप्त की जा सकती है। इसका अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि 200 अश्व-शक्ति की मर्सडीज़ स्पोर्ट कार केवल पाँच सैकेंड में 100 किलोमीटर प्रति घंटा की गति प्राप्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त अधिक अश्व-शक्ति की कारें अधिक चढ़ाई पर अधिक गति से सुगमतापूर्वक चल सकती हैं। अभी तक कारों में सामान्यत: आटो इन्जन या डीजल इन्जन ही प्रयोग में आते हैं इनमें पिस्टन और सिलिंडर का प्रयोग होता है। अधिक अश्व-शक्ति और गति के इन इंजनों के प्रयोग में अधिक पिस्टन लगाने पड़ते हैं। साथ ही इंजन का आकार अधिक बड़ा हो जाता है। सन्तुलन कठिनाइयों के कारण इनकी गति भी सीमित हो गई है। उपरोक्त कठिनाइयों को दूर करने के लिये तकनोशियनों, इंजीनियरों, तथा अन्य विशेषज्ञों ने प्रयास किया एवं अन्त में

एक नये प्रकार के इंजन का निर्माण किया जिसका नाम वेंकल इंजन है।

वेंकल इंजन ने आज के युग में एक नवीन प्रकार का चमत्कार उत्पन्न कर दिया है। इसको सर्व प्रथम फेलिक्स वेंकेल ने वर्षों के अनुसंधान और प्रयोगों के बाद सन् 1957 में बनाया था। उसके बाद से बहुत से वाहनों के निर्माताओं ने इसका निर्माण आरम्भ किया। जापान की टोयोकोगयो कंपनी ने इसकी अपनी मजाड़ा कार के लिये हजारों वेंकेल इंजनों का निर्माण किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका में जनरल मोटर्स तथा फोर्ड्स कंपनी भी इसके निर्माण का विचार कर रही हैं।

वेंकेल इन्जन को इसकी कार्य विधि के कारण रोटरी दहन इंजन भी कहते हैं। वेंकेल इंजन में मुख्यत: एक रोटर तथा एक चैम्बर होता है। इसके रोटर में तीन शीर्ष होते हैं। रोटर चैम्बर में घूमता है रोटर चैम्बर में विकेन्द्रिय विधि से घूमता है। तथा जैसे-जैसे रोटर चैम्बर में घूमता है। रोटर के तीनों शीर्ष एपिट्रोकाइड वक्र के अनुरूप चलते हैं। एपिट्रोकाइड वक्र दो गोलों के द्वारा जो आपस में काटते हैं दोनों गोलों के द्वारा बने क्षेत्रफल के अन्दर की रेखाओं को मिटा देने से बनता है। अर्थात् वह एक वक्र है जिसमें समस्त क्षेत्रफल निहित रहता है। इस रोटर के ऊपर तीन सील होती हैं जो कि रोटर के शीर्ष को चेम्बर के अन्दर ही सतह के ऊपर अच्छी प्रकार से सील करती है। इस प्रकार से एक दूसरे से अलग-अलग तीन सील किये हुये चैम्बर बन जाते हैं। इन चैम्बरों में आयतन घटता बढ़ता रहता है। जैसा कि वेंकेल इन्जन की कार्य विधि समझाते समय चित्र में दर्शाया गया है। रोटर में आन्तरिक गिअर (च) होता है। यह एक दूसरे गिअर (छ) से सम्बन्धित रहता है। तथा गिअर (छ) की केन्द्र रेखा एक ही होती है। शक्ति रोटर से गिअर (छ) में पहुँच कर क्रेन्क शेफ्ट में पहुँचती है तथा क्रेन्क शेफ्ट के बाद विभिन्न प्रक्रियाओं के बाद मोटरकार के पहियों में पहुँचकर गति प्रदान करती है।

वेंकेल इंजन की कार्य-विधि—चित्र में वेंकेल इंजन की कार्य विधि को रोटर की विभिन्न दशाओं के द्वारा भली प्रकार से दर्शाया गया है। चित्र में अ, ब, स, द, य, र में एक रोटर चक्कर को भिन्न-भिन्न स्थितियों में दिखलाया गया है। सामान्यत: एक चक्र में चार चरण होते हैं। हम चित्र 'अ' से प्रारम्भ करते हैं इसमें रोटर की स्थिति इस प्रकार है कि रोटर के एक शीर्ष ने अन्तर्गहन कपाट या इनटेक पोर्ट को खोल दिया है। जिसे चित्र में 'अ' के '1' से दिखाया गया है। जैसे-जैसे दक्षिण वर्त दिशा में घूमता है रोटर चैम्बर रोटर के बीच का आयतन बढ़ता जाता है जिसे चित्र 'ब' के '2' से दिखाया गया है। रोटर के और घूमने से, रोटर और चैम्बर के बीच का आयतन और बढ़ता रहता है। अब 'स' के '3' और 4 मे जब रोटर चित्र में दिखलाये गये बिन्दु को पार करता है तो शीर्ष अन्तर्गहन कपाट या इनके पोर्ट से आगे निकल जाता है। तथा वायु और ईंधन का मिश्रण रोटर के दो शीर्षों के बीच में बंद हो जाता है।

.अब चित्र में '6' में मिश्रण का संपीडन होना आरम्भ हो जाता है। तथा यह (अ) के 7 तथा 'ब' के 8 तक जारी रहता है। जिसमें कि संपीडन खतम हो जाता है। इसके पश्चात् चित्र (स) के '9' में दहन होता है। स्फुलिंग प्लग प्रज्वलित होकर संपीडित वायु और ईंधन को जलाता है। तथा जली हुई गर्म गैसें चित्र के 10 तथा 11 और '12' तक फैलती रहती हैं। सामान्यत: वेंकेल इंजन में दो स्फुलिंग प्लग लगे होते हैं। जिसमें कि वायु और ईंधन के मिश्रण का जलना निश्चित रहता है। इससे निष्काषित उत्सर्जन समाप्त हो जाता है। या मिश्रण के पूर्ण दहन के कारण अधजली गैसों बाहर जलना समाप्त हो जाता है। रोटर
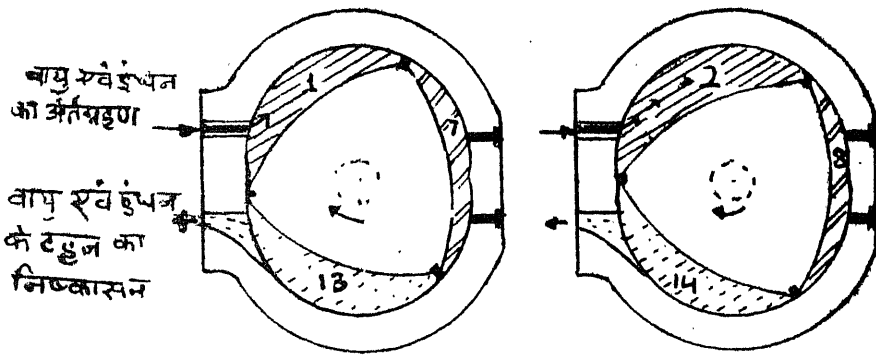
चित्र - अ

चित्र - ब
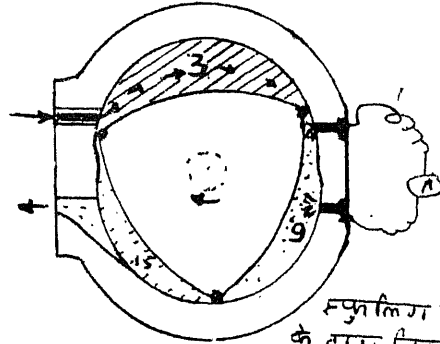
चित्र स

[शेष पृष्ठ 24 पर]
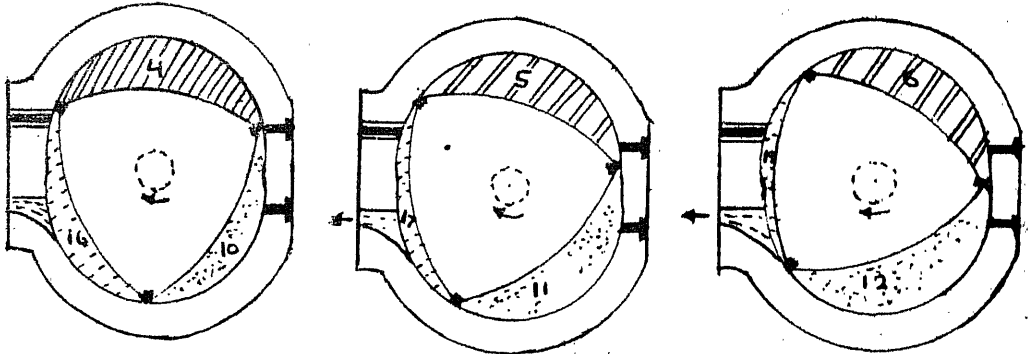
पादप वृद्धि हारमोन– 'जिबरेलीन' और उसकी उपयोगिता

कन्हैया लाल

पौधों की वृद्धि एक गतिशील तथा जटिल प्रक्रम है, जिस पर नियन्त्रण पादप वृद्धि पदार्थ करता है। वैज्ञानिक हार्डी ने इस पदार्थ का नाम हारमोन रखा। पादप हारमोन, वे जैविक पदार्थ हैं जो पौधों द्वारा उत्पादित होते हैं और तनु सान्द्रता में कायिकी प्रक्रमों का नियमन करते हैं। ये पौधों में एक स्थान से दूसरे स्थान को गतिशील रहते हैं। इन हारमोनों का सम्बन्ध एन्जाइमों आदि से नहीं होता। पादप हारमोन से केवल पौधों को ही लाभ होता है, जन्तु इसका उपयोग नहीं कर पाते हैं। सामान्यतः वृद्धि प्रक्रम में भयंकर व्यतिक्रम लाने वाले कृत्रिम ढंग से संश्लेषित पदार्थों को 'फाइटो हारमोन' वर्ग में नहीं रखा जाता है। अब यह मान लिया गया है कि वृद्धिकर हारमोन के कम से कम तीन मुख्य वर्ग हैं—यथा ऑक्सिन, जिब्रेलीन और साइटोकाइनिन। इनके अतिरिक्त पादप हारमोन की कई श्रेणियाँ हैं जिन्हें 'वृद्धि विनायक' कहते हैं जैसे—ऐबसिसिक अम्ल, एथिलीन गैस आदि।

जिबरेलीन (Gibberellin) **की खोज तथा रासायनिक संरचना**—कुरीसोवा (Kurosova) नामक जापानी शोधकर्त्ता को सन् 1920 में धान पर लगे बैकेन रोग की खोज करते समय संक्रामक के कारण यह रोग 'जबरेला फ्यूजिकोराई' नामक कवक ज्ञात हुआ है। धान के असाधारण लम्ब नवोद्भिद मिले जो अधिक दिनों तक जीवित न रह सके। कुरोसोवा ने कहा कि इस प्रकार की अतिकायता का एक कारण है जिसे रसायन कवक से विलगित किया जा सकता है। याबूटा और सूजिकी नामक दो वैज्ञानिकों ने इस रसायन को अलग किया और 'जिबरेलीन' नाम दिया। इंगलैण्ड में इस प्रकार रोगी पौधों से 'जिबरलिक अम्ल' निकाला गया जो जापान में निकाले गये पदार्थ से कुछ भिन्न था परन्तु इन दोनों में पौधों के तने में अतिदीर्घीकरण करने की क्षमता अवश्य थी। बाद में बहुत से प्रकार के पदार्थ निकाले गये हैं जिन्हें जिब्रेलीन A_2, A_3, A_4, A_7 और A_9 आदि नामों से पुकारा जाता है। कुछ प्रकार के जिबरेलीन फेसियोलस मल्टीफ्लोरस (Phaseolus multiflorus) के अप्रौढ़ बीज से निकाले गये हैं जिन्हें GA_1, GA_8, GA_6 और GA_8 कहते हैं। अभी तक लगभग दो दर्जन जिब्रलीन ज्ञात हैं; सबकी रचना समान है।

जिब्रेलीन, डाई टरपीन्स से रसायनिक तौर पर काफी मिलते-जुलते हैं जो कि स्वयं एक बड़ा समूह है जिसे टरपीन्वाएड कहते हैं। सभी टरपीन्वाएड का प्राइमरी आधार 'आइसोपीन इकाई' है जो पाँच कार्बन वाला यौगिक है।

जैविक महत्व—प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि जिबरेलीन के अनुपयोग से पौधों के तने अधिक बढ़ जाते हैं। जन्मजात बौनी किस्म को जिबरेलीन द्वारा कृत्रिम ढंग से लम्बी किस्म में बदला जा सकता है। इन दीर्घाकृत पौधों से प्राप्त बीज साधारण वातावरण में बौने पौधों को ही जन्म देते हैं अतः जिबरेलीन का प्रभाव आनुवंशिक नहीं है। जिबरेलीन द्वारा कम समय में

ही अजमोद (Celery) के अधिक गूदेदार पौधे, बीजहीन अंगूर के गुच्छे तथा बड़े आकार के अंगूर उत्पन्न किये जा सकते हैं। घास अथवा गेहूँ के कुछ पौधों के बीज के अंकुरण तथा नवोद्भिज की त्वरित वृद्धि में भी इसका उपयोग किया जा सकता है।

आक्सीजन की अनुपस्थिति में जिबरेलीन की सक्रियता नष्ट हो जाती है। इसके द्वारा दीर्घीकरण सक्रियता केवल तने तथा प्रांकुर-चोल पर ही पायी जाती है। जब भी जिबरेलीन के अनुप्रयोग से दीर्घीकरण होता है तो उन कोशिकाओं के समूह में आक्सिजन की यथेष्ट माला अवश्य होती है। पौधों के ऊतक विभेदन और कोशिका विभाजन में जिबरेलीन सहायक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार जिबरेलीन का पुष्पन और बीजांकुरण पर भी प्रभाव पड़ता है। बीज की प्रसुप्ति जिबरेलीन द्वारा भंग की जा सकती है। सम्भवतः ऑक्सिजन के पारस्परिक क्रिया से ही ऐसा होता है। जिबरेलीन प्राकृतिक वृद्धि नियामक पदार्थ है जिनसे पौधों में रोग भी होता है। ये पौधों के विशेषकर पत्तियों को सड़ने या जल्दी पीला पड़ने को रोकने में कुछ हद तक प्रभावी सिद्ध हुए हैं। ये वामनता नाशी होते हैं। इनके द्वारा बहुत से ऐसे कार्य नियंत्रित होते हैं जो वातावरण द्वारा भी प्रभावित हो सकते हैं। इसके उदाहरण पुष्पन, प्रसुप्ति की समाप्ति तथा अन्य ताप अथवा दीप्तिकाल द्वारा भासित प्रक्रियाएँ हैं। अतः जिबरेलीन उन नियामक प्रक्रमों से सम्बन्धित है जिनसे पौधों में परिवर्तन-अनुक्रिया वातावरण द्वारा प्रभावित होती है।

बहुत से प्रति-जिबरेलीन (anti-Gibberellins) की खोज हो चुकी है जो कि जिबरेलीन की सक्रियता को रोक देती है, इन्हें वृद्धिमंदक भी कहते हैं। ये हैं—एम० ओ० 1618 (AMO 1618, फास्फोन डी (Phosphon D), सी सी सी (CCC,) तथा बी-995 (B995)। इन वृद्धि मंदकों में से किसी एक के प्रयोग से लम्बे जाति वाले क्रइसेन्थेमम अथवा पायन्सिटिया बौने रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। यही इसकी पहचान है।

इस प्रकार जिबरेलीन का प्रयोग करके हम बौनी किस्म के पौधों को लम्बी किस्म वाले पौधों में बदल कर काफी पैदावार ले सकते हैं जो कि हमारी खाद्य समस्या को हल करने में कुछ अंश तक साधक सिद्ध हो सकती है।

कन्हैया लाल
शोध छात्र
वनस्पति विज्ञान
प्रयाग विश्वविद्यालय

इस्पात की गुंधाई

डॉ० अरुण कुमार सक्सेना

हम सभी सामान्य दाब, ताप तथा वेग के अंतर्गत रह रहे हैं किन्तु तीनों में किसी एक को असाधारण रूप से बढ़ा देने पर वस्तुओं तथा पदार्थों के कुछ विलक्षण गुण प्रगट होने लगते हैं। दाब का प्रभाव गैसों पर सर्वविदित है। अति-चालकता का विषय भी अब लगभग पुराना पड़ चुका है।

20,000 वायुमण्डलीय दाब या इससे भी अधिक पर पदार्थ कैसे व्यवहार करते हैं तथा वे किन प्रकार के गुणों को ग्रहण कर लेते हैं यह जानने योग्य है। व ऐसे विलक्षण गुण प्राप्त कर लेते हैं जो साधारणतया अविश्वसनीय है किन्तु ऐसा होता है।

इतने उच्च दाब पर इस्पात की चादरें बिल्कुल प्लास्टीसीन की भाँति मुलायम पड़ जाती है, लैड का काला चूर्ण विभिन्न रंग लिये हुए एक चमकदार हीरे के क्रिस्टल का स्थान ग्रहण कर लेता है, मशीन का तेल, मिट्टी का तेल तथा जल जैसे द्रव एकाएक असाधारण शक्ति ग्रहण कर लेते हैं।

दस वर्ष पूर्व अतिदाब पर अमरीकी वैज्ञानिक परसी ब्रिडमान ने सर्वप्रथम प्रयोग किये। आगे चलकर इन्हीं प्रयोगों पर इसी वैज्ञानिक को नोबेल पुरस्कार भी प्रदान किया गया। उसने अपने सहयोगियों की सहायता से 30,000 वायुमण्डलीय दाब पर धातुओं के गुणों का अध्ययन किया। इन विलक्षण प्रयोगों में ब्रिडमान तथा उनके सह-योगियों ने देखा कि धातुयें प्लास्टिक के समान व्यवहार करने लगती हैं किन्तु ये वैज्ञानिक इन प्रयोगों को अन्य कार्यों में व्यवहार न कर सके।

इतना अधिक दाब प्राप्त करने तथा उसे सहन करने के लिये विशेष प्रकार के बड़े-बड़े यंत्र तैयार किये गये। वैज्ञानिक इनके पास नहीं जाते थे। टेलीविजन के द्वारा वे प्रयोगों को देखा करते थे। आज परिस्थिति बदल गई है और उन पुराने तथा विशाल यंत्रों का स्थान नवीन तथा छोटे यंत्रों ने ले लिया है। इन छोटे तथा नवीन यंत्रों से पदार्थों के उत्क्रम गुणों का प्रयोग किया गया है।

एकाएक प्रश्न उठता है कि यह उत्क्रम गुण क्या है? जब किसी पदार्थ को अत्यन्त शक्तिशाली बनाना होता है तो उसके किसी एक गुण के लिये उसके अनेक गुणों की बलि करनी पड़ती है। ध्वनि से तेज चलने वाले विमान, राकेट, पण्डुब्बियाँ, सूक्ष्म बिजली वाली मोटर, परमाणु भट्टियाँ तथा संगणक बनाने के समय ऐसे पदार्थों की कमी खलती है जिनमें एक साथ कई प्रकार के शक्तिशाली गुण पाये जाते हैं। अब यह बात उपर्युक्त वस्तुओं के डिजाइन करने वाले इंजीनियरों की समझ में आई है। इस तथ्य ने वैज्ञानिकों को अपनी ओर आकृष्ट किया है और इस दिशा में शोधकार्य चल रहे हैं। 1950 ई० के लगभग सोवियत संघ के वैज्ञानिकों ने अतिदाब का उपयोग करने तथा इस पर शोध-कार्य करने का संकल्प किया। इस कार्य को अलग-अलग सोवियत एकेडमी आफ साइंसेज की इन्स्टीट्यूट आफ हाई प्रेशर भौतिकी तथा मेटलर्जिकल इन्स्टीट्यूट को क्रमशः लियोनिद वीरीस्शाजिन तथा एलेक्जेंडर टीरलीकोव की संरक्षता में सौंपा गया। इतने अधिक दाब को सहन करने वाले

यन्त्रों का बनाना कोई खेल नहीं था। अमरीकी वैज्ञानिकों ने केवल अपने प्रयोगों के आँकड़े दिये थे किन्तु इन यन्त्रों के विवरणों को गुप्त रक्खा था। पुराना विचार था कि जितना दाब बढ़ाया जायेगा उतनी ही मोटी दीवारों वाला यन्त्र बनेगा। केवल दीवारों को ही मोटा कर देने पर यह समस्या हल नहीं की जा सकती थी। री-साईलेन्स तथा लचीलेपन के सिद्धान्त के एक समीकरण का प्रयोग कर इस समस्या का समाधान किया गया। इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी यन्त्र की दीवारें कितनी भी मोटी हो किन्तु दाब तो उनके दीवारों पर के प्रतिबल पर निर्भर करता है और इस प्रतिबल के प्रसार का कोई भी नियम नहीं होता है। सर्वाधिक प्रभाव अन्दर की सतहों पर होता है और बाहरी सतहों पर यह प्रभाव घटता जाता है। इसका पता तब चला जब उपकरण का कक्ष बम के गोले के समान फटा।

अभी हाल में जब एल० वेलेन्टीनोव उसी प्रयोगशाला में गये तो बड़े तथा टेलीविजन वाले यन्त्रों के स्थान पर छोटे तथा टेलीविजन रहित यन्त्रों को देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे यह देखकर दंग रह गये कि अब वैज्ञानिक उन्हीं उपकरणों तथा यन्त्रों के पास बड़े मजे से घूम रहे थे जहाँ पहले जाना वर्जित था। एक वैज्ञानिक से उन्होंने जिज्ञासा भरे प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उसने बड़ी ही आसानी से इस समस्या का समाधान यह कहकर दिया कि इन यन्त्रों के फटने का भय तो है ही नहीं क्योंकि यह तोप की नली पर लगातार मोटी-मोटी शक्तिशाली इस्पात की चादरों को चढ़ा-चढ़ा कर बनाये गये हैं। इसी आधार पर स्वीडन की प्रयोगशालाओं ने भी इस प्रकार के यन्त्रों को बनाकर अतिदाब पर प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है।

इन यन्त्रों तथा अतिदाब की सहायता से निकल, टंगस्टन तथा मोलिब्डिनम नामक धातुओं की पतली से पतली नलियाँ खींची जा रही हैं। पहले टंगस्टन को इतनी पतली नलिकाय सर्वथा असम्भव थीं।

अतिदाब के प्रयोगों का क्षेत्र बहुत विशाल है। अभी इस ओर बहुत शोध-कार्य होना शेष है। निकट भविष्य में इसके और भी आश्चर्यजनक तथा विलक्षण उपयोग विकसित हो सकते हैं जो विस्मयकारी होंगे।

डा० अरुण कुमार सक्सेना
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

गायों से अधिक दूध प्राप्त करने का नया तरीका

सोवियत शोधकर्त्ताओं ने पता लगाया है कि जब गायों पर चुम्बकीय असर डाला जाता है तो वे अधिक दूध देती हैं।

सोवियत संवाद समिति ए. पी. एन. के अनुसार, उन्होंने पता लगाया है कि चुम्बक दुग्ध उत्पादन में वृद्धि कर सकता है और दूध में चर्बी की मात्रा बढ़ा सकता है।

ए. पी. एन. के अनुसार चुम्बकीय इलाज मौसटाइटिस नामक रोग को भी दूर करता और उसको रोकथाम करता है यह रोग गायों के थन में लगता है।

चुम्बकीय जल का उपयोग मानव रोगों को दूर करने के लिए भी किया जाता है। सोवियत दवाखानों में दर्द दूर करने, सूजन कम करने, गुर्दे की पथरी निकालने और उसकी रोकथाम करने के लिए चुम्बकीय जल का प्रयोग किया जाता है।

तिथि निर्धारण

(विज्ञान का पुरातत्व में योगदान)

कु० नीलम श्रीवास्तव

काल निर्धारण पुरातत्व की रीढ़ है। प्राचीन काल के मानव आवास की शुद्ध तिथि ज्ञात करना जितना जटिल है उतना ही महत्वपूर्ण कार्य है। एक पुरातत्ववेत्ता जब किसी प्राचीन टीले का उत्खनन (खुदाई) करता है तो उसमें मानव द्वारा उपयोग में लायी गई वस्तुएँ यथा मिट्टी के टूटे बर्तन, हड्डियाँ, पत्थर के औजार, कोयला, कलाकृतियाँ, आदि अवशेषों के रूप में मिलती हैं। इन्हीं सामग्रियों के आधार पर वह प्राचीन काल के मानव के रहन-सहन के ढंग का अनुमान लगाता है तथा ये वस्तुएँ कितनी अधिक प्राचीन हैं यह भी जानने का प्रयत्न करता है, सामग्रियों तथा मिट्टी की रचना के आधार पर वह तिथि निर्धारण करता है।

तिथि निर्धारण के लिए भूतैथिकी (Geo-chronology), भूतत्व विज्ञान (Geology), जलवायु विज्ञान (Climatology) जीवाश्म विज्ञान (Pala entology) पुराप्राणि विज्ञान (Palaeo zoology), भौतिक विज्ञान (Physics) रसायन विज्ञान (Chemistry), नृतत्व शास्त्र (Anthropology) आदि विषयों का विशेष योगदान है। इस प्रकार सबसे अधिक योगदान तिथि निर्धारण में विज्ञान का रहा है। तिथि निर्धारण की अन्य वैज्ञानिक विधियों में सबसे महत्वपूर्ण एवं विश्वसनीय विधि रेडियो कार्बन तिथि निर्धारण है। इस विधि की सर्वप्रथम घोषणा अमेरिका के शिकागो विश्वविद्यालय में सन् 1947 में डब्लू० एफ० लिबी महोदय ने की थी। इस विधि के द्वारा किसी भी पुरातात्विक सामग्री का तिथि मान सौर्य वर्षों में निर्धारित किया जाता है। 1934 में ग्रोस ने अन्तरिक्ष रेडियो तत्वों के विद्यमान होने की संभावना बताई थी। 10 वर्षों बाद ही यह विधि निकाली गई।

रेडियो कार्बन तिथि निर्धारण का सिद्धान्त—किसी प्राचीन टीले की खुदाई में मिली हुई सामग्रियों में कोयला, लकड़ी, जली वस्तुएं, खाद, हड्डियाँ, बाल, पत्थर इत्यादि भी मिलते है इन सभी वस्तुओं में कार्बन की मात्रा उपस्थित रहती है। इनमें कार्बन के रासायनिक परीक्षण से तिथि निर्धारित की जा सकती है।

इस विधि का सिद्धान्त यह है कि सौर्य विकिरण में अन्तरिक्ष किरणें होती हैं और यह किरणें न्युट्रानों का स्रोत हैं। वायुमण्डल में नाइट्रोजन काफी मात्रा में उपस्थित हैं। तीव्र गति से चलने वाले ये न्युट्रान वायुमण्डल की नाइट्रोजन से टकरा कर लघु परिमाण में कार्बन C^{14} तथा प्रोटान उत्पन्न करती है। नाभिकीय क्रिया इस प्रकार होती है :

$$_7N^{14} + _0n^1 \rightarrow _6C^{14} + _1H^1$$
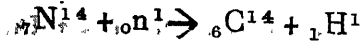
न्यूट्रानों की संख्या अन्तरिक्ष किरणों की तीव्रता पर निर्भर करती है तथा अन्तरिक्ष किरणों का परिणाम पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र पर निर्भर करता है। यह C^{14} कार्बन 12 (C^{12}) का समस्थानिक होता है तथा स्वभाव से रेडियो एक्टिव होता है। यह C^{14} वायुमण्डल में उपस्थित आक्सीजन से संयोग करके

कार्बन डाई आक्साइड (CO_2) के लिए निरन्तर क्रियाशील रहता है तथा वातावरण में C^{14}, कार्बन 12 के साथ एक निश्चित अनुपात में विद्यमान रहता है। चूँकि सभी जीवित पदार्थ (वनस्पति) वातावरण में विद्यमान कार्बन का अवशोषण करते हैं अतः यह कार्बन 12 वनस्पतियों, (जीवों) में C^{14} के साथ एक लघु किन्तु निश्चित अनुपात में पहुँच जाता है। वनस्पति की 'मृत्यु' के बाद उसके अंग में C^{14} का विघटन होने लगता है यह विघटन एक निश्चित दर से होता है तथा 80 वर्षों में एक प्रतिशत होता है C^{14} की मात्रा 5000 वर्षों में अपनी प्रारम्भिक मात्रा (मृत्यु के समय में उपस्थित मात्रा) की आधी हो जाती है इसे अर्ध जीवन काल कहते हैं। अनेक विद्वानों के बीच मतभेदों के फलस्वरूप इसका स्वीकृत अर्द्ध जीवन 5730$\pm$40 वर्ष माना गया है। चूकि प्रारम्भ में ही C^{14} की मात्रा मृत शरीर में अत्यल्प रहती है अतः इस विधि से 40,000 या 50,000 वर्ष पूर्व की तिथि ज्ञात करना संभव नहीं है। विश्व में अभी नीदरलैण्ड की प्रयोग शाला में 40,000 वर्ष से अधिक पुरानी वस्तु की तिथि निर्धारित की गई है।

यह विधि बहुत ही व्यापक, शुद्ध तथा प्रमाणिक हैं लेकिन फिर भी इसमें त्रुटियों की संभावना रहती है ये त्रुटियाँ निम्न हैं।

(1) **सांख्यकीय क्रियात्मक त्रुटि**—मृत शरीर में कभी-कभी C^{14} के विघटन का दर अनियमित हो जाता है जिससे तिथि निर्धारण में त्रुटियाँ आ जाती हैं इसके निराकरण के लिए + तथा − (5730$\pm$40) में तिथि लिखी जाती है।

(2) कार्बन के नमूने में भी अशुद्धि होने के कारण तिथि मान गलत निकलता है। कभी-कभी जिस प्राचीन स्थल से कार्बन की प्राप्ति होती है वहाँ किसी बाध्य प्रभाव से C^{14} के केन्द्रीकरण में अनियमितता हो जाती है या कभी-कभी रेडियो एक्टिव कार्बन के साथ सामान्य कार्बन की मिलावट हो जाती है। इससे तिथि निर्धारण में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। पृथ्वी में अनेक रासायनिक परिवर्तन भी होते रहते हैं। ये रासायनिक परिवर्तन अवश्य ही पृथ्वी के अन्दर की पुरातात्विक सामग्रियों में भी होते होंगे। इन सब कारणों से तिथि निर्धारित करने में अशुद्धता आ जाती है।

(3) प्रयोग शाला में कभी-कभी वहाँ का उपकरण दोषपूर्ण होता है जिससे कि भिन्न-भिन्न प्रयोगशालाओं में एक ही कार्बन नमूने की भिन्न-भिन्न तिथियाँ आती हैं। विद्वानों में अर्ध जीवन काल के लिए भी मतभेद है इन सब अशुद्धियों के बाद भी इस विधि का पुरातत्व में सबसे अधिक योगदान है।

रेडियो कार्बन तिथि निर्धारण के अतिरिक्त अन्य वैज्ञानिक विधियाँ भी हैं जिनसे हम प्राचीन मानव तथा उसके द्वारा उपयोग में लाये गये उपकरणों की विश्वसनीय तिथि निर्धारित कर सकते हैं। इनमें से एक अन्य विधि फ्लोरीन तिथि निर्धारण है।

फ्लोरीन जाँच—किसी टीले की खुदाई से प्राप्त हड्डियों के परीक्षण से हम उस स्थल पर मानव आवास की शुद्ध तिथि ज्ञात कर सकते हैं। इसका सिद्धान्त यह है कि हड्डियों में मूल रूप से तो फ्लोरीन की मात्रा मिलती है लेकिन मृत्यु के पश्चात् जैसे-जैसे हड्डी प्राचीनतर होती जाती है वैसे-वैसे फ्लोरीन की मात्रा में वृद्धि होती जाती है। यह फ्लोरीन की मात्रा हड्डियों में एक निश्चित दर से बढ़ती है। हड्डियों में व्याप्त फ्लोरीन की मात्रा का परिकलन करके हड्डी की प्राचीनता सिद्ध कर सकते हैं नीचे के स्तरों से प्राप्त हड्डियों में फ्लोरीन की मात्रा अधिक होती है तथा ऊपरी स्तर पर मिलने वाली हड्डियों में फ्लोरीन की मात्रा अधिक हो जाती है।

तिथि निर्धारण करने की एक अन्य महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक विधि वृक्ष वलय के निर्माण के द्वारा

[शेष पृष्ठ 15 पर

हमारे पुराने अंकों से

धमकी*

रामलखन सिंह

उस दिन इतवार था। सभी जानते हैं कि इस दिन काफी हाउस में भीड़ होती है। देर से आये नहीं कि वापस लौटना पड़ेगा की बात सभी जानते हैं। इसलिए मैं जल्दी ही जाकर कोने की मेज से चिपकी अकेली कुर्सी खींचकर बैठा था। मेज पर रखी ऐशट्रे में अधजली सिगरेट दमतोड़ रही थी। पता नहीं मुझे क्यों घुट-घुट कर मरती सिगरेट के उठते धुएं को देखना बड़ा भला लगता है। उस समय भी वही कर रहा था। तभी किसी ने पीछे से कंधा थपथपाया। चौंककर देखा तो 'अणुबम' महाशय खड़े इस अदा से मुस्करा रहे थे जैसे मैं तपाक से उन्हें काफी के लिए आमन्त्रित कर दूँगा। मुझे अपने एकांत में बाधा डालने वाले से ऐसे ही नफरत हो उठती है, उस पर जब वह महाशय इन जैसे हों जिनके लिए मेरे मन में स्थायी घृणा पनप चुकी हो तो मेरे लिए यह सम्भव न हो सका कि मैं उन भावों को चेहरे पर आगे से रोक सकूँ। मेरी उपेक्षा भरी खामोशी से वह महाशय तिलमिला उठे परन्तु गुस्से से किसी और मेज की ओर बढ़ जाने के बदले वह पास की कुर्सी खींचकर वहीं जम गये। और इसके पहले कि मैं उनकी इस बेतकुल्लफी पर कुछ कहूँ वे ही कह पड़े—'मुझे मालूम है कि अन्य लोगों की तरह तुम भी मुझसे नफरत करते हो। परन्तु क्या मैं पूछ सकता हूँ कि मेरी बुराई क्या है……।'

बुराई मानवता के अस्तित्व के लिए खतरा बने हुए तुम हजारों बेगुनाहों को मौत के मुँह दफाना देने वाले, तुम, शर्म से डूब मरने के बदले अपनी चर्चा करने का नैतिक साहस कैसे कर पाते हो……। कहते-कहते भरे मन की घृणा आँखों में उत्तर आयी थी। मेरे इस उत्तर पर कुछ क्षण तक मौन ताकते रहने के बाद भरे स्वर में वह बोले—"काश कि तुम्हें मेरी आपबीती ज्ञात होती और तुम सोच पाते कि मेरा विनाशकारी रूप स्वाभाविक है…"

"मैं भी तो सुनूँ कुछ मजबूरियाँ जिन्होंने तुम्हें ऐसा बनाया…"

"…" कुछ क्षणों तक अपने आप में खोये रह कर उन्होंने कहना शुरू कर दिया—'तुमने 'यूरेनियम' का नाम सुना होगा। हो सकता है, देखा भी हो! वह चमचमाते रूप वाली नारी मेरी माँ है। उस जैसी रूपवाली और शील वाली दूसरी नारी नहीं मिलेगी तुम्हें। चमचम करता उसका रूप देख लोभी इंसान के मुँह में पानी आ गया। वह भोला सा मुँह बनाये उसके पास गया। उसकी बड़ाई बखानी और अपनी प्रयोगशाला तक चलने को आमन्त्रित किया।

दुनिया के छल प्रपंचों से दूर मेरी माँ उसके मन में छिपे पाप को भाँप न सकी और उसने उसकी प्रयोगशाला तक जाना स्वीकार कर लिया। वहाँ पर इन्सान ने अपनी शराफत का चोंगा उतार फेंका और उसकी सब किरणों (अल्फा, बीटा और गामा किरणें) को छूना चाहा। परन्तु

*धमकी। रामलखन सिंह; 'विज्ञान' नवम्बर 1965, पृष्ठ 48-50।

सती का तेज वह सह न सका और झुलस उठा। इस पर उसका क्रोध उग्र हो उठा और उसने उसे 'भारी पानी' (D_2O) के तालाब में डुबो दिया, जिससे उसका तेज दम तोड़ दे। वह बेचारी छटपटा कर शांत हो गयी।

अब उसने उसके साथ मनमाना व्यवहार किया। उसने उसे निर्वसना करके उसकी नाभि (न्यूक्लियस) पर 'न्यूट्रान' के तेज अग्नि बाण चला दिये। आखिर बेबस नारी कब तक विरोध करती। इन अग्नि बाणों ने उसका दिल तोड़ कर रख दिया। परन्तु वह एक सती का दिल था और इसलिए छूटते-छूटते उसमें उस बलात्कारी को भस्म कर देना चाहा। उसकी नाभि के टुकड़ों के साथ ही एक शोला (प्रत्येक यूरेनियम नाभि के विघटन से 200,000,000 इलेक्ट्रान वोल्ट ऊर्जा प्राप्त होती है।) निकला जिसमें वह जलते-जलते बचा।

अब उसे पता चला कि 'वह रूपवती साधारण कोई राह नहीं चलती है। उसके सीने में महान शक्ति का स्रोत छिपा है।'

इस पर तो उसकी पिपासा और बढ़ी। उसने इस शक्ति के द्वारा एक महान् नायक बनने की कल्पना की। इसके लिए उसने योजना बनायी कि 'यदि एक साथी हो अनेक यूरेनियम नारियों का विघटन किया जाय तो परिणाम स्वरूप शक्ति का अखण्ड स्रोत मिलेगा।' बस इस रोमाञ्चकारी योजना को क्रिया में परिणित करने में उसने रंचमात्र भी विलम्ब नहीं किया। उसने ऐसी एवं निर्मम हत्याओं की पूरी माला तैयार कर दिया। एक यूरेनियम की नाभि को स्वनिर्मित न्यूट्रान से विघटित करके उससे निकलने वाले प्रतिशोधी न्यूट्रानों से (यूरेनियम नाभि के विघटन में 1·5 के लगभग सेकेन्ड्री न्यूट्रान निकलते हैं) दूसरी नाभि और उससे प्राप्त न्यूट्रानों से अन्य तीसरी' चौथी नाभि को बिना एक क्षण का भी बिलम्ब किए विघटित करता चला गया। इस क्रूर क्रिया को उसने 'चेन रिएक्सन' कह कर अट्टहास किया क्योंकि इसके द्वारा उसे अटूट शक्ति स्रोत मिल गया था। मैं यूरेनियम नारियों के हुए इस बर्बर व्यवहार की पापी औलाद हूँ। यही नहीं, उसने जब देखा कि समस्त यूरेनियम नारियाँ उसके सामने आत्म-समर्पण नहीं कर रहीं हैं तो उसने उनमें से कमजोर दिल वाली मासूम बालाओं को अलग चुनकर अपना काम निकाला। (यूरेनियम की मिश्र राशि में केवल 235 इकाई भार वाली नाभियाँ ही न्यूट्रान से प्रभावित होती हैं तथा 238 इकाई भार वाली नाभियाँ पूर्णतया उदासीन रहती हैं। इसलिए बम के लिए 235 इकाई भार वाली राशि अलग करनी पड़ती है)। यही नहीं, उसने इसमें उलझते देखकर अन्य पात्रों की तलाश में दृष्टि दौड़ाई। उसने हमारी ही बस्ती की एक अन्य जाति प्लूटोनियम को उपयुक्त समझ दबोच लिया। ऐसी ही निर्ममता से अगणित प्लूटोनियम बालाओं को एक साथ कैद करके जब अग्निबाण (न्यूट्रान) छोड़े तो चीख कराहों से सारा वातावरण दहल उठा परन्तु उसके दिल पर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। वह अपने कुकृत्यों को उचित सोचता निरन्तर ऐसी जघन्य क्रियाओं में व्यस्त रहा और इन निर्दोष नारियों की हर करुण चीख पर अट्टहास करके अपने सपनों में वास्तविकता का पुट देखता रहा। वह दिन भी आया जब उसने एक कोठरी में इन मासूमों की भिन्न-भिन्न पर्दों में कैद करके अपना सपना साकार करना चाहा (एटमबम में प्रयुक्त यूरेनियम—235, या प्लूटोनियम 239 को एक पिंड के रूप में नहीं रखते वर्ना तत्काल चेनरियेक्सन स्थापित हो जाए और प्रयोगशाला में ही बिस्फोट हो जाए इसलिए उसे कई एक भागों में बाँटकर बीच में स्पेशर 'पर्दा' डालकर अलग रखते हैं और उपयुक्त समय पर इन पर्दों को तोड़कर चेनरियेक्सन स्थापित करवा कर बिस्फोट कर सकते हैं) इस प्रकार की क्रिया का

प्रतिफल हूँ मैं। इस प्रकार मेरा जन्म मेरी ही माँ बहनों की चीख पुकार नहीं सुनता। मेरे दोस्त मैं उसे सुनाता हूँ और सुनकर तड़पता हूँ। और यदि यह मेरी प्रतिशोधी तड़प उस इन्सान की माँ बहनों बच्चों को, बहरा कर दे तो मेरा क्या कसूर है? क्या तुम चाहते हो कि मैं बुजदिलों की तरह अपनी माँ बहनों के साथ हुए अत्याचार को देखकर भी शान्ति रह जाऊँ। बोलो, खूब सोचकर बोलो कि मैं बदला लेता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ। मैं उसके हरे भरे चमन को वीरान करता हूँ तो क्या बुरा करता हूँ। क्या तुम सोचते हो कि माँ के स्तन से लिपट कर चुहुक-चुहुक कर दूध पीते बच्चे को, माँग में सिन्दूर भरती सुहागिन को, भाइयों से प्रेमालाप करती बहनों को शहनाई के स्वर पर सपने सँवारती दुल्हन को, सदा के लिए मौत में मुँह में ढकेलते मुझे दर्द नहीं होती परन्तु उस दर्द के अनुभव से जब मैं शान्त होता चाहता हूँ तो मेरी बेमौत मारी गयी माँ-बहनों की पथराई आँखें घूरकर पूछती हैं, क्या तुम इन्सान को इसी तरह खेलते रहने को छोड़कर हम सबका विनाश नहीं करवा दोगे? और उस समय मुझ पर खून सवार हो जाता है। मैं मीलों तक फैलकर इन्सान को मिटा देने पर तुल जाता हूँ। मेरा प्रकोप देखकर तूफान अपनी गति भूल जाता है, ज्वालामुखी भी लज्जित हो उठता है, धरती का सीना फट जाता है। मेरे गर्जन से आसमान काँप उठता है......" कहते-कहते वह उठ खड़ा हुआ। सारा काफी हाउस इस कदर खामोश हो गया था जैसे श्मशान घाट हो। उनकी रोषपूर्ण मुद्रा देखकर सभी बुत से बैठे रह गये थे। वह कुर्सी छोड़ते हुए, हाथ की अधजली सिगरेट ऐशट्रे में फेंकते हुए चलने को मुड़ा। पुनः ठहरा—मैं इतना और कहे जाता हूँ कि यदि इन्सान ने मुझसे उलझना न छोड़ा, यदि वह इसी तरह मुझे कुछ करने को मजबूर करता रहा तो मैं एक दिन उसका नामोनिशान मिटा दूँगा......' और तेजी से बाहर निकल गया। सभी के सभी उसकी इस धमकी पर सिहर से उठे थे।

अब सोचता हूँ कि सम्भवतः वह ठीक था, गल्ती इन्सान की है। काश कि वह समय से पहले चेत जाए......।'

लेखकों से

आगामी विशेषांक 'अन्तरिक्ष विज्ञान' पर प्रकाशित होने को है। आप अपनी रचनायें 15 अक्तूबर तक कार्यालय में अवश्य भेज दें। रचना के साथ काली स्याही से अलग से बने हुये चित्र भेजना न भूलें। अन्तरिक्ष से सम्बन्धित कोई ऐसी कहानी का जिससे बच्चों का ज्ञान भी बढ़े और उनकी रुचि भी हो हम स्वागत करेंगे— सम्पादक

पृथ्वी का विस्तार बढ़ रहा है ?

भारत की ही नहीं सारे संसार की जनसंख्या में जिस दर से वृद्धि हो रही है यदि यह दर बना रहा तो 2001 ई० तक यह संख्या चार अरब तक पहुँच सकती है। निवास के लिये स्थान, खेती के लिये भूमि तथा उद्योग-धंधों के लिये समुचित स्थान का अभाव बराबर बढ़ रहा है। मनुष्य को चिन्ता हुई है कि इसका उपाय क्या होगा। जन-संख्या को नियंत्रित करने की दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है विशेषकर विकासशील देशों में। वैज्ञानिक कहते हैं हम चाँद पर जाकर रहेंगे, हम मंगल ग्रह पर अपना आधिपत्य जमायेंगे (वाईकिंग योजना का भी उद्देश्य यही है)। यदि पृथ्वी पर अधिक द्वीप व प्रायद्वीप तथा सूखा स्थान मिल सके तो भी इस समस्या का कुछ समाधान निकल सकता है।

प्राय: हमें पढ़ने को मिलता है प्रशान्त महा-सागर की गहराई बढ़ रही है, हिमालय की ऊँचाई बढ़ रही है व बर्फीले प्रदेशों का क्षेत्र बढ़ रहा है। अब इस प्रकार के तथ्य सामने आये हैं जिनसे यह आभास मिलता है कि पृथ्वी का विस्तार हो रहा है। इस विचार का प्रतिपादन 1889 में एफ० ओ० याकोव्सकी ने सर्वप्रथम किया था कि पृथ्वी फैल कर बढ़ रही है पर इस घटना का मूल्यांकन अभी हाल ही में हो पाया है।

यह माना जाता है कि महाद्वीप अपनी जगह से हटते रहते हैं जैसा कि अमरीका, यूरोप और अफ्रीका तथा विशेषकर दक्षिण की अटलांटिक तट रेखाओं से पता चलता है। ये तट रेखायें एक दूसरे के इस प्रकार समानान्तर हैं जैसे चूल में बैठ जाता है। यही बात हिन्द महासागर के महाद्वीपों के सम्बन्ध में भी लागू होती है।

क्या ऐसा हो सकता है कि किसी समय सारे महाद्वीप एक स्थलीय इकाई रहे हों और वे बाद में खिसक कर अलग हुये हों। यह देखा गया कि पृथ्वी के भूपटल की पतली झिल्ली में कोई परिवर्तन नहीं आया जबकि इसके नीचे विशाल द्रव्य पिण्ड खिसकते गये। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य जिसका हाल ही में पता चला वह यह है कि महासागरों की आयु अधिक नहीं हुई है। गहरे ड्रिलिंग से वह बात कुछ हद तक सिद्ध हुई है। इससे यह पता चलता है कि महाद्वीपों का निर्माण महासागरों से पहले हुआ था।

सम्भवत: यह बात सिद्ध हो जाय कि भूमण्डल को घेरे हुये विशाल महासागरीय दरारों का जो जाल सा फैला है उसे दृष्टि से ओझल न किया जा सके। पर्यवेक्षणों से पता चला है कि इन भूव्यापी दरारों के किनारे फैलते जा रहे हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का यह मत है कि महाद्वीप अपनी जगह से खिसकते जा रहे हैं और एक दूसरे से दूर या निकट होते जा रहे हैं। परन्तु ऐसे वैज्ञानिक भी हैं जो इस मत से सहमत नहीं हैं कि महाद्वीप खिसक रहे हैं। विचार करने से ऐसा लगता है कि दोनों मतों के मानने वाले वैज्ञानिक अपनी-अपनी जगह पर सही हैं। महाद्वीपों की रूप रेखायें और संरचनायें समान इसलिये हैं कि अतीत में कभी वे सचमुच एक ही इकाई के अंग थे। पृथ्वी के फैलते जाने से संबंधित परिकल्पना का इन वैज्ञानिकों के बीच अन्तहीन विवाद सा उठ खड़ा हुआ है।

पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति भी वैज्ञानिकों के लिये दिलचस्पी का विषय है जो केन्द्र से दूरी के वर्ग के समानुपाती होती है। अगर अतीत के तमाम भूवैज्ञानिक युगों में गुरुत्व शक्ति स्थिर नहीं रही है तो पृथ्वी के फैलते जाने से सम्बन्धित परिकल्पना शुद्ध विचार नहीं रह जाती है। किन्तु अगर गुरुत्व शक्ति समय के साथ घटती जाती है तो इसका अर्थ यह होगा कि पृथ्वी इस प्रकार बढ़ी कि उसका आयतन तो बढ़ गया है परन्तु इसकी संहति में परिवर्तन नहीं हुआ। यदि गुरुत्व शक्ति बढ़ती है तो पृथ्वी की संहति भी बढ़ेगी।

प्राचीन तलछटी चट्टानों से पत्थर के रूप में जमे रेत के टीलों और नदी तलछट के स्पष्ट अवशेष मिलते हैं। सोवियत वैज्ञानिक एल० एस० स्मिर्नोव ने उसके कोणो की नाप की तो ज्ञात हुआ कि एक समय में ढलानें आप से ज्यादा खड़ी होती थीं।

वाशिंगटन में 1875 से 1928 तक किये गये पर्यवेक्षणों के अनुसार गुरुत्व शक्ति 980098 मिली गास से बढ़कर 980120 मिली गास हो गयी। 1956-57 के निरीक्षणों के अनुसार बाल्टिक क्षेत्र, लेनिनग्राद, काकेशस और सोवियत मध्य एशिया में गुरुत्व शक्ति में 0·05 से 0-10 मिलिगास की सालाना वृद्धि हुई। 1 अरब वर्ष में पृथ्वी के धरातल पर यह शक्ति 2·2 गुनी हो गई अर्थात् पृथ्वी का आकार दुगुना हो गया। 6 अरब वर्ष पहले यह आज की शक्ति का मात्र छठा या आठवाँ भाग था।

अभी भी कुछ ठोस प्रमाणों के जुटाने की आवश्यकता है जिससे अन्तिम रूप से सिद्ध हो सके कि पृथ्वी फैल रही है।

—संकलित

[पृष्ठ 10 का शेषांश]

तिथि ज्ञात करने की है। द्विबीज पत्री तथा कभी-कभी एक बीज पत्री वृक्ष में हमें द्वितीयक वृद्धि के लक्षण देखते हैं यह द्वितीयक वृद्धि वृक्षों की जड़ों तथा तनों में कैम्बियम वलय की वृद्धि कैम्बियम सक्रियता से होती है। नई-नई कोशिकाओं का निर्माण होता है नई कोशाओं की वृद्धि के कारण जड़ तथा तनों में मोटाई में भी वृद्धि हो जाती है। यह द्वितीयक वृद्धि वातावरण की जलवायु पर निर्भर करती है।

बसन्त ऋतु में कैम्बियम सक्रियता के द्वारा पतली तथा बड़े आकार की (कोषाओं) का निर्माण होता है तथा ग्रीष्म ऋतु के समाप्त होते-होते यहीं को कोष मोटी दीवारों की तथा आकार में भी छोटी बनने लगती है इस प्रकार इन नई कोशिकाओं में एक-एक वलय का निर्माण हो जाता है यह वलय वर्ष में एक बार बनतीहै। प्रति वर्ष यही क्रम चलता रहता है। वृक्ष यदि अधिक पुराना होगा तो वलयों की संख्या भी वृक्ष की आयु के बराबर होगी वृक्ष की वलयों की संख्या ज्ञात करने हम किसी प्राचीन स्थल पर प्राप्त प्राचीन वृक्ष की आयु निर्धारित कर सकते हैं तथा वृक्ष से सम्बन्धित वस्तुएँ जो प्राचीन स्थल से मिली है वे भी उतनी ही प्राचीन होंगी जितना कि प्राचीन वृक्ष होगा। इस विधि का पन्द्रहवीं शती से प्रयोग किया जा रहा है जबकि विश्व-विख्यात कलाकार लियोनार्दो द विन्सी ने वलय गिनकर वृक्षों की आयु बताने का प्रयास किया था। वृक्षों की वलय संख्या का जलवायु से क्या सम्बन्ध है इसे 1480 में सर्वप्रथम कप्तायन ने हालैंड में अध्ययन किया था। अमेरिका में यह प्रयास 1901 में आरम्भ हुआ।

बाल विज्ञान

प्राणदायिनी ऑक्सीजन

डा० रामचन्द्र कपूर

आज से लगभग 200 वर्ष पूर्व एक अंग्रेज वैज्ञानिक जोसेफ प्रीस्टले ने 1 अगस्त 1774 को सर्वप्रथम ऑक्सीजन गैस का हवा से अलगाव किया था। ऑक्सीजन प्रकृति में अन्य तत्वों की अपेक्षा काफी अधिक मात्रा में पायी जाती है। हमारे चारों ओर पायी जाने वाली हवा में भार के हिसाब से 100 भाग में से 23 भाग शुद्ध ऑक्सीजन होती है, तथा जल में 89 भाग (भार के हिसाब से)। परन्तु जल में पायी जाने वाली ऑक्सीजन मुक्त अवस्था में न होकर एक दूसरे तत्व हाइड्रोजन से रासायनिक रूप से जुड़ी रहती है। ऑक्सीजन जब साधारण रूप से किसी तत्व से जुड़ी रहती है तो इस प्रकार बने हुये यौगिक को ऑक्साइड कहते हैं। इस प्रकार जल, हाइड्रोजन का एक आक्साइड ही हुआ। जल एक द्रव है जबकि आक्सीजन तथा हाइड्रोजन दोनों ही साधारणतया गैसीय अवस्था में पायी जाती हैं। कुछ आक्साइड गैसीय अवस्था में पाये जाते हैं, कुछ द्रव में, तथा कुछ ठोस में। भू-पृष्ठ कुछ ठोस आक्साइडों का ही बना हुआ है, तथा बहुत सी धातुयें जिन अयस्कों के रूप में पृथ्वी से प्राप्त की जाती हैं वे भी ठोस आक्साइड ही हैं। कुछ ही आक्साइड ऐसे हैं जो गर्म किये जाने पर ऑक्सीजन प्रदान करते हैं, उदाहरणतः पानी को जब गर्म किया जाता है तो वह वाष्प बनकर उड़ जाता है, परन्तु यदि अम्ल मिले हुये जल से विद्युतधारा प्रवाहित की जाती है तो उसका विद्युत विच्छेदन हो जाता है तथा हाइड्रोजन व ऑक्सीजन गैसें प्राप्त होती हैं।

आक्सीजन एक रंगहीन गंधहीन तथा स्वादहीन गैस है। यदि गैस को पानी के साथ हिलाया जाता है तो यह थोड़ी मात्रा में उसमें घुल जाती है। पानी में घुली हुई ऑक्सीजन ही पानी में रहने वाले जीव-जन्तुओं की जीवन-दायिनी है। आक्सीजन स्वयं तो नहीं जलती है परंतु दूसरी वस्तुओं के जलने में सहायता करती है। उच्च तापक्रम पर ऑक्सीजन काफी क्रिया-शील है तथा विभिन्न प्रकार के पदार्थों से संयोग करती है। जब ऑक्सीजन किसी ईंधन से संयोग करती है तो ऊष्मा के रूप में ऊर्जा उत्पन्न होती है जो कि क्रिया कराने तथा क्रिया की गति को तीव्र करने में इस्तेमाल की जाती है। कोई ईंधन जब हवा में जलता है तो वह केवल ऑक्सीजन से ही संयोग करता है जब कि नाइट्रोजन (जो कि वायु में 4/5 भाग मौजूद है) कोई क्रिया नहीं करती है, वह केवल हवा में उपस्थिति ऑक्सीजन को तनु कर देती है जिससे कि दहन की क्रिया धीमी हो जाती है। इसी कारणवश विभिन्न पदार्थ वायु के बजाय ऑक्सीजन में शीघ्रता से जलते हैं। साधारण तापक्रम पर स्टील में जंग धीमी गति से लगता है। जंग लगने की क्रिया रसायनिक रूप से दहन क्रिया के समान ही

है तथा इसमें लोहा नमी की उपस्थिति में मीधी गति से आक्सीजन से संयोग करता है।

जीव-जंतु ऑक्सीजन के ऊपर ही निर्भर हैं क्योंकि जो भोजन वे खाते हैं उसके साँस द्वारा ली गयी आक्जीजन के रसायनिक संयोग से ही दैनिक कार्यों के लिये ऊर्जा प्राप्त होती है। भोजन पहले ग्लूकोज शक्कर में बदल जाता है तथा बाद में वह ऑक्सीजन से क्रिया करके जल, कार्बन डाइआक्साइड तथा ऊर्जा प्रदान करता है। ज्यादातर ईंधन जलने पर जल तथा कार्बन डाइआक्साइड ही प्रदान करते हैं। सौभाग्यवश पेड़-पौधे साँस द्वारा कार्बन डाइआक्साइड लेते हैं तथा ऑक्सीजन निकाल देते हैं अन्यथा वायुमंडल में आक्सीजन की मात्रा हम जितनी बार साँस लेते, आग जलाते, मोटर चालू करते हैं घटती जाती तथा एक ऐसी अवस्था आ जाती कि हमारा इस संसार में जीना दूभर हो जाता, और इसी कारणवश ऑक्सीजन को प्राणदायिनी कहा गया है।

एक जेट हवाई जहाज वायु में पैराफीन के दहन से ही ऊर्जा प्राप्त करता है। यह हवा की अनुपस्थिति में उड़ नहीं सकता क्यों कि हवा में उपस्थिति ऑक्सीजन पैराफीन के दहन के लिए आवश्यक है। दूसरी ओर एक राकेट वायुमंडल के ऊपर भी जा सकता है जहाँ वायु नहीं रहती क्योंकि उसमें ईंधन के साथ-साथ ऑक्सीजन भी ले जायी जाती है। राकेट में ले जायी जाने वाली ऑक्सीजन या तो द्रव अवस्था में रहती है अथवा किसी ऐसे रसायन जैसे नाइट्रिक अम्ल के रूप में जिसमें ऑक्सीजन की काफी मात्रा विद्यमान रहती है।

ऑक्सीजन का एक प्रमुख व्यापारिक उपयोग वेल्डिंग अथवा तापजुड़ाई में है। किसी गैसीय ईंधन जैसे कोल गैस, हाइड्रोजन अथवा एसिटिलीन को शुद्ध ऑक्सीजन के साथ मिश्रित किया जाता है, तथा यह मिश्रण ही वेल्डिंग में इस्तेमाल किया जाता है तथा यह बहुत ही तप्त ज्वाला के साथ जलता है। इस ज्वाला कि तत्पता इतनी अधिक रहती है कि यह स्टील को भी काट देती है।

ऑक्सीजन प्रयोगशाला में पोटैशियम क्लोरेट अथवा नाइट्रेट को गर्म करके बनायी जा सकती है। साधारणतः यह पोटैशियम क्लोरेट को मैगनीज डाइआक्साइड की उपस्थिति में गर्म करके प्राप्त की जाती है। मैगनीज डाइआक्साइड क्रिया में स्वयं तो भाग नहीं लेता परन्तु क्रिया की गति को बढ़ा देता है।

सामान्यतः ऑक्सीजन के सबसे छोटे कण (अणु) में उसके दो परमाणु जुड़े रहते हैं। ओजोन आक्सीजन का एक दूसरा रूप है जिसमें आक्स जन के तीन परमाणु जुड़े रहते हैं। ओजोन एक हल्के नीले रंग की गैस है तथा यह ऑक्साजन में विद्युत प्रवाहित करके प्राप्त की जा सकता है।

डा० रामचन्द्र कपूर,
क्राइस्ट चर्च कालेज,
कानपुर—1

●●

विज्ञान वार्ता

नेत्र-चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा के लिए नया सहायक उपकरण

केण्टुकी विश्वविद्यालय में नेत्र-चिकित्सा विज्ञान विभाग के निदेशक, जोनाथन वर्ल्जशैफ्टर, ने नेत्र-विज्ञान की शिक्षा के लिए एक नये सहायक उपकरण का निर्माण किया है। आशा की जाती है कि यह उपकरण चिकित्सा विज्ञान, दृष्टिमिति (आफ्टोमेट्री), परिचर्या, स्वास्थ्य-सेवा और आर्थाप्टिक्स के छात्रों के लिए विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। इसका नाम 'स्टैम्बिस्पस कवर टेस्ट डिमाण्स्ट्रेटर' है। यह उपकरण आँख के भेंगापन या ऐंचापन (स्ट्रैम्विस्मस) के लक्षणों को उभार कर तेज कर देता है। यदि इस रोग के लक्षणों का प्रारम्भ में ही पता चल जाय, तो ऐंचापन के कारण उत्पन्न दृष्टिक्षीणता का आसानी से उपचार हो सकता है।

इस उपकरण का प्रयोग ऐंचापन के प्रारम्भिक लक्षणों का प्रदर्शन करने और पता लगाने के लिए किया जाता है। इस प्रकार यह एक प्रदर्शन एवं शिक्षण सहायक उपकरण है। इसके निर्माताओं के अनुसार, यह उपकरण शिक्षकों और नेत्र-चिकित्सकों के लिए विशेष उपयोगी है।

इसका निर्माण कैम्ब्रिज, मेसाचूसेट्स की फर्म, वायोमैट्रिक्स, ने किया है। इसका प्रदर्शन सोवियत संघ ईरान, इटली और जापान के व्यापार-मेलों में हो चुका है।

चूहों को भगाने वाला निःस्वन उपकरण

इस समय एक ऐसा निःस्वन उपकरण बाजार में उपलब्ध है, जो अधिकांश चूहों और कुतरने वाले जीवों को अनाज या बीज के भण्डारों, पिसाई की चक्कियों, कसाईखानों, मांस को डिब्बों में बन्द करने वाले कारखानों, बेकरियों, उपाहार-गृहों, होटलों और अन्य स्थानों से भगा कर दूर हटा देता है।

इसका नाम 'सोनिक रेडर' है, जिसे वैंकूवर, वाशिंगटन, के ट्रास-ट्रोनिक्स कारपोरेशन के सोनिक रेडर डिवीजन के यहाँ से खरीदा जा सकता है। यह उपकरण ऐसी ध्वनियाँ उत्पन्न करता है, जो मनुष्य के कान से सुनायी नहीं देती हैं, किन्तु चूहों और अन्य कृन्तक जन्तुओं को अत्यन्त अप्रिय प्रतीत होती हैं। ऐसा करके यह उपकरण विष का प्रयोग किये बगैर ही चूहों आदि को दूर भगा देता है। यह चूहों को हत्या नहीं करता। दो वर्ष तक क्षेत्रीय परीक्षण के बाद इसे बाजार में लाया गया है। निर्माताओं का दावा है कि 80 प्रतिशत परीक्षणों के दौरान इसके प्रयोग से चूहों को भगाने में सफलता मिली है। अब तक इसकी सैकड़ों इकाइयाँ बिक चुकी हैं।

इसके निर्माता 30 दिन की परीक्षण अवधि की छूट देते हैं और 3 वर्ष की गारण्टी देते हैं। अमेरिका में जहाँ कहीं इसका प्रयोग किया गया है, इससे मनुष्य के लिए किसी प्रकार का खतरा नहीं उत्पन्न हुआ है। इससे मनुष्य के लाभ को भी कोई नुकसान नहीं पहुँचता। वास्तव में वह ध्वनि में दबाव उत्पन्न करके चूहों को नहीं भगाता। यह ध्वनि के आवर्तन में वृद्धि करके ऐसा करता है। सामान्य माल-गोदामों में यह उपकरण लगभग 15 फुट चौड़े और 80 फुट लम्बे क्षेत्र को चूहों से सुरक्षित रखने में समर्थ होती है। सीवर जैसी साफ जगहों में, इसकी एक इकाई लगभग 350 फुट लम्बी जगह की रक्षा कर सकती है। इसे भवनों के उन स्थानों पर रखा जाता है, जहाँ से चूहे प्रवेश करते हैं।

धातु की चद्दरों को कीलित करने की नयी विधि

विश्व भर में आजकल धातु की चद्दरों को मजबूती से कीलित करने या जकड़ने के लिए एक नयी विधि का प्रयोग किया जा रहा है। इस विधि को 'स्विसलोक फासनर' कहते हैं। इसका प्रयोग 12 से 20 गेज वाली धातु की चद्दरों को सही और मजबूती के साथ जोड़ने-बैठाने के लिए किया जाता है। लेकिन इसका प्रयोग धातु की चद्दरों को प्लास्टिक्स, लकड़ी, हार्डबोर्ड और अन्य सामग्रियों के साथ चिपकाने के लिए भी किया जा सकता है।

धातु की चद्दर एक दूसरी चद्दर के साथ, जो उस पर लम्बवत खड़ी की जाती है, इस प्रकार कीलित की जाती है कि दोनों में से किसी भी चद्दर में तनिक भी कोई झुकाव पैदा नहीं होता। इस विधि के अन्तर्गत, कील या फासनर को एक चद्दर में बने छिद्र में प्रविष्ट कर दिया जाता है। कील के ऊपर हथौड़े की एक ही चोट करने पर दोनों चद्दर एक-दूसरे से चिपक जाती हैं। इस विधि के अन्तर्गत प्रयुक्त कील का परीक्षण सबसे पहले स्विट्जरलैण्ड की एक प्रमुख फर्म ने किया, जो वातानुकूलन यन्त्रों का निर्माण करती है। यह कील बहुत सस्ती होती है। इसका विक्रय करने वाली फर्म न्यूजर्सी की है और उसका नाम वाल्ड-मैन कारपोरेशन है।

खिड़कियाँ और दरवाजों के हिस्से तैयार करने वाली स्वचल मशीन

इस समय बाजार में एक नये प्रकार का मशीनी औजार उपलब्ध है जो प्लास्टिक और अल्युमिनियम के हिस्से तैयार करने वाले निर्माताओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। यह मशीन कटाई, चिराई और छिदाई की प्रक्रियाएँ एक साथ ही सम्पन्न करती है।

यह मशीन स्वतः-चालित है और अल्युमिनियम या प्लास्टिक के पूरी लम्बाई के किसी खण्ड से अपने-आप आवश्यक आकार के हिस्से काँट-छाँट कर तैयार कर देती है। यह किसी एक ही स्थान पर पूरे हिस्से को पूर्ण रूप में तैयार कर देती है। इसे इस प्रकार संचालित किया जा सकता है ताकि यह खिड़कियों और दरवाजों के अधिकांश हिस्सों को 10 से 15 मिनट में ही काट-छाँट कर अपने-आप तैयार कर दे।

इसके उत्पादन की गति इस बात पर निर्भर करेगी कि इससे कितने कार्य एक साथ लिये जाते हैं। आमतौर पर यह दो कार्य एक साथ सम्पन्न करती है। 11 हिस्सों वाली खिड़की के सभी हिस्से बनाने में औसत रूप से इसकी उत्पादन गति प्रति घन्टे 300 हिस्से की होती है। इस समय एक ऐसी मशीन भी है, जो प्रति घन्टे 720 हिस्से तैयार कर रही है।

इसके निर्माता कैलिफोर्निया के ऐक्सीट्रान कारपोरेशन के पास इस मशीन के दो माडेल हैं। एक माडेल 3 इंच तक के गोलाकार हिस्से तैयार करता है। इसका मूल्य 22860 डालर है। दूसरा माडेल 6 इंच तक के गोलाकार हिस्से तैयार करता है। इसका मूल्य 28,290 डालर है।

तेल के पाइपों की जाँच करने के लिए नयी प्रणाली

ह्यूस्टन टैक्सास, की एक फर्म, प्लास्टिक एप्लिकेटर्स, इन्क०, एक ऐसा उपकरण तैयार कर रही है, जो तेल की खानों के पाइपों का परीक्षण और माप करने वाला अब तक का सर्वश्रेष्ठ उपकरण है। इसका नाम 'स्कैनलाग' है। यह खनिज तेल की खानों में लगे सभी पाइपों से दोषों का पता लगा सकता है।

स्कैनलाग पाइपों के भीतरी और बाहरी सभी दोषों का पता लगा लेता है। यह पाइपों में आड़े-

तिरछे सभी प्रकार के दोषों जैसे क्षरण, यान्त्रिक क्षति, दरार, आदि का पता लगाता है, निरीक्षित पाइप की दीवार की मोटाई का माप करता है और चुम्बकीय कणों की जाँच करता है।

सूर्य ताप से अनाज सुखाने का यंत्र

अनाज को सुखाने के लिये एक साधारण यंत्र निकाला गया है। इसे कलक्टर-कम-ड्रायर कहते हैं। यह यंत्र सूरज की गर्मी से चलता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान द्वारा बनाये गये कलक्टर-कम-ड्रायर में केवल सूर्यताप से चलने का ही गुण नहीं है। इसका मुख्य गुण यह भी है कि इस यंत्र से अनाज जल्दी और अच्छी तरह सूख जाता है जैसा कि किसान चाहते हैं। इसमें अनाज भी काफी समा जाता है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में धान की विभिन्न 45 सेन्टीमीटर गहरी तहें लगा कर ड्रायर का परीक्षण किया गया है। यंत्र से आठ घंटों से ही अनाज की नमी 35 प्रतिशत से घट कर 15 प्रतिशत रह गयी हालांकि धूप में घटाव-बढ़ाव था तथा मौसम में भी नमी थी। किन्तु यंत्र यथावत काम करता रहा। इसका मुख्य लाभ यह भी है कि इसके चलाने में ईंधन पर खर्च नहीं करना पड़ता। इसलिये अनाज सुखाने में थोड़ा खर्च करना पड़ता है।

मशीन से एक टन अनाज सुखाने से 20 रुपये खर्च बैठता है। इसमें से 12 रुपये सिर्फ ईंधन पर ही खर्च होते हैं।

इस ड्रायर को बनाना और चलाना दोनों आसान हैं। इस पर लगभग 1200 रुपये लागत बैठती है। इससे सर्दी में भी अनाज सुखाने में मदद मिलती है।

चने की फसल में फास्फेट उर्वरक कैसे डालें

चने की भारी पैदावार लेनेके लिए फास्फोरस वाले उर्वरक का इस्तेमाल करना चाहिए।

अखिल भारतीय समन्वित दाल प्रायोजना द्वारा किये गये परीक्षणों से मालूम हुआ है कि फी हैक्टर 40 से 60 किलोग्राम फास्फोरिक एसिड डालने से चने की भारी पैदावार मिलती है। अधिकांश क्षेत्रों के लिये फी हैक्टर 40 किलोग्राम की सिफारिश की गयी है।

फी हैक्टर एक क्विंटल डाइमोनियम फास्फेट एक क्विंटल बीज के साथ मिला कर केरा विधि बोआई के समय डालना सबसे आसान तरीका है।

इससे चने की फसल को आवश्यक पोषक तत्व ही नहीं मिलते बल्कि गाँठ बनने तक नाइट्रोजन की आवश्यकता भी पूरी होती है।

फिर भी जिस जमीन में काफी देर तक नमी बनी रहे वहाँ इसे बीज के साथ मिला कर डालना ठीक नहीं रहेगा। ऐसी हालत में अच्छा यही रहेगा कि इसे पोरे की मदद से बीज स्तर से कुछ नीचे डालें या फिर हाथ से बने हुये खूड़ों में डालें।

प्रायोजना के परीक्षणों से मालूम हुआ है कि फास्फोरस वाले उर्वरक को दो बार में डालना काफी फायदेमंद है। इसके अनुसार इसकी आधी मात्रा बोआई के समय डालें तथा शेष आधी मात्रा का फूल निकलने के समय पत्तियों पर छिड़काव करें। इसका यह फायदा होगा कि जरूरत पड़ने पर ही फसल में उर्वरक की दूसरी मात्रा डाली जा सकेगी।

पत्तियों पर छिड़काव करने के लिये एकगुणी सुपरफास्फेट के ससपेन्शन की सिफारिश की गयी है।

क्या आप जानते हैं ?

शुकदेव प्रसाद

● कर्टिस तथा क्लर्क (1950) के अनुसार प्रकाश-संश्लेषण वह क्रिया है जो हरे पौधों में, प्रकाश के प्रभाव से, कुछ कच्चे और सरल अकार्बनिक पदार्थों का उपयोग करके जटिल ऊर्जा युक्त कार्बनिक यौगिकों का निर्माण करती है। इस क्रिया में आक्सीजन उत्पन्न होती है।

● प्रीस्टले (1772) ने अपने प्रयोग के आधार पर बताया कि 'वनस्पति व्यर्थ नहीं है, वह हमारे वायुमंडल को स्वच्छ करती है।"

● इन्जेन-हाउस (1779) ने बताया कि हरे पौधे केवल सूर्य प्रकाश की उपस्थिति में Co_2 का उपयोग करते हैं।

● लेवोजियर (1783) ने प्रकाश-संश्लेषण में आक्सीजन का उपयोग होना गताया।

रुबेन तथा कामेन ने अपने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि प्रकाश-संश्लेषण में आक्सीजन जल के अणुओं के विघटन से निकलती है, न कि Co_2 में से।

● पेलेटियर तथा केवेन्टयू (1818) में हरे पौधों के हरे रंग को 'क्लोरोफिल' कहा।

क्लोरोफिल की संरचना जन्तुओं के लाल रक्त कणिकाओं में पाए जाने वाले लौह प्रोटीन हीमोग्लोबिन के समान होती है। अंतर केवल इतना है कि क्लोरोफिल में आयरन के स्थान पर मैग्नीशियम होता है।

● जब प्रकाश की किरणें पौधों की पत्तियों पर पड़ती हैं तो नीली तथा लाल किरणें क्लोरोफिल तथा केरोटिनायड वर्णको द्वारा अवशोषित हो जाती है, जिनका उपयोग प्रकाश-संश्लेषण में होता है।

● जूलियस सैक्स ने बताया कि प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में हरी पत्तियों के हरित लवक (क्लोरोप्लास्ट में मण्ड कणों का उत्पादन होता है।

● फेफर (1873) ने ज्ञात किया कि प्रकाश उपस्थित पत्तियों में मण्ड कणों का निर्माण Co_2 की उपस्थिति में होता है।

● ब्लैक मैन (1905) ने पता लगाया कि प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया में एक प्रकाश क्रिया और एक अंधकार क्रिया होती है।

● वारबर्ग तथा इमरसन आदि वैज्ञानिकों ने इसकी पुष्टि भी की। क्लोरोफिल वर्णक प्रकाश ऊर्जा को प्रोटीन के रूप में ग्रहण करते हैं और बाद में यह ऊर्जा उपयोगित होकर कार्बोहाइड्रेट तथा अन्य पदार्थों की संरचना में रासायनिक, ऊर्जा के रूप में संचित हो जाती है।

● प्रकृति में होने वाले समस्त प्रकाश-संश्लेषण का केवल 10% स्थलीय पौधों द्वारा होता है, शेष 90% समुद्र की सतह पर पाये जाने वाले शैवालों द्वारा सम्पादित होता है।

●●

आपका पत्र मिला

● प्रिय डा० शिव प्रकाश जी,

'विज्ञान' से तो मेरा बहुत पुराना सम्बन्ध है। मैं 'विज्ञान' को उसी चाव से पढ़ता हूँ जैसा कि पहले। बल्कि अब अधिक रुचि लेता हूँ। इधर 'विज्ञान' स्कूली बच्चों के लिए काफी उपयोगी हो गयी है। 'विज्ञान' के उन्नति हेतु मेरी शुभ कामनाएँ।

प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा
(रिटायर्ड प्रोफेसर, काशी हिंन्दू विश्वविद्यालय)
शक्ति निवास, बोरिंग कैनाल रोड, पटना

● आदरणीय वर्मा जी,

आप अपनी कृपा दृष्टि बनाए रखें और हमें आशिर्वाद दें कि हम उचित रूप में 'विज्ञान' की सेवा कर सकें। शुभ कामनाओं हेतु धन्यवाद।

—सम्पादक

● प्रिय डाक्टर साहब,

'विज्ञान' मेरे विद्यालय में नियमित रूप से आती है। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध कराने हेतु बधाई स्वीकार करें।

मैं पत्र के माध्यम से एक अनुरोध करना चाहता हूं और वह यह है कि नवीन पुस्तकों में परिभेद म० क० स० प्रणाली पर अधिक बल दिया जा रहा है। अतः 'विज्ञान' में प्रकाशित लेखों में म० क० स० प्रणाली का ही प्रयोग किया जाये।

भवदीय
शिव शंकर त्रिपाठी
एम० एस-सी०, एल० टी०
राजकीय दीक्षा विद्यालय, वस्ती

● प्रिय महोदय,

आपके सुझाव का हम स्वागत करते हैं। भविष्य में हम इसका पूरा ध्यान रखेंगे। साथ ही अपने लेखकों से हमारा अनुरोध है कि वे भी रचनायें भेजते समय इस बात का ध्यान रखें।

—सम्पादक

● प्रिय महोदय,

'विज्ञान' का पिछला अंक मिला। यह जान कर खुशी हुई कि आपने 'आपका पत्र मिला' स्तम्भ भी प्रारम्भ कर दिया है।

इस स्तम्भ द्वारा पाठक एक दूसरे के सामने आ जाते हैं। एक पाठक की शंका, समस्या आदि दूसरे पाठकों को जानने का मौका मिलता है।

● पृष्ठ संख्या भी आपने बढ़ाकर २८ से ३२ कर दिया है। इसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद सामग्री का चयन भी उत्तम है।

शुभ कामनाओं सहित
आपका
चन्द्रभान यादव
बेतिया हाता, गोरखपुर

महोदय,

● समय-समय पर 'विज्ञान' के बारे में अपनी प्रतिक्रिया एवं सुझाव आदि भेजा करें जिससे और उचित रूप में सामग्री 'विज्ञान' प्रस्तुत कर सके।

—सम्पादक

●●

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक—आत्म जीवन
लेखक—फूलदेव सहाय वर्मा
प्रकाशक—वही।
पृष्ठ संख्या 391
प्रथम बार 1975

"कोई व्यक्ति नहीं चाहता कि उसने जीवन में जो कुछ किया है वह बिल्कुल भुला दिया जाय इसलिये वह अपना आत्म जीवन लिखता है। आत्म जीवन अपनी तृप्ति के लिये अथवा समकालीन व्यक्तियों या भावी पीढ़ी की जानकारी के लिये लिखा जाता है। मेरा उद्देश्य आत्म तृप्ति है"—इन शब्दों से आत्मजीवन के लेखन का उद्देश्य स्पष्ट है। निस्सन्देह स्वान्त: सुखाय' ही यह जीवन-चरित लिखा गया है।

इस शती में हिन्दी के माध्यम से वैज्ञानिक साहित्य के सृजन एवं प्रसार में जो भी उतार-चढ़ाव आये हैं उनका सीधा सम्बन्ध प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा जी से रहा है। आज भी 87 वर्ष की आयु में वे हिन्दी के मूक साधक के रूप में नहीं, वरन् सक्रिय कार्यकर्ता हैं। उन्होंने 1920 से लेकर आज तक हिन्दी के माध्यम से विज्ञान की या यों कहें कि विज्ञान के क्षेत्र में हिन्दी के प्रवेश और उसके सुदृढ़ीकरण में मनोयोग से अथक कार्य किया है।

यह आत्मजीवन संभवत: किसी वैज्ञानिक द्वारा लिखित अपनी कोटि का एकमात्र खुला चिट्ठा है। लेखक ने बड़प्पन का मुखौटा लगाये बिना सहज भाव से अपनी उपलब्धियों का वर्णन किया है। इन उपलब्धियों में उनके परिवार की क्या भूमिका रही है और वे किस प्रकार एक सामाजिक प्राणी के रूप में जिये हैं इसका प्रतिबिम्ब मिलता है। वे इस शती की तड़क-भड़क से दूर रहकर किस प्रकार वैज्ञानिक कर्मी को पूरा करते रहे तथा अपने दायित्व को किस प्रकार निभाया इसका यथातथ्य विवरण प्रस्तुत किया गया है।

आत्मजीवन में 25 अध्याय हैं वे जीवन के क्रमानुसार व्यवस्थित हैं। प्रो० साहब को भारतीय होने का गर्व है। वे अपने को बिहारी, भोजपुरी भाषा भाषी कहने में गौरव का अनुभव करते हैं। वे अपने गाँव को नहीं भूले। उन्होंने अपने परिवार के विभिन्न व्यक्तियों का खुलकर वर्णन किया है। उन्होंने गाँव से लेकर गया, पटना, कलकत्ता, बंगलोर, वाराणसी आदि में किस प्रकार जीवन की विभिन्न अवस्थायें पार कीं, अपना पठन-पाठन पूरा किया, किस प्रकार अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया और अन्त में हिन्दी विश्वकोश का सम्पादन करके विश्रांत काल बिता रहे हैं इन सब का रोचक, तथ्यपरक शैली में वर्णन किया गया है।

विज्ञान के उन पाठकों को हिन्दी के माध्यम से अध्ययन-अध्यापन के प्रति तनिक भी रुचि रखते हैं इस आत्मजीवन के अन्तिम 7-8 अध्याय अत्यन्त प्रेरणादायक लगेंगे। "हिन्दी के साथ मेरा सम्बन्ध", "हिन्दी विश्वकोश के निर्माण में मेरा योग," "मेरे भाषण, तथा, 'मेरे निबन्ध' अध्यायों की सामग्री सर्वथा पठनीय एवं मननीय है।

इस पुस्तक में अनेक दुर्लभ चित्र भी दिये गये हैं जिससे किसी भी पाठक को प्रोफेसर साहब के व्यक्तित्व की साकार प्रतिमूर्ति स्थापित करने में सहायता मिलेगी।

यदि प्रो० साहब के जीवन की कोई सबसे बड़ी उपलब्धि है तो वह यह कि उन्होंने हिन्दी की समृद्धि के लिये निरन्तर लेखन कार्य किया। वृद्धावस्था में भी हिन्दी विश्वकोश का सम्पादन एवं समापन जिस कुशलता एवं त्वरा से किया है वह हिन्दी के इतिहास में अनूठा उदाहरण है।

●●

[पृष्ठ 4 का शेषांश]

तथा चैम्बर के द्वारा बना दहन चैम्बर लम्बा तथा पतला होता है। यह चित्र से स्पष्ट मालूम पड़ जाता है तथा स्फुलिंग प्लग से दो स्थानों से प्रारम्भ होने के कारण दहन अधिक पूर्ण तथा जल्दी और निश्चित होता है। चित्र 'अ' के '13' में से रोटर का शीर्ष चैम्बर के निष्कास कपाट को खोल देता है। अब जली हुई गैस चैम्बर और रोटर के बीच के बने स्थान से बाहर जाने लगती है तथा यह जली हुई गैसों का बाहर जाना 'ब' के '14' 'स' के '15' '16', 17 और 18 तक जारी रहता है। इसके बाद शीर्ष पुनः अन्तर्गहन कपाट को खोल देता है तथा पुनः सारा क्रम चालू हो जाता है।

हमने अभी केवल रोटर के शीर्षों के द्वारा बने एक चैम्बर का अध्ययन किया है परन्तु वास्तव में इसमें एक साथ तीन शीर्ष और एपिट्राकाइड वक्र के चैम्बर के साथ मिलकर तीन अलग-अलग चैम्बर बनाते हैं और ये तीन साथ-साथ अलग-अलग कार्य करते हैं। जिससे हम हर चक्कर में तीन शक्ति दाब (Power thurst) मिलते हैं।

इस प्रकार एक साथ तीन-तीन प्रक्रियाओं से उत्पन्न ऊष्मा को कम करने के लिये इसमें शीतलन पोर्ट होते हैं जिसमें पानी या तेल भरा होता है। इसके रोटर और एपिट्राकाइड वक्र के बीच में बहुत अधिक परिशुद्धता की आवश्यकता पड़ती है। इसीलिये इसके निर्माण में कुछ कठिनाई होती है। परन्तु आजकल के तकनीकी विकास को देखते हुए वह दिन दूर नहीं लगता है जब भारतवर्ष अपनी कारों के लिये वेंकेल इंजन का निर्माण करने लगेगा।

गोपाल सरन श्रीवास्तव
(यांत्रिक अभियन्ता)
भारत पम्प एण्ड कम्प्रसर
इलाहाबाद

62वाँ वार्षिक अधिवेशन

विज्ञान परिषद का 62वाँ वार्षिक अधिवेशन 28 अगस्त को परिषद के प्रांगण में सम्पन्न हुआ जिसके मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश के माननीय मुख्यमंत्री श्री हेमवती नंदन बहुगुणा थे। अधिवेशन परिषद के नये अध्यक्ष श्री रामसहाय, कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय की अध्यक्षता में हुआ। प्रधान मन्त्री प्रो० कृष्ण जी ने वार्षिक रिपोर्ट दी तथा पदेन उपसभापति डा० बाबूराम सक्सेना ने सबको धन्यवाद दिया। इस अवसर पर श्री हरिशरणानन्द तथा डा० रत्नकुमारी स्वर्ण पदक भी वितरित किये गये। मुख्यमंत्री परिषद के कार्य से काफी प्रसन्न हुये और उन्होंने यथासम्भव सहायता देने को भी कहा।

भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०/3/5/

भाग 112 संख्या 9
आश्विन-कार्तिक 2022 विक्र०
अक्तूबर-नवम्बर 1975

कार्यालय
विज्ञान परिषद
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद

प्रति अंक 50 पैसा
वार्षिक शुल्क 6 रुपया

विषय सूची

पादप हार्मोन्स—3

आक्सिन

कन्हैया लाल

हारमोन जैविक जीव उत्प्रेरक हैं जिनका प्रभाव विटामिन की भाँति होता है। इनका वृद्धि वर्धक प्रभाव तो हम देख सकते हैं परन्तु इनके द्वारा अन्य कार्यिकी प्रक्रमों का भी नियन्त्रण होता है। हारमोन के उत्पन्न होने का कोई निर्धारित स्थान नहीं होता है और यह अपनी क्रिया में स्वतन्त्र माना जाता है। आक्सिन तनु अम्ल होते हैं, शायद इसी से पौधों की जड़ों में विद्युत विभव पाया जाता है। ये जल तथा कार्बनिक घोलों में घुलनशील हैं। केरोटिनायड जो कि एक पीले रंग का द्रव्य होता है, की उपस्थिति में प्रकाश पाकर आक्सिन धीरे-धीरे अक्रियाशील हो जाता है। आक्सिन में बहुत से प्रकार के हारमोन्स आते हैं जिनमें मुख्य I A A (इन्डोल एसिटिक एसिड), अल्फा आक्सिन, बीटा आक्सिन, इन्डोल ब्यूटरिक एसिड आदि हैं। ये पौधों के शिखाग्र में उत्पन्न होते हैं। यह कोशिका का दीर्घीकरण करने में मुख्य कार्य करता है। यह संश्लेषित तथा प्राकृतिक दोनों होता है। जिबरेलीन भी आक्सिन की उपस्थिति में ही कोशिका का दीर्घीकरण करने में सक्षम होता है जिससे पौधों की वामनंता (छोटापन) का नाश होता है। और कृषि में पौधों की पैदावार बढ़ाता है।

आक्सिन का प्रभाव इसके अनुकूलतम सान्द्रता पर निर्भर करती है। किसी पौधे के वर्धनशील भागों को काटकर शर्करा और खनिज लवण के विलयन में रख दें तो वृद्धि मंद हो जाती है। परन्तु इसके साथ इन्डोल एसिटिक एसिड की बहुत थोड़ी-सी मात्रा डाल देने से वृद्धि की दर में काफी बाढ़ आ जाती है। यह बाढ़ आक्सिन की मात्रा के अनुलोमानुपाती होती है। आक्सिन की सान्द्रता अनुकूलतम से ज्यादा होने पर वृद्धि मंद पड़ जाती है और अन्त में पूर्णतः समाप्त हो जाती है। मूल की वृद्धि के लिए कम सान्द्रता के आक्सिन की आवश्यकता पड़ती है।

पौधों में आक्सिन का संश्लेषण—पादप कार्यिकी के वैज्ञानिकों के कथनानुसार इन्डोल एसिटिक एसिड का पूर्वगामी (प्रिकर्सर) ट्रिप्टोफेन नामक अमीनो एसिड है। यह पौधों में पत्ती तथा बीज में संचयन वाले अंगों से मिलता है। इन्डोल एसिटिक एसिड के बनने की प्रक्रिया की संकेतिक झलक नीचे दर्शायी जा रही है।
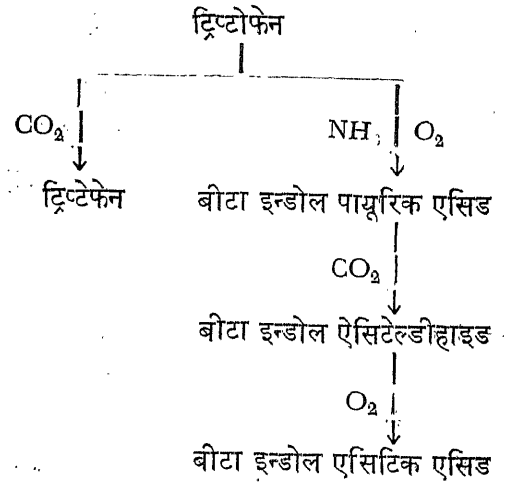
आक्सिन की रासायनिक प्रकृति—सर्वप्रथम आक्सिन की रासायनिक प्रकृति उन पदार्थों

में देखी गई जिनमें कि आक्सिन प्रतिक्रिया प्रचुर मात्रा में थी; जैसे मानव के पेशाब में और विभिन्न प्रकार के कवकों की कल्चर माध्यम में। मानव के पेशाब से दो एक दूसरे से सम्बन्धित अम्लीय पदार्थ जो कि साइक्लो पेन्टीन के यौगिक हैं, का निष्कर्षण किया गया जिसे बाद में आक्सिन-ए और आक्सिन-बी के नाम से पुकारा गया। कुछ वैज्ञानिकों को आपत्ति से ये यौगिक लम्वे समय तक विश्वसनीय नहीं रहे। 1934 में कोगल इत्यादि ने पेशाब का पुन: परीक्षण किया, साथ ही साथ थीमेन (1935) ने राइजोयस स्युनस के कल्चर का परीक्षण और कोगल तथा कार्स्टेमैंस (1934) ने यीस्ट प्लास्मोलिसेट के परीक्षणों से यह सिद्ध कर दिया कि यह बिल्कुल ही भिन्न पदार्थ है जिसे इन्डोल—3—ऐसिटिक एसिड के नाम से सम्बोधित किया गया। बाद में हागेन स्मिट वगैरह ने मक्के के बीज से भी आक्सिन निकाला।

निम्न प्रमाणों के नाते ज्यादा से ज्यादा पाये जाने वाले इन्डोल—3—एसिटिक एसिड को संक्षिप्त रूप से I A A सम्बोधित किया जाता है इसके निम्नलिखित अंगीभूति यौगिक हैं।

(अ) इन्डोल—3—एसिटलडिहाइड, II—यह इटियोलेटेड बीजों में पहचाना गया जो कि निष्क्रिय होता है और या तो मृदा या एल्डिहाइड डीहाइड्रोजीनेज नामक इन्जाइम से सक्रिय हो जाता है। सम्भवत: तने में वृद्धि और जड़ों में मंद वृद्धि इसी के अम्लीय अवस्था में होने से होता है।

(ब) इन्डोल-3-पायूरिक एसिड III. इसकी उपस्थिति मक्के के बीज में तथा पत्तियों और मूलों में भी पाई गयी है। यह इन्जाइमेटिक प्रक्रिया द्वारा तथा अपने आप भी इन्डोल एसिटिक एसिड में रूपान्तरित होता है।

(स) इन्डोल-3-ऐसिटो नाइट्राइल IV इसका निष्कर्षण पातगोभी से 1952 में किया गया। यह स्वतंत्र रूप में नहीं बल्कि ग्लूकोब्रेसिन के रूप में होता है।

(द) इन्डोल-3-इथेनाल VI. यह कद्दू के नवोद्भिद पौधे से निकाला गया। यह कद्दू के बीजोधर के खण्डों तथा गेहूँ के प्रांकुरों को बढ़ाता है।

(य) बाउन्ड आक्सिन तथा आक्सिन प्रिकर्सर—यह ईथर के साथ हरे ऊतकों से नहीं निकाला जा सकता है बल्कि पानी की उपस्थिति में धीरे-धीरे निकल सकता है।

आमापन—आक्सिन की मात्रा ज्ञात करने के लिए किसी विलायक द्वारा उसका अर्क निकाला जाता है। इसके बाद इस अर्क को किसी ऐसे ऊतक पर उपयोग किया जाता है जो अर्क में उपस्थित आक्सिन को ग्रहण करके संख्यात्मक प्रभाव प्रदर्शन करे। अर्क में उपस्थित किसी रसायन की मात्रा की जीव की अनुक्रिया द्वारा मापने को जैव-आमापन कहते हैं।

कार्य विधि—पौधों पर जिस तरफ से प्रकाश पड़ता है वे उधर ही झुक जाते हैं। प्रकाश द्वारा आक्सिन का वितरण प्रभावित होता है और उससे पौधे की एक तरफा वृद्धि का नियन्त्रण होता है। इस प्रकार नीला प्रकाश और पराबैगनी का कुछ अंश वक्रता पैदा करने में सक्षम होता है प्रकाश ग्राही के रूप में कैरोटीन या रिबोफ्लेविन से सम्बन्धित कुछ पीले वर्णक भी इसमें भाग लेते हैं। आक्सिन न केवल कोशिका का दीर्घीकरण करता है अपितु किसी तने के शीर्षस्थ कलिका के परिवर्तित होने का नियन्त्रण भी करता है। पौधे की अविकल शीखाग्र कलिका हटा देने से पार्श्विक कलिका बढ़ने लगती है परन्तु यदि कटने के साथ हो कटे स्थान पर आक्सिन पेस्ट लगा दें तो ऐसा नहीं होता। शीर्षस्थ कलिका में आक्सिन रहता है और उसके हट जाने से पार्श्व कलिका बढ़ती है आक्सिन का तनु घोल छिड़क कर आलू के आँखों को बहुत समय तक प्रस्तुत अवस्था में रखा जा सकता है। आक्सिन की ही कमी से नियोजन परत (ऐबसिसन लेयर) बन कर पर्ण फलक पौधे से

अलग हो जाता है। 2, 4-डाई क्लोरो फिनाक्सी एसिटिक अम्ल फलों आदि के गिरने को रोकता है। टमाटर के अण्डाशय पर इसका प्रयोग करने पर विशिष्ट फल पैदा किया जा सकता है। फल बड़ा, उत्तम और सुन्दर होता है पर इस फल से प्राप्त बीजों में अंकुरण की क्षमता नहीं होती। यह खरपतवार को नष्ट करने में भी साधक सिद्ध हुआ है। केवल बीटा इन्डोल एसिटिक अम्ल ही निश्चित रूप से प्राकृतिक आक्सिन माना जाता है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि कोशिका में आक्सिन और जिबरेलीन के बीच पारस्परिक क्रिया होती है जिससे कोशिकाभित्ति पर सुघट्यता (प्लास्टोसीटी) का प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप कोशिका परिवर्तनशील होने की स्थिति में आ जाती है। इसी स्थिति में स्फीत के दबाव से नये पदार्थ के एकत्रित होने के साथ कोशिका का दीर्घीकरण हो जाता है।

आक्सिन का प्रभाव—अन्तर्जात तथा बहिर्जात आक्सिन द्वारा परिवर्तित वृद्धि तथा उसमें विभेदन क्रिया के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं। कोशिका में शिखाग्र-प्रमुखता तथा नियोजन प्रक्रमों के अतिरिक्त इनकी क्रिया पुष्पण के आरम्भ और परिवर्धन, परागनली की वृद्धि, फल का लगना और इसकी बाढ़, आकन्द और शलकन्द का बनना और बीज का अंकुरण आक्सिन के अन्य प्रमुख प्रभाव हैं। आक्सिन कोशिका भित्ति की प्रत्यावस्था सुघट्यता, कोशिका द्रव्यी श्यानता, जीव द्रव्य की प्रवाही जाति, श्वसन दर, उपापचयी प्रक्रियायें, न्यूक्लिक एसिड के अन्तर्वस्तु और इन्जाइमी क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है।

आक्सिन की उपयोगिता—आक्सिन के बाह्य अनुप्रयोग द्वारा कई प्रकार के शरीर क्रियात्मक तथा शारीरिक प्रभाव पड़ते हैं। इसमें से कुछ का उपयोग सफलतापूर्वक किया जाता है। जैसे जड़ का प्रादुर्भाव, और प्रोत्साहन, पुष्पण, फलन, अनिषेक फलन, पुष्प एवं फल का विरलन, फलों का लवन-पूर्वपात अनुर्वरता पर विजय, प्रसादी एवं फलों के पकने और उनकी मिठास का नियन्त्रण, तुषाराघात से बचाव, अपतृणनाशी, स्वअसंगत प्रतिकूलता निवारण, कल्ला निकलने पर प्रतिबन्ध, पौधों का प्रजनन और सुधार आदि। आक्सिन का प्रभाव हरिमाहीनता की अवस्था में अधिक व पर्णहरित की उपस्थिति में कम पड़ता है। इण्डोल एसिटिक एसिड की यात्रा के कम या अधिक होने का तने, कलिकायें व जड़ पर प्रभाव पड़ता है।

प्रति आक्सिन—ये आक्सिन के प्रभाव को नष्ट कर देती हैं, प्रति आक्सिन के उदाहरण गामा फिनायल ब्यूटरिक अम्ल, 2, 4 डाई क्लोरो फिनाक्सी ऐसिटिक अम्ल, 2, 4 डाई क्लोरो एनिसोल, 2, 5 डाई क्लोरो फिनाक्सी आइसो ब्यूटरिक अम्ल, ट्राई आइडोबेन्जोइक एसिड हैं। बहुकोशीय जीव में एक इकाई की भाँति कार्य होना आक्सिन के नियन्त्रण से सम्भव होता है। यह भी रासायनिक क्रिया का उदाहरण है। इस प्रकार आक्सिन का उपयोग करके कृषि में बढ़ोत्तरी की जा रही है।

कन्हैया लाल
शोध छात्र
वनस्पति विज्ञान विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय
प्रयाग

लेड पेन्ट

डा० रामचन्द्र कपूर

पेन्ट वे पदार्थ हैं जिन्हें किसी वस्तु की सतह पर उसकी आयु बढ़ाने व सुन्दरता के लिये लगाया जाता है। उदाहरणतः लोहे के पुल को इसलिये रंगा जाता है जिससे कि उस पर जंग न लगे। इसी प्रकार घरों के दरवाजों तथा लकड़ी के फरनीचरों आदि को भो इसीलिये रंग दिया जाता है जिससे उनकी सुन्दरता बढ़ जाय तथा दीमक आदि भी उनको खराब न कर पायें। पेंट घरों की दीवारों आदि को भी रंगने के काम आते हैं।

एक अच्छे पेंट के लिये आवश्यक है कि वह सूखने पर पेंट की हुयी सतह से टूट कर गिरे नहीं, अथवा इसका रंग हल्का न पड़े। इसमें सतह पर पहले से लगे हुए गाढ़े रंगों को अच्छी तरह से ढकने की क्षमता भी होनी चाहिये। इसको शीघ्रता से सूखना चाहिये, तथा पानी के प्रभाव से पेंट की हुयी वस्तु को बचाना भी चाहिये।

पेंट मुख्यतः निम्नलिखित घटकों का मिश्रण होता है :

(i) **रंग अथवा रंजक**—यह सफेद अथवा रंगीन हो सकता है।

(ii) **बंधकी**—हह एक गाढ़ा द्रव होता है और किसी भी सतह पर फैलाने तथा हवा में रखने पर एक ठोस लेप का रूप धारण कर लेता है।

(iii) **द्रावक**—यह एक द्रव पदार्थ होता है तथा पेंट को ब्रश से लगाने अथवा छिड़काव के उपयुक्त बनाता है।

(vi) **शोषक**—जो कि पेंट के सूखने की क्रिया की गति को तीव्र कर देता है।

रंग अथवा रंजक—बचाव-पेंटो के लिये साधारणतः प्रयोग में लाये जाने वाले रंजक हैं—**रक्त सिंदूर** तथा **सफेदा**।

सफेदा, लेड का एक क्षारीय कार्बोनेट है। इसका रसायनिक सूत्र है $Pb(OH)_2\ 2PbCO_3$ तथा यह काफी समय से पेंट रंजक के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। इसको व्यापारिक पैमाने पर बनाने के सभी तरीकों में लेड पर एसिटिक अम्ल को उपस्थिति में कार्बनडाइ-आक्साइड, जल व वायु से क्रिया करायी जाती है। इसको बनाने की दो विधियाँ हैं : (i) **डच अथवा चट्टा विधि**, जिसमें कि लेड की चादरों को तनु एसिटिक अम्ल से भरे हुये बर्तनों के ऊपर छोड़ दिया जाता है तथा टैन बार्क से घेर दिया जाता है। बर्तनों को इसी प्रकार कई तहें लगाकर चट्टा लगा दिया जाता है, और इसीलिये इस विधि को चट्टा विधि भी कहते हैं। तीन महीनों के अंदर लेड, क्षारीय कार्बोनेट में परिवर्तित हो जाता है। (ii) **कक्ष विधि** में क्रिया तीव्रता से होती है तथा इसमें लेड की चादरों को एक कक्ष में लटका दिया जाता है, और इसमें एसिटिक अम्ल, वाष्प, वायु तथा कार्बन डाइआक्साइड को प्रवाहित किया जाता है। आजकल सफेदा अधिकतर एक अन्य विधि—**अवक्षेपण विधि**—से भी तैयार किया जाता है। इस विधि में लेड, एसिटिक अम्ल तथा कार्बन

डाइआक्साइड से, जो कि घोल में प्रवाहित की जाती है, क्रिया करता है और इस प्रकार क्षारीय लेड कार्बोनेट एक जलीय लेप के रूप में अवक्षेपित हो जाता है।

पेंट बनाने वालों को सफेदा एक श्वेत चूर्ण के रूप में अथवा अलसी के तेल में एक लेप के रूप में बेचा जाता है। रक्त सिंदूर, लेड का एक ऑक्साइड है और इसका रसायनिक सूत्र है Pb_3O_4 यह लिथार्ज (लेड मोनोऑक्साइड, PbO) को वायु में 475° सें० पर गर्म करने पर प्राप्त होता है। बाजार में बिकने वाले रक्त सिंदूर में बिना क्रिया किये हुये लिथार्ज की थोड़ी मात्रा विद्यमान रहती है।

कैल्सियम प्लम्बेट, एक नया लेड रंजक है और चूने (कैल्सियम ऑक्साइड) तथा लिथार्ज को वायु में 700° सें० पर गर्म करने पर प्राप्त होता है। इसके बहुत से गुण रक्त सिंदूर के ही समान हैं तथा इसका रसायनिक सूत्र है 2 CaO. PbO_2. इसका रंग पीला होता है।

इन पदार्थों के अलावा कुछ अन्य पदार्थ जैसे एसबेस्टीन तथा बेरियम सल्फेट भी लेड-आधारित पेंटों में इस्तेमाल किये जाते हैं। इन पदार्थों को विस्तारक कहते हैं।

बंधकी—नये कृत्रिम पेंटों के अविष्कार के पहले अलसी का तैल ही मुख्यतः बंधकी के रूप में प्रयुक्त किया जाता रहा है। यह फ्लैक्स के बीजों को पेरने पर प्राप्त होता है, तथा इस प्रकार प्राप्त किये हुये तैल को इस्तेमाल करने से पहले अम्ल या क्षार से शुद्ध कर लिया जाता है। टंग तैल (चाइना वुड ऑयल) भी अक्सर पेंटों में इस्तेमाल किया जाता है।

द्रावक—प्रारंभ में तारपीन का तैल ही द्रावक के रूप में इस्तेमाल किया जाता था परंतु आजकल पेट्रोलियम के उत्पाद ही ज्यादतर इस्तेमाल किये जा रहे हैं, सबसे अधिक इस्तेमाल होने वाले पदार्थ को 'श्वेत स्पिरिट' के नाम से जाना जाता है। पेंट सूखने की क्रिया में द्रावक सतह से वाष्पीकृत हो जाता है।

शोषक—जिन पेंटों में अलसी का तैल अथवा रेज़िन बंधकी के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं उनके सूखने में काफी समय लगता है अतः कुछ ऐसे पदार्थों की आवश्यकता होती है जो कि पेंटों की सूखने की क्रिया को तीव्र कर दें। इन पदार्थों को शोषक कहते हैं। ये मुख्यतः 'श्वेत स्पिरिट' में लेड, कोबाल्ट अथवा मैंगनीज युक्त पदार्थों (कार्बनिक) के घोल के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं।

लेड पेंटों का प्रयोग—रक्त सिंदूर पेंट तथा कैल्सियम प्लम्बेट पेंट लोहा व इस्पात के लिये प्राइमर के रूप में प्रयुक्त किये जाते हैं। इसके अलावा कैल्सियम प्लम्बेट पेंट जिंक गैलवेनाइज्ड सतहों के लिये भी इस्तेमाल किये जाते हैं। वे पेंट जिनमें सफेदा अथवा रक्त सिंदूर का मिश्रण प्रयुक्त होता है लकड़ी की सतहों को रंगने में इस्तेमाल किये जाते हैं। इसके अलावा सफेदा एक प्रमुख रंजक के रूप में भी इस्तेमाल किया जाता है।

डा० रामचन्द्र कपूर,
रसायन विभाग,
क्राइस्ट चर्च कालेज,
कानपुर

विपत्रक पदार्थों का अत्यधिक उपयोग हानिकारक है क्या ?

डा० अरुण कुमार सक्सेना

1970 में सिनेटर गोलार्ड नेल्सन ने अमरीकी रक्षा विभाग से निवेदन किया था कि वह 2, 4, 5-टी नामक विपत्रक पदार्थ का प्रयोग वियतनाम में बन्द कर दे क्योंकि यह गर्भस्थ शिशुओं को काफी हानि पहुँचाता है किन्तु इसके कुछ ही दिनों पश्चात् अमरीका में 2, 4, 5-ट्राईक्लोरो फीनाक्सी ऐसीटिक अम्ल का छिड़काव 1000 एकड़ भूमि पर किया गया। वियतनाम में इस पदार्थ के छिड़काव पर रोक लग जाने के पश्चात् भी इसका व्यापक उपयोग अमरीका में ही मिसौरी, कैनसाज आदि अनेक प्रान्तों में जहाँ पर झाड़ियों की भरमार थी किया गया।

2, 4, 5-टी अधिक हानिकारक है इसका प्रमाण चूहों पर प्रयोग करके प्राप्त किया गया। इन शोध कार्यों के फलस्वरूप यह तथ्य सामने आया कि 2, 4, 5-टी शुद्ध अवस्था में हानिकारक नहीं है किन्तु जब इसमें डाई आक्सिन नामक पदार्थ विद्यमान रहता है तो यह अधिक हानिकारक बन जाता है अर्थात् डाईआक्सिन ही वास्तव में हानिकारक है। प्रदूषण के जाँच विभाग ने परीक्षण कर यह बताया है कि जो अमरीका में प्रयुक्त 2, 4, 5-टी में वियतनाम में प्रयुक्त होने वाले इसी पदार्थ की अपेक्षा कम मात्रा में डाईआक्सिन था। इस विभाग ने यह भी ज्ञात किया है कि इसकी न्यूनतम मात्रा भी अत्यन्त हानिकारक सिद्ध हो सकती हैं।

इस पदार्थ का उपयोग अधिक मात्रा में चारागाहों पर हो रहा है यह चिन्ता का विषय है क्योंकि डाई आक्सिन जानवरों की वसा में एकत्रित हो जाता है और इस प्रकार यह खाद्य पदार्थों के द्वारा मानव शरीर में पहुँच रहा है।

डी डी टी के समान 2, 4, 5-टी का उपयोग भी भारी मात्रा में किया जा रहा है क्योंकि झाड़ियों को नष्ट करने में इसकी समानता कोई अन्य पदार्थ नहीं कर सकता। यह पदार्थ झाड़ियों को नष्ट बहुत ही शीघ्रता से करता है। खाद्य देने वाली फसलें, जनता के जल देने जल स्रोतों तथा निवास स्थानों के समीप इसका छिड़काव नहीं किया जाता है।

इस समाचार के दो मास पूर्व नौ किसानों ने रोला की 'नार्थ एयर हेलीकाप्टर कम्पनी' की अपने लकड़ी प्राप्त करने वाले जंगलों पर 2,4,5-टी का छिड़काव करने का ठेका दिया था। ये स्थान 'ग्रांट कन्टरी' में थे जो कि विस्काउंसिन के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में स्थित हैं। उन किसानों का कथन था कि यह छिड़काव अमरीकी एग्रीकल्चर विभाग के द्वारा मान्यता प्राप्त विधि द्वारा किया गया था।

वियतनाम युद्ध में इस पदार्थ का उपयोग एक अस्त्र की तरह किया गया था। इसका कार्य यह था कि घने जंगलों को बिलकुल साफ कर दे जिससे वियतकांगों के आवागमन का भली-भाँति निरीक्षण किया जा सके। 1961 ई०में इनका व्यापक उपयोग किया गया था। इनके नाम भी इन पदार्थों से भरे रंगीन डिब्बों पर रक्खा गया था। 1970 ई० में एजेन्ट आरेन्ज, ब्लू तथा ह्वाईट आदि का प्रयोग 'रैन्च हैन्ड' नामक गुप्त आपरेशन के आधीन किया गया था। समस्त दक्षिणी वियतनाक के $\frac{1}{10}$ खेती

योग्य भूमि पर तथा $\frac{1}{3}$ जंगलों पर इनका छिड़काव किया गया था।

हारवर्ड के प्रो० मैथ्यू एस० मीसेल्सन तथा उनके अनेक सहयोगियों ने, जो कि 'अमेरिकन एसोसियेशन फार द एडवान्समेन्ट आफ साइंस' नामक संस्था के आधीन शोध-कार्य कर रहे थे, देखा कि दक्षिणी वियतनाम के 540 वर्ग मील के जंगल बिलकुल तहस-नहस हो चुके थे और वहाँ वृक्षों की पुन: उगने की कोई भी आशा नहीं है।

युद्ध भूमि में हेलीकाप्टर को उतारने के लिये अमरीकी रक्षा विभाग ने दो प्रकार के बमों का भी उपयोग किया था और इनके गुप्त नाम क्रमश: 'डेजीकटर' तथा 'चीज वर्गर' थे। ये बम जमीन से कुछ ही फीट ऊपर फट जाते थे और फुटबाल खेलने के मैदान के बराबर स्थान बिलकुल साफ कर देते थे। इनके फटने से गड्ढे नहीं बनते थे किन्तु पेड़-पौधों का तो काम तमाम हो ही जाता था।

इन जंगलों को साफ करने के लिये एक और विधि अमरीकी रक्षा विभाग ने निकाली थी। इसमें वे 32-टन का एक विशालकाय बुलडोजर का इस्तेमाल करते थे। इस प्रकार अनेक विधियों से 80,0000 एकड़ भूमि को बिलकुल नष्ट कर दिया गया था। वहाँ आज कल एक तिनका भी नहीं उग सकता है।

इस प्रकार भूमि को ऊसर बनाने का एक और उदाहरण है। फ्रान्स के 39,000 एकड़ भूमि को प्रथम विश्व युद्ध ने ऊसर बना दिया है जिसका नाम वर्दून है। इस स्थान पर आज भी वृक्ष ठीक से नहीं उग पा रहे हैं और जो थोड़े बहुत उगे भी हैं वे नाना प्रकार के रोगों से मुक्त नहीं हैं। वैज्ञानिकों का मत है कि स्वस्थ वृक्षों को इस स्थान पर पुन: उगने में लगभग 100 वर्ष लगेंगे।

भारतीय किसानों से अनुरोध है कि वे अधिक धन के लालच में पड़ कर कहीं अपनी भूमि को बंजर तो नहीं बना रहे हैं। यदि ऐसा है तो वे इस ओर ध्यान दे नहीं तो उनकी आगे आने वाली पीढ़ियों को बहुत ही कष्ट झेलना पड़ेगा और इन पीढ़ी के लोग अपने वंशजों को कभी भी क्षमा न कर सकेंगे।

●●

ग्राहकों से निवेदन है कि वह अपना वार्षिक शुल्क कार्यालय के पते पर शीघ्र भेजकर अपनी सदस्यता का नवीकरण करालें !

बेतार का तार

डा० शरद चन्द्र चतुर्वेदी

तार (टेलीग्राफ), समुद्री तार और टेलीफोन के आविष्कार के बाद भी मानव सन्तुष्ट नहीं हुआ, कारण यह था कि इन सब में एक स्थान से दूसरे स्थान तक, जहाँ से जहाँ तक समाचार भेजना रहता था, तार लगाना पड़ता था। अब वह एक ऐसा यन्त्र बनाना चाहता था जिसके द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना तार लगाये संवाद भेजा तथा ग्रहण किया जा सके। मारकोनी ने मानव के मनोवांछित यन्त्र का आविष्कार किया जिसके द्वारा बिना तार लगाये ही दूर-दूर तक समाचार भेजा जा सकता था। चूँकि यह तार रहित था अतः इसका नाम वायरलेस अथवा बेतार का तार रखा गया।

जिस प्रकार से किसी तालाब में पत्थर फेंकने से उस पत्थर के गिरने के स्थान से गोल-गोल लहरें किनारे तक आती हैं ठीक उसी प्रकार किसी विद्युन्मय वस्तु के कम्पन करने से आकाश के ईथर में विद्युत चुम्बकीय तरंगें पैदा होती हैं जिसे उपपादन कहते हैं। एक मोटे तार अथवा कुण्डली तार में काफी उपपादन होता है। अगर दृहंक की विद्युत एक मोटे तार में से विसर्जित की जाय तो वह एक ओर क से दूसरी ओर ख के बीच कम्पन करती है। अगर क में धन विद्युत् है तो वह ख में, जिसमें ऋण विद्युत् है, जाकर उदासीन नहीं होती बल्कि जड़त्व के कारण ख में धन विद्युत् अधिक हो जाती है और क में ऋणात्मक हो जाती है। इसी कारण से फिर ख से क की ओर विद्युत् विसर्जित होती है। इससे विद्युत् स्फुलिंग क से ख तक कम्पन करती रहती है।

दृहंक में दो पट्टियाँ होती हैं एक तार द्वारा पृथ्वी से सम्बन्धित रहती है और दूसरी पृथग्न्यस्त रहती है। यदि एक तार की कुण्डली में एक दृहंक और एक मोटा तार हो तो उसे दोलन कुण्डली कहते हैं। दृहंक में जितना ही पतला तार लगा रहेगा उतना ही दोलन कम होगा। एक सेकेंड में जितनी बार विद्युत् दोलन करती है उसे आवृत्ति कहते हैं। यह कुण्डली के उपपादन और समावेशन पर निर्भर होता है। समावेशन दृहंक का गुण है, इसमें से किसी एक के बदल देने से आवृत्ति भी बदली जा सकती है। बेतार के तार में ऐसे दृहंक प्रयोग में लाये जाते हैं जिनकी समावेशन आवश्यकतानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है। ऐसा करने के लिये ऐसा प्रबन्ध रहता है जिससे पट्टियों की दूरी अथवा क्षेत्रफल घटाया बढ़ाया जा सके।

विद्युत्-शक्ति आकाश या ईथर में रहती है। यदि किसी वस्तु में विद्युत् होती है तो उसके आस-पास के आकाश में कुछ परिवर्तन होता है फैराडे के कथनानुसार यदि एक तार में विद्युत् प्रवाहित की जाय और उसके पास एक कुण्डलीदार तार रखा जाय तो उसमें भी विद्युत् प्रवाहित होने लगेगी, इससे यह सिद्ध होता है कि विद्युत् आकाश से होकर उसमें पहुँच जाती है। दृहंक में विद्युत् के विसर्जन के समय दो विन्दुओं अ और ब के मध्य में विद्युत् जल्दी-जल्दी दोलन करती है इसलिए उस समय ईथर में भी वैसी ही विद्युत् चुम्बकीय तरंग पैदा होंगी। इसके लिए आवश्यक है कि पहले दृहंक को आविष्ट करके फिर विसर्जित
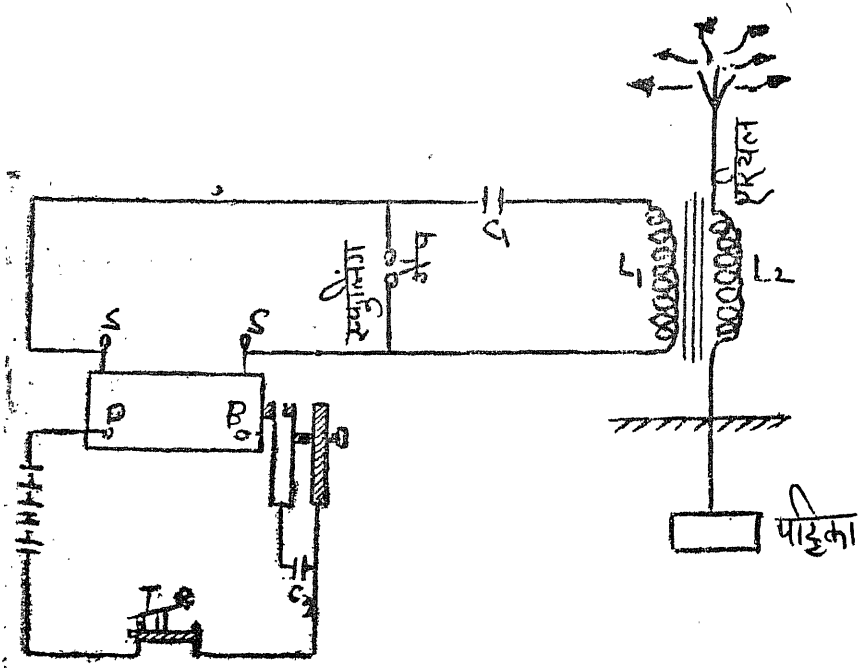
चित्र 1
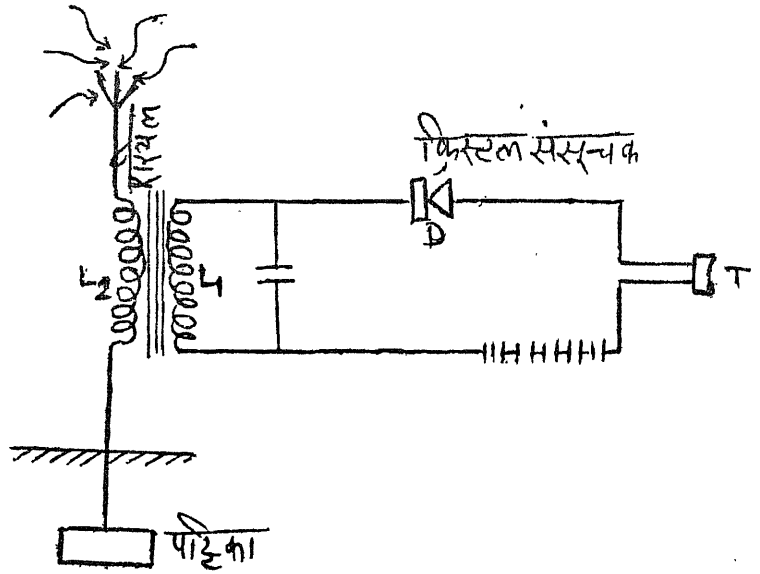
चित्र 2

किया जाय, इसके लिए प्रेरण कुण्डली प्रयोग करते हैं। प्रेरण कुण्डली द्वारा दूहंक पहले आविष्ट होता है और फिर विसर्जित होता है। इस क्रिया से अ और ब से तरंग उत्पन्न होती रहेंगी। इसी प्रकार अ में ऋणीय विद्युत् हो जाने पर विसर्जन होकर घेरे में आगे बढ़ेगी। उनकी दिशा और

गति एक दूसरे के विपरीत होंगी। इसी प्रकार घेरे क्रम से ईथर में बनते जाते हैं और आगे बढ़ते जाते हैं।

मारकोनी ने इनका उपयोग किया और यहभी दिखाया कि दो या अधिक कुण्डलियों के अनुप्रयोग से अधिक दूरी तक तरंग भेजी जा सकती हैं। मारकोनी ने यह भी दिखाया कि दोलन कुण्डलियों में से एक में दृहंक की जगह एक लम्बा तार अधिक उपयोगी है, इस लम्बे तार को एरियल कहते हैं। इसके द्वारा अधिक दूरी तक तरंगें भेजी जा सकती हैं। आजकल अधिक शक्ति उत्पन्न करने के लिए प्रेरण कुण्डली की जगह परिवर्तक डाइनमो का उपयोग किया जाता है।

ऊपर लिखे हुए सिद्धान्तों पर ही बेतार का तार बनाया गया है। इसमें दो यन्त्र होते हैं। एक से समाचार प्राप्त किया जाता है और दूसरे से भेजा जाता है। पहले को ग्राहक कहते हैं और दूसरे को प्रेषक कहते हैं।

प्रेषक में दो प्रेरण कुण्डलियाँ होती हैं। पहली वह है जो बैटरी और कुंजी से सम्बन्धित रहती है। दूसरी वह जिसमें दृहंक की जगह एक लम्बा तार लगा होता है जो एरियल कहलाता है। सन् 1895 में मारकोनी ने यह महत्वपूर्ण खोज की कि यदि द्वितीय, अर्थात् जिसमें एरियल होता है, प्रेरण कुण्डली का एक सिरा जमीन में बहुत गहराई तक गाड़ दिया जाय तो पृथ्वी और एरियल के बीच में एक संघनित्र बन जाता है और उस कुण्डली की दूसरी पट्टी आकाश में जितनी ही ऊपर रहेगी उतनी ही अधिक दूर तक खबरें भेजी जा सकेंगी। इसके ही आधार पर उसने निम्न प्रेषक बनाया। इसमें द्वितीयक प्रेरण कुण्डली के सिरों S,S स्फुल्लिग गैप और प्राथमिक सिरा P,P से जोड़े गये हैं चित्र 1। फिर ये प्राथमिक सिरे P,P प्रेषक घुण्डी को एक बैटरी से जोड़ते हैं। जब घुण्डी को दबाते हैं तब सर्किट कभी बन्द होता है और कभी खुलता है। प्रत्येक स्थिति में एक प्रेरित धारा पैदा होती है जिसके द्वारा संघनित्र C_1 उच्च विभव पर आवेशित होता है। जब संघनित्र का विभवान्तर बहुत अधिक हो जाता है तो स्फुल्लिग गैप के बीच में एक स्फुल्लिग दौड़ता है। यह स्फुल्लिग एक स्वचालित स्विच की तरह कार्य करता है जो L_1 और C_1 के सर्किट को पूरा करता है। इस प्रकार L_1 के बीच विद्युत् का एक दोलन उत्पन्न होता है। यह दोलन घुण्डी के दबाने के उपर निर्भर रहता है। अब चूंकि L_2 की भी आवृत्ति L_1 के बराबर रहती है अःत उसमें L_1 के समान दोलन होता है और फिर एरियल द्वारा वे ईथर तरंगों में परिणित हो जाती हैं।

जब प्रेषक द्वारा कम्पित ईथर तरंग ग्राहक (चित्र 2) के एरियल से आकर टकराती हैं तो L_2 में दोलन होता है और फिर L_1 की आवृत्ति L_2 के बराबर होने से L_1 भी L_2 की तरह दोलन करने लगता है। L_1 का दोलन घटाया बढ़ाया जा सकता है। D क्रिस्टल संसूचक है जो धारा को एक ही ओर केवल जाने देता है और इस प्रकार आवाज का शोधन करता है। यदि संसूचक न लगाया जाय तो समाचार केवल मोर्स पद्धति के अनुसार ही भेजा जा सकता है और ग्रहण किया जा सकता है और हम T टेलीफोन का ग्राहक नहीं लगा सकते। इस दोष को दूर करने लिए कई प्रकार के यन्त्र बनाये गये हैं इन्हें शोधक कहते हैं।

थरमोनिक वाल्व के अध्ययन से पता चलता है कि जब कोई तंतु विद्युत् द्वारा गरम की जाती है तब उसमें से इलेक्ट्रॉन निकलते हैं जो ऋणात्मक विद्युत् से विद्युन्मय होते हैं। वे उसी तरफ जा सकते हैं जिस तरफ का विभव उच्च हो। अब यदि धनात्मक ध्रुव का विभव उच्च हो तो इलेक्ट्रॉन आसानी से पट्टिका से धनात्मक ध्रुव तक जा सकते हैं परन्तु यदि एनोड किसी प्रकार

से निम्न विभव पर कर दिया जाय तो इलेक्ट्रॉन फिर से तंतु पर परावर्तित हो जायेंगे और कोई भी विद्युत् तंतु से एनोड तक नहीं गुजर सकती। 1907 में एनोड को निम्न विभव पर करने के लिए लॉ० दे० फारेस्ट ने तंतु और एनोड के बीच में एक तीसरा इलेक्ट्रोड लगा दिया। यह ग्रिड कहलाता है।

ट्रायोड वाल्व ग्राहक में निम्नलिखित प्रकार से कार्य करता है। ग्राहक एरियल कुण्डली से जुड़ा रहता है और कुण्डली का एक सिरा ग्रिड से जुड़ा रहता है। एनोड का हेड फोन द्वारा बेटरी से सम्बन्ध होता है। प्रेषक द्वारा भेजी गई विद्युत् चुम्बकीय तरंगें ग्राहक के एरियल से टकराती हैं। इस प्रकार एरियल सर्किट का विभवान्तर बदलता है। शोधित एनोड धारा हेड फोन से गुजरती है तो पर्दा भी कम्पन करता है जो आवाज टेलीफोन के ग्राहक में सुनाई पड़ती है।

जब हम प्रेषक में भेजनेवाली कुंजी दबाते हैं या टेलीफोन के माइक्रोफोन पर बोलते हैं तब प्रेषक के एरियल से ईथर तरंगें उत्पन्न होती हैं और वे चलकर ग्राहक के एरियल से टकराती हैं। टकराकर वे संसूचक से होती हुई हेडफोन से गुजरती हैं। हेडफोन में पर्दे से टकराती हैं और वह उसे मोर्स पद्धति अथवा मनुष्य की आवाज में परिणित कर देता है।

डा० शरद चन्द्र चतुर्वेदी
केमिस्ट, यूनीवर्सल टायर लि०
इलाहाबाद

विशेषज्ञों का कथन है कि अग्निकाण्ड से होने वाली मौतों का कारण वे कीटाणु हैं जो शरीर के प्रभावित भाग पर आक्रमण कर देते हैं। 1 ग्राम जले हुये मांस में एक सप्ताह में लगभग 10 करोड़ कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें सबसे घातक स्यू-डौमानस-एसार्जनेसा होते हैं जो घाव को बिगाड़ कर मनुष्य को मौत के घाट उतारते हैं। लैण्ड्सबर्ग मक्खन इन कीटाणुओं की वृद्धि रोकता है। अभी इसको खुलेआम बेचने की अनुमति नहीं मिली है।

क्या मंगल पर जीव हैं ?

शुकदेव प्रसाद

मानव प्रारम्भ से ही प्रकृति को बड़ी जिज्ञासा भरी नजर से देखता आ रहा है तथा उसके रहस्यों को समझने की उसने कोशिश की है। खुले आकाश में रात्रि के अंधकार में चमकते तारों आदि को देखकर सहज ही उसके मन में प्रश्न उठा कि ये क्या हैं ? मानव अपनी अध्ययनशील प्रवृति और लगन के कारण आज ग्रहों, उपग्रहों, तारों, नीहारिकाओं, आकाशगंगाओं, धूमकेतुओं के बारे में बहुत कुछ जान गया है लेकिन फिर भी कुछ ऐसी बातें हैं जिनके आगे अभी भी प्रश्न चिह्न लगा हुआ है। जैसे कि क्या अन्तरिक्ष में और कहीं भी जीवन है ? यह बड़ा रोचक किन्तु चुनौतीपूर्ण प्रश्न है।

अंतरिक्ष में जीवन की संभावना पर मत विभिन्न है। कुछ वैज्ञानिकों के अनुसार अन्य ग्रहों पर जीवन की संभावना निश्चित है। उनके किए गए तर्क भी अकाट्य हैं। इस विचारधारा के लोगों का मत है कि जैसे पृथ्वी एक ग्रह है उसी प्रकार इस ब्रह्मांड में तमाम ग्रह हैं और जिस प्रकार से धरती पर जीवन आया है, हो सकता है उसी प्रकार वहाँ भी जीवन का विकास हुआ हो अथवा हमसे भी सभ्य, सुविकसित प्राणी निवास करते हों या जीवन अभी अपने विकास के प्रारम्भिक चरण में हो। तो सर्वप्रथम इस पर कि जीवन धरती पर कैसे आया, विचार कर लेना उचित होगा।

धरती पर जीवन कैसे आया ?

ऐसा अनुमान किया जाता है कि पृथ्वी का निर्माण आज से चार-पाँच सौ करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार पृथ्वी पहले कास्मिन धूल एवं गैसों के एक गोले के रूप में विकसित हुई होगी। इस गैसीय पिण्ड में केन्द्र में भारी तत्व तथा कुछ हल्के तत्व केन्द्र के चारों ओर एकत्रित होकर इसके मध्य भाग का निर्माण किया और सबसे हल्के तत्व यथा हाइड्रोजन, आक्सीजन, नाइट्रोजन, कार्बन आदि ने पृथ्वी के वाह्य वातावरण का निर्माण किया। शनैः-शनैः पृथ्वी ठंडी होती गई और इसमें उपस्थित अणुओं में आपस में क्रिया होने के कारण जटिलतम अणुओं का निर्माण हुआ। इन अणुओं में पानी, कार्बन डाइआक्साइड, मेथेन, अमोनिया, हाइड्रोजन आदि रहेंगे। पुनः इन अणुओं के आपसी क्रिया से और भी जटिल अणु यथा शर्करा, ग्लिसराल, फैटीअम्ल, ऐमीनो अम्ल, प्यूरीन, पिरीमिडीन आदि का निर्माण हुआ।

इसकी पुष्टि भी डा० एस० एल० मिलर (1953) के प्रयोगों द्वारा हुई।

फिर ज्यों-ज्यों पृथ्वी ठंडी होती गई, वातावरण का जल वाष्प भी ठंडा होकर जमने लगा। वर्षा भी हुई तथा इस प्रकार पृथ्वी के चारों ओर समुद्र के रूप में जल एकत्रित हो गया। इसमें पृथ्वी के तमाम कार्बनिक यौगिक घुलते गए तथा जीवन की उत्पत्ति हेतु एक समुचित वातावरण का विकास हुआ। सरल शर्करा अणुओं से जटिल शर्करा, ऐमीनो अम्लों के संयोजन से प्रोटीन का संश्लेषण तथा प्यूरीन और पिरीमिडीन के आपसी संयोजन के फलस्वरूप न्यूक्लिओटाइडों की रचना हुई। कई न्यूक्लिओटाइडों के मिलने से न्यूक्लिक

अम्लों (DNA, RNA) का निर्माण हुआ। वैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि डीआक्सीराइबोज न्युक्लिक अम्ल या राइब्सेज न्यूक्लिक अम्लों के निर्माण से ही जीवन का आरम्भ हुआ होगा। क्योंकि यही अणु जीवधारी की सभी जैविक क्रियाओं का नियन्त्रण कहते हैं। वाइरस एक ऐसा ही अणु है जिसकी रचना DNA या RNA के चारों ओर प्रोटीन कवच से होती हैं। इसे हम उसकी कुछ विशिष्टताओं के नाते जीव और निर्जीव के बीच एक कड़ी मानते हैं। लेकिन वाइरस का विकास सर्वप्रथम न हुआ होगा क्योंकि इसे अपनी जैविका क्रियाओं के संचालन हेतु ऊर्जा जीवाणुओं से लेनी पड़ती है। अतः सर्वप्रथम जीवाणु या नीलहरित शैवाल के रूप में जीवोद्भव हुआ होगा। बाद में इनमें और भी जटिलता आने लगी तथा धीरे-धीरे तरह-तरह के जीवधारियों का विकास हुआ।

क्या अन्य ग्रहों पर जीवन है ?

पृथ्वी पर जीवन के अवतरण की भाँति हो सकता है अन्य ग्रहों पर जीवन हो। ऐसा कुछ वैज्ञानिकों का विश्वास है। वैसे बहुत से विज्ञान कथा लेखक तो बड़े दावे के साथ इसके समर्थक हैं। इन लेखकों ने तमाम विज्ञान गल्प (अन्य ग्रहों पर जीवन की सम्भावना सम्बन्धी) भी लिखे हैं। जैसे—जियूल वर्न, एडगर एलन पो, एडगर राइस बरो (ग्रीन मेन फ्रॉम मार्स), फ्जि जेम्स ओब्रिएंस, आइजेक आसिमोव, फ्रेड हायल (फिफ्थ प्लैनेट), क्लिफर्ड सिमैक (इमिग्रैंट), आर्थर क्लार्क (टू थाउज़ेंड वन स्पेस ऑडिसी) आदि।

इन विज्ञान कथा लेखकों के अतिरिक्त कुछ वर्ष पूर्व उड़नतश्तरियों की घटना ने मानव की अन्तरिक्ष में जीवन की सम्भावना को और भी बलवती कर दी है। फलस्वरूप ग्रहों के वैज्ञानिक अध्ययन हेतु यान भेजे गए और अब भी भेजे जा रहे हैं। इस मत के न मानने वाले वैज्ञानिकों ने यान द्वारा अन्य ग्रहों के खींचे गए चित्रों को दिखा कर अपनी दलील पेश की कि इन चित्रों से तो वहाँ पर जीवन की कोई भी सम्भावना नजर नहीं आती। इस प्रश्न का जवाब बड़े ही तर्कपूर्ण ढंग से दिया कार्नेल विश्वविद्यालय के खगोलविद् प्रो० कार्ल सागन ने। उन्होंने कहा कि हजारों कि०मी० की दूरी से खींचे गए चित्रों द्वारा सही स्थिति का पता नहीं लगाया जा सकता। अपनी बात की प्रामाणिकता के लिए उन्होंने मौसम उपग्रहों द्वारा धरती के खींचे गए चित्रों को उनके सामने रख दिया तो वे निरुत्तर हो गए और अब सहज ही लोग मानते हैं कि इतनी दूरी से खिंचे हुए चित्रों से क्या अंदाज लगाया जा सकता है। फिर भी यह प्रश्न अभी एक पहेली है।

आइए, इसे सुलझाएँ !

इस पहेली को सुलझाने हेतु वैज्ञानिकों ने दूसरे ग्रहों की ओर यान भेजना प्रारम्भ किया।

सूर्य के चारों ओर घूमने वाले ग्रह हैं—बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, वृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्च्यून और प्लूटो।

अन्तरिक्ष में जीवन की खोज हेतु पृथ्वी के उपग्रह चन्द्रमा पर अमेरिकी और रूसी वैज्ञानिकों ने यान भेजे लेकिन अन्ततोगत्वा सिद्ध हुआ कि वहाँ जीवन का एक भी लक्षण नहीं है—न हवा है, न पानी। अब अपने सौरमंडल पर जरा गौर कीजिए। पृथ्वी के पहले वाले ग्रह अधिक गर्म हैं तथा बाद वाले ग्रहों का ताप अत्यन्त कम है। केवल पृथ्वी पर ही जीवन के लिए पर्याप्त वातावरण है। बुध ग्रह जो सूर्य के काफी पास है, अत्यधिक गर्म रहता है। वहाँ वायु और जल का अभाव है। इसी प्रकार शुक्र भी जो बुध के बाद पड़ता है अधिक गर्म रहता है तथा जीवों के लिए विषाक्त CO_2 भी बहुत अधिक मात्रा में है। अतः इन पर तो जीवन की कोई संभावना नहीं है। रहा सवाल पृथ्वी से परे स्थित ग्रहों—

वृहस्पति, शनि, यूरेनस, नेप्चून, प्लूटो का तो इन पर जीवन की कोई संभावना नहीं दीखती है। क्योंकि यह गैसीय ग्रह हैं। ताप अत्यन्त कम है जो कि जीव की उत्पत्ति के लिए उपयुक्त नहीं है। तथा इन गैसीय पिंडों में मेथेन और अमोनिया की प्रतिशत मात्रा बहुत ही अधिक है जो जीवन के लिए घातक है। अतः ऐसी स्थिति में केवल हमारा पड़ोसी मंगल ग्रह ही बच रहता है जिस पर वैज्ञानिक आस लगाए बैठे हैं और उस पर जीवन की संभावना का दम भी भरते हैं।

हमारा पड़ोसी—मंगल

अपने इस पड़ोसी ग्रह के बारे में मेरिनर और मार्स अन्तरिक्ष यानों से सर्वप्रथम सूचना मिली। मंगल ग्रह के लिए 'मेरिनर-9' मानव निर्मित वह प्रथम उपग्रह है जिसे हमारे सौरमंडल में स्थित किसी ग्रह की कक्षा में स्थापित किया गया है। इस यान ने मंगल के कई चित्र लिए तथा तमाम जानकारियाँ भी प्रेषित कीं। मंगल के बारे में प्राप्त जानकारियाँ इस प्रकार हैं—

- मंगल के ध्रुवीय क्षेत्रों की वर्फ-परत कार्बन डाइआक्साइड से बनी है। कार्बन डाइआक्साइड के अतिरिक्त वहाँ हाइड्रोजन भी है।
- मंगल का वायुमंडलीय दबाव पृथ्वी के दाब का 1/100 है।
- दिन के समय ताप 20°C तथा रात में—45°C तक पहुँच जाता है।
- मंगल की सतह पर चन्द्र समुद्रों की भाँति जलरहित समुद्र भी हैं।
- चन्द्र की भाँति मंगल सतह भी उखड़-खाबड़ है तथा काफी ऊँचे पर्वत भी हैं।
- मंगल के वायुमंडल में आक्सीजन और नाइट्रोजन बिलकुल नहीं है तथा कुछ मात्रा में जल-वाष्प भी पाया जाता है।

मंगल पर आक्सीजन और नाइट्रोजन न होने के बावजूद भी वहाँ जीवन संभव है। इसकी पुष्टि 'नासा' की केलीफोर्निया स्थित 'एम्स रिसर्च लेबोरेटरी' के वैज्ञानिक डा० सीरिल पीन्नमपेरुमा तथा डा० हैरल्ड क्लीन ने 'क्वार्टर्ली रिव्यू ऑफ बायोलाजी' (अक्टूबर, 1970) में की है। उक्त वैज्ञानिकों का दावा है कि मंगल की कठिन परिस्थितियों में भी धरती के जीव जी सकते हैं। इनको सिद्ध करने के लिए उन्होंने एक प्रयोग किया। यहाँ एक बर्तन में उन्होंने मंगल जैसा वातावरण तैयार किया जिसको उन्होंने 'मार्स जार' कहा। पृथ्वी पर इस प्रकार उत्पन्न की गई कृत्रिम मंगल की स्थिति में जीवाणु छोड़ने पर उसमें वे बढ़ने-पनपने लगे। अतः इन तर्कों के आगे तो निःसंकोच हमें मंगल पर जीवन की संभावना स्वीकार करनी पड़ती है। आक्सीजन और नाइट्रोजन की अनुपस्थिति भी जीवन के लिए बाधक नहीं है क्योंकि कुछ जीवाणु तो ऐसी भी परिस्थितियों में धरती पर पाए जाते हैं।

लेकिन फिर भी इन तमाम बातों के बावजूद भी हम पूर्ण रूप से इस विचारधारा से सहमत नहीं होंगे जब तक कि हम प्रत्यक्ष वहाँ के जीवधारियों के बारे में न जान लें।

वाइकिंग : मंगल की ओर

इन तमाम प्रश्नों के उत्तर हेतु अमेरिकी राष्ट्रीय उड्डयन और अन्तरिक्ष प्रशासन [नासा] ने मंगल ग्रह की ओर वाइकिंग नामक दो यान [वाइकिंग-1, वाइकिंग-2] भेजने की योजना बनायी। वाइकिंग मंगल की ओर २० अगस्त को भेजा गया जो कि ग्यारह मास बाद मंगल की धरती पर उतर जायगा और स्वचलित उपकरणों की मदद से वहाँ का विस्तृत अध्ययन करके सूचनाएँ प्रेषित करेगा। 'नासा' द्वारा आयोजित इस अभियान में मंगल पर जीवन का पता लगाने हेतु प्रयोगशाला भी भेजने की व्यवस्था की गयी है।

[शेष पृष्ठ 18 पर

हमारे पुराने अंकों से—

विकासवाद के सौ वर्ष

1 जुलाई सन् 1958 की लन्दन की लीनियन सोसायटी के समक्ष चार्ल्स डारविन ने विकासवाद के विषय में प्रथम बार अपने विचार प्रकट किए। परन्तु किसी ने इनके वक्तव्य की ओर ध्यान तक न दिया। सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी पुराने विचारों से बँधे लोग ऐसे व्यर्थ के विचार मानने को तैयार न थे। वे इनको यों भूल गये मानों कुछ हुआ ही नहीं यद्यपि डारविन का वह 20 वर्षों से अधिक का परिश्रम था। डबलिन के प्रोफेसर हाटन ने डारविन के विचारों के विषय में अपने विचार व्यक्त किए जैसा कि बाद में स्वयं डारविन ने लिखा है। प्रोफेसर हाटन के विचारानुसार डारविन के विचारों में "जो कुछ भी था वह गलत था और जो कुछ सच था वह पुराना था।"

किसी भी नए विचार को जनता के सामने उपस्थित करने के लिए यह आवश्यक है कि उसका पूर्ण विवरण साधारण ढंग से समझाया जावे। यह विचार जो स्वयं डारविन के हैं बिल्कुल सत्य हैं। अगले वर्ष में डारविन की पुस्तक "दि ओरिजन आफ स्पीसीज" प्रकाशित हुई। यह एक बड़ी पुस्तक है और पाँच-गुनी बड़ी हो सकती थी पर डारविन ने अपने पांडित्यपूर्ण विचारों को बड़े विवेक के साथ संगठित करके संरक्षित रूप में उपस्थित किया। इस पुस्तक ने सारे संसार को हिला दिया। धर्म के महापंडितों को बड़ा धक्का लगा। वे अपने विचारों को उखड़ते नहीं देख सकते थे, इसलिए इनके मत के परम विरोधी बन गए।

मानव की उत्पत्ति के विषय में यह सबसे महत्वपूर्ण अनुसंधान है। इसी के सहारे आधुनिक जीव विज्ञान के पंडितों ने विकासवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए अनेक अकाट्य प्रमाणों की सहायता से यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य सूक्ष्म जीवों से विवर्तन की दीर्घकालीन अंतिम प्रक्रियाओं के उपरान्त विकसित हुआ है। विकासवाद के तथ्यों को मानते ही मनुष्य का मस्तिष्क आगे बढ़ा और अनेक महत्वपूर्ण खोज करने में सफल हुआ।

आज के जगत में विकासवाद को साधारण मनुष्य उसी तरह मानता है जिस तरह सूर्योदय को डारविन के विषय में व्यक्त किए गए पुराने विचारों का लोग अब भी उपयोग करते हैं। वह डारविन की संज्ञा "विकासवाद के खोजी" से करते हैं यह उसे वह मनुष्य बताते हैं "जिसने कहा है कि हमारी उत्पत्ति बन्दर से हुई है।

परन्तु डारविन ने इन दोनों में से कुछ नहीं किया। नहीं वह "विकासवाद को खोजी" है और न ही उसने कहा कि हमारी उत्पत्ति "बन्दर से हुई है।" डारविन ने इतने परिश्रम के बाद जो कुछ लिखा और जिस मत का प्रचार करना चाहा वह अब भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं है। उनके विचारों से बड़े-बड़े वैज्ञानिक पूरी तरह से सहमत नहीं, गोल्डस्टोन के 1789 में व्यक्त किए गए यह विचार अब भी पूरी तरह लागू हैं। डारविन उन लोगों में प्रथम नहीं हैं जिन्होंने प्रकृति की उस प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया

'विज्ञान' सितम्बर 1955

जिन्हें विकासवाद कहते हैं। परन्तु निश्चय ही डारविन वह प्रथम व्यक्ति है जिसने "एवोल्यूशन" (विकासवाद) शब्द का उपयुक्त प्रयोग किया। उनका विचार है कि सभी सजीव इकाइयों में सदा परिवर्तन होता रहता है। वह बदलते रूपों से होकर अपने आधुनिक रूप पर आए हैं। परिवर्तन की इस क्रिया को व्यक्त करने के लिए उन्होंने इस शब्द (एवोल्यूशन) का प्रयोग किया। ईसा के समय से शताब्दियों पहले ऐसे महापुरुष थे जिनके विचारानुसार वनस्पति तथा जन्तु इसी रूप में उत्पन्न नहीं हुए जिसमें वह आज हैं। परन्तु यह सब एक निरंतर खुलने वाली कुन्जी पर बिन्दुओं की भाँति हैं। रोम के कवि ल्यक्रैटियस (98-55 ई० पू०) के काव्य में विकासवाद के प्रति संकेत है। ग्रीस दार्शनिक एम्पीडोक्लिास (490-430 ई० पू०) ने भी इस ओर अपने विचार व्यक्त किए हैं। फिर पन्द्रहवीं शताब्दी के ख्याति लब्धि कलाकार व वैज्ञानिक लियोनार्डी डाविन्सी ने फ्लोरेण्डाइन न्यायालय में सिद्ध किया कि फौसिलस निश्चित रूप में पुरातन जन्तुओं के अस्थि अवशेष हैं और जब जीवित थे तब यह जंतु आज के जन्तुओं से पूर्णतया भिन्न थे।

लियोनार्डी डाविन्सी से पूरी तीन शताब्दियों बाद फ्रांस के प्रसिद्ध जीव विज्ञानविद् लैमार्क ने अपनी पुस्तक "फिलास्फी जुलोजिक" द्वारा अपने विचार उपस्थित किए। इनके मतानुसार प्रत्येक प्राणी अपने वातावरण की प्रेरणा से कुछ विचित्र चरित्र पैदा कर लेता है। इस प्रकार अर्जित विचित्रताएँ वंशानुक्रम के अनुमार संतान को प्राप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए एक ह्वेल एक स्तनी की पायी थलचर है और यह पुनः जल में वापस आ गया और जल में अपने हाथ-पैरों का उपयोग नहीं किया इसलिए वे छोटे हो गए और ऐसे जिसे तैरने के लिए वह पतवार की भाँति उपयोग कर सके यह एक अर्जित चरित्र है जो अब लगातार एक ह्वेल से दूसरे ह्वेल को वंशानुक्रम के अनुसार पहुँचता है। लामार्क के इस मत ने कि उपयोग तथा अनुपयोग से प्राप्त चरित्रसंतान को प्राप्त होते हैं। संसार के सोचने वाले व्यक्ति को थर्रा दिया।

1798 में एक अंग्रेज टी० आर० माल्थस ने जनसंख्या के संबंध में एक निबन्ध प्रकाशित किया इस निबन्ध के कई संस्करण प्रकाशित हुए। इसमें "भोजन के लिए संघर्ष" नामक एक भाग था। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम अर्ध भाग में लोग इसको बहुत पढ़ते थे। इन पढ़ने वालों में चार्ल्स डारविन और अल्फ्रैड रसैल वालेस भी थे। इन्होंने काफी भ्रमण भी किया और माल्थस द्वारा उपस्थित की गई कुछ समस्याओं से प्रेरित होकर इन्होंने अपना अध्ययन प्रारम्भ किया।

डारविन एच० एम० एम० वींगल नामक जहाज पर पंचवर्षीय यात्रा पर गया। इस यात्रा का ध्येय था संसार के जीव-जन्तुओं का तथा अनेकों प्राकृतिक बातों का अध्ययन। इस यात्रा से वापस आने पर 1836 में डारविन एक अनुभवी जीवविज्ञानविद् हो गया फिर भी वह अपने विचारों को संमार के सामने रखने से डर रहा था इसलिए कि उसके पास समर्थन के लिए उपयुक्त उदाहरण फिर भी नहीं थे वह वर्षों सोचता रहा, लिखता रहा और 1844 में उसने अपने विचारों को एक निबन्ध रूप में लेखनी बद्ध किया। दो साल बाद यह 32 पृष्ठ वाला लेखक 130 पृष्ठ का हो गया। इसके चौदह वर्ष पश्चात् वालेस ने मलाया से डारविन के पास एक लेख भेजा। इसका मुख्य विषय था "विभिन्न जाति के जीवों में मूल प्राणियों से परिवर्तित होने की प्रवृत्ति होती है।

वोलस के निबन्ध में डारविन ने अपने विचारों की झलक पायी केवल कुछ विचारों में वह वोलस से सहमत नहीं था। वह वोलस को इस खोज के लिए पूरा अधिकार तथा सम्मान देने को तैयार हो गया। परन्तु अपने साथियों

तथा अन्य वैज्ञानिकों से विवश किए जाने पर 1858 में अपनी पुस्तक "दि ओरजिन आफ स्पीसीज प्रकाशित की डारविन के विचारों में प्रधान है प्राकृतिक निर्वाचन (नेचुरल सिलेक्शन) प्राणियों में संतानोतपत्ति की वृहत शक्ति होती है परन्तु चूँकि प्रकृति के नियमानुसार जनसंख्या स्थिर रहती है इसलिए जीवित रहने के लिए संघर्ष होता है और उसमें केवल उपयुक्तम ही जीवित रहते हैं। प्राकृतिक निर्वाचन का यह साधन।

डारविन वाद की नींव तीन वैज्ञानिक तथ्यों और उनके निकले हुए उपर्युक्त दो परिणामों पर आधारित है डारविन। डारविन के विचारों की कड़ी आलोचना हुई इन आलोचनाओं के बाद डारविनवाद में लोगों का विश्वास हटने लगा। अब से लगभग 30 वर्ष पहले बहुत से वैज्ञानिक यह समझने लगे थे कि प्राकृतिक निर्वाचन का विकास की क्रिया में कोई हाथ नहीं हो सकता। यह तक विरोधी कहने लगे कि "प्राकृतिक निर्वाचनवाद गुब्बारे की तरह फूलकार फट गया।"

परन्तु कुछ समय बीतने के बाद वंशानुक्रम विज्ञान (जैनेटिक्स) के प्रगति के कारण डारविन-वादियों और वंशानुक्रम वैज्ञानिकों में समझौता होने लगा। अब डारविन और मैन्डल दोनों के अनुपायी मान बैठे हैं कि विकास 'म्यूटेशन', निर्वाचन और 'जीनी' के विविध संयोगों का फल है। इस प्रकार प्राकृतिक निर्वाचनवाद अर्थात डारविनवाद का पुनर्जन्म हो गया और अब विकासवादी मानते हैं कि प्राकृतिक निर्वाचन का विकास की क्रिया में बहुत बड़ा हाथ है।

●●

[पृष्ठ 15 का शेषांश]

वाईकिंग अंतरिक्ष यान के मुख्य रूप से दो भाग हैं—आर्विटर तथा लैंडर। वाइकिंग यान मंगल का उपग्रह बन जायगा तथा उस समय लैंडर वाला भाग आर्विटर से अलग होकर मंगल के धरातल पर उतर जायगा।

लैंडर के मंगल पर स्थापित होने के बाद स्वचालित हाथ द्वारा मंगल की थोड़ी मिट्टी प्रयोगशाला में आ जायगी। इस मिट्टी का प्रयोग-शाला में विश्लेषण होगा तथा जीवन के अस्तित्व का पता लगेगा। जो कुछ भी जानकारी हो सकेगी वह पहले लैंडर द्वारा आर्विटर को भेजी जायगी। पुनः आर्विटर उन सूचनाओं को धरती को प्रेषित करेगा।

जिस प्रकार रूसी यानों 'लूना—17' और 'लूना—20' द्वारा चन्द्र नमूने पृथ्वी पर लाए गए थे इसी प्रकार यानों द्वारा मंगल से मिट्टी के नमूने लाने की योजना भी प्रस्तावित की गई है।

यदि यह योजना सफल रही तो वह दिन दूर नहीं जब अन्तरिक्ष में जोवन की संभावना का रहस्योद्घाटन होगा तथा हम एक स्वतन्त्र निष्कर्ष पर पहुँचेंगे! क्या उसके बाद भी मानव की ज्ञान पिपासा शांत होगी? नहीं, कदापि नहीं। तब वह वहाँ के जीवधारियों से सम्पर्क बनायेगा और उनके दिनचर्या आदि के बारे में जानना चाहेगा तथा ज्ञान के आदान-प्रदान की बात भी सम्भव हो सकती है (?) कल्पना कीजिए वह क्षण कितना आनन्ददायक होगा जब हम अन्य ग्रहों के जीवधारियों को देख सकेंगे तथा उनके बारे में और भी जान सकेंगे।

●●

विद्युत बल्ब की कहानी

डा० सदगुरु प्रकाश

आज हमारे घर बिजली के लट्टुओं से जगमगाते रहते हैं, पर क्या कभी हमने सोचा है कि इनका जन्म कैसे हुआ। आज से करीब 100 वर्ष पहले जब कि बिजली के बल्ब का उद्भव नहीं हुआ था लोग आग के प्रकाश से, तेल के लैम्पों अथवा मोमबत्ती से अपना काम चलाते थे। आज बिजली के लट्टुओं का उपयोग इतना सुगम और सस्ता है कि अगर हम फिर से उन्हीं पुरानी विधियों को अपनायें तो हमें 100 गुना अधिक व्यय करना पड़े।

19वीं शताब्दी के शुरू में जब प्लैटिनम के तार वाले बिजली के बल्ब का आविष्कार हुआ तो उनका कोई खास प्रायोगिक प्रयोजन न था। पहली बात तो यह थी कि उनका प्रकाश बहुत कम था और दूसरे तब आज के जैसे बिजली उत्पन्न करने वाले जनक [जेनरेटर] न थे। बिजली का एकमात्र साधन बैटरी थी, जिसका उपयोग न केवल महँगा था बल्कि असुविधाजनक भी था। मध्य शताब्दी के आस-पास जब अच्छे 'जेनरेटर' उपलब्ध हो गये तो वैज्ञानिकों का ध्यान अधिक प्रकाश देने वाले लट्टुओं की ओर गया। उन्होंने ऐसे तन्तुओं [फिलामेन्ट] को खोजने का प्रयत्न किया जो प्लैटिनम से अधिक गर्म किये जा सकते थे। यह बात ध्यान देने की है कि बल्ब द्वारा उत्पन्न प्रकाश की मात्रा तन्तु के तापमान पर निर्भर करती है।

सन् 1859 में इंगलैण्ड के वैज्ञानिक सर जोजेफ इवान ने जले हुये कागज के तन्तु का आविष्कार किया। निर्वात [वैकूम] में इस तन्तु को स्थापित करके बल्ब बनाया गया; चूँकि पूर्ण निर्वात के साधन उपलब्ध न थे अतः कार्बन [जला हुआ कागज] शीघ्र ही आक्सीकृत हो जाता और तन्तु इस प्रकार नष्ट हो जाते। 20 वर्ष उपरान्त थामस एडिसन ने जले हुये रूई के धागों का तन्तु के रूप में उपयोग किया। इन दिनों निर्वात करने की समस्या कोई विशेष न थी, फिर भी भंगुर [भुरभुरा] होने के कारण ऐसे तन्तु के बने लैम्प कुछ ही घन्टे काम करते थे। एडिसन निरुत्साहित नहीं हुये। वह दिन-रात लगे रहे और अन्त में उन्होंने बाँस के बने हुये बारीक तन्तुओं पर प्रयोग किया। ऐसे बल्ब लगभग 40 घन्टे तक जलते रहे और इनकी क्षमता भी अच्छी थी। एडिसन ने 1883 में यह विचार रखा कि अगर बल्ब में निर्वात के स्थान पर कोई निष्क्रिय गैस हो तो तन्तु का वाष्पीकरण कम होगा और इस प्रकार के बल्ब अधिक समय तक काम कर सकेंगे। परन्तु उनका यह प्रयोग अधिक सफल न हो सका क्योंकि संचालन के कारण गैस की उपस्थिति में उष्मा का ह्रास अधिक होता था, इस प्रकार तन्तु का तापमान घट जाता और चमक भी कम हो जाती।

इन कठिनाइयों के बावजूद 1893 में जार्ज वेस्टिंगहाउस ने शिकागो के विश्व मेले में विद्युत बल्बों का सार्वजनिक रूप से उपयोग किया। उनको एक कठिनाई का सामना अवश्य करना पड़ा। बल्ब बनाने की जो साधारण विधि थी उसको एडिसन ने सुरक्षित करा रखा था। फिर भी लगभग 3 लाख बिजली के जगमगाते हुये

लट्टुओं ने जनता को मनमोहित कर लिया और यहीं से इनका भविष्य भी उज्ज्वल हो गया।

सन् 1894 में बॉस के स्थान पर कार्बनीकृत सेल्यूलोज का उपयोग किया गया। इस प्रकार बल्बों की क्षमता दुगुनी हो गयी। सन् 1905 में शुद्ध कार्बन के तन्तु बनाये गये। कार्बन तन्तुओं को विद्युत भट्ठी में उच्च ताप तक गर्म किया जाता जिससे उनकी अशुद्धियाँ जल जातीं। ऐसे तन्तुओं को धातु तन्तु कहा गया और ये अधिक प्रकाशवान सिद्ध हुये।

आजकल अधिकतर बल्बों में टॅंगस्टन के तन्तुओं का प्रयोग होता है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में टंगस्टन के तार खींचना सम्भव न था। इसलिए टंगस्टन के तन्तु बनाने के लिए टंगस्टन के चूर्ण को किसी चिपकाने वाले पदार्थ (आसंजक) में मिश्रित करके सुखा लेते थे। यह तन्तु यद्यपि अधिक ताप तक गर्म किये जा सकते थे परन्तु बहुत ही भंगुर होते थे। सन् 1911 में कूलिज ने टंगस्टन के तार खींचने का तरीका निकाला। उन्होंने बताया कि टंगस्टन की भंगुरता उसकी अशुद्धि के कारण होती है। उच्च ताप पर टंगस्टन को पीटने से उसके रवों का आकार ऐसा हो जाता है कि बाल जैसे बारीक तार खींचे जा सकते हैं। इस प्रकार पूर्ण निर्वात वाले टंगस्टन-तन्तु के बल्ब बनाये गये जो आज भी प्रचलित हैं। 1913 तक सभी बल्बों में पूर्ण निर्वात होता था, परन्तु इरविंग लैंगमूर ने गैस की बात पुनः सोची। चूँकि गैस की उपस्थिति में वाष्पीकरण कम होता है अतः उसी तन्तु को अधिक गर्म करके ज्यादा प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही कार्य-काल भी अधिक हो सकता है। लैंगमूर के प्रयोग यद्यपि सैद्धान्तिक थे परन्तु वे गैस वाले बल्ब के निर्माण में सफल रहे। आज सभी 60 वाट से अधिक शक्ति वाले बल्बों में कोई न कोई निष्क्रिय गैस अवश्य होती है। सन् 1931 में सिर्फ अमरीका में इस प्रकार के 3 करोड़ बल्बों की बिक्री हुयी। कभी-कभी बल्ब में पारे की वाष्प (मरकरी वेपर) भरकर अथवा उसकी सतह को पालिश या रंगीन बनाकर बल्ब को अधिक उपयोगी बना देते हैं।

एक बात जो उल्लेखनीय है वह यह है कि बल्ब का कार्य-काल विद्युत के विभव पर बहुत निर्भर करता है। साधारणतयः यह 1000 घन्टे होता है। निर्धारित विभव से अधिक पर उपयोग करने से यद्यपि प्रकाश अधिक मिलेगा (तन्तु के अधिक गर्म होने के कारण) परन्तु वाष्पीकरण बढ़ने के कारण कार्य-काल बहुत घट जाता है। कम विभव पर प्रयोग करने से इसके विपरीत कार्य-काल बढ़ जाता है परन्तु प्रकाश की मात्रा अपेक्षाकृत बहुत कम हो जाती है। इसलिए व्यावहारिक दृष्टिकोण से निर्धारित विभव पर ही उपयोग करना अधिक लाभकारी है।

आज बल्बों का विकास इतना अधिक हो गया है कि हम उनके इतिहास को लगभग भूल से गये हैं। रंग-बिरंगे प्रतिदीप्तिशील लैम्प (फल्युरिसेन्ट ट्यूब) आज कम प्रचलित नहीं हैं। साथ ही प्रकाश उत्सर्जित करने के ठोस माध्यम (विद्युत-संदीपक) भी सामने आ रहे हैं। फिर भी तन्तु वाले बल्बों का अपना स्वयं एक महत्वपूर्ण स्थान है और हम दावे के साथ कह सकते हैं कि इनका भविष्य सदैव सुरक्षित रहेगा।

डा० सदगुरु प्रकाश
जे० के० इंस्टीट्यूट आफ
अप्लाइड फिजिक्स,
इलाहाबाद यूनीवर्सिटी

अपनी बुद्धि परखियें

गोपाल सरन श्रीवास्तव

नीचे कुछ पहेलियाँ दी जा रही हैं। 'विज्ञान' के पाठक इन पहेलियों का हल 15 दिसम्बर 1975 तक संपादक के पास भेज सकते हैं। उत्तर सही होने पर पाठकों के नाम 'विज्ञान' में प्रकाशित किये जायेंगे। पहेलियों के उत्तर सफल पाठकों के नामों के साथ 'विज्ञान' के जननरी अंक में प्रकाशित होंगे।

प्रथम पहेली—निम्नलिखित श्रेणी में 'क' का मान ज्ञात कीजिये।

20,29,84,227,500, क, 1604.........

द्वितीय पहेली—यदि, $21+12=30$,
तथा, $46+28=60$, है
तो $59+27=\ ?$ का मान ज्ञात कीजिये।

तृतीय पहेली—निम्नलिखित अंकों,

4,4,4,4,4,4,4, (अर्थात् चार-चार के सात अंकों को।)

को इस प्रकार रखिये कि उसका हल, 1000 हो। यह ध्यान रखिये कि आप इन अंकों को गणित की किसी भी क्रिया (जोड़, घटाना, गुणा आदि) के द्वारा, किसी भी प्रकार रख सकते हैं, परन्तु इन अंकों के अतिरिक्त अन्य किसी भी अंक का प्रयोग आप नहीं कर सकते हैं।

चतुर्थ पहेली—यहाँ पर एक जादुयी वर्ग दिया है।

इसमें 3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14, 15,16 अंकों को इस प्रकार भरिये कि सभी ओर से (उर्धर्वाधर, क्षैतिज तथा विकर्णी दिशाओं से) जोड़ 34 हो।

पंचम पहेली—निम्नलिखित गुणें के प्रश्न को सांकेतिक रूप से किया गया है। इस प्रश्न में एक वर्ण केवल एक अंक को ही प्रदर्शित करता है। इसके वास्तविक अंक बतलाइये।

ख घ छ झ
× क ज छ 9

ख ख ख क ख
क घ झ थ झ
क ज ख ज छ
ख घ छ झ

घ ग छ च झ त 2

क्या आप जानते हैं ?

शुकदेव प्रसाद

●पादप हार्मोन ऐसे कार्बनिक पदार्थ हैं जो पौधे के किसी विशेष अंग के ऊतक में उत्पन्न होकर वहाँ से दूसरे ऊतकों में परिवहन द्वारा पहुँचते हैं और उसमें हो रही वृद्धि सम्बन्धी घटनाओं पर, अति न्यून मात्रा में प्रयुक्त होकर, प्रभाव उत्पन्न करते हैं।

●वनस्पतिविद् प्रो० ए० पाल के पौधों पर किए गए प्रयोगों से यह पता चला कि हारमोन जैसा ही कोई रसायन पौधों में वृद्धि का नियन्त्रण करता है। ये ही रसायन आज पादप हार्मोन या वृद्धि नियन्त्रक कहलाते हैं।

●जिबरेला फ्यूजोकुराई नामक कवक से रोगग्रस्त धान के पौधों पर सर्व प्रथम वैज्ञानिक कुरासोवा ने कार्य किया। कुरासोवा इस कवक से 'जिबरेलिन' नामक रसायन को विलगाने में सफल हुए।

●जिबरेलिन एक पादप वृद्धि हार्मोन है। इसके प्रभाव से पौधों की बौनी जातियों में बहुत अधिक वृद्धि हो जाती है। लेकिन इन पौधों के बीजों से उत्पन्न पौधे लम्बे न होकर बौने ही होंगे।

●अक्सिन वर्ग के हार्मोनों की खोज जई (अवेना सटाइवा) के नवोद्भिद पर किए गए प्रयोगों द्वारा हुई थी। जिनके अनुसंधान में कुछ वैज्ञानिक एफ० डब्ल्यू० वेन्ट का सक्रिय योगदान था।

●'इन्डोल ऐसीटिक अम्ल, इन्डोल ब्यूटरिक अम्ल, नैपथलीन ऐसीटिक अम्ल, फेनिल एसीटिक अम्ल, 2-4 डाई क्लोरो फोनोक्सी ऐसिटिक अम्ल, 2-1-5 ड्राई क्लोरी एसिटिक अम्ल आदि हार्मोन 'आक्सिन' वर्ग में आते हैं तथा ये पौधों में विभिन्न वृद्धि सम्बन्धी घटनाओं को प्रभावित करते हैं।

●कुछ आक्सिन जब पुष्पों के वार्तिकाग्र पर लगाये जाते हैं तो बिना परागण तथा निषेचन क्रिया के फल बन जाते हैं। कुछ आक्सिन सुप्त कलिकाओं का सुप्त अवस्था में ही बनाए रखते हैं जैसे—नैपथलीन एसिटिक अम्ल। कुछ आक्सिन खेत में उगने वाले घास-खर पतवार को नष्ट करने में सहायक हैं जैसे—2-4-डी।

●एफ० काल तथा जे० हेगेन-स्मिट ने बताया कि मानव तथा अन्य प्राणियों के मूत्र में भी कुछ वृद्धि कारक रसायन होते हैं।

●उक्त वैज्ञानिकों ने मानव मूत्र से 'आक्सिन' 'ए' [आक्सिनो ट्राई ओलिक अम्ल] तथा माल्ट एवं मक्का के तेल से 'आक्सिन बी' [आक्सिनो-लोनिक अम्ल] प्राप्त किया।

●कोशिका विभाजन घटना को प्रभावित करने वाले हार्मोन 'साइयेथाइनिन' वर्ग में आते हैं। यह न्यूक्लिक अम्ल प्रकार के पदार्थों के समान होते हैं तथा उनके ही विघटन से उत्पन्न होते हैं।

●बीजों और कलिकाओं को सुप्तदशा में रखने का कार्य करने वाले हार्मोन 'डार्मिन' कहलाते हैं।

●पौधों में पुष्पन घटना को प्रेरित करने वाले हार्मोन फ्लोरोजेन कहलाते हैं। वैज्ञानिकों का ऐसा विश्वास है कि इसमें जिबरेलिन तथा एन्थेसिन हार्मोन पारस्परिक सहयोग द्वारा पुष्पन प्रेरित करते हैं।

●●

विज्ञान वार्ता

जूतों को सुखाने के लिए इलेक्ट्रिक ड्रायर

इस समय जूतों को सुखाने के लिए एक ऐसा इलेक्ट्रिक ड्रायर बाजार में उपलब्ध है, जिसके द्वारा स्की, हिप, स्नो बूट, वेस्ट वेडर, फुटबाल शू, गोल्फ और टेनिस शू से लेकर चमड़े, रबर या प्लास्टिक के साधारण जूते तक किसी भी प्रकार के जूते को बड़ी आसानी से सुखाया जा सकता है। इसमें कोई ऐसा सचल पुर्जा नहीं, जो घिस सके। इसका निर्माण अमेरिका में आइडाहो की एक फर्म, पीट इलेक्ट्रिक, ने किया है। इसका नाम 'पीट्स शू ड्रायर' है। निर्माताओं का कहना है कि यह टिकाऊ है और कई साल तक चल सकता है।

यह उपकरण दो यूनिटों में उपलब्ध है। पुरुषों के जूतों के लिए बेसिक यूनिट है जिसका मूल्य लगभग 20 डालर है। एक फैमिली यूनिट भी है, जो महिलाओं, बच्चों और पुरुषों—सबके लिए है। इसका मूल्य लगभग 35 डालर है।

शिशुओं के लिए फोल्डिंग हाई चेयर

केण्टुकी की एक फर्म ने नन्हें शिशुओं को बैठाकर खिलाने के लिए एक मुड़ सकने वाली ऊँची कुर्सी (फोल्डिंग हाई चेयर) बनायी है, जिसका नाम 'टेलर टाटर'। यह नई कुर्सी हल्की है, इसे आसानी से एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जा सकता है और इसको प्रयुक्त करना आसान है।

इसका ढाँचा सूराखदार स्टील से बनाया गया है जिस पर क्रोम चढ़ाया हुआ है। इसके नीचे विनायल की गेंद लगी हैं, जिनके कारण यह फर्श पर आसानी से फिसल सकती है। इसमें क्रोम से रंगी गयी एक निकल की ट्रे भी लगी है। इसकी सीट और पीठ मजबूत विनायल की बनी है। इसकी कीमत लगभग 10 डालर है। इसे फ्रैंकफुर्ट, केण्टुकी, की फर्म फ्रैंक एफ० टेलर कम्पनी के यहाँ से खरीदा जा सकता है।

मिट्टी के रासायनिक परीक्षण के लिए साज-सामान थैला

अब बाजार में एक ऐसा साज-सामान थैला या 'किट' उपलब्ध है, जिसमें मिट्टी के पूर्ण रासयनिक परीक्षण के लिए सभी आवश्यक सामग्रियाँ और उपकरण भरे हैं। यह थैला एक अमेरिकी फर्म द्वारा विक्रय के लिए प्रस्तुत है। यह उपकरण-थैला किसानों, कृषि विज्ञान के शिक्षकों, बीज-उत्पादकों, उर्वरक कम्पनियों आदि के लिए बहुत उपयोगी है।

इसका नाम 'सिम्पलेक्स स्वायल टेस्ट आउटफिट' हैं। इसकी सहायता से कृषि-उत्पादक मिट्टी को प्रयोगशाला में परीक्षण के लिए भेजे बगैर ही इस बात का तुरन्त निर्धारण कर सकते हैं कि किसी खेत के पौधों के लिए कैसा और कितना उर्वरक आवश्यक होगा। निर्माताओं का कहना है कि यह उपकरण-पुंज अनिश्चित काल तक प्रयुक्त हो सकता है। इसमें जो साज-सामान रखे गये हैं, उन्हें समाप्त होने पर फिर खरीद कर भरा जा सकता है। इसमें एक सविवरण निर्देश पुस्तिका भी रखी गयी है, जिसमें 8 रंगीन चार्ट और परीक्षण के लिए निर्देश दिये गये हैं। इसके द्वारा नाइट्रेट, फास्फोरस, पोटाश, आम्लता, मैगनेशियम, लोहा, अल्युमिनियम, कैल्शियम, अमोनियम, सल्फेट, क्लोराइड, मैगनीज, आदि विषयक सैकड़ों परीक्षण किये जा सकते हैं।

यह किट धातु की एक मजबूत पेटिका में बंद है। एक पूर्ण सिम्पलेक्स किट का मूल्य लगभग 75 डालर है। इसका निर्माण ओहायो की एक फर्म, एड्वर्ड्स लैबोरेटरी, कर रही है।

प्रेस में धातु की चद्दरें भरने के लिए 'रिवर्सिबुल अनक्वायलर'

धातु की चद्दरों की बड़ी-बड़ी गेडुलियाँ या क्वायलों का प्रयोग करने वाली अनेक कम्पनियों के सामने एक कठिन समस्या यह है कि गेडुलियों के रूप में लिपटी धातु की चादरों को खोलने के लिए प्रयुक्त पुराने ढंग के उपकरणों (अनक्वायलर) द्वारा क्वायल की केवल एक ही सतह प्रेस में भरी जा सकती है।

अमेरिका में मेन राज्य की एक कम्पनी ने एक रिवर्सिबुल अनक्वायलर द्वारा इस समस्या को हल कर लिया है। यह उपकरण किसी धातु की क्वायल की किसी भी सतह या साइड को प्रेस में अच्छी तरह भर सकता हैं।

यह नया इलेक्ट्रिक अनक्वायलर 2 फुट तक की चौड़ाई और 2 मेट्रिक टन से अधिक वजन वाले क्वायलों को समानान्तर या तिरछे, किसी भी प्रकार के प्रेस में भर सकता है। निर्माताओं का कहना है कि इसका प्रयोग करने वाला क्वायल के किसी भी स्थान से पूरे तौर पर अपना काम प्रारम्भ कर सकता है। इस अनक्वायलर को प्रयुक्त करने के लिए फर्श पर 35 वर्ग फुट की जगह की जरूरत होती है।

इसे प्रयुक्त करना बहुत आसान है। अनक्वायलर या प्रेस में से किसी एक पर भी लगे एक नियन्त्रण-कंसोल का प्रयोग करके, आपरेटर चालू या बन्द करने वाली स्विच, तथा आगे या उल्टे चलाने वाली स्विच को दबा देता है। कम्पनी का कहना है कि इसका रख-रखाव भी आसान हैं, क्योंकि इसमें लुब्रिकेशन के लिए सिर्फ तीन ही जगहें होती हैं। इस नये अनक्वायलर का निर्माण राकपोर्ट, मेन, की फर्म, मेन टेक्निकल इण्डस्ट्रीज इनकारपोरेटेड, कर रही है।

अंधेरे में देखने वाला उपकरण

'प्रोबी' एक ऐसा उपकरण है, जो अंधेरे में पड़ी वस्तुओं की टोह लेता और उन्हें ढूंढ़ निकालता है। यह उपकरण स्वयं किसी प्रकार का कोई प्रकाश उत्पन्न नहीं करता और अवरक्त (इन्फ्रारेड) विकिरण का पता लगाता है। यह वस्तुओं के तापीय ढाँचे के आधार पर उनके ऐसे चित्र प्रस्तुत करता है, जिन्हें आँख से देखा जा सकता है। इसका उपयोग आग बुझाने, खदानों का निरीक्षण करने तथा पुलिस द्वारा गश्त करने में किया जा सकता है।

इलेक्ट्रोन की ऊर्जा का माप करने वाला उपकरण

यहाँ प्रस्तुत चित्र एक ऐसे उपकरण का है, जो इलेक्ट्रोन की ऊर्जा का सही-सही विश्लेषण करता है। इसका निर्माण किसी बाहरी प्रभाव के कारण किसी पदार्थ की सतह से निस्वृत इलेक्ट्रोनों की ऊर्जा का निर्धारण करने के लिए किया गया है। यह पदार्थों की मूलभूत विद्युदाणविक विशेषताओं का अध्ययन करने में विशेष रूप से लाभप्रद हैं।

गैस के प्रवाह को नियन्त्रित करने वाला यन्त्र

गैस क्रोमैटोग्रैफी (रंग-विवेचन) में परिवर्तनशील दबाव की दशाओं के अन्तर्गत न्यून गैस-प्रवाह को समान या अपरिवर्तित दर से नियन्त्रित करने के लिए एक उपकरण का प्रयोग किया जाता है, जिसे 'वैरियेबुल प्रेशर कण्ट्रोलर' कहते हैं। इसकी एक नयी डिजाइन विकसित की गयी है, जिसके पुर्जों को खोल कर अलग-अलग करना और उनकी सफाई करना बहुत आसान है। इसमें ऐसे पुर्जे नहीं हैं, जिनसे अक्सर कठिनाई उत्पन्न होती है।

डाक टिकट के आकार के एक्स-रे चित्र

एक नये प्रकार का रेडियोग्राफिक सूक्ष्मोकरण उपकरण विकसित किया गया है, जो डाक टिकट के आकार के एक्स-रे चित्र तैयार करने में समर्थ है। इसके द्वारा रेडियोग्राफिक चित्रों को छोटा करके 13×50 मिलीमीटर आकार का कर दिया जाता है। इतना छोटा होने पर भी एक्स-रे चित्र द्वारा जाँच या रोग का निदान करने में कोई कठिनाई नहीं होती। इसका निर्माण समय, जगह और व्यय में कमी करने के उद्देश्य से किया गया है। इस प्रकार के एक्स-रे चित्रों की सहायता से रोगी के श्रेष्ठतर उपचार में सहायता मिलो है।

'भारतीय विज्ञान पत्रिका समिति' द्वारा मान्य पत्रिका

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात् विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ०/3/5/

कार्यालय
विज्ञान परिषद
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद

भाग 112 संख्या 10
पौष 2022 विक्र०
दिसम्बर 1975

विषय सूची

राष्ट्रपति सचिवालय,
राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली-110004.

PRESIDENT'S SECRETARIAT,
RASHTRAPATI BHAVAN,
NEW DELHI-110004.

पत्रावली सं० 8-एम/75

नवम्बर 25, 1975

प्रिय महोदय,

राष्ट्रपति जी के नाम दिनांक 20 नवम्बर, 1975 का आपका पत्र प्राप्त हुआ। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि विज्ञान परिषद् द्वारा विज्ञान पत्रिका का 'अन्तरिक्ष-विज्ञान' विषय पर एक विशेषांक प्रकाशित करने का आयोजन किया गया है। विशेषांक की सफलता के लिये राष्ट्रपति जी अपनी शुभकामनाएँ भेजते हैं।

भवदीय,

(खेमराज गुप्त)
राष्ट्रपति का अपर निजी सचिव

श्री शिव प्रकाश,
संपादक 'विज्ञान',

उपराष्ट्रपति, भारत
नई देहली
VICE-PRESIDENT
INDIA
NEW DELHI
नवम्बर 26, 1975

मुझे प्रसन्नता है कि विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद अपने 62वें वर्ष के उपलक्ष में 'विज्ञान पत्रिका' का 'अन्तरिक्ष विज्ञान' नामक एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रही है। अन्तरिक्ष विज्ञान में भारत पदार्पण कर चुका है, आर्यभट्ट की सफलता से इस क्षेत्र में हमारे राष्ट्र के लिये एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। हमारी वैज्ञानिक उपलब्धियाँ मानव कल्याण के निमित्त हैं यह बात कई बार सुस्पष्ट की जा चुकी हैं। देश और देशवासियों की उन्नति के लिये ही विज्ञान और तकनीकी का प्रयोग करना चाहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सन्तुलन के लिये भी आवश्यक है कि हम विज्ञान में किसी देश से पीछे न रहें।

मुझे आशा है कि आपके विशेषांक में विज्ञान संबंधी उपयोगी सामग्री से पाठक लाभान्वित होंगे। इसकी सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभ कामनाएँ।

(ब० दा० जत्ती)

RAJ BHAVAN

LUCKNOW

दिसम्बर 1, 1975

मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता है कि विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद, ने दिसम्बर मास में एक 'अन्तरिक्ष विज्ञान' विशेषांक प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

अन्तरिक्ष विज्ञान न केवल मनोरंजक वैज्ञानिक विषय मात्र है, बल्कि वह हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा तथा भौतिक विकास से अपरिहार्य रूप से जुड़ा हुआ है। आज के युग में इस क्षेत्र में पिछड़ना हमारी प्रगति एवं अस्तित्व के लिये भारी खतरा होगा और हमें इस दिशा में विश्व के समकक्ष आने के लिये त्याग की आवश्यकता है। विज्ञान के विद्यार्थियों को बड़े धैर्य व संयम से अपनी यात्रा जारी रखनी है और सदैव उन्हें किसी चमत्कारिक उपलब्धि की अपेक्षा रखनी चाहिये। समस्त संसार की उपलब्धियों के पीछे सहस्रों तत्ववेत्ताओं और मनीषियों के जीवन पर्यन्त अध्यवसाय का इतिहास है और अनिवार्य रूप से वे सामूहिक प्रयासों का परिणाम मात्र हैं। मैं आशा करता हूँ कि परिषद् का यह प्रयास अन्तरिक्ष विज्ञान की हमारी उपलब्धियों और संभावनाओं पर प्रकाश छोड़ने में समर्थ होगा तथा मैं प्रकाशन की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभ कामनाएँ भेजता हूँ।

म० चेन्ना रेड्डी

Grams : CONSEARCH Phones : 383652 & 388169
COUNCIL OF SCIENTIFIC & INDUSTRIAL RESEARCH
RAFI MARG,
NEW DELHI

क्रमांक : 1/डी० जी०/12-75 12 दिसम्बर 1975

Prof. Y. NAYUDAMMA
Secretary to the Govt. of India
& Director General CSIR.

— : शुभ कामना सन्देश :—

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता है कि विज्ञान परिषद् अपने 62 वें वर्ष में पदार्पण करने के इस शुभ अवसर पर "अंतरिक्ष-विज्ञान" विषय पर "विज्ञान" पत्रिका विशेषांक प्रकाशित कर रही है। परिषद् का यह आयोजन विज्ञान जगत में सामयिक चरण है।

आज जब कि पाश्चात्य जगत चन्द्रमा पर पहुँच कर मंगल, बुध, शुक्र, वृहस्पति और शनि की टोह ले रहा है भारत भी आर्यभट के प्रक्षेपण द्वारा अन्तरिक्ष युग का शुभारम्भ कर चुका है। भारत के प्रथम उपग्रह आर्यभट की उपलब्धियाँ विज्ञान जगत के लिये महत्वपूर्ण हैं। भारत द्वारा अन्तरिक्ष के रहस्यों को खोजने की दिशा में चरण बढ़ाने के अवसर पर विज्ञान विशेषांक प्रकाशित करना बहुत ही सराहनीय कार्य होगा। परिषद् द्वारा किये जा रहे इस अनूठे प्रयास के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ अर्पित हैं।

(वाई० नायुडम्मा)
सचिव भारत सरकार एवं महानिदेशक

सम्पादकीय

पिछले वर्ष बाल विशेषांक जब निकला था तो पाठकों ने इसे बहुत सराहा था जैसा कि अनेक पत्रों से ज्ञात हुआ। अन्तरिक्ष विज्ञान पर विशेषांक निकालने का हमारे पाठकों ने आग्रह किया था। हमें प्रसन्नता है कि हम आपके सम्मुख उक्त विषय पर विशेषांक प्रस्तुत कर रहे हैं।

सभ्यता एवं ज्ञान के शैशव काल से ही मानव की अन्तरिक्ष एवं उसकी अद्भुत वस्तुओं एवं विचित्र घटनाओं के प्रति प्रबल जिज्ञासा रही है। प्राचीन काल से ही मानव की यह प्रबल उत्कण्ठा रही है कि वह भी उड़ कर आकाश में जाय। पक्षियों को आकाश में स्वच्छन्द रूप से चहचहाते देख कर मानव के मन में प्रतिस्पर्द्धा जाग्रत हुई होगी कि वह भी उड़े, अन्तरिक्ष में स्वच्छन्द विचरण करे तथा बादलों के पार चन्द्रमा तक पहुँच कर उसमें मुक्त विहार कर सके। इन्हीं कल्पनाओं, विस्मयों तथा जिज्ञासाओं ने अन्तरिक्ष विज्ञान को जन्म दिया है।

आज की स्थिति यह है मनुष्य के पद चिह्न चन्द्रमा के धरातल पर अंकित हो चुके हैं, अन्तरिक्ष में प्रयोगशाला स्थापित की जा चुकी है और अभी हाल ही में अपोलो-सोयूज का जो संगमन हुआ था उसने अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का अति उत्तम दृष्टान्त प्रस्तुत किया है। वृहस्पति तथा मंगल ग्रह की ओर जो राकेट भेजे गये हैं उनसे तथा अन्य मानव रहित व मानव सहित उड़ानों द्वारा अन्तरिक्ष सम्बन्धी समस्त रहस्य एक-एक करके उदघाटित होते चले जा रहे हैं तथा अन्तरिक्ष पर अपनी विजय यात्रा के दौरान प्रतिवर्ष मानव अधिकाधिक सीमोल्लघन करता जा रहा है। इन उपलब्धियों के लिए हम संसार के दो राष्ट्रों-संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियत रूस-को श्रेय देते हैं। इन राष्ट्रों के लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरों की सूझ-बूझ, तकनीकी कुशलता तथा अकथनीय परिश्रम के परिणामस्वरूप ही यह संभव हो सका है कि हम अन्तरिक्ष में उड़ानें भरने लगे हैं। वह दिन दूर नहीं जब शटल का भी प्रयोग आरम्भ हो जायगा।

अन्तरिक्ष अनुसंधान बहुउद्देशीय है। जलवायु, मौसम, ग्रहों व उपग्रहों के बारे में और उनमें उपस्थित जीवों (यदि हों) के बारे में, ब्रह्माण्ड किरणों के अध्ययन में, सूर्यग्रहण आदि अनेक प्राकृतिक घटनाओं से सम्बन्धित की जा रही गवेषणाओं से ज्ञान का असीम भण्डार संचित होता जा रहा है। प्रस्तर युग, लोह युग, परमाणु युग से गुजरते हुए मानव अब अन्तरिक्ष युग में प्रवेश कर चुका है। मनुष्य का मस्तिष्क प्रकृति की गुत्थियों को सुलझाने में अनवरत लगा हुआ है। कुछ लोगों का यह मत है कि अन्तरिक्ष उड़ानों पर इतना रुपया क्यों खर्च किया जा रहा है, जब कि संसार के करोड़ों मनुष्य भूख से पीड़ित हैं? पर यह ठोस आधार नहीं हैं। विज्ञान की खोज सदैव होती रही है और होती रहेगी।

सौर परिवार

| विजयकान्त श्रीवास्तव |

अंतरिक्ष में सौर परिवार के सदस्यों के सम्बन्ध में जानकारी ज्ञात करना एक दुरूह कार्य था। पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं वह भी सौर परिवार का ही एक सदस्य है। खुले आकाश में सौर परिवार के सदस्यों का दिग्दर्शन किया जा सकता है। सौर परिवार के सदस्यों में ग्रहों, नक्षत्रों, तारों तथा उल्काओं का समावेश होता है। ग्रीक वैज्ञानिकों ने पहले 'प्लेनेट' का नाम दिया। रोमन वैज्ञानिकों ने ग्रहों का नामकरण किया। इन ग्रहों का नाम रोमन वैज्ञानिकों ने अपने देवता के नाम पर रखा था जैसे मरकरी, वीनस, मार्स, जुपिटर तथा सैटर्न। विज्ञान के शैशव काल से ही ज्योतिषियों ने इन ग्रहों के साथ अनेक चमत्कारिक घटनाओं को जोड़ा था तथा इनका मनुष्य के दैनिक जीवन में बहुत महत्व बताया था। वैबीलोन में ज्योतिषियों ने जुपिटर का सम्बन्ध मारडुंक देवता से बताया था जो शक्ति का देवता माना जाता है तथा सैटर्न का सम्बन्ध निनुर्त देवता से बताया जो कि युद्ध का देवता माना जाता था। भारतीय वैज्ञानिकों का इस सम्बन्ध में योगदान अप्रतिम था। भारतीय वैज्ञानिकों ने सौर मंडल का अध्ययन गणितीय विधि से प्रारम्भ किया था।

1609 में जब गेलिलियो ने दूरदर्शी (टेलिस्कोप) का निर्माण किया तबसे सौर मंडल के अध्ययन में क्रान्ति ही आ गयी। समय-समय पर किये गये अनुसंधानों से सौर मंडल के सम्बन्ध में नये तथ्य मिलने लगे तथा पुरानी जीर्ण मान्यताओं की समाप्ति होती गयी। कोपरनिकस तथा आर्यभट द्वारा किये गये अनुसंधानों से पता चला कि सूर्य केन्द्र में है तथा अन्य सभी ग्रह व उपग्रह सूर्य का चक्कर काटते हैं। केपलर ने बताया कि सूर्य के चारों ओर दीर्घवृत्ताकार परिधि में ग्रह, उपग्रह परिभ्रमण करते हैं। न्यूटन के

☿ बुध ♃ बृहस्पति

♀ शुक्र ♄ शनि

⊕ पृथ्वी ♅ यूरेनस

♂ मंगल ♆ नेप्चून

तारागुच्छ ♇ प्लूटो

ग्रहों के संकेत चिन्ह

गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर इस परिधि तथा परिभ्रमण में गणितीय सम्बन्ध प्राप्त किया गया। 1840 में सौर परिवार के दो नवीन सदस्यों की वृद्धि हुई और ये थे : यूरेनस तथा नेपचून। प्रथम विश्व युद्ध के बाद 1920-30 तक की अवधि में अंतरिक्ष सम्बन्धी अनुसंधान में तीव्र गति आयी। 1969 में मानव के चन्द्रमा पर उतरने से इस दिशा

सारणी 1—सौर परिवार सम्बन्धी स्थिरांक

	बुध	शुक्र	पृथ्वी	मंगल	वृहस्पति	शनि	यूरेनस	नेपचून	प्लूटो
विषुवतीय व्यास (पृथ्वी 12682 किमी.)	0·38	0·95	1	0·53	11·19	9·5	3·7	3·9	0·59
द्रव्य (पृथ्वी 1)	0·86	0·82	1	0·11	317·9	95·1	14·5	17·3	0·18
आयतन (पृथ्वी 1)	0·06	0·86	1	0·15	1318	769	50	59	?
घनत्व (जल 1)	5·50	5·27	5·52	3·95	1·33	0·69	1.7	1·6	?
विषुवतीय-सतह का गुरुत्व (पृथ्वी 1)	0·39	0·91	1	0·38	2·31	0·88	9	1·1	?
उपग्रह	0	0	1	2	12	10	5	2	0
परिभ्रमण काल (दिन)	58.65	243	1	1·03	9.93 घंटे	10·03 घंटे	10·8 घंटे	15·8 घंटे	6·31 दिन
सूर्य का परिक्रमा काल	88 दिन	224·7 दिन	1 वर्ष	1·88 वर्ष	11·86 वर्ष	29·46 वर्ष	84·01 वर्ष	164·1 वर्ष	247 वर्ष
सूर्य से दूरी (पृथ्वी 148730439 04 किमी०)	0·39	0·72	1	1·52	5·20	9·52	19·16	29·99	39·37

में अनेक नवीन अनुसंधानों का सूत्रपात हुआ। वर्तमान में अनेक नवीन यंत्रों के निर्माण से इस दिशा में अनेक प्रकार के अनुसंधान चल रहे हैं।

वर्तमान ज्ञान के अनुसार सौर परिवार में 9 ग्रह, 32 उपग्रह, अनेक छोटे छोटे ग्रह, तारा गुच्छ तथा उल्का एवं धूमकेतु हैं। सौर मंडल का व्यास लगभग 12 अरब किलोमीटर है। प्रकाश को (गति 3×10^5 किमी० प्रति सेकेन्ड) पूरे सौर परिवार को पार करने में आधा दिन से भी अधिक लग जाता है।

सौर परिवार के अध्ययन में कुछ ज्वलंत प्रश्न उभर आते हैं—

1—सौर परिवार का जन्म कैसे हुआ ?

2—जीवन का विकास कैसे हुआ—क्या पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य ग्रहों पर भी जीव का निवास है ?

वर्तमान दशक में सम्पूर्ण विश्व में इन प्रश्नों को सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

सारणी २ में सौर परिवार के सम्बन्ध में कुछ गणितीय तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

पृथ्वी :—पृथ्वी सौर मंडल का तीसरा ग्रह है। यह 30 किमी./सेकेण्ड वेग से 95 अरब किमी. परिधि का परिभ्रमण करती है। पृथ्वी का क्षेत्रफल लगभग 51 करोड़ वर्ग किमी. है। इसके 70.78% भाग में जल तथा 29.22% में स्थल है। स्थल भाग की सर्वाधिक ऊँचाई 8848 मीटर है (एवरेस्ट चोटी) तथा गहराई 11035 मीटर (मरियाना ट्रेंच) है।

सौर मंडल से देखने पर पृथ्वी का रँग नीला एवं श्वेत प्रतीत होता है। इसके ऊपर बादल का आवरण है। वायुमंडल में नाइट्रोजन 78%' आक्सीजन 21%' आर्गन तथा कार्बन डाइआक्साइड आदि 1% है। वायुमंडल का दबाव 14.7 पौण्ड प्रति वर्ग इन्च है। पृथ्वी स्थल में सिलिकेट प्रधान तत्व है। ध्रुव पर ताप −88.8°C तथा भूमध्य रेखा पर 58°C पाया जाता है। पृथ्वी ही ऐसा ग्रह है जिस पर जीवों का निवास है।

चन्द्रमा :—चन्द्रमा पृथ्वी का एकमात्र उपग्रह है। चन्द्रमा की पृथ्वी से दूरी 384000 किमी. है। इसका व्यास 3485 किमी. है। इसकी परिधि 10945 किमी. है। चन्द्रमा के कक्षा की परिधि 14 लाख किमी. है। चन्द्रमा का घनत्व 3.33 ग्राम/से.मी.^{3} है। चन्द्रमा का भार 7×10^{19} टन है। चन्द्रमा का अक्षीय तथा कक्षीय वेग समान है।

चित्र — सौर परिवार

सारणी–2

सूर्य से दूरी	=	15 करोड़ किमी.
घनत्व	=	5.52 ग्राम/सेमी.
विषुवत रेखीय व्यास	=	12,742 किमी.
द्रव्यमान	=	5.98×10^{21} टन
आयतन	=	7.58 अरब किमी.^{3}
दिन घूर्णन काल	=	23 घण्टा 56 मिनट 4 सेकेण्ड
वर्ष	=	365.256 दिन

शुक्र—शुक्र ग्रह की पृथ्वी से दूरी 448 लाख किमी. है। यह ग्रह सूर्य के बाद सबसे प्रकाशमान

है। यह ग्रह सूर्य से 1072 लाख किमी. दूर है। इस ग्रह पर पड़ने वाली सूर्य की ऊर्जा पृथ्वी से दूनी है। यह ग्रह पृथ्वी से 3 गुना अधिक प्रकाशमान है। इस ग्रह पर बादल का विशाल आवरण पाया जाता है। स्थल भाग से 560 किमी. की ऊँचाई तक वायुमंडल का आवरण पाया जाता है। वायुमंडल में 95% भाग कार्बन डाइआक्साइड का है। इसका दबाव पृथ्वी से 100 गुना अधिक है। इस ग्रह का परिभ्रमण समय 22 घंटे से 365 दिन तक माना जाता है। यह विवादास्पद विषय है। इस ग्रह पर सूक्ष्मजीव की सम्भावना है।

बुध—यह ग्रह पृथ्वी से 1488 लाख किमी. दूर है। यह ग्रह भी प्रकाशमान है। इसकी दूरी सूर्य से 688 लाख किमी. है। बुध ग्रह का स्थल शिलाओं से निर्मित है। बुध ग्रह पर सूर्य ऊर्जा अत्यन्त विशाल मात्रा में पड़ती है जिससे कि ग्रह अत्यन्त तप्त रहता है। इसका ताप दिन में 640°F तथा रात में—300°F पाया जाता है। इस ग्रह पर वायुमंडल का अभाव पाया जाता है। इस ग्रह का गुरुत्व अत्यल्प है। इसका परिभ्रमण काल 59 दिन है।

मंगल—यह लाल रंग का ग्रह है। इस ग्रह को युद्ध का जनक माना जाता है। यह सूर्य से 2432 लाख किमी. दूर है। स्थल भाग की संरचना में शिलाएँ प्रधान हैं तथा इसके तल पर पठार, घाटी, पर्वत, सागर पाये जाते हैं। वायुमण्डल का आवरण पतला है इसलिये सूर्य को ऊर्जा अत्यधिक पड़ती है। इस ग्रह पर ताप भी तीव्र पाया जाता है। इस ग्रह पर जीवन की सम्भावना कम पायी जाती है।

वृहस्पति—यह ग्रह अत्यन्त विशाल है, इतना कि इसमें 1300 पृथ्वी के आकार के ग्रह समा जायें। यह ग्रह पृथ्वी से 128000 किमी. की दूरी पर है। इस ग्रह पर भी वायुमंडल का आवरण पाया जाता है। वायुमंडल में अमोनिया, मीथेन गैस पायी जाती है। मंडल पर पीला, नीला तथा भूरा वलय पाया जाता है। इस ग्रह पर जीवन की सम्भावना पायी जाती है।

शनि—यह ग्रह श्याम रंग का है। यह मंद प्रकाश में भ्रमण करता है तथा इसमें 7 वलय पाये जाते हैं। यह ग्रह सूर्य से 14400 लाख किमी. दूर है तथा पृथ्वी से 449600 किमी.। शनि वलय में जल, बर्फ आदि का सम्मिश्रण पाया जाता है। शनि का घनत्व जल के घनत्व का 7/10 है। सारणी में शनि वलय सम्बन्धी आँकड़े दिये गये हैं—

सारणी—3

शनि वलय का आकार

वलय	अर्द्धव्यास (दूरी (9·53889·4)	वास्तविक अर्द्धव्यास किमी०	चौड़ाई चाप	चौड़ाई किमी.
वाह्य वलय—1	20·14	139300		
			2·46	17100
अन्तर वलय—1	17·68	122200		
			0·73	5000
वलय—2-वाह्य	16·95	117200	4·04	27900
	12·91	89300		
			2·49	17300
वलय–3-वाह्य	10·42	72000		
शनि का विषुवतीय अर्द्धव्यास	8·72	60300		

वारुणी—यह ग्रह पृथ्वी से 3·2 अरब किमी. दूर है तथा इसका परिभ्रमण काल 42 वर्ष है।

वरुण—यह नोले हरे रंग का ग्रह है। यह सूर्य से 4·8 किमो. दूर है।

यम—यह पोले रंग का ग्रह है। यह ठोस ग्रह है। इसका परिभ्रमण काल 247 वर्ष माना जाता है।

लघु ग्रह (तारागुच्छ)—तारागुच्छ पृथ्वी से 2000,000,00 किमी. दूर है। यह 200 लघु ग्रहों का समूह है।

उल्का—उल्का सौर मंडल में परिभ्रमण करने वाले पदार्थ हैं। उल्का में 84% कोन्ड्रूल पाया जाता है जिसमें ओलावीन, पायरोक्सान तथा धात्वोय निकेल तथा लौह पाया जाता है।

अन्य ग्रहों को संरचना भी शिलाओं से हुई है। सारणो 4 में प्रमुख ग्रहों को संरचना दो गई है।

सारणी–4

ग्रहों की संरचना

[कोजलोवास्क्या (Kozlovaskaya) से साभार]

ग्रह	लौह मात्रा. में % धात्वीय निकेल लौह	 % लौह निकेल सिलिकेट	धात्वीय मात्रा में % धात्वीय निकेल लौह	 % लौह तत्व
बुध	∽60	∽70	∽60	54—64
शुक्र	∽24	— 30	0—24	27—40
पृथ्वी	—	∽30	0—8	25—30
चन्द्रमा	∽0	∽0	∽0	∽25
मंगल	1—8	1—10	1—6	∽30

ब्रह्माण्ड सिकुड़ कर एक नक्षत्र बन जाएगा | संकलित |

विश्वविख्यात ब्रिटिश वैज्ञानिक तथा रेडियो-ज्योतिर्विद् सर बर्नार्ड लावेल ने ब्रह्माण्ड तथा ग्रह-नक्षत्रों की उत्पत्ति, विकास एवं विनाश के संबंध में एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन कर दुनिया भर के वैज्ञानिकों में भारी हलचल मचा दी है। सर बर्नार्ड लावेल ब्रिटेन की सुप्रसिद्ध वेधशाला जोडरेल बैंक के निदेशक हैं। इस वेधशाला में एक बहुत शक्तिशाली व संसार का सबसे बड़ा रेडियो-टेलिस्कोप (दूरवीक्षण यंत्र) लगा हुआ है जिसकी सहायता से अन्तरिक्ष की गहराई व दूरी की छानबीन नये सिरे से करके सर बर्नार्ड लावेल निम्न निष्कर्ष पर पहुँचे हैं :—

मौलिक द्रव्य के जिस विराट गोले या अंडे में अरबों वर्ष पहले भीषण विस्फोट होने से हमारी पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों, उप-ग्रहों, नक्षत्रों, नीहारिकाओं, आकाशगंगाओं आदि की उत्पत्ति हुई, उसका आकार आज की तुलना में बहुत छोटा था। किन्तु इन गोले में जो द्रव्य भरा हुआ था वह बहुत घनीभूत तथा वजनदार था।

सर बर्नार्ड लावेल ने हिसाब लगाया है कि सृष्टि के आदिकाल में सारा ब्रह्माण्ड एक स्थान पर सिमटा हुआ था। वजन जानने के लिए आपको संख्या दस को संख्या दस से ही छियालीस बार गुणा करना होगा और तब टनों में आप उसका वजन निकाल सकेंगे।

न्यु जर्सी (अमेरिका) में स्थित वेल प्रयोगशाला के यंत्रों द्वारा लगभग दश वर्ष पूर्व एक ऐसी ध्वनि सुनी गयी थी जो वैज्ञानिकों की अटकल के अनुसार ब्रह्माण्ड के उस छोर से निकली थी। (शर्त यह है कि ब्रह्माण्ड को अनन्त न माना जाय) सर बर्नार्ड लावेल ने अनुमान लगाया है कि यह ध्वनि सृष्टि के आदिकाल में उत्पन्न हुई थी, जब मूलभूत सामूहिक द्रव्य में महाभयंकर विस्फोट आज से लगभग दस अरब वर्ष पूर्व हुआ था। लावेल का कहना है कि इस बात की पुष्टि अभी हाल में छोड़े गये राकेटों तथा बहुत ऊँचाई पर उड़ने वाले गुब्बारों से हो गयी है।

सर बर्नार्ड लावेल ने यह भी कहा है कि आदि काल में समस्त ब्रह्माण्ड इतना घनीभूत था कि उसकी तुलना आज के एक न्यूट्रान नक्षत्र से की जा सकती है। न्यूट्रान नक्षत्र आकार में बहुत छोटे किन्तु वजन में बहुत भारी होते हैं। अब तक जितने नक्षत्रों का पता लगाया जा चुका है उनकी संख्या अरबों से खरबों तक पहुँच गयी है। हमारा सूर्य भी एक 'मंझले' कद का नक्षत्र है। 'बेटलगीज' नामक नक्षत्र तो हमारे सूर्य से कई लाख गुना बड़ा है। सर एडवर्ड लावेल का कहना है कि एक अवस्था विशेष में द्रव्य इतना घनीभूत हो सकता है कि मुट्ठी भर द्रव्य का वजन कई करोड़ टन तक पहुँच जाय।

सर बर्नार्ड लावेल ने कहा है कि हमारे विश्व के बाहरी भाग में जो आकाशगंगाएँ पहले बड़ी तेजी से हमारी आकाशगंगा से दूर हटती जा रही थीं, अब इनके हटने की गति दिन पर दिन धीमी पड़ती जा रही है। अतएव यह संभव है कि यह गति धीमी पड़ते-पड़ते बिलकुल बंद हो जाय, और तब ब्रह्माण्ड फैलने के बजाय सिकुड़ने लगे और सिकुड़ते-सिकुड़ते पुनः एक गोले का रूप धारण कर ले।

अभी हाल में सोवियत वैज्ञानिकों ने ब्रह्माण्ड में दृश्य द्रव्यमान के अतिरिक्त अदृश्य द्रव्यमान की उपस्थिति की घोषणा की है। उनके अनुसार ब्रह्माण्ड में आसानी से देखे न जा सकने वाले बहुत से धुंधले पिण्ड मौजूद हैं और शायद इन्हीं पिण्डों से ब्रह्माण्ड के अब तक अदृश्य द्रव्यमान की रचना होती है।

ब्रह्माण्ड फैलता जा रहा है, सिद्धांत की पुष्टि भी हो चुकी है। लेकिन यदि सोवियत वैज्ञानिकों की खोज को ध्यान में रखते हुए हम ब्रह्माण्ड के अदृश्य द्रव्यमान को भी इस हिसाब में जोड़ लें तो ब्रह्माण्ड पदार्थ का औसत घनत्व इतना अधिक हो जायगा कि वह क्रान्तिक मूल्य से भी अधिक हो सकता है। ऐसी स्थिति में गुरुत्व बल कभी भी ब्रह्माण्ड के फैलाव को रोक देगा और उसके बाद सारा ब्रह्माण्ड फैलाने के बजाय सिकुड़ता जायगा और एक अति सघन पदार्थ में परिणत हो जायगा। इसके बाद एक नया महाविस्फोट होगा और एक बार फिर नए सिरे से ब्रह्माण्ड फैलने लगेगा।

अन्तरातारकीय अन्तरिक्ष में खोजे गये अणुओं की सूची

हाइड्राक्सिल	OH
अमोनिया	NH_3
फार्मेल्डिहाइड	$HCHO$
कार्बन मोनो आक्साइड	CO
हाइड्रोजन	H_2
हाइड्रोजन सायनाइड	HCN
सायनो एसिटिलीन	HC_3N
मेथिल एल्कोहल	CH_3OH
फार्मिक एसिड	$HCOOH$
सिलिकन मोनो आक्साइड	SiO
एसिटो नाइट्राइल	CH_3CN
कार्बोनिल सल्फाइड	OCS
आइसोसायनिक एसिड	$HNCO$
मेथिल एसिटिलीन	CH_3C_2H
हाइड्रोजन आइसो सायनाइड	HNC
फार्मामाइड	NH_2HCO
थायोल फार्मेल्डिहाइड	H_2CS
एसिटल्डिहाइड	CH_3CHO
फार्मलडिमीन	CH_2NH
हाइड्रोजन सल्फाइड	H_2S
कार्बन मोनो सल्फाइड	CS
सल्फर मोनो आक्साइड	SO

मैकनाली के अनुसार धूमकेतु में पाये गये अणु व मूल क निम्न हैं—

धूमकेतु का सिर	Na, O, C_2, C_3, CN, CH
धूमकेतु की पूँछ	$CN, N_2^+, CO^+, OH^+, CO_2^+$
उपसौर पर	Fe, Ni, Cr

कुछ तारे इतने बड़े हैं कि उनमें पृथ्वी जैसे हज़ारों ग्रह समा जायँ।

रॉकेट और उसकी कार्यविधि

| गोपाल सरन श्रीवास्तव |

आकाश में उड़ते हुये पक्षियों को देखकर मानव आदि काल से ही आकाश में उड़ने की कल्पना किया करता था। आज मानव की वह कल्पना वास्तविकता में परिवर्तित हो गयी है। आज मानव ने न केवल पृथ्वी के हजारों चक्कर लगा लिये हैं अपितु अब वह दूसरे ग्रहों पर भी पहुँच चुका है तथा अन्तरिक्ष में करोड़ों मील दूर अपने यान को पहुँचा चुका है। यह सब कुछ अनायास ही नहीं हो गया है, इस स्थिति में पहुँचने में लाखों वैज्ञानिकों, इंजीनियरों और विशेषज्ञों का अथक परिश्रम और बलिदान हुआ है।

प्राचीन काल से ही मानव आकाश में उड़ने के लिये तरह-तरह के प्रयास करता रहा है। कुछ भारतीय ग्रंथों में भी विमान तथा राकेट का उल्लेख मिलता है। ज्ञातव्य में एक प्राचीन चीनी पाण्डुलिपि में अग्निबाण की व्याख्या की गयी है, यह अग्नि बाण राकेट की ओर संकेत करता है। इन अग्निबाणों का प्रयोग चीनियों के द्वारा 1232 ई० में पियनकिंग की लड़ाई में मंगोलों के विरुद्ध किया गया था। ये अग्निबाण कार्यान्वित परास वृद्धि के लिये सजयनीय बाणों से सम्बद्ध रहते थे। कुछ लोगों का विचार है कि राकेट सिद्धान्त के विषय में ग्रीक की जानकारी चीन से अधिक पुरानी है क्योंकि ग्रीक के मारकर ग्रेकस ने अपनी लाइबर इगनियम में उड़ने वाली अग्नि का उल्लेख किया है। यह उड़ने वाली अग्नि भी आधुनिक राकेट की ओर संकेल करती है।

पहले राकेट का प्रयोग केवल अग्नेयास्त्र के रूप में ही होता था परन्तु सभ्यता के विकास के साथ-साथ 19वीं शताब्दी के अन्त तक मनुष्य राकेट के सही तथा उचित दिशा में परास के साथ-साथ अन्य दिशाओं में उपयोग जैसे पृथ्वी के आयन-मंडल के अध्ययन आदि के विषय में भी समझने लगा। वे अपने इस उद्देश्य में अब तक बहुत अधिक सफलता प्राप्त कर चुके हैं।

राकेट प्रणोदन के मूल सिद्धान्त का प्रतिपादन करने में रूस के वैज्ञानिक श्री जियोल्कोवस्की (1903) और श्री अलैक्जेंडर शक्सोम की कल्पना और उनका कार्य अनमोल है। और भी बहुत से वैज्ञानिक जैसे श्री एच० ओवर्थ; मेक्स वैलियर, फ्रिट्ज वानोपेल तथा इयूगेन सेंगर आदि ने राकेटों के विकास में बहुत सहयोग दिया है। फ्रांस के वैज्ञानिक श्री राबर्ट एसनोल्स पेल्टियर ने भी राकेटों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के महान वैज्ञानिक डा० आर० एस० गोडार्ड ही पहले वैज्ञानिक थे जिन्होंने उपग्रह भेजने तथा अन्तरिक्ष यात्रा के लिये सर्वप्रथम जेट प्रणोदन का सफलतापूर्वक प्रयोग किया। जेट प्रणोदन के क्षेत्र में डा० गोडार्ड का कार्य अद्वितीय है। यद्यपि जेट प्रणोदन का विचार वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में 18वीं शताब्दी के मध्य में ही आ गया था तथापि डा० गोडार्ड ही वह वैज्ञानिक हैं जिनका कि इस विषय में शोध पत्र (1919) में स्मिथसोनियन इंस्टीच्यूशन में सम्मुख आया। इन्होंने ही सर्वप्रथम द्रव

प्रणोदक राकेट को सफलतापूर्वक चलाया (1936) तथा उन्होंने द्रव प्रणोदक राकेटों पर बहुत से प्रयोग किये।

प्रथम विश्व युद्ध में राकेट का प्रयोग केवल छोटे आक्रामक हथियार के रूप में हुआ था जबकि दूसरे विश्व युद्ध में यह एक प्रमुख हथियार के रूप में सामने आ गया। दूसरे विश्व युद्ध में संयुक्त राज्य अमेरिका ने बहुत से राकेट अस्त्रों का विकास किया। दूसरे विश्व युद्ध से जेट प्रणोदन का भी विकास हुआ। इसी समय संयुक्त राज्य अमेरिका में 'जेट असिस्ट टेक आफ' (JATO) का भी विकास किया गया।

उस समय से अब तक JATO नली रैम जेट इंजनों में प्रयोग में लायी जाती है। द्वितीय विश्वयुद्ध में इस नली का निर्माण ऐरोजेट जनरल कार्पोरेशन, अजौसा, कैलिफोर्निया द्वारा किया गया। उस समय से अब तक इनका प्रयोग निर्दिष्ट मिसाइल के रैम जेट इंजन को प्रक्षेपित करने में किया जाता है।

दूसरे विश्वयुद्ध से अब तक राकेट के नियंत्रण आदि क्षेत्र में बहुत विकास हो चुका है। राकेटों का नियंत्रण अब मानव निर्मित मस्तिष्क कम्प्यूटरों के द्वारा किया जाता है। अब मानव के चरण चन्द्रमा पर पड़ चुके हैं तथा दूसरे ग्रहों पर भी राकेट पहुँच गये हैं। अब उसने पायनियर राकेट द्वारा इस ब्रह्माण्ड से भी बाहर जाने की अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी है।

राकेट की कार्यविधि—दिवाली की आतिशबाजी में हम लोग कई प्रकार के बाण छुड़ाते हैं। ये बाण प्रज्वलित करने के कुछ ही सेकेंडों के बाद सनसनाते हुए सैकड़ों फुट ऊपर चले जाते हैं। दिवाली के ये बाण, आजकल के चन्द्रमा तथा मंगल आदि ग्रहों पर जाने वाले आधुनिक राकेटों के छोटे अनुरूप हैं। दोनों ही का (बाण वाले राकेटों का और चन्द्रमा आदि ग्रहों पर जाने वाले राकेटों का) मूल सिद्धान्न एक ही है। ये जिस सिद्धान्त पर कार्य करते हैं उसे 'न्यूटन का गति का तीसरा नियम' कहते हैं। इस नियम का प्रतिपादन विश्व के महान वैज्ञानिक सर आइजक न्यूटन ने किया था। इस नियम के अनुसार प्रत्येक क्रिया के बराबर तथा विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होती है। उदाहरण के लिये जब एक सैनिक बन्दूक दागता है तो उसे बन्दूक के द्वारा कंधे पर धक्का लगता है। बन्दूक के कारण जो बल सैनिक के कंधे पर लगता है वह न्यूटन के इसी गति के तीसरे नियम के कारण लगता है। बन्दूक के अन्दर बारूद के बिस्फोट से उत्पन्न गैसें गोली को गति के साथ बन्दूक की नली से बाहर निकालकर मीलों दूर पहुँचा देती हैं। इस प्रकार गोली के बाहर जाने की क्रिया के कारण जितना बल गैसों के द्वारा गोली पर लगता है उतना ही बल न्यूटन के गति के तीसरे नियम से प्रतिक्रिया के कारण बन्दूक पर लगता है जिसे कि सैनिक अपने कंधे पर अनुभव करता है। इसमें गोली का आगे जाना क्रिया है तथा बन्दूक का पीछे हटना प्रतिक्रिया है।

जब हम हवा से भरे एक फूले हुए रबर के गुब्बारे का मुँह खोलकर उसे स्वतंत्र रूप से वायु में छोड़ देते हैं तो उसके मुँह से तेजी से हवा निकलने लगती है तथा हवा के निकलने की क्रिया के विपरीत प्रतिक्रिया के कारण गुब्बारा हवा निकलने की दिशा के विपरीत दिशा में तेजी से चलने लगता है। राकेट में ईंधन के जलने में गैसें उत्पन्न होती हैं तथा ये गैसें तेजी से राकेट के पिछले भाग से बाहर निकलती हैं। इन गैसों के बाहर निकलने की क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिक्रिया के कारण राकेट आगे की ओर बढ़ने लगता है। आजकल के आधुनिकतम राकेटों में सैटर्न-5 से टनों ईंधन गर्म गैसों के रूप में प्रति सेकण्ड बाहर निकलता है तथा इससे लाखों किलोग्राम की प्रणोद प्रतिक्रिया स्वरूप राकेट को मिलती है। इस प्रणोद से राकेट आगे बढ़ता हुआ कुछ ही मिनटों में 40,000
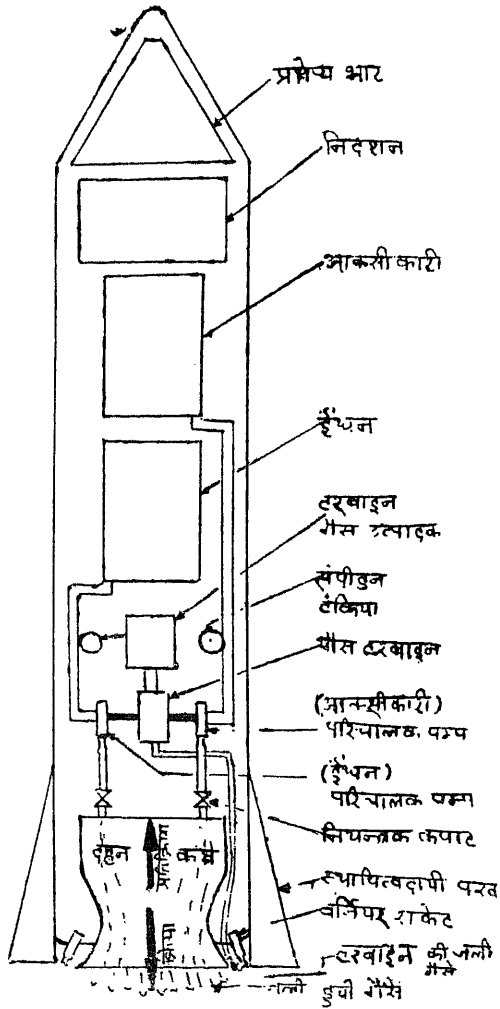
चित्र : राकेट की संरचना

किलोमीटर प्रति घंटे की चाल प्राप्त करके पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति से बाहर निकल जाता है।

विस्तृत रूप में राकेट इंजन अवयवों का एक समूह है जिसमें कि उसके आगे चलने के लिए उत्पन्न प्रणोद, आगे बढ़ने वाले वाहन के अन्दर से पदार्थ के बाहर निकलने के कारण होती है। ये पदार्थ निम्नलिखित हो सकते हैं।

1. बहुत अधिक गति के आवेशित कण।

2. परमाणु भट्टी द्वारा उत्पन्न उष्मा से समुचित द्रव द्वारा उत्पन्न गैसों की धारा।

3. आक्सीकारी तथा ईंधन के उचित अनुपात में दहन कक्ष में दहन द्वारा उत्पन्न गैसें।

अब तक के ज्ञात इंजनों में राकेट ही एक ऐसा इंजन है जिसे बाहरी वायु की आवश्यकता नहीं होती है। यह ईंधन तथा ईंधन को जलाने का पदार्थ जिसे आक्सीकारी कहते हैं, अपने साथ ही ले जाता है। इसीलिये यह किसी भी ऊँचाई तक या निर्वात में भी चल सकता है। राकेट मुख्यत: दो प्रकार के होते हैं—

1. ठोस प्रणोदक राकेट
2. द्रव प्रणोदक राकेट

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है इन राकेटों को जिनमें ठोस प्रणोदकों का प्रयोग होता है ठोस प्रणोदक राकेट कहते हैं। ठोस प्रणोदकों का प्रयोग अपेक्षाकृत सरल होता है। ठोस प्रणोदक राकेटों में मुख्यत: एक दहन कक्ष होता है। इसमें ईंधन आक्सीकारी के द्वारा जलता है। ईंधन के जलने से अधिक दाब व ताप पर गर्म गैसें तैयार होती हैं तथा ये गैसें दहन कक्ष से लगी हुयी नोज़ल के द्वारा तेजी से बाहर निकलती हैं। नोजल एक विशेष प्रकार की नली होती है जिसकी अभिकल्पना इस प्रकार की जाती है कि उन दाब व ताप की गैसों को तेजी से बाहर जाने में इसकी बनावट सहायक होती है। ठोस प्रणोदक राकेट इंजनों में ईंधन को जलाने के लिए सामान्यत: स्फुलिंग प्लग का प्रयोग होता है तथा एक बार राकेट का जलना प्रारम्भ होकर राकेट उस समय तक जलता रहता है जब तक कि राकेट का समस्त ईंधन समाप्त नहीं हो जाता। इस प्रकार ठोस राकेटों में रोकेट के ईंधन का जलना कठिनाई से नियंत्रित होता है। एक बार जलना प्रारम्भ होने के बाद इसे बीच में (संपूर्ण रूप से जलने के पहले) जलना रोकना संभव नहीं है।

आजकल सामान्यत: द्रव प्रणोदक राकेटों का ही प्रयोग होता है। ये वे राकेट हैं जिनमें तरल प्रणोदकों का प्रयोग होता है। इस प्रकार के राकेटों

की संरचना ठोस प्रणोदक राकेटों से काफी जटिल होती है। इन राकेटों में मुख्यत: दो टंकियां होती हैं। इन टंकियों में आक्सीकारी तथा ईंधन भरा होता है। चित्र में निदेशन के नीचे आक्सीकारी तथा ईंधन की टंकियां दिखलाई गयी हैं। इन टंकियों में द्रव आक्सीकारी तथा द्रव ईंधन होता है। टंकियों में आक्सीकारी तथा ईंधन नलियों के द्वारा परिचालक पम्प तथा नियंत्रक कपाट से होता हुआ दहन कक्ष में पहुँचता है। दहन कक्ष में ईंधन आक्सीकारी के द्वारा जलकर उच्च ताप व दाब पर गैसें उत्पन्न करता है। ये गैसें राकेट की नोज़ल से तेजी से बाहर निकल कर राकेट को अन्तरिक्ष में जाने के लिए पर्याप्त बल प्रदान करती हैं। टंकियों से आक्सीकारी तथा ईंधन को दहन कक्ष में पहुँचाने वाले परिचालक पंप एक गैस टरबाइन में चलते हैं। गैस टरबाइन गैस जनरेटर के द्वारा उत्पन्न गैसों से चलता है। गैस टरबाइन के द्वारा निकाली गयी गैसें निकास नली के द्वारा बाहर चली जाती हैं। राकेट के निचले सिरे में कुछ छोटे-२ राकेट होते हैं। राकेटों के बहुत से लाभ भी हैं। द्रव प्रणोदक राकेटों में ईंधन के दहन को नियंत्रित करके राकेट पर लगने वाले बल को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इसके दहन को आवश्यकता पड़ने पर बन्द किया जा सकता है तथा पुन: आवश्यकता पड़ने पर आरम्भ किया जा सकता है। द्रव पारिचालित राकेट ठोस परिचालक राकेटों की तुलना में अधिक शक्तिशाली बनाये जा सकते हैं। सामान्यत: द्रव ईंधन ठोस ईंधनों की तुलना में सस्ते पड़ते हैं।

भारत में थुम्बा राकेट केन्द्र के विकास तथा आर्यभट की सफलता को देखते हुए अब वह दिन दूर नहीं लगता है जब भारतीय राकेट भी पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से बाहर निकल कर दूसरे ग्रहों का चक्कर लगाने लगेंगे।

राकेट इंजन के प्रणोदक—राकेट प्रणोदक वे ठोस या तरल पदार्थ हैं, जो कि राकेटों में उच्च दाब व ताप की गैसें उत्पन्न करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं। मुख्यतय: प्रणोदक के दो भाग होते हैं—
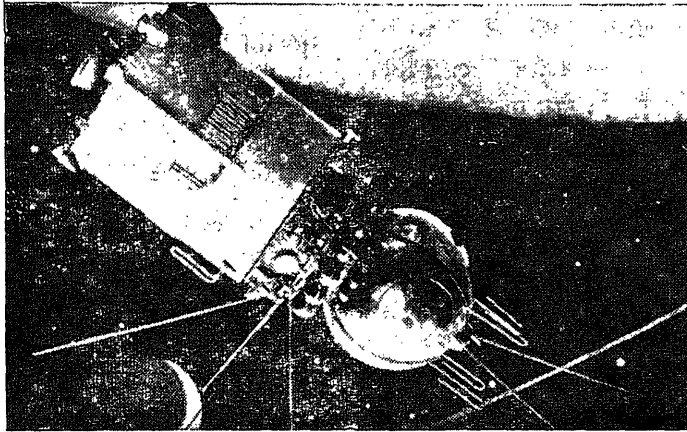
चित्र—अन्तरिक्ष यान जिसमें प्रथम मानव ने उड़ान भरी

ये राकेट प्रमुख राकेट के चलने की दिशा को नियंत्रित करते हैं, उन्हें वर्नियर राकेट कहते हैं। यद्यपि द्रव प्रणोदक राकेटों की संरचना ठोस प्रणोदक राकेटों से जटिल है तथापि द्रव प्रणोदक

1. प्रणोदक का वह भाग जो कि जलता है।
2. प्रणोदक का वह भाग जो जलने में सहायता प्रदान करता है।

प्रणोदक का वह भाग जो कि जलने में सहायता

प्रदान करता है आक्सीकारी कहलाता है तथा प्रणोदक का वह भाग जो कि आक्सीकारी के द्वारा जलता है ईंधन कहलाता है। ईंधन के आक्सीकारी के द्वारा जलने के लिए उपयुक्त वातावरण भिन्न-भिन्न प्रकार से उत्पन्न किया जाता है। कुछ अवस्थाओं में ईंधन तथा आक्सीकारी के नियंत्रित मिश्रण के जलने के लिए स्फुलिंग प्लग लगा होता है जबकि कुछ अन्य अवस्थाओं में ईंधन तथा आक्सीकारी का चयन इस प्रकार किया जाता है कि जब उनके नियंत्रित मिश्रण को दहन कक्ष में मिलाया जाता है तो वे स्वत: ही जलने लगते हैं। अत: इस प्रकार के चयन में स्फुलिंग प्लग की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

कुछ प्रणोदक ऐसे होते हैं जिनमें आक्सीकारी स्वयं ही ईंधन का एक हिस्सा होता है अत: हम कह सकते हैं कि ईंधन को जलाने के लिए किसी बाहरी आक्सीकारी की आवश्यकता नहीं पड़ती है। स प्रकार के प्रणोदकों को एकल-प्रणोदक कहते हैं। तरल प्रणोदकों में केवल उन्हीं प्रणोदकों को एकल प्रणोदक कहा जा सकता है जो कि सामान्यत: स्थायी रहते हैं परन्तु दहन कक्ष के वातावरण में जलने लगते हैं। साधारणतया ये दोनों बातें विरोधाभासी हैं इसीलिये ये द्रव एकल प्रणोदकों के उपयोग को रोकती हैं। ठोस एकल प्रणोदक के लिए दहन अवस्था को दबाव बढ़ा कर अथवा आरंभिक अवस्था में ही चिनगारी उत्पन्न करके उत्पन्न किया जाता है।

दूसरे प्रकार के प्रणोदक वे हैं जिनमें आक्सीकारी तथा ईंधन अलग-अलग टंकियों में भरे होते हैं तथा ईंधन दहन कक्ष में आक्सीकारी के द्वारा जलता है। बहुत से आक्सीकारी जैसे पोटेशियम-क्लोरेट, नाइट्रिक एसिड, परक्लोरिक एसिड, नाइट्रोजन पेंटा आक्साइड, हाइड्रोजन पर आक्साइड, ऑक्सीजन आदि ज्ञात हैं परन्तु कुछ प्रयोगात्मक कठिनाइयों के कारण केवल आक्सीजन, नाइट्रिक एसिड और हाइड्रोजन पर आक्साइड आदि आक्सीकारी ही साधारणतया उपयोग में जाते हैं। ऊपर के तीनों आक्सीकारियों के साथ प्रयोग में आने वाले ईंधनों की सूची नीचे दी जा रही है—

1. **आक्सीकारी**—द्रव ऑक्सीजन

ईंधन—1. द्रव हाइड्रोजन
2. गैसोलीन
3. एथिल एल्कोहल
4. मेथिल एल्कोहल
5. हाइड्रोजन
9. द्रव अमोनिया

2. **आक्सीकारी**—नाइट्रिक एसिड

ईंधन—1. एनिलिन
2. फरफ्यूरोइल एल्कोहल
3. मोनो एथिल अमीन

3. **आक्सीकारी**—हाइड्रोजन पर आक्साइड

ईंधन—1. एथिल एल्कोहल
2. मेथिल एल्कोहल
3. हाइड्रोजन

राकेट इंजन के लाभ—1. राकेट इंजन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके लिये वायुमंडलीय वायु की आवश्यकता नहीं पड़ती।

2. प्रणोदक राकेटों में उत्पन्न प्रणोद पर प्रयोगात्मक रूप से इसके चारों ओर के वातावरण तथा उड़ान-चाल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

3. क्योंकि राकेट के चलने के लिये वायुमंडलीय वायु की आवश्यकता नहीं पड़ती है, अत: इसके प्रक्षेपण की ऊँचाई असीमित है। इसीलिये इसकी कार्यविधि पर साधारण वातावरण का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। राकेट निर्वात में भी चल सकता है।

4. राकेट इंजन के द्वारा प्राप्त त्वरण अन्य सभी अन्तरिक्ष वाहनों से अधिक है।

5. अब तक के ज्ञात साधनों में राकेट ही एक ऐसा साधन है जो रासायनिक ताप ऊर्जा को

सीधे, तीव्र गति की गैस की धारा के द्वारा गतिज ऊर्जा में परिवर्तित कर देता है।

राकेट इंजन की हानियाँ—प्रणोदक राकेट प्रणाली को कम उच्च ताप सहन करने योग्य होना चाहिए इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि सामान्यतः राकेट से निकलने वाली गैसों का दाब 300 psi से 850 psi के बीच तथा ताप 4000°C से 6400°C तकहोता है। न्यूनतम भार और तीव्र गति से चलने वाले राकेटों के विकास में बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। राकेट को तीव्र ताप के लिये विशेष रूप से अभिकल्पित होना चाहिये।

धीमी गति पर राकेट की दक्षता बहुत कम होती है। तीव्र गति पर इसकी दक्षता संतोषजनक पायी गयी है।

ठोस प्रणोदक राकेटों में ईंधन के दहन का नियंत्रण एक कठिन कार्य है। ठोस प्रणोदक राकेटों में रखी वस्तु पर लगने वाले गुरुत्वीय त्वरण g का मान सामान्य से 5 से 10 गुना तक होता है। सामान्य मानव इसको सहन करने के लिये अभ्यस्त नहीं है। अतः ठोस राकेट मानव को अन्तरिक्ष में ले जाने के लिये प्रयोग में नहीं लाये जा सकते। द्रव प्रणोदक राकेट में उत्पन्न g का मान 0·5 से 5 गुना तक होता है अतः ये सरलतापूर्वक मानव को अन्तरिक्ष में ले जाने के लिये अभिकम्पित किये जा सकते है। यही राकेट अन्तरिक्ष में सूक्ष्म यन्त्रों तथा संचार उपग्रह आदि भेजने में प्रयोग में आते हैं।

●●

[पृष्ट 27 का शेषांष]

कारण डा० गोडार्ड अपनी इच्छानुकूल राकेट न विकसित कर सके लेकिन उनके बाद ऐसे राकेट विकसित किए और मानव की उड़ान का सपना साकार हो गया जब 21 जुलाई 1969 को आर्मस्ट्रांग अपोलो 11 द्वारा चाँद की सतह पर उतरे।

आज भी राकेट अन्तरिक्ष यानों तथा उपग्रहों के प्रक्षेपण हेतु प्रयुक्त होते हैं। अतः डा० राबर्ट गोडार्ड की दूरदर्शिता एवं सूझ-बूझ के कारण हम उनके आभारी हैं। राकेटों के विकास के बाद न मालूम कितने उपग्रह और अन्तरिक्ष यान अन्तरिक्ष में प्रक्षिप्त किए गए और अभी कितने भेजे जायेंगे। चाँद के अलावा अण्य ग्रहों के ओर भी यान भेजे गए हैं। अभी गत 22 अगस्त को अमेरिकी उपग्रह 'वाइकिंग-1' मंगल पर जीवन की गुत्थी सुलझाने हेतु मंगल की ओर भेजा गया है।

●●

अन्तरिक्ष यात्रियों का प्रशिक्षण तथा उनकी वेषभूषा

गणेशदत्त पाण्डे

अन्तरिक्ष में उड़ान भरने से पूर्व यात्रियों को कठोर प्रशिक्षण देना आवश्यक होता है। स्पुतनिक में भेजे गए प्राणियों जैसे कुत्ता और बंदर पर किये गए प्रयोगों से ज्ञात हुआ कि स्तनो प्राणो सदैव स्वस्थ दशा में रहते हैं, यदि उन्हें उचित संरक्षण प्रदान किया जाय। प्रायोगिक परिणामों ने इन प्राणियों में मानसिक व कायिको सम्बन्धो अनुकूलन को पैदा करने में अनवरत प्रशिक्षणों को उपयोगिता को भो उचित ठहराया है। निम्नलिखित प्रयोग जो 'अपोलो' और 'मरकरी' योजनाओं के अन्तरिक्ष यात्रियों पर किये गए थे, इस प्रशिक्षण शृंखला के कुछ साधारण प्रयोगों में से हैं।

(1) **तुंगता परीक्षण**—इस परोक्षण के दौरान अन्तरिक्ष यात्री को एक 'तुंगता कक्ष' में प्रेशर सूट पहना कर धीरे-धीरे या एक्सप्लोसिव डिकम्प्रेशन विधि से ऊपर ले जाते हैं। अन्तरिक्ष यात्री की प्रतिक्रिया, हृदय गति, रक्तचाप, इत्यादि मापे जाते हैं और इस बीच अन्तरिक्ष यात्री बाहर से टेलिफोन सम्बन्ध द्वारा जुड़ा रहता है जिससे वह बाहर से दिये गए आदेशों के पालन में समर्थ हो और नियंत्रण स्थापित कर सके।

(2) **गुरुत्व परीक्षण**—एक पर्यावरणीय कारक जो कठिनता से ही अन्तरिक्षयान में प्रतिस्थापित किया जा सकता है वह है पृथ्वी का साधारण गुरुत्व बल—वह बल जो हमारे भार के लिए उत्तरदायी है। अन्तरिक्ष यात्रा में यान और यात्री, दोनों ही भारहीन हो जाते हैं, और संहति व भार में कोई भेद नहीं रह जाता। हम जानते हैं कि संहति किसो भौतिक वस्तु को अन्तर्जात प्रकृति है और भार बाहरी कारकों पर निर्भर करता है।

भारहीनता की अवस्था एक समस्या पैदा करती है जब अन्तरिक्ष यात्रो गुरुत्व क्षेत्र को छोड़ते हैं। भारहोनता को अवस्था उस समय पैदा होतो है जब पृथ्वो का गुरुत्व बल अन्तरिक्ष यान और उसके यात्रियों पर समान रूप से कार्य करता है। इस अवस्था को 'फ्री फॉल' कहते हैं।

गुरुत्व परीक्षणों के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है—

1. भारहीनता की अवस्था का अन्तरिक्ष-यात्रियों पर प्रभाव ज्ञात करना। इस प्रयोग में उनके यान को नियंत्रित करने को क्षमता का तथा विन्यस्त अवस्था में रहने का अभ्यास कराया जाता है।

2. भारहीनता किस प्रकार सामान्य अवस्था को प्रभावित करती है।

3. गुरुत्व परीक्षण के दौरान यात्री को एक अपकेन्द्री मशीन के गण्डोला में बैठाकर उच्च त्वरण की अवस्था में लाते हैं। साथ में एक वायुयान में क्षणिक अवस्था के फ्री फॉल का भी अभ्यास कराते हैं।

मानव शरीर में विशिष्ट गुरुत्व ग्राहक केन्द्र होते हैं जिन्हें 'ग्रेवी सेण्टर' कहते हैं। कर्ण का ओटोलिथ इसी श्रेणी में आता है। इसके साथ सम्पूर्ण शरीर पर त्वचा में दाब ग्राहक केन्द्र फैले होते हैं (20/वर्ग सेमी०)। ये ग्राहक कार्य में एक्स-टेरोसेप्टिव होते हैं क्योंकि वे बाहरो वातावरण

की संवेदनाओं को ग्रहण करते हैं। साथ ही ये प्रोप्रियोसेप्टिव भी होते हैं क्योंकि वे त्वचा में तनाव पेशियों व कनेक्टिव ऊतकों की दशाओं का मान कराते हैं। ये ग्राहक शरीर की गति नियंत्रण करने में महत्वपूर्ण हैं।

प्रयोगों से यह पाया गया है कि गुरुत्वरहित अवस्था में ग्राहकों का गुरुत्व ग्राहक कार्य समाप्त-प्राय हो जाता है परन्तु प्रोपिओसेप्टिव कार्य नहीं समाप्त होता। प्रथम ग्राहक की अनुपस्थिति में उसका कार्य नेत्रों द्वारा किया जाता है। यह पाया गया है कि गुरुत्व मुक्त अवस्था में नेत्रही ऐसे अंग हैं जो मनुष्य को उसकी अवस्था का भान कराते हैं। प्रयोगों में यह भी पाया गया कि अधिकतर अन्तरिक्ष यात्रियों ने अन्तरिक्ष की आवश्यकताओं के अनुसार अपने को शीघ्र ही ढाल लिया।
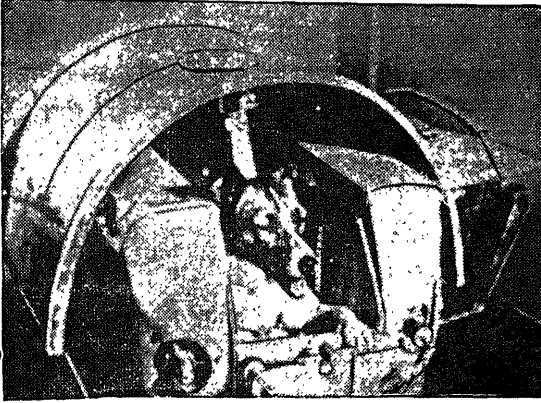
चित्र—सोवियत रूस द्वारा प्रक्षेपित प्रथम जीव लाइक

कुछ गुरुत्व ग्राहक जो उदर में पाये जाते हैं उनका तंत्रिका तंत्र से प्रतिवर्ती सम्बन्ध होता है। यह ग्राहक रक्त परिसंचरण, पाचन आदि को नियंत्रित करते हैं। भारहीनता की दशा में यह पाया गया है कि असामान्य उत्तेजना नहीं पैदा होती बल्कि कुछ संक्रमण के उपरान्त ये ग्राहक एक नई साम्यावस्था में पहुँच जाते हैं।

ताप परीक्षण—इस परीक्षण के दौरान यात्रियों को अधिक ताप के कम कालान्तरों व सामान्य ताप के कम कालान्तरों से गुजारा जाता है और बीच-बीच में प्रशीतित परिधानों का प्रशीतन बंद कर दिया जाता है।

साम्यावस्था परीक्षण—अन्तरिक्ष यात्री को एक साथ दो अक्षों पर घूर्णन करने वाली कुर्सी पर बैठाते हैं और घूर्णन कराकर उसकी प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

शीत दबाव परीक्षण—शरीर के भागों को ठंडे जल में डुबाकर रक्त परिसंचरण पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

संवेदन नाशक परीक्षण—यदि यात्री को लम्बे समयान्तरालों के लिए समस्त वातावरण से पृथक कर दें तो विचित्र गड़बड़ियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अन्तरिक्ष यात्रियों को इस परीक्षण के दौरान एक कोमल बिस्तर पर एक अंधेरे, ध्वनि निरोधक और गन्धरहित कमरे में, जिसकी दीवारें चिकनी व आकृति रहित होती हैं, बन्द कर देते हैं। इस बात का अध्ययन करते हैं कि यात्री किसी मिथ्या भ्रम या मानसिक और शारीरिक परेशानी का अनुभव करते हैं या नहीं।

दाब परिवर्तन परीक्षण—वायुमण्डल मानव शरीर पर इतना दबाव डालता है जिससे शरीर के तरल उबलते नहीं। मानव शरीर का जल वाष्प दबाव लगभग 0·47 मिमी. पारे के स्तम्भ के बराबर होता है। जैसे ही दबाव इस सीमा से नीचे गिरता है शारीरिक तरल उबल जाते हैं। यह दाब 190 किमी० की ऊँचाई पर पाया जाता है। यह तुंगता वायुमण्डल का द्वितीय कार्यिक स्तर या अन्तरिक्ष तुल्य स्तर कहलाता है।

दबाव का अचानक पतन अन्तरिक्ष यात्री के जीवन को खतरा पैदा कर सकता है। यह अगले पृष्ठ पर दिए गए चित्र से स्पष्ट है।

लगभग 4 किमी. की उँचाई पर रक्त में सामान्य से कम ऑक्सीजन पाई जाती है। लगभग 6·5-8
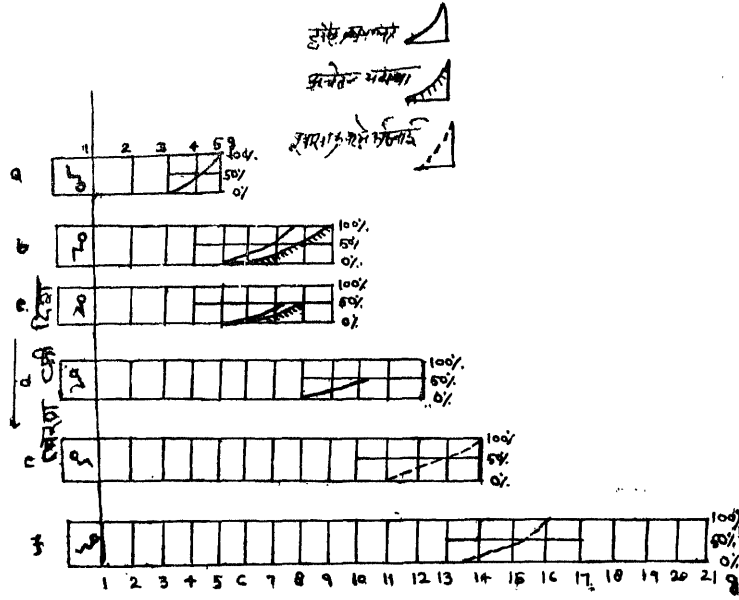
चित्र—प्रशिक्षण के दौरान अन्तरिक्ष यात्रियों की विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों का अध्ययन

किमी० की ऊँचाई पर **डिस्बेरिज़्म** हो जाता है, जिसमें साँस लेने में कठिनाई होती है। मामूली काम से अधिक थकान आती है और इस अवस्था में विचित्र मानसिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जैसे याददाश्त की आंशिक समाप्ति और **सुरत्तीयता**।

निम्न प्रयोग अन्तरिक्ष यात्रियों को शून्याकाश की अवस्थाओं से परिचित कराने के लिए आवश्यक हैं। इन प्रयोगों के अतिरिक्त अन्य अभ्यास जो विभिन्न उपकरणों की देख-रेख व परिचालन से सम्बन्धित होते हैं अन्तरिक्ष प्रशिक्षण केन्द्रों जैसे ह्यूस्टन, केपकेनेडी इत्यादि में दिए जाते हैं। इन प्रशिक्षणों के दौरान यात्रियों को अन्तरिक्ष में चलने, गड्ढे खोदने, लेसर का उपयोग, दूरदर्शन प्रसारण इत्यादि का अभ्यास कराया जाता है। वर्तमान समय में अन्तरिक्ष में 2 यानों का मिलन व पृथक्करण भी इस प्रशिक्षण के अन्तर्गत आता है। अन्य परीक्षणों के दौरान यात्रियों को नक्षत्र, विज्ञान, व भूभौतिकी के प्रयोगों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

परिधान—अन्तरिक्ष यात्रियों का परिधान पृथ्वी पर पहने जाने वाले कपड़ों की तरह साधारण नहीं होता। उनके परिधान जिन्हें 'अन्तरिक्ष सूट' कहते हैं इस प्रकार बने होते हैं कि शरीर को हानिकारक ब्रह्माण्ड किरणों और न्यून दाब से होने वाले दुष्प्रभावों से बचा सकें। यद्यपि इन परिधानों की रचना इस बात पर निर्भर करती है कि उसे कहां पर प्रयोग में लाना है फिर भी कुछ बातों का होना अनिवार्य है।

(1) परिधान में एक दाब व्यवस्था होनी चाहिए जो शारीरिक तरलों को उबलने से बचा सके। साथ ही साथ इसे लोचदार होना चाहिए जिससे अन्य कामों को करने में रुकावट न पड़े।

(2) श्वसन के लिए ऑक्सीजन गैस का उपलब्ध होना अनिवार्य है और निष्कासित गैसों के शोधन या अपवहन की व्यवस्था भी अनिवार्य है। भारहीनता की दशा में एक बड़ा बेलन काम में लाया जा सकता है परन्तु गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में इसकी माप ज्यादा बढ़ाई जा सकती है।
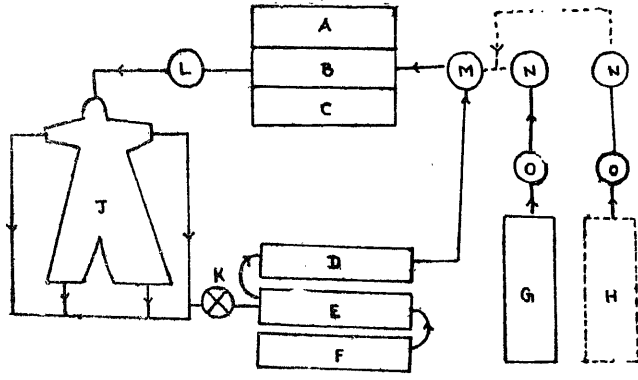
चित्र—सूट—A प्रशीतक खंड, B. ताप नियंत्रक खंड, C. हीटिंग यूनिट, D. अप्रयुक्त गैस रोधकE. CO_2 रोधक, F. जलाधिक्य हटाने का खंड, G. O_2 भंडारण व्यवस्था, H. हालियमभंडारण व्यवस्था J. अन्तरिक्ष सूट, K. गैस परिसंचारक पम्प, L. उच्च दाब मुक्तक वाल्व, M. पुनर्संचारित गैस इन्जेक्टर, N. मैनुअल, बहाव और रुकाव, वाल्व O. दाब अपचायक वाल्व ।

(3) एक प्रकार की ताप नियंत्रक व्यवस्था का होना अतिआवश्यक है। यदि परिधान पहनने वाला यात्री छाया में खड़ा है तो गर्मी पैदा करना अनिवार्य है। इसके लिये ऊर्जा, सोलर बैटरियों से प्राप्त की जाती है। एक विशेष अवस्था में ताप घटाने का भी प्रबन्ध होना चाहिये। एक वर्तमान अन्तरिक्ष परिधान को साधारण तौर पर एक संवाह्य वातानुकूलित, मानव रूपी कमरा कहा जा सकता है।

●●

मेजर यूरी गगारीन-प्रथम मानव अन्तरिक्ष यात्री
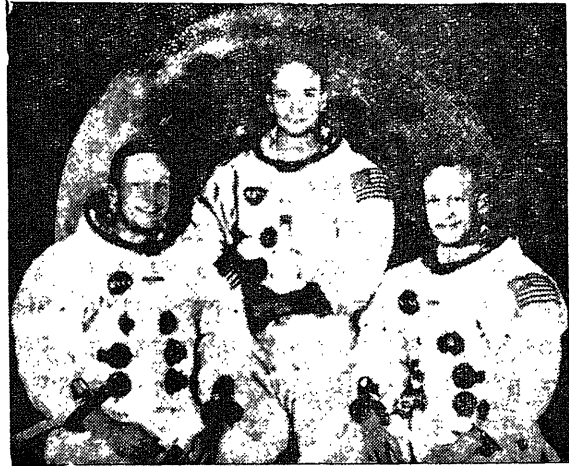
चन्द्रमा पर उतरने वाले अपोलो-11 के यात्री-आर्म्सट्रांग, कोलिन्स तथा अल्ड्रिन

झलकियाँ

निकोलस कोपरनिकस का जन्म एक निर्धन परिवार में हुआ था और यदि उसके पिता की मृत्यु न हो जाती तो वह बेकरी का काम करता। पिता की मृत्यु के बाद उसके चाचा ने, जो बिशप भी थे, उन्हें शिक्षा दिलाई और कोपरनिकस ने ओषधि में उपाधि प्राप्त की। परन्तु न तो उन्होंने ओषधि और न दर्शन को अपने जीवन का ध्येय बनाया बल्कि उन्होंने खगोलशास्त्र को अपनाया और रोम विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुए जिसे बाद में त्याग दिया। कोपरनिकस आगे चलकर एक महान खगोलशास्त्री बना।

× × ×

कोपरनिकस की भाँति जान केप्लर भी एक महान खगोलशास्त्री था जिसका गणित का ज्ञान अभूतपूर्व था। केप्लर अत्यन्त निर्धन परिवार में पैदा हुआ था। जब केप्लर टाइको के साथ काम कर रहा था तो टाइको ही उसकी आर्थिक सहायता करता था। केप्लर के दो नियम प्रकाशित हो चुके थे। तीसरा और अत्यन्त महत्वपूर्ण नियम ग्रहों की सूर्य से दूरी और उनकी परिक्रमा से सम्बन्धित था। यह नियम केप्लर ने असीम निर्धनता की स्थिति में प्रतिपादित किया था। महाराजा रुडोल्फ, जो उनके संरक्षक थे, की मृत्यु के समय केप्लर को कई महीनों का वेतन नहीं मिला था और उसे पैसों की अत्यधिक आवश्यकता थी। इसी समय उसकी पत्नी और एक बच्चे की भी मृत्यु हो गई। केप्लर प्राग से लिंज़ आ गये और यहाँ पर ज्योतिषी का काम करके जीविकोपार्जन आरम्भ किया। ज्योतिष से केप्लर को घृणा थी। ऐसी परिस्थिति में भी केप्लर ने तीसरे नियम का प्रतिपादन किया।

× × ×

अपोलो-सोयूज़ संयुक्त उड़ान में अमरीकी यात्री डोनाल्ड के स्लेटन, जिन्हें प्यार से उनके मित्र 'डी के' कहते हैं, इसके पूर्व कभी अन्तरिक्ष उड़ान में नहीं गये थे। वैसे मरकरी परियोजना के समय से ही वह उड़ान सम्बन्धी विभिन्न समस्याओं से भलीभाँति परिचित थे। उन्हें अन्तरिक्ष में जाने का अवसर पहले ही मिल जाता पर प्रशिक्षण के बाद एक बार उन्हें अयोग्य ठहरा दिया गया था क्योंकि इलेक्ट्रोकार्डियोग्राम लिये जाने पर उनके हृदय में अनियमितता पाई गई थी। बाद में उस अनियमितता को गम्भीर नहीं माना गया और उन्हें महत्वपूर्ण परियोजना में अपना योगदान देने का शुभ अवसर मिल ही गया।

× × ×

भारत के महान वैज्ञानिक चन्द्रशेखर वेंकट रमन का कहना था कि भारत में विज्ञान की प्रगति सरल वातावरणयुक्त सादी इमारत वाली प्रयोगशालाओं में ही हो सकती है, ताजमहल सी बनी प्रयोगशालाओं में नहीं। इस विचारधारा की पुष्टि हुई आर्यभट के सफल प्रक्षेपण में। इस परियोजना का समस्त कार्य साधारण कुटीरों में हुआ। यह 'कुटीर' केवल पच्चीस पैसे प्रति वर्ग फुट मासिक किराये पर लिये गये थे जिन्हें प्रयोगशालाओं में बदला गया था। जब पीनिया में एक भूकेन्द्र स्थापित करना अतिआवश्यक हो गया तो परियोजना के तीन शौचालयों में से एक को भूकेन्द्र में बदल दिया गया था।

मानव व अन्तरिक्ष के बीच सिमटती दूरियाँ

शुकदेव प्रसाद

रात्रि के निविड़ अंधकार में अनन्त आकाश में टिमटिमाते अनगिनत तारों को देखकर क्या आपके मन में इनके बारे में जानने की इच्छा न होती होगी ? जरूर आप इनके बारे में सोचते होंगे तथा तरह-तरह की कल्पनाएँ करते होंगे और ठीक इसी प्रकार की भावनाएँ उस आदिम मानव के भी मस्तिष्क में कौंध गई होंगी जो कि आज से करोड़ों वर्ष पूर्व इस धरा पर अवतीर्ण हुआ था।

जन्तु जगत का सबसे विकसित एवं बुद्धिमान प्राणी मानव है और इसके पीछे दो प्रमुख कारण हैं—मानव की कल्पना शक्ति और जिज्ञासा की भावना। मानव मन में उसकी बुद्धि, विवेक और ज्ञान के आधार पर अज्ञान के बारे में तरह-तरह की कल्पनाएँ घर करती रहती हैं और जिज्ञासा वश मानव उसको साकार करने में तल्लीन हो जाता है। आज चारों ओर जो विज्ञान के विकास की झलक दिखाई पड़ती है उसके पीछे भी मानव की जिज्ञासा एवं लगन का ही परिणाम निहित है।

दूर गगन में उड़ते हुए पक्षियों को देखकर मानव ने भी इसी प्रकार उड़कर इस अनन्त आकाश के रहस्य को जानना चाहा। यह कहते हुए हमें गौरव का अनुभव हो रहा है कि आज मानव की उड़ान सम्बन्धी चिरस्थायी कल्पना साकार हो गई है और आज धरती का कोई कोना, आकाश का कोई छोर नहीं बचा है जहाँ मानव न पहुँच सका हो। यही नहीं, मानव ने अन्तरिक्ष में भी कई उड़ानें भरी हैं और वह पौराणिक गाथाओं तथा बाल कथाओं में वर्णित चन्दा मामा की सैर कर आया है। लेकिन मानव की इस उपलब्धि के पीछे कितने लोगों की कल्पनाएँ, कितने वैज्ञानिक के अथक प्रयास छिपे हुए हैं, वह भी एक लम्बी दास्तान है जो कि अपने में युगों की लम्बी कहानी संजोए पड़ी है। आइए ! अब मानव मस्तिष्क के कल्पना-लोक तथा आकाश-मार्ग की उड़ान की कहानी पर दृष्टिपात करें।

पौराणिक कथाएँ

प्राचीन हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में कुछ ऐसी कथाएँ वर्णित हैं जिनसे उस समय मानव के उड़ान संबंधी क्रिया-कलापों का रहस्योद्घाटन होता है। उन कथाओं के बारे में सुनकर कभी तो सहसा विश्वास ही नहीं होता कि क्या पहाड़ों और जंगलों के बीच नंग-धड़ंग घूमने वाला आदि मानव आज के अन्तरिक्ष युग के राकेटों की कल्पना भी कर सकता था, उड़ानों की बात तो दरकिनार रही। लेकिन इस कथाओं के प्रमाणस्वरूप कुछ अकाट्य तर्कों के आगे हमें निरुत्तरित हो जाना पड़ता है।

हिन्दू धर्म के दो महान एवं प्राचीन ग्रन्थों — रामायण एवं महाभारत में कुछ ऐसे प्रसंगों पर हम विचार करेंगे जहाँ कि वायुयानों की चर्चा की गई है।

रामायण के विख्यात गिद्ध जटायु के बड़े भाई सम्पाती के बारे में एक ऐसी ही कथा है—एक बार सूर्य के पास पहुँचने की बात सम्पाती ने मन में सोची। वह उड़ा तो जरूर लेकिन अधिक ऊँचाई पर जाने पर अधिक गर्मी के कारण उसके पंख

झुलस गए और वह गिर पड़ा। सागरतट के किनारे उसने एक गुफा में अपना शेष जीवन बिताया।

इसी प्रकार रावण द्वारा सीताजी को रथ में बैठाकर आकाश मार्ग से उड़ने की चर्चा तुलसीदास के 'मानस' में मिलती है—

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हांकि न जाइ॥
(अरण्यकांड, मानस)

रावण के रथ को आकाश-मार्ग द्वारा ले जाने के प्रमाण स्वरूप हम मानस का ही एक और उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिसमें जटायु ने भगवान राम को रावण द्वारा सीता सहित आकाश मार्ग से ले जाने के बारे में बताया था—

गगन पंथ देखी मैं जाता।
पर बस परी बहुत बिलपाता॥
(क्रिष्किन्ध्या कांड)

इनके अतिरिक्त मानस में ही अन्य स्थलों पर जैसे हनुमान द्वारा लक्ष्मण के लिए हिमालय से संजीवनी बूटी लाने, लंका विजय के पश्चात् अपने दल सहित राम को पुष्पक विमान से लौटाने का वर्णन है—

अतिसय प्रीति देखि रघुराई।
लीन्हें सकल बिमान चढ़ाई॥
(लंकाकाण्ड, मानस)

× × ×

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा।
दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
(लंकाकाण्ड, मानस)

× × ×

आवत देहि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि विमान॥
(उत्तर काण्ड, मानस)

महाभारत में निवात-कवच युद्ध में इन्द्र के 'दिव्य रथ' का वर्णन, जिस पर चढ़कर अर्जुन रण का नेतृत्व करते हैं, इस प्रकार है—

अंतर्भूमौ निनति पुनरुर्ध्वं प्रतिष्ठते
पुनस्तिर्यक् प्रत्यात्याशु, पुनरप्सु निमज्जति
— महाभारत : निवात कवच युद्ध
(पर्व 174, पृ० 25, 1435)

ऋग्वेद में भी नाव की आकृति वाले ऐसे तीन यानों का उल्लेख आया है जो बादलों के ऊपर नियन्त्रित वेग से उड़ते थे। यथा—

अनेनो वो मरुतो यामो
अस्तु अनश्वः चित्यः अजत्यरथीः
अनवसो अनभीशू रजस्तूः
विरोदसी पत्थायति साधन्
(ऋग्वेद 6-66-7)

और

तिस्त्रः क्षपः त्रिरहातिव्रजद्धिः
नासत्याभुज्युंअह् युः पतंगैः
तमूह् युः नैमिरात्मन्वतीभिः
अंतरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः
—(ऋग्वेद 1-116-3)

धार्मिक ग्रन्थों में देवताओं के सवारियों का वर्णन मिलता है जिन पर वे आसीन होकर यत्र-तत्र विचरण किया करते थे। नारद जी हमेशा भ्रमण किया करते थे। भगवान विष्णु अपने आसन गरुण पक्षी पर सवार होकर यात्रा करते थे। इन यात्रा प्रसंगों के अतिरिक्त कई स्थलों पर तो आकाश से पुष्प वर्षा का वर्णन पौराणिक कथाओं में मिलता है। क्या ये कथाएँ उस समय वायुयानों के प्रचलन की ओर हमारा ध्यान इंगित नहीं करतीं ?

भले ही आज वेदों और पुराणों में वर्णित त्रिपुर विमान, सुन्दर विमान, शकुन विमान, पुष्पक विमान आदि की रूपरेखा के बारे में हम कुछ नहीं जानते हैं लेकिन प्राचीन मनीषियों की कल्पना शक्ति एवं उनके द्वारा वर्णित इन तथा-कथित वायुयानों की कार्यप्रणाली की दाद देनी ही पड़ती है। सूक्ष्म अध्ययन करने पर आज के यानों

चित्र—
रोजियर और
उसका गुब्बारा
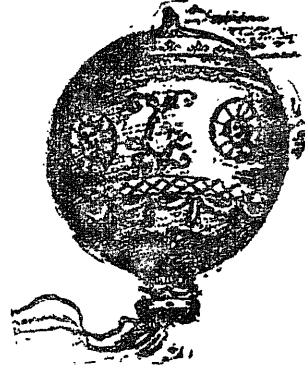
तथा इन गाथाओं में वर्णित यानों में कुछ ताल मेल अवश्य बैठता है जो कि निःसंस्देह विकसित तकनीकी का द्योतक है। ऐसी ही एक कथा का हम वर्णन करेंगे।

त्रिशंकु या त्रिपदीय राकेट ?

प्रचलित किंवदंतियों में त्रिशंकु की भी कथा आती है जो कि जनश्रुति के आधार पर आज भी प्रचलित है। कथा कुछ इस प्रकार की है। त्रिशंकु की प्रार्थना से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने मंत्र के बल पर उन्हें सदेह स्वर्ग भेजना चाहा लेकिन देवताओं ने उधर से अपनी शक्ति का प्रयोग कर वापस लौटाने का प्रयास किया। लेकिन दोनों शक्तियों के प्रभाव के कारण त्रिशंकु अधर में ही लटके रह गए। उल्टा लटकने के कारण उनके मुँह से लार टपक पड़ी जिसके कारण कर्मनाशा नदी निकल पड़ी जो आज भी वाराणसी के पास विद्यमान है।

एक लम्बे अर्से बाद राकेट युग की शुरुआत हुई। राकेट की बनावट को देखते हुए लगता है कि प्राचीन और अर्वाचीन विचारों में कुछ साम्य है। त्रिशंकु (त्रि+शंकु) यानी तीन शंकुओं द्वारा निर्मित वस्तु। आजकल के प्रचलित त्रिपदीय राकेट भी तीन शंकुओं के आकार से बने होते हैं। अतः इस विश्लेषण से ऐसा आभास होता है कि कहीं त्रिशंकु और त्रिपदीय राकेट एक दूसरे के पर्याय तो नहीं ? नामकरण के अलावा अब जरा इसके सैद्धान्तिक पक्ष पर गौर करें।

यह तो हम जानते हैं कि यदि किसी पिंड को 8 किलोमीटर प्रति सेकेन्ड के वेग से प्रक्षेपित करके उसे कुछ ऊंचाई के बाद एक निर्दिष्ट कोण से मोड़ दें तो वह पृथ्वी की परिक्रमा करने लगेगा। इसी सिद्धान्त के आधार पर आज उपग्रह कक्षा में स्थापित किए जाते हैं। इस मुद्दे से भी त्रिशंकु की बात कुछ हद तक सिद्धान्तः आज के राकेट से मिलती है। रही बात कर्मनाशा की तो वह भी ठीक है। आज के राकेटों में तरल ईंधनों के साथ भारी पानी का प्रयोग भी होता है। क्या आज का भारी पानी और त्रिशंकु के मुँह से निकले पानी में साम्य नहीं हो सकता है ? निश्चित रूप से तो हम नहीं कह सकते लेकिन फिर भी इससे एक बात का अन्दाज अवश्य लगता है। वह यह कि हो सकता है हमारे पूर्वजों ने कोई उपग्रह कक्षा में स्थापित करना चाहा हो और उसी स्मृति को जीवंत बनाये रखने के लिए त्रिशंकु की कथा रच डाला हो जो आज भी किंवदन्ती के रूप में प्रचलित है।

चूँकि कथाओं में वर्णित वायुयानों की रचना आदि आज के प्रचलित यानों से काफी मिलती

जुलती है अतः निश्चित रूप से इन तथ्यों को नकारा नहीं जा सकता है कि प्राचीन काल में मानव आज की तरह उड़ानें भरा करता था। कई अनुसंधानकर्त्ताओं ने इनके पक्ष में अपनी जोरदार दलीलें पेश की हैं। उदाहरण के रूप में हम कुछ अनुसंधानकर्त्ताओं के विचार प्रस्तुत करेंगे।

प्राचीन मिस्री विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के विशेषज्ञ डा० खलील, मसीहा ने एक प्राचीन उड़न खटोले का नमूना खोज निकाला है जो ईसा पूर्व 300 वर्ष का है। यह शक्ल में अमेरिकी यातायात विमान 'हरकुलीज' से एकदम मिलता जुलता है। इसके पंखों की बनावट ऐसी है कि ग्लाइडर की भांति हवा में तैर सके। डा० मसीहा ने कई तर्क प्रस्तुत करके यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि प्राचीन मिस्रवासियों ने ऐसा यान अवश्य विकसित किया था।

डा० मसीहा की बातों का समर्थन करते हुए स्वीवर्ट वैवेल ने भी कई तर्क प्रस्तुत किए हैं। पुष्पक विमान का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि उसकी शक्ल मोर की सी थी और वह अग्नि तथा वायु के जोर से चलता था जो कि वैज्ञानिक रूप से सत्य सिद्ध होते हैं। स्वीवर्ट वैवेल लिखते हैं कि क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि आज भी लंका यानी श्री लंका के पहाड़ों की चोटियों पर चौरस मैदान पाये जाते हैं, शायद ये पुराने जमाने के विमानों के हवाई अड्डे रहे हों।

ऐतिहासिक कथाएँ

प्रसिद्ध फारसी कवि फिरदौसी ने अपने काव्य में शाह कैकाउस के हवा में उड़ने का वर्णन किया है। फिरदौसी ने लिखा है कि शाह ने इसके लिए लकड़ी का एक ढांचा तैयार करवाया था जिसके दो सिरों पर दो उकाब पक्षी बँधे रहते थे। उनके ठीक ऊपर लकड़ी की पट्टियों पर मांस के टुकड़े रखे रहते थे। उकाब पक्षी अपनी भूख मिटाने के लिए मांस की ओर उड़ते तो इस कारण लकड़ी का ढांचा भी ऊपर उठ जाता था साथ ही शाह कैकाउस भी।

इसी से मिलती जुलती एक और यूनानी कथा कारीगर दि दालस तथा उसके बेटे इकारस के बारे में है। क्रीट द्वीप निवासी कारीगर दिदालस से बादशाह मिनास ने एक भूलभुलैया बनवायी थी जिसमें दो यूनानी कैद थे। दिदालस ने उन कैदियों को भागने का रास्ता बता दिया। इस नाते बादशाह ने नाराज होकर दिदालस और उसके बेटे इकारस को इसी भूल भुलैया में ऐसी जगह कैद कर दिया जिसका रास्ता दिदालस भी न जानता था।

अतः उस भूलभुलैया से निकल भागने के लिए दोनों ने पंख तैयार करके अपने शरीर पर मोम से चिपका लिया और क्रीट द्वीप से बाहर उड़ चले। वह स्वयं तो उड़कर सिसली द्वीप तक जा पहुँचा लेकिन इकारस के पंख गर्मी से मोम पिघलने के कारण बिखर गए और वह समुद्र में गिर पड़ा।

बेबीलोन की कथा के अनुसार इटाना नामक गड़रिया चील पर सवार होकर उड़ा था।

अन्तरिक्ष यात्रा सम्बंधी विज्ञान कथाएँ

जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया ग्रहों-उपग्रहों के बारे में जानने की मानव की जिज्ञासा बढ़ती गई। अन्तरिक्ष में स्थित जिन ग्रह-उपग्रहों से मानव का निकट संबंध रहा है वह है चन्द्रमा। मानव इसको देवता समझ कर इसकी पूजा भी करता चला आ रहा है। अन्य लोकों की यात्रा के अतिरिक्त सर्वप्रथम चन्द्र-यात्रा के बारे में विज्ञान गल्प (साइंस फिक्शन) लिखे गए हैं।

चन्द्र-यात्रा संबंधी सबसे पहली पुस्तक दूसरी शताब्दी (सन् 160) में योरोप में स्थित सीरिया निवासी लूसियन ने 'सत्य इतिहास' नामक पुस्तक लिखी। पुस्तक का नायक हवा में पक्षी की तरह उड़ने लगता है तथा सात दिन और सात रात की निरन्तर उड़ान के बाद एक चमकते हुए आकाश द्वीप की धरती पर उतर जाता है। यह आकाश-द्वीप चन्द्रमा है।

इस पुस्तक की रचना के बाद लगभग डेढ़ हजार वर्ष तक योरोप में ग्रह-उपग्रहों के संबंध में अन्य किसी पुस्तक की रचना नहीं हुई।

गैलीलियो और उसका दूरदर्शी

इसी बीच सन् 1609 में गैलीलियो एक शक्तिशाली दूरदर्शी बनायी और उसकी मदद से आकाश के बीच झाँक कर देखा। लेकिन यह क्या ? गैलीलियो को अपनी आँखों पर विश्वास न आया, लगा कि उसकी आँखें उसे धोखा दे रही हैं। क्योंकि उसने चन्द्रमा का जो रूप देखा वह कथाओं में वर्णित चन्द्रमा से सर्वथा भिन्न था। उसकी आँखों के आगे तो एक ऐसा चन्द्रमा था जिसमें पहाड़ थे, चट्टानें थीं और खुरदरी सतह !

गैलीलियो के बाद

गैलीलियो की मृत्यु के 25 साल बाद केपलर ने चन्द्रयात्रा संबंधी दो पुस्तकें लिखीं। पहली पुस्तक में उन्होंने विभिन्न ग्रहों के परिचालन का निर्देश करने वाले नियमों का प्रतिपादन किया था तथा दूसरी पुस्तक 'सोम-नियम' में दूरदर्शी से प्राप्त जानकारियों का उल्लेख किया था। केपलर की पुस्तक के चार साल बाद विशप गाडविन की पुस्तक 'चन्द्रमा में मनुष्य' प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में ही सर्वप्रथम बताया गया कि पृथ्वी को छोड़ने के बाद मनुष्य भारहीन हो जाता है और चन्द्रमा का गुरुत्व पृथ्वी से कम है।

विशप गोडविन की पुस्तक प्रकाशित होने के लगभग 28 वर्ष बाद सन् 1656 में सिरानों-द-बर्जेराक का उपन्यास 'सूरज और चाँद की यात्रा' प्रकाशित हुई। बर्जेराक की कल्पना गोडविन की भी कल्पना से ऊँची थी। उसने सबसे पहली बार राकेट द्वारा चन्द्रयात्रा का वर्णन किया है। इसके पहले किसी ने भी अन्तरिक्ष यात्रा में राकेटों के उपयोग पर प्रकाश नहीं डाला था।

सन् 1865 में सुप्रसिद्ध उपन्यासकार जूल्स बर्न का एक उपन्यास 'पृथ्वी से चन्द्रमा' प्रकाशित हुआ। अन्य पिछले उपन्यासकारों की अपेक्षा जूल्स बने का यह उपन्यास काफी प्रचलित हुआ। आज भी विश्व-साहित्य में इसका विशिष्ट स्थान है।

बीसवीं शताब्दी में एच० जी० वेल्स ने 'चन्द्रमा पर सर्वप्रथम मनुष्य' की रचना की तथा अन्य कई पुस्तकें लिखीं। वेल्स के अतिरिक्त कई और लेखकों ने ऐसी विज्ञान कथाएँ लिखी हैं जिनमें आर्थर सी० क्लार्क, इसाक एसिमोव, रे बैडबरी, कांस्तानिन्तन त्सिओल्कोव्सकी आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

लेकिन कल्पना के अतिरिक्त मानव ने अन्य ग्रहों की ओर उड़ानें भरने की कोशिश भी की है और अब तो चाँद तक हो आया है। आइए हम इस कल्पना लोक को छोड़कर यथार्थ की दुनियाँ में चलें ओर देखें कि मानव ने कितनी लगन और प्रयास से अपने चिरस्थायी सपने को साकार किया है और अपनी मंजिल पार कर ली है।

मानव की हवाई उड़ानें : प्रारम्भ से अब तक

पक्षियों को देखकर मनुष्य को ईर्ष्या होती थी कि काश वह भी उनकी भाँति वायु में स्वच्छंदतापूर्वक उड़ पाता। इस कामना की सफल कल्पनाएँ तो वह अनेक प्रकार से करता रहता था लेकिन गुब्बारों की मदद से वह इसमें सफल हुआ।

गुब्बारों का प्रयोग

फ्रांस निवासी माँट गोल्फियर्स नामक दो भाइयों को सर्व प्रथम सफलतापूर्वक गुब्बारा उड़ाने का श्रेय प्राप्त है। नवम्बर 1781 में चिमनी से धुआँ ऊपर उठते देखकर उन्होंने विचार किया कि इसके बल से हल्की वस्तुएँ

चित्र—गोल्फियर बंधु और उनका गुब्बारा

ऊपर उठ सकती हैं। अतः उन्होंने पहले कागज का थैला बनाकर उसे ऊपर उठाए हुए आग के ऊपर रखा। उसमें गरम हवा भर जाने से वह ऊपर को उठ चला। इस आविष्कार की सूचना जनता में फैल गयी और 5 जून, 1783 को उन्होंने 105 फीट की परिधि के पतले कपड़े के गुब्बारे को भूसे की आग की गरम हवा से भरकर उड़ाने का सफल प्रदर्शन किया। यह गुब्बारा बहुत ऊपर तक पहुँच कर 2·5 किमी० की दूरी पर नीचे उतर आया।

इसके बाद चार्ल्स नामक व्यक्ति ने एक गुब्बारा बनाया जिसमें हाइड्रोजन भरने की व्यवस्था थी। यह एक घण्टा आकाश में उड़कर 15 मील दूर जाकर एक खेत में गिरा।

संसार का प्रथम उड़ाका: डि रोजियर

गुब्बारों में उस समय तक आदमी नहीं उड़ते थे। गोल्फियर बन्धुओं ने गुब्बारे में पशु उड़ाकर देखे थे। नवम्बर 1783 में फ्रांस निवासी डि रोजियर ने सर्वप्रथम आकाश में उड़ने का साहस किया। वे संसार के सर्वप्रथम उड़ाके थे। कुछ और लोगों ने भी इसमें रुचि दिखाई। इस क्षेत्र में प्रो० पिकार्ड का नाम उल्लेखनीय है। सन् 1933 में वे 15·2 किमी० की ऊँचाई तक उड़े थे। यह यात्रा उन्होंने हाइड्रोजन के गुब्बारे में बधे हुए गंडोला में की थी जो विशेष प्रकार की गोलाकार कोठरी थी।

डी लोम तथा हेनरी गिफर्ड: वायुयान के जनक

डि लोम तथा हेनरी गिफर्ड ने सन् 1852 में एक गुब्बारा बनाया जिसमें वाष्प इंजन लगा था। गिफर्ड का वाष्प इंजन युक्त गुब्बारा 9 किमी० प्रति घंटा चला। इस प्रकार वायुयान का जन्म हुआ।

सन् 1910 में वायुयान पर अटलांटिक महासागर को वेलमान ने पार किया। जर्मनी में काउण्ट जेपलिन ने अति उत्तम हवाई जहाज बनाया जिनके नाम पर ऐसे जहाज का नाम जेपलिन पड़ा। पहले इसमें हाइड्रोजन भरी जाती थी लेकिन बाद में हीलियम भरी जाने लगी।

वायुयानों के इतिहास में राइट बन्धुओं का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसके पूर्व जर्मनो निवासो लिलियन्थल ने आकाश में सफलतापूर्वक उड़ने का प्रयत्न किया था और वायुयान को

चित्र—राइट बंधु और उनका वायुयान

और यथार्थ रूप देने का प्रयत्न किया था।

प्रथम वैमानिक : भारतीय वैज्ञानिक शिवकर बापू जी तलपदे ?

राइट बन्धुओं से भी 8 वर्ष पूर्व आकाश में

विमान उड़ाने वाला वैज्ञानिक एक भारतीय था। इस आशय की कई सूचनाएँ समाचार पत्रों में कुछ अर्से पूर्व प्रकाशित हुई थीं। यह वैज्ञानिक बम्बई निवासी श्री शिवकर बापू जी तलपदे थे। श्री तलपदे जे. जे. स्कूल आफ आर्ट्स में अध्यापक थे। उन्हें वेदों का अच्छा ज्ञान था। वैदिक जानकारी के आधार पर उन्होंने 'मरुत्सखा' नामक विमान का निर्माण किया था। बम्बई आर्ट सोसाइटी के तत्वाधान में इसे बम्बई के टाउन हाल में प्रदर्शित किया गया था। कुछ लोगों के अनुसार यह विमान 1500 फीट की ऊँचाई तक उड़ा भी था (?) इस सम्बन्ध में शोध करने पर शायद इस तथ्य की स्थापना की जा सके कि प्रथम वैमानिक भारतीय ही था।

राकेट युग का शुभारम्भ

अन्तरिक्ष विज्ञान में हुए ढेर सारे आविष्कारों का श्रेय राकेटों को ही जाता है। सन् 1951 के मई मास की बात है। एक शाम को जर्मनी की राजधानो बर्लिन के एक लम्बे चौड़े हाल में बहुत से लोग बैठे हुए थे। लगभग प्रत्येक व्यक्ति जर्मन वैज्ञानिक हरमैन गेन्स विन्डेट की बात सुनकर उसे पागल समझ रहे थे कि भला वायु से भरी मशीनें वायु में कैसी उड़ सकती हैं। उड़ने वाली मशीन की उसकी योजना गैस से भरे एक थैले के रूप में थी। उसने जर्मन सरकार के सामने अपनी योजना प्रस्तुत की लेकिन योजना की असफलता के कारण सरकार ने उसे अस्वीकृत कर दिया।

हरमैन ने लोगों को बताया कि यह मशीन ठीक उसी प्रकार उड़ेगी जिस प्रकार पक्षी उड़ते हैं। साथ ही उसने अन्तरिक्ष यान से सम्बन्धित अन्य बातें यथा खाने-पीने की व्यवस्था, पोशाक और साँस लेने की व्यवस्था पर भी प्रकाश डाला। किसी को उसकी बातों पर विश्वास न हुआ। लेकिन वह अपने कार्य में जुटा रहा। सन् 1901 में उसने एक हेलीकाप्टर तैयार कर लिया लेकिन उसमें काफी सफलता न मिल पायी। उसका हेलीकाप्टर कुछ ही मिनट हवा में उड़ पाया।

जिस समय हरमैन अन्तरिक्षयान बनाने का प्रयत्न कर रहा था उसी समय रूस में भी एक व्यक्ति अन्तरिक्ष यात्रा के उपायों के बारे में सोच रहा था। उसका नाम कांस्तातिन त्सिओल्कोव्सकी था। इस व्यक्ति ने अन्तरिक्ष यान की पहली बार रूपरेखा प्रस्तुत की तथा राकेटों में तरल ईंधन, जो पेट्रोलियम से प्राप्त हो सकता था, प्रयोग करने का सुझाव दिया।

सन् 1898 में त्सिओल्कोव्सकी ने 'राकेट द्वारा ब्रह्मांड के अन्तरिक्ष की खोज' नामक पुस्तक लिखी। पुस्तक उसने में अन्तरिक्षयानों के निर्माण तथा अन्तरिक्ष यात्रियों की सुरक्षा के सम्बन्ध में सुझाव भी प्रस्तुत किए।

राकेट युग के प्रणेता राबर्ट गोडार्ड

इसी बीच 17 वर्षीय युवक राबर्ट गोडार्ड भी गैस भरे गुब्बारों का प्रयोग कर रहा था। सन् 1915 में उसने 'अत्यधिक ऊँचाई तक पहुँचने की विधि,' नामक एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी। इस पुस्तक में उसने अपनी राकेट और गुब्बारों सम्बन्धी खोजों का विवरण दिया।

राबर्ट गोडार्ड ने सबसे पहले अन्तरिक्षयान को अधिक से अधिक ऊँचाई तक ले जाने के लिए एक राकेट के ऊपर दो-तीन राकेटों को जोड़ने का सुझाव रखा ताकि जब पहला राकेट काम बन्द कर दे तो दूसरा तथा क्रमशः तीसरा अपना काम शुरू कर दे। इस प्रकार अन्तरिक्षयान को बहुत दूर तक फेंका जा सके और फिर धीरे-धीरे इतने शक्तिशाली राकेट का निर्माण हो जायगा कि अन्तरिक्ष यान को चन्द्रमा तक पहुँचाया जा सकेगा।

निश्चित ही डा० गोडार्ड के अनुसंधान अन्तरिक्ष यात्राओं में कामयाब हुए। असामयिक मृत्यु के

[शेष पृष्ठ 15 पर

अन्तरिक्ष यात्राओं के प्रणेता

राबर्ट एच० गोड़ार्ड-द्रव द्रवईंधन राकेट के प्रथम प्रक्षेपक
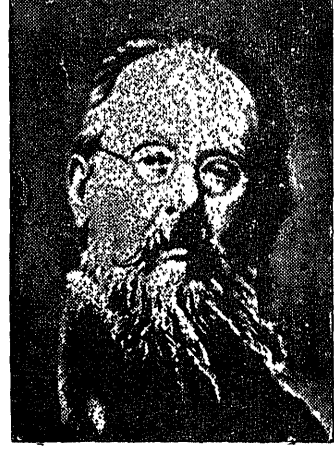
कान्सटेंटीन त्सियोल्कोस्की—आधुनिक राकेट विज्ञान के पिता

वेलेंटीना—प्रथम महिला अन्तरिक्ष यात्री

चन्द्रमा पर मानव की विजय

चैतन्य कुमार गहलौत

12 अप्रैल, 1961 का दिन, रेडियो, टेलीविजन पर एक अजीब सी खुशी की आवाज, लोगों के पैर उठे, कानों ने अपना पूरा ध्यान स्पीकरों की ओर दिया—पता चला, सोवियत रूस के ठंडे वातावरण में पैदा हुआ, धरती का एक लाल, विश्व का सर्वप्रथम मानव होने की पदवी जीत चुका है। वह कौन था? वह था मेजर यूरी गागरीन। उसने क्या किया? उसने अन्तरिक्ष की उड़ान करते हुए पृथ्वी की परिक्रमा की। यह मानव मात्र की प्रकृति पर एक अभूतपूर्व विजय थी। जिस पृथ्वी पर मानव जाति का विकास हुआ, वह पृथ्वी एक गेंद के समान, गागरीन के सामने थी, और वह ·उसके चारों ओर घूम चुका था और सकुशल लौट आया, इसी धरा पर। खोज का रास्ता मिला। उसे जानने का मौका मिला, जिससे सभी अनजान थे।

पर यह क्या? अभी इस बात को 8 ही वर्ष तो गुजरे थे कि फिर वैसी ही आवाज, वैसी ही उत्सुकता। पर परिणाम कई गुना बढ़ कर! 21 जुलाई, 1969 को मानव ने चन्द्रतल पर पाँव रख कर पौराणिक कथाओं के चन्द्रलोक की सैर को वास्तव में कर दिखाया, वहीं उसके देवता होने की कल्पना, जिसकी शीतलता कवियों की प्रेरणा थी, समाप्त हो गई। चन्द्रतल पर पाँव रखने वाला सर्वप्रथम मानव अमेरिका का नील आर्मस्ट्रांग था। उसके साथ उसका दूसरा साथी एडविन आल्ड्रिन भी चन्द्रमा पर उतरा। वे भी सकुशल पृथ्वी पर वापस आये। ये थीं मानव की अंतरिक्ष में दो अभूतपूर्व सफलताएँ। परन्तु इतने सबके बाद यह उत्सुकता होना आवश्यक है कि आखिर अन्तरिक्ष है क्या? अर्थात् हम अब इतनी बड़ी सफलताएँ जहाँ मिलीं वहाँ उस अन्तरिक्ष पर भी एक दृष्टि डाल लें।

अन्तरिक्ष एवं विश्व

अन्तरिक्ष—अन्तरिक्ष वह है जिसमें अन्य हर वस्तु है। अन्तरिक्ष वह छिद्र है, जिसमें हम सब रहते हैं— डा० जेम्स एलन

हम जिस वातावरण में रहते हैं, वह वायुमण्डल कहलाता है, जिसमें वायु की प्रधानता होती है पर जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे वायु कम होती जाती है और वायुमण्डल के बाहर लगभग 100-110 कि० मी० दूरी पर जहाँ वायु का बहुत कम प्रभाव होता है, अन्तरिक्ष प्रारम्भ होता है। साधारण आकाशीय पिण्डों के बीच पाया जाने वाला स्थान अन्तरिक्ष कहलाता है। वायुमण्डल में उड़ने के लिए हवाई-जहाज काम आते हैं जबकि अन्तरिक्ष में राकेट द्वारा उड़ान की जाती है क्योंकि हवाई जहाज की तरह राकेट वायुमण्डल और उसके दाब पर निर्भर नहीं है। वायुमण्डल में उड़ने पर घर्षण ताप उत्पन्न होता है। साथ ही वायुयान में ईंधन के जलने के लिए आक्सीजन की आवश्यकता होती है। इसलिये वायुयान अन्तरिक्ष में नहीं उड़ सकते, क्योंकि ये वायुमण्डल में हवा के दाब के सिद्धान्त पर उड़ान भरते हैं। चन्द्रमा के चारों ओर पृथ्वी जैसा कोई वायुमण्डल नहीं है। इसलिए चन्द्रमा से राकेट उड़ान भर सकते हैं, वायुयान नहीं।

विश्व—विश्व असीम है, इसकी सीमाएँ जानना कठिन है। भिन्न दिखलाई देने वाले आकाशीय पिण्ड विश्व के ही भाग हैं। इनके अतिरिक्त अनेक पिण्ड दिखलाई नहीं देते। वे भी विश्व के ही भाग हैं। अन्तरिक्ष में अत्यधिक रिक्तता है, क्योंकि अंतरिक्ष में द्रव्य की मात्रा बहुत ही कम है। वैज्ञानिक एडविन हबल के अनुसार अंतरिक्ष में द्रव्य का घनत्व 1×10^{-30} ग्राम/सेंमी०^{3} अर्थात् 0·000, 000, 000, 000, 000, 000, 000, 000, 000, 001 ग्राम/सेंमी०^{3} है। अनुमान से विश्व की वक्रता त्रिज्या 35 अरब प्रकाश वर्ष अर्थात् $3·4 \times 10^{23}$ किमी० आँकी गई है। वे पदार्थ जो भिन्न-भिन्न पिण्डों, गैसों और धूल के कणों के रूप में मिलते हैं, विश्व का साकार रूप प्रस्तुत करते हैं। क्या यही विश्व की सीमा है ? यह आज तक एक समस्या बनी हुई है। विश्व या ब्रह्माण्ड में द्रव्य के विशालतम पुंज को आकाश-गंगा कहते हैं। इनकी विशेषता यह होती है कि ये एक-दूसरे से दूर भागती नजर आती हैं व जितनी आपस में दूर होती जाती हैं, उनकी भागने की गति उतनी ही तेज होती जाती है। सरल गणना के आधार पर प्रति दस लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर लगभग 160 किमी/से० गति बढ़ जाती है। इस क्रम के अनुसार दो अरब प्रकाश वर्ष की दूरी की आकाश-गंगायें तो हमें कभी नजर भी नहीं आ सकतीं क्योंकि वे प्रकाश की गति से दूर भाग रही हैं जिससे उनका प्रकाश हम तक नहीं पहुँच पाता। आइंस्टाइन द्वारा प्रतिपादित सापेक्षवाद के सिद्धान्तों के अनुसार 'यद्यपि विश्व का बराबर प्रसार हो रहा है, फिर भी वह अनन्त नहीं है, क्योंकि उसकी सीमाएँ आंकी जा सकती हैं।' परन्तु विश्व के विस्तार में करोड़ों आकाश गंगाएँ समाई हुई हैं अतः असीम नहीं तो फिर भी असीम-सा अवश्य है। यदि विश्व को सीमित मान लें तो तुरन्त यह प्रश्न उठेगा कि उसकी सीमाओं के पार क्या है ? प्रसिद्ध वैज्ञानिक फ्रेड होयल ने अपने 'स्थायी दशा' सिद्धान्त के अन्तर्गत इस संदर्भ में कहा है कि हमें विश्व के सुदूर क्षेत्र सदैव समान ही नजर आते हैं यद्यपि आकाश गंगाएँ बराबर दूर भागती रहती हैं, यहाँ तक कि वे हमारे निरीक्षण की सीमाओं से परे चले जाती हैं। होयल के अनुसार जो आकाश गंगाएँ ओझल हो जाती हैं, उनका स्थान अन्तरिक्ष में व्याप्त द्रव्य से निर्मित नई आकाश गंगाएँ ले लेती हैं जिससे सुदूर का दृश्य अपरिवर्तित ही नजर आता है।

उपरोक्त धारणाओं में से सही या गलत का चयन करना संभव नहीं है इसलिये यही उपयुक्त है कि विश्व की सीमाओं के बारे में अभी निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य है कि निरन्तर विकासशील तकनीक तथा अन्त-रिक्ष यात्राओं के फलस्वरूप विश्व के संबंध में हमारी जानकारी यथार्थ के अधिक नजदीक पहुँच सकेगी।

अन्तरिक्ष संबंधी जानकारी में प्रकाशीय दूरदर्शी, रेडियो दूरदर्शी, वर्णक्रमदर्शी तथा अन्तरिक्षयान बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। इस सन्दर्भ में अमेरिका के पालोमर पर्वत पर स्थित परावर्तन-दूरदर्शी तथा जोड्रेल बैंक स्थित रेडियो-दूरदर्शी का उल्लेख आवश्यक है। ये अपने ढंग के सबसे बड़े यन्त्र हैं, जो आकाशीय पिण्डों की जानकारी में अद्भुत योगदान दे रहे हैं।

मानव की अन्तरिक्ष विजय

प्राचीन समय से ही मानव के अन्दर अन्तरिक्ष विहार की उत्सुकता रही है इसका पता भारत, चीन तथा अन्य देशों में प्रचलित पौराणिक कथाओं में वर्णित आकाश-यात्राओं, परियों के देश की कहानियाँ, चन्द्रलोक की सैर, रामायण काल में पुष्पक विमान से यात्रा इत्यादि से मनुष्य की उस महत्वाकांक्षा का पता चलता है। प्रसिद्ध
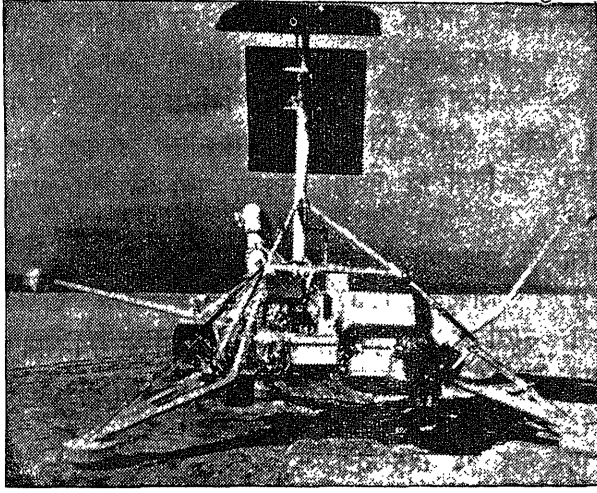
चित्र — चन्द्रतल पर रूसी यान

वैज्ञानिक केप्लर, फ्रांसीसी विज्ञान कथा लेखक जूल्स-वर्नी तथा एच० जी० वेल्स आदि ने भी चन्द्रलोक, मंगल-ग्रह आदि की यात्रा सम्बन्धी बड़ी मनोरंजक कथाएँ लिखी हैं।

प्रारम्भिक प्रयास

लगभग 1000 वर्ष पूर्व चीन में बारूद की खोज ने कुछ चीजों का आकाश में भेजना संभव बना दिया। इनके विकसित रूप में राकेट सामने आये परन्तु 19वीं शताब्दी तक ये कोई महत्वपूर्ण काम नहीं कर सके।

1903 में त्सिओलकोव्स्की ने द्रव-ईंधन से चलने वाले राकेट का सिद्धान्त प्रतिपादित किया तथा राकेटों को अन्तरिक्ष यात्रा के लिए उपयोगी बताया। 1926 में अमेरिकी वैज्ञानिक डा० राबर्ट गोडार्ड ने द्रव ईंधन चालित राकेट बनाया। अब धीरे-धीरे राकेट विज्ञान विकसित होता गया तथा इनका उपयोग अन्तरिक्ष सम्बन्धी खोज के लिए किया जाने लगा। दूसरे विश्व युद्ध में जर्मनी ने V-2 राकेटों द्वारा बम वर्षा कर, इंगलैण्ड को काफी नुकसान पहुँचाया। ये राकेट 3000 कि० मी०/घण्टे की रफ्तार से 1 टन भारी बम लेकर 300 कि० मी० दूर तक जा सकते थे। अन्तरिक्ष में खोज के लिए अन्तरिक्ष में जा कर सूचनाएँ एकत्र कर उसे पृथ्वी पर भेजने का काम करने वाले राकेट या यान जरूरी हैं। ऐसे राकेटों में ध्वनि राकेट प्रमुख हैं जिनके अग्रभाग में यंत्रागार होता है जो जरूरी तथ्यों तथा आँकड़ों को एकत्र करता है। यह यंत्रागार पैराशूट की मदद से धरती पर उतर आता है। सम्भावित क्षेत्र में, वैज्ञानिकों को इन्हें ढूँढ निकालना पड़ता है। 1960 में एक ऐसा ध्वनि राकेट प्रक्षेपित किया गया था जिसका उद्देश्य अन्तरिक्ष के विकिरणों का अध्ययन करना था। यह राकेट 1900 कि०मी० ऊँचाई तक गया था। अन्तरिक्ष को इन खोजों का मुख्य प्रयोजन काफी ऊँचाई पर वायुमण्डल के ताप, दाब, घनत्व, बादल, उल्काओं, विकिरणों तथा पृथ्वी के चुम्बक आदि की जानकारी करना है।

विश्व का प्रथम कृत्रिम भू-उपग्रह

राकेट काफी ऊंचाई तक पहुँच कर जल कर नष्ट हो जाते थे, तथा न ही उन राकेटों पर

किसी तरह का नियन्त्रण रह पाता था। इन कमियों को दूर करने के लिये वैज्ञानिक कार्य-रत हो गये। वे एक ऐसा यान बनाना चाहते थे जो काफी समय तक अन्तरिक्ष में रह सके तथा उसमें यन्त्र तथा मानव दोनों सुरक्षित रह सकें तथा उसे पृथ्वी से नियन्त्रित किया जा सके।

आखिर इस प्रतीक्षा के क्षण भी समाप्त हुए और सोवियत रूस ने 4 अक्टूबर, 1957 को एक ऐसा ही यान स्पुतनिक (मानव-निर्मित प्रथम भू-उपग्रह) छोड़ा जो पृथ्वी से लगभग 200 किमो० ऊपर जा कर उसकी परिक्रमा करने लग गया और 92 दिन तक परिक्रमा करता रहा। यह यान काफी छोटा था, जिसका व्यास 59 सेमी० तथा भार 83 कि0ग्राम था। करीब तीन माह तक परिक्रमा करने बाद सघन वायुमंडल में आने के कारण वह जल कर नष्ट हो गया। अपने छोटे से भ्रमण–काल में भी स्पुतनिक–1 ने पृथ्वी की 1400 परिक्रमाएँ कीं तथा 6 करोड़ किमी0 (3 करोड़ 75 लाख मील) की उड़ान भरी।

अन्तरिक्ष–विजय की दिशा में यह अत्यन्त महत्वपूर्ण कदम था क्योंकि इसने मनुष्य की अन्तरिक्ष यात्रा को काफी निकट ला दिया। रूस की इस सफलता से अमेरिका ने भी अन्त-रिक्ष-खोज के कार्य-क्रमों को तेजी से काम में लाना शुरू कर दिया। सोवियत रूस द्वारा 12 अप्रैल 1960 को अन्तरिक्ष में प्रथम मानव भेजने के पहले दोनों देशों में अन्तरिक्ष-खोज के अनेक कार्य-क्रम चल पड़े जो धीरे-धीरे पूरे होने लगे।

अन्तरिक्ष-खोज के कार्यक्रम

अमेरिका में "नासा" तथा रूस के अपने अन्तरिक्ष विभाग द्वारा अन्तरिक्ष खोज के अनेक कार्य-क्रम बनाए गये। इन कार्य–क्रमों में ऊपरी वायुमंडल को जानकारी, संचार व्यवस्था, समुद्री यात्राओं का मार्ग दर्शन, जासूसी तथा अन्तरिक्ष वेधशाला के कार्य शामिल हैं।। इन कार्यों के लिये विभिन्न प्रकार के उपग्रहों की जरूरत होती है जैसे मौसम उपग्रह, संचार उपग्रह, स्काउट उपग्रह तथा अन्तरिक्ष वेधशाला उपग्रह इत्यादि !

(1) पृथ्वी द्वारा सूर्य से ग्रहण किये गये तथा परावर्तित किये गये ताप का हिसाब रखना।

(2) अन्तरिक्ष में मिलने वाली एक्स-किरणों, गामा-किरणों, तथा पराबैंगनी-किरणों की शक्ति को नापना।

(3) पृथ्वी के चारों ओर पाई जाने वाली "वान-एलन-विकिरण-पट्टी" के कणों का विश्लेषण करना।

(4) उन सौर बैटरियों का विश्लेषण जिनका उपयोग उपग्रह में वैज्ञानिक उपकरणों को संचालित करने के लिए किया जाता है।

(5) अन्तरिक्ष में मिलने वाली छोटी उल्काओं की संख्या का पता लगाना।

(6) अन्तरिक्ष की कास्मिक किरणों के कणों के संबंध में जानकारी।

(7) उपग्रह की सतह के ताप को नापना आदि विभिन्न कार्य थे।

अत: विभिन्न प्रकार के उपग्रहों द्वारा विभिन्न प्रकार की खोजबीन तथा व्यावहारिक उपयोग के काम किये जा रहे हैं। अन्तरिक्ष कार्यक्रमों का प्रमुख उद्देश्य दूसरे ग्रहों की खोज और उनकी यात्रा के अतिरिक्त अन्तरिक्ष में अंतराग्रहिक स्टेशन कायम करना भी है ! दूसरे ग्रहों तक मानव को भेजने की दिशा में अमेरिका को विशेष सफलता मिली है, वह चन्द्रमा पर अब तक पाँच बार मानव को भेज कर वापस सुरक्षित लौटा लाया है।

चन्द्रमा पर मानव :

पुरानी पीढ़ी के लोग या यह कि आज से कुछ दशकों पूर्व की पीढ़ी के लोग चन्द्रमा को एक देवता का रूप मानते थे और मानते हैं। आज भी जब मानव चन्द्रतल पर अपने पैर टिका कर इन अंधविश्वासों और परियों की कथा पर मृत्युकारक आघात कर चुका है तब भी इन लोगों की कमी नहीं है जो चन्द्रमा को पूजते हैं और इस सच्चाई को मानने से इन्कार कर देते हैं। मानव को अंतरिक्ष में भेजने से पहले वैज्ञानिकों को काफी गुत्थियों को सुलझाना पड़ा। पृथ्वी का उपग्रह बनने के लिए यान की गति ८ कि० मी० सेकण्ड (अर्थात् 28,800 किमी०/घन्टा) होनी आवश्यक है ताकि यान वायुमण्डल को चीर कर अंतरिक्ष में पहुँच सके। इस गति को प्रक्षेप गति कहते हैं पर प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य इतनी त्वरित गति को वहन कर सकता है ? इसके अलावा जब यान वायुमण्डल को चीरता हुआ तेज गति से आकाश की ओर बढ़ता है तब कुछ सेकण्डों के लिये मनुष्य को अत्यधिक-भार की अनुभूति होती है और ऐसा महसूस होता है कि मानो पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण कई गुना बढ़ गया हो। इसके पश्चात् अन्तरिक्ष में पहुँचने पर भारहीनता की स्थिति हो जाती है। मनुष्य का शरीर इतनी त्वरित गति से अत्यधिक भार तथा भारहीनता की परिस्थितियों में कैसी प्रतिक्रिया करता है, इसका अध्ययन करना पड़ा तथा ऐसे उपाय ढूँढ़ने पड़े जिनके द्वारा अन्तरिक्ष यात्रा के समय मनुष्य के स्वास्थ्य एवं जीवन पर कोई घातक प्रभाव नहीं पड़े। अन्तरिक्ष यात्रा करने वाले यात्रियों को 3-4 वर्ष तक कठोर प्रशिक्षण दिया जाता है जिससे उनका शरीर उपरोक्त परिस्थितियों को सहन करने में काफी अभ्यस्त हो गये। इसके अतिरिक्त अन्तरिक्ष यान में मानव-कक्ष के भीतर काफी अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जाती हैं।

मानव की अन्तरिक्ष यात्रा रूसी नागरिक मेजर यूरी गागरीन से आरम्भ हुई। 12 अप्रैल 1961 को उसने "वोस्तोख-1" में पृथ्वी की एक परिक्रमा की और फिर सुरक्षित पृथ्वी पर लौट आया। इसके बाद अन्तरिक्ष में रूसी अमेरिकी यात्रियों के आने-जाने का लम्बा सिलसिला शुरू हो गया। सन् 1961 में अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी ने सन् 1970 में मानव को चन्द्रमा पर उतारने का कार्यक्रम निर्धारित किया था, जिस लक्ष्य को अमेरिकी वैज्ञानिकों ने 1 वर्ष पहले पूरा कर लिया।

अपोलो-9 द्वारा चाँद से खींचे गये पृथ्वी के चित्र काफी सुन्दर हैं। पर पृथ्वी के कक्ष में चक्कर लगाते समय भी इसके विभिन्न क्षेत्रों के बहुत सुन्दर रंगीन चित्र लिये गये हैं। अपोलो-9 की उड़ान के दौरान अन्तरिक्ष यात्री डेविड आर० स्काट ने जब अन्तरिक्ष के शून्य में बाहर यात्रा की तब दूसरे यात्री स्वीकार्ट ने उसका चित्र लिया और उसमें पार्श्व में पृथ्वी बतायी, मध्य में मिसीसिपी नदी की घाटी और स्काट और स्वीकार्ट ने ही अम्बाला राज्य (अमेरिका) का चित्र अपोलो-9 की यात्रा के दौरान खींचा था।

अपोलो-11 नाम का यान 16 जुलाई 1969 को रवाना हुआ। उसमें तीन यात्री-कौलिन्स, एडविन आल्ड्रिन व नील आर्मस्ट्रांग थे। आखिर इतनी लम्बी मेहनत की सफलता का दिन आ गया। सारे विश्व में एक ही उत्सुकता की लहर फैली हुई थी। सभी की आँखें व कान अपने-अपने रेडियो, टेलीविजन पर लगे थे। सभी के दिलों में खामोश धड़कनें भी एक क्षण के लिए रुक-सी गईं और सुनाई दिया "मानव ने चन्द्रतल पर पैर रख दिया।" और उसी के साथ एक खुशी की लहर दौड़ गयी। 21 जुलाई 1969 की रात को 1 बज कर 40 मिनट पर चन्द्रतल पर पैर रखने वाले सर्वप्रथम मानव का श्रेय नील आर्मस्ट्रांग को मिला। यह मानव जाति के लिए बड़ा ही अभूतपूर्व दिन था। इस दिन धरती का एक लाल

दूसरे आकाशीय पिण्ड पर पहुँचा था। अन्तरा-ग्रहिक यात्रा की यह प्रथम सफलता थी।

अन्तरिक्ष यात्री आर्मस्ट्रांग तथा एल्ड्रिन ने चन्द्रतल पर उतर कर चन्द्रमा के काले आकाश की ओर देखा, और देखते ही रह गये। उन्होंने कहा "हमारी पृथ्वी कितनी जाज्वल्यमान थी, कितनी विशाल, कितनी सुन्दर। चन्द्रलोक के सर्व प्रथम पदक्षेप करने वाले मनु की सन्तान, रहस्य मय, रेतीले रेगिस्तान के गर्तमय मैदान में खड़े थे। सूर्य की तिरछी किरणें आग बरसा रही थीं और ऊपर गहरे काले आकाश का चंदोवा तना हुआ था। क्षितिज के कुछ ऊपर हमारी सौन्दर्य-शालिनी पृथ्वी मुस्करा रही थी और वह पृथ्वी ऐसी लग रही थी, मानों कोई कंचन जगमगाहट कर रहा हो। उसी प्रकार हमारी पृथ्वी जगमा रही थी, ठीक उसी प्रकार जैसे पृथ्वी के आकाश में चन्द्रमा जगमगाता है। चन्द्रमा के चारों ओर वायु मण्डल नहीं है, जबकि पृथ्वी के चारों ओर है। वायुमण्डल के न होने के कारण प्रकाश की किरणें बिखर नहीं पातीं। फलत: उसके आकाश का रंग गहरा काला है, पृथ्वी से चन्द्रमा जितना चमकीला दिखाई देता है, ठीक उसी प्रकार चन्द्रमा से पृथ्वी उससे बीस गुनी अधिक चमकीली लगती है। चन्द्रलोक से दिखने वाले तारों की संख्या पृथ्वी से सौ गुनी अधिक है।

पृथ्वी चन्द्रमा से औसतन 4,00,00 कि० मी० दूर है। पृथ्वी का आकार चन्द्रमा से 50 गुना बड़ा है जितना चन्द्रमा पृथ्वी से दिखाई देता है, चन्द्रमा से पृथ्वी उससे चार गुनी अधिक मोटी दिखाई देती है। चन्द्रमा की भाँति पृथ्वी भी अपनी कलाएँ दर्शाती है, किन्तु उसकी कला की अवधि नितान्त भिन्न है। जब चन्द्रलोक में एक दिन होता है तब पृथ्वी में पन्द्रह दिन बीत चुकते हैं। दूसरे शब्दों में चन्द्रलोक का एक दिन-रात पृथ्वी के एक महीने के बराबर होता है। यद्यपि, चन्द्रमा पृथ्वी के चारों ओर 0·8 कि० मी० प्रति सैकण्ड की चाल से परिक्रमा कर रहा है, किन्तु साथ-साथ अपनी कीली पर भी इस प्रकार घूम रही है कि चन्द्रलोक में एक दिन व्यतीत होने में हमारे पन्द्रह दिन लग जाते हैं वहाँ के काले अन्तरिक्ष में पृथ्वी रुकी-सी दिखती है।

पृथ्वी का बहुत सा भाग बादलों के कटे-फटे आवरण से ढका रहता है। अतः चन्द्रलोक से धरती का सम्पूर्ण रूप उद्भासित नहीं होता। मई से सितम्बर तक की अवधि में तो भारत आदि मानसूनी देशों सहित विषुवत कटिबंधीय भू-भाग पर घने बादलों का आच्छादन पड़ा रहता है। मेघ मण्डल में चक्रवातों का ताण्डव और तूफानों की उमड़-घुमड़ देखी जा सकती है, कहाँ वर्षा हो रही है और कहाँ होगी ? कहाँ हिम वर्षण होगा और कहाँ-कहाँ तूफान लहरा रहा है ? यह सब चन्द्र-वासी देख सकता है। चन्द्रलोक पर बैठ कर पृथ्वी में वर्षा एवं झंझावातों के पथ निर्धारण किये जा सकते हैं।

सफेद बादलों के हटते ही काले आकाश के नीचे सफेद, हरे, नीले, और पीले रंग की पृथ्वी की मुस्कान मुखरित हो उठती है। जंगलों के भाग गहरे हरे या नीले हरे रंग के दिखाई देते हैं। मरुस्थलों का रंग पीला या बादामी है। सागरों का गहरा नीला रंग, देखने वालों को अभिभूत कर देता है। चन्द्रवासी पृथ्वी निरभ्रवेला को देखकर विस्मित हो सकता है कि पृथ्वी के महाद्वीपों का आकार त्रिकोण हैं। उत्तर और दक्षिण अमेरिका, यूरेशिया तथा अफ्रीका सभी त्रिकोणाकार हैं। यही नहीं अरब, भारत, बर्मा आदि भी दक्षिण की ओर त्रिकोण बनाते हैं।

यह था, मानव को चन्द्रतल पर उतारने वाले यान अपोलो-11 द्वारा पृथ्वी का दर्शन। इसके बाद अपोलो-12, अपोलो-14, अपोलो-15 और अपोलो-16 के यात्री भी चन्द्रमा की सैर कर आये हैं। अपोलो-15 के यात्री स्कॉट और इर्विन

तो लगभग 68 घंटों तक चन्द्रमा पर रहे तथा चन्द्रतल पर "रोवर" गाड़ी में कई किलोमीटर की यात्रा भी की। अपोलो-13 में कुछ खराबी हो गई थी अत: उसके यात्रियों को बीच से ही लौटना पड़ा था। अपोलो यान को 'सैटर्न' नामक शक्तिशाली राकेट से गति प्रदान की जाती है। अपोलो 16-अप्रैल 19, 1972 के यात्री यंग ड्यूक व मैटिम्ली अपने साथ 111 कि० ग्रा० चन्द्र चट्टानें लाये।

यद्यपि रूस ने चन्द्रमा पर अभी तक मानव नहीं भेजा, तथापि उसकी उपलब्धियाँ भी कम आश्चर्यजनक नहीं हैं। चन्द्रमा पर बिना झटके के यान को लूना-9 उतरने वाला सोवियत रूस ही था (फरवरी 1966)। सितम्बर 1970 में रूस ने मानव-रहित "लूना-16" को चन्द्रमा पर उतारा और उसे फिर पृथ्वी पर ले आया। इसी प्रकार नवम्बर, 1970 में "लूना-17", एक आठ पहिये वाली चन्द्रगाड़ी 'लूनाखोद' लेकर चन्द्रतल पर उतरा। "लूनाखोद" सौ बैटरियों की मदद से काफी देर तक चन्द्रतल पर इधर-उधर घूमती रही। ये सब कार्य पृथ्वी से ही नियन्त्रित किये गये थे। प्रथम महिला यात्री वेलेन्ताना-ढेरेश्कोवी को अन्तरिक्ष-यान में भेजने का श्रेय भी रूस को ही है।

इस शती की मानव की अन्तिम चन्द्र-यात्रा

अपोलो-17 चन्द्र-अभियान—अपोलो अभियान श्रृंखला में चन्द्र यात्रा करने वाले अन्तिम यात्रा अपोलो-17 ने 7 दिसम्बर 1972 के सुबह 11 बजकर 3 मिनट पर (भारतीय समय के अनुसार पूर्व निर्धारित समय से 2 घंटे 40 मिनट बाद) अपनी यात्रा अमेरिका के अन्तरिक्ष अड्डे 'कैप कैनेडी' से आरम्भ की। उड़ान में देरी, उड़ान के समय से 30 सेकण्ड पूर्व 'काउंट डाउन' के बन्द हो जाने के कारण हुई। उस समय 'कम्प्यूटर' ने बतलाया कि राकेट के तीसरे खण्ड में वांछित दाब नहीं है जिसे ठीक करने के लिये टेक्नीशियन जब काम पर जुटे तो पता चला कि त्रुटि राकेट की बजाय स्वयं कम्प्यूटर में थी। कम्प्यूटर बदलने पर काउंट डाउन फिर से चालू हो गया और सारी व्यवस्था ठीक हो गई। इस अभियान पर जाने वाले यात्री यूजीन ए० सरनन (अभियान के नेता), हैरीसन एच० (जैक), स्मिट (चन्द्रकक्ष के चालक) तथा रोनाल्ड ई० ईवान्स (आदेश कक्ष के चालक) थे। सरनन की यह तीसरी अन्तरिक्ष यात्रा थी तथा वे कुल मिला कर 11 दिन से भी अधिक समय तक अन्तरिक्ष में रह चुके थे। जून 1966 में जेमिनी-9 की यात्रा के दौरान वे दो घण्टे दस मिनट तक अन्तरिक्ष में चले भी थे। ये पहले व्यक्ति थे जो पूरी एक परिक्रमा के दौरान अन्तरिक्षयान से बाहर रहे। मई 1969 में अपोलो-10 की यात्रा में उन्होंने चन्द्रमा के 31 चक्कर काटे थे और उससे केवल 15 कि० मी० ही दूर रह गये थे। स्मिट भू-वैज्ञानिक हैं तथा भू-विज्ञान में पी०एच०डी० हैं और शैल तथा शैल बनावटों के विशेषज्ञ हैं। ये चन्द्र यात्रा करने वाले प्रथम वैज्ञानिक हैं। इन्होंने यात्रा के दौरान मौसम आदि के बारे में वैज्ञानिक सूचनाएँ भेजते रहने का काम किया। उन्तालीस वर्षीय ईवान्स की यह पहली अन्तरिक्ष यात्रा थी। अपोलो 17 के आदेश कक्ष का नाम 'अमेरिका' तथा चन्द्र-कक्ष का नाम 'चैलेंजर' है।

अपोलो-17, प्रक्षेपण के 4 घण्टे के भीतर ही पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण को पार कर गया। चाँद की 12वीं परिक्रमा के दौरान 11 तारीख की रात को 10 बज कर 50 मिनट पर चैलेन्जर, अमेरिका से अलग होकर चाँद की ओर चल पड़ा। सबसे बड़ी बात यह हुई कि अपोलो-17 का चन्द्र कक्ष 2 घण्टे 40 मिनट के समय को पूरा कर 12 दिसम्बर की सुबह को 1 बजकर 25 मिनट पर (भारतीय समयानुसार) निर्धारित

स्थान पर निर्धारित समय पर जा उतरा था। सही सलामत उतरने के 4 घंटे बाद सरनन और स्मिट चन्द्रमा के टाऊरर्स-लिट्रोव क्षेत्र के प्रथम सर्वेक्षण दौरे पर निकले। यह घाटियों व पहाड़ियों का क्षेत्र है जिसमें यदा कदा ज्वालामुखी विस्फोटों के परिणाम-स्वरूप लावा जमा होता रहा है। वैज्ञानिकों के अनुमानों के आधार पर कदाचित चन्द्रमा पर होने वाले अन्तिम ज्वालामुखी विस्फोट का स्थल यही क्षेत्र है। सात घण्टे के सर्वेक्षण के दौरान उन्होंने 2-5 मीटर गहरा छिद्र करके धरातलीय ताप तथा तापीय गुणों का अवलोकन किया। साथ ही चट्टानों, धूलि के नमूने लिये और 'एल्सेप' स्थापित किया जिसने स्थापना के एकदम बाद सूचनाएँ देनी शुरू कर दी। सरनन के ज्यादा आक्सीजन खर्च करने के कारण स्मिट को मदद करनी पड़ी व दौरे के निर्धारित समय में 15 मिनट की कमी करनी पड़ी। इस समय उन्होंने चन्द्र बग्घी का प्रयोग कर 'एमोरी' विवर खोजा, जिसमें भटकने के कारण 40 मिनट नष्ट हुए तथा बग्घी के एक चट्टान से टकराने के कारण उसके पिछले भाग से धूल उड़ती रही। इस सर्वेक्षण की उपलब्धि थी सबसे कम आयु की चन्द्र चट्टान की प्राप्ति। लगभग 12-31 पर 'चैलेन्जर' में लौट कर आराम किया।

दूसरे सर्वेक्षण में उन्होंने 1,830 मीटर ऊँची मैसिफ देखा, कुछ सबसे प्राचीन चट्टानें देखीं तथा बग्घी में निर्धारित 6 कि० मी० से 1-6 कि० मी० अधिक यात्रा की, कोयले जैसे काली चट्टानों के नमूनों के लिए कुछ विस्फोटक चन्द्रमा पर रखे जो उनके चन्द्रमा छोड़ने के बाद विस्फोटित हुए। तीसरे सर्वेक्षण में दोनों ऊँचे टीलों पर बढ़े, तेज ढलान पर उतरे, बग्घी में घूमे व सबसे कठोर चट्टानों के नमूने लिये। नार्थ मैसिफ पर उन्हें आग्नेय चट्टानें मिलीं जो स्मिट के अनुसार एन्थ्रोसायटी गैबर है जिनमें प्लेजिओक्लेज खनिज अधिक होता है। रसायनज्ञों के अनुसार चाँद पर सर्वाधिक एल्यूमिनियम सिलिकेट है। यहाँ उन्होंने फुटबाल जैसे बड़ी चट्टानों के नमूने लिए।

कई उपकरण स्थापित कर, लगभग 100-125 किग्रा० चट्टानें लेकर सरनन तथा स्मिट 14 दिसम्बर को 11 बजे वेलेंजर में लौटे। साथ ही एक प्लेक अनावृत किया जिस पर लिखा था 'जिस शान्ति की भावना से हम यहाँ आये हैं, वह सम्पूर्ण मानव जाति के जीवन में परिलक्षित हो।' इस पर तीनों यात्रियों तथा राष्ट्रपति निक्सन के हस्ताक्षर थे, तथा यह भी लिखा था 'यहाँ दिसम्बर 1972 में मनुष्य ने चाँद की अपनी खोज की प्रथम शृंखला समाप्त की।' चाँद पर तीन दिन, तीन घंटे और एक मिनट बिताने के बाद दोनों 15 दिसम्बर की सुबह 4 बज कर 26 मिनट पर (भारतीय समयानुसार) अपने चन्द्रकक्ष में ऊपर उठ कर चाँद की परिक्रमा करते हुए 'अमेरिका' से जुड़े तथा 19-20 दिसम्बर की रात को 12 बजकर 54 मिनट पर प्रशान्त महासागर में, पैगो-पैगो, समोआ द्वीप से 800 किमी० दक्षिण-पूर्व पर सकुशल उतर आये। इनके साथ एल्यूमिनियम कनस्तर में बन्द, अन्तरिक्ष जाने वाले प्रथम पाँच छोटे-छोटे चूहे भी थे जो कैलिफोर्निया मरुस्थल में पाम-स्प्रिंग के निकट पाये जाते हैं। इन पर विभिन्न अध्ययन किये गये। ये लोग अपने साथ चाँद की नारंगी मिट्टी लाये।

अपोलो-17 निर्धारित स्थान से सिर्फ 83 मीटर दूर उतरा, जो दूसरा श्रेष्ठ अवतरण था, जब कि अपोलो-14, 53 मीटर ही दूर उतरा था, अपोलो-12, अपोलो-15, और अपोलो-16 क्रमश: 178, 600 तथा 300 मीटर दूर उतरे। अपोलो-11 के समय वैज्ञानिकों (पृथ्वी पर बैठे) का ध्यान, निर्धारित स्थल पर उतरने के बजाय सुरक्षित अवतरण पर अधिक था।

इस प्रकार अपोलो शृंखला के अन्तर्गत अन्तिम चन्द्र अभियान सकुशल समाप्त हुआ।

अपोलो-17 का अभियान निम्न कारणों से सबसे विलक्षण माना जायेगा—

(1) सरनन, स्मिट का सर्वाधिक समय 75 घण्टे चाँद पर रहना।

(2) 22 घण्टे 5 मिनट तक चाँद पर चलना।

(3) सबसे लम्बा सर्वेक्षण दौरा 7 घण्टे 37 मिनट का था।

(4) चन्द्र बग्घो की गति का रिकार्ड 18 कि० मी०/घंटा होना।

(5) चन्द्र बग्घी पर 34·4 कि० मी० की यात्रा।

(6) सर्वाधिक चट्टानों तथा धूलि के 125 कि० ग्राम नमूने जिनमें सबसे पुरानी (आयु 4.25 अरब वर्ष) तथा सबसे नयी (आयु 1 अरब वर्ष) चट्टानों के भी नमूने थे।

अन्तराग्रहिक अन्तरिक्ष खोज

अन्तरिक्ष खोज का कार्यक्रम काफी मंहगा पड़ता है। एक एक कार्यक्रम में करोड़ों रुपये लगते हैं अतः दुनियाँ के केवल दो देश, रूस और अमेरिका, अन्तरिक्ष खोज के कार्यक्रमों को चला रहे हैं। इसीलिए अब 'अन्तरिक्ष शटल' को महत्व दिया जा रहा है, जिनका काम राकेट को छोड़ आने का होगा। अमेरिका की कुछ कम्पनियाँ तो ऐसे शटल भी बनाने की कोशिश में हैं जिनमें बैठा कर सवारियों को अन्तरिक्ष की सैर कराई जाय। पृथ्वी में सूर्य की ओर भी यान भेजे जाते रहे हैं। रूस ने शुक्र की ओर कई 'वीनस' नाम के यान भेजे थे। 1970 में रूस ने यह घोषणा की थी कि उसका एक यान शुक्र पर उतर गया जिसने कुछ समय तक संदेश भी भेजे। इसी प्रकार अमेरिका मंगल ग्रह की ओर 'मैरिनर' यान भेजता रहा है। मई सन् 1971 में रूस से भी मंगल की ओर 'मार्स-1' और 'मार्स-2' यान भेजे हैं। मार्स-2 ने करीब 30 करोड़ मील की यात्रा की। 1980 तक अमेरिका ने मंगल पर मानव को उतारने का कार्यक्रम बनाया है। अन्तराग्रहिक खोजबीन में विशेष सहायता के लिए रूस अन्तराग्रहिक स्टेशन बनाने में अधिक प्रयत्नशील है। इसी प्रयोजन से उसने एक बहुत बड़ा उपग्रह 'सेल्यूत-1' छोड़ रखा है जो पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है। उससे जा कर अन्य अन्तरिक्ष यान जुड़ जाता है। जून में सोयूज-11 के तीन यात्री सेल्यूत-1 में पहुँचे। इस तरह अन्तरिक्ष में 24 दिन रह कर अपने यान सोयूज-11 से वापस पृथ्वी की ओर लौट रहे थे, तब मानव कक्ष में कुछ लीकेज हो जाने के कारण वायु दाब समाप्त होने से तीनों यात्रियों, पात्स्यायेव, दोब्रोवोल्स्की एवं बोल्कोव, की मृत्यु हो गई। पृथ्वी पर तीनों के मृत शरीर ही वापस आये। उसके पहले भी एक अन्य रूसी यात्री कोमोरोव (1967) तथा उसी वर्ष तीन अमेरिकी यात्री ग्रिसम, ह्वाइट और रोजर्स अन्तरिक्ष सम्बन्धी कार्यक्रम में दुर्घटना के शिकार हो चुके हैं।

सौर-मण्डल में अन्यत्र जीव की सम्भावना

क्या सौर मण्डल में पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं जीवधारी हो सकते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देना अत्यन्त कठिन है। हमारी अपनो जानकारी पृथ्वी पर प्रचलित परिस्थितियों के सन्दर्भ में ही है। हम यह जानते हैं कि कार्बनिक पदार्थों के निर्माण के लिए कार्बन और हाइड्रोजन का होना तो अनिवार्य है। फिर प्रोटोनों के लिए नाइट्रोजन की आवश्यकता होती है। ये सब तत्व अन्य ग्रहों पर काफो मात्रा में मिलते हैं। किन्तु क्या उन पर ऐसी परिस्थितियाँ पाई जाती हैं कि वहाँ जटिल कार्बनिक पदार्थों का निर्माण होकर जीव द्रव्य बन जाय। अब हम चन्द्रमा के सम्बन्ध में तो निश्चित रूप से कह सकते हैं कि वहाँ जीव नहीं है। अभी तक चन्द्रमा को जितनो मिट्टी तथा चट्टानों का विश्लेषण हुआ है, उनमें किसी

भी प्रकार के जीवधारी के कोई भी अंश नहीं मिले हैं। हमारे सौर मण्डल में मंगल ग्रह ही ऐसा प्रतीत होता है कि जहाँ जीव के होने की कुछ सम्भावना हो सकती है। किन्तु मंगल के सम्बन्ध में भी अभी तक जितनी जानकारी हुई है उससे वहाँ भी जीव के होने की सम्भावना धूमिल हो गई है। मेरिनर्स ने मंगल के जो चित्र भेजे हैं, उनसे ऐसा लगता है कि वहाँ की परिस्थितियाँ भी चन्द्रमा से काफी मिलती-जुलती हैं। फिर भी मंगल के बारे में हम कोई धारणा न बनायें तो अच्छा ही है क्योंकि वहाँ भी शीघ्र ही हमारे यंत्रादि पहुँच जायेंगे जिनसे काफी विश्वस्त सूचनाएँ मिल जायेंगी। फिर वह दिन भी बहुत दूर नहीं जब मानव स्वयं ही मंगल ग्रह पर उतर जायेगा। अतः अभी तक की जानकारी के आधार पर तो यही कहा जा सकता है कि सौर मण्डल में पृथ्वी के अतिरिक्त अन्यत्र जीव होने की सम्भावना नहीं के बराबर है।

●●

अन्तरिक्ष सुरक्षा केन्द्र

मनुष्य द्वारा अन्तरिक्ष में भेजी गई प्रत्येक वस्तु की टोह लेने वाले इस अमरीकी केन्द्र में 1200 करोड़ रुपयों के संयंत्र लगे हैं। बहुत सी जानकारियों को तो छिपाकर रखा जाता है। 1970 तक में ही अन्तरिक्ष में लगभग 7000 पिण्ड विभिन्न स्थितियों में भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से प्रक्षेपित किये जा चुके थे और अब तो उनकी संख्या और भी बढ़ गई है। इस केन्द्र को 6469 328,000,000,000 घन किमी० क्षेत्र का अवलोकन करना होता है। इसके संयंत्र पृथ्वी से 4416 किमी० दूरी तक अंगूर के आकार के पिण्ड को भी भली भाँति 'देख' सकते हैं। इस केन्द्र को 150 अन्य स्टेशनों से सूचना मिलती है। एक बार एक सोवियत सैटेलाइट जब धमाके के साथ टूटकर बिखर गया तो रूस वालों ने इसकी कोई चर्चा नहीं की थी पर इस केन्द्र को पता लग गया था और उसने इस सैटेलाइट के 124 टुकड़ों तक के बारे में सूचना प्राप्त कर ली थी।

भारत का गौरव आर्यभट

डॉ० शिवप्रसाद कोस्टा तथा
डॉ० उडीपी रामचन्द्र राव

हमें याद है ग्यारह सितंबर उन्नीस सौ बहत्तर का वह दिन जब पीन्या औद्योगिक क्षेत्र बंगलोर में आर्यभट के निर्माण हेतु एक सरल उद्घाटन (समारोह नहीं कहेंगे) कार्यक्रम रखा

प्रो० यू० आर० राव

गया था। इस पुनीत अवसर पर प्रो. राव ने कहा था—"साथियों, हमारे विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक सर सी. वी. रमन इस बात पर विश्वास करते थे कि भारत में विज्ञान की प्रगति शान्त वातावरण युक्त सादी इमारत वाली प्रयोगशालाओं में ही हो सकती है न कि ताजमहल सी बनी प्रयोगशालाओं में।" उनकी इस विचारधारा को हृदयंगम करके हमें भारत का प्रथम उपग्रह इन मामूली शेडों में बनाना है एवं उपग्रह तकनीकी क्रान्ति करके दिखाना है।"

समय की तेज रफ्तार के साथ आर्यभट के निर्माण का कार्य तीव्र गति से किया गया घटकों की प्राप्ति प्रयोगशालाओं तथा तकनीकी परीक्षण हेतु न्यूनतम सुविधाओं को व्यवस्था युवा टीम का संगठन बंगलौर के प्रमुख संस्थानों, जैसे नेशनल एरोन टिकल प्रयोगशाला, हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स लिमिटेड, इन्डियन इन्सीट्यूट आफ साइंस, इन्डियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज, सेन्ट्रल मशीन टूल्स इन्डस्ट्रीज, कन्ट्रोल रेट इन्स्पेक्शन ऑफ इलेक्ट्रानिक्स आदि से विभिन्न प्रकार की सहायता हेतु संबंध स्थापित करना आर्यभट के विभिन्न प्रणालियों के कलपुर्जों की डिजाइन का कार्य उनके ब्रेड बोर्ड माडल की तैयारी उन पर विभिन्न परीक्षण कार्यक्रम की समय तालिका (पर्ट चार्ट) इत्यादि।

'आर्यभट' की तैयारी : आइये अब आपको आर्यभट के निर्माण कार्य की कुछ झलकियों से परिचित करा दें :—

आर्यभट का निर्माण क्रमशः इंजीनियरिंग, मॉडल, इलेक्ट्रिकल प्रोटोटाइप मॉडल एवं उड़ान मॉडल—1, में किया गया। प्रारम्भ में उपग्रह के सभी सब—सिस्टमों की डिजाइन परियोजना की प्रयोगशाला में उनकी कार्यक्षमता आँकने के उद्देश्य से ब्रेडबोर्ड माडल के रूप में की गई। तत्पश्चात उन्हें सभी निर्धारित गुणयुक्त (विभिन्न परीक्षणों में खरा उतार कर) बनाया गया। तदुपरांत एक इंजीनियरिंग मॉडल की रचना की गई जिसमें सबसिस्टमों के डमी डब्बे रखे गये। इस मॉडल पर कंपन, त्वरण, जड़त्व, गुरुत्व, केंद्र

गतिमान संतुलन एवं 'रूसी' राकेट से गठबंधन के परीक्षण सफलतापूर्वक किये गये।

इन्जीनियरिंग मॉडल की सफलता के बाद विद्युत प्रोटोटाइप मॉडल का निर्माण किया गया। इसमें सभी सक्रिय सबसिस्टमों के डिब्बे रखे गये। इन पर सर्वप्रथम अलग-अलग एवं बाद में इन सबको मिलाकर उन पर जटिल परीक्षण किये गये। इस मॉडल पर इन्जीनियरिंग मॉडल की भाँति त्वरण, गुरुत्व, जड़त्व, कंपन, गतिमान संतुलन आदि यांत्रिक परीक्षण किये गये। परियोजना के ग्राउंड चेक आउट ग्रुप द्वारा इस मॉडल पर केवल परीक्षण एवं रेडियो आवृत्ति परीक्षण भी किये गये।

इस प्रकार इन्जीनियरिंग और विद्युत प्रोटोटाइप मॉडल जब विभिन्न कसौटियों पर खरे उतरे तब उड़ान मॉडल के निर्माण का कार्य निम्नलिखित क्रम से आरम्भ किया गया :—

(1) **ढाँचे की पेन्टिंग** : हिन्दुस्तान एरोनाटिक्स लिमिटेड बंगलोर द्वारा निर्मित उड़ान मॉडल के ढाँचे की आंतरिक एवं बाह्य हिस्सों की [ताप नियंत्रण विश्लेषर के अनुसार] विशेष प्रकार के सफेद तथा काले पेन्टों से पुताई की गई। यह कार्य परियोजना के ताप नियंत्रण प्रणाली के इन्जीनियरों ने किया।

(2) **डिब्बों की तैयारी** : एल्यूमिनियम धातु के मिल्ड डिब्बे; सभी सबसिस्टमों के (जैसे टेलीकमाँड, टेलीमीटरी, पावर, ट्राँसमीटर, रिसीवर इत्यादि) निर्धारित पद्धति से तैयार किये गये। इन पर विभिन्न परीक्षण [जैसे ताप एवं शीत स्नान, कंपन तथा झटके शीत एवं ताप का थरमोवेक चेम्बर में उतार चढ़ाव आदि] किये गये।

(3) **डेक प्लेट की तैयारी** : उपग्रह की डेक प्लेट को परियोजना के एक हजार वर्गफुट के क्लीन रूप में एक विशेष प्रकार के स्टेन्ड पर रखा गया। इस प्लेट पर इलेक्ट्रॉनिक डब्बों का एक दूसरे से संबंध स्थापित करने हेतु फीडर प्रणाली अपनाई गई। डेक प्लेट पर टेपरिकार्डर एवं निकेल-कैडमियम बैटरियों को भी फिट किया गया।
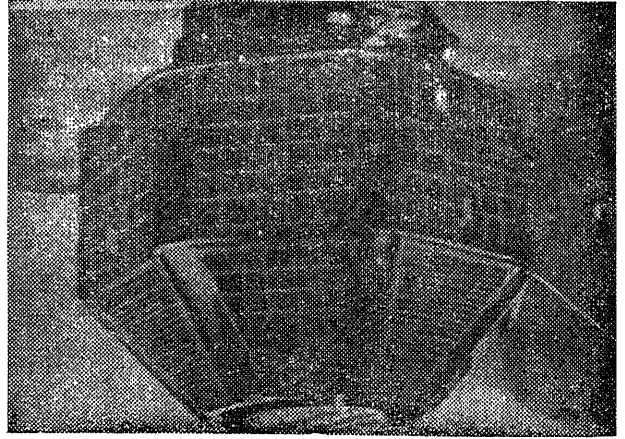
चित्र—भारतीय उपग्रह "आर्यभट 1"

आर्यभट के ऊपरी भाग में चार मोनोपोल एन्टेना, एलीवेशन एवं एजीमथ सौर सेन्सर, एक्सरे, न्यूट्रॉन-गामा तथा आयन मंडल प्रयोगों के संसूचकों को लगाया गया।

उपग्रह के निचले भाग में स्पिन प्रणाली (टाइटेनियम गैस की बोतलें, पाइरो वाल्व इत्यादि) को स्थापित किया गया। इसके बाद उपग्रह के इन तीनों हिस्सों को फीडर प्रणाली द्वारा संबंधित किया गया। सौर सेलों को भी निश्चित स्थानों पर लगा दिया गया।

उड़ान मॉडल पर परीक्षण :—आइये अब आपको उड़ान मॉडल पर प्रयोगशाला में किये गये अंतिम परीक्षणों से परिचित करायें :—

परियोजना के ग्राउंड चेक आउट ग्रुप द्वारा बनाये गये उपकरणों [केबल, आर. एफ. चेक आउट, एवं चेक आउट कंसोलों] अथवा पी डी

पी—11 कम्प्यूटर द्वारा उपग्रह के विभिन्न सबसिस्टमों (टेलीमीटरी, टेलीकमाँड, कम्यू-निकेशन, वैज्ञानिक प्रयोगों, टेपरिकार्डर, बैटरियों, स्पिन प्रणाली इत्यादि) पर अलग-अलग इलेक्ट्रॉनिक परीक्षण किये गये। इसके बाद सभी सब-सिस्टमों को एक साथ जोड़कर जटिल परीक्षण किये गये। तदुपरांत उड़ान माडल का गुरुत्व, जड़त्व, गतिज स्थिरता निकाली गई तथा स्पिन के परीक्षण किये गये। सभी परीक्षणों के बाद आर्यभट को एलू-मिनियम के एक विशेष प्रकार के बेलनाकार (व्यास–2 मीटर, उचाई–2 मीटर) कन्टेनर में रखा गया। यह कन्टेनर परियोजना में लगभग ६ मास की अवधि में बनाया गया। विद्युत प्रोटोटाइप मॉडल को कन्टेनर में रख-कर एक ट्रक में ৪0 कि. मी. विभिन्न प्रकार की सड़कों से गुजारा गया। कन्टेनर रोड परीक्षण में खरा पाया गया। प्रोटोटाइप मॉडल पर कोई टूट-फूट नहीं हुई। 17 मार्च को भारतीय वायुसेना के AN12 कारगो वायुयान द्वारा आर्यभट बहुत से अन्य परीक्षणयंत्रों सहित बंगलौर हवाई अड्डे से मास्को स्थित कास्मोड्रोम ले जाया गया।

अंतरिक्ष में छोड़ने की तैयारी :—

कास्मोड्रोम में टेक्नालाजिकल पोजीशन रोकेट लांचिंग टावर से लग-भग 8 कि. मी. दूर थी। आर्यभट के प्रक्षेपण हेतु प्रो० धवन, डा० ब्रह्म प्रकाश, लेखक सहित लगभग पचास इन्जीनियर एवं वैज्ञानिक सोवियत संघ गये थे। कास्मोड्रोम के टेक्नालो-जिकल पोजीशन पर आर्यभट कन्टे-नर से बाहर निकाला गया। आर्यभट बाहर से देखने पर ठीक दशा में पाया गया। कोई टूट-फूट नजर नहीं आई। आर्यभट को पुनः 3 हिस्सों में अलग-अलग किया गया। तली के हिस्से में स्थित स्पिन प्रणाली की बोतलों को 200 एटमासफियर से अधिक दाब पर हवा से भरा गया। स्पिन प्रणाली की जांच पड़ताल बड़ी सतर्कता से की गई। आर्यभट सभी सिस्टमों पर क्रमशः स्वः एवं जटिल परीक्षण पुनः किये गये। सफल परीक्षणों के बाद टेक्नॉलाजिकल पोजीशन पर रेलगाड़ी द्वारा लाये गये राकेट से जोड़ दिया गया तथा उसे राकेट के हीट-शील्ड से ढककर लांच-टावर तक ले जाया गया। यहाँ राकेट को प्रक्षेपण बुर्ज के सहारे उर्ध्वाधर स्थिति में रखा गया। धातु के बने
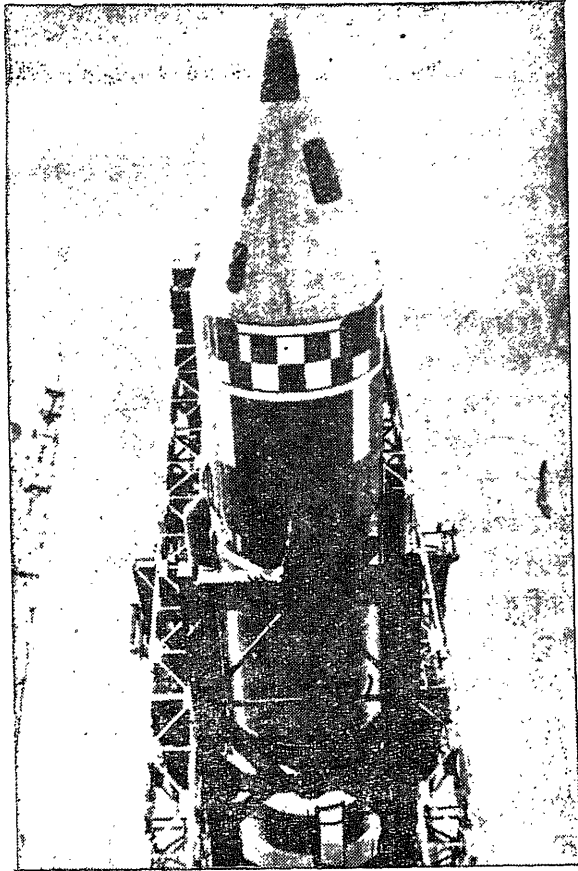
चित्र—राकेट जिसके द्वारा आर्यभट प्रक्षिप्त किया गया

तापकवच की एक खिड़की खोलकर, प्रोब एन्टेना की सहायता से ग्राउंड चेक आउट ग्रुप ने पुन: आर्यभट की जाँच पड़ताल की और उसे ठीक दशा में पाया। अब आर्यभट के प्रक्षेपण के दिन एवं समय की घोषणा प्रक्षेपण-आयोग (जिसके सदस्य प्रो. धवन ऐकेदेमिशियन पेत्रोव, लेखक एवं प्रो. कप्तू नियन्को थे) द्वारा पूर्ण तकनोकी परामर्श के बाद की गई। भारतीय समयानुसार दोपहर के एक बजे राकेट छोड़े जाने का निर्णय लिया गया। क्रमश: दिन, घंटे, मिनिट, सेकंड में काउन्ट डाउन कार्य आरम्भ हुआ 17 अप्रैल से आरंभ काउंट डाउन के दौरान, श्रीहरिकोटा, बेयर्स लेक, मास्को और बंगलौर के ग्राउंड स्टेशनों की तैयारियों का पूर्ण विवरण कोडयुक्त टेलिप्रिण्टर की भाषा में क्रमश: हर घंटे, हर मिनट, कम्यूनिकेशन लिंक (जो श्रीहरिकोटा, बंगलौर, बंबई, लंदन, मास्को, बेयर्सलेक तथा कास्मोड्रोम के बीच पंद्रह दिन के लिये अनवरत रूप से किराये पर ली गई थी) के द्वारा कास्मोड्राम भेजा जा रहा था।

पुनीत घड़ी आई और आर्यभट भारतीय समय के अनुसार बारह बजकर उनसठ मिनट पर, उनसठ दशमलव एक-एक सेकंड पर सोवियत राकेट पर सवार होकर पृथ्वी से अंतरिक्ष की ओर उड़ चला। ठीक एक बजकर अट्ठाइस मिनट, चौवन दशमलव नौ सेकंड पर संभवत: इंडोनेशिया के ऊपर आर्यभट को पृथ्वी के गिर्द अपनी कक्षा में स्थापित किया गया। राकेट से निकलते ही गतिज स्थिरता प्रदान करने के लिए आर्यभट को अपने ही अक्ष पर पचास चक्र प्रति मिनट की गति दी गई। तब से आर्यभट अपनी लगभग वृतीय कक्षा में छ: सौ कि० मी० की ऊँचाई पर, भूमध्यतल से 51° के झुकाव पर 46·1 मिनट में एक बार की गति से पृथ्वी की परिक्रमा करता आ रहा है। श्रीहरिकोटा व बेयर्स लेक में एवं बंगलौर ग्राउण्ड स्टेशनों पर युवा वैज्ञानिक बड़ी सावधानी एवं लगन से दिन में लगभग चार वार आर्यभट से संपर्क स्थापित करते हैं। आर्यभट से प्राप्त संदेश ग्राउंड स्टेशनों से बंगलौर स्थित 'मिशन कंट्रोल सेंटर' को भेजे जाते हैं। यहाँ इन संदेशों का पूर्ण विश्लेषण किया जाता है और तदनुसार उपग्रह को आदेश भेजने के बारे में निर्णय लिया जाता है। ग्यारह व बारह मई को परियोजना की प्रयोगशाला में बनाई गयी 'टोन रेंजिग' एवं 'डापलर' विधियों पर आधारित प्रणाली द्वारा अंतरिक्ष में आर्यभट की सही स्थिति का पता लगाया गया। एक माह में आर्यभट ने पृथ्वी की 450 परिक्रमाएँ पूरी कीं और वह तकनोकी दृष्टि से सकुशल है।

'आर्यभट' के अनुभव से क्या मिला ?

अब यह पूर्ण विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि भारतीय अंतरिक्ष विज्ञान विशेषज्ञों ने उपग्रह निर्माण एवं नियंत्रण तकनोक में पर्याप्त दक्षता प्राप्त कर ली है। भारत के पास अब एक अनमोल युवा दल है (जिसकी औसत आयु 30 वर्ष के लगभग है) जो भारत को अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त कराने में सक्षम है। इस अनुभव से भारतीय युवा दल को अंतरिक्ष विज्ञान की जटिल परियोजनाओं को समझने, चलाने तथा पूर्ण करने का साहस तथा सामर्थ्य प्राप्त हुआ है। वस्तुत: इस तरह की परियोजनाओं को पूर्ण करने के लिए आवश्यक है।

(1) पूर्णत: निश्चित उद्देश्य
(2) दिया गया निश्चित समय
(3) परियोजना के कार्यान्वियन हेतु साधनों का प्रबंध
(4) योग्य नेतृत्व एवं कर्मठ दल

भारत को इस तरह की परियोजनाएँ चलाने के लिये अब अनुभवी नेतृत्व भी प्राप्त है।

अंतरिक्ष में अगला कदम

आइये, अब अंतरिक्ष में भारत के अगले

कदम 'भू संपदा सर्वेक्षण उपग्रह' के बारे में जानकारी प्राप्त करें।

साधारणतः उपग्रह तकनोकी के सिद्धांतों के अनुसार उपग्रह के दो उड़ान मॉडल निर्मित किये जाते हैं। इस तरह यदि राकेट की किसी खराबी के कारण यदि प्रथम मॉडल अपनी कक्षा में न भेजा जा सके तो अल्प समय में ही दूसरा मॉडल प्रयुक्त किया जा सकता है। सौभाग्यवश 'आर्यभट' का प्रथम मॉडल पूर्णतः सफल रहा, अतः कुछ परिवर्तनों के साथ दूसरे मॉडल को भू संपदा सर्वेक्षण हेतु अंतरिक्ष में भेजे जाने का निर्णय लिया गया। अब उन ठोस आधारों पर गौर करें जिन पर 'भू संपदा सर्वेक्षण' उपग्रह का निर्माण कार्य हाथ में लिया गया।

(1) इसके लिये प्रथम उपग्रह के दूसरे उड़ान मॉडल पर निम्नतम परिवर्तन एवं व्यय की आवश्यकता होगी।

(2) उपग्रह से उपलब्ध वैज्ञानिक जानकारी फारेस्ट्री, मोटिअरॉलॉजी, हाइड्रोमीटिअरॉलॉजी, जिआलॉजी व ओशीनोग्राफी के क्षेत्रों में महत्वपूर्ण योगदान होगा।

(3) भारत के वर्तमान ग्राउंड स्टेशनों में न्यूनतम परिवर्तन, व अतिरिक्त सुविधाओं की आवश्यकता होगी, जिनके लिये न्यूनतम व्यय की आवश्यकता होगी।

(4) परियोजना दो वर्ष के अल्पकाल में पूरी की जा सकेगी।

इस उपग्रह में वैज्ञानिक प्रयोगों के स्थान भूसंपदा सर्वेक्षण उपकरण रखे जायेंगे।

इस उपग्रह में स्पिन अक्ष को कक्ष के लंब रूप रखने की व्यवस्था करना अत्यंत आवश्यक है। साथ ही साथ स्पिन दर छः से ग्यारह प्रतिभ्रमण प्रति मिनट के अंदर ही (तकनोकी कारणों से) रखनी होगी। इस प्रयोग में उपग्रह के मध्य भाग में दो टेलीविजन केमरा ट्यूब स्पिन अक्ष के लंबवत लगाने की व्यवस्था है। यह केमरा पृथ्वी की सतह को दो आप्टीकलबैंडों [जो ·5 माइक्रोन से 1·1 माइक्रोन तरंग लंबाई के बीच चुनो जायेगी] में देखेगा। ऐसी व्यवस्था रहेगी जिससे केमरा प्रति परिभ्रमण एक बार स्थानीय ऊर्ध्व को अवश्य देखेगा और इसी समय लगभग 400×400 किमी० क्षेत्र का फोटोग्राफ लेकर ग्राउंड स्टेशन को (टेलीमीटर संदेशों द्वारा) भेज सकेगा।

ग्राउन्ड स्टेशन में प्राप्त फोटोग्राफों को ग्राउन्ड ट्रुट्स विधि से [जिसके अनुसार अंतरिक्ष में गये स्थान विशेष के फोटोग्राफों की तुलना उस स्थान-विशेष की वास्तविक हालत, ग्राउन्ड गवेषणा द्वारा की जाती है] विश्लेषित किया जायेगा।

इन उद्देश्यों को सफलता तभी संभव है जब भारत में लगभग तीन ग्राउन्ड स्टेशन तथा एक फोटोग्राफिक विश्लेषण की उच्चतम स्तर की प्रयोगशाला मौजूद हो।

अहमदाबाद के अंतरिक्ष उपयोग केन्द्र में भूसंपदा सर्वेक्षण उपग्रह हेतु सेन्सर बनाये जाने का प्रयोजन है। इसी केन्द्र में फोटोग्राफिक विश्लेषण प्रयोगशाला का प्रस्ताव भी है। इस केन्द्र के लघु तरंग विभाग ने इस उपग्रह में एक माइक्रोवेव रेडियोमीटर रखने का प्रस्ताव पेश किया है जो रात्रि में (जब टेलीविजन कैमरा काम नहीं कर सकते) कार्य करेगा। इसके द्वारा समुद्र से ताप वायुमंडल की वाष्प तथा जल-कणों को गवेषणा को व्यवस्था है। यह रेडियो-मीटर 19 और 22 Kc/s पर कार्य करेगा। इसने 125×125 से 200×200 वर्ग कि० मी० क्षेत्रों का विश्लेषण करने की क्षमता होगी। यह प्रस्ताव विचाराधीन है।

●●

संचार उपग्रह

डा० सन्त प्रकाश

पृथ्वी का प्रथम कृत्रिम उपग्रह-स्पुतनिक 4 अक्टूबर, 1957 को रूस द्वारा प्रक्षेपित किया गया था। प्राय: लोग यही समझते हैं कि अंतरिक्ष अनुसंधान इसी दिन से प्रारम्भ हुआ। पर यहाँ पर यह बता देना उचित होगा कि वर्षों पहले न्युटन ने कृत्रिम उपग्रह को प्रक्षेपित करने की परिकल्पना प्रतिपादित की थी। न्युटन ने स्वयम यह गणना की थी कि यदि किसी प्रकार एक वस्तु को 8 किमी०/सि० की गति दी जाये तो वह पृथ्वी के चक्कर लगा सकती है। न्युटन का वही सपना वर्षों बाद वैज्ञानिकों के अथक प्रयास द्वारा साकार हुआ। अब तो व्यक्ति न केवल चन्द्रमा पर हो आया है बल्कि अंतरिक्ष में प्रयोगशाला की स्थापना की गई है एवम् अंतरिक्ष में अमेरिका और रूस के वैज्ञानिक, अपने-अपने यान में अलग-अलग स्थान से जाकर, एक दूसरे से मिल चुके हैं। अब मंगल ग्रह पर जाने की तैयारी हो रही है। बात यहीं नहीं समाप्त होती। अब तो भारत के 6 राज्यों के 2400 गाँवों मेंउपग्रह द्वारा शिक्षा देने का कार्यक्रम प्रारम्भ हो चुका है। यह तो सभी पाठकों को ज्ञात होगा कि भारत के वैज्ञानिकों ने 'आर्यभट' उपग्रह को प्रक्षेपित करके विश्व को यह दिखा दिया है कि अब हम भी किसी से कम नहीं हैं।

कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी का एक पूरा चक्कर लगाने में कुछ समय लगाते हैं। इन उपग्रहों के गति को इस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है कि वे पृथ्वी की परिक्रमा 24 घंटे में एक बार लगायें। ऐसी दशा में इसका परिभ्रमण काल 24 घंटे का होगा। पृथ्वी इसी समय में अपने अक्ष के चारों ओर चक्कर लगाती है। अब यदि इस उपग्रह को भूमध्य रेखीय तल में रखते हुए लगभग 36000 कि०मी० ऊपर इस प्रकार स्थापित करें कि यह पश्चिम से पूर्व दिशा की ओर भ्रमण करे तो जितनी देर में एक परिक्रमा करेगा उतनी ही देर में पृथ्वी भी अपनी धुरी पर एक बार घूम जायेगी। तब पृथ्वी के किसी भी स्थल से देखने पर यह उपग्रह पृथ्वी के सापेक्ष स्थिर दिखाई देगा। ऐसे उपग्रहों को भूस्थैतिक उपग्रह कहते हैं। ऐसे ही उपग्रहों की परिकल्पना आर्थर क्लार्क ने 1945 में की थो जिसके द्वारा विश्व के एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए संचार सम्भव हो सके।

प्रायोगिक संचार उपग्रह, टेलस्टार (1962) एवम् रिले (1963) की सफलता के बाद उपग्रह द्वारा संचार करने के लिए 1964 में इण्टरनेशनल टेलिकम्युनिकेशन सैटेलाइट कान्सार्टियम (INTELSAT) की स्थापना की गई। सारे विश्व को तीन भागों में बाँटा गया :

(1) हिन्द महासागर क्षेत्र
(2) अटलांटिक महासागर क्षेत्र
(3) प्रशान्त महासागर क्षेत्र

1965 से अब तक 4 उपग्रह छोड़े जा चुके हैं। सबसे बड़ा एवं सबसे अधिक शक्तिशाली एवं महत्वपूर्ण उपग्रह एटीस 6 (एप्लिकेशन टेक्नॉलॉजी सैटेलाइट) 30 मई, 1974 को अमेरिका द्वारा छोड़ा गया था। इस उपग्रह ने गोलापैगो द्वीप के ऊपर लगभग 36000 कि०मी० की ऊंचाई पर भूस्थैतिक कक्षा में घूमना प्रारम्भ किया था। इसका ट्रांसमीटर इतना शक्तिशाली है कि यहां से

पुनः प्रसारित होने वाले रेडियो एवं टेलीविजन संकेत पृथ्वी पर स्थित विशेष प्रकार के टेलीविजनों पर सीधे ही ग्रहण किये जा सकते हैं। लगभग एक वर्ष तक इस उपग्रह ने अमेरिका के दूर-दराज के स्थानों, अलास्का, राकी पर्वत प्रदेश आदि को शिक्षा, परिवार नियोजन, कृषि एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी टेलीविजन कार्यक्रम प्रसारित किया।

संचार व्यवस्था के लिए रेडियो और टेलीविजन दोनों ही प्रयोग में आते हैं परन्तु रेडियो और टेलीविजन में अन्तर है। रेडियो प्रसारण रेडियो तरंगों की सहायता से होता है। यह तरंगें आयन मण्डल से टकरा कर धरातल पर वापस आती हैं और रेडियो द्वारा ग्रहीत हो जाती हैं। टेलीविजन के लिये सूक्ष्म तरंगें (माइक्रोवेव) प्रयुक्त होती हैं जो आयन मण्डल को भेदकर वाह्य अन्तरिक्ष में निकल जाती हैं और टेलीविजन के मीनार से भेजी जाने वाली तरंगें 60-70 किमी० दूर तक ही ग्रहीत होती हैं। टेलीविजन केन्द्र की मीनार से प्रसारित होने वाली सूक्ष्म तरंगें या तो वाह्य अन्तरिक्ष में पहुँच जायँगी या पृथ्वी के गोलाकार होने के कारण क्षितिज की ओर कुछ दूर तक धरातल के समानान्तर चलकर अन्त में छोर पर पहुँच जायँगी और वहीं तक उन्हें ग्रहण किया जा सकता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये ही संचार उपग्रह का लाभ उठाया जा रहा है।

20 मई, 1975 को इस उपग्रह की 1200 किमी० की अन्तरिक्ष यात्रा प्रारम्भ हुई जिससे वह पूर्वी अफ्रीका में विक्टोरिया झील के ऊपर भूस्थैतिक कक्षा में घूम सके। यह क्रिया उपग्रह में लगे हाइड्रोजन जेटों द्वारा पूरी की गई। यह उपग्रह जून के अंतिम सप्ताह में निर्धारित स्थान पर पहुँच पाया। पृष्ठ 46 पर चित्र में इलेक्ट्रॉनिक कार्पोरेशन इंडिया लिमिटेड द्वारा निर्मित चिकेन मेश एंटेना जो 801 MHZ आवृत्ति की तरंगें सीधे उपग्रह से ग्रहण करता है दिखाया गया है।

यह उपग्रह 8·1 मीटर लम्बा है एवम् इसका भार 1400 किग्रा० है। इसमें 9 मीटर व्यास का एक छतरी के आकार का परिवर्तक एंटेना लगा हुआ है। सामने की ओर एक चिकेन मेश तथा एक अन्य परिवर्तन एंटेना लगा है जिसकी सहायता से सीधे ए. टी. एस.—6 से संकेतों को बिना ट्रांसमीटर का प्रयोग किये ग्रहण किया जा सकता है। इस संचार उपग्रह का एंटिना नागपुर की ओर निर्दिष्ट है। नागपुर भारत के मध्य स्थित है इसलिए अधिकांश क्षेत्रों में इससे टेलिविजन कार्यक्रम प्रसारित हो सकता है।

1969 में भारत ने अमेरिका से एक समझौता किया था जिसके द्वारा भारत भी 1 अगस्त 1975 से Satellite Instructional Television Experiment (SITE) कार्यक्रम प्रारम्भ कर सके। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन ने, जिसका मुख्यालय बैंगलोर में है, भारत के 6 राज्यों के (बिहार, राजस्थान, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, आन्ध्र प्रदेश तथा कर्नाटक) 2400 गाँवों को प्रसारण के लिए चुना है। प्रसारण के लिए कार्यक्रम 'आकाश वाणी' द्वारा तैयार किया गया है जिन्हें दिल्ली एवम् अहमदाबाद स्थित 'अर्थ स्टेशन' से ए. टी. एस. 6 तक भेजने की व्यवस्था है।

इस शिक्षक उपग्रह की सहायता से इन गाँवों में स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, कृषि, उद्योग एवम् शैक्षिक कार्यक्रम दिखाये जाने की सुविधा है। इन गाँवों में टेलिविजन सेट रखे गये हैं जो सामान्य टेलीविजनों से भिन्न हैं और जिन्हें इलेक्ट्रानिक कार्पोरेशन इंडिया लिमिटेड ने विशेष ढंग से बनाया है। इन विशेष प्रकार के टेलीविजन सेटों को बनाने का श्रेय भारतीय इलेक्ट्रॉनिक निगम, हैदराबाद को है और इसका मूल्य लगभग रु. 4000 प्रति सेट है। अभी सामान्य टेलीविजन सेटों में ये कार्यक्रम नहीं देखे जा सकते पर ऐसी आशा की जा रही है कि निकट भविष्य में थोड़े से परिवर्तन से ही ये कार्यक्रम देखे जा सकेंगे।

1 अगस्त, 1975 की सायंकाल से टेलीविजन शैक्षणिक कार्यक्रम प्रारम्भ होने पर भारत ने जन-संचार के नये युग में प्रवेश किया। लगभग 24 हजार। टेलीविजन सेटों पर बहुत ही साफ चित्र दिखाई दिये। सूचनाओं के अनुसार गांव के लोगों ने इस कार्यक्रम को बड़े जोश के साथ देखा। ये ग्रामीण अब सारे संसार के हाल-चाल घर बैठे ही देख रहे हैं। इनमें से बहुत से लोगों ने तो सिनेमा भी कभी नहीं देखा था। उनके लिए यह विश्वास करना मुश्किल हो रहा था कि सिनेमा को भी सिकोड़ कर डिब्बे में दिखाया जा सकता है। समाचार पत्रों से ज्ञात हुआ है कि कुछ लोग इतने विभोर थे कि
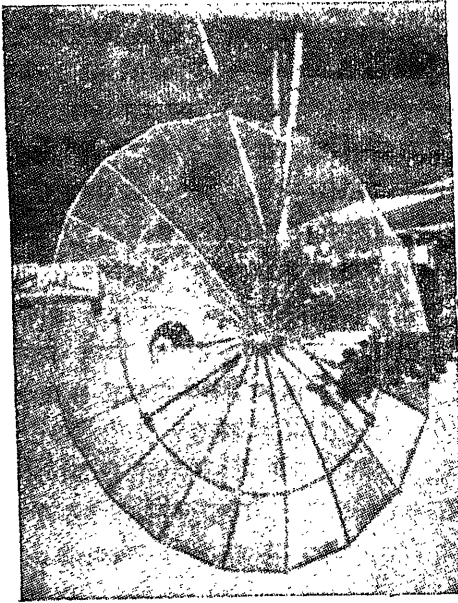
चित्र—चिकेन मेश एंटेना

जैसे चन्द्रमा ही उनके हाथों में आ गया हो। अपने जीवन के इस अनुभव को ये लोग संजोकर रखना चाहते हैं।

इन चुने हुए गाँवों में विभिन्न प्रकार की भाषाएँ बोली जाती हैं। अतः प्रसारण के लिए प्रादेशिक भाषाएँ प्रयोग में लाई जा रही हैं। उदाहरणार्थ : राजस्थान, बिहार तथा मध्य प्रदेश के लिए हिन्दी भाषा में प्रसारण हो रहा है। उड़िया भाषा उड़ीसा में प्रयुक्त होगी, आन्ध्र प्रदेश को तेलगू कार्यक्रम देखने को मिलेगा तथा कर्नाटक में कन्नड़ भाषा का प्रयोग हो रहा है। ये क्षेत्र भौतिक एवम् सांस्कृतिक सामीप्य तथा भाषा में विविधता के कारण चुने गये हैं। अर्थात् टेलीविजन का चित्र वही होगा किन्तु टिप्पणी की भाषा उस राज्य विशेष की होगी।

देश के जन संचार माध्यमों में यह सबसे अधिक मँहगा है। वर्तमान प्रदर्शन में प्रति मिनट पर सरकार इस पर लगभग रु० 3000 से अधिक खर्च कर रही है। कुछ लोग यह सोच रहे होंगे कि भारत सरकार इतना अधिक धन क्यों व्यय कर रही है। भारत की जनता गाँवों में रहती है। हम लोगों को गाँवों को सुधारना है। जैसे-जैसे विज्ञान की जानकारी बढ़ती है, वैसे-वैसे हमारी आवश्यकताएँ भी बढ़ती हैं। देश को महान बनाने के लिए जीवन में सुधार लाना है तो देश के स्वास्थ्य को सुधारना है, उसके लिए सफाई आवश्यक है। बच्चों का इलाज कैसे हो, पौष्टिक भोजन कैसे पकाया जाये, जितनी चीजें गाँवों में या गाँवों के पास हैं, चाहे पौधे हों या दूसरी चीज हो, उनका अच्छे से अच्छा इस्तेमाल कैसे करें? ये विचार हमारे प्रधान मंत्री के हैं। इससे सिद्ध होता है कि उपग्रह द्वारा शिक्षा हम सभी के लिए एवं हमारे देश को आगे बढ़ाने के लिए बहुत ही उपयोगी है।

इन कार्यक्रमों के अलावा यह उपग्रह 40, 140 एवम् 360 MHz पर विद्युत-चुम्बकीय तरंगें भी भेज रहा है जो अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए उपयोगी हैं। अंतरिक्ष में स्थित आयन मण्डल का अध्ययन करने के लिए भारत में कई स्थानों पर इन तरंगों का उपयोग किया जा रहा है। अफ्रीका एवं योरोप के देशों में भी इस प्रकार का अध्ययन हो रहा है। आयन मण्डल में इलेक्ट्रॉन

उपस्थिति, आयन मण्डलीय अवशोषण तथा प्रदीपन में होने वाली छोटी-छोटी त्रुटियों आदि का अध्ययन किया जायेगा। इस प्रकार का अध्ययन संचार व्यवस्था को अधिक उपयोगी बनाने के लिए बहुत ही आवश्यक है। अगस्त, 1976 में यह उपग्रह पुनः अपनी पूर्व स्थिति में पहुँचा दिया जायेगा और अगले तीन वर्षों तक अमेरिका के लिए टेलीविजन प्रसारण का कार्य करता रहेगा।

●●

अन्तरिक्ष विज्ञान पर कुछ उपयोगी पुस्तकें

पुस्तक	लेखक
सौर परिवार	डॉ० गोरख प्रसाद
नीहारिकायें	,,
अनन्त की ओर	रमेश वर्मा
झिलमिलाते तारे	,,
वैज्ञानिक विकास की भारतीय परम्परा	डॉ० सत्य प्रकाश
अन्तरिक्ष यात्रा	गुणाकर मुले
मंगल की यात्रा	दुर्गा प्रसाद खत्री
द एक्सप्लोरेशन आफ स्पेस	आर्थर सी० क्लार्क
द एक्सप्लोरेशन आफ मून	,,
द साइंस बुक आफ स्पेसट्रैवेल	हैरोल्ड गुडविन
द युनिवर्स एराउन्ड अस	सर चेन्स जीन्स
लाइफ ऑन अदर वर्ल्ड्स	सर हैरोल्ड जोन्स
इन्टरप्लेनेटरी ट्रैवेल	स्टर्नफेल्ड
द एक्सपैंडिंग युनिवर्स	सर ए० एडेंग्टन
द सोवियट इंसाइक्लोपीडिया	संकलन
आफ स्पेस फ्लाइट	जी० वी० पेट्रोविच
वॉयज टू द मून	रोस्कोट पिल्ले
रॉकेट, मिसाइल एण्ड स्पेस ट्रैवेल	विली ले

क्या आप जानते हैं ?

● चन्द्रमा का आयतन पृथ्वी के आयतन का $\frac{1}{50}$ है।

● चन्द्रमा का भार पृथ्वी के भार का $\frac{1}{80}$ है।

● चन्द्रमा का व्यास पृथ्वी के व्यास का $\frac{1}{4}$ है।

● चन्द्रमा का पृष्ठ क्षेत्रफल पृथ्वी के पृष्ठ क्षेत्रफल का $\frac{3}{40}$ है।

● चन्द्रमा की गुरुत्वशक्ति पृथ्वी की गुरुत्व शक्ति का $\frac{1}{6}$ है।

● चन्द्रमा में कोई वायु मण्डल नहीं है।

● चन्द्रमा का अधिकतम ताप $+121°$ से0 ग्रे0 होता है और न्यूनतम ताप $-156°$ से0ग्रे0 है।

● चन्द्रमा का एक दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक पृथ्वी के दो सप्ताह के बराबर होता है। इसी प्रकार रात भी दो सप्ताह के बराबर होती है।

● चन्द्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है और उसकी दूरी 3,53,000 से 4,05,500 किमी0 तक होती है।

● चन्द्रमा की परिक्रमा का वेग 3680 किमी0 प्रति घण्टा है।

● चन्द्रमा का एक चक्कर पूरा होने में 27 दिन 7 घण्टा 11 मिनट तथा 5 सेकण्ड लगता है।

● चन्द्रमा पर सबसे बड़ा पहाड़ एवरेस्ट से भी ऊँचा है।

● चन्द्रमा पर 9,10,000 क्रेटर हैं।

● चन्द्रमा का जन्म अनुमानतः $4500 \times (1000000)^3$ वर्ष पूर्व हुआ था।

● चन्द्रमा पर मनुष्य ने प्रथम अन्तरिक्ष यान स्पुतनिक–1 की उड़ान के 11 वर्ष 9 महीने 16 दिन बाद 21 जुलाई 1969 को पहला कदम रखा।

● चन्द्रमा से दिखने वाले तारों की संख्या पृथ्वी की अपेक्षा 100 गुनी अधिक है।

● चन्द्रमा का आकाश गहरा काला है क्योंकि वायुमण्डल न होने के कारण प्रकाश की किरणें बिखर नहीं पातीं।

● चन्द्रमा पर एक क्रेटर का नाम भारतीय वैज्ञानिक डा0 साराभाई के नाम पर विक्रम अम्बा-लाल साराभाई क्रेटर रखा गया है।

●●

एक चीनी कथा के अनुसार वहाँ की सुन्दर रानी श्युडंग नोर 2188 (ईसा से पूर्व) में अपने निर्दयी पति राजा होन शी से बचने के लिए चाँद पर उड़ गई थी और अपने साथ ऐसी जीवन दायिनी दवा ले गई थी जिससे वह वहां सदैव रह सके।

अपोलो-सोयूज संगमन

(अन्तरिक्ष में ड्रामा)

रवि गर्ग

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महान वैज्ञानिक अन्वेषण का मिशन मंगलवार 15 जुलाई, 1975 को आरम्भ हुआ। उस दिन मध्य एशिया में कजाखस्तान में स्थित बैकोनूर उड़ान स्थल से सोवियत अन्तरिक्षयान—सोयूज 19 दो अंतरिक्षयात्रियों-अलेक्जी तथा वैलेरी कुबासोव को लेकर भारतीय समयानुसार 10·50 पर एस-एल-4 बूसटर राकेट द्वारा प्रक्षेपित हुआ। प्रक्षेपण के 40 मिनट बाद मास्को से 200 किमी. उत्तर-पश्चिम में स्थित सोवियत मिशन कन्ट्रोल केन्द्र, कालिनीन से यह घोषणा की गयी कि सोयूज पृथ्वी की कक्षा में पहुँच गया है और 88 मिनट 49 सेकंड में पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है। इसकी अधिकतम ऊँचाई 220.8 किमी. तक तथा न्यूनतम 18·75 किमी. थी और यह विषुवत रेखा से 51·78 अंश पर उड़ रहा था। 140 सेकंड के बाद सोयूज पृथ्वी के वायुमण्डल से परे पहुँच गया। 500 सेकण्ड बाद लियोनोव ने बताया था कि उनका यान 7 किमी. प्रति सेकण्ड की गति से जा रहा है और वह प्रक्षेपण केन्द्र से 1000 किमी. दूर पहुँच गया। इसके ठीक 7·30 घण्टा बाद ह्यूस्टन अन्तरिक्ष केन्द्र से भारतीय समयानुसार 1·20 मिनट पर अमरीकी अंतरिक्षयान अपोलो का प्रक्षेपण किया गया जिसमें तीन यात्री थामस स्टेफोर्ड, वान्स ब्रैण्ड तथा डोनाल्ड स्लेटन उड़ान भर रहे थे। अपोलो का प्रक्षेपण सैटर्न आई-बी राकेट द्वारा किया गया।

अपोलो-सोयूज संयुक्त उड़ान की योजना तैयार करने का कार्य 1972 में प्रारम्भ हुआ था। अमरीकी वैज्ञानिकों, तकनीशियन तथा अंतरिक्ष यात्री मास्को जाकर रूसी वैज्ञानिकों, तकनीशियनों तथा अन्तरिक्ष यात्रियों के साथ मिल-जुल कर कार्य कर रहे थे। यही क्रम इन वैज्ञानिकों को अमरीकी अन्तरिक्ष केन्द्र ह्यूस्टन में परीक्षित करने का चला। प्रक्षेपण से एक मास पहले तक 80 सोवियत व अमरीकी इन्जीनियरों व वैज्ञानिकों की ह्यूस्टन में बैठक चलती रही। यह बैठक 10 जुलाई को समाप्त हुई। दोनों देशों की वैज्ञानिक टोलियों की 8वीं बैठक थी। अपोलो-सोयूज संयुक्त उड़ान का उद्देश्य अंतरिक्ष में मानक उड़ानों को सुरक्षित करना तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सहयोग द्वारा संयुक्त गवेषणा करना था। ध्यान रहे कि पिछले 10 वर्षों से दोनों देशों के बीच होड़ व स्पर्धा इतनी अधिक थी कि एक साथ कार्य करने का प्रश्न ही नहीं उठता था।

वैसे तो सोवियत रूस अपने अन्तरिक्ष उड़ानों को सदैव किसी को देखने नहीं देता था पर इस बार दोनों देशों में इस उड़ान के प्रचार के लिए इतनी अधिक व्यवस्था की गयी थी कि पहली बार लोग सोयूज उड़ान को टेलीविजन पर देख सकें। मास्को में गोर्की मार्ग पर इन्टूरिस्ट होटल में एक प्रेस केन्द्र भी स्थापित किया गया था। होटल के एक बड़े कक्ष में रंगीन टेलीविजन सेट, टेलिटाइपराइटर लगा दिए गए थे। अंतरिक्ष यान में उड़ान भरते अंतरिक्ष कर्मीदल के साथ एक संवाददाता सम्मेलन संवाददाताओं के लिए प्रमुख घटना थी। मास्को में छः सौ संवाददाताओं में से 400 विदेशी संवाददाता इन संयुक्त उड़ान में रुचि

ले रहे थे और समाचार का आदान-प्रदान कर रहे थे। उड़ान की मुख्य अवस्थाओं जैसे डाकिंग, कर्मीदल का स्थानान्तरण, एक दूसरे से अलग हटना तथा काउन्ट डाउन आदि का टेलि-प्रसारण किया गया, जिस पर कास्मोनाट पोपोविच, शोनिन रोमानेको आदि ने टिप्पणी किया।

17 जुलाई को अन्तरिक्ष उड़ानों के इतिहास में यह पहली बार हुआ कि दो यानों का अंतरिक्ष में नाटकीय ढंग से संगमन सम्पन्न हुआ। यह संगमन पृथ्वी से 224 किमी0 ऊपर अपने निर्धारित समय से 6 मिनट पहले भारतीय समयानुसार 21:39 पर पुर्तगाल से कुछ दूर एटलांटिक सागर के ऊपर हुआ। जैसे ही संगमन हुआ सोवियत कास्मोनाट लियोनोव ने रूसी भाषा में Stxkova Vxpol Nena (अर्थात्, डाकिंग पूर्ण) कहा तथा अपोलो यात्री बैण्ड ने यह सूचना दी कि—We are docked इसके उत्तर में लियोनोव ने कहा Good Show, Tom, well done.

संगमन से एक घण्टा पूर्व अपोलो 38 कि0 मी0 दूरी पर सोयूज के पीछे पहुँचा और स्थिर हो गया 18·34 पर स्लेटन ने रूसी में और कोबोसोव ने अंग्रेजी में एक दूसरे से बातचीत की, तत्पश्चात यानों का सफल संगमन हुआ। संगमन के तीन घंटे पश्चात् स्टैफोर्ड तथा स्लेटन अपोलो से सोयूज में गए और संयुक्त उड़ान के प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर किए। तत्पश्चात् दोनों अमरीकी अन्तरिक्ष यात्रियों ने सोयियत अन्तरिक्ष यात्रियों के साथ भोजन किया।

सम्मिलन से 4 मिनिट पूर्व लियोनोव ने अंग्रेजी में कहा था कि हम सम्मिलन के लिए तत्पर हैं। इस समय अपोलो का संचालन स्लेटन कर रहे थे जो द्वितीय महायुद्ध में बमवर्षक के चालक रह चुके हैं।

सोयूज़ और अपोलो यान तो पहले भी उड़ानों में प्रयुक्त किए जा चुके थे। इस बार विशेष प्रकार से एक 'डाकिंग माड्यूल' बनाया गया था जो दोनों यानों के बीच गलियारे का कार्य तथा दाब विहीन करने का कार्य करता था। इसी में होकर यानयात्री एक दूसरे के यानों में आते-जाते थे। अमरीकी तथा रूसी डाकिंग माडयूल में अन्तर था। बाद में मिला-जुला माड्यूल तैयार किया गया। सोवियत टैकनिकल डाइरेक्टर बुशचोब के अनुसार सोयूज के भीतरी वातावरण को अपोलो अन्तरिक्ष यान के भीतरी वातावरण जितना ही आरामदेह बनाने के लिए सोवियत वैज्ञानिकों ने अन्तरिक्ष यान के अन्दर हवा के दबाव को घटा दिया था तथा आक्सीजन की मात्रा बढ़ा दी थी। इसके अतिरिक्त नये एन्टीना, नये संचार उपकरणों, फ्लैश, किरणों, बत्तियों तथा ऐसी आक्षिक लक्ष्य की व्यवस्था की गयी थी कि जिससे अपोलो को सोयूज़ से संगमन में मदद मिली। ध्यान रहे दोनों देशों ने मिला कर इस योजना पर 50,000,000,00 डालर (लगभग 40,00,0000,000 रुपया) खर्च किया। सोयूज़ के भीतर नाइट्रोजन व आक्सीजन का मिश्रण एटमास्फियर दाब पर था और जैसा कि पृथ्वी पर समुद्रतल पर होता है जब कि अपोलो में शुद्ध आक्सीजन केवल 0·34 एटमास्फियर दाब पर थी।

अमरीकियों को जगाने के लिए एक रॉक एण्ड रोल समूह ने 'वेक अप सनशाइन' की धुन बजाई थी। नाश्ते में स्टैफोर्ड तथा स्लेटन ने स्ट्राबेरी, अंडा, अंगूर के साथ नीबू, चाय लिया जब कि ब्रैण्ड ने स्ट्राबेरी, अंगूर, ब्रेड तथा काफी लिया। वैसे रूसियों की दावत अपोलो में तथा अमरीकियों की दावत सोयूज़ में भी हुई। संगमन से पूर्व अमरीकी यात्री 45 मिनट पहले ही जग गये थे जबकि रूसी यात्रियों की घड़ी 2 मिनट लेट थी। रूसियों ने अपनी घड़ी ठीक की और अमरीकी निर्धारित समय के लिए लेट गये थे।

संगमन के बाद 21·50 पर लियोनोव तथा कुबासोव 'स्पेससूट' पहन कर 'आर्बिटल

माड्यूल' में गये और यान तथा माड्यूल का दाब बराबर किया। उसके बाद तीन घण्टे तक अपने अमरीकी सहकर्मियों के स्वागत करने की तैयारी में जुट गये। साथ-साथ प्रयोग करके अमरीकी यात्री अपने यान में वापस चले गये। बाद में संगमन का जो कार्य अपोलो ने किया था वही फिर से सोयूज़ ने किया। इस सम्मिलन का उद्देश्य यह था कि क्या अपोलो की भाँति सोयूज़ भी दोनों यानों को जोड़ने की प्रक्रिया में सक्षम है। इस द्वितीय सम्मिलन के बाद वे सदैव के लिए अलग हो गये थे। इस प्रयोग का एक बहुत बड़ा लाभ यह है कि यदि कोई अन्तरिक्ष यान अन्तरिक्ष में पहुँच कर दुर्भाग्यवश किसी ऐसी कठिनायी में फँस जाता है कि उसका पृथ्वी पर लौटना सम्भव नहीं हो तो दूसरा यान जाकर उन यात्रियों को वापस पृथ्वी पर ला सकता है।

सम्मिलित प्रयोगों में एक प्रयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा-वह था कृत्रिम सूर्यग्रहण का अध्ययन। अन्तरिक्ष में यह प्रयोग करके अनेक वैज्ञानिक उपलब्धियों की शृंखला में एक और महान कड़ी जोड़ी गयी। कृत्रिम सूर्यग्रहण उत्पन्न करने के पूर्व गुरुवार से ही जुड़े यान एक दूसरे से, पृथक् हुए। तत्पश्चात अपोलोयान सूर्य व सोयूज़ के मध्य में जाकर स्थिर हो गया जिसके फलस्वरूप काली छाया सोयूज़ पर पड़ने लगी और उसे धीरे-धीरे ग्रस लिया। इस कृत्रिम सूर्यग्रहण के चित्र अपोलो ने अपने कैमरे द्वारा चित्रित किया और टेलीविजन पर भेजा। सोयूज़ के यात्रियों ने विशेष फिल्म की सहायता से कृत्रिम सूर्यग्रहण का छायांकन किया जिससे वैज्ञानिकों की सौवलय (सौर-मण्डल में गैसों के वातावरण) के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

उस ऊँचाई पर कितनी नाइट्रोजन व आक्सीजन है, इसका पता लगाया गया। सूक्ष्म जीवों का अन्तरिक्ष यात्री कैसे अवरोध करते हैं, इसकी जाँच की गयी। एक प्रयोग यह भी था कि विद्युत भट्टी में क्या संशोधित चुम्बकीय पदार्थों का निर्माण करके उनकी जाँच की जा सकती है तथा क्या विभिन्न अर्ध चालकों के क्रिस्टलों को भारहीनता तथा निर्वात में बनाया जा सकता है। अपोलो ने सेरम तथा वैक्सीन बनाने, स्थानीय पृथ्वी को गुरुत्व के त्रुटि, खनिज स्रोतों, भूचाल, ज्वालामुखी सक्रियता आदि सम्बन्धी शोध किये।

अपने यात्रियों सहित सोयूज़ सोमवार 21 जुलाई को वापस होकर साइबेरिया के मध्य एशिया में उतर आया जबकि अपोलो कुछ और परीक्षणों के लिए रुककर गुरुवार 24 जुलाई को होनूलूलू से 555 कि० मी० दूरी पर प्रशान्त महासागर में उतरा। इस प्रकार इस महान परियोजना का सफल अन्त हुआ जिसने अन्तरिक्ष विज्ञान में एक नया अध्याय खोल दिया। हम उन सभी वैज्ञानिकों, इंजीनियरों के प्रति गर्व अनुभव करते हैं। नई परियोजना के अनुसार अमेरिकी वैज्ञानिक मंगल ग्रह पर उतरने की दिशा में प्रयत्नशील हैं। वह दिन शायद दूर नहीं जब मनुष्य दूसरे ग्रह पर भी पहुँच जायगा और यदि वहाँ जीवधारी हुये तो नई सभ्यता का हमें पता लग सकेगा।

● ●

ज्ञान बढ़ाओ पहेली

यहाँ अन्तरिक्ष खोजों से सम्बन्धित एक पहेली प्रस्तुत की जा रही है। आप अपनी बुद्धि परखिये कि आप को कितना मालूम है। सब सही उत्तर भेजने वालों के नाम 'विज्ञान' में प्रकाशित किये जाँयगें। आप पहेली भर कर सम्पादक के नाम कार्यालय में 10 फरबरी तक भेज सकते हैं।

बायें से दायें

1. भारत द्वारा निर्मित, रूस द्वारा प्रक्षेपित अन्तरिक्ष यान।

2. सोयूज़ में उड़ कर जाने वाले यात्रियों की संख्या।

3. 1969 में किस तिथि को मनुष्य ने चन्द्रमा पर पैर रखा।

4. यदि किसी वस्तु का पृथ्वी पर भार 180 कि० ग्रा० है तो चन्द्रमा पर उसका भार········ कि० ग्रा० होगा।

5. चन्द्रमा का एक दिन पृथ्वी के··········· दिनों के बराबर होता है।

6. चन्द्रमा के आकाश का रंग········है।

7. अन्तरिक्ष यान जिसमें प्रथम मानव उड़ा।

8. अपोलो उड़ानों में प्रयुक्त होने वाला रॉकेट।

ऊपर से नीचे

9. चन्द्रमा पर कदम रखने वाला दूसरा व्यक्ति।

10. प्रथम महिला अन्तरिक्ष यात्री।

11. मंगल ग्रह का रंग········है।

12. वर्ष जिसमें मंगल ग्रह को वाइकिंग यान भेजा गया।

13. द्रव ईंधन से रॉकेट उड़ाने वाला प्रथम वैज्ञानिक।

14. अपोलो-सोयूज़ संयुक्त उड़ान में सोयूज़ के कमाण्डर।
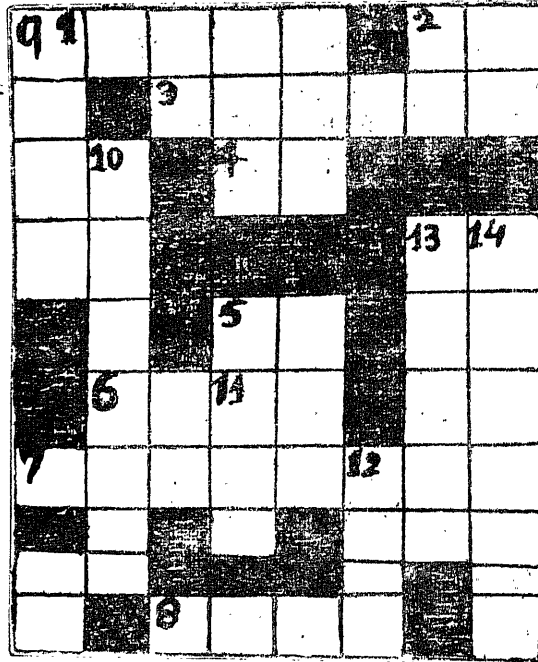
अन्तरिक्ष विज्ञान : मानवता के लिए चुनौती

| डा० शिवगोपाल मिश्र |

अन्तरिक्ष से हमारा तात्पर्य पृथ्वी और स्वर्ग के बीच उस स्थान से है जो सामान्यत: आकाश या आसमान कहलाता है। आसमान की ओर आँखें उठाने पर नीलिमा के सिवाय कुछ भी तो नहीं दिखता। उसकी ऊँचाई का कुछ भी आभास नहीं मिल पाता जिस प्रकार कि नीले महासागर की गहराई का। यदि उसमें कुछ दिखता है तो दिन को सूर्य और रात के समय चाँद तथा अनगिनत तारे। साधारणत: तारों में ही हम मंगल, शुक्र, बुध जैसे ग्रहों की भी गिनती कर लेते हैं। इन ग्रहों तथा तारा मंडलों के सम्बन्ध में ज्योतिर्विदों ने अत्यन्त प्राचीन काल से अनेक अटकलें तथा मापें की हैं किन्तु पृथ्वी से कौन ग्रह कितनी दूर पर है अब इसका सही-सही ज्ञान है। फिर भी ये ग्रह कैसे हैं? इन पर जीवन है या नहीं? ऐसी जिज्ञासाएँ तो सदैव ही उठती रही हैं। गैलीलियो ने जिस दूरबीन के द्वारा ग्रहों के अवलोकन की परम्परा सदियों पूर्व स्थापित की थी वह आज भी चालू है और उसी का परिणाम है कि मंगल ग्रह में जीवन की सम्भावना व्यक्त की जाती है। किन्तु पृथ्वी पर बैठे इन ग्रहों या उप-ग्रहों के भीतर क्या है—इसका पता नहीं चल पा रहा था अत: मनुष्य में ग्रहों तक पहुँचने की लालसा बलवती थी।

लेकिन ग्रहों या उपग्रहों तक पहुँचना कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि पृथ्वी और इनके बीच आकाश का व्यवधान जो बना है! जितना ऊपर जाइये प्राणदायिनी वायु आक्सीजन का लोप होता जाता है, वायु दाब घटता जाताहै। अत: प्रारम्भ में पृथ्वी के ऊपर 50-100 किलोमीटर तक के आकाश तक ही मानव की रुचि सीमित रही। लेकिन अन्तरिक्ष तो इससे भी ऊपर है। और अन्तरिक्ष में जाने के लिए उपयुक्त यान तथा उसमें चालक की भी आवश्यकता होगी। रूस तथा अमरीका ने विगत 20 वर्षों में अभूतपूर्व प्रयोग किये हैं जिनके द्वारा न केवल अन्तरिक्ष के नवीन गुणों का पता चला है वरन् अन्तरिक्ष में मानव यात्रा को सुगम बनाने के लिए इन गुणों का प्रयोग किया जा सका है।

आज का युग 'अन्तरिक्ष युग' घोषित हो चुका है। सभी राष्ट्र इस होड़ में लगे हैं कि अन्तरिक्ष में अधिकाधिक प्रवेश किया जाय। अब अन्तरिक्ष प्रविधि इतनी उन्नत हो चुकी है कि किसी नये प्रतियोगी राष्ट्र को इस क्षेत्र में उतरने में उतनी जहमत नहीं उठानी पड़ती।

लेकिन क्या अन्तरिक्ष होड़ सभी राष्ट्रों के लिये अपरिहार्य है? यदि इसमें व्यय होने वाली धनराशि पर विचार किया जाय तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। तब ऐसा लगने लगता है कि क्यों न इस राशि का उपयोग मानव कल्याणकारी अन्य योजनाओं में किया जावे!!

किन्तु अब अन्तरिक्ष होड़ रुकने वाली नहीं है अत: आइये अन्तरिक्ष विज्ञान से प्राप्य लाभों पर दृष्टि फेरी जावे।

युद्धनीतिक दृष्टि से अन्तरिक्ष विजय का चाहे जैसा भी अर्थ क्यों न लगाया जावे, मानव-कल्याण की दृष्टि से इसके दो लाभ सहज परिलक्षणीय हैं।

(1) अपने पड़ोसी अथवा सुदूर उपग्रहों या ग्रहों से सम्पर्क स्थापित करके उनमें रहने वाले प्राणियों से (यदि हुये तो) आदान-प्रदान की सम्भावना।

(2) अन्तरिक्ष के अनेक गुणों का उपयोग नवीन अन्वेषण के लिये करते हुये मानव-कल्याण का द्वार खोलना।

यद्यपि चन्द्रमा, मंगल, बुध, शुक्र, शनि आदि उपग्रहों और ग्रहों से सम्पर्क स्थापित करने के प्रयत्न बहुत पहले से होते रहे हैं किन्तु इस दिशा में प्रथम सुव्यवस्थित प्रयास 4 अक्टूबर 1957 को रूस द्वारा प्रारम्भ किया गया। इसका फल यह हुआ कि 12 अप्रैल 1961 को अन्तरिक्ष की सैर करने वाला प्रथम साहसिक मानव रूसी मेजर यूरी गागरिन हुआ। धीरे-धीरे रूस तथा अमरीका ने अपनी विस्तृत योजनाओं द्वारा चन्द्रमा पर मानव अवतरण जैसी अभूतपूर्व उपलब्धि की। मंगल तथा शुक्र ग्रहों की यात्रा की तैयारियाँ हो रही हैं और अभी कुछ दिन ही पूर्व रूस फिर से शुक्र पर अपना राकेट पहुँचाने में सफल हो गया है।

जहाँ तक चन्द्रमा पर अवतरण का प्रश्न है, इसके फलस्वरूप कई लोमहर्षक परिणाम प्राप्त हुए—वहाँ वायुमण्डल का अभाव है, रातें ठंडी हैं, धूलि भरी धरती हैं, चट्टानें है आदि आदि जो पूर्व अनुमानित तथ्यों की पुष्टि स्वरूप हैं। यही नहीं, चन्द्रमा से लाई गई चट्टानों का विश्लेषण हो रहा है और आशा व्यक्त की जाती है कि चन्द्रमा पर कुछ ऐसी उपयोगी धातुएँ मिलें जिनका पृथ्वी पर अभाव है। ऐसी दशा में भविष्य में कुछ दशाब्दियों तक चन्द्रमा पृथ्वीवासियों के लिये खनिज स्रोत बन सकता है और इस ओर अनेक उद्योगपति आकृष्ट हो सकते हैं।

चन्द्रमा तक की उड़ान उन औपन्यासिक एवं कवि कल्पनाओं को साकार बना सकी है जिन्होंने अत्यन्त प्राचीन काल से चन्द्रमा की यात्रा की मधुर कल्पनायें की थीं और किसी ने वहाँ अमृत कुण्ड तो किसी ने शीतलता का आगार अनुमाना था। शुक्र में जो राकेट उतरा है उससे भी नवीन जानकारी मिलने की आशा है। मंगल ग्रह की ओर उन्मुख 'वाइकिंग' से भी शायद उस पूर्व कल्पना का निराकरण हो सके जिसके अनुसार मंगल में अत्यन्त प्रगतिशील एवं सभ्य प्राणियों के बसने, नहरें होने तथा उड़न तश्तरियों द्वारा अन्य ग्रहों से सम्पर्क स्थापित करने के प्रयास करते रहे हैं।

अन्तरिक्ष में मानव की यात्रा का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ है कि पुराने अंधविश्वास ढहे हैं, ग्रहों के यथातथ्य ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिली है और मनुष्य पृथ्वी में एक स्थान से दूसरे स्थान तक ही नहीं वरन् एक ग्रह से दूसरे ग्रह में रोमांचकारी यात्राओं के लिए सन्नद्ध हो चुका है। अब अन्तरिक्ष उसका घर-आँगन बन चुका है। उसे तो अपने फैलाव के लिये अनन्त आकाश प्राप्त हुआ है।

तैयारी

अन्तरिक्ष में सुदूर यात्रा के लिये बहुत तैयारियाँ करनी पड़ती हैं। ये दो प्रकार की होती हैं—यान की तैयारी तथा अन्तरिक्ष में जाते वाले यात्री का चुनाव। एक ओर जहाँ प्रथम प्रकार की तैयारी के लिये शिल्प और प्रविधि का सर्वोच्च कोटि का विकास हुआ है वहीं दूसरे प्रकार की तैयारी के लिये मनुष्य को अपने जीवट का परिचय देना पड़ा है।

यान किस धातु का, कितने भार और आकार का, कितने खण्डों का और कहाँ से, कब तथा किस प्रकार छोड़ा जाय, उसमें कौन-कौन से उपकरण रखे जायँ तथा यान को नियन्त्रण में रखने, उतारने आदि के लिये जितने भी तकनीकी विकास की आवश्यकता थी उसे रूसी तथा अमरीकी वैज्ञानिकों एवं शिल्पियों की टोली ने

मिलकर प्राप्त किया है। अन्तरिक्ष विज्ञान के विकास का श्रेय किसी एक व्यक्ति को न देकर अब एक टोली को देना होगा।

लेकिन अन्तरिक्ष यात्रा के लिए मानव को चुना जाय या नहीं, यह कई वर्षों तक विवाद एवं विचार-विमर्श का विषय बना रहा। इसके पूर्व कि मनुष्य को अन्तरिक्ष यात्रा के लिये भेजा जावे उसके लिये आवश्यक परिस्थितियों का अध्ययन आवश्यक हो गया। केवल कुतूहल मात्र में मनुष्य को अन्तरिक्ष में नहीं भेजा जा सकता था। इसलिये मनुष्य को भेजने के पूर्व कुत्ता, चूहा, छोटे जीवाणु, बीज, पौधे आदि अन्तरिक्ष में भेजकर उनमें होने वाले उत्परिवर्तनों का अध्ययन किया जाना श्रेयस्कर समझा गया। अन्त में, जब यह आश्वस्त हो लिया गया कि मनुष्य निर्बाध रूप से अन्तरिक्ष में भेजा जा सकता है तो उसका कठिनतम प्रशिक्षण प्रारम्भ किया गया। इस अग्नि परीक्षा में खरा उतरने के लिये न जाने कितने मेजरों तथा लेफ्टिनेंटों को अभूतपूर्व कवायदें करनी पड़ीं।

समस्यायें

अन्तरिक्ष यात्रा की दो महत्वपूर्ण समस्याएँ थीं—भारहीनता की अवस्था जिसके फलस्वरूप यदि यात्री को अन्तरिक्ष में मुक्त कर दिया जाय तो उसके पैर टिकेंगे नहीं, वह तैरने लगेगा अत: वह कैसे स्थिर रहकर नैत्यिक कार्यों को सम्पन्न करें। भारहीनता की अवस्था में उसके रक्त दाब पर क्या प्रभाव पड़ेगा, कहीं वह बारम्बार चक्कर लगाने के कारण विक्षिप्त तो नहीं हो जावेगा, कहीं दाब में न्यूनता के कारण उसकी रक्त शिरायें फट तो नहीं जावेंगी; अन्तरिक्ष में रहकर वह कैसा भोजन करे, उसे वहाँ ऊर्जा कैसे प्राप्त होती रहे; यदि यान का ईंधन चुक जाय तो कहीं प्राणों के लाले तो नहीं पड़ जावेंगे ? या यह कि प्राणों के संकट उपस्थित होने पर वह अन्तरिक्ष से पृथ्वी पर कैसे उतरे ?

फिर यह भी जानना आवश्यक था कि मनुष्य को जिन ग्रहों की यात्रा करनी है उनमें जीवन के लिये आवश्यक साधन उपस्थित हैं या नहीं ?

या यह कि पार्थिव संदूषणों से ग्रह कहीं ग्रस्त तो नहीं हो जावेंगे ?

अभी तक चन्द्रमा या अन्य ग्रहों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर उनमें जीवन के अस्तित्व की सम्भावना व्यक्त नहीं हो पाई; भले ही जल, अमोनिया जैसे अवयवों की उपस्थिति का पता चला है।

तो क्या ऐसा तो नहीं है कि इतना प्रयास या वैज्ञानिक साज-सामान का एकीकरण निष्फल हो जावे ?

मनुष्य सदैव से साहसिक प्राणी रहा है। उसे दुस्साहस में मजा आता है। ग्रहों की यात्रा इसी का प्रतिफल है। पहाड़ पर चढ़ना और अन्तरिक्ष में जाना—दोनों में उसके लिये प्रचुर साम्य है। भला जो मनुष्य एवरेस्ट को दुर्लंध्य चोटी पर जा सकता है, वही अन्तरिक्ष में जाने से भला क्या मुकरेगा ?

लाभ

भौतिकीविदों ने अन्तरिक्ष युग का सूत्रपात कर कई नवीन दिशाओं में सोचने के लिए प्रेरित किया है। आलोचक भले ही इसे सिरफिरों की कोशिशें कह कर रोष को शान्त कर लें किन्तु वास्तविकता कुछ दूसरी ही है।

वैज्ञानिकों ने योजनाबद्ध तैयारी के फलस्वरूप अन्तरिक्ष यानों के विविध विकसित रूप तैयार किये हैं —राकेट, कृत्रिम उपग्रह, अन्तरिक्ष प्रयोगशाला, चन्द्रगाड़ी आदि। इन कृत्रिम उपग्रहों को अन्तरिक्ष में स्थापित करके भविष्य में अन्य ग्रहों तक उड़ान भरने में सहायता मिल सकती है।

कृत्रिम उपग्रहों से दूरदर्शन कार्यक्रम में चार चाँद लगे हैं।

जहाँ पहले मौसम की भविष्यवाणी गुब्बारों के द्वारा की जाती थी अब वही उपग्रहों द्वारा की जा सकेगी। समुद्रों में तूफानों के आने, मानसून के चलने आदि की सूचना सहज ही मिल सकेगी।

भूभौतिक वर्ष के दौरान नये तरह के अन्तरिक्ष यानों का विकास करके ऊँचाई पर ताप, दाब आदि के परिवर्तनों के सम्बन्ध में जटिल से जटिल सूचना देने के लिए एक से एक पेचीदे उपकरणों का विकास करके वैज्ञानिकों ने ऐसी छलांग लगाई है कि जब तक उपग्रह अन्तरिक्ष में स्थापित रहेगा, समस्त सूचनाएँ मिलती रहेंगी।

जब मनुष्य को अन्तरिक्ष में भेजने का अन्तिम निर्णय हो गया तो उसके लिये दाबरुद्ध कोठरियों का विकास हुआ जिससे अन्तरिक्ष यात्री उनके भीतर भारहीनता की दशा में भी सभी कार्य सुचारु रूप से कर सकें, यन्त्रों को संचालित कर सकें और आवश्यक सूचना एकत्र करने के लिये कोठरियों से बाहर निकलें तो ऐसा लबादा पहनें कि उन पर कोई प्रभाव न पड़े; इच्छानुसार जब चाहें तब यान में पुनः प्रविष्ट हों जायँ और जब पृथ्वी पर लौटें तो पूर्ववत् मानव बने रहें—इन समस्त पक्षों पर इतना कार्य हुआ है कि इससे खाद्य सम्बन्धी और औषधि सम्बन्धी अनेक नवीन दिशाएँ खुली हैं।

अन्तरिक्ष यान तैयार करने, उसको नियन्त्रित करने आदि में पृथ्वी पर लाखों व्यक्तियों के सहयोग की अपेक्षा की गई है, जिससे उन्हें व्यवसाय का अवसर मिला है, उनकी प्रतिभा का विकास हुआ है और विविध उद्योगों का जन्म हुआ है। अन्तरिक्ष यान की तैयारी में न जाने कितनी सर्वथा नूतन सामग्रियों का व्यवहार हुआ है।

अन्तरिक्ष की नूतनतम उपलब्धियाँ अब विश्व भर के लोगों के स्वप्न की साकार मणियाँ हैं। कहीं भी कोई नवीन घटना होती है कि सभी लोग उसके लिये उतावले हो उठते हैं। यह अन्तरिक्ष युग की प्रकृति बन गई है।

लेकिन यह सच है कि अन्तरिक्ष युग ने मानव के समक्ष नई चुनौतियाँ रखी हैं।

उसे इस धरती को छोड़ने के लिए तैयार रहना है।

यदि कोई अन्तरिक्ष अभियान हुआ तो उसके दुष्परिणामों को भोगने के लिए सन्नद्ध रहना है।

नित्य ही नये उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़कर उसे दूषित करने, भविष्य में उपग्रहों की परस्पर टकराहट और इतनी बड़ी धनराशि का अपव्यय करने के लिये बाध्य होना जिसे इस समय कोटि-कोटि मानवों के कल्याण में खर्च किया जा सकता है।

इसीलिये बड़े-बड़े वैज्ञानिक एवं विचारक अन्तरिक्ष की होड़ को बन्द करने के पक्षपाती रहे हैं। किन्तु इतने पर भी यह होड़ चालू है और चालू रहेगी। भारत अभी इस होड़ में सबसे पीछे है। 'आर्य भट' को छोड़े केवल आठ मास ही व्यतीत हुये हैं लेकिन यह हमारी महान उपलब्धि है। अन्तरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भारत का भविष्य उज्ज्वल दिख रहा है।

विश्व की अनन्तता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इससे प्रत्येक व्यक्ति पृथ्वी पर रहने वाले 30 अरब निवासियों में एक है। हमारी पृथ्वी सौर परिवार के नौ ग्रहों में एक है और सूर्य स्वयं चन्द्राकार आकाश गंगा के 9 अरब तारों में से एक है। आकाश गंगा भी अन्तरिक्ष में समाहित 10 करोड़ आकाश गंगाओं में एक है। कभी मनुष्य पूरे अन्तरिक्ष का पता लगा सकेगा यह सन्देहास्पद है। अतः यह मानवता के लिए चुनौती नहीं तो और क्या है।

●●

अंतरिक्ष-यान में भोजन की समस्या का निदान—क्लोरेला

प्रेमचन्द्र श्रीवास्तव

ज़रा कल्पना कीजिए आप अंतरिक्ष-यान में बैठे हुए चन्द्र-यात्रा पर उड़े जा रहे हैं। विचारों में खोये आप चन्द्र-यात्रा का आनन्द ले रहे हैं। जभी आपने महसूस किया कि आपको भोजन की आवश्यकता है। आप खाने की मेज के पास गये और आपने देखा कि आपका भोजन प्लेटों में न होकर छोटे-छोटे टिनों और थैलियों में विशेष प्रकार के धागे द्वारा मेज के किनारों से बँधा हुआ है। ऐसा इसलिए किया गया है ताकि यह भोज्य पदार्थ शून्य गुरुत्वाकर्षण के कारण अंतरिक्ष-यान के अन्दर उड़ने न लगे।

किन्तु अब यह कोरी कल्पना ही नहीं रही। सत्रह जुलाई को अमेरिकी 'अपोलो' और रूसी 'सोयूज' के अंतरिक्ष में गठबन्धन के बाद अमेरिकी अंतरिक्ष यात्री स्टैफोर्ड, स्लेटन और ब्रान्ड तथा रूसी यात्री लियोनार्ड एवम् कुबासोव अंतरिक्ष-यान के अन्दर प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय दावत उड़ा चुके हैं। इस दावत में दोनों ही देशों के विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ रखे गये थे। यह यात्रा एक हफ्ते के लिए थी।

इस यात्रा के समय तो भोजन की समस्या सामने नहीं थी, किंतु भविष्य में जब कई सप्ताहों, कई महीनों अथवा कई वर्षों की यात्राएँ करनी होंगी तब पृथ्वी से सारा भोजन ले जाना एक विकट समस्या होगी। समस्त वैज्ञानिक उपलब्धियों के बावजूद भी पर्याप्त मात्रा में भोजन ले जाना संभव नहीं होगा।

विश्व के कई देश इस दिशा में आज से लगभग दो दशक से भी अधिक समय पहले से ऐसे भोजन की खोज में लगे हुए हैं जो अंतरिक्ष की लम्बी यात्राओं में ले जाया जा सके। अमेरिका, रूस, जापान, इजरायल और जर्मनी ऐसे कुछ मुख्य देश हैं।

इस समस्या के निदान में एक विशेष नाम जो सामने उभर कर आता है वह डा० आर्थर जे० पिलग्रिम का। डा० पिलग्रिम एक ऐसे वैज्ञानिक हैं जिन्होंने पौधों के रासायनिक संयोजन, उनकी वृद्धि और विकास का अध्ययन किया है। लगभग एक दशक पूर्व डा० पिलग्रिम और उनके सहयोगियों ने इस बात का पता लगाया था कि अंतरिक्ष-यान में भोजन, जल और ऑक्सीजन कैसे प्राप्त हो तथा मानव शरीर द्वारा विसर्जित मल को किस प्रकार नष्ट किया जाए। इस कार्य में इस बात का भी ध्यान रखना आवश्यक है कि इनके कारण अंतरिक्ष-यान के भार में किसी प्रकार की वृद्धि न हो और भार कम से कम रहे। इस समस्या को सुलझाने का एक सही तरीका यह है कि अंतरिक्ष-यान एक बंद व्यवस्था में बदल दिया जाए और इस प्रकार की व्यवस्था के अन्तर्गत जल, ऑक्सीजन, भोजन और विसर्जित मल पदार्थों को एक निरन्तर गतिशील चक्र में इस प्रकार बार-बार प्रयोग किया जाए कि भोजन, जल और ऑक्सीजन की कभी भी कमी न होने पाए। यह संपूर्ण व्यवस्था एक जीवित पौधे पर आधारित है।

मनुष्य द्वारा त्यागे गये मल में जल और उसके अतिरिक्त अधिक मात्रा में वे रासायनिक पदार्थ

पाये जाते हैं जो पौधों द्वारा प्रोटीन, विटामिन और अन्य पोषक तत्वों के निर्माण में सहायक होते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्यों द्वारा बाहर निकाली गई कॉर्बन-डाई-आक्साइड गैस भी पौधों के काम आती है। इस प्रकार मनुष्य द्वारा त्यागा गया मल पौधों के लिए खाद का काम करता है। साथ ही साथ साँस द्वारा निकाली गई कार्बन-डाई-आक्साइड गैस का उपयोग पौधे का भोजन बनाने में होता है। इस भोजन बनाने की क्रिया के दौरान ऑक्सीजन गैस बाहर निकलती है जो मनुष्यों के साँस लेने के काम में आती है। अंतरिक्ष-यान में उगाये जाने वाले पौधे ऐसे होने चाहिए जो खाने योग्य हों, स्वास्थ्यदायक हों और साथ ही साथ सुस्वादु हों। क्योंकि भोजन सुस्वादु न हुआ तो न तो अंतरिक्ष यात्रियों को उन्हें खाने की इच्छा होगी और न ही वे अपना कार्य सुचार रूप से कर सकेंगे।

दूसरी बात जो सबसे आवश्यक है वह यह है कि पौधे अधिक मात्रा में कॉर्बन-डाई-आक्साइड ले सकें और उसी प्रकार अधिक मात्रा में ऑक्सीजन निकाल सकें और इस सारी प्रक्रिया में कम से कम समय लगे। यह भी विचारणीय है कि पौधों का भार कम से कम हो। इसके अतिरिक्त यह पौधे मनुष्य द्वारा त्यागे गये मल की खाद पर ही जीवित रह सकें और कॉस्मिक विकिरण और भारहीनता से प्रभावित न हों।

डा० पिलग्रिम और उनके सहयोगियों ने कुछ चौड़ी पत्तियों वाले पौधे, जो साधारणतया भूमि पर उगते हैं और कुछ ऐसे पौधे जो बिना मिट्टी के उगते हैं, दोनों पर विविध प्रकार के प्रयोग किए और इस बात का पता लगाया कि एक प्रकार की हरी शैवाल-क्लोरेला सबसे उपयुक्त पौधा है जिसे अंतरिक्ष यान में ले जाया जा सकता है। इस पौधे से विभिन्न प्रकार के सुस्वादु भोज्य पदार्थ भी बनाए जा सकते हैं। इस बात की पुष्टि विश्व के प्रमुख देशों के वैज्ञानिकों ने भी की है कि क्लोरेला ही सबसे उपयुक्त पौधा है जिसे अंतरिक्ष की लम्बी यात्राओं में सुगमतापूर्वक ले जाया जा सकता है। यहाँ यह बताना अनुचित न होगा कि कई लोगों ने क्लोरेला से तैयार किए गये केक (जिसे डा० पिलग्रिम की पुत्री विकी ने बनाया था) को चखा और वे इस केक तथा साधारण मैदे के केक के स्वाद में अंतर न बता सके।

क्लोरेला हरित शैवाल वर्ग का एक सदस्य है। इसमें जड़, तना, पत्तियों और बीज का सर्वथा अभाव है। यह एककोशीय है। अतः यह समूचा
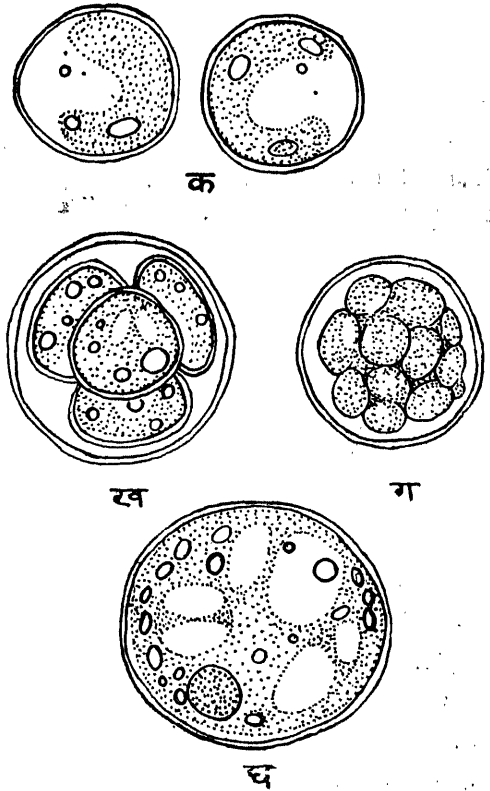
चित्र—क्लोरेलावल्गरिस

क-नई कोशिकायें ख. विभाजित होती कोशिका ग. पुरानी कोशिका जो स्टार्च के दानों से भरी है ! घ पुरानी कोशिका जिसमें क्लोरो प्लास्ट पाइरिनायड और वै कुओल्स दिखाई दे रहे हैं।

पौधा उपयोग में आ सकता है। इसका आकार गोल होता है। यह माप में दो से दस माइक्रॉन्स के बीच में होता है। इसके अन्दर एक क्लोरोप्लास्ट या हरा पदार्थ और एक पाइरिनॉयड होता है और इसी पाइरिनॉयड में प्रोटीन एकत्रित होती है।

क्लोरेला में 50% प्रोटीन, 20% कार्बोहाइड्रेट, 20% वसा और 10% राख होती है। इसमें विटामिन 'ए', विटामिन 'बी' काम्प्लेक्स, विटामिन 'सी' और विटामिन 'ई' भी पाई जाती है। विटामिन 'सी' उसी मात्रा में इसमें मिलती है जितनी कि नीबू के फल में। क्लोरेला में सभी प्रकार के एमिनो अम्ल उचित मात्रा में मिलते हैं। केवल मिथियोमीन बहुत ही थोड़ी मात्रा में पाई जाती है।

क्लोरेला में पाई जाने वाली प्रोटीन गेहूँ की प्रोटीन से चार गुनी अधिक गुणकारी है। यह प्रोटीन मात्रा में सब प्रकार की सब्जियों से अधिक तो है ही साथ ही साथ सोयाबीन में पाई जाने वाली प्रोटीन से भी 6% अधिक है।

यह पौधा सूर्य की रोशनी में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बन-डाइ-आक्साइड और जल की मदद से भोजन बना सकता है। सूर्य के प्रकाश से इस क्रिया के लिए इसे ऊर्जा प्राप्त होती है। गेहूँ के पौधे तो केवल 0·3% प्रकाश का इस्तेमाल कर पाते हैं किन्तु क्लोरेला लगभग इसका सात गुना (2% के करीब) प्रकाश का उपयोग कर सकता है। क्लोरेला का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें वृद्धि और प्रजनन की क्रियाएँ सुगम हैं और शीघ्र होती हैं जबकि अन्य पौधों में यह क्रियाएँ जटिल हैं और बहुत अधिक समय लेती हैं। यह पौधा पानी में उगता है तथा इसके लिए मिट्टी की आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल जल और रासायनिक लवणों की आवश्यकता पड़ती है। यही नहीं इसे पानी भी बहुत थोड़ी मात्रा में चाहिए क्योंकि उस्वेदन की क्रिया इसमें नहीं होती इस कारण इसमें पानी का क्षय नहीं होता। केवल खनिज लवणों की इसमें समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है। खनिज लवणों में मुख्य मैग्नेशियम सल्फेट, पोटैशियम डाइहाइड्रोजेन फ़ास्फेट और नाइट्रोजन के लिए अमोनियम सल्फेट या यूरिया है। इसके साथ ही साथ कुछ तत्व बहुत कम मात्रा में घोल में डाले जाते हैं, यह तत्व लोहा, मैंगनीज और मालोबेडेनम हैं।

डा० पिलग्रिम और कुछ अन्य वैज्ञानिकों के अनुसार अंतरिक्ष-यान में क्लोरेला को एक विशेष उपकरण फोटोसिन्थेटिक गैस एक्सचेन्जर में उगाया जा सकता है। सर्वप्रथम मनुष्य द्वारा त्यागे मल को बैक्टीरिया व रासायनिक पदार्थों के द्वारा तोड़ा जा सकता है। फिर इनमें पानी मिलाने के बाद कॉर्बन-डाइ-ऑक्साइड गैस के साथ पाइपों द्वारा ऐसे शीशे के टैंक में डाला जा सकता है जिसमें क्लोरेला पहले से मौजूद हो। बल्बों के द्वारा प्रकाश की व्यवस्था की जा सकती है जिससे प्रकाश-संश्लेषण क्रिया हो सके। दूसरी तरह की शीशे की

अपोलो सोयूज मिशन के दौरान एक रहस्यमय तारे की खोज हुई है जो 300 प्रकाश वर्ष परे स्थित है। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के 6 खगोलविदों ने अपोलो यान के अन्तरिक्ष यात्रियों को एक शक्तिशाली दूरदर्शी 30 विभिन्न उद्देश्यों पर फोकस करने हेतु निर्देश दिया था। प्रो० सी० स्टुवर्ट बायर ने 'अमेरिकन ऐस्ट्रोनोयिकल सोसाइटी की' वार्षिक मीटिंग में गत 18 अगस्त को कहा कि अभी कुछ दिनों पहले तक हम 10 प्रकाश वर्ष भी दूर स्थित किसी पिण्ड को देखने में असमर्थ थे लेकिन अपोलो सोयूज मिशन के दौरान अल्ट्रावायलट विकिरणों की मदद से 300 प्रकाश वर्ष दूर स्थित अति ऊर्जावान अन्तरिक्ष पिण्ड को देख सकने में हम सफल हो गये हैं और इससे एक नए विज्ञान का आरम्भ हो गया है।

नलिकाओं द्वारा ऑक्सीजन गैस और तैयार 'फसल' को शीशे के टैंकों से निकाला जा सकता हैं। इस प्रकार इस ऑक्सीजन का उपयोग सीधे अंतरिक्ष-यान के वातावरण के लिए कर सकते हैं। इस तैयार शैवाल को घोल से छान कर अलग किया जा सकता है और इसको सुखा कर आटे की तरह का चूर्ण पदार्थ बनाया जा सकता है। यह आटा विभिन्न प्रकार के स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों के बनाने के काम में आ सकता है।

क्लोरेला को कच्चा भी खाया जा सकता है यद्यपि खाने के बाद का स्वाद कुछ अच्छा नहीं होता। सुखाने के बाद क्लोरेला को लम्बे समय तक प्रयोग में ला सकते हैं और इसका स्वाद कच्ची लौकी या कद्दू से मिलता जुलता सा होती है। इस स्वाद को कृत्रिम गंधों की सहायता से ठीक किया जा सकता है। इसमें एक ही अवगुण है कि विटामिन 'सी' की मात्रा सूखने की दशा में बहुत कम-लगभग समाप्त सी हो जाती है।

एक अनुमान के अनुसार दो करोड़ एकड़ क्षेत्र पानी में उगाये गये क्लोरेला में इतनी प्रोटीन मिल सकती है जो विश्व की संपूर्ण जनसंख्या की प्रोटीन की आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है।

क्लोरेला 75°F पर अच्छी प्रकार उगता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है यह एक कोशीय पौधा है। प्रजनन की क्रिया में एक से दो कोशिकाएँ बनती हैं और इस प्रकार यह संख्या में बढ़ता जाता है। बिना रुके हुए विभाजन की यह क्रिया चौबीस घंटे में एक बार होती है। इसका अर्थ यह है कि हर चौबीस घंटे में क्लोरेला की एक फसल काटी जा सकती है।

वेनेजुएला में क्लोरेला का सूप कुष्ठरोगियों को पिलाने पर यह देखा गया कि उनके स्वास्थ्य में विस्मयकारी सुधार हुआ और अब तो वैज्ञानिकों ने क्लोरेला से एक प्रकार की एन्टीबॉयोटिक—'क्लोरेलिन' भी तैयार कर ली है जो एक अत्यंत उपयोगी औषधि है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अंतरिक्ष-यान में उगाये जाने वाले इस पौधे में न केवल अंतरिक्ष यात्रियों के भोजन की समस्या का निदान मिल सकता है वरन् धरती पर रहने वाले करोड़ों भूखे लोगों की समस्या का समाधान भी निहित है। वह दिन दूर नहीं जब मानव को भोजन की समस्या का हल प्राप्त करने के लिए क्लोरेला या इसी प्रकार के अन्य पौधों का उपयोग बड़े पैमाने पर करना पड़ेगा।

●●

अन्तरिक्ष यात्रियों के लिए भी रोटी गेहूँ या राई के आटे से बनती है लेकिन वह बहुत छोटी (4.5 ग्राम) होती है। भारहीनता की स्थिति को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना पड़ता है। चूँकि यात्रा अवधि लम्बी होती है अतः रोटियों में कुछ ऐसे पदार्थ मिलाए जाते हैं जिससे रोटियाँ बासी न हों और न ही उनका स्वाद बिगड़े।